प्राकृत-व्याकरणम्

२५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी
के उपलक्ष्य में

संस्कृत – हिन्दी – व्याख्या – द्वयोपेतम्

व्याख्याकार :—

जैनभूषण श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

भगवान् महावीर की २५ वीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित

आचार्य श्री हेमचन्द्र द्वारा प्रणीत

प्राकृत-व्याकरण

संस्कृत-हिन्दी-टीका-द्वय से युक्त

(प्रथम खण्ड)

टीकाकार —

जैनधर्म-दिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागम-रत्नाकर

आचार्य-सम्राट परमश्रद्धेय

पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

के सुशिष्य

जैन-भूषण, पंजाब-केसरी, व्याख्यान-दिवाकर

पण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

प्रकाशक

आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल

२९-डी, कमला नगर,

देहली-७

प्रकाशक—

अहिंसा सत्य के अमर सन्देशवाहक, श्रमण भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में **आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल, कमलानगर,** 29-D, **दिल्ली** द्वारा प्रकाशित

विषय—

प्राकृतव्याकरण, संस्कृत और हिन्दी टीका-द्वय से सहित (प्रथम खण्ड)

टीकाकार—

वन्दनीय, पूज्यपाद, जैनधर्मदिवाकर, आचार्य-सम्राट्, **पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज** के सुशिष्य **जैनभूषण, पण्डितरत्न, श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज**

प्रस्तावना-लेखक—

डाक्टर ऐल० एम० जोशी, रीडर, इन बुद्धिज्म, पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, तथा **डाक्टर ए० एन० सिन्हा**, लैक्चरार इन जैनिज्म, पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला

प्राप्तिस्थान—

आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल, २९-डी, कमलानगर, दिल्ली-७

प्रकाशनकाल—

वीर सम्वत् २५००

विक्रम सम्वत् २०३१

ईस्वीसन् १९७४

आत्मसम्वत् १२

मूल्य २५ रुपए

व्याख्याकार के पूज्य गुरुदेव—

जैनधर्मदिवाकर, आचार्य-सम्राट् महामहिम, वन्दनीय

परमश्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

किस को ?

जिन की विलक्षण अध्यात्म साधना
तथा आदर्श ज्ञानाराधना
के अनुपम प्रकाश एवं प्रेरणा को पाकर
मैं
इन पंक्तियों को लिखने की क्षमता
अधिगत कर सका हूं।
उन्हीं,
जैन संस्कृति के अमर प्रतीक,
जैनधर्मदिवाकर, साहित्यरत्न
आचार्य-सम्राट् गुरुदेव
पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज
के पावन स्मृतिचरणों में
सादर, सभक्ति, सविनय
समर्पित।

—ज्ञानमुनि

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा
जैनस्थानक, राहों (पंजाब)

जैन-भूषण, व्याख्यान-दिवाकर, पंजाबकेसरी श्रद्धेय श्री ज्ञान मुनि जी महाराज द्वारा लिखित एवं संपादित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें :—

१. **श्री विपाक सूत्र** (हिन्दी भाषा टीका सहित)
२. **श्री अन्तगड़ सूत्र** (जैन-धर्म-दिवाकर, आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा कृत अनुवाद का सम्पादन)
३. **श्री अनुयोग द्वार सूत्र** (हिन्दी भाषा टीका-सहित, प्रथम भाग)
४. **प्रश्नों के उत्तर** (दो खण्ड)
५. **भगवान महावीर के पांच सिद्धान्त।**
६. **सामायिक सूत्र** (हिन्दी-भाषा-टीका-सहित)
७. **स्थानकवासी और तेरहपन्थ।**
८. **दीपक के अमर सन्देश!**
९. **सम्वत्सरी पर्व क्यों और कैसे ?**
१०. **जीवन-झांकी** (जीवनी, गणी श्री उदय चन्द्र जी महाराज)
११. **आचार्य-सम्राट्** (जीवनी, आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज)
१२. **श्रमण-संस्कृति के प्रतीक, ऋषिवर आनन्द** (जीवनी, आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज)
१३. **सरलता के महास्रोत** (जीवनी, तपस्वी श्री फकीरचन्द्र जी महाराज)
१४. **भगवान् महावीर और विश्व-शांति** (हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, अंग्रेज़ी)
१५. **ज्ञान सरोवर** (भजन संग्रह)
१६. **सामायिक सूत्र** (उर्दू, भावार्थ-सहित)।
१७. **प्राकृत-व्याकरण** (संस्कृत-हिन्दी-टीका-द्वयोपेत) दो खण्ड
१८. **ज्ञान का अमृत** (आठ कर्मों का विवेचन, उर्दू)
१९. **सच्चा साधुत्व** (साधु-धर्म का परिचय)
२०. **ज्ञान का अमृत** (आठ कर्मों का विवेचन, हिन्दी)
२१. **परम श्रद्धेय श्री अमरमुनि जी**, पंजाबी (जीवनी)
२२. **ज्ञान भरे दोहे** (दोहा-संग्रह)
२३. **ज्ञान-संगीत** (भजन संग्रह)
२४. **महासती श्री चन्दनबाला** (पद्य)
२५. **साधना के अमर प्रतीक** (जीवनी, महामुनि श्री छगनलाल जी महाराज)

—: प्राप्ति-स्थान :—

आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल
कमलानगर, 29-D, देहली-7

Printed by Shri S. L. Bhatia at The Giri Ptinters Ambala City

प्रस्तावना

प्राकृत क्या है ?

मनुष्य की भावनाओं और विचारों का उसकी वाक्-शक्ति के साथ चिरातन सम्बन्ध है। अपनी अनुभूतियों एवं आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति मनुष्य अपने ध्वन्यात्मक संकेतों के माध्यम से करता है। ये ही सार्थक ध्वन्यात्मक संकेत बोली को जन्म देते हैं और यही बोली जब साहित्य का सृजन करने लग जाती है, तब भाषा कहलाती है। हर देश और काल में बोली और भाषा समानान्तर रूप में अबाध गति से विकसित होती रहती है। परन्तु यह मानना कि बोली और भाषा का विकास दो विभिन्न दिशाओं में निरपेक्षभाव से होता है अनुचित होगा, क्योंकि बोली और भाषा का सम्बन्ध सापेक्षगत है। किसी भी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास बोलियों की नींव पर ही सम्भव है। प्रत्येक भाषा की कुछ बोलियाँ होती हैं जिनके आधार पर वह भाषा खड़ी होती है। उदाहरणार्थ हिन्दी को लें। आज हिन्दी जिस रूप में व्यवहृत है, उसकी उत्पत्ति और विकास का पर्यवेक्षण करने पर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि इसकी नींव कुछ बोलियां हैं जो ब्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी, मगही आदि कही जा सकती हैं। ठीक इसी प्रकार जब संस्कृत ने साहित्यिक भाषा होने का गौरव प्राप्त किया होगा या यूं कहें कि जब पाणिनि ने वैदिक संस्कृत (छान्दस्) को परिमार्जित एवं संस्कारित करने का कार्य प्रारम्भ किया होगा और व्याकरण के सूत्रों में आबद्ध कर लौकिक संस्कृत का निर्माण किया होगा, तब समाज में लोकव्यवहार के लिए कुछ बोलियां अवश्य रही होंगी। इतना ही क्यों, जब वैदिक ऋचाओं की रचना हो रही होगी, उस समय भी वैदिक संस्कृत कभी लोकभाषा नहीं रही होगी, क्योंकि ये ऋचाएँ भी तो ऋषियों की वाणी हैं, समाज के सुशिक्षित एवं उत्कृष्ट वर्ग की रचनाएं हैं। आखिर उस समय की बोलियां क्या थीं तथा किन नामों से जानी जाती थीं? भाषाविदों के अनुसार प्राकृत ही उस समय की बोलियां थीं। ग्रियर्सन (Grierson) ने वैदिकयुगीन बोलियों को प्राथमिक प्राकृत (Primary Prakrit) कहा है। वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति और विकास इन्हीं प्राकृत भाषाओं से हुआ है। प्राकृत भाषाओं के विकास के इतिहास में वैदिककालीन प्राकृत भाषाएं प्रथम स्तर (First Stage) की प्राकृत भाषाएं हैं। भाषाविदों के अनुसार बुद्ध और महावीर काल की प्राकृत भाषाएँ द्वितीय स्तर (Second Stage) की प्राकृत भाषाएं हैं, जिनमें प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य सुरक्षित है। बुद्ध और महावीर ने अपने उपदेशों को लोकभाषा में समझाने और जानने को कहा था, संस्कृत में नहीं। इसीलिए बौद्ध पिटकों और जैन आगमों की भाषाएं उस समय की लोकव्यवहृत प्राकृत भाषाएं ही हैं। फिर अशोक ने बुद्धवचनों को, शिलालेखों तथा स्तम्भलेखों में विभिन्न स्थानों की स्थानीय लोकभाषाओं में ही अंकित करवाया था। इस प्रकार बौद्ध पिटकों की भाषा पालि, जैन आगमों की भाषा अर्द्धमागधी तथा अशोक के अभिलेखों की भाषाएं प्राकृत हैं[1]। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय

१. गायगर ने भी पालि को प्राचीन प्राकृत कहा है—देखें गायगर, पालि लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर (अनु० घोष), कलकत्ता, १९५६, पृष्ठ १।

आर्य भाषाओं को भी तृतीय स्तर की प्राकृत (Tertiary Prakrit) कहा है जिनका विकास द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं तथा उनसे विकसित अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है।

काल की दृष्टि से प्राथमिक प्राकृत का काल २००० ईस्वी पूर्व से ६०० ई० पू० तक माना जा सकता है तथा द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं का काल ६०० ई० पू० से १२०० ई० तक और १२०० ई० के बाद का काल तृतीय स्तर की प्राकृत भाषाओं का कहा जा सकता है।

आज प्राकृत भाषाओं का जो प्राचीनतम प्राकृत साहित्य उपलब्ध है वह द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं में ही है। प्राथमिक प्राकृत भाषाओं में सम्भवतः कोई भी साहित्य नहीं रचा गया। परन्तु यदि पाणिनि का काल छठी-सातवीं शताब्दी ई० पू० माना जाय, तो पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट कुछ धातुओं की सूची जिन्हें उसने अपने धातुपाठ में दिया है उनसे प्राथमिक प्राकृत के कुछ नमूनों का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। इन धातुओं के समानान्तर शब्द संस्कृत में नहीं मिलते हैं। ये वस्तुतः देश्य शब्द हैं, यथा अड्, कड्, घुण्, चक्, चप्, जुड्, आदि जिनसे आज हिन्दी में अड़ना, कड़ा, घूमना, चकाचक, चुप, जुड़ना, आदि शब्द बने हैं।[१] द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं में इस प्रकार के देश्य शब्दों के प्रयोग का आधिक्य है, परन्तु साथ ही तत्सम और तद्-भव शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। वे संस्कृत शब्द जो मूलरूप में अर्थात् अपरिवर्तित रूप में प्राकृत भाषाओं में प्रयुक्त हैं तत्सम कहे जाते हैं, यथा नीर, तीर, कण्ठ, कवि, संसार आदि। तथा वे शब्द जो प्रयत्न लाघव के कारण परिवर्तित रूपों में प्रयुक्त हैं तद्भव कहे जाते हैं, यथा अग्ग, इट्ठ, पच्छा, चक्क, कक्क आदि, परन्तु कुछ विद्वान यह नहीं मानते कि तत्सम और तद्भव शब्दों का तत् शब्द उन प्राथमिक भाषाओं के शब्दों की ओर संकेत करता है जिनसे वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत का उद्भव और विकास हुआ तथा साथ ही वे प्राथमिक प्राकृत भाषाएं भी विकसित होकर द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं का रूप धारण कर सकीं[२]।

'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति वैयाकरणों तथा अलंकारशास्त्रज्ञों ने प्रकृति से की है। प्रकृति से अर्थ उनका संस्कृत से है। संस्कृत ही प्राकृत भाषाओं की मूल प्रकृति है अर्थात् प्राकृत भाषाओं का उद्गम स्रोत संस्कृत है। प्रायः सभी ने, हेमचन्द्र, मार्कण्डेय, धनिक आदि ने, **'प्रकृतिः संस्कृतम्'** का प्रयोग कर संस्कृत को प्राकृत भाषाओं की प्रकृति कहा है[३]। परन्तु इस अर्थ में प्राकृत शब्द का प्रयोग अनुपयुक्त प्रतीत होता है। सभी प्राकृत वैयाकरणों ने अपने व्याकरण-ग्रन्थों की भाषा

१. देखें पिशेल, **प्राकृत भाषाओं का व्याकरण** (अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृष्ठ २६५-६६ की पाद-टिप्पणी।

२. पं० हरगोविन्ददास टी० सेठ, **पाइअ-सद्द-महण्णवो**, उपोद्घात, पृ० २२-२६

३. प्रकृतिः संस्कृतम्। तत भवं तत आगतं वा प्राकृतम्।—**सिद्धहैमशब्दानुशासन** ८/१/१
प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं प्राकृतमुच्यते।—**प्राकृतसर्वस्व** १/१
प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्।—धनिककृत **दशरूपकटीका** २/६०
प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः—वासुदेवकृत **कर्पूरमंजरीसंजीवनीटीका**, ९/२
प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृतीमता—**षड्भाषाचन्द्रिका**, पृ० ४
प्रकृतेः संस्कृताद् आगतं प्राकृतम्—**वाग्भटालंकारटीका** २/२
मूलप्रकृतिविकृतिः—**सांख्यतत्त्वकौमुदी**, कारिका ३

संस्कृत रखी है। इसी कारण संस्कृत शब्दों को आधार मानकर, प्रकृति मानकर प्राकृत भाषाओं की विचित्रताएँ समझी जाएं तथा संस्कृत शब्दों से साम्य-वैषम्य स्पष्ट हो, इसी अर्थ में **'प्रकृतिः संस्कृतम्'** का प्रयोग उन शास्त्रज्ञों ने किया है, न कि इस अर्थ में कि प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृत से है।

प्राकृत भाषाओं का विस्तार—

इस प्रकार मूलतः प्राकृत का सम्बन्ध लोकव्यवहृत भाषाओं से ही है। बाद में चलकर जब साहित्यिक भाषा का रूप धारण किया तब संस्कृत की भांति इस का भी साहित्यकारों ने काफ़ी परिमार्जन किया ताकि इसमें भी व्यवस्थात्मक एकरूपता आ जाय और यह सुगठित हो जाय। परन्तु स्थान और काल के कारण विविधताएं वर्तमान रहीं। उन्हीं विविधताओं के आधार पर प्राकृत भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाएं जिनमें प्राचीनतम प्राकृत साहित्य सुरक्षित है, देशगत विविधता की दृष्टि से तथा कालगत विकास के संस्तरण की दृष्टि से तीन विभागों में विभक्त किये जाते हैं—प्रथमयुगीन, द्वितीययुगीन और तृतीययुगीन। चूंकि भारतीय आर्यभाषाओं के विकास के अध्ययन में द्वितीय स्तर की प्राकृत की विशेष भूमिका है, कारण इसका काल-विस्तार विकास की दृष्टि से करीब अठारह सौ वर्षों का है तथा साथ ही साहित्य भण्डार भी विशाल है, इसलिए इसका संक्षेप में यहां पर विवेचन करना समीचीन होगा।

द्वितीय स्तर की प्रथमयुगीन प्राकृत के अन्तर्गत आर्ष प्राकृत, शिलालेखी प्राकृत, निया प्राकृत, खरोष्ठी धम्मपद की प्राकृत तथा अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत आती है।

आर्ष प्राकृत के अन्तर्गत बौद्ध पिटकों की भाषा पालि तथा दिगम्बर जैन आगमों की जैन शौरसेनी और श्वेताम्बर जैन आगमों की अर्द्धमागधी भाषाएँ आती हैं। ऋषिभाषित होने के कारण आर्ष कहा जाता है। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर के उपदेशों का संकलन पिटकों और आगमों में है। पिटकों और आगमों की भाषाएं ही आर्ष प्राकृत हैं जो बौद्धिक भाषा के समान प्राचीन हैं। बौद्ध पिटकों की भाषा पालि की परम्परा, अपनी मूल प्रकृति को व्यवस्थात्मक रूप में संस्कृत की भांति कायम रखते हुए, बहुत लम्बी है। पिटकेतर साहित्य की रचना इसी भाषा में एक लम्बे अरसे तक, शताब्दियों तक होती रही। पिटक ग्रन्थों की टीकाएँ और अनुटीकाएं, वंश साहित्य, छन्द शास्त्र आदि रचे गये। यहां तक कि इस भाषा का व्याकरण भी इसी भाषा में लिखा गया जबकि अन्य प्राकृतों का व्याकरण संस्कृत में है। इसका साहित्य-भण्डार विशाल है। प्राचीनता की दृष्टि से भी पालि अन्य प्राकृतों से प्राचीन है। इसके बाद जैन शौरसेनी या प्राचीन शौरसेनी का स्थान आता है। षट्खण्डागम के सूत्रों की भाषा जैन शौरसेनी है। बाद में आचार्य कुन्दकुन्द ने भी अपनी रचनाएं इसी भाषा में की हैं। इस तरह दिगम्बर जैन आगमों की मूल भाषा जैन शौरसेनी है जो प्राचीन शौरसेनी के नाम से भी जानी जाती है। इसका ही विकसित रूप शौरसेनी प्राकृत हुआ जिसका प्रयोग नाटककारों ने व्यापक रूप में किया। श्वेताम्बर जैन आगमों की भाषा अर्द्धमागधी जैन शौरसेनी के बाद की कही जा सकती है। शब्दरचना की दृष्टि से अर्द्धमागधी का रूपगठन मागधी और जैन शौरसेनी से हुआ। मध्यभारतीय आर्य भाषा काल में पूर्व की बोली मागधी तथा पश्चिम की बोली शौरसेनी मानी जाती है। अर्द्धमागधी इन्हीं दो बोलियों की प्रवृत्तियों का समन्वय है। मार्कण्डेय ने अपने **'प्राकृतसर्वस्व'** में **"शौरसेन्या अदूरत्वा-**

दियमेवार्द्धमागधी" अर्थात् शौरसेनी के निकटवर्ती होने के कारण मागधी ही अर्द्धमागधी है, कहकर अर्द्धमागधी के स्वरूप का निर्देशन किया है।

प्राचीन अभिलेखों की भाषाएँ भी इसी द्वितीय स्तर की प्रथमयुगीन प्राकृत के अन्तर्गत आती हैं। प्राचीन अभिलेखों में सर्वप्रथम अशोक के अभिलेखों का स्थान है। अशोक के अभिलेख सारे भारतवर्ष में तथा सुदूर पश्चिमोत्तर प्रदेशों में पाये जाते हैं। भाषा की दृष्टि से स्थान के अनुसार भिन्न अभिलेखों की भिन्न भाषाएं हैं। इन सभी अभिलेखों की भाषाएं स्थानीय कथ्य भाषाएं ही हैं जिनसे उस समय के विभिन्न प्रदेशों की लोकव्यवहृत बोलियों का अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु सारे अभिलेखों का भाषा की दृष्टि से अध्ययन करने पर उनमें तीन प्राकृतों की प्रवृत्तियां मिलती हैं—पैशाची, प्राचीन शौरसेनी और मागधी। पश्चिमोत्तर प्रदेशों में पाये जाने वाले अभिलेखों में पैशाची की प्रवृत्तियां मिलती हैं। पश्चिम और दक्षिण के अभिलेखों में प्राचीन शौरसेनी तथा पूर्वी अभिलेखों में मागधी के लक्षण विशेष रूप से विद्यमान हैं।

अशोक के बाद के अभिलेखों में खारवेल का हाथीगुफा-शिलालेख का नाम आता है जिसमें प्राचीन शौरसेनी की प्रवृत्तियां मूलरूप में विद्यमान हैं। इसके पश्चात् उदयगिरि और खण्डगिरि के शिलालेख तथा पश्चिमी भारत में प्राप्त आन्ध्र राजाओं के शिलालेख में प्राकृत के विकसित रूपों के नमूने मिलते हैं। फिर कांगड़ा, मथुरा आदि अनेक स्थानों पर खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेख भी मिले हैं जिनमें विकसित नाटकीय प्राकृत के रूपों की झलक मिलती है। यूं तो प्राचीन अभिलेखों की संख्या करीब दो हज़ार है जिनका काल-विस्तार ई० पूर्व ३०० से ई० सन् ४०० तक माना जाता है। उनमें कुछ तो आकार की दृष्टि से काफी बड़े हैं और कुछ तो इतने छोटे हैं कि सिर्फ एक पंक्ति के हैं।

फिर चीनी तुर्किस्तान से प्राप्त खरोष्ठी अभिलेखों की भाषा निय प्राकृत तथा खोतान से प्राप्त खरोष्ठी धम्मपद की प्राकृत भी द्वितीय स्तर की प्रथम युगीन प्राकृत के अन्तर्गत मानी जाती हैं। निय प्राकृत का सम्बन्ध दरदवर्ग[१] की तोखारी भाषा से निकट का है, ऐसी भाषाविदों की मान्यता है। निय प्राकृत पेशावर के आस-पास के प्रदेश की भाषा मानी जाती है, क्योंकि पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्राप्त अशोक के अभिलेखों की भाषा से इसका साम्य है। निय प्रदेश की भाषा होने के कारण ही इसे निय प्राकृत के नाम से जाना जाता है। खरोष्ठी धम्मपद की प्राकृत में भी अशोक के इन अभिलेखों की भाषा की प्रवृत्तियां विद्यमान हैं। भाषाविदों के अनुसार खरोष्ठी धम्मपद जो प्राकृत धम्मपद के नाम से भी जाना जाता है, मूलरूप में भारतवर्ष में ही ई० सन् की की द्वितीय शताब्दी के आस-पास रचा गया।

अश्वघोष के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भी द्वितीय स्तर की प्रथमयुगीन प्राकृत है। उसके नाटकों में खलनायक की भाषा मुख्यतः मागधी है। गणिका और विदूषक शौरसेनी बोलते हैं तथा गोभय की भाषा में अर्द्धमागधी की प्रवृत्तियां मिलती हैं। फिर महाकवि भास ने भी प्रायः प्राचीन शौरसेनी का प्रयोग अपने नाटकों में किया है।

---

१. पामीर तथा पंजाब के पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषाएं दरदवर्ग के अन्तर्गत आती हैं। यह क्षेत्र दरदिस्तान के नाम से भी जाना जाता है। कश्मीर, गिलगिट घाटी, आदि की भाषाएं इस वर्ग की भाषाएं हैं। दरदिस्तान क्षेत्र को पिशाच देश भी कहा गया है, इसी कारण दरदवर्ग की भाषाओं को पैशाची भी कहा जाता है।

इस प्रकार ई० ६०० से ई० सन् २०० तक की लम्बी अवधि में जिन प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ उनका मुख्य रूप में प्रयोग बौद्ध एवं जैन आगम ग्रन्थों में, अभिलेखों में तथा अश्वघोष एवं भास के नाटकों में होता रहा। यही द्वितीय स्तर की प्रथमयुगीन प्राकृत के विकास का काल-क्षेत्र है।

इसके बाद द्वितीय स्तर की द्वितीययुगीन प्राकृत विकसित हुई। प्राकृत का प्रयोग साहित्य के सृजन के क्षेत्र में इतने व्यापक रूप में हुआ कि ई० सन् ६०० तक आते-आते प्राकृत साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हो गई। इसी कारण द्वितीय स्तर की द्वितीय युगीन प्राकृत को साहित्यिक प्राकृत के नाम से भी पुकारा जाता है।

अश्वघोष और भास ने अपने नाटकों में प्राकृत का प्रयोग कर बाद के आने वाले संस्कृत नाटककारों के लिये प्राकृत के प्रयोग का मार्ग प्रशस्त कर दिया। कालिदास, शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त आदि संस्कृत नाटककारों ने प्राकृत का प्रयोग व्यापक रूप से किया। इसके अतिरिक्त, प्राकृत में स्वतन्त्र रचनाएं भी हुईं। महाकाव्य, खण्डकाव्य, द्वयाश्रयकाव्य, चरितकाव्य, चम्पूकाव्य, सट्टक आदि रचे गये। साथ ही कथाएं, ज्योतिष ग्रन्थ, दर्शन-ग्रन्थ, भाष्य आदि की भी रचना हुई। इस सारे साहित्य का भाषा की दृष्टि से अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि साहित्यकारों ने तीन प्रकार के प्राकृतों का ही प्रयोग किया है—जैन महाराष्ट्री, महाराष्ट्री तथा शौरसेनी।

जैन महाराष्ट्री जैन सूत्र ग्रन्थों के बाद के जैन ग्रन्थों की भाषा है जिसमें तीर्थंकर एवं मुनियों के चरित्र, स्तुति, कथाएं, दर्शन, ज्योतिष, भाष्य, चूर्णि आदि रचे गये। चूंकि व्याकरणों एवं लक्षण-ग्रन्थों में निर्दिष्ट महाराष्ट्री की प्रवृत्तियों से इन जैन ग्रन्थों की भाषा कुछ भिन्न है, इसी कारण इसे जैन महाराष्ट्री कहा गया। जैन महाराष्ट्री में अर्द्धमागधी के विकसित रूप तथा व्याकरणकारों द्वारा निर्दिष्ट महाराष्ट्री के लक्षण दोनों मिलते हैं। जैन महाराष्ट्री में रचित कुछ रचनाएं तो काफी प्राचीन हैं, यथा 'पयन्नाग्रन्थ' 'निर्युक्तियां', 'पउमचरिय', 'उपदेशमाला' इत्यादि। बाद में भी जैन महाराष्ट्री में रचनाएं हुईं। 'बृहत्‌कल्पभाष्य', 'व्यवहारसूत्रभाष्य', 'विशेषावश्यकभाष्य,' 'निशीथ-चूर्णि', 'समराइच्चकहा', 'सुपासनाहचरिय' आदि की भी भाषा जैन महाराष्ट्री है।

जैन महाराष्ट्री का ही विकसित रूप महाराष्ट्री है। व्यञ्जन-लोप की प्रवृत्ति महाराष्ट्री में अधिक है। इसलिए इसे स्वरबहुला भाषा भी कहा जाता है। स्वर के आधिक्य के कारण यह काव्य और गीति की भाषा बनी। प्रवरसेनकृत **'सेतुबन्ध'** तथा वाक्पतिराजकृत **'गउडवहो'** इस भाषा के दो उत्कृष्ट महाकाव्य हैं। गीति के क्षेत्र में महाराष्ट्री को साहित्यकारों ने काफी ऊंचा स्थान दिया। यही कारण है कि कालिदास के तथा कालिदासेतर नाटकों के पद्यभाग में महाराष्ट्री की प्रवृत्तियां मिलती हैं। हेमचन्द्रकृत **'कुमारपालचरित'** एक द्वयाश्रयकाव्य है जो इसी भाषा में रचा गया। कोहल ने भी **'लीलावई'** नामक महाकाव्य की रचना महाराष्ट्री प्राकृत में की। हाल की **'गाहासत्तसई'** भी महाराष्ट्री प्राकृत का ही एक उत्कृष्ट मुक्तककाव्य है।

शौरसेनी प्राचीन या जैन शौरसेनी का ही विकसित रूप है। शौरसेनी का प्रयोग नाटकों में अधिक हुआ। इस कारण इसे नाटकीय शौरसेनी भी कहा जाता है। नाटकों में शौरसेनी का प्रयोग मुख्यतः गद्यशैली में हुआ है। शौरसेनी की उत्कृष्टतम साहित्यिक कृतियों में राजशेखरकृत **'कर्पूरमंजरी'** नामक सट्टक भाषागत विशेषता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है तथा साथ ही भाषा का काव्या-

त्मक शैली में जितना सुन्दर प्रयोग '**कर्पूरमंजरी**' में हुआ है उतना अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

इस प्रकार जैन महाराष्ट्री, महाराष्ट्री तथा शौरसेनी का ही मुख्यरूप में विकास द्वितीय स्तर की द्वितीययुगीन प्राकृतकाल में हुआ और ई० सन् की छठी शताब्दी तक तो ये पूर्णरूपेण साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन हो गईं। संस्कृत की भाँति इनको भी व्याकरणों द्वारा व्याकरण के नियमों से अनुशासित किया गया। परिणाम यह हुआ कि प्राकृत लोकव्यवहृत कथ्य भाषा से काफी दूर चली गई। परन्तु भाषा के विकास के क्रम में यह सर्वथा देखा गया है कि जब कथ्य भाषा विकसित होकर शिष्टों की भाषा बन जाती है, तब नई कथ्य भाषा का उद्भव और विकास होता है। अतएव जब प्राकृत ने परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा का रूप धारण कर लिया, तब अपभ्रंश का विकास कथ्य भाषा के रूप में हुआ।

ऐसे तो 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में किया है, परन्तु भाषा-विशेष के अर्थ में वहां इसका प्रयोग न होकर अपाणिनीय शब्दों के लिये हुआ है। भरत ने भी अपने 'नाट्यशास्त्र' में 'विभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग तद्भव शब्दों के लिये किया है तथा उकारबहुला भाषा का विधान, जो अपभ्रंश की विशेष प्रकृति है, हिमवत्, सिन्धु और सौवीर देशों के लिये माना है।

'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग लक्षण-ग्रन्थकारों ने भ्रष्ट या विकृत के अर्थ में किया है। जो शब्दरूप भाषा के नियम से भ्रष्ट या विकृत हैं, वे ही अपभ्रंश माने गये हैं। यह सत्य है कि अपभ्रंश के उत्कर्ष के समय शब्द पाणिनि के व्याकरण से अनुशासित होते थे। पर वे शब्द जो अनुशासन से परे थे, अपाणिनीय समझे जाते थे और उन्हें अपभ्रंश की संज्ञा दे दी जाती थी। दण्डी तथा भर्तृहरि ने भी संस्कृतेतर संस्कारहीन शब्दों को अपभ्रंश कहा है। परन्तु कालान्तर में इसी अपभ्रंश ने भाषा का रूप धारण कर लिया और ई० सन् की छठी शताब्दी के बाद इसका विकास साहित्यिक भाषा के रूप में प्रारम्भ हो गया। ई० सन् की १२ वीं शताब्दी तक तो इसने अन्य प्राकृतों की भांति पूर्ण-रूपेण परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा का स्थान ले लिया। इसकी परिपुष्टि आचार्य श्री हेमचन्द्र के 'प्राकृत शब्दानुशासन' में निर्दिष्ट अपभ्रंश के अनुशासन से हो जाती है। इस प्रकार द्वितीय स्तर की तृतीय युगीन प्राकृत का विकास अपभ्रंश के रूप में ई० सन् ६०० से ई० सन् १२०० के बीच होता है।

अपभ्रंश भाषा के विस्तार का अन्दाज़ उपलब्ध साहित्य से लगाया जा सकता है जिसका रचना-स्थान पश्चिमोत्तर भारत, राजस्थान, गुजरात, बुन्देलखण्ड, बंगाल तथा दक्षिण में धान्यखेट तक रहा। इसका साहित्य भण्डार इतना अधिक विशाल है कि अभी तक बहुत सारी रचनाएं तो अप्रकाशित ही हैं। इस भाषा में पुराण, कथाएं, चरितकाव्य, मुक्तककाव्य आदि रचे गये। यूं तो अपभ्रंश की प्रवृत्तियां कुछ स्थानों में 'विक्रमोर्वशी' तथा 'धर्माभ्युदय' नामक संस्कृत नाटकों में भी मिलती हैं, परन्तु इस भाषा में स्वतन्त्र रचनाएं ई० सन् की छठी शताब्दी के बाद ही रची गईं। 'हरिवंशपुराण', 'पउमचरिउ', 'भविसयत्त-कहा', 'महापुराण', 'जसधरचरिउ', 'नायकुमारचरिउ', 'सुवस्नचरिउ', 'करकंडचरिउ', 'विलासवईकहा', 'सन्देशरासक' आदि इस भाषा की प्रसिद्ध रचनाएं हैं। फिर 'दोहाकोश', 'योगसार' तथा 'परमात्मप्रकाश' जैसे मुक्तककाव्य भी अपभ्रंश में रचे गये।

इस प्रकार अपभ्रंश का भाषा-विस्तार तथा इसके विशाल साहित्य का अवलोकन करने पर

यह स्पष्ट होता है कि द्वितीय स्तर की तृतीययुगीन प्राकृत काल में अपभ्रंश का विकास व्यापक रूप से हुआ। यही मध्यभारतीय आर्यभाषा-काल की अन्तिम भाषा है, जिससे आधुनिक आर्य भाषाएं विकसित हुई।

प्राकृत भाषा के व्याकरणशास्त्र और व्याकरणकार—

जब साहित्य का सृजन तीव्र गति से होना प्रारम्भ हो जाता है और साहित्य भण्डार विशाल हो जाता है, तब भाषा की अक्षुण्णता को कायम रखने के लिए तथा भाषा के स्वरूप की रक्षा हेतु व्याकरणशास्त्र का निर्माण होता है। यह स्पष्ट है कि प्राकृत के लोकभाषा के रूप में व्यवहृत होने के समय इस भाषा का कोई व्याकरण नहीं था, परन्तु ज्यों-ज्यों प्राकृत भाषाओं में साहित्य की रचना प्रारंभ हुई और साहित्य का भण्डार विस्तृत हुआ, त्यों-त्यों व्याकरण की आवश्यकता महसूस होने लगी और प्राकृत भाषाओं के व्याकरणशास्त्रों की रचना प्रारंभ हुई। आज जो भी प्राकृत भाषाओं के स्वरूप व्यवस्था सम्बन्धी अनुशासन उपलब्ध हैं, वे सभी संस्कृत भाषा में रचित हैं। यद्यपि जैन अर्द्धमागधी आगम साहित्य में, शब्दों के स्वरूप व्यवस्था सम्बन्धी अनुशासन की चर्चा कई स्थलों पर है जिससे स्पष्ट रूप में यह संभावना की जा सकती है कि प्राकृत भाषाओं का व्याकरण प्राकृत में अवश्य रहा होगा, परन्तु दुर्भाग्यवश आज उपलब्ध नहीं है।

प्राकृत व्याकरणों में, जिन्होंने नियोजित रूप में प्राकृत के शब्दों का अनुशासन दिया है, सर्वप्रथम नाम चण्ड का आता है। यों तो चण्ड के पूर्व भरत ने भी अपने 'नाट्यशास्त्र' में प्राकृत शब्द रचना के कुछ सिद्धान्तों का निरूपण किया है, परन्तु वे इतनी अस्पष्टता लिये हुए हैं कि व्याकरण की दृष्टि से वे अधिक बोधगम्य नहीं हैं। चण्डकृत 'प्राकृतलक्षण', यद्यपि एक संक्षिप्त व्याकरण है जिसमें कुल सूत्रों की संख्या करीब एक सौ के आसपास है, जो चार पादों में विभक्त है, फिर भी प्राकृत व्याकरणशास्त्रों की सूची में प्रमुख स्थान रखता है। विशेषतः इस दृष्टि से कि चण्ड के बाद के वैयाकरणों ने इसी का अनुकरण कर व्याकरणशास्त्रों की रचना की।

चण्ड के बाद वररुचि ने 'प्राकृतप्रकाश' नामक व्याकरण की रचना की। यह ग्रन्थ कुल बारह परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री प्राकृत के शब्दों के स्वरूपविधान की चर्चा है। दसवें, ग्यारहवें तथा बाहरवें परिच्छेदों में क्रमशः पैशाची, मागधी तथा शौरसैनी प्राकृत शब्दों के लक्षणों का निरूपण किया गया है। 'प्राकृतप्रकाश' पर भामह, कात्यायन, वसन्तराज तथा सदानन्द ने टीकाएं भी लिखी हैं।

वररुचि के बाद आचार्य श्री हेमचन्द्र ने 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' नामक व्याकरण की रचना की। प्राकृत वैयाकरणों में हेमचन्द्र अग्रगण्य माने जाते हैं। उनका 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' प्रथम सात अध्यायों में संस्कृत शब्दानुशासन पर प्रकाश डालता है। सिर्फ आठवां अध्याय जो प्राकृत भाषाओं के अनुशासन से ही सम्बन्ध रखता है और जो 'प्राकृत व्याकरण' के नाम से भी जाना जाता है, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के विशेषतः ध्वनिग्राम सम्बन्धी परिवर्तनों का व्यवस्थित ढंग से नियमांकन करता है। मूलतः तद्भव शब्दों का अनुशासन ही इस अध्याय का उद्देश्य है। इस अध्याय में कुल चार पाद हैं। प्रथम पाद में सन्धि, व्यञ्जनान्त शब्द, लिङ्ग, विसर्ग, अनुस्वार तथा स्वर और व्यञ्जन-व्यत्यय की चर्चा है। दूसरे पाद में ध्वनिग्राम सम्बन्धी परिवर्तन, तद्धित, निपात तथा अव्ययों का विवेचन है। तीसरे पाद में कारक, विभक्ति तथा क्रिया आदि के नियमों का निर्देश

हैं। चौथे पाद में विस्तार रूप से धात्वादेश की चर्चा है तथा अन्त में शौरसैनी, मागधी, चूलिका, पैशाची और अपभ्रंश के मूल लक्षणों का निर्देश है। चारों पादों की वृत्ति स्वयं हेमचन्द्र ने की है।

यद्यपि आचार्य हेमचन्द्र ने प्रारम्भ में ही यह घोषणा की है कि वे चण्डकृत 'प्राकृतलक्षण' तथा वररुचिकृत 'प्राकृतप्रकाश' के ऋणी हैं, फिर भी उनकी कृति सभी उपलब्ध प्राकृत व्याकरणों से अधिक विस्तृत और सुनियोजित है। विशेषकर उनकी वृत्ति में प्रस्तुत उदाहरण उनके उद्देश्य को सुस्पष्ट और बोधगम्य बना देते हैं। अपभ्रंश के दोहों का उदाहरण देकर तो उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि अपभ्रंश कितना समुन्नत था और उसका साहित्य कितना विशाल था। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र का 'प्राकृतव्याकरण' उपलब्ध सभी प्राकृत व्याकरणों से व्यवस्थित और विस्तृत है। इसी कारण अन्य प्राकृत व्याकरणों से इसका महत्त्व अधिक है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी इस कृति को पाटण-नरेश सिद्धराज जयसिंह को समर्पित किया था। इस हेतु इस ग्रन्थ का नामकरण **'सिद्ध-हैमशब्दानुशासन'** किया गया है। कहा जाता है कि महाराजा सिद्धराज जयसिंह आचार्य हेमचन्द्र के पाण्डित्य से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र को काफी सम्मान दिया था। बात भी स्पष्ट है। ऐसी कौन सी विद्या नहीं है, व्याकरण, अलंकार, छन्द, कोश, न्याय, योग या चरितकाव्य, जिस पर आचार्य हेमचन्द्र की लेखनी न चली हो।

आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् त्रिविक्रमदेव ने 'प्रकृतशब्दानुशासन' नामक व्याकरण की रचना की। यह ग्रन्थ बारह पाठों में विभक्त है। मूल रूप में त्रिविक्रमदेव ने हेमचन्द्र के ही सूत्रों की अनुकृति की है। परन्तु देशी तथा अनेकार्थक शब्दों की चर्चा कर त्रिविक्रमदेव ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। लक्ष्मीधर तथा सिंहराज ने त्रिविक्रमदेव के ही सूत्रों को अपने-अपने ढंग से संकलन-कर 'षड्भाषाचन्द्रिका' तथा 'प्रकृतरूपावतार' नामक व्याकरण ग्रन्थों की रचना की, लक्ष्मीधरकृत 'षड्भाषाचन्द्रिका' एक प्रकार से हेमचन्द्र के 'प्राकृतव्याकरण' की वृत्ति ही है।

बाद के प्राकृत व्याकरणों में मार्कंडेयकृत 'प्राकृतसर्वस्व' एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ में कुल बीस पाद हैं जो भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाची, चार वर्गों में प्राकृत भाषाओं का वर्गीकरण कर शब्दों की प्रवृत्तियों का अनुशासन प्रस्तुत करते हैं। मार्कण्डेय के अनुसार महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, अवन्ती तथा मागधी भाषा के अन्तर्गत आती हैं। शकारी, चाण्डाली, शबरी, आभीरी तथा ढक्की विभाषा के भेद हैं। अपभ्रंश के तीन भेद हैं—नागर, ब्रचड और उपनागर तथा पैशाची के कैकेयी, शौरसेनी और पंचाली। इस प्रकार का वर्गीकरण मार्कण्डेय का मौलिक है।

शुभचन्द्र, श्रुतसागर, अप्पयदीक्षित, रामतर्कवागीश, रघुनाथ कवि तथा देवसुन्दर ने भी क्रमशः 'शब्दचिन्तामणि', औदार्य्यचिन्तामणि, 'प्राकृत-मणिदीप', 'प्राकृतकल्पतरु' 'प्राकृतानन्द' तथा 'प्राकृतयुक्ति' नामक प्राकृत व्याकरणशास्त्रों की रचना की। इस प्रकार प्राकृत शब्दों के अनुशासन को योजनाबद्ध ढंग से उपस्थित करने का कार्य एक लम्बे अरसे तक विद्वानों ने किया। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा की दृष्टि से भारतीय वाङ्मय के इतिहास में प्राकृत का कितना महत्त्व है ?

प्रस्तुत ग्रन्थ आचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित **'सिद्ध-हैमशब्दानुशासन'** के आठवें अध्याय, 'प्राकृतव्याकरण' का विस्तृत व्याख्या-सहित प्रकाशन है। जैनभूषण परम पूज्य श्रद्धेय श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ने बड़े ही सुन्दर ढंग से विस्तार-पूर्वक संस्कृत तथा हिन्दी में व्याख्या प्रस्तुत की है। दो

खण्डों में प्राकृत व्याकरण की सविस्तार व्याख्या कर श्रद्धेय श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ने प्राकृत भाषा के जिज्ञासुओं के लिये मार्ग-प्रदर्शन का कार्य किया है। विशेषतः प्राकृत भाषा के शोधकर्ताओं के लिए प्रस्तुत पुस्तक बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। श्रद्धेय श्री ज्ञान मुनि जी महाराज संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के ज्ञानसागर हैं। परम श्रद्धेय विद्वान, मनीषी, जैनधर्मदिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर स्व० **आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज** के सुयोग्य विद्वान शिष्य होने की सार्थकता इनकी इस कृति से सिद्ध हो जाती है। अस्वस्थ होते हुए भी अथक परिश्रम कर इसके प्रूफ संशोधन का कार्य भी स्वयं इन्होंने ही किया। ग्रन्थ के प्रकाशन में इनके विद्वान शिष्य मुनि श्री शिव कुमार जी एम० ए० का गुरु-सेवाभाव से योगदान भी सराहनीय है।

भगवान महावीर के २५ वीं निर्वाण शताब्दी के पुण्य अवसर पर इसका समयानुकूल प्रकाशन विद्वानों के लिये प्रेरणा है।

धर्म अध्ययनविभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला
18-10-1974

डा० एल० एम० जोशी
डा० अतुल नाथ सिन्हा

अपनी बात

प्राकृत-व्याकरण के पठन की लालसा

लगभग २७ वर्षों की पुरानी बात है, संयमसाधना के अमर साधक, चारित्रचूड़ामणि, प्राकृत-भाषा के अद्वितीय विद्वान्, जैन-धर्म-दिवाकर, आचार्य-सम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज लुधियाना के जैन स्थानक में विराजमान थे। उन दिनों मैं [इन पंक्तियों का लेखक] संस्कृत-व्याकरण सिद्धान्त-कौमुदी पढ़ रहा था। जैनागम प्राकृत भाषा में हैं, अतः प्राकृत भाषा का परिज्ञान प्राप्त करने के लिये संस्कृत भाषा के साथ-साथ प्राकृत व्याकरण भी पढ़ना चाह रहा था। एतदर्थ एक दिन पूज्य गुरुचरणों में निवेदन किया, उन दिनों पूज्य गुरुदेव श्री स्थानाङ्ग सूत्र का भाषानुवाद कर रहे थे, तथा पञ्चनदीय आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण श्रमणसंघीय दायित्व को निभाने में अत्यधिक व्यस्त रहते थे, परिणामस्वरूप समयाभाव के कारण पूज्य गुरुदेव प्राकृत-व्याकरण का अध्यापन करने की स्थिति में नहीं थे। इसके अतिरिक्त, उस समय ऐसा कोई विद्वान् भी नहीं था, जो प्राकृत-व्याकरण का अध्यापन करा सके। प्राकृत-भाषा विशेषरूपेण जैनागमों तक ही सीमित है, फिर प्राकृत-व्याकरण का व्याख्या-प्रधान साहित्य भी उपलब्ध नहीं था, तथा संस्कृत-भाषा की तरह इसका क्षेत्र भी व्यापक नहीं था, यही कारण था कि उस समय प्राकृत-व्याकरण का पठन-पाठन न होने जैसा ही था।

पण्डित श्री हेम चन्द्र जी महाराज

जैनधर्मदिवाकर आचार्यसम्राट् परमश्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के सुशिष्य, संस्कृत-प्राकृतविशारद श्रद्धेय पण्डित श्री हेम चन्द्र जी महाराज संस्कृत और प्राकृत भाषा के एक सुलझे हुए विद्वान् विचारक मुनिराज हैं। विशेषरूपेण अध्यापन की कला में ये बड़े निष्णात हैं। मैंने स्वयं अपनी अनुभव की आंखों से देखा है कि प्रतिपाद्य विषय जब तक विद्यार्थी को हृदयङ्गम न हो जाए तब तक ये उसे पढ़ाते एवं समझाते ही रहते हैं। उकताने या अकुलाने का कोई काम नहीं। मुझ पर भी इन्हीं पण्डित श्री जी महाराज ने दयादृष्टि की है। इन्हीं के चरणों में बैठकर मैंने प्राकृत व्याकरण का अध्ययन किया है।

प्राकृत-व्याकरण

वैदिक परम्परा के मान्य पाणिनि ऋषि ने जैसे अष्टाध्यायी लिखी है और उसके अष्टमाध्याय में वैदिक संस्कृत की प्रक्रिया उपन्यस्त की है। वैसे ही कलिकालसर्वज्ञ आदरास्पद आचार्य श्री हेम चन्द्र जी ने आठ अध्यायों में हैमशब्दानुशासन नामक एक व्याकरण लिखा है और उसके आठवें अध्याय में प्राकृत भाषा के नियमोपनियमों का उल्लेख किया है। साहित्यजगत में आज वही अष्टमाध्याय प्राकृतव्याकरण के नाम से प्रख्याति पा रहा है। प्राकृतभाषा के अन्य अनेकों व्याकरण भी हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में आचार्यप्रवर श्री हेम चन्द्र द्वारा विनिर्मित प्राकृत-व्याकरण जितना सुन्दर, व्यवस्थित, परिमार्जित और प्रामाणिक व्याकरण है, उतना कोई अन्य व्याकरण नहीं।

टीका की आवश्यकता

जिन दिनों मैं प्राकृत-व्याकरण को पढ़ रहा था उन दिनों प्राकृत-व्याकरण का विवेचन करने

वाली हिन्दी या संस्कृत भाषा में कोई विशिष्ट पुस्तक उपलब्ध नहीं हो रही थी। यह सब जानते हैं कि बिना सामग्री के विद्यार्थियों को पढ़ना कठिन हो जाता है, इसी लिये प्राकृत-व्याकरण की व्याख्याप्रधान सामग्री के न होने से ही विद्वान् लोग प्राकृत-भाषा के अध्ययन और अध्यापन से सदा सकुचाते रहे हैं। संस्कृत-व्याकरण पर जितना व्याख्यापरक साहित्य लिखा गया है यदि उतना साहित्य प्राकृतव्याकरण पर भी लिखा हुआ होता तो आज प्राकृत-भाषा की कुछ और ही स्थिति होती, इसका संस्कृत भाषा से भी अधिक प्रचार एवं प्रसार होता।

प्राकृत-व्याकरण की सहायक सामग्री का यह अभाव प्राकृत भाषा के सभी प्रेमियों को बहुत अखर रहा था। हमारे महामान्य आचार्य-सम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज तो इस अभाव को बहुत ही अधिक गम्भीरता से अनुभव कर रहे थे। इन्होंने इस अभाव को दूर करने के लिये प्राकृत बालबोध और प्राकृत बालमनोरमा ये दो पुस्तकें भी लिखी थीं। जब मैं प्राकृत-व्याकरण पढ़ रहा था तब पूज्य गुरुदेव कभी-कभी मुझे फरमाया करते थे कि ज्ञानमुनि ! जितना तुम पढ़ते हो, यदि उतने का प्रक्रियानुवाद साथ की साथ लिख लिया करो तो संभव है तुम्हारा यह प्रयास प्राकृत-व्याकरण की सहायक-सामग्री के अभाव को दूर कर दे। यह सत्य है कि प्रक्रियानुवाद लिखने का मुझ में किंचित् भी सामर्थ्य या उत्साह नहीं था किन्तु गुरुमहाराज की आज्ञा को प्रभु आज्ञा मान कर मैंने प्रक्रियानुवाद लिखना आरम्भ कर दिया। श्रद्धेय पण्डित श्री हेम चन्द्र जी महाराज से प्राकृत-व्याकरण के जितने सूत्र मैं पढ़ता उतने सूत्रों का प्रक्रियानुवाद हर रोज़ ही लिख लेता, मेरा सदा यही प्रयत्न रहता था कि पठित सूत्रों के सभी शब्दों का प्रक्रियानुवाद लिख लिया जाए, एक भी शब्द न छोड़ा जाए। पूज्य गुरुदेव की कुछ ऐसी विलक्षण कृपादृष्टि चल रही थी कि लेखन-कार्य में मेरा मन कभी उदासीन नहीं हुआ, प्रत्युत प्रक्रियानुवाद लिखने का यह कार्य प्रतिदिन अविराम गति से पूर्ण तन्मयता के साथ चलता रहा। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि प्रतिदिन आठ-आठ घण्टे लगातार लेखन-कार्य चलता था। गुरु महाराज का प्रताप ही मानता हूं कि लिखने का यह क्रम बिना किसी बिघ्न-बाधा के सानन्द और सोत्साह सम्पन्न होता रहा। गुरुकृपा से **"श्रेयांसि बहुविघ्नानि"** का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लगभग एक वर्ष में यह लेखन-कार्य समाप्त हो गया। तदनन्तर समय-समय पर लिखित सामग्री का संशोधन तथा परिमार्जन होता रहा। अन्त में, इसे एक व्यवस्थित रूप दे दिया गया। वही व्यवस्थित रूप आज बालमनोरमा टीका के रूप में पाठक महानुभावों के सम्मुख प्रस्तुत है। जब इसकी प्रैस कापी बनाई गई तो इस टीका को ६५ कापियों में लिखा गया। बालमनोरमा टीका का इतना बड़ा शरीर देखकर मैं स्वयं चकित रह गया। इस टीका में मूलसूत्र-स्थित सभी प्राकृत शब्दों की शब्दसाधना, इनकी रूपप्रक्रिया दे दी गई है, तथा प्राकृत-व्याकरण के जितने भी चिन्तनीय, विचारणीय और कठिन स्थान हैं, उन सबकी सरल और सुबोध संस्कृत भाषा में विवेचना भी कर दी गई है। इस तरह प्रत्येक दृष्टि से बालमनोरमा टीका द्वारा प्राकृत व्याकरण को सुगम बनाने का प्रयत्न किया गया है।

बालमनोरमा टीका की रचना किए लगभग २५-२६ वर्ष हो गए हैं ! इतने लम्बे काल में इस टीका का अनेक विद्वानों तथा विचारकों ने निरीक्षण किया, जहां पर जिस ने आवश्यक समझा वहां पर उसने परिमार्जन और संशोधन भी किया ! प्राकृत-व्याकरण के विद्यार्थियों ने भी इस की पाण्डु-लिपि का अनेकों बार उपयोग किया ! जिस किसी ने भी इस टीका को देखा जहाँ उसने इस

सत्प्रयास की प्रशंसा की, वहां उसने इसे प्रकाशित कराने का विशेषरूपेण परामर्श भी दिया। मेरे परम आराध्य, श्रद्धा के केन्द्र, वन्दनीय पूज्यपाद गुरुदेव आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की तो बड़ी ही उत्कट भावना थी कि इस टीका को जनता में अधिकाधिक प्रचारित एवं प्रसारित किया जाए! परन्तु समय की बात समझिए कि उस समय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अनुकूलता न होने से बालमनोरमा टीका को प्रकाशित करने का संकल्प मूर्त्तरूप नहीं ले सका।

हिन्दी टीका

वि० सं० २०१८ में जैन-धर्म-दिवाकर, आचार्य-सम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज स्वर्गवासी हो गए, तदनन्तर यत्र तत्र परिभ्रमण करते हुए एक बार हम लोग अम्बाला शहर (हरियाणा) के महावीर जैनभवन में ठहरे हुए थे, एक दिन मुनिदर्शनार्थ पण्डित श्री कृष्णचन्द्र जी आचार्य अम्बाला शहर आए। आचार्य जी जैन दर्शन के गम्भीर विद्वान और विचारक व्यक्ति हैं, वाराणसी से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र "**श्रमण**" के ये वर्षों सम्पादक भी रहे हैं। पञ्चनदीय स्थानकवासी जैन समाज की प्रसिद्ध संस्था **श्री जिनेन्द्र गुरुकुल पञ्चकूला** आचार्य जी के दूरदर्शी मस्तिष्क की ही सूझ बूझ का सत्परिणाम है। आचार्य जी जब अम्बाला शहर मिले तब इन्होंने प्राकृत व्याकरण की बालमनोरमा नामक संस्कृत-टीका देखी। प्राकृतव्याकरण का इतना विशाल विवेचन देख कर हर्षातिरेक अभिव्यक्त करते हुए इन्होंने एक सुझाव दिया कि हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है। दिनों दिन यह उन्नति और प्रगति के महामन्दिर की ओर बढ़ रही है, अतः प्राकृत-भाषा का हिन्दी भाषा में अनुवाद अवश्य होना चाहिए। आचार्य जी का यह सुझाव मुझे भी सामयिक और प्राकृतभाषा-प्रसारक लगा। परिणाम-स्वरूप इन के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए मैंने प्राकृत-व्याकरण का हिन्दी-भाषानुवाद करने का इनको विश्वास दिलाया! पाठकों के सामने प्राकृत-व्याकरण का जो यह हिन्दी-भाषानुवाद प्रस्तुत कर रहा हूं, यह सब उसी विश्वास का साकार रूप है।

आभार-प्रदर्शन

प्राकृत व्याकरण की संस्कृत-टीका तथा हिन्दी-टीका लिखने का मूलरूप से सर्वाधिक श्रेय तो मेरे हृदयसम्राट् आचार्यसम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज को ही है। इन्हीं की दयादृष्टि से यह साहित्यकार्य निर्विघ्नता-पूर्वक सम्पूर्ण हो सका है। अतः सर्वप्रथम मैं पूज्य गुरु-चरणों का हृदय से आभारी हूं। श्रद्धेय पण्डित श्री हेम चन्द्र जी म० का भी आभारी हूं जिनके कृपाभाव से मैंने प्रकृतव्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया और समय-समय पर सहयोग देकर जिन्होंने बालमनोरमा संस्कृत टीका की भाषा को अधिकाधिक सरल एवं सुबोध बनाने का अनुग्रह किया। आदरणीय पण्डित श्री झण्डूलाल जी शास्त्री ने बाल-मनोरमा संस्कृत-व्याख्या की प्रैसकापी बनाने का कष्ट किया है। पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला के डाक्टर एल० एम० जोशी (रीडर इन बुद्धिज्म) तथा डाक्टर ए० एन० सिन्हा (लैकचरार इन जैनिजम) ने अत्यधिक व्यस्त रहने पर भी प्रस्तावना लिखने की उदारता की है। एतदर्थ मैं इन का भी हृदय से धन्यवादी हूं। डाक्टर जोशी जी पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला के एक मनोनीत प्रोफैसर हैं। अपने पाठ्य विषय के ये मार्मिक विद्वान हैं, तथापि इन के जीवन में अस्मिता का चिन्ह भी नहीं है, इन के जीवन-भवन में विनम्र, समुधुर और सन्तहृदय

व्यक्तित्व की पावन ज्योति सदा जगमगाती हुई दृष्टिगोचर होती है। आजकल ये हमारे प्रिय सुशिष्य श्री शिवमुनि जी M.A. (Philosophy And English) को जैन फिलौसफी पर Ph.D. करा रहे हैं। इन्होंने व्यस्तता के क्षणों में भी भूमिका-लेखन का जो औदार्य्य दिखलाया है, उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन मुनिराजों, विद्वानों, तथा साथी सन्तों एवं श्रद्धालु भक्त जनों का भी धन्यवादी हूं जो यथा-समय संस्कृत-हिन्दी-टीका-द्वय के सम्पादन में मुझे सहयोग देते रहे हैं।

प्राकृत व्याकरण के प्रकाशन की सब व्यवस्था हमारे प्रिय श्रावक मान्य सेठ सुखदेव राज जी जैन मोहरों वाले अम्बाला शहर ने की है। सेठ सुखदेव राज का श्रद्धापूर्ण सहयोग ही ग्रन्थ को साकार रूप दे सका है। प्रकाशन अम्बाला शहर में हो रहा था, परिस्थितिवश एक बार हमें अम्बाला शहर से विहार करना पड़ा, परन्तु श्री कीमती लाल जी जैन अम्बाला शहर से बाहिर प्रतिदिन प्रूफ लाते, दिखाकर वापिस ले जाते, इस तरह इन्होंने जो गुरु-भक्ति प्रदर्शित की है। वह भी कभी विस्मृत नहीं की जा सकती। ग्रन्थ के जीवन में यह सब सहयोग सदा अभिवन्दनीय एवं अभिनन्दनीय रहेगा।

प्राकृतव्याकरण के प्रकाशन के निमित्त अर्थ-व्यवस्था में जिन दानी सज्जनों एवं उदार बहिनों ने सहयोग दिया है, उनका धन्यवाद करना आवश्यक नहीं, अत्यावश्यक मानता हूं। वृक्ष के विशाल शरीर में जो महत्त्व मूल का होता है, ग्रन्थ के प्रकाशन में वही महत्त्व दानी सज्जनों के औदार्य्य का माना गया है। प्राकृत-व्याकरण के प्रकाशन-रूप महावृक्ष का मूल दानी महानुभावों का औदार्य्य ही है। प्रकाशन-संस्थान की ओर से उन दाताओं का नामनिर्देश-पूर्वक धन्यवाद इस ग्रन्थ में अन्यत्र किया जा रहा है, किन्तु मैं भी दानी सत्पुरुषों एवं बहिनों की गुरुभक्ति, श्रुत-सेवा तथा उदारता का हृदय से धन्यवादी हूं। शासनेश प्रभु महावीर का स्मरण करके इन की श्रुत-सेवा की भावना दिन प्रतिदिन सम्वर्द्धित हो, यह हार्दिक कामना करता हूँ।

विनीत अभ्यर्थना

मनीषी पाठक जानते ही हैं कि प्राकृत-व्याकरण जैसे क्लिष्ट ग्रन्थ का भाषानुवाद करना साधारण कार्य नहीं है, इसके लिए बहुत बड़ी योग्यता, विद्वत्ता तथा अनुभवशीलता की आवश्यकता होती है। मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के वश का यह कार्य नहीं था, तथापि जो कुछ लिखा गया है, यह सब मेरे परमाराध्य पूज्य गुरुदेव के पावन चरणों का अनुग्रह ही मानता हूँ।

यह सत्य है कि संस्कृत-हिन्दी-टीका-द्वय को भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से सुन्दर बनाने का पूर्ण प्रयास रहा है, तथापि "**गच्छतः स्खलनं क्वापि**" के अनुसार स्खलना का हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। अतः पाठकों तथा विद्यार्थियों से सप्रेम एवं सानुरोध निवेदन करूँगा कि जहाँ पर जो स्खलना दृष्टिगोचर हो, उसका सुधार कर लें, तथा उसकी सूचना मुझे देने का कष्ट करें ताकि अग्रिम संस्करण में उसका सुधार कर दिया जाये। धन्यवाद।

जैनस्थानक राहों।
20-7-1974

प्रार्थी—
ज्ञानमुनि

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता

जैन-भूषण श्रद्धेय श्री ज्ञान मुनि जी महाराज

[जीवन और साधना की एक संक्षिप्त झांकी]

(ले० श्री शिव मुनि जी महाराज, डबल M. A. प्रभाकर)

परम श्रद्धेय, जैन-भूषण, पंजाब-केसरी, पूज्य गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज विक्रम सम्वत् १९७९ वैशाख शुक्ला तृतीया के शुभ दिन साहोकी (जिला बरनाला, पंजाब) नामक ग्राम में बांसल गोत्रीय ला० गोखाराम जी अग्रवाल जैन की धर्मपत्नी माता मन्सादेवी जी की पवित्र कुक्षि से पैदा हुए, उस समय आपका नाम आत्माराम था। महाराज श्री जी आठ वर्ष के थे, ला० गोखाराम ने साहोकी गाँव छोड़कर लुधियाना में रहना आरम्भ कर दिया, लुधियाना में महामुनि स्थविर-पद-विभूषित, त्याग वैराग्य के समुज्ज्वल प्रतीक, परम श्रद्धेय श्री स्वामी शालिग्राम जी महाराज विराजमान थे। ये लालाजी के खानदान में से ताया लगते थे। अतः लालाजी परिवार-सहित पूज्य महाराज श्री के चरणों में प्रतिदिन आया-जाया करते थे, परिणामस्वरूप सर्वप्रथम श्रद्धास्पद श्री ज्ञानमुनि जी महाराज को इन्हीं वन्दनीय पूज्यपाद जी स्वामी शालिग्राम जी महाराज के सम्पर्क तथा मङ्गलमय मार्गदर्शन का सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ था, इन्हींके चरणों में बैठकर इन्होंने जैन-धर्म के विधि-विधान को समझा और सम्यक्त्व को ग्रहण किया।

साधना के महापथ पर—

वि० सं० १९९३ के वैशाख शुक्ला त्रयोदशी के पावन दिवस अर्थात् चौदह वर्ष दस दिनों की आयु में आप रावलपिण्डी (पाकिस्तान) में प्रातःस्मरणीय, जैन-धर्म-दिवाकर, मङ्गलमूर्ति आचार्य-सम्राट् परम श्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के परिपूत चरणों में दीक्षित होकर जैन साधु बने। साधु बन जाने के अनन्तर आपने संस्कृत और प्राकृत आदि अनेकविध भाषाओं का अध्ययन किया। अनेकों पुस्तकें लिखीं, श्री **विपाक सूत्र** आदि कई एक जैनागमों का हिन्दी में सरस और सुन्दर अनुवाद तथा सम्पादन किया। **"प्रश्नों के उत्तर" "भगवान् महावीर के ५ सिद्धान्त" "श्रमण संस्कृति के प्रतीक, ऋषिवर आनन्द"** आदि २० के लगभग स्वतन्त्र पुस्तकों का निर्माण किया। जहां आप साहित्य-क्षेत्र में प्रगतिशील रहे हैं। वहां आप सामाजिक क्षेत्र में भी बड़े प्रयत्नशील रहे हैं। फिल्लौर और बहराम आदि अनेकों नए क्षेत्र खोले और वहां पर जैन-धर्म का पावन ध्वज लहराया, वहां पर बने विशाल जैन स्थानक वहां की जन-जागृति के समुज्ज्वल प्रतीक हैं।

राहों के श्रद्धा-केन्द्र—

श्रद्धा के केन्द्र, परिपूत-चरण, आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की जन्म-भूमि राहों जैसे पिछड़े नगर में पूज्य श्री की पुण्य-स्मृति में **"आचार्य श्री आत्माराम जैन फ्री डिस्पेंसरी"** को चालू करना और इसके लिये स्थायी सम्पत्ति एकत्रित करने के लिये समाज को आदर्श प्रेरणा प्रदान करके उस को अपने पांव पर खड़ा कर देना, वहीं पर **"आचार्य श्री आत्माराम जैन सिलाई स्कूल"** जैसी शिक्षण संस्था की स्थापना करना तथा **"आचार्य श्री आत्माराम जैन सेवा-सदन"** का निर्माण करके समाज के असहाय छात्रों, विधवाओं तथा अभाव-ग्रस्त लोगों को सहायता देने की

योजना बनाना **श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज** की ही अपनी विशेषता है, जिसके लिये समाज इनका सदा कृतज्ञ रहेगा। राहों-निवासियों के हृदयों में तो महाराज श्री जी के लिये ऐसी आस्था, निष्ठा और प्रेम है कि जिसे लेखनी अक्षरों की सीमित रेखाओं से अभिव्यक्त नहीं कर सकती। अभी-अभी ४ फरवरी १९७३ को आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के पुण्यतिथि-महोत्सव पर राहों की जैनेतर जनता ने, एस० एस० जैन सभा तथा आचार्य श्री आत्माराम जैन फ्री डिस्पैंसरी कमेटी ने महाराज श्री की अविस्मरणीय सेवाओं और उपकारों पर अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति के साथ एक प्रस्ताव पारित करके श्रद्धेय **गुरुदेव श्री ज्ञानमुनि जी महाराज** को—**"पंजाब केसरी"**,**"जैन-भूषण"** और **"व्याख्यान-दिवाकर"** की महान् उपाधियों से अलंकृत करके इनकी समाज-सेवाओं को सम्मानित करने का बुद्धिशुद्ध प्रयास किया है।

पंजाब केसरी—

केसरी सिंह का नाम है। सिंह सदा निर्भीक और निर्भय रहता है। डर, खौफ, भय और भीति को कभी निकट नहीं आने देता। सिंहत्व और भीति कभी एक आसन पर नहीं बैठ सकते। दिन और रात का जैसे मेल नहीं, वैसे सिंहत्व और डर में कभी मेल नहीं हो सकता। हमारे श्रद्धेय **गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज** सचमुच पंजाब-केसरी हैं। ये केसरी की भांति सदा निर्भीक रहते हैं। साहस, दृढ़ता, स्थिरता और धीरता को कभी हाथ से जाने नहीं देते, जिस किसी धर्म-कार्य को अपने हाथ में लेते हैं, उसे पूर्णता के वस्त्र पहना कर ही छोड़ते हैं। कार्य को अधूरा छोड़ना इनका स्वभाव ही नहीं है। मनचले और द्वेषी लोगों की छींटाकसी या विरोधपूर्ण कहानियों से ये कभी डांवाडोल नहीं होते। जिस रास्ते पर चलते हैं, शेर की तरह दृढ़ता से चलते हैं। मुसीबतों की आंधियों से परेशान होना इन्होंने कभी सीखा ही नहीं है। शेर के समान निर्भीक होकर आप जिधर भी जाते हैं, शेर बनकर सफलता प्राप्त करते हैं।

जैन-भूषण—

जैन 'जिन' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है—राग द्वेष का विजेता महापुरुष। जो व्यक्ति जिन को अपना भगवान् या इष्ट मानता है या जिन भगवान् का कहा हुआ जो धर्म है उसे जैन कहते हैं। भूषण वैसे ज़ेवर का नाम है, परन्तु प्रस्तुत में यह शोभावर्धक समझना चाहिये। जैन-धर्म की शोभा को बढ़ाने वाला जैन-भूषण होता है। **हमारे श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज** सचमुच जैन-भूषण हैं। स्थान-स्थान पर इन्होंने जैन-धर्म की प्रभावना की, जैन-धर्म के विद्वेषी लोगों के हृदयों में भी जैन-धर्म के प्रति निष्ठा, आस्था और श्रद्धा पैदा की, जो अज्ञ लोग जैन साधु की आकृति देखना भी पाप समझते थे, जैन-धर्म को नास्तिक कहते थे, उन्हें जैन-धर्म में दीक्षित किया, जैन-धर्म के पवित्र नियमों का प्रसार करने के लिये बीसों पुस्तकें लिखीं। इस लिये मैं कहता हूं कि हमारे महाराज श्री जैन-धर्म के श्रेष्ठ भूषण हैं। राहों निवासयों ने महाराज श्री को यह पद प्रदान करके सचमुच अपनी दूरदर्शिता और वस्तु-स्थिति को जनता-जनार्दन तक लाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

व्याख्यान दिवाकर—

व्याख्यान प्रवचन को कहते हैं और दिवाकर सूर्य का नाम है। व्याख्यान-क्षेत्र में जो व्यक्ति सूर्य की तरह चमकता है, व्याख्यान की दृष्टि से सर्वत्र प्रसिद्धि पाता है, व्याख्यान के माध्यम से जन-गण-मन के अन्तर्गत के अज्ञानान्धकार को दूर करके उसे अहिंसा, सत्य के महाप्रकाश से प्रकाशमान

बना डालता है, उसे व्याख्यान-दिवाकर कहते हैं। हमारे **आदरणीय श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज** इस कला में पूर्ण रूप से दिवाकर की भांति निखरे हैं। आपकी वक्तृत्वकला अपने ही ढंग की है, वह जादू है जो प्रत्येक व्यक्ति पर छा जाता है। व्याख्यान में कर्मवाद जैसे गहन विषयों को ऐसे मार्मिक ढंग से जनता के सामने रखते हैं कि जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती है। आप श्री जी की वाणी में सत्यता, ऋजुता, उदारता तथा भाव, भाषा की प्राञ्जलता के साक्षात् दर्शन होते हैं। महाराज श्री जी का व्याख्यान एक गुलदस्ते के समान होता है। गुलदस्ते को जिधर से सूंघें उधर से ही सुगन्ध की अनुभूति होती है, वैसे ही आपके प्रवचनों में भी गम्भीरता, उदारता, विराटता, कोमलता, मधुरता एवं रोचकता की सुगन्धि साकार रूप धारण करती हुई दृष्टिगोचर होती है। आप श्री जी यथा नाम तथा गुण सम्पन्न हैं। आपकी ज्ञान-रश्मियां सूर्य के समान प्रकाशमान, चन्द्रमा के समान शीतल एवं फूलों के समान सुगन्धित हैं, आप श्री जी को ज्ञान-साधना की किरणें जिस किसी के बुझे जीवन-दीप को स्पर्श कर जाती हैं, उसे तत्काल प्रज्ज्वलित कर डालती हैं, ज्ञान—आलोक से भर देती हैं। आप श्री जी की विद्वत्ता, दूरदर्शिता, ज्ञान-सम्पदा तथा हाजिर-जवाबी कुछ विलक्षण ही है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता—

प्राकृत व्याकरण [संस्कृत-हिन्दी-टीकाद्वयोपेत] के लेखक भी मेरे पूज्य गुरुदेव श्रद्धेय श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ही हैं। इसमें एक बालमनोरमा नामक संस्कृत टीका है और दूसरी आत्मगुणप्रकाशिका हिन्दी-व्याख्या है। "प्राकृत-व्याकरण पर सरल, सरस और प्रामाणिक कोई विवेचन होना चाहिये।" यह सभी प्राकृतज्ञ विद्वान अनुभव कर रहे थे। इस दिशा में कुछ विद्वानों ने अपनी-अपनी पद्धति से प्रयास भी किये हैं, परन्तु उन से वाञ्छनीय लाभ प्राप्त नहीं हो सका। सौभाग्य की बात समझिये कि जैन-भूषण पंडित-रत्न गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ने अपने विलक्षण बौद्धिक बल तथा परिश्रम से इस समस्या को समाहित कर दिया। समूचे व्याकरण के शब्दों की साधन-प्रक्रिया लिखना, व्याकरण के समस्त कठिन स्थलों का सरल एवं सुगम विवेचन करना कोई साधारण बात नहीं है। मैं तो महाराज श्री जी की इस वैदुष्यपूर्ण रचना को इनका एक अपूर्व बौद्धिक चमत्कार ही मानता हूं। इतना बड़ा विशालकाय ग्रन्थ तैयार करना कोई बच्चों का खेल नहीं है। मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि महाराज श्री सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त होने तक प्रायः इसी ग्रन्थ के कार्य में जुटे रहते थे। इतना अधिक परिश्रम देखकर मैं तो आश्चर्यचकित रह जाता था। बिना किसी झिझक के कह सकता हूं कि पूज्य गुरुदेव की यह साहित्य-सेवा साहित्य-जगत में सदा अभिवन्दनीय एव अभिनन्दनीय रहेगी।

श्रद्धा के केन्द्र, जैनजगत की दिव्य विभूति, आदरणीय गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज के विराट् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ निवेदन किया है यह सब तो सूर्य के सामने दीपक रखने के समान है। आप श्री जी ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र की त्रिवेणी में स्नान करके अपनी आत्मा को पावन बनाया है। आपका व्यक्तित्व सागर की भाँति विराट् है, उसे अक्षरों की सीमित रेखाओं में बांधा नहीं जा सकता। वह विराट् है और सदा विराट् ही रहेगा। सचमुच आप जैन-धर्म-दिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागमरत्नाकर, विश्व-विभूति, चारित्र-चूड़ामणि महामहिम स्वर्गीय आचार्यसम्राट् परम श्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की आत्मा की अमूल्य निधि हैं, आचार्य-प्रवर श्री स्वयं प्रकाश-पुञ्ज थे, वे आपको भी अपने पावन प्रकाश से प्रकाशमान बना गए। श्रद्धेय गुरु महाराज

श्री की समाज-सेवा, ज्ञान-साधना और साहित्य-रचना से जैन जगत का कौन ऐसा व्यक्ति है जो परिचित न हो। साधु-समाज में आप श्री जी का एक महत्त्वपूर्ण एवं आदरास्पद स्थान माना जाता है।

मेरे जीवन-निर्माता—

आप श्री जी का साक्षात्कार करने का सौभाग्य मुझे सर्वप्रथम मालेरकोटला में हुआ। जहां से मेरे जीवन में एक नवीन चेतना का संचार हुआ। प्रथम दर्शन ने ही मेरे जीवन की दशा बदल दी। उच्च शिक्षा और आर्थिक स्थिति की सम्पन्नता, पारिवारिक सुख-सुविधाओं की परिपूर्णता पाकर भी मेरा मन अशान्त सा रहता था। संसार के झंझटों, लोगों के आपसी वैर-विरोधों, मृग-तृष्णाओं, युवक-हृदयों की वासनाजन्य उद्दण्ड वृत्तियों को देखकर मेरा मन उपराम हो उठता था। आस-पास का दूषित वातावरण तथा कर्मप्रताड़ित जन-गण-मन के करुण क्रन्दन कभी-कभी मेरे मन को सर्वथा उदासीन और बेचैन कर डालते थे। कभी-कभी उदासीनता अपना विराट् रूप लेकर इस प्रकार सामने आती कि आंखों में अश्रुधारा स्वयं ही निकल पड़ती। विकलता एवं बेचैनी के इन्हीं क्षणों में जब आप श्री जी के विराट् व्यक्तित्व के दर्शन हुए तो पावन स्नेह की सरिता के स्नेहिल स्पर्श के द्वारा मेरे मानस को असीम आनन्दानुभूति हुई। आप की असीम कृपा से ही १२ वर्ष से चल रहा जैन साधु बनने का मेरा संकल्प मूर्तरूप ले सका है। सौभाग्यशाली मानता हूं अपने को, जो आप श्री जी ने मुझ जैसे अबोध बालक को, अपने पावन चरणों में स्थान दिया। आप श्री जी के हृदय का औदार्य्य, स्नेहपूर्ण व्यवहार, विलक्षण प्रतिभा, वाणी-गत ओज, जन-जन के कल्याण के लिये प्रयत्नशीलता और विचार-स्पष्टता ने मेरे जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया।

आप श्री जी की ज्ञान-सम्पदा, उच्च आचार तथा महान् व्यक्तित्व प्रेरणास्तम्भ के रूप में सदा के लिये मेरे हृदय के कण-कण को शान्ति प्रदान करता रहे, यही शासनेश भगवान् महावीर से प्रार्थना है। सचमुच आपको शान्ति, ज्ञान और क्षमा के सागर कहूं तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। इसके अतिरिक्त, मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूं कि इतनी असीम कृपा और नैसर्गिक स्नेह जीवन में मुझे पहली बार मिला है। अधिक क्या, आप श्री जी तो मेरे लिये कल्पवृक्ष हैं।

वन्दन, शत-शत अभिनन्दन।

प्राकृत-व्याकरण के व्याख्याकार—

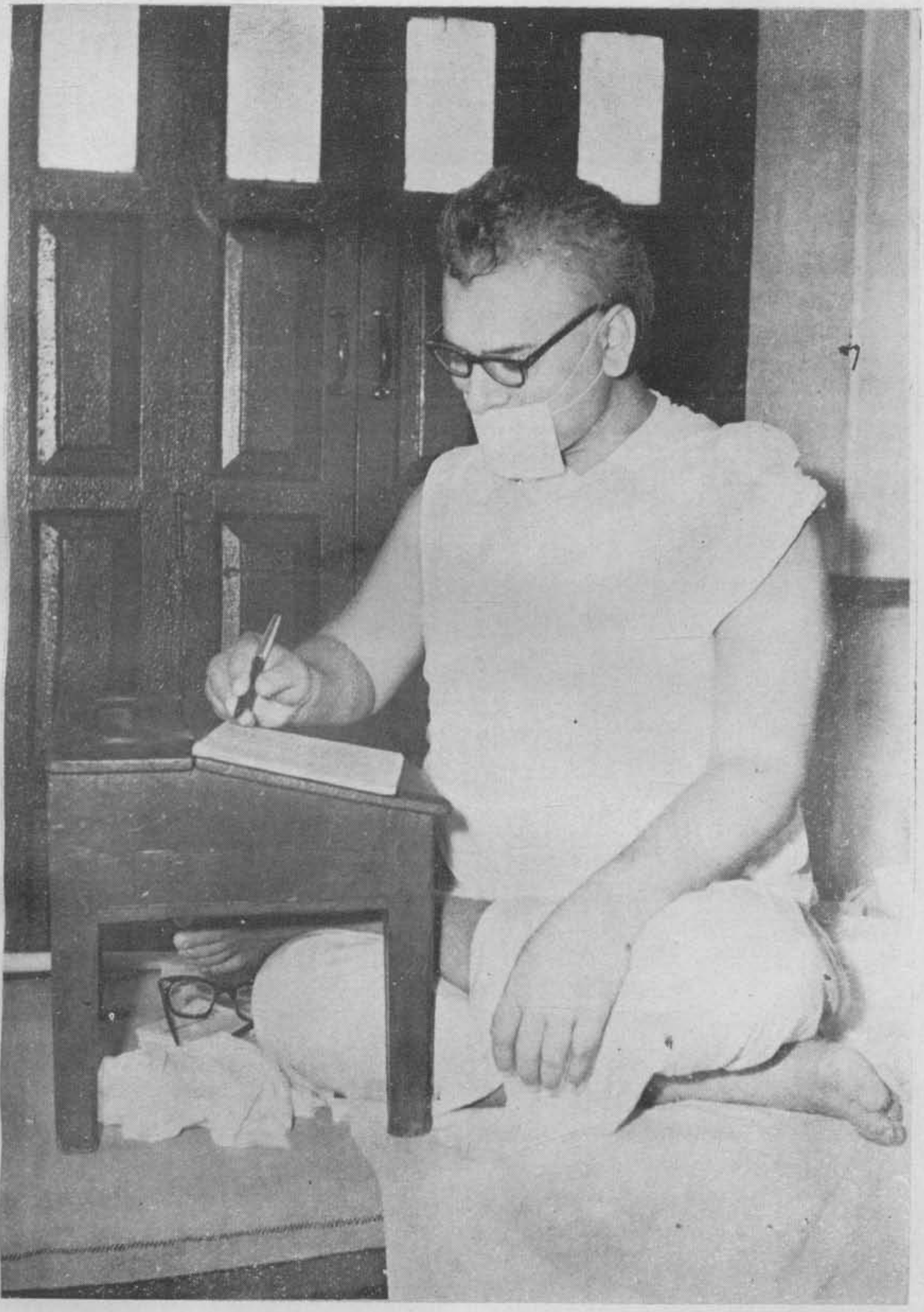

जैनभूषण, पंजाब-केसरी, व्याख्यान-दिवाकर
श्रद्धेय पण्डित-रत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज लेखन कार्य करते हुए

धन्यवाद

प्राकृत-व्याकरण के प्रकाशन में हमारे आदरणीय दानी सज्जनों एवं उदार बहिनों का जो प्रशंसनीय सहयोग रहा है, उसके लिए हम उनका किन शब्दों में धन्यवाद करें ? कुछ समझ नहीं पा रहे। वस्तुतः लेखक की लेखनी जिन विचारों को अक्षरों के वस्त्र पहना कर साकार बना डालती है, उन विचारों को प्रैस के माध्यम से जनताजनार्दन तक पहुंचाने का सर्वाधिक श्रेय अर्थ-व्यवस्था को ही होता है। धार्मिक साहित्य-प्रकाशन के निमित्त वह अर्थव्यवस्था दानी सज्जनों के औदार्य्य से ही सम्पन्न हुआ करती है। अतएव धार्मिक साहित्य के निर्माण एवं अभ्युत्थान में दानी महानुभावों का सहयोग अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हम प्राकृत-व्याकरण की बालमनोरमा सस्कृत-टीका तथा आत्मगुण-प्रकाशिका हिन्दी-टीका को आदरणीय पाठकों के करकमलों में समर्पित करने में आज जो सफल हो रहे हैं, इसके पीछे भी हमारे सम्मानास्पद दानी सज्जनों का कृपाभाव ही काम कर रहा है। दानो सज्जनों के इस कृपाभाव के लिए हम उन के हृदय से धन्यवादी हैं। दानी कृपालुओं का यह कृपाभाव सदा बना रहे, यही शासनेश प्रभु महावीर से अभ्यर्थना करते हैं।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए हम प्राकृतव्याकरण को दो खण्डों में विभक्त करके प्रकाशित कर रहे हैं, इन में से प्रथम खण्ड को प्रकाशित करवाने में जिन दानो सज्जनों ने हमें सहायता देने की कृपालुता की है, चित्रों के साथ उन के शुभ नाम इस प्रकार हैं –

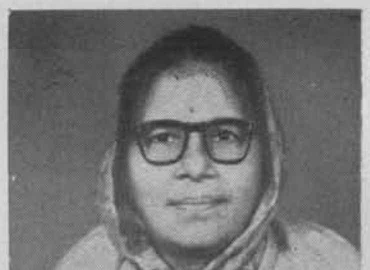

१. **बहिन विद्यावती जी जैन** धर्मपत्नी ला० जुगलकिशोर जी जैन होशियारपुर। ये होशियारपुर जैन महिला-मण्डल के एक श्राविकारत्न हैं, सामाजिक कार्यों में पूर्ण सहयोग देने के साथ-साथ इन की धर्मध्यान की ओर भी पूर्ण निष्ठा है।

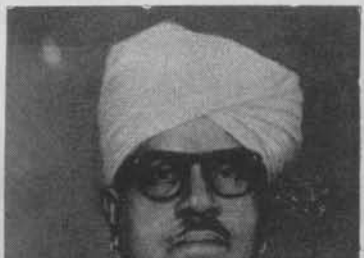

२. **स्वर्गीय सेठ प्यारे लाल जी जैन** बज़ाज़ (राय साहिब)। आप अम्बाला शहर की मूर्तिपूजक श्वेताम्बर जैन परम्परा के सुविख्यात श्रावक रहे हैं। दानवीरता, सहृदयता, गुरुभक्ति, धर्मनिष्ठा और सज्जनता आप की विलक्षण गुणसम्पदा थी।

३. **बहिन विजयलक्ष्मी जी ओसवाल** धर्म-पत्नी श्री ऐस०पी० ओसवाल मैनेजर भारत कौमर्स एण्ड इण्डस्ट्री लिमिटिड राजपुरा (पटियाला)। ये बड़ी ही उदार और विचारक श्राविका हैं। धर्म-कार्यों में भी ये सदा सतर्क रहती हैं।

४. **बहिन रामरक्खी जी जैन** (पटियालो) अमृतसर। बहिन जी अमृतसर के जैन महिला-समाज के एक सम्मानित महिलारत्न हैं। धर्मध्यान की ओर इन का प्रशंसनीय झुकाव है। हृदय की उदारता और गुरुभक्ति इनकी अपनी विशेषता है।

५. **श्री बृजभूषण जी अग्रवाल जैन** सुपुत्र श्री वेद प्रकाश जी जैन बज़ाज़ खरड़ (रोपड़)। आप **आचार्य श्री आत्माराम जैन शिक्षा निकेतन खरड़** के सर्वेसर्वा हैं। आप एक कालिज के प्रिंसिपल भी हैं। सहृदयता आप की सब से बड़ी विशेषता है।

६. **सेठ कस्तूरी लाल जी जैन** सराफ अम्बाला शहर। सराफ साहिब श्वेताम्बर मूर्ति-पूजक होने पर भी संकीर्णता से बहुत दूर हैं। जैन धर्म की स्थानकवासी आदि सभी जैन परम्पराओं के साधुओं के प्रति आप पूर्ण निष्ठाभाव रखते हैं।

७. सेठ जागीरी लाल जी जैन एडवोकेट सुलतानपुर लोधी। सेठ जी ऐस० ऐस० जैन सभा सुलतानपुर लोधी के एक जाने-माने स्नेहशील एवं प्रतिष्ठा-प्राप्त श्रावक-रत्न हैं। आप सामाजिक कार्यों के सम्पादन में भी सदा सतर्क रहते हैं।

८. स्वर्गीय ला० अमरनाथ जी जैन बज़ाज़ अम्बाला शहर। लाला जी ऐस० ऐस० जैन सभा पंजाब के वर्षों सभापति रहे हैं। अम्बाला शहर के बहुत बड़े पून्जीपति होने पर भी अस्मिताभाव का इन्होंने कभी निकट नहीं आने दिया।

९. ला० बाबूराम जी जैन अम्बाला शहर। लाला जी परम गुरुभक्त, उदार, होनहार और सुयोग्य पुत्रों के पिता हैं। वयोवृद्ध होने पर भी जैनस्थानक में प्रतिदिन आकर सामायिक करना, साधु-मुनिराजों से मङ्गलपाठ सुनना इन के जीवन की विशिष्ट गुणसम्पदा है। ये स्वभाव के बड़े ही सरल हैं।

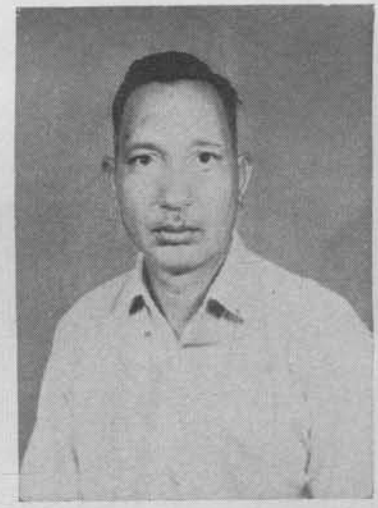

१०. ला० कर्मचन्द्र जी अग्रवाल नम्बरदार, खानपुर। नम्बरदार साहिब बड़े मिलनसार और सात्त्विक विचारों के व्यक्ति हैं। खानपुर गांव के बाहिर अपने बाग में इन्होंने जैनस्थानक बना रक्खा है, जिस में साधु मुनिराज उतरते हैं। सेठ जी की धर्मपत्नी बहिन यमुनादेवी जैन का सेवा-भाव तो बड़ा ही विलक्षण है।

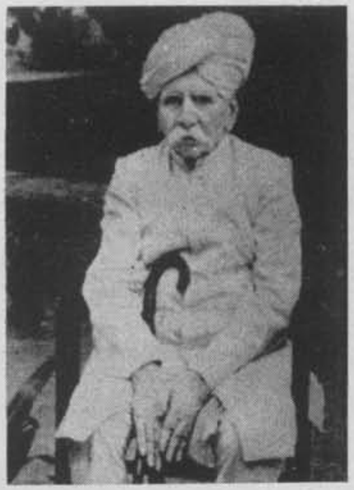

११. स्वर्गीय चौधरी लच्छी राम जी जैन अम्बाला शहर। चौधरी साहिब अम्बाला शहर की जैन समाज के ही नहीं, प्रत्युत ऐस०ऐस० जैन सभा पंजाब के भी एक प्रतिष्ठित श्रावक एवं अनथक कार्यकर्ता रहे हैं। आपकी समाज-सेवाएं कभी विस्मृत नहीं की जा सकतीं। आप जैसा समाज-सेवक कोई विरला ही होता है।

१२, ला० कस्तूरी लाल जी जैन सराफ जालन्धर शहर। लाला जी जालन्धर शहर की जैन बरादरी के एक प्रतिष्ठित एवं उदार श्रावक-रत्न हैं, आप समाज के भविष्य को सदा समुज्ज्वल देखना चाहते हैं। दान-धर्म की आराधना की ओर भी आपका पूरा-पूरा लक्ष्य रहता है। पूञ्जीपति होने का जरा भी अहंभाव नहीं है।

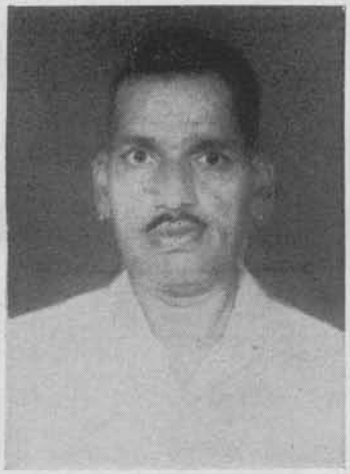

१३ ला० रतन लाल जी अग्रवाल जैन खरड़। आप वयोवृद्ध श्रावक ला० चेतराम जी अग्रवाल जैन के सुपुत्र हैं। परमश्रद्धालु, गुरुभक्त और सेवाभावी व्यक्ति हैं। धर्मप्रभावना का भी आप पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।

१४ ला० बालकराम जी जैन डेराबसी। लाला जी बड़े सादा तथा धार्मिक विचारों के व्यक्ति हैं। डेराबसी कस्बे की जैन कन्या पाठशाला आप के सहयोग से ही जीवित है और विद्या-भगवती का प्रचार एवं प्रसार कर रही है।

१५. स्वर्गीय ला० केवल कृष्ण जी जैन सुपुत्र मास्टर सोहन लाल जी जैन फरीदकोट। भले ही लाला केवल-कृष्ण जी आज हमारे मध्य में नहीं हैं, परन्तु इनकी सात्त्विकता और उदारता इनकी धर्मपत्नी बहिन सुभाष रानी जैन में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर हो रही है।

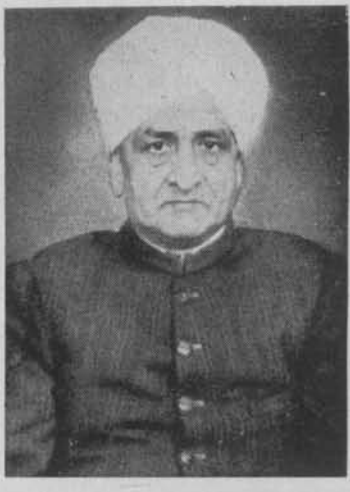

१६. स्वर्गीय सेठ हीरा लाल जी जैन एडवोकेट अमृतसर। सेठ साहिब जहां धार्मिक क्षेत्र में सदा अग्रणी रहे हैं वहां राजनैतिक क्षेत्र में भी इन्होंने अपना पूरा-पूरा योगदान दिया है। भारतीय जनसंघ लुधियाना के ये वर्षों प्रधान रहे हैं। ये विचारों के बड़े ही सात्त्विक थे।

१७. स्वर्गीय ला० शिवप्रसाद जी जैन बजाज अम्बाला शहर। बजाज साहिब बड़े सात्त्विक एवं धार्मिक विचारों के व्यक्ति रहे हैं। पूञ्जीपति होने पर भी बड़े विनम्र थे। जैन-धर्म-दिवाकर आचार्य-सम्राट् गुरुदेव परमश्रद्धेय **पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज** के अनन्य श्रद्धालुओं में आप का एक आदरणीय स्थान रहा है।

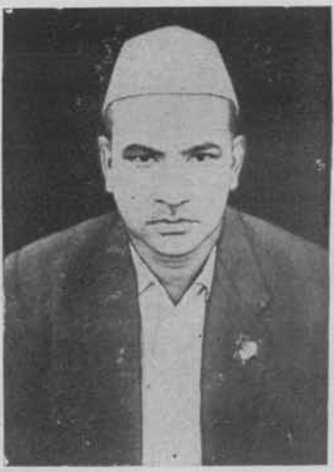

१८. सेठ ओमप्रकाश जी अग्रवाल अम्बाला शहर। सेठ साहिब धार्मिक विचारों की दृष्टि से सनातनपरम्परा को मानने वालों में से हैं, तथापि संकीर्णता से बहुत ऊपर उठे हुए हैं। सभी परम्परा के साधु-सन्तों का ये हृदय से आदर करते हैं और बिना किसी मतभेद के सभी धार्मिक समाजों को यथा-शक्ति दान देते रहते हैं।

१६. **श्रीमती सौभाग्यवती जी जैन** धर्मपत्नी ला० दुर्गादास जी जैन लोहे वाले, सुल्तानपुर लोधी। बहिन सौभाग्यवती जी बड़ी ही सुशीला, धर्मप्रिया और धर्मध्यान की महाज्योति से अपने अन्तर्जगत को सदा ज्योतिर्मान बनाए रखने वाली एक आदर्श श्राविका हैं। आप धार्मिक साहित्य के प्रकाशन में भी यथाशक्ति सहयोग देती रहती हैं। असहाय विधवाओं की गुप्तरूप से सहायता करके आप वास्तविक रूप से अहिंसा धर्म की आराधना करने में विशेष रुचि रखती हैं।

२०. **श्रद्धेय महासती श्री दीपमाला जी महाराज**। आप ने ४६ वर्ष की आयु में महाविदुषी **महासती श्री लज्जावती जी महाराज** के चरणों में वि० सं० २०१३, आषाढ शुक्ला ५ को लुधियाना में जैन दीक्षा ग्रहण की थी। वयोवृद्ध होने पर भी आप अपनी गुरुणी जी महाराज की सेवा में सदा तत्पर रहते हैं। धार्मिक साहित्य के प्रकाशन की ओर भी आपका पूर्ण लक्ष्य रहता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में भी आप के परिवार का पर्याप्त सहयोग प्राप्त रहा है।

इसके अतिरिक्त, **ला० वज्रंग दास** जैन अबोहर, **ला० रूप लाल जी** मुलाना, **ला० चूनी लाल विधिचन्द्र जी** मुलाना, **ला० खुशीराम ज्ञान चन्द्र जी** साढौरा, **श्री राजेन्द्र कुमार जी** जैन अम्बाला छावनी, अम्बाला शहर के—**ला० अमर चन्द्र जी** जैन एडवोकेट, **ला० नौराता राम बाबू राम जी जैन, ला० विमलप्रकाश जी जैन, बहिन राजरानी जी जैन** रोपड़, **ला० जीयालाल जी जैन** कुराली, **ला० प्रकाश चन्द्र सुशील कुमार जैन** होशियारपुर का सहयोग भी सदा संस्मरणीय रहेगा। हम इन दानी सहयोगियों का हृदय से धन्यवाद करते हैं।

जैनधर्मदिवाकर, आचार्यसम्राट्, परमश्रद्धेय गुरुदेव **पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज** के सुशिष्य जैनभूषण, पंजाब-केसरी, व्याख्यानदिवाकर **श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज** तो इस प्राकृतव्याकरण के प्रकाशन-महानद के मूलस्रोत ही हैं। संस्कृत भाषा तथा हिन्दी भाषा में अनुवाद करके आप श्री ने साहित्य जगत पर जो उपकार किया है, उसका हम जितना भी अभिवन्दन करें, उतना ही थोड़ा है। प्रूफरीडिंग भी आप श्री जीने स्वयं ही करने की कृपा की है। वस्तुतः आप श्री के परिश्रमाधिक्य से ही प्राकृतव्याकरण की दोनों टीकाएं आज इस सुन्दर रूप में विनिर्मित एवं प्रकाशित हो रही हैं। वन्दनीय **श्री ज्ञानमुनि जी महाराज** को इस दयालुता, कृपालुता और परिश्रमशीलता के लिए भी हम हृदय से आभारी हैं।

प्रार्थी—

मंत्री—आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल
२६-डी, कमला नगर, दिल्ली-७

कहां क्या है ?

विषय	पृष्ठ
प्रथमपादः	१
स्वरसन्धिः	१
सन्धिविधिः	८
अन्त्यव्यञ्जनस्य लुगादि-विधिः	१९
अनुस्वारविधिः	२५
लिङ्ग-परिवर्तन-प्रकरणम्	३५
स्वर-सम्बन्धीनि कार्याणि	४५
अकारविधिः	५०
आकारविधिः	६२
इकारविधिः	७२
ईकारविधिः	८०
उकारविधिः	८५
ऊकारविधिः	८९
ऋकारविधिः—१	९२
ऋकारविधिः—२	१००
लृकारविधिः	१०६
एकारविधिः	१०७
ऐकारविधिः	१०८
ओकारविधिः	११३
औकारविधिः	११५
सस्वर-व्यञ्जनविधिः	११९
स्वरात्परस्य असंयुक्तस्य अनादेविधिः—१	१२६
स्वरात्परस्य असंयुक्तस्य अनादेविधिः—२	१३४
ककारादेशविधिः	१३८
खादि-व्यञ्जनादेशविधिः	१४१
ठकारादि-व्यञ्जनविधिः	१४७
थकारादि-व्यञ्जनविधिः	१५९
फकारादि-व्यञ्जनविधिः	१६८
रेफादि-व्यञ्जनविधिः	१७६
सस्वर-जकारादि-वर्णविधिः	१८५
द्वितीयपादः	१९१
ककारादि-संयुक्त-व्यञ्जनविधिः	१९१
संयुक्तवर्णस्य गकारादि-वर्णादेश-विधिः	१९७
क्षादि-वर्णानां छकारादि-वर्णादेश-विधिः	२०४
ह्लादि-वर्णानां ल्हादि-वर्णादेशविधिः	२२०
शेषादेश-भूत-वर्णयोर्विधिः	२४३
स्त्र्यादीनामित्थ्याद्यादेशविधिः	२६९
अव्ययप्रकरणम्	३००
तृतीयपादः	३३१
स्यादिविधिः (क)	३३१
स्यादिविधिः (ख)	३६८
स्यादिविधिः (ग)	३९७
कारक-विधिः	४१६
क्यङ्-क्यङ्षोर्विधिः	४२२
त्यादिविधिः	४२३
प्राकृत-व्याकरणस्य पादत्रयाणां शब्दसूची	४६१

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

प्राकृत-व्याकरणम्

१. अथ प्राकृतम् ८।१।१।

अथ शब्दः आनन्तर्यार्थोऽधिकारश्च । प्रकृतिः संस्कृतम् । तत्र भवं, तत आगतं वा प्राकृतम् । संस्कृतानन्तरं प्राकृतमधिक्रियते । संस्कृतस्यानन्तरं च प्राकृतस्यानुशासनम् । सिद्ध-साध्यमान-भेद-संस्कृत-योनेरेव, तस्य लक्षणं न देश्यस्य इति ज्ञापनार्थम् । संस्कृतसमं तु संस्कृतलक्षणेनैव गतार्थम् ।

प्राकृते च प्रकृति-प्रत्यय-लिङ्ग-कारक-समास-संज्ञादयः संस्कृतवद् वेदितव्याः । "**लोकात् १।१।३।**" इति च वर्तते । तेन—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ऐ, औ, ङ, ञ, श, ष, विसर्जनीयप्लुतवर्जो वर्णसमाम्नायो लोकादवगन्तव्यः । ङ-ञौ स्ववर्ग्य-संयुक्तौ भवत एव । ऐदौतौ च केषाञ्चित् । कैतवम्, कैअवं । सौन्दर्यम्, सौंअरियं । कौरवाः, कौरवा । तथा—अस्वरं व्यञ्जनं, द्विवचनं, चतुर्थी-बहुवचनञ्च न भवति ।

२. बहुलम् ८।१।२।

बहुलम्, इत्यधिकृतं वेदितव्यम्, आशास्त्रपरिसमाप्तेः । ततश्च--क्वचित् प्रवृत्तिः, क्वचिद् अप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा, क्वचिद् अन्यदेव भवति । तच्च यथास्थानं दर्शयिष्यामः ।

३. आर्षम् ८।१।३।

ऋषीणामिदम् आर्षम् । आर्षं पाकृतं बहुलं भवति । तदपि यथास्थानं दर्शयिष्यामः । आर्षे हि सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते ।

अथ स्वर-विधिः

४. दीर्घह्रस्वौ मिथौ वृत्तौ ८।१।४।

वृत्तौ--समासे स्वराणां दीर्घह्रस्वौ बहुलं भवतः । मिथः परस्परम् । तत्र ह्रस्वस्य दीर्घः । अन्तर्वेदिः, अन्तावेई । सप्तविंशतिः, सत्तावीसा । क्वचिन्न भवति । जुवइ-अणो । क्वचिद् विकल्पः । वारीमई, वारिमई । भुजयंत्रम्, भुआयन्तं, भुअयन्तं । पति-गृहम्, पइ-हरं, पईहरं । वेलूवणं, वेलुवणं । दीर्घस्य ह्रस्वः । निअम्ब-सिल-खलिअ-वीइ-मालस्स । क्वचिद् विकल्पः । जउँण-यडं, जउँणा-यडं । नइ-सोत्तं, नई-सोत्तं । गोरिहरं, गोरी-हरं । वहुमुहं, वहूमुहं ।

❋ अथ बाल-मनोरमा-संस्कृत-टीका ❋

[1]चिदेकमयमूर्तिकं चिदमवाप्तुकामा वयम् ।
विधूत-भव-कल्मषं [2]सविधि वर्धमानं नुमः ॥
दिदेश किल देशनां य इह देशकालोचिताम् ।
निगूढतम-तत्त्वमप्यनुजनं[3] समासीसदत्[4] ॥ १ ॥
मुमुक्षु-जन-रञ्जन ! भ्रम-शतभ्रमी-भञ्जन[5] ! ।
सुकर्मणि जनं जनं घटयितुं कृतासञ्जन[6] ! ॥
त्वदीय-पद-कञ्जके [8]गुरुवरार्पयाम्यंजसा[9] ।
इमाः [9]प्रणय-पुष्प-पुञ्ज-कलिताञ्जलीः[10] प्राञ्जलिः ॥ २ ॥
प्राकृत-वाङ्मयाभ्यासं सायासं समपीपदत् ।
यो जैनागमतत्त्वानां महद्रत्नाकरोऽभवद् ॥ ३ ॥
योऽभूत् पूर्वमुपाध्यायः आचार्यस्तदनन्तरम् ।
सर्वाचार्य-प्रधानश्च, ज्ञान-पुञ्जो महामुनिः ॥ ४ ॥
यश्च दुर्मेधसः स्नेहान्माहशीन्निध्यजीगपत् ।
आत्मारामं तमाचार्यं, नमस्कार्यं नमाम्यहम् ॥ ५ ॥
श्रमेण कठिनेन मां कठिन-संस्कृत-प्राकृते ।
कथं नु समपीपठत् स निज-पाद-पीठाश्रितम् ॥
मदीयकृतिरन्तमाकलयते यदीय-श्रमात् ।
नतोऽस्मि मुनिहेममेतदुपकार-भारं स्मरन् ॥ ६ ॥
अवाप्य निजकौशलेन कलि-काल-सर्वज्ञताम् ।
अति-प्रथित-लाघवं समधिकृत्य भाषाद्वयम् ॥
दुरूहमपि लीलया व्यरचि हेमचन्द्रेण यत् ।
सदा विजयतेतरां तदिह शब्दशास्त्रं महत् ॥ ७ ॥
तदीयमिममष्टमं [11]प्रकृतिकष्टमध्यायकम् ।
मनो हि मम चेष्टते गमयितुं परां स्पष्टताम् ॥
[12]तदर्थकतया मया रचितयाऽनया टीकया ।
[13]समादधतु किंचिदप्यधिजिगांसवः प्राकृतम् ॥ ८ ॥
मुनिना ज्ञानचन्द्रेण, टीका बालमनोरमा ।
मनो रमयितुं स्वीयमितरेषां च विधीयते ॥ ९ ॥

---

[1]इतर-विभाव-परिहाराय एकशब्दः । [2]क्रियाविशेषणमेतत् । [3]जनानुरूपम् । [4]प्रापयद् अवागमयदित्यर्थः । [5]भ्रमणं भ्रमिः 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीष् । [6]आसञ्जनं व्यासंगः, प्रवृत्तिरित्यर्थः ! [7]सम्बोधनपदम् । [8]आर्जवेन । [9]भक्तिः । [10]बद्धाञ्जलिरहमित्यर्थः । [11]प्रकृत्या कष्टं गहनमित्यर्थः । "कृच्छ-गहनयोः कषः" । [12]तादर्थ्येन । [13]समाधानं प्राप्नुवन्तु ।

अथ शब्दः आनन्तर्यार्थे, न अन्तरम्, अनन्तरम्, तस्य भावः आनन्तर्यम्, आन्तर्यरहितमिति, तदर्थे। अधिकारार्थे उत्तरोत्तरसूत्रेष्वनुवर्तनमधिकारः, तदर्थे च वर्तते। अपि च—

अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते, इति पतञ्जलिः।

ओंकारश्च अथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणा पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ, तस्मान्मांगलिकावुभौ।।१।। *इति स्मृतौ*

अत्र प्रकृति शब्दः, मूलार्थकः। इदमत्र हार्दम्। ये संस्कृतभाषातः प्राकृतभाषामवबोद्धुमिच्छन्ति, तेषां कृते श्री हेमचन्द्राचार्येण संस्कृत-सप्ताध्याय्या अनन्तरं प्रस्तुतोऽष्टमोऽध्यायो विनिर्मितः। सपाद-सप्ताध्याय्यां ये प्रकृति-प्रत्ययादयः यथा वर्णिताः ते तथैव इहाष्टमाध्यायेऽपि उपात्ताः सन्ति। इदमेव प्राकृतस्य संस्कृत-प्रकृतिकत्वम्, संस्कृत-मूलकत्वमित्यर्थः। अमुमेवाभिप्रायं प्रकटयितुमिदमुक्तम्—**प्रकृतिः संस्कृतम्।**

तत्र भवम्, संस्कृते भवं, संस्कृतसममित्यर्थः। ये शब्दाः संस्कृते यथाप्रयुज्यन्ते प्राकृतेऽपि ते तथैव प्रयुज्यन्ते। यथा—अहिंसा, मंगलम्, देवाय, इत्यादयः शब्दाः संस्कृतवदेव प्राकृतेऽपि प्रयुक्ता भवन्ति। एतदेव प्राकृतस्य संस्कृतभवत्वम्, संस्कृतसमत्वमिति यावत्। ततः संस्कृताद् आगतं संस्कृतजन्यमित्यर्थः। संस्कृतशब्दमवलम्ब्य प्राकृतानुशासनेन व्युत्पन्नम्। यथा—धर्मः, इति संस्कृत-शब्दाद् **धम्मो** इति प्राकृत-शब्दो निष्पन्नो भवति। एवमेव संयमः, इत्यस्मात् **'संजमो',** द्वितीयं इत्यस्माद् **'बीओ'** इत्यादीनि रूपाणि साध्यन्ते। एतदेव च प्राकृतस्य संस्कृतात् आगतत्वमिति। **संस्कृतानन्तरमिति।** हैमशब्दानुशासनस्य संस्कृतमय्याः सप्ताध्याय्याः निरूपणानन्तरमाचार्यप्रवर-हेमचन्द्रेण प्राकृतमयोऽष्टमोऽध्यायो निरूप्यते।

सिद्धसाध्यमानेति। सिद्धं रूढं, साध्यमानं यौगिकं च इमौ द्वौ भेदौ यस्य तत् सिद्ध-साध्यमानभेदम्। सिद्ध-साध्यमानभेदं च तत्संस्कृतं सिद्ध-साध्यमान-भेदसंस्कृतम्। एतद् योनिः—आधारो यस्य तत् सिद्ध-साध्यमान-भेद-संस्कृत-योनिः। अथवा सिद्धं परिनिष्ठितं प्रयोगार्हम्। यथा भवति, रामः। साध्यमानञ्च अपरिनिष्ठितम्, अप्रयोगार्हम्। यथा—भू+ति, राम+सि।

तस्येति। तस्य प्राकृतस्य, लक्षणं,—व्याकरणं नतु देश्यप्राकृतस्य इति ज्ञापनार्थं **संस्कृतानन्तरं प्राकृतमधिक्रियते** इत्युक्तम्। इदमत्राकूतम्—प्राकृतं त्रिविधम्—१. सिद्धं (संस्कृतसमम्)—२. साध्यमानं, (संस्कृतजन्यं), ३. देश्यञ्च। सस्कृतसमं, संस्कृतजन्यं चेत्येतद्द्वयं व्याख्यातमेव। संस्कृतसम-संस्कृतजन्याभ्यामतिरिक्तं तत्तद्देशेषूच्चार्यमाणं प्राकृतं देश्यं ज्ञेयमिति।

संस्कृतसममिति। संस्कृतसमं संस्कृततुल्यं प्राकृतं तु संस्कृतलक्षणेन-संस्कृतव्याकरणेनैव गतार्थमवबुद्धं भवति। **प्राकृते इति।** संस्कृत-जन्ये प्राकृते इति भावः। प्रकृतयः—नामानि, प्रातिपदिकानि धात्वादयश्च, प्रत्ययाः—सुप्तिङादयः, लिङ्गानि-स्त्रीत्व-पुंस्त्व-नपुंसकत्वानि त्रीणि लिङ्गाणि,कारकाणि-कर्तृकर्मकरणादीनि, समासाः—तत्पुरुष-बहुब्रीह्यादयः, संज्ञा-स्वर-व्यञ्जनलघुगुर्वादयः, इत्यादीनि संस्कृत-तुल्यानि अवसेयानि। हैमशब्दानुशासनस्य सप्ताध्याय्यां यानि प्रकृतिप्रत्ययादीनि प्रतिपादितानि सन्ति तान्येवात्र बोद्धव्यानीत्यभिप्रायः।

लोकादिति। हैमशब्दानुशासनस्य १।१।३। सूत्रमस्ति। अस्य प्रयोजनं त्विदं विद्यते यद्-अनुक्तानां संज्ञानां न्यायानां च लोकाद् (लोक-व्यवहारत एव) सिद्धिः ज्ञप्तिश्च वेदितव्या। तेन उक्तवर्णातिरिक्तः वर्णसमाम्नायः [वर्णानां समाम्नायः, वर्णसमाम्नायः, वर्णसमूहः इत्यर्थः] लोकादवगन्तव्यः।

स्ववर्ग्येति । वर्गे भवः वर्ग्यः, स्वस्य वर्ग्यः, तेन संयुक्तौ स्व-वर्ग्य-संयुक्तौ । यद्यपि प्राकृत-वर्णसमाम्नाये ङ् ञ् इत्येतयोः वर्णयोः प्रतिषेधः कृतोऽस्ति परन्तु यदीमौ वर्णौ स्ववर्ग्य-संयुक्तौ स्याताम्, तर्हि अनयोः प्रयोगो यथायथं भवत्येव । यथा—१. **कङ्कोडो** (कर्कोटः), २. **णङ्गलं** (लांगूलम्), ३. **मञ्जारो** (मार्जारः) ४. **विञ्छिओ** (वृश्चिकः) इत्यादिषु प्रयोगेषु ङकारस्य ञकारस्य च प्रयोगो दृश्यते एवम् ।

केषाञ्चिदिति । केषाञ्चिदाचार्याणां मते ऐदौतौ वर्णसमाम्नाये भवत एव । तथाहि— **कैतवम्** । अत्र १४८ सूत्रेण ऐकारस्य एकारप्राप्तिः, किन्तु उक्त-कथनमनुसृत्य तन्नाभूत् । ततः १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपेऽकारस्य अवर्णपरत्वाभावात् १८० सू० यकार-श्रुतिः नाभवत् । २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कैअवं** इति सिद्धम् । **सौन्दर्यम्** । अत्र १५६ सूत्रेण औकारस्य ओकार-प्राप्तिः, किन्तु पूर्ववचनमनुसृत्य तन्नाभूत् । ततः १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपे, अकारस्य अवर्ण-परत्वाभावात् १८० सू० न यकार-श्रुतिः, ३७८ सू० यकारात्पूर्वः इकारागमः, ततः सौंअरियम् इति स्थिते, २३ सूत्रेण मकारस्यानुस्वारे **'सौंअरियं'** इति सिद्धम् । **कौरवाः** । कौरव×जस् । अत्रापि ओकाराभावे सति ४६३ सूत्रेण जसो लुक्, ५०१ सूत्रेण पूर्वाकारदीर्घः । ततः **कौरवा** इति सिद्धम् । **तथेति** । अस्वरं, स्वररहितं व्यञ्जनं, विभक्तेः द्विवचनं, चतुर्थ्याश्च बहुवचनम्, एतत्-त्रयं प्रकृत-भाषायां न भवति ।

बहुलमिति । बहूनर्थान् लाति इति बहुलम्, बह्वर्थप्रतिपादकमित्यर्थः, सम्पूर्णश्लोकस्त्वित्थम्—

क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥१॥

क्वचित् सूत्राणां प्रवृत्तिः-प्रवर्तनम्, क्वचित्तेषामप्रवृत्तिः—प्रवृत्यभावः, क्वचिद् विभाषा—विकल्पः, क्वचिदन्यद् सूत्रानुक्तमेव कार्यं भवति । इत्थं विधेः—सूत्रस्य विधानं-प्रवृत्तिं बहुधा—बहुविधं, समीक्ष्य—अवलोक्य बहुलकं चतुर्विधं प्रोचुर्वृद्धाः ।

आर्षमिति । आर्षं प्राकृतम्, अर्धमागधी-प्राकृतम् । अर्धमागधी-प्राकृते लक्ष्याणां प्रवृत्तिर्बहुलं भवतीति भावः । तदेवाह-**आर्षे हीति** । आर्ष-प्राकृते सर्वे विधयः-सर्वाणि कार्याणि विकल्प्यन्ते-विकल्पेन भवन्तीति ज्ञातव्यम् । अत्र बहुलमिति पदं बहुलम् १।१।२। इत्यस्मात् सूत्राद् अनुवृत्तमवसेयम् ।

अथ स्वर-विधिः

सूत्रकारः स्वरविधिमारभते । वर्णाः, स्वर-व्यञ्जनात्मकाः भवन्ति, येषां वर्णानामुच्चारणे कस्यचिद् वर्णस्य साहाय्यमपेक्षितं भवेत्ते वर्णा व्यञ्जन-पदवाच्याः, कादयः । येषामुच्चारणे साहाय्यमपेक्षितं न भवेत्ते स्वर-पदवाच्याः, अकारादयः । स्वराणां विधिः, स्वरविधिः, स्वर-सम्बन्धि-कार्यमित्यर्थः । प्राकृतभाषायां स्वराणां ह्रस्वत्वं, दीर्घत्वं च यथा भवति तथा प्रतिपादयत्याचार्यः ।

दीर्घेति । दीर्घश्च ह्रस्वश्च, दीर्घह्रस्वौ इति द्वन्द्वसमासः । मिथः परस्परम् । कदाचिद् ह्रस्वस्य दीर्घो भवति, कदाचिच्च दीर्घस्य ह्रस्वः । यथा-**अन्तर्वेदिः** । अन्तर्गता, अभ्यन्तरा वेदिः, अन्तर्वेदिः इति मध्यमपद-लोपी समासः । अन्तर्+वेदि+सि† । ११ सूत्रेण रेफस्य लोपे, ४ सूत्रेण तकारस्था-

†पाणिनीयव्याकरणे—सु औ जस्, अम औट शस, टा भ्याम् भिस, ङे भ्याम भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस् ओस्

कारस्य आकारे, १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपे, ५०८ सूत्रेण इकारस्य दीर्घे ईकारे, अनुबन्धत्वात् १।१।३७। †सूत्रेण सेरिकारस्य लोपे, ११ सूत्रेण सकारस्य लोपे, **अन्तावेई** इति निष्पन्नम् । **सप्तविंशतिः।** सप्ताधिका विंशतिः सप्तविंशतिः । सप्तविंशति+सि । ३४८ सूत्रेण पकारस्य लोपे, ३६० सूत्रेण शेषस्य तकारस्य द्वित्वे, प्रस्तुत-सूत्रेण तकारस्थ-अकारस्य आकारे, ११ सू० सप्तन्-शब्दस्य नकारस्य लोपे, २८ सू० अनुस्वारस्य लोपे, ९२ सू० तिशब्देन सह इकारस्य ईकारादेशे, २६० सू० शकारस्य सकारे, हैमशब्दानुशासनस्य २।४।१८। सू० आपि प्रत्यये कृते सत्तावीसा+सि, इति जाते, सेर्लोपे **सत्तावीसा** इति सिद्धम् । **क्वचिन्नेति** । बहुलाधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले ह्रस्व-स्वरस्य दीर्घो न भवति । यथा—**युवतिजनः** । युवतिश्चासौ जनः, युवतिजनः । युवति-जन+सि । २४५ सूत्रेण यकारस्य जकारे, १७७ सूत्रेण तकारस्य जकारस्य च लोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४६१ सू० सेः स्थाने डो इत्यादेशे, २।१।११४।‡ सू० अन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्झीनं परेण संयोज्यम् । ततः-**जुवइ-अणो** इति सिद्धम् । **क्वचिद् विकल्पेति** । बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पेन ह्रस्वस्य दीर्घो भवति । यथा **वारिमती** । वारि अस्यामस्तीति वारिमती । वारिमती+सि । ४ सू० इकारस्य वैकल्पिके ईकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्लोपे—**वारिमई,-वारीमई** इति जातम् । **भुजयन्त्रम्** । भुजौ यन्त्रमिवेति । भुजयन्त्र+सि । १७७ सू० जकारस्य लोपे, ४सू० अकारस्य विकल्पेन दीर्घे, ३५०सू० रेफस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३सू० मकारस्यानुस्वारे **भुआयतं,** दीर्घाभाव **भुअयंतं** इति सिद्धम् । **पतिगृहम्** । पत्युः गृहं पतिगृहम् । पतिगृह+सि । १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपे, ४ सूत्रेण इकारस्य वैकल्पिके दीर्घे, ४१५ सूत्रेण गृहशब्दस्य स्थाने 'घर' इत्यादेशे, १८७ सूत्रेण घकारस्य हकारे, ५१४ सूत्रेण सेर्मकारे, २३ सूत्रेण मकारस्यनुस्वारे **पई-हरं** दीर्घाभावे **पइहरं** इति सिद्धम् । **वेणुवनम्** । वेणूनां वनम् वेणुवनम् । वेणुवन +सि । २०३ सू० विकल्पेन णकारस्य लकारे, ५ सू० उकारस्य विकल्पेन दीर्घे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे कृते, वेलूवणं, वेलुवणं । लकाराभावे-**वेणूवणं, वेणुवनं** इति भवति । **दीर्घेति** । यस्य शब्दस्य दीर्घः स्वरः, ह्रस्वो जातः, तस्य उदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः । **नितम्बशिलास्खलित-वीचिमालस्य** । *नितम्बानां शिला नितम्बशिला, ताभ्यः स्खलिता वीचि-माला (वीचीनां माला) यस्य तस्य नितम्बशिला-स्खलित-वीचिमालस्य । नितम्ब-शिलास्खलित-वीचि-माला+ङस् । १७७ सू० तकारद्वयस्य, चकारस्य च लोपे, २६० सूत्रेण शकारस्य सकारे, ४ सू० शिलायाः आकारस्य अकारे, ३४८ सू० संयुक्त-सकारस्य लोपे, ४६६ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे-**निअंबसिलखलिअवीइमालस्स** इति जातम् । **बहुलाधिकाराद्** क्वचिद् विकल्पेन दीघस्य ह्रस्वो भवति । यथा—**यमुनातटम्** । यमुनायाः तटं यमुनातटम् । यमुनातट+सि २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७८ सू० मकारस्य लोपे, तस्य स्थाने चानुनासिके, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४ सू० आकारस्य वैकल्पिके अकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, १९५ सू०

आम्, ङि ओस् सुप् इति सुबादयः । तिप् तस् झि, सिप् थस् थ, मिप् वस् मस् । त, आतां झ, थास् आथां ध्वम्, इड् वहि महिङ्, इति तिङादयः प्रत्ययाः सन्ति । परं हैमशब्दानुशासने—सि औ जस्, अम् औट् शस्, टा भ्यां भिस्, ङे भ्यां भ्यस्, ङसि भ्यां भ्यस्, ङस् ओस् आम्, ङि ओस् सुप् इति सिबादयः । तिव् तस् अन्ति, सिव् थस् थ, मिव वस् मस् । ते आते अन्ते, से आथे ध्वे, ए वहे महे इत्यादयः तिबादयः प्रत्ययाः उपलभ्यन्ते । अत्र बालमनोरमा-टीकायां प्रायः हैमशब्दानुशासनीय-प्रत्ययाः प्रयुक्ताः सन्ति ।

†अप्रयोगीत् ।।१।१।३७। इह शास्त्रे उपदिश्यमानो वर्णस्तत्समुदायो वा प्रयोगेऽदृश्यमान इत् स्यात । एधते । यजते । चित्रीयते ।—इति हैमशब्दानुशासने ।

‡डित्यन्त्यस्वरादेः ।२।१।११४। स्वराणां योऽन्त्यस्वरः तदादेः शब्दस्य डिति परे लुक् स्यात् ।

**पर्वतीयमध्यभागानामित्यर्थः ।*

टकारस्य डकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **जउँणयडं**, ह्रस्वाभावे तु **जउँणायडं** इति सिद्धम्। **नदी-स्रोतः**। नद्याः स्रोतः, नदीस्रोतः। नदीस्रोतस्+सि, ४ सू० ईकारस्य विकल्पेन ह्रस्वे, १७० सू० दकारस्य लोपे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३६६ सूत्रेण तकारस्य द्वित्वे, ११ सू० सकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **नइ-सोत्तं, नई-सोत्तं**, इति सिद्धम्। **गौरीगृहं**। गौर्याः गृहं गौरीगृम्। गौरीगृह+सि। १५६ सूत्रेण औकारस्य ओकारे, ४ सू० ईकारस्य विकल्पेन ह्रस्वे, ४१५ सू० गृहस्य घरादेशे, १८७ सू० घकारस्य हकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **गोरिहरं**, ह्रस्वाभावे तु **गोरीहरं**, इति सिद्धम्। **वधूमुखम्**। वध्वाः मुखं वधूमुखम्। वधूमुख+सि। १८७ सू० धकास्य खकारस्य च हकारे, ४ सू० विकल्पेन ह्रस्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **वहुमुहं**, ह्रस्वाभावे—**वहूमुहं** इति सिद्धम्।

❀ आत्मगुण-प्रकाशिका-हिन्दी टीका ❀

महावीर भगवान का, पावन सुखमय नाम। शुद्ध हृदय से जो जपे, पाता है शिवधाम।१।
वीर नाम की शरण से, बेडा पल में पार। दुःख, क्लेश सब नष्ट हों, होवे जय-जयकार।२।
दया-सरोवर जितमदन, शान्तिसुधा-भण्डार। धर्मदिवाकर संयमी, महिमा अपरम्पार।३।
गुरुवर आत्माराम जी, क्षमा, दया की खान। चमत्कारमय जीवनी, अनुपम आगम-ज्ञान।४।
सदाचार्य गुरुदेव का, धर कर मन में ध्यान। हिन्दी-टीका लिख रहा, सरल, सुगम मुनि ज्ञान।५।

१—'अथ' शब्द के—१—आनन्तर्य और २—अधिकार ये दो अर्थ होते हैं। आनन्तर्य का अर्थ है—अन्तररहित, इसके पश्चात्। उत्तरोत्तर सूत्रों में पीछे के सूत्रों की अनुवृत्ति ग्रहण करना अधिकार कहलाता है। प्रकृति मूल का नाम है। हैमशब्दानुशासन व्याकरण के आठ अध्याय हैं, पहले सात अध्यायों में संस्कृत-भाषा के नियमोपनियमों का वर्णन किया गया है, और आठवें अध्याय में प्राकृत भाषा का विवेचन है। प्रस्तुत अष्टमाध्याय में प्राकृत शब्दों की सिद्धि संस्कृत शब्दों को मूल मान कर की गई है, अतः यहां संस्कृत भाषा को प्राकृत भाषा की प्रकृति (मूल) स्वीकार किया गया है।

प्राकृत—भाषा में संस्कृत-तुल्य शब्दों का भी ग्रहण है और संस्कृत-शब्दों को भी प्राकृत-भाषा के नियमों से प्राकृत-भाषा का रूप दिया गया है। इसी कारण संस्कृत-व्याकरण के अनन्तर प्राकृत-व्याकरण का निर्माण किया गया है। हैमशब्दानुशासन के सप्ताध्यायों में केवल संस्कृत भाषा तथा अष्टमाध्याय में केवल प्राकृत-भाषा का वर्णन होने से संस्कृत भाषा को प्राकृत भाषा की योनि—उत्पत्ति-स्थान स्वीकार किया है। परिणाम-स्वरूप संस्कृत के १. **सिद्ध** और २. **साध्यमान** दोनों प्रकार के शब्दों पर प्राकृत-भाषा के नियम लागू किये जाते हैं। जिन शब्दों में प्रकृति, प्रत्यय आदि की विभिन्नता नहीं दिखाई गई वे सिद्ध कहलाते हैं। **धर्मः, जिनः, पठति, वदति** आदि सुबन्त और तिङन्त शब्द सिद्ध माने गए हैं। इसके विपरीत, जो शब्द प्रकृति और प्रत्यय आदि दिखा कर सिद्ध किए जाते हैं, वे साध्यमान शब्द कहे गए हैं। **पठ्+अ+ति, जिन+सिव्** आदि शब्द असिद्ध या अनिष्पन्न होने से साध्यमान माने जाते हैं। संस्कृत भाषा के इन सिद्ध और साध्यमान शब्दों को प्राकृत-भाषा का रूप देने के लिये प्राकृत-व्याकरण का निर्माण किया गया है। यह देश्य (तत्तद् देशों में पाई जाने वाली) प्राकृत-भाषा का व्याकरण नहीं है।

संस्कृत-सम जिन शब्दों का प्राकृत-भाषा में ग्रहण किया जाता है उनकी साधनिका तो संस्कृत-व्याकरण के द्वारा सम्पन्न हो जाती है किन्तु संस्कृत रूपों से भिन्न रूपवाले जो शब्द हैं उन की सिद्धि प्राकृत-व्याकरण द्वारा की जाती है। शब्दों का वर्गीकरण करें तो इन्हें १. तत्सम, २.

तद्भव, और ३ देशज, इन तीन भागों में बांट सकते हैं। जो संस्कृत-भाषा से ज्यों-के-त्यों प्राकृत भाषा में ले लिए गए हैं—वे शब्द तत्सम माने जाते हैं। जैसे—देवाय इत्यादि। तद्भव वे शब्द कहलाते हैं जो संस्कृत से बदल कर प्राकृत में आये हैं। जैसे-आर्यः=अज्जो, धर्मः=धम्मो। जो न तत्सम हैं और न तद्भव हैं, वे देशज हैं, केवल देश-विदेश में बोले जाते हैं, वस्तु के स्वरूप के आधार पर या प्राचीन कालसे प्रचलित प्रयोग के आधार पर प्राकृत-भाषा में आगये हैं, वे देश्य या देशज कहे गए हैं।

प्राकृत भाषा में प्रकृति, प्रत्यय, लिंग, कारक, समास और संज्ञा आदि व्याकरण सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य बातें संस्कृत व्याकरण की भांति समझनी चाहियें। नाम, धातु, अव्यय, उपसर्ग आदि को प्रकृति, सि औ जस् आदि तथा तिव् तस् अन्ति आदि को प्रत्यय, पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग को लिंग, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण को कारक, अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व, कर्मधारय, द्विगु और बहुव्रीहि को समास तथा स्वर, व्यंजन, लघु, गुरु आदि को संज्ञा कहते हैं।

'लोकात्' यह हैमशब्दानुशासन व्याकरण के प्रथमाध्याय के प्रथमपाद का तीसरा सूत्र है। इसकी यहां अनुवृत्ति ग्रहण की जाती है। इसलिये ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ऐ, औ, ङ्, ञ, श, ष, विसर्ग और प्लुत को छोड़ कर शेष वर्णसमाम्नाय (वर्ण-समुदाय) लोक से (लौकिक वर्ण-व्यवस्था के अनुसार) जान लेना चाहिए, अर्थात् शाकटायन, पाणिनीय आदि व्याकरणों के अनुसार वर्णों का ग्रहण किया जाता है। अपने-अपने वर्गवाले अक्षरों से संयुक्त 'ङ' और 'ञ' ये दोनों वर्ण भी प्राकृत भाषा में होते हैं। कई एक वैयाकरणों के मत में 'ऐ' और 'औ ये दोनों वर्ण भी प्राकृत-भाषा में पाये जाते हैं। जैसे-कि **कैतवम्** कैअवं (धूर्त)। **सौन्दर्यम्** सौंअरियं (सुन्दरता)। **कौरवाः**—कौरवा (कुरुदेश के वासी) इन तीन शब्दों में 'ऐ' और 'औ' ये दोनों वर्ण स्पष्ट रूप से उपलब्ध हो रहे हैं। अत, कई एक आचार्यो का कहना है कि प्राकृत-भाषा में 'ऐ' और 'औ' ये वर्ण भी होते हैं। १६९ सूत्र के अनुसार भी प्राकृत-भाषा में 'अयि' इस अव्ययपद के स्थान में आदेशरूप 'ऐ' यह वर्ण पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्राकृत-भाषा में स्वर-रहित व्यञ्जन, द्विवचन और चतुर्थी विभक्ति का बहुबचन नहीं होता।

२. **'बहुलम्'** यह अधिकार सूत्र समझना चाहिए। प्रस्तुत व्याकरण-शास्त्र की समाप्ति तक "बहुल" का अधिकार चलता है। उत्तरोत्तर सूत्रों में अनुवृत्ति का ग्रहण करना अधिकार कहलाता है। इस अधिकार सूत्र के कारण ही १. कहीं पर सूत्र की प्रवृत्ति होती है—सूत्र अपना कार्य करता है, २. कहीं पर सूत्र की अप्रवृत्ति होती है, सूत्र नहीं लगता है, ३. कहीं पर सूत्र की प्रवृत्ति विकल्प से होती है, विकल्प का अर्थ है—कहीं पर सूत्र अपना इष्ट कार्य करता है और कहीं पर नहीं करता। तथा ४, कहीं पर कुछ और ही हो जाता है अर्थात् जिस कार्य का निर्देश सूत्र ने नहीं किया, वह भी हो जाता है। उक्त चारों कार्य यथास्थान दिखलाए जाएंगे।

३. जो शब्द ऋषियों से सम्बन्धित हों उन्हें आर्ष कहते हैं। आर्ष–प्राकृत बहुल–स्वरूप होती है, अर्थात् आर्ष–प्राकृत में "बहुलम्" की अनुवृत्ति ग्रहण की जाती है। यह भी यथास्थान दिखलाएंगे। आर्ष–प्राकृत में सभी विधियां विकल्प से प्रयुक्त की जाती हैं।

अथ स्वर-विधि-प्रकरण

स्वर और व्यञ्जन इन भेदों से वर्ण दो प्रकार के होते हैं। जिन वर्णों के उच्चारण में किसी दूसरे वर्ण की सहायता अपेक्षित न हो, वे स्वर और जो वर्ण स्वरों की सहायता से न बोले जाते

हैं वे व्यञ्जन कहलाते हैं। स्वर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इन भेदों से तीन प्रकार के होते हैं। जिनके बोलने में कम से कम समय लगे और जिनकी एक मात्रा हो, वे ह्रस्व स्वर होते हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये ह्रस्व स्वर हैं; इन्हें मूलस्वर भी कहते हैं, इन्हीं से अन्य सब स्वरों का निर्माण होता है। जिनकी दो मात्राएं हों, तथा बोलने में ह्रस्व से अधिक समय लगे, वे स्वर दीर्घ स्वर कहे गए हैं। जैसे–आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, इन्हें सन्धि-स्वर भी कहते हैं। क्योंकि ये दो स्वरों को मिला कर बनाये जाते हैं। ह्रस्व की अपेक्षा जिस स्वर के बोलने में तिगुना समय लगे, उसे प्लुत स्वर कहा गया है। व्यञ्जन भी स्पर्श, अन्तःस्थ और ऊष्म भेदों से त्रिविध माने गए हैं। क से लेकर म तक सभी वर्ण स्पर्श, य, र, ल, व ये चार वर्ण अन्तःस्थ और श, ष, स, ह, ये चार ऊष्म वर्ण कहलाते हैं। क् और ष् के संयोग से क्ष, ज् और ञ् से ज्ञ तथा त् और र् से त्र ये अक्षर बन जाते हैं। प्रस्तुत में स्वरविधि का प्रकरण आरम्भ हो रहा है। स्वर-सम्बन्धी विधि–कार्य स्वरविधि होती है। स्वरविधि में, प्राकृत-भाषा में कौन स्वर कहां दीर्घ होता है, और कहां ह्रस्व ? इस सम्बंध में विचार किया गया है।

४. वृत्ति—समास (समास-प्राप्त शब्दों) में दीर्घ और ह्रस्व बहुलता से होते हैं। अर्थात् समास-युक्त शब्दों में स्थित स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व बहुलता से हो जाते हैं। ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ स्वर को प्राप्त होने वाले शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

१. **अन्तर्वेदिः**=अंतावेई (मध्य की वेदिका) यहां पर अंतर् पद में तकारस्थ ह्रस्व अकार को दीर्घ स्वर आकार किया गया है। २. **सप्तविंशतिः**=सत्तावीसा (सत्ताईस) यहां पर सप्तन् शब्द में नकार से पूर्व का ह्रस्व-स्वर दीर्घ हो गया है। बहुल-अधिकार के कारण कहीं ह्रस्व-स्वर को दीर्घ नहीं होता। जैसे—**युवति-जनः**–जुवइ अणो(जवान स्त्री-पुरुष) यहां पर ह्रस्व इकार को दीर्घ नहीं हुआ। कहीं पर ह्रस्व को विकल्प से दीर्घ हो जाता है। जैसे—१. **वारिमती**=वारीमई वारिमई (पानी वाली) २. **भुज-यन्त्रम्**=भुआ-यन्तं, भुअयन्तं (भुजरूपी यन्त्र)। ३. **पतिगृम्**=पई-हरं, पइ-हरं (पति का घर) ४. **वेणुवनम्**=वेलू-वणं, वेलु-वणं (बांसों का वन) इन शब्दों में इकार, अकार और उकार को विकल्प से दीर्घ स्वर किया गया है। कहीं पर दीर्घ को ह्रस्व हो जाता है। जैसे-**नितम्ब-शिला-स्खलित-वीचि-मालस्य=निअम्ब-सिल-खलिय-वीइ-मालस्स** (पर्वतीय मध्यभाग की शिलाओं से जिसकी लहरों की पंक्तियां निकली हैं उसके) यहां पर 'शिला' के आकार को अकार हो गया है। कहीं पर विकल्प से दीर्घ को ह्रस्व हो जाता है। जैसे—१. **यमुनातटम्**=जउँण-यडं, जउँणा-यडं (यमुना का किनारा) २. **नदीस्रोतः**=नइ-सोत्तं, नई-सोत्तं (नदी का झरना)। ३. **गौरी-गृहम्**=गोरि-हरं, गोरी-हरं (सुन्दर स्त्री का घर) ४. **वधूमुखम्**–बहुमुहं, वहूमुहं (पत्नी का मुख) इन शब्दों में दीर्घ स्वर को विकल्प से ह्रस्व किया गया है।

अथ सन्धि-विधिः

५. पदयोः सन्धिर्वा ८।१।५।

संस्कृतोक्तः सन्धिः सर्वः प्राकृते पदयोर्व्यवस्थित-विभाषया भवति। वासेसी, वास-इसी। विसमायवो, विसम-आयवो। दहीसरो, दहि-इसरो। साऊअयं, साउउअयं। पदयोरिति किम् ? पाओ। पई। वत्थाओ। मुद्धाइ, मुद्धाए। महइ, महए। बहुलाधिकारात् क्वचिद् एकपदेऽपि—काहिइ, काही। बिइओ, बीओ।

६. न युवर्णस्यास्वे ।८।१।६।

इवर्णस्य उवर्णस्य च अस्वे वर्णे परे सन्धिर्न भवति । न वेरिवग्गे वि अवयासो । वन्दामि अज्जवइरं ।

दणुइन्द-रुहिर-लित्तो सहइ उइंदो नहप्पहावलि-अरुणो ।
संझावहु-अवऊढो णववारिहरो व्व विज्जुला-पडिभिन्नो ॥१॥

युवर्णस्येति किम्-गूढोअर-तामरसाणुसारिणी भमरपन्ति व्व । अस्व इति किम्-पुहवीसो ।

७. एदोतोः स्वरे ।८।१।७।

एकार-ओकारयोः स्वरे परे सन्धिर्न भवति ।

बहुआइ नहुल्लिहणे आबन्धन्तीए कञ्चुअं अङ्गे ।
मयरद्धय-सर-धोरणि—धारा-छेअ व्व दीसन्ति ॥१॥
उवमासु अपज्जत्तेभ-कलभ-दन्तावहासमूरुजुअं ।
तं चेव मलिअ-बिसदण्ड-विरसालक्खिमो एण्हिं ॥२॥

अहो अच्छरिअं । एदोतोरिति किम् ?

अत्थालोअण-तरला इयर-कईणं भमन्ति बुद्धीओ ।
अथ च्चेअ निरारम्भमेन्ति हिअयं कइंदाणं ॥३॥

८. स्वरस्योद्वृत्ते ।८।१।८।

व्यञ्जन-संपृक्तः स्वरो व्यञ्जने लुप्ते योऽवशिष्यते स उद्वृत्त इहोच्यते । स्वरस्य उद्वृत्ते स्वरे परे सन्धिर्न भवति ।

विससिज्जन्त-महा- पसु-दंसण-संभम- परोप्परारूढा ।
गयणे च्चिअ गन्ध-उडिं कुणन्ति तुह कउलणारीओ ॥१॥

निसा-अरो, निसि-अरो । रयणी-अरो । मणुअत्तं । बहुलाधिकारात् क्वचिद्विकल्पः । कुम्भआरो, कुम्भारो । सु-उरिसो-सूरिसो । क्वचित्सन्धिरेव-सालाहणो । चक्काओ । अतएव प्रतिषेधात् समासेऽपि स्वरस्य संधौ भिन्नपदत्त्वम् ।

९. त्यादेः ।८।१।९।

तिवादीनां स्वरस्य स्वरे परे सन्धिर्न भवति । भवति इह । होइ इह ।

❀ अथ सन्धि-विधिः ❀

अथ आचार्यः सन्धिविधिमारभते । वर्णानां परस्परं सम्मेलनात्मको विधिः-कार्यं सन्धि-विधिः, तस्य आरंभो विधीयते । **व्यासर्षिः** । व्यासश्चासौ ऋषिः, व्यासर्षिः । व्यासऋषि+सि । ३४९ सूत्रेण यकारस्य लोपे, १२८ सू० ऋकारस्य इकारादेशे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ५०८ सू० इकारस्य ईकारे,

।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, ५ सू० 'व्यवस्थित-विभाषया सन्धौ-**वासेसी**, संध्यभावे **वास-इसी** इति सिद्धम्। **विषमातपः**। विषमश्चासौ आतपः, विषमातपः। विषम=आतप+सि। २६० सू० षकारस्य सकारे, ५ सू० व्यवस्थितविभाषया सन्धौ, १७७ सू० तकारस्य, लोपे, १८० सू० यकार-विशिष्टे अकारे, २३१ सूत्रेण पकारस्य वकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे ३।१।११४। सूत्रेण अन्त्यस्वरादेः लोपे, **विसमायवो**, संध्यभावे **विसम-आयवो** इति सिद्धम्। **दधीश्वरः**। दध्नः ईश्वरः, दधीश्वरः। दधि-ईश्वर+सि। १८७ सूत्रेण धकारस्य हकारे, व्यवस्थितविभाषया संधौ, ३५० सूत्रेण वकार-लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, सन्धौ-**दहीसरो** संध्यभावे तु **दहि-ईसरो** इति सिद्धम्। **स्वादूकं**। स्वादु च तदुदकं स्वादूदकम्। स्वादु-उदक+सि। ३५० सू० वकार-लोपे, १७७ सू० दकारद्वयस्य ककारस्य च लोपे, १८० सू० यकार-विशिष्टे अकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, व्यवस्थितविभाषया सन्धौ **साऊअयं** संध्यभावे तु **साउ-उअयं**, इति सिद्धम्। **पदयोरिति**। सन्धिः पद-द्वये भवतीति कथनस्य किं कारणमिति प्रश्नः। यत्र पद-द्वयाभावस्तत्र सन्धिर्न भवतीत्युत्तरम्। अनेनैव कारणेन एकस्मिन् पदे सन्धिर्न भवति। यथा—**पादः**। पाद+सि। १७७ सू० दकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **'पाओ'** इति सिद्धम्। पदद्वयस्य अभावाद् अत्र ५ सू० सन्धिर्नाभूत्। **पतिः**। पति+सि। १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपे, ५०८ सूत्रेण इकारस्य दीर्घो ।१।१।३७। सूत्रेण सेरिकारस्य लोपे, ११ सूत्रेण सकारस्य लोपे, **पई** इति सिद्धम्। अत्रापि एकपदत्वात् सन्धिर्न जातः। **वृक्षात्**। वृक्ष+ङसि। इत्यत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, २७४ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू०छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ४६७ सू०ङसेः दो इत्यादेशे, ५०१ सू०पूर्वाकारस्य दीर्घे, १७७ सू० दकारस्य लोपे-**वच्छाओ** इति सिद्धम्। एक-पदत्वादत्र ५ सू० सन्धिर्नभवत्। **मुग्धया**। मुग्धा+टा। ३४८ सू०गकारस्य लोपे, ३६० सू०धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू०पूर्व-धकारस्य दकारे, ५१८ सू० 'टा' इत्यस्य स्थाने इकारे, एकारे च जाते **मुद्धाइ, मुद्धाए** इति सिद्धम्। अत्र एक-पदत्वात् ५ सू० सन्धिर्न जातः। **महति**। मह पूजायाम्। मह्+तिव्। ६१०सूत्रेण धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सूत्रेण तिवः स्थाने इच् (इ), एच् (ए) इत्यादेशयोः जातयोः **महइ, महए** इति सिद्धम्। **पद-द्वयाभावादत्र** ५ सूत्रेण सन्धिर्न जातः। **अथवा कांक्ष्-धातोरपि** 'मह' इत्यादेशे कृते सति **महइ, महए** इति रूपद्वयं सिध्यति। अत्र ८६३ सूत्रेण कांक्षधातोः स्थाने महादेशो जातः। **बहुलाधिकारादिति**। 'बहुलम्' इतिपदं सर्वत्राधिक्रियते, एतत् पूर्वमुक्तम्, अतोऽत्रापि बहुलकस्य अधिकारात् एकपदेऽपि सन्धिर्जायते। यथा—**करिष्यति**। कृ करणे। कृ+तिव्। ८८५ सूत्रेण ऋकारस्य आकारादेशे, ६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ 'हि' इति प्रयुक्ते,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे 'काहिइ' इति स्थितौ बहुलाधिकाराद् एकपदेऽपि ५ सू० विकल्पेन सन्धौ-**काही**। संध्यभावे **काहिइ** इति सिद्धम्। **द्वितीयः**। द्वितीय+सि। ३४८ सू० दकारस्य लोपे, १११८ सू० वर्णव्यत्ययाद् वकारस्य बकारे, १७७ सू० तकारस्य यकारस्य च लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **बिइओ** इति सिद्धम्। बहुलाधिकारादत्र ५ सू० एकपदेऽपि विकल्पेन सन्धौ **बीओ** इत्यपि भवति।

६—**न युवर्णस्येति**। अस्वे स्वस्माद् भिन्ने, अकारादौ इति भावः। **न वेरिवग्गे** इति। न वैरिवर्गेऽपि अवकाशः। **न**। अव्ययपदमिदम्। संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **वैरिवर्गे**। वैरिणां वर्गः, वैरिवर्गः। वैरिवर्ग+ङि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, ५०० सू० ङेः स्थाने डे इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वेरिवग्गे** इति सिद्धम्। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४१

१—क्वचिद् भवति, इत्यंश एव प्रवर्तते, क्वचित्तु न भवति, इत्यंश एव, क्वचिदुभयमित्येवं लक्ष्यानुसारेण व्यवस्थया प्रवृत्ता विभाषा (विकल्पः) व्यवस्थित-विभाषा।

सू० अपेरकारस्य लोपे, २३१ सू०पकारस्य वकारे **वि** इति सिद्धम् । **अवकाशः** । अवकाश+सि । १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे २।१।११४। सू० अन्त्यस्वरादेः लोपे **अवयासो** इति सिद्धम् । **वि अवयासो** । इत्यत्र ५ सू० इकारस्य संधौ प्राप्ते ६ सू० निषिध्यते । वन्दामि आर्यवज्रम् । **वन्दामि** । वदि अभिवादन-स्तुत्योः । १।४।७०। सू० वकारस्थाकारात् परस्य नकारस्यागमः, ततः वन्द्+'ए' इति जाते, ६१० सूत्रेण धातोरन्तेऽकारागमे, ६३० सूत्रेण 'ए' इत्यस्य स्थाने 'मि' इत्यादेशे, ६४३ सू० अकारस्य आकारे **वन्दामि** इति सिद्धम् । **आर्यवज्रम्** । आर्य—वज्र+अम् । ८४ सू०संयोगे परे ह्रस्वे, २६५ सू० 'र्य' इत्यस्य जकारे, ३६० सूत्रेण जकारस्य द्वित्वे, ३७६ सू० 'वज्र' इत्यस्य रेफात् पूर्वमिकारागमे, १७७ सू० जकारस्य लोपे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **'अज्जवइरं'** इति सिद्धम् ।

दनुजेन्द्र-रुधिरलिप्तः राजते उपेन्द्रो नखप्रभावल्यरुणः ।
सन्ध्यावध्ववगूढो नव-वारि-धर इव विद्युत्-प्रतिभिन्नः ॥१॥

भावार्थः—श्री-कृष्णस्य राक्षसराजहननसमये समुद्भासितां प्रभां वर्णयत्याचार्यः । दनुजानां-दैत्यानाम्, इन्द्रः—स्वामी, दनुजेन्द्रः, तस्य रुधिरेण-शोणितेन लिप्तः, दनुजेन्द्र-रुधिर-लिप्तः । उपेन्द्रः-विष्णुः कृष्ण इत्यर्थः । नखानां कर-रुहाणां प्रभा-कान्तिः नख-प्रभा, तासामावलयः पंक्तयः, नखप्रभावलयः ताभिः अरुणः-रक्तवर्णः नखप्रभावलि-अरुणः । सन्ध्यैव वधूः, सन्ध्यावधूः, तया अवगूढः, आलिङ्गितः आश्लिष्टो वा संध्या-वधू-अवगूढः । विद्युता प्रतिभिन्नः-संमिश्रितः विद्युत्प्रतिभिन्नः । नवश्चासौ वारिधरः-मेघः, नववारिधर इव राजते-शोभते । कृत-दनुजेन्द्रसंहारः कृष्णः नवजलधर इव भातीत्यर्थः ।

दनुजेन्द्ररुधिर-लिप्तः । दनुजेन्द्ररुधिरलिप्त+सि । इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १७७ सू० जकारस्य लोपे—दणु+इन्द्र इत्यत्र सन्धि-प्राप्तौ, परन्तु ६ सू० तन्निषेधे, ३५० सू० रेफ-लोपे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ३४८ सू० पकारस्य लोपे, ३६०सू० तकारस्य द्वित्वे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे २।१।११४। सू० अन्त्यस्वरादेः लोपे-**दण-इन्द-रुहिर-लित्तो** इति सिद्धम् । **राजते** । राजृ दीप्तौ । राज्+ते । ७७१ सूत्रेण राजधातोः स्थाने सह इत्यादेशे, ६२८ सूत्रेण ते इत्यस्य स्थाने इच् (इ) इत्यादेशे, **सहइ** इति सिद्धम् । **उपेन्द्रः** । उपेन्द्र+सि । १७७ सू० पकारस्य लोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **उइन्दो** इति सिद्धम् । **सहइ+उइन्दो** इत्यत्र सन्धि-प्राप्तौ ६ सू० तन्निषेधो जातः । **नखप्रभावलि-अरुणः** । नखप्रभावलि-अरुण+सि । इत्यत्र १८७ सू० खकारस्य हकारे, रेफस्य लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, १८७ सू० भकास्य हकारे, नहप्पहा-वलि-अरुण+सि, इति जाते, इत्यत्र सन्धि-प्राप्तौ ६ सू० तन्निषेधे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**नहप्पहावलि-अरुणो** इति सिद्धम् । **संध्यावधू-अवगूढः** । संध्यावधू-अवगूढ+सि । २६७ सू० ध्यस्य झकारे, ३६० सूत्रेण प्राप्तस्य द्वित्वस्य ३६३ सू० निषेधे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ४ सू० ऊकारस्य ह्रस्वे, संझा-वहु-अवगूढ+सि इति स्थिते । ६ सूत्रेण सन्धेरभावे, १७७ सूत्रेण गकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे, **संझा-वहु-अवऊढो** इति सिद्धम् । **नव-वारि-धरः** । नववारिधर+सि । २२६ सू० नकारस्य वैकल्पिके णकारे, धकारस्य हकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **णव-वारि-हरो** इति सिद्धम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् । ४५३ सू० इवार्थे व्व इत्यस्य प्रयोगे **व्व** इति सिद्धम् । **विद्युत्प्रतिभिन्नः** । विद्युत्-प्रतिभिन्न+सि । २६५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ११ सू० तकारस्य लोपे, ४४४ सू० स्वार्थे ल प्रत्यये 'विज्जुल' इति जाते ।२।४।१८। सूत्रेण आप्-प्रत्यये, विज्जुला-प्रतिभिन्न+सि इति स्थिते, रेफ-लोपे, २०६ सू०तकारस्य डकारे, सेर्डोः,डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **विज्जुला-पडिभिन्नो** इति सिद्धम् ।

युवर्णस्येति। सूत्रे युवर्णस्य ग्रहणं किमर्थम् ? इति प्रश्नः।ततो वृत्तिकारः उत्तरयति। **गूढोदर-तामरसानुसारिणी भ्रमरपंक्तिरिव**। गूढम् अन्तर्हितम्, उदरं मध्यभागो यस्य तत् गूढोदरं, गूढोदरं च तत् तामरसं-रक्तकमलं, गूढोदर-तामरसं, तदनुसरति इत्येवं-शीला या सा गुढोदरतामरसानुसारिणी। भ्रमराणां द्विरेफाणां पंक्तिः-माला भ्रमरपंक्तिरिव। **गूढोदरतामरसानुसारिणी**। गूढ+उदर-तामरसानुसारिणी +सि। इत्यत्र ६ सूत्रेण सन्धिनिषेधाभावे, सन्धौ च गूढोदर-तामरसानुसारिणी+सि इति स्थिते १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपे, २२८ सूत्रेण नकारस्य णकारे, १।१।३७। सूत्रेण सेरिकारस्य लोपे, ११ सू०सकारस्य लोपे। **गूढोअर-तामरसाणुसारिणी** इति सिद्धम्। गूढ+उदर इत्यत्र गूढ-पदे इवर्णस्य उवर्णस्य चाभावात् सन्धिनिषेधो नाभूत्। एतदर्थमेव **'युवर्णस्य'** एतस्य पदस्य ग्रहणं कृतम्। **भ्रमरपंक्तिः**। भ्रमराणां पंक्तिः। भ्रमर-पंक्ति+सि। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३४८ सू०, ककारस्य लोपे, ३६३ सू० द्वित्वनिषेधे, ५०८ सू० दीर्घे, सेर्लोपे, ३० सू० अनुस्वारस्य विकल्पेन नकारे, **भमर-पन्ती**, अनुस्वारस्य नकाराभावे **भमरपंती** इति सिद्धम्। **इव**। अव्ययपदमिदम्। ४५३ सू० इवार्थे 'व्व' इति प्रयुक्तम्। ततः-भमरपन्ती व्व इति स्थिते, ८४ सूत्रेण संयोगे परे ह्रस्वे जाते भमर-पन्ति **व्व** इति सिद्धम्। **अस्वे** इति। प्रस्तुत-सूत्रे **'अस्वे'** इत्यस्य ग्रहणं किम्प्रयोजनकमिति पृच्छा, तदुत्तरमिदम्। **पृथिवीशः**। पृथिव्याः ईशः। पृथिवीशः। पृथिवी+ईश+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारे, ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादे-र्लोपे पुहवी+ईसो इति स्थिते। इत्यत्र **'ईसो'** इति पदे **'अस्व'**-वर्ण-परत्वाभावात् ६ सूत्रेण सन्धि-निषेधो नाभूत्ततः सन्धौ **पुहवीसो** इति सिद्धम्।

७— **वधुकायाः नखोल्लेखने आबध्नत्या कञ्चुकमङ्गे।**
मकर-ध्वज-शर-धोरणि-धारा-छेदा इव दृश्यन्ते॥१॥

कश्चित् कांचन वधूं वर्णयतीति। कञ्चुकम् आबध्नत्याः वधूकायाः, नखोल्लेखने, नखैः उल्लेखनं यस्मिन् तस्मिन्नङ्गे शरीरे, भर्तृ-नख-क्षते शरीर इत्यर्थः। मकरध्वजः-कामदेवः, तस्य शराः-बाणाः, मकरध्वज-शराः, तेषां धोरणिः-पंक्तिः-धाराः, तासां छेदाः इव दृश्यन्ते प्रतीयन्ते।

वधुकायाः। वधुका+ङस्। १८७ सूत्रेण धकारस्य हकारे, १७७ सूत्रेण ककारस्य लोपे, ५१८ सूत्रेण ङसः स्थाने इकारे **वहुआइ** इति सिद्धम्। **नखोल्लेखने**। नखोल्लेखन+ङि। १८७ सूत्रेण खकारस्य हकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे (ओकारस्य उकारे), २२८ सू० नकारस्य णकारे ५०० सू० ङेः स्थाने डे इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे। **नहुल्लिहणे** इति सिद्धम्। **आबध्नत्याः**। आबध्नती+ङस्। आङ्-(आ) पूर्वकः बन्ध-धातुः आबन्धने। आबन्ध+शतृ। ६१० सूत्रेण धातोरन्तेऽकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने 'न्त' इत्यादेशे, ५२१ सूत्रेण स्त्रीत्वविवक्षायां ङी (ई) प्रत्यये, आबन्धन्त+ई इति स्थिते, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, ङस्-प्रत्यये जाते, ५१८ सू० ङसः स्थाने 'ए' इत्यादेशे **'आबन्धन्तीए'** इति सिद्धम्। **नहुल्लिहणे+ आबन्धतीए,** इत्यत्र सन्धि-प्राप्तौ ७ सूत्रेण निषेधो विहितः। **कञ्चुकम्**। कञ्चुक+अम्। १७७ सू० ककारस्य लोपे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **'कञ्चुअं'** इति सिद्धम्। **अङ्गे**। अङ्ग+ङि। ५०० सू० ङेः स्थाने 'डे' इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **'अङ्गे'** इति निष्पन्नम्। **मकर-ध्वज-शर-धोरणि-धारा-छेदाः**। मकरध्वज-शर-धोरणि-धारा-छेद+जस्। १७७ सूत्रेण ककारस्य लोपे, १८०सू० यकारविशिष्टे अकारे, ३५० सू० वकारस्य लोपे, ३६०सू० धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १७७ सू० जकारलोपे, यकारविशिष्टे अकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, ४६३ सू० जसो लोपे, ५०१ सू० अकारदीर्घे, **मयरद्धय-सर-धोरणि-**

धारा-छेश्रा इति सिद्धम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् । ४५३ सूत्रेण इवार्थे 'व्व' इति प्रयुक्ते मयर-द्धय-सर-धोरणि-धारा-छेश्रा+व्व, इति स्थिते, ८४सू० संयोगे परे ह्रस्वे **मयर-द्धय-सर-धोरणि-धारा-छेश्र व्व** इति निष्पन्नम् । **दृश्यन्ते** । दृश् प्रेक्षणे । दृश्+क्य+अन्ते । ६५० सू०क्यस्य स्थाने डीस (ईस) इत्यादेशे । डिति परे [1]अन्त्यस्वरादेः ऋश् इत्यस्य लोपे, दीस+अन्ते, इति जाते, ६३१ सू० अन्ते इत्यस्य 'न्ति' इत्यादेशे **दीसन्ति** इति सिद्धम् ।

उपमासु अपर्याप्तेभ-कलभ-दन्तावभासमूरुयुगम् ।
तच्चैव मृदित-बिस-दण्ड-विरसमालक्षयामह इदानीम् ॥२॥

कश्चिदाचार्यः कांचित् नायिकां वर्णयति भङ्गयानया । उपमासु अपर्याप्तेभ-कलभ-दन्तावभासम् , उपमाया अपर्याप्तौ अपूर्णौ [अयोग्यौ वा] यौ इभ-कलभ-दन्तौ, इभस्य दन्तिनः, कलभः-शिशुः, इभकलभः, तस्य दन्तौ इभ-कलभ-दन्तौ, अपर्याप्तौ इभकलभ-दन्तौ इति अपर्याप्तेभ-कलभ-दन्तौ । ययोरुपमा दातु नो शक्या ईदृशेभ-कलभ-दन्तौ, तयोरवभासः [कान्तिः, दीप्तिर्वा] इव अवभासो यस्य तत् अपर्याप्त-इभ-कलभ-दन्तावभासमीदृश-मूरुयुगम्, उर्वोः युगं, युगलम्, ऊरुयुगम्, अपर्याप्तेभ-कलभ-दन्तावभासमूरुयुगम् । मृदितं-मर्दितं यद् बिस-दण्डं-कमलनालिका तद् मृदित-बिस-दण्डम्, तत्सदृशं विरसं-हतप्रभं, मृदित-बिस-दण्ड-विरसम्, इदानीम् साम्प्रतं तमूरुयुगमेतादृशम् आलक्षयामहे पश्यामः ।

उपमासु । उपमा+सुप् (सु), इत्यत्र, २३१ सूत्रेण पकारस्य वकारे **उवमासु** इति सिद्धम् । **अपर्याप्तेभ-कलभ-दन्तावभासम्** । अपर्याप्तेभ-कलभ-दन्तावभास+अम् । २६५ सू०र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ३४६ सू० संयुक्त-पकार-लोपे, ३६०सू० तकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १८७ सू० अवभास-भकारस्य हकारे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २४ सूत्रेण स्वरे परे लुगपवादो मकारस्य मकार एव ततः—**अपज्जत्तेभ-कलभ-दन्तावहासम्** इति सिद्धम् । **ऊरुयुगम्** । ऊरुयुग+अम् । इत्यत्र अन्तर्वतिनीं विभक्तिमाश्रित्य युगस्य पदत्वात्, यकारस्य पदादित्वम् । तेन—२४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू०गकारस्य लोपे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **ऊरुजुअं** इतिसिद्धम् । **अपज्जत्तेभ-कलभ-दन्तावहासम्**+**ऊरुजुअं** इत्यत्र अज्भीने परेण संयोज्ये **अपज्जत्तेभ-कलभ-दन्ता-वहास-मूरुजुअं**, इति भवति । **तद्** । तद्+अम् । ११ सू० दकारस्य लोपे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, मकारस्यानुस्वारे **तं** इति सिद्धम् । **चैव** । अव्ययपदमिदम् । १४८ सू० ऐकारस्य एकारे **चेव** इति भवति । **मृदित-बिस-दण्ड-विरसम्** । मृदित-बिस-दण्ड-विरस+अम् । मृदित=मृद् मर्दने, मृद्+क्त(त) ७६७ सूत्रेण मृदः स्थाने 'मल' इत्यादेशे, ६४५ सू०अकारस्य इकारे, १७७सू० तकारस्य लोपे-मलिअ-बिस-दण्ड-विरस+अम्, इत्यवस्थायां ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, स्वरस्य परवर्तित्वात् २४ सू० मकारस्य मकार एव । ततः= **मलिअ-बिस-दण्ड-विरसम्**, इति सिद्धम् । **आलक्षयामहे** । आङ्-(आ) उपसर्ग-पूर्वकः लक्ष्धातुः दर्शने । आलक्ष्+णिग् (णिच्)+महे । ६१० सूत्रेण धातोरन्तेऽकारागमे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य ककारे, ६३३ सू० 'महे' इत्यस्य स्थाने 'मो' इत्यादेशे । ६४४ सू० अकारस्य इकारे **आलक्खिमो** इति सिद्धम् । **मलिअ-बिस-दण्ड-विरसम्**+**आलक्खिमो**, इत्यत्र अज्भीने परेण संयोज्ये-**मलिअ-बिस-दण्ड-विरसमलक्खिमो** इति भवति । **इदानीम्** । अव्ययपदमिदम् । ४०५ सू० इदानीमः स्थाने **'एण्हिं'** इत्यादेशे **'एण्हिं'** इति सिद्धम् । **आलक्खिमो एण्हिं**, इत्यत्र सन्धि-प्राप्तौ ७ सू०निषेधो जातः । **अहो आश्चर्यम्** । अत्र **अहो अच्छरिअं**, इति जाते, अकारस्य पूर्व-रूपे प्राप्ते ७

१—अन्त्यः स्वरः आदिर्यस्य स अन्त्यस्वरादिः, तस्येति ।

सूत्रेण तन्निषेधो विहितः। अहो इति आश्चर्यसूचकमव्ययपदम्। संस्कृत-सममेव प्राकृत-भाषायां बोध्यम्। **आश्चर्यम्**। आश्चर्य+सि। ८४ सू०संयोगे परे ह्रस्वे, २९२ सू० श्चस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ३३८ सू० र्यस्य स्थाने रिअ इत्यादेशे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे '**अच्छ-रिअं**' इति निष्पन्नम्। प्रकृतसूत्रे '**एदोतोः**' इतिपदस्य ग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नः। तदुत्तरयति वृत्तिकारः—

अर्थालोचन-तरला इतरकवीनां भ्रमन्ति बुद्धयः।
अर्थाश्चैव निरारम्भं यन्ति हृदयं कवीन्द्राणाम्॥३॥

पदार्थ :—सामान्य-कवीनां कवीन्द्रेभ्यो व्यावृत्तिं दर्शयति। इतरे च ते कवयः, इतरकवयः इति कर्मधारयः, तेषां इतर-कवीनां अर्थस्य-पदार्थस्य आलोचनं-पर्यालोचनम्-अर्थालोचनं तस्मिन् तरलाः-चञ्चलाः-अर्थालोचनतरलाः बुद्धयः भ्रमन्ति-भ्रममापद्यन्ते, किन्तु कवीन्द्राणां-कविनायकानां त एव अर्थाः-पदार्थाः निरारम्भं-निष्प्रतिबन्धं हृदयं यन्ति प्रविशन्ति इत्यर्थः।

अर्थालोचनतरलाः। अर्थालोचनतरला+जस्। ३५० सूत्रेण रेफस्य लोपे ३६० सूत्रेण थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सूत्रेण पूर्वथकारस्य तकारे, १७७ सूत्रेण चकार-लोपे, २२८ सूत्रेण नकारस्य णकारे, ४९३ सूत्रेण जसो लुकि, ५०१ सूत्रेण पूर्वाकार-दीर्घे **अत्थालोअणतरला** इति सिद्धम्। **इतरकवीनाम्**। इतरकवि+आम्। १७७ सू० तकारस्य वकारस्य च लोपे, ४९५ सू० **आमः** स्थाने 'ण' इत्यादेशे, ५०१ सू० इकारस्य दीर्घे, इअर-कईण इति जाते। २७ सू० अनुस्वारागमे **इअर-कईणं** इति सिद्धम्। **भ्रमन्ति**। भ्रमु चलने। भ्रम+अन्ति। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ९१०सूत्रेण धातोरन्तेऽकारागमे, ६३१ सूत्रेण 'अन्ति' इत्यस्य स्थाने 'न्ति' इत्यादेशे **भमन्ति** इति सिद्धम्। **बुद्धयः**। बुद्धि+जस्। ५१६ सू० जसः स्थाने ओत् (ओ) इत्यादेशे, पूर्वदीर्वे च (इकारस्य ईकारे) **बुद्धीओ** इति सिद्धम्। **अर्थाः**। अर्थ+जस्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सूत्रेण थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सूत्रेण पूर्वथकारस्य तकारे, ५०१ सूत्रेण अकारस्य आकारे, ४९३ सू० जसो लुकि, **अत्था** इति सिद्धम्। **चैव**। अव्ययपदमिदम् ३७० सू० चकार-द्वित्वे, १४८ सूत्रेण ऐकारस्य एकारे, १७७ सू० वकार-लोपे। **च्चेअ** इति सिद्धम्। **अत्था च्चेअ** इत्यवस्थायां तु ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **अत्थ च्चेअ** इति जातम्। **निरारंभम्**। निरारम्भ+अम्। ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपः, २४ सूत्रेण मकारस्य मकार एव स्थितः ततः **निरारम्भम्** इति सिद्धम्। **यन्ति**। इण् गतौ। इ+अन्ति, ९०८ इकारस्य एकारे, ६३१ सूत्रेण अन्ति इत्यस्य स्थाने न्ति इत्यादेशे **एन्ति** इति सिद्धम्। **निरारम्भम् एन्ति** इत्यतः **निरारम्भमेन्ति** इति सम्पन्नम्। **हृदयम्**। हृदय+ अम्। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, दकारस्य लोपः, अमोऽकारस्य लोपः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **हिअयं** इति सिद्धम्। **कवीन्द्राणाम्**=कवि+इन्द्र+आम्। १७७ सूत्रेण वकारलोपे, एकार-ओकारेयोरभावात् ७ सूत्रेण सन्धिनिषेधो नाभवत्। सन्धौ च-कईन्द्र+आम् इति जाते ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, रेफस्य लोपे, ४९५ सू० आमः स्थाने 'ण' इत्यादेशे ५०१ सू० पूर्वाकार-दीर्घे, २७ सूत्रेण अनुस्वारागमे-**कइन्दाणं** इति सिद्धम्।

विशस्यमान-महापशू-दर्शन-संभ्रम-परस्परारूढाः।
गगने एव गन्धकुटीं कुर्वन्ति तव कौलनार्यः॥१॥

पदार्थः—विशस्यमानाश्च (हन्यमानाः) ये ते महापशवः-विशालकायाः पशव इत्यर्थः। तेषां दर्शनं, तेन यः संभ्रमः (व्याकुलत्वम्) तेन परस्परमारूढाः-अन्योन्यमारूढाः=विशस्यमान-महापशु-दर्शन-सम्भ्रम-परस्परारूढाः। हे राजन्! इत्यध्याहारः। तव कौलनार्यः कौलाः-कुलीनाः, नार्यः स्त्रियः, कौलनार्यः। गगने-आकाशे एव गन्धकुटीं-गन्धद्रव्यस्य सदनं गन्धप्रसाराधिक्यं कुर्वन्ति, अतिशयेन गन्धं प्रसारितवत्यः। इदमत्र हार्दम्-राजमहिलानां वस्त्रकेशादीनि अत्यधिकसुगन्धोपेतान्यासन्। ढुण्ढिकाटी-

काकारेण 'गन्ध-कुटीम्' इत्यस्य स्थाने 'गन्ध-पुटीम्' इत्ययं शब्दः स्वीकृतः। गन्धपुटी-शब्दस्य विचित्र-चित्रवाची इत्यर्थः कृतः, अस्यायं भावः-परस्परमारूढाः ताः राजकुलस्त्रियः विचित्रमाश्चर्य-जनकं चित्रमालेख्यं कृतवत्यः।

विशस्यमान-महापशु-दर्शन-सम्भ्रम-परस्परारूढाः। विशस्यमानमहापशुदर्शनसम्भ्रमपरस्परारूढा+जस्। वि-पूर्वकः शस्-धातुः हिंसायाम्। विशस्+क्य, इति स्थिते। २६० सू० शकारस्य सकारे। ६४९ सूत्रेण क्यस्य स्थाने इज्जादेशे ततः आनश्-प्रत्यये-विससिज्ज+आनश् इति जाते, ६७० सूत्रेण आनशः स्थाने 'न्त' इत्यादेशे **विससिज्जन्त** इति सिद्धम्। **महापशु** इत्यत्र शकारस्य सकारे-**महापसु** इति सम्पन्नम्। **दर्शन** इत्यत्र ३५०सू० रेफस्य लोपे, शकारस्य सकारे, २६ सू० प्रथमादेः स्वरस्य अन्ते आगमरूपेऽनुस्वारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे **दंसण इति** जातम्। संभ्रम इत्यत्र रेफस्य लोपे **'संभम'** इति जातम्। परस्परारूढा+जस् इत्यत्र ६२ सू० **द्वितीय-अकारस्य** ओकारे। ३४८ सू० सकार-लोपे, ३६०सू० पकारस्य द्वित्वे, ४६३सू० जसो लोपः, ततः **परोप्परारूढा'** इति सिद्धम्। **गगने**। गगन+ङि इति स्थिते। १७७ सू० द्वितीय-गकारस्य लोपे, १८० सू० **यकार-विशिष्टे** अकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५०० सू० **ङेः** स्थाने डे इत्यादेशे, डिति परे **अन्त्यस्वरादेः** लोपे, **'गयणे'** इति सिद्धम्। **'एव'** अव्ययपदमिदम्। ४५५ सूत्रेण एवार्थे-अवधारणेऽर्थे चिअ इति **प्रयुक्तम्**, ३७० सूत्रेण चकारस्य द्वित्वे-**'च्चिअ'**इति सिद्धम्। **गन्धकुटीं**। गन्धकुटी+अम्। १७७ सू० ककारस्य **लोपे**, १९५ सू० टकारस्य डकारे, ५२५ सू० अमि परे ह्रस्वे, ६१३ सू० अदन्तत्वात् ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **गन्धउडिं** इति सम्पन्नम्। सन्धि-प्राप्तौ ८ सू० निषेधो जातः। **कुर्वन्ति**। कृ करणे। कृ+अन्ति, ७३६ सू० कृधातोः स्थाने **कुण** इत्यादेशे, ६३१ सू०अन्ति इत्यस्य **स्थाने**'न्ति' इत्यादेशे-**कुणन्ति** इति सिद्धम्। **तव**। युष्मद्+ङस्। ५८८ सू० युष्मदः स्थाने ङसा सह 'तुह' इत्यादेशे, **तुह** इति सिद्धम्। **कौल-नार्यः**। कौलनारी+जस् १६२ सू० औकारस्य 'अउ' इत्यादेशे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१६ सू० जसः स्थाने 'ओत्' इत्यादेशे **कउलणारीओ** इति सिद्धम्।

निशाकरः (निशां करोतीति निशाकरः) निशाकर+सि, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककारलोपे, ७२ सू०अकारस्य विकल्पेन इकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**निसि-अरो, निसाअरो** इति सिद्धम्। इत्यत्र ८ सू०सन्धिनिषेधो जातः। **रजनीकरः**। रजनीं करोतीति रजनीकरः। रजनीकर+सि। १७७ सू० जकारस्य ककारस्य **च लोपे**, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, ८ सू० सन्धिनिषेधे-**रयणीअरो** इति सिद्धम्। **मनुजत्वम्**।(मनुजस्य भावः मनुजत्वं) मनुजत्व+सि, २२८ सू०नकारस्य णकारे, १७७ सू०जकार-लोपे, ३५० सू० वकारलोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे-**मणुअत्तं** इति जातं, सन्धि-प्राप्तौ ८ सू० निषेधो जातः। **बहुलाधिकारात्**। बहुलस्य अधिकारादनुवृत्तिग्रहणात् क्वचिद् विकल्पेन सन्धिर्भवति। प्रस्तुत-सूत्रेण तु सन्धिर्निषिद्धः, परन्तु बहुलाधिकारादत्र वैकल्पिकत्वमिति। यथा—**कुम्भकारः** (कुम्भं करोतीति कुम्भकारः) कुम्भकार+सि। १७७ सू०ककारस्य लोपे, ४६१ सू० सेः स्थाने 'डो' इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे। बहुलाधिकारात् विकल्पेन सन्धौ-**कुम्भारो**, सन्ध्यभावे **कुम्भ-आरो** इति भवति। **सुपुरुषः** (शोभनः पुरुषः सुपुरुषः) सुपुरुष+सि इति स्थिते। १७७ सू० पकारलोपे, १११ सू० रोः उकारस्य इकारे, २६० सू० षकास्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**सुउरिसो**। बहुलाधिकारात् सन्धिकृते-**सूरिसो** इति भवति। **क्वचिदिति**। बहुलाधिकारात् क्वचित्

सन्धिः भवत्येव, न तु तस्य निषेधः, नापि तस्य वैकल्पिकत्वं च भवति । **सातवाहनः ।** सातवाहन+सि । २११ सू० तकारस्य लकारे, १७७ सू० वकार-लोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्डोः, डिति परे, अन्त्य-स्वरादेः लोपे, **साल-आहणो** इत्यत्र नित्यत्वेन सन्धौ संजाते **सालाहणो** इति भवति । **चक्रवाकः ।** चक्रवाक +सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वे, १७७ सू०वकार-ककारयोः लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे,चक्कआओ, अत्र बहुलाधिकारात् नित्य-सन्धिकृते-**चक्काओ** इति भवति । **इयमत्रारेका ।** पूर्वोक्तानां निशा-करादि-पदानां समस्तत्वादेक-पदत्वे ५ सूत्रस्य प्रवृत्तिरेव न भवति । **'प्राप्तौ सत्यां निषेधः'** इति नियमात्, ८ सूत्रस्याप्रवृत्त्या, तस्यासंगतिः स्पष्टैव । तर्हि काऽऽवश्यकता सूत्रस्यास्य ? तदुत्तरयति स्वयमेव वृत्तिकारः । **अत एव प्रतिषेधादित्यादिना ।** अस्य पाठस्यायं भावः **पदयोः सन्धिर्वा** ८।१।५। इति सूत्रे द्वयोः पदयोरेव सन्धिविधिरस्ति न तु एक-पदे । समस्तपदेषु यदि पदद्वयत्वाभावः एवाङ्गीक्रियते तर्हि **'निसा-अरो'** आदि-समस्तपदेषु समस्तत्वेन एकपदत्वाद् **'पदयोः सन्धिर्वा'** सूत्रस्यास्य प्रवृत्तिरेव न स्यात्, यदि प्राप्तिरेव नास्ति तर्हि निषेधोऽपि खलु व्यर्थः । अतः प्रस्तुत-सूत्र-विहितोऽयं निषेधःव्यर्थीभवन्निदं ज्ञापयति यत् समासेऽपि-समस्तपदेष्वपि स्वरस्य संधौ भिन्नपदत्वं-पदानामनेकत्वं भवति, तेन निशाकरादिष्वपि समस्तपदेषु ५ सू०विकल्पेन सन्धेः प्राप्तिः स्पष्टैव, तन्निषेधार्थमेव निशाकरादि-पदेषु ८ सू० सन्धिनिषेधो जातः । **भवति इह ।** भवति । भू सत्तायां । भू+तिव् । ७३१ सूत्रेण भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इच् इत्यादेशे **होइ** इति सिद्धम् । **इह ।** अव्ययपदमिदम् । **संस्कृतसमं प्राकृतेऽपि बोध्यम् । होइ इह** इत्यत्र ९ सू० सन्धि-निषेधो जातः ।

अथ सन्धि-विधि

अक्षरों के मिलने का नाम सन्धि है । यह तीन प्रकार की होती है—**१—स्वर-सन्धि, २—व्यंजन-सन्धि ३—विसर्ग-सन्धि ।** जहां दो स्वरों का परस्पर मेल हो उसे स्वर-सन्धि कहते हैं । यह—**१—यण्-सन्धि** [जब इ, उ,ऋ, के सामने कोई असमान स्वर हो तो क्रम से इ, ई के स्थान पर य्, उ, ऊ के स्थान पर व् और ऋ के स्थान पर र् होता है] **२. दीर्घ-सन्धि**—[जहां समान स्वर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ के सामने अ, इ, उ, ऋ ये ह्रस्व, दीर्घ या प्लुत स्वर क्रम से आएं तो दोनों स्वर मिल कर बड़े हो जाते हैं] **३. वृद्धि-सन्धि**— [जहां अ आ के सामने ए, ऐ, ओ या औ हो तो ये दोनों स्वर मिल कर ऐ, औ में परिवर्तित हो जाते हैं]**४. गुण-सन्धि** (यदि अ, आ के सामने इ,ई,उ, ऊ तथा ऋ हो तो क्रम से ये मिल कर ए, ओ और अर् हो जाता है) **५. अयादि-सन्धि** (जहां ए,ऐ,ओ, औ के सामने कोई अच् प्रत्याहार आ जाए तो क्रम से अय् , आय् , अव् और आव् हो जाते हैं) इस तरह पांच प्रकार की होती है । जहां व्यंजन के आगे कोई व्यंजन तथा स्वर आए और उसमें जो विकार उत्पन्न होता है, वह व्यंजन-सन्धि, विसर्ग (:) के बाद यदि कोई स्वर या व्यंजन आए तो विसर्ग के स्थान पर जो विकार होता है वह विसर्ग-सन्धि कहलाती है । सन्धि की विधि(कार्य) को सन्धि-विधि कहते हैं । प्राकृत-भाषा में सन्धि कैसे की जाती है ? इस का समाधान इस प्रकरण में किया गया है ।

५—संस्कृत-व्याकरण में उक्त सभी सन्धिएँ प्राकृत-भाषा के दो पदों में व्यवस्थित-विभाषा से की जाती हैं । व्यवस्थित-विभाषा पद का अर्थ है—किसी प्रयोग में सूत्र का नित्य ही लगना, किसी में बिल्कुल न लगना और किसी में विकल्प से प्रवृत्त होना । इस तरह प्रयोगानुसार व्यवस्था द्वारा सत्र के प्रवृत्त होने को व्यवस्थित-विभाषा कहते हैं ।

१—**व्यास+ऋषिः**=वासेसि, वास-इसी (व्यास ऋषि)। २—**विषम+आतपः**=विषमातपः= विसमायवो, विसम-आयवो (कठोर धूप) ३—**दधि+ईश्वरः**=दधीश्वरः=दहीसरो, दहि-ईसरो (दही का स्वामी) ४—**स्वादु+उदकम्**=स्वादूदकम्=साऊअयं, साउ उअयं (स्वादिष्ट पानी) इन शब्दों में विकल्प से सन्धि की गई है।

सन्धि दो पदों में होती है। ऐसा क्यों कहा गया? यदि ऐसा न कहते तो सन्धि-योग्य स्थिति होने पर एक पद में भी सन्धि हो जाती। जैसे—१—**पादः**=पाओ (पांव) २—**पतिः**=पई (स्वामी) ३—**वृक्षात्**=वच्छाओ (वृक्ष से)। ४—**मुग्धया**=मुद्धाइ, मुद्धाए (सुन्दर नारी ने)। ५—**कांक्षति**=महइ, महए(वह चाहता है)। इन शब्दों में सन्धि-योग्य स्वर दिखाई दे रहे हैं, 'किन्तु दो पदों में सन्धि होती है' इस विधान के अनुसार एक पद में सन्धि नहीं हो सकी। प्रस्तुत सूत्र में '**बहुल**' का अधिकार होने से कहीं-कहीं **पर** एक पद में भी सन्धि हो जाती है। जैसे— १—**करिष्यति**=काहिइ, काही (करेगा)। २—**द्वितीयः**=बिइओ, बीओ (दूसरा)। यहां एक ही पद है, तथापि विकल्प से सन्धि होने का कारण केवल बहुलाधिकार ही है।

६—इवर्ण अथवा उवर्ण से आगे यदि अस्व (विजातीय) स्वर हो तो इन की परस्पर सन्धि नहीं होती। जैसे—१—**न वैरिवर्गेऽपि अवकाशः**=न वेरिवग्गे वि अवयासो (वैरि-वर्ग में भी स्थान नहीं है)। यहां तृतीय वकारस्थ इकार को अकार के परे रहते सन्धि प्राप्त थी, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने उसका निषेध कर दिया। २—**वन्दामि आर्य-वज्रम्**=वन्दामि अज्ज-वइरं (आर्यवज्र नामक व्यक्ति को मैं नमस्कार करता हूँ)यहां प्रस्तुत सूत्र के द्वारा अकार के परे रहने पर भी मकार के इकार को यण्-सन्धि नहीं हो सकी।

दनुजेन्द्र-रुधिर-लिप्तः राजते उपेन्द्रो नखप्रभावल्यरुणः।
सन्ध्या-वध्ववगूढो नव-वारिधर इव विद्युत्प्रतिभिन्नः॥ १॥

—दानवेन्द्र (दानवों के स्वामी) के रक्त से रञ्जित (रंगे हुए) नखों की प्रभावलि (प्रभा की पंक्ति) से अरुण=लाल विष्णु सन्ध्या-रूपी वधू से आलिङ्गित, तथा विद्युत्-गर्भित (बिजली वाले) नूतन मेघ की भांति सुशोभित हो रहे हैं।

यहां पर—१—**दनुजेन्द्र**=**दणु**+इन्द (दानवों के स्वामी), २—**उपेन्द्रो**=उ+इन्दो (विष्णु), ३—**प्रभावल्यरुणः**=प्पहावलि+अरुणो (कान्ति के समूह से लाल), ४—**वधूपगूढो**=वहु+अवऊढो(वधू से आलिङ्गित) इन पदों में यण-सन्धि की प्राप्ति होती है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र द्वारा विजातीय स्वर परे होने के कारण इस सन्धि का निषेध कर दिया गया है।

सभी स्वरों का उल्लेख न करके सूत्रकार ने केवल इवर्ण और उवर्ण का ही उल्लेख क्यों किया है? उत्तर में निवेदन है, यदि विजातीय स्वर के परे रहते इवर्ण और उवर्ण से सन्धि का निषेध न किया जाता तो **गूढोदरतामरसानुसारिणी भ्रमरपंक्तिरिव**=गूढोअर-तामरसाणुसारिणी भमरपन्ति व्व (गूढोदर=जिसका मध्यभाग ढका हुआ है, तामरस-कमल का अनुसरण करने वाली भ्रमर-पंक्ति की तरह) यहां—गूढ+उअर, तथा रस+अणुसारिणी, इन शब्दों में भी उक्त सूत्र से गुण् तथा दीर्घ सन्धि का निषेध हो जाता। यहां सन्धि इष्ट थी, अतः प्रस्तुत सूत्र में इवर्ण और उवर्ण का उल्लेख किया गया है। फलतः यहां निषेधाभाव के कारण सन्धि कर दी गई है। इवर्ण और उवर्ण से विजातीय स्वर

परे रहते जो सन्धि का निषेध किया गया है, इस का कारण इतना ही है कि पुहवी+ईसो, आदि शब्दों में उक्त सूत्र से सन्धि-निषेध न हो। विजातीय स्वर कहने से यहाँ सन्धि-निषेध नहीं हो सका और सन्धि होने पर **पुहवीसो**=पृथ्वीशः (भूमि का स्वामी) यह शब्द सिद्ध हो गया। 'विजातीय स्वर परे रहने पर, यह कहने का अर्थ है—स्व-जातीय स्वर परे रहते इवर्ण उवर्ण से सन्धि-निषेध नहीं होता।

७—एकार और ओकार के अनन्तर यदि कोई स्वर आए तो वहाँ पर सन्धि नहीं होती। जैसे—

वध्वाः नखोल्लेखने आबध्नत्या कञ्चुकमङ्गे।
मकरध्वज-शर-धोरणि-धारा-छेदा इव दृश्यन्ते ॥१॥

—वस्त्र धारण करती हुई वधू के अङ्ग पर नखों के व्रण कामदेव के बाणों की पंक्ति के प्रवाह-कृत छेदों की तरह दिखाई रहे हैं। १. **नखोल्लेखने आबध्नत्या**=नहुल्लिहणे+आबन्धन्तीए। यहां पर आकार के परे आ जाने पर एकार को अय् हो जाना चाहिए था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने इस का निषेध कर दिया।

उपमासु अपर्याप्तेभ-दन्तावभासमूरुयुगम्।
तच्चैव मृदित-बिसदण्ड-विरसमालक्षयामहे इदानीम् ॥ २ ॥

—संभोग अवस्था से पूर्व, उपमा के अयोग्य, हाथी के बच्चे के दाँतों के समान प्रकाश वाला ऊरु-युग(दोनों जंघाएं) अब मसली हुई कमलडण्डी के समान नीरस (अप्रकाशमान) दिखाई दे रहा है। **आलक्षयामहे इदानीम्**=आलक्खिमो+एण्हिं, यहां पर ओकार से आगे एकार आ जाने से ओकार को 'अव्' इस आदेश की प्राप्ति हो रही थी, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने इस का निषेध कर दिया। **अहो आश्चर्यम्**=अहो+अच्छरिअं (अहो आश्चर्य है) यहां पर भी ओकार से आगे अकार आ जाने से अकार को पूर्वरूप होने लगा था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने इस का भी निषेध कर दिया।

प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने "**एदोतोः**"(एकार ओकार को)" यह पद क्यों पढ़ा? उत्तर में निवेदन है कि यदि ऐसा न कहते तो—

अर्थालोचनतरला इतरकवीनां भ्रमन्ति बुद्धयः।
अर्थाश्चैव निरारम्भं यन्ति हृदयं कवीन्द्राणाम् ॥ ३ ॥

—इतर (साधारण) कवियों की बुद्धियां जिस अर्थ-चिन्तन (तत्त्वचिन्तन) में तरलित होती हुई (चाञ्चल्य प्राप्त करती हुई) भ्रान्त हो जाती हैं किन्तु कवीन्द्र लोगों (कविराजों) के हृदयों में वे ही अर्थ बिना किसी बाधा के प्रविष्ट हो जाते हैं। यहां **अर्थालोचनतरलाः**=अत्थ+आलोअणतरला, इस पद में दीर्घ-सन्धि का निषेध हो जाता, और अत्थालोयणतरला यह रूप सिद्ध न होता। इस दृष्टि से सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में "**एदोतोः**" इस पद का उल्लेख किया है।

८—व्यञ्जन से मिला हुआ स्वर जब व्यञ्जन के लुप्त हो जाने पर अवशिष्ट रह जाता है तब उसकी उद्वृत्त संज्ञा होती है। उद्वृत्त स्वर के परे रहते स्वर को सन्धि नहीं होती। जैसे—

विशस्यमान-महापशु-दर्शन-संभ्रम-परस्परारूढाः।
गगने एव गन्धकुटीं कुर्वन्ति तव कौलनार्यः ॥ १ ॥

—कोई दर्शक किसी राजा से कह रहा है कि मारे जाने वाले बड़े-बड़े पशुओं को देखने से

उत्पन्न हुई घबराहट के कारण हे राजन्! तेरे कुल (वंश) की नारियां परस्पर आरूढ होती (एक दूसरे पर गिरती) हुईं आकाश को मानों गन्धकुटीर (सुगन्धि का घर) बना रही हैं। यहां **गन्धकुटीम्**= गन्ध+उडि, इस पद में उकार उद्वृत्त संज्ञा वाला स्वर है। अतः प्रस्तुत सूत्र से यहां पर सन्धि का निषेध हो गया है।

१—**निशा-करः**=निसि-अरो, निसा-अरो (चन्द्रमा), २—**रजनी-करः**=रयणी-अरो (चन्द्रमा) और ३. **मनुजत्वम्**=मणु-अत्तं (मनुष्यता) इन शब्दों में उद्वृत्त स्वर के परे होने के कारण सन्धि नहीं हो सकी। प्रस्तुत सूत्र में '**बहुल**' का अधिकार होने के कारण कहीं पर उद्वृत्त स्वरों के परे रहने पर भी विकल्प से सन्धि हो जाती है। जैसे— **कुम्भ-कारः**=कुम्भारो, कुम्भ आरो (कुम्हार) **सुपुरुषः**= सूरिसो, सुउरिसो (श्रेष्ठ पुरुष) यहां विकल्प से सन्धि होगई है और कहीं पर **बहुलाधिकार** से सन्धि निश्चित रूप से हो जाती है। जैसे १—**सात-वाहनः**=साल+आहणो, सालाहणो (शालिवाहन नामक राजा)। २—**चक्रवाकः**=चक्क+आओ=चक्काओ (चकवा पक्षी)

यह सूत्र गत पाँचवें सूत्र का अपवाद समझना चाहिए। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि पांचवाँ सूत्र तो दो पदों में सन्धि का निषेध करता है। निशाकर, कुम्भकार आदि समस्त पदों में पदद्वय का अभाव होने से पाँचवाँ सूत्र प्रवृत्त ही नहीं होता, फिर इस सूत्र से सन्धि का निषेध क्यों? सिद्धांत है– **प्राप्तिपूर्वको हि निषेधः**। अर्थात् पहले सूत्र की प्राप्ति होती है फिर इसका निषेध किया जाता है, अन्यथा नहीं। अतः प्रस्तुत-सूत्र का सन्धिनिषेध व्यर्थ सिद्ध होता है? उत्तर में निवेदन है कि यहां सन्धि-निषेध व्यर्थ है, यह सत्य है किन्तु वैयाकरणों का एक नियम है कि **व्यर्थं सज् ज्ञापयति**–जो विधान व्यर्थ होता है वह किसी विशेष बात का सूचक होता है। अतः प्रस्तुत सन्धि-निषेध व्यर्थ होता हुआ भी यह नियम बनाता है कि "स्वर-सन्धि की दशा हो तो समस्त पदों में भी भिन्न-भिन्न पद स्वीकार किये जाते हैं।" इस नियम के आधार पर निशाकर आदि शब्दों में पदद्वय मान लेने से पाँचवें सूत्र द्वारा सन्धि की प्राप्ति हो जाती है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र उसका निषेध कर देता है।

६—स्वर के परे रहने पर तिङन्त के स्वर को सन्धि नहीं होती। जैसे—**भवति इह**=होइ इह (यहां पर होता है) यहां दीर्घ-सन्धि की प्राप्ति थी किन्तु इस सूत्र ने उसका निषेध कर दिया।

❀ अथ अन्त्य-व्यञ्जनस्य लुगादि-विधिः ❀

१०—**लुक्** ।८।१।१०। स्वरस्य स्वरे परे बहुलं लुग् भवति। त्रिदशेशः। तिअसीसो। निःश्वासोच्छ्वासौ। नीसासूसासा।

११—**अन्त्यव्यञ्जनस्य** ।८।१।११।

शब्दानां यद् अन्त्यव्यञ्जनं तस्य लुग् भवति। जाव। ताव। जसो। तमो। जम्मो। समासे तु वाक्यविभक्त्यपेक्षायामन्त्यत्वं अनन्त्यत्वं च। तेनोभयमपि भवति। सद्भिक्षुः। सभिक्खू। सज्जनः। सज्जणो। एतद्गुणाः। एअ-गुणा। तद्गुणाः। तग्गुणा।

१२—**न श्रदुदोः** ।८।१।१२।

श्रद्-उद् इत्येतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य लुग् न भवति। सद्दहिअं। सद्धा। उग्गयं। उन्नयं।

१३—**निर्दुरोर्वा** ।८।१।१३।

निर्, दुर् इत्येतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य वा लुग् भवति । निस्सहं, नीसहं । दुस्सहो, दूसहो । दुक्खिओ, दुहिओ ।

१४—**स्वरेन्तरश्च** ।८।१।१४। अन्तरो निर्दुरोश्चान्त्यव्यञ्जनस्य स्वरे परे लुग् न भवति । अन्तरप्पा । निरन्तरं । निरवसेसं । दुरुत्तरं । दुरवगाहं । क्वचिद् भवत्यपि-अन्तोवरि ।

१५—**स्त्रियामादविद्युतः** ।८।१।१५।

स्त्रियां वर्तमानस्य शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य आत्वं भवति । विद्युच्छब्दं वर्जयित्वा । लुगपवादः । सरित्-सरिआ । प्रतिपद्-पाडिवआ । संपद्-संपआ । बहुलाधिकाराद् ईषत्स्पृष्टतरयश्रुतिरपि । सरिया । पाडिवया । संपया । अविद्युत इति किम् ? विज्जू ।

१६—**रो रा** ।८।१।१६। स्त्रियां वर्तमानस्यान्त्यस्य रेफस्य रा इत्यादेशो भवति । आत्वापवादः । गिरा, धुरा, पुरा ।

१७—**क्षुधो हा** ।८।१।१७। क्षुध्-शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य हादेशो भवति । छुहा ।

१८—**शरदादेरत्** ।८।१।१८।

शरदादेरन्त्यव्यञ्जनस्य अद् भवति । शरद्-सरओ । भिषक्-भिसओ ।

१९—**दिक्-प्रावृषोः सः** ।८।१।१९।

एतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य सो भवति । दिसा । पाउसो ।

२०—**आयुरप्सरसोर्वा** ।८।१।२०।

एतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य सो वा भवति । दीहाउसो, दीहाऊ । अच्छरसा, अच्छरा ।

२१—**ककुभो हः** ।८।१।२१। ककुभ्-शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य हो भवति । कउहा ।

२२—**धनुषो वा** ।८।१।२२। धनुः-शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य हो वा भवति । धणुहं, धणू ।

❀ अथ अन्त्यव्यञ्जनस्य लुगादिविधिः ❀

अथ आचार्योऽन्त्यव्यञ्जनस्य स्थाने ये लुगादेशादयो भवन्ति तान् प्रदर्शयति । **त्रिदशेशः** । त्रिदशामीशः त्रिदशेशः । त्रिदश+ईश+सि । ३५० सू० रेफ-लोपे, १७७ सू० दकार-लोपे, २६० सू० उभयत्र शकारस्य सकारे, १० सू० प्रथम-सकारस्थाकारस्य लोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**तिअसीसो** इति सिद्धम् । **निःश्वासोच्छ्वासौ** । निश्वासश्च उच्छ्वासश्च निःश्वासोच्छ्वासौ । निर्श्वास-उच्छ्वास+औ । १३ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य रेफस्य लोपे, ९३ सू० इकारस्य दीर्घे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० वकारस्य लोपे-नीसास-उच्छ्वास+औ इति जाते । समासे वाक्यापेक्षया अन्त्य-त्वाश्रयणात्, ११ सू० चकार-लोपे **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** अनया परिभाषया छकारस्य शकारे, ३५० सू० वकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४३ सू० उकारस्य ऊकारे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे

लोपे, ६१६ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, नीसासूसासा+जस् इति स्थिते, ४६३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकार-दीर्घे **नीसासूसासा** इति सिद्धम्।

यावत्। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू०यकारस्य जकारे, ११ सू०तकारस्य लोपे, **जाव** इति सिद्धम्। **तावत्।** अव्ययपदमिदम्। ११ सू० तकारस्य लोपे **ताव** इति सिद्धम्। **यशः।** यशस्+सि। २४५ सूत्रेण यकारस्य जकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य लोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **जसो** इति सिद्धम्। **तमः।** तमस्+सि।११ सू० सकार-लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे **तमो** इति सिद्धम्। **जन्म।** जन्मन्+सि। ३३२ सू० न्मस्य स्थाने मकारे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, अन्त्यव्यञ्जनस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**जम्मो** इति सिद्धम्। **समासे त्विति। पद-समूहो वाक्यम्।** विभक्त्यन्तं पदम्। समसनं द्वयोः बहूनां वा पदानामेकीकरणं समासः। यतोहि "पद-समूहो वाक्यमि" ति परिभाषा विद्यतेऽतः समस्तं पदं वाक्यशब्देनापि वक्तुमुचितम्। तेन वाक्यापेक्षया (यत्र समस्तपदस्य वाक्यविवक्षाऽस्ति तत्र) समासे पूर्वस्मिन्नपि पदेऽन्त्यव्यञ्जनत्वं संभवति। परं यदा 'सुप्तिङन्तं(विभक्त्यन्तं) पदमि' ति विवक्षा स्यात्तदा समासे उत्तर-पदमेव व्यञ्जनान्तं वक्तुं शक्यम्। अतएव वृत्ति-कारेणोक्तम्—**समासे त्वित्यादि**। अयं भावः— समासे तु वाक्यापेक्षया व्यञ्जनानामन्त्यत्वम्, विभक्त्यपेक्षया तु तेषामनन्त्यत्वं भवति। तथाहि-**सद्भिक्षुः**। सद् भिक्खू, इत्यत्र वाक्यापेक्षया सद् इति पूर्वं पदं व्यञ्जनान्तमस्ति, ततः ११ सूत्रस्य प्रवृत्तिं कृत्वा दकारस्य लोपो विधेयः। विभक्त्यपेक्षया त्वस्मिन्नेव प्रयोगे ११सूत्रं न प्रवर्तते। यतोहि सद्-भिक्खू, इत्येकमेव पदं, न तु पदद्वयम्। अत्र च पदान्तत्वमूकारे न तु दकारे। **सद्भिक्षुः।** संश्चासौ भिक्षुः, सद् भिक्षुः। सद्+भिक्षु+सि। वाक्यापेक्षया ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य दकारस्य लोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू०पूर्व-खकारस्य ककारे, ५०८ सू० उकारस्य ऊकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सभिक्खू**[1] विभक्त्यपेक्षया तु ११ सू० दकारस्य लोपाभावे, ३४८ सू० दकार-लोपे, भकारस्य शेषत्वात् ३६० सू० द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, पूर्ववदेव-**सब्भिक्खू** इति सिद्धम्। **सज्जनः।** संश्चासौ जनः, सज्जनः। सद्+जन+सि। वाक्यापेक्षया-दकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **सजणो** विभक्त्यपेक्षया तु ११ सू० दकारस्य लोपाभावे, ३४८ सू० दकारलोपे, जकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **सज्जणो** इति भवति। **एतद्गुणाः।** एते च ते गुणाः। एतद्गुण+जस्। वाक्यापेक्षया ११ सू० दकारलोपे, १७७ सू० तकार-लोपे, ४६३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकार-दीर्घे **एअगुणा** विभक्त्यपेक्षया तु-११ सू० दकारलोपाभावे, ३४८ सू० दकार-लोपे, गकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **एअग्गुणा** इति सिद्धम्। **तद्गुणाः।** ते चामी गुणाः। तद्गुण+जस्। वाक्यापेक्षया दकारलोपे, जसो लुकि, पूर्वाकारदीर्घे-**त-गुणा** विभक्त्यपेक्षया तु ११ सू०दकार-लोपाभावे, पूर्ववदेव **तग्गुणा** इति सिद्धम्। **इदं** १२ सूत्रं पूर्वसूत्रस्यापवादकं वर्तते। यथा—**श्रद्दधितम्।** श्रद्दधित+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, अत्र वाक्यापेक्षया, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य दकार-लोपे प्राप्ते, १२ सू० तन्निषेधे, ३४८ सू० दकार-लोपे, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वे, १८७सू० धकारस्य हकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **सद्दहिअं** इति सिद्धम्। **श्रद्धा।** श्रद्धा+सि। रेफस्य लोपे, शकारस्य सकारे, वाक्यापेक्षया अन्त्यव्यञ्जनस्य दकारस्य लोपे प्राप्ते १२ सू० तन्निषेधे, ३४८ सू०दकारस्य

१—अत्र भिन्नपदत्वात् शेषत्वाभावे ३६० सूत्रेण भकारस्य द्वित्वं न जातम्। एवमेव सर्वत्र बोध्यम्।

लोपे, धकारस्य द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्व-धकारस्य दकारे, सेर्लोपे-**सद्धा** इति सिद्धम् । **उद्गतम्** । उद्गत+सि । पूर्वसूत्रेण प्राप्त-लोपस्य, १२ सू० निषेधे, दकारलोपे, गकारस्य द्वित्त्वे, १७७ सू० तकार-लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे-**उग्गयं** इति सिद्धम् । **उन्नतम्** । उद्+नत्+सि । **उन्नयं उग्गयं**-वत् साध्यम् । **निस्सहम्** । निर्सह्+सि । १३ सू० रेफस्य विकल्पेन लोपे, ९३ सू० इकारस्य ईकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **नीसहं**, १३ सू० रेफस्य लोपाभावे तु ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० सकारस्य द्वित्त्वे-**निस्सहं** इति सिद्धम् । **दुस्सहः** । दुर्सह+सि । रेफस्य विकल्पेन लोपे, ११५ सू० उकारस्य ऊकारे,४६१ सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**दूसहो** । वैकल्पिकरेफलोपाभावे तु, ३५० सू० रेफ-लोपे, सकारस्य द्वित्त्वे-**दुस्सहो** इति सिद्धम् । **दुःखितः** । दुर्खित+सि । १३ सू० विकल्पेन रेफ-लोपे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**दुहिओ** । विकल्पेन रेफस्य लोपाभावे, ३५० सू० रेफ-लोपे, खकारस्य द्वित्त्वे, पूर्व-खकारस्य ककारे-**दुक्खिओ** इति सिद्धम् ।

अन्तरात्मा । अन्तर्+आत्मन्+सि । ११ सू० प्राप्तस्य अन्त्यव्यञ्जन-रेफलोपस्य, १४ सू० निषेधो जातः । ३२२ सू० विकल्पेन त्मस्य पकारे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्त्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य नकारस्य लोपे, ५४५ सू० पुल्लिंगे वर्तमानस्य अन्नन्तस्य यथादर्शनं राजवत्-कार्ये जाते सति, ५३८ सू० अन्त्याकारस्य अकारे, अनुबन्धत्वात् ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे-**अन्तरप्पा** इति सिद्धम् । **निरन्तरं** । निर्अन्तर+सि । अन्त्यव्यञ्जनलोपे प्राप्ते, १४ सू०तन्निषेधे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे-**निरंतरं** इति सिद्धम् । **निरवशेषं** । निर्+अवशेष+सि । अन्त्यव्यञ्जन-रेफ-लोपे प्राप्ते १४ सू० तन्निषेधे, २६० सू० शकार-षकारयोः सकारौ, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **निरवसेसं** इति सिद्धम् । **दुरुत्तरं** । दुर्+उत्तर+सि । अन्त्यव्यञ्जनरेफलोपे प्राप्ते, १४ सू० तन्निषेधे, सेर्मकारे, मकार-स्यानुस्वारे-**दुरुत्तरं** इति सिद्धम् । **दुरवगाहं** । दुर्+अवगाह+सि । अन्त्यव्यञ्जनरेफलोपे प्राप्ते १४ सू० तन्निषेधे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **दुरवगाहं** इति सिद्धम् । **क्वचिद् भवत्यपि** । प्रस्तुत-सूत्रेण अन्तर्-शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य लोपो न जायते, किन्तु **बहुलाधिकारात्** क्वचिद् अन्तरशब्दस्यापि अन्त्यव्यञ्जनस्य लोपो भवति । यथा—**अन्तोपरि** । अन्तर्-उपरि+सि । १४ सू० निषिद्धेऽपि अन्त्यव्यञ्जन-लोपे बहुलाधिकारात् ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य रेफस्य लोपे-अन्तउपरि+सि, इति स्थिते सन्धौ, २३१ सू० पकारस्य वकारे, सेर्लोपे **अन्तोवरि** इति सिद्धम् ।

लुगपवादेति । ११ सूत्रेण प्राप्तोऽन्त्यव्यञ्जनस्य लोपोऽनेन सूत्रेण निषिद्धः । यथा—**सरित्** । सरित्+सि । १५ सू० तकारस्याकारे, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सरिआ** इति सिद्धम् । **प्रतिपद्** । प्रतिपद्+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ४४ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, २३१सू० पकारस्य वकारे, १५ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य दकारस्य आकारे, सेर्लोपे **पाडिवआ** इति सिद्धम् । **संपद्** । संपद्+सि । प्रस्तुत-सूत्रेण दकारस्य आकारे, सेर्लोपे **संपआ** इति सिद्धम् । **बहुलाधिकारादिति** । बहुलाधिकाराद् ईषत्स्पृष्टतर-प्रयत्नवती यश्रुतिरपि भवति । बाहुल्येन अन्त्यव्यञ्जनस्य यकारविशिष्टोऽकारो भवतीति भावः । यथा—**सरिया** । एवमेव **पाडिवया, संपया** इत्यादयः प्रयोगा साध्याः । **अविद्युत इति** । प्रस्तुत-सूत्रे **अविद्युतः** इति ग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नः ? तदुत्तरयति वृत्तिकारः । **विद्युत्** । विद्युत्+सि । २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्त्वे, १५ सू० विद्युतः स्त्रीत्वेऽपि **अविद्युतः**

इत्युक्तेः आत्त्वस्य निषेधे, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य तकारस्य लोपे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे **विज्जू** इति सिद्धम्।

आत्त्वापवाद इति। १५ सू० प्राप्तस्यात्त्वस्यायं नियमोऽपवादः-बाधकः। यथा-**गीः**। गिर्+सि। इत्यत्र ११ सू० प्राप्तस्य लुको निषेधकं १५ सू०प्राप्तमात्त्वं प्रबाध्य, १६ सू०रेफस्य 'रा' इत्यादेशे।१।१।३७। सू०सेरिकारस्य लोपे, ११सू० सकारस्य लोपे, **गिरा** इति सिद्धम्। **धूः**। धुर्+सि। १६ सू० रेफस्य 'रा' इत्यादेशे, सेर्लोपे **धुरा** इति सिद्धम्। **पूः**। पुर्+सि। १६ सू० रेफस्य 'रा' इत्यादेशे, सेर्लोपे **पुरा** इति सिद्धम्। एषु त्रिषु प्रयोगेषु १५ सू०अन्त्य-व्यञ्जनस्य आकार-प्राप्तिरासीत् तन्निषेधार्थमिदं सूत्रमिति। **क्षुध्**। क्षुध्+सि। २८८ सू० क्षस्य छकारः। लुग्बाधकमात्वं प्रबाध्य १७ सू० धकारस्य **हा** इत्यादेशे, सेर्लोपे **छुहा** इति सिद्धम्। इदं १५ सूत्रस्यापवाद-सूत्रम्। **शरद्**। शरद्+सि। स्त्रीलिंगस्यापि शरच्छब्दस्य ३१ सू० पुंस्त्वे कृते स्त्रीत्वाभावात् लुगपवादस्य १५ सूत्रेण विहितस्याऽऽत्वस्याप्रवृत्तौ **देवदत्त-हन्तृ-हत-न्यायेन** ११ सू०पुनः प्राप्तं लुकं प्रबाध्य १८ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य आत्त्वे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४६१ सूत्रेण सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सरओ** इति सिद्धम्। **यथा देवदत्ते हते सति तद्धन्तरि हतेऽपि न देवदत्तस्य जीवनं,** तथैव आत्त्वेन हते लुकि पुंस्त्वेन स्त्रीत्वविनाश-द्वारा-स्त्रीत्व-निमित्तकाऽऽत्वस्य विनाशोऽपि न लुको जीवनमिति कथं लुकःप्राप्तिरिति चेत्? सत्यम्। हते देवदत्ते तद्धन्तरि हतेऽपि न देवदत्तो जीवति, इति न न्यायस्वरूपम्;किन्तु हन्तुमुद्यतस्य यज्ञदत्तस्य तन्मित्रेण हनने सति तु देवदत्तस्य जीवनं सुतरामस्त्येवेति रीत्या लुकं बाधितुमुद्यतस्याऽऽत्वस्य पुँस्त्व-विधानेन स्त्रीत्वविनाशात्तन्निमित्तकस्याऽऽत्वस्य नाशे लुकः प्राप्तिरस्तीत्याशयात्। **भिषक्**। भिषक्+सि। २६० सू० षकारस्य सकारे, ११ सू०प्राप्तं लुकं प्रबाध्य १८ सूत्रेण ककारस्य अकारे संजाते, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भिसओ** इति सिद्धम्। **दिक्**। दिश्+सि। लुग्बाधकमात्वं प्रबाध्य १९सू० शकारस्य सकारे।२।४।१८। सू०आप्-प्रत्यये, दिसा+सि। इति जाते, सेर्लोपे, **दिसा** इति सिद्धम्। **प्रावृट्**। प्रावृष्+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, १३१ ऋकारस्य उकारे, १७७ सू० वकारस्य लोपे, ११सू० प्राप्तमन्त्यव्यञ्जन-लुकं प्रबाध्य १५ सू०आत्त्वे प्राप्ते, तदपि प्रबाध्य १९ सू० षकारस्य सकारे, स्त्रीलिंगस्यापि प्रावृष्-शब्दस्य ३१ सू० पुंस्त्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, ८ सू०सन्धिनिषेधे **पाउसो** इति सिद्धम्। **दीर्घायुः**। दीर्घमायुर्यस्य स दीर्घायुः। दीर्घायुष्+सि। ३५० सू०रेफस्य लोपे, ३६०सू० घकारस्य द्वित्वे प्राप्ते, ३६३ सू०तन्निषेधे, १८७ सू०घकारस्य हकारे, १७७ सू० यकार-लोपे, लुकं प्रबाध्य २० सू० विकल्पेन षकारस्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **दीहाउसो**। सकाराभावे तु ११ सू०षकारस्य लोपे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे, ८ सू० सन्धिनिषेधे **दीहाऊ** इति सिद्धम्। **अप्सराः**। अप्सरस्+सि। २९२ सू० प्सस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ११ सू० सकारस्य लुकि प्राप्ते, तं बाधित्वा १५ सू० आत्त्वे प्राप्ते, तदपि बाधित्वा २० सू० विकल्पेन सकारे जाते।२।४।१८। सू० आप्-प्रत्यये, सन्धौ, सेर्लोपे, **अच्छरसा**, पक्षे १५ सू० सकारस्य आत्त्वे, सन्धौ **अच्छरा** इति सिद्धम्। **ककुभ्**। ककुभ्+सि। १७७ सू० द्वितीय-ककारस्य लोपे, २१ सू०अन्त्यव्यञ्जनस्य भकारस्य हकारे, २।४।१८। सू०आप्-प्रत्यये, सन्धौ, १।१।३७। सू०सेरिकारस्य लोपे, ११ सू०सकारस्य लोपे, **कउहा** इति सिद्धम्। **धनुः**। धनुष्+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, २२ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य विकल्पेन हकारे। ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **धणुहं** हकाराभावपक्षे, नकारस्य णकारे, ११ सू० षकार-लोपे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **धणू** इति सिद्धम्।

❀ अन्त्यव्यञ्जनीय लोपादि-विधि ❀

अन्तिम व्यञ्जन को अन्त्य व्यंजन कहते हैं। अन्त्य-व्यञ्जन के स्थान में जो लोपादि कार्य होते हैं उन का इस प्रकरण में वर्णन किया जायगा।

१०—स्वर के परे रहने पर बहुलता से स्वर का लोप होता है। जैसे १—**त्रिदश+ईश:**= त्रिदशेश:=तिअस+ईसो = तिअसीसो (देवेन्द्र)। २—**नि:श्वास+उच्छ्वासौ**=नि:श्वासोच्छ्वासौ= नीसास+ऊसासा=नीसासूसासा (श्वासोच्छ्वास)। इन शब्दों में इस सूत्र से क्रमश: अकार का लोप किया गया है। ११—अन्त्य-व्यञ्जन का प्राकृत-भाषा में लोप हो जाता है। जैसे **१—यावत्**=जाव (जब तक)। २—**तावत्**=ताव (तब तक)। ३—**यशस्**=जसो (कीर्ति)। ४—**तमस्**=तमो (अन्धकार)। ५—**जन्मन्**=जम्मो (जन्म) इन शब्दों में हलन्त व्यञ्जन का लोप किया गया है।

समास-गत शब्दों में वाक्य और विभक्ति की अपेक्षा से अन्त्यत्व और अनन्त्यत्व ये दोनों रूप पाए जाते हैं। समासगत शब्दों में जब वाक्य (पदसमूह) की कल्पना करते हैं, तब अन्त्यत्व और जब विभक्ति की कल्पना की जाती है, तब उन में अनन्त्यत्व प्रमाणित होता है। इस तरह समासगत शब्दों में अन्त्यत्व और अनन्त्यत्व ये दोनों रूप मिलते हैं। जैसे **१—सद्-भिक्षु:**=सभिक्खू (श्रेष्ठ भिक्षु) २—**सज्जन:**—सद्-जन:=सज्जणो (श्रेष्ठ पुरुष)। **३—एतद्-गुणा:**—एअगुणा (ये गुण)। **४—तद्-गुणा:**=तग्गुणा (वे गुण) यहां पर सद् और भिक्षु:, सद् और जन:, एतद् और गुणा: तथा तद् और गुणा: इस तरह दो-दो पदों का समास है। इन समस्तपदों में जब वाक्य की अपेक्षा से दो-दो पद मान लेते हैं तब तो प्रस्तुत सूत्र से द् को अन्त्यव्यञ्जन मान कर उसका लोप हो जाता है, किन्तु जहां विभक्ति की अपेक्षा से समस्त शब्द को एक ही पद मान कर चलते हैं, तो अन्त्यव्यञ्जन न होने से प्रस्तुत सूत्र से दकार का लोप नहीं होता। प्रस्तुत सूत्र में चार उदाहरण दे रखे हैं, सभी में अन्त्यत्व और अनन्त्यत्व की कल्पना की जा सकती है, परन्तु वृत्तिकार ने उक्त चारों प्रयोगों में कहीं पर केवल अन्त्यत्व की और कहीं अनन्त्यत्व की कल्पना की है।

१२—श्रद् और उद् इन दोनों उपसर्गों के हलन्त अन्त्यव्यञ्जन का लोप नहीं होता। जैसे— १—**श्रद्+दधि-तम्**=सद्दहिअं (विश्वास-पूर्वक धारण किया हुआ), २—**श्रद्+धा**=श्रद्धा=सद्धा (विश्वास), **३—उद्+गतम्**=उग्गयं (ऊंचा गया हुआ), ४—**उद्+नतम्**=उन्नयं (ऊंचा) यहां ११ सूत्र से अन्त्यव्यञ्जन दकार का लोप होना था किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने उसका निषेध कर दिया।

१३—निर् और दुर् इन दोनों उपसर्गों के अन्त्यव्यञ्जन रेफ के लोप का अभाव विकल्प से होता है। जैसे १—**निर्+सहम्**=निस्सहं, नीसहं(असहनीय, अशक्त)। २—**दुर्+सह:**=दुस्सहो, दूसहो (जो दु:ख से सहन किया जाए)। **३—दु:खित:**=दुक्खिओ, दुहिओ (पीड़ित)। यहां पर ११ सूत्र से अन्त्यव्यञ्जन का लोप नित्य रूप से होना था, किन्तु इस सूत्र द्वारा यह लोपाभाव वैकल्पिक बनाकर एक स्थान पर अन्त्यव्यञ्जन का लोप कर दिया गया और दूसरे स्थान पर लोपाभाव ही सुरक्षित रखा है।

१४—अन्तर्, निर् और दुर् इन उपसर्गों के अन्त्यव्यञ्जन रेफ का स्वर परे रहने पर लोप नहीं होता। जैसे १—**अन्तर्+आत्मा**=अन्तरप्पा (अन्तरात्मा)। २—**निर्+अन्तरम्**=निरन्तरं (सदा)। **३—निर्+अवशेषम्**=निरवसेसं (सम्पूर्ण) ४—**दुर्=उत्तरम्**=दुरुत्तरं (अनिष्ट उत्तर, उतरने में अशक्य) **५—दुर्+अवगाहम्**=दुरवगाहं(स्नान करने में कठिनाई वाला स्थान, जिसमें दु:ख से प्रवेश

किया जा सके) इन शब्दों में ११ सूत्र से रेफ का लोप होना था, किन्तु इस सूत्र ने उसका निषेध कर दिया। '**बहुल**' का अधिकार होने से कहीं पर रेफ का लोप हो भी जाता है, जैसे—**अन्तर्+उपरि**= अन्तोवरि (आन्तरिक भाग के ऊपर)। यहां प्रस्तुत सूत्र से स्वर परे होने के कारण रेफ का लोप नहीं होना चाहिए था, किन्तु **बहुलाधिकार** से उसका लोप हो गया है।

१५—विद्युद् शब्द को छोड़कर स्त्रीलिंग में वर्तमान शब्द के अन्त्यव्यञ्जन को आकार होता है। यह ११वें सूत्र का अपवादस्वरूप सूत्र है। जैसे—१. **सरित्**=सरिआ(नदी)। २. **प्रतिपद्**=पाडिवआ (एकम)। ३. **संपद्**=संपआ (धन)। इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से अन्त्यव्यञ्जन को आकार किया गया है। इस सूत्र में '**बहुल**' का अधिकार होने से आकार में "ईषत्-स्पृष्ट-तर" प्रयत्न वाले यकार की श्रुति (श्रवण) भी हो जाती है, अर्थात् स्त्रीलिंग में वर्तमान शब्द के अन्त्यव्यञ्जन को यकारविशिष्ट आकार होता है। तब **सरिआ**=सरिया, **पाडिवआ**-पाडिवया, **संपआ**=संपया, ये प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं। सूत्र में "**अविद्युतः**" कह कर विद्युत् शब्द का जो निषेध किया गया है, वह '**विज्जू**" (बिजली) इस प्रयोग की सिद्धि के लिए किया गया है, अन्यथा यह प्रयोग नहीं बन सकता था।

१६—स्त्रीलिंग में वर्तमान शब्द के अन्त्यव्यञ्जन 'रेफ' को 'रा' यह आदेश होता है। यह सूत्र **१५** वें सूत्र से होने वाले "आ" का अपवाद-सूत्र है। जैसे **१—गिर्**=गिरा(वाणी), २—**धुर्**=धुरा (गाड़ी का अग्रभाग, जुआ), **३—पुर्**=पुरा(क़सबा)। इन शब्दों में रेफ को आकार होना था किंतु प्रस्तुत सूत्र ने उसे बाध कर '**रा**' यह आदेश कर दिया है। **१७**—'क्षुध्' शब्द के अन्त्यव्यञ्जन को "हा" यह आदेश होता है। क्षुध् के धकार को 'हा' यह आदेश होने से '**छुहा**' (भूख) यह रूप बनता है।

१८—शरद्, और **भिषग्** आदि शब्दों के अन्त्यव्यञ्जन को 'अत्' (अ) यह आदेश होता है। जैसे १—**शरद्**=सरओ (आश्विन-कार्तिक मास)। २—**भिषग्**=भिसओ (वैद्य) इन शब्दों में अन्त्यव्यञ्जन को 'अ' यह आदेश किया गया है। **१९—दिक्** और **प्रावृट्** इन शब्दों के अन्त्यव्यञ्जन को 'स' यह आदेश होता है। जैसे १—**दिक्**=दिसा (दिशा) २—**प्रावट्**=पाउसो (वर्षर्तु) यहां अन्त्यव्यञ्जन को 'स' का आदेश होने से ये प्रयोग बनाए गए हैं। २०—**आयुष्** और **अप्सरस्** शब्द के अन्त्यव्यञ्जन को विकल्प से 'स' का आदेश होता है। जैसे- १—**दीर्घायुष्**=दीहाउसो, दीहाऊ(लंबी उमर वाला)। २—**अप्सरस्**= अच्छरसा, अच्छरा (स्वर्गीय देवी) इन शब्दों में अन्त्यव्यंजन को 'स' यह आदेश किया गया है। २१— 'ककुभ्' शब्द के अन्त्यव्यञ्जन को 'ह' यह आदेश होता है। 'ककुभ्' के 'भ्' को 'ह' यह आदेश होने से '**कउहा**' (दिशा) यह प्रयोग बनता है। २२—**धनुष्** शब्द के अन्त्यव्यञ्जन को विकल्प से हकारादेश होता है। 'धनुष्' के 'ष' को 'ह' यह आदेश होने से '**धणुहं**' और आदेश के अभाव में '**धणू**' (धनुष्) यह प्रयोग सिद्ध होता है।

❀ अथ अनुस्वार-विधिः ❀

२३—**मोऽनुस्वारः** ।८।१।२३। अन्त्यमकारस्यानुस्वारो भवति। जलं, फलं, वच्छं, गिरिं पेच्छ। क्वचिदनन्त्यस्यापि-वणम्मि, वणंमि।

२४—**वा स्वरे मश्च** ।८।१।२४। अन्त्यमकारस्य, स्वरे परेऽनुस्वारो वा भवति। पक्षे लुगपवादो मस्य मकारश्च भवति। वन्दे उसभं अजिअं। उसभमजिअं च वन्दे। बहुलाधि-

कारादन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः । साक्षात्-सक्खं । यत्-जं । तत्-तं । विष्वक्-वीसुं । पृथक्-पिहं । सम्यक्-सम्मं । इहं । इहयं । आलेट्ठुअं, इत्यादि ।

२५—ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने ।८।१।२५। ङ, ञ, ण, न इत्येतेषां स्थाने व्यञ्जने परे अनुस्वारो भवति । ङ । पङ्क्तिः-पंती । पराङ्मुखः-परंमुहो । ञ । कञ्चुकः-कंचुओ । लाञ्छनम्-लंछणं । ण । षण्मुखः-छंमुहो । उत्कण्ठा-उक्कण्ठा । न । सन्ध्या । संझा । विन्ध्यः-विंझो ।

२६—वक्रादावन्तः ।८।१।२६। वक्रादिषु यथादर्शनं प्रथमादेः स्वरस्य अन्त आगमरूपोऽनुस्वारो भवति । वंकं । तंसं । अंसुं । मंसू । पुंछं । गुंछं । मुंढा । पंसू । बुंधं । कंकोडो । कुंपलं । दंसणं । विंछिओ । गिंठी । मंजारो । एष्वाद्यस्य । वयंसो । मणंसी । मणंसिणी । मणंसिला । पडंसुआ । एषु द्वितीयस्य । अवरिं । अणिउंतयं । अइमुंतयं । अनयोस्तृतीयस्य । वक्र । त्र्यस्र । अश्रु । श्मश्रु । पुच्छ । गुच्छ । मूर्द्धन् । पर्शु । बुध्न । कर्कोट । कुड्मल । दर्शन । वृश्चिक । गृष्टि । मार्जार । वयस्य । मनस्विन् । मनस्विनी । मनःशिला । प्रतिश्रुत् । उपरि । अतिमुक्तक । इत्यादि । क्वचिच्छन्दः-पूरणेऽपि-देवं-नाग-सुवण्ण । क्वचिन्न भवति-गिट्ठी । मज्जारो । मणसिला । मणासिला । आर्षे । मणोसिला । अइमुत्तयं ।

२७—क्त्वा-स्यादेर्ण-स्वोर्वा ।८।१।२७। क्त्वायाः स्यादीनां च यौ णसू, तयोरनुस्वारोन्तो वा भवति । क्त्वा । काऊणं, काऊण, काउआणं, काऊआण । स्यादि । वच्छेणं वच्छेण । वच्छेसुं, वच्छेसु । णस्वोरिति किम् ? करिअ । अग्गिणो ।

२८—विंशत्यादेर्लुक् ।८।१।२८। विंशत्यादीनामनुस्वारस्य लुग् भवति । विंशतिः-बीसा । त्रिंशत्-तीसा । संस्कृतम्-सक्कयं । संस्कारः-सक्कारो इत्यादि ।

२९—मांसादेर्वा ।८।१।२९। मांसादीनामनुस्वारस्य लुग् वा भवति । मासं, मंसं । मासलं, मंसलं । कासं, कंसं । पासू, पंसू । कह, कहं । एव, एवं । नूण, नूणं । इआणि, इआणिं । दाणि, दाणिं । कि करेमि, किं करेमि । समुहं, संमुहं । केसुअं, किंसुअं । सीहो, सिंघो । मांस । मांसल । कांस्य । पांसु । कथम् । एवम् । नूनम् । इदानीम् । किम् । संमुख । किंशुक । सिंह, इत्यादि ।

३०—वर्गेऽन्त्यो वा ।८।१।३०। अनुस्वारस्य वर्गे परे प्रत्यासत्तेः तस्यैव वर्गस्यान्त्यो वा भवति । पङ्को, पंको । सङ्खो, संखो । अङ्गणं, अंगणं । लङ्घणं, लंघणं । कञ्चुओ, कंचुओ । लञ्छणं, लंछणं । अञ्जिअं, अंजिअं । सञ्झा, संझा । कण्टओ, कंटओ । उक्कण्ठा, उक्कंठा । कण्डं, कंडं । सण्ढो, संढो । अन्तरं, अंतरं । पन्थो, पंथो । चन्दो, चंदो । बन्धवो,

बंधवो। कम्पइ, कंपइ। वम्फइ, वंफइ। कलम्बो, कलंबो। आरम्भो, आरंभो। वर्ग इति किम्? संसओ। संहरइ। नित्यमिच्छन्त्यन्ये।

❀ अथ अनुस्वार-विधिः ❀

अथाचार्योऽनुस्वारविधिं निरूपयति। यथा—**जलम्**। जल+सि। जल+अम्। ५१४ सेर्मकारे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **जलं** इति सिद्धम्। एवमेव-**फलम्**। फल+अम्। **फलं** इति साध्यम्। **वृक्षम्**। वृक्ष+अम्। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, २७४ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, ११ सू० प्राप्तं लुकं प्रबाध्य २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **वच्छं** इति सिद्धम्। **गिरिं**। गिरि+अम्। **जलं** इति वत् साध्यम्। **पश्य**। दृश् प्रेक्षणे। दृश्+हि। ८५२ सू० दृशेः पेच्छ इत्यादेशे, ६६२ सू० '**हि**' इत्यस्य सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि **पेच्छ** इति सिद्धम्। **क्वचिदनन्त्यस्यापीति**। बहुलाधिकारात् **क्वचिदन्यदेव** इत्यंशस्य प्रवृत्त्या अनन्त्यस्यापीत्यर्थः। **वने**। वन+ङि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५०० सू० ङेः म्मि इत्यादेशे-**वणम्मि** इति सिद्धम्। प्रस्तुतसूत्रे बहुलाधिकारात् अनन्त्यस्यापि मकारस्यानुस्वारे—**वणंमि** इति भवति। **वन्दे ऋषभम्**। वन्दे इति संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **ऋषभम्**। ऋषभ+अम्। १३१ सू० ऋकार-स्योकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **उसभं** इति सिद्धम्। **अजितम्**। **ऋषभमजितं च वन्दे**। अजित+अम्। १७७ सू० तकारस्य लोपे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, मकारस्यानुस्वारे कृते **अजिअं** इति सिद्धम्। **उसभं अजिअं** इति स्थिते। २४ सूत्रेणात्र स्वरे परे मकारस्य स्थाने वैकल्पिकोऽनुस्वारो विधीयते, यत्रानुस्वारोऽवस्थितस्तत्र **उसभं अजिअं**, यत्र नानुस्वारस्तत्र **उसभमजिअं** इति भवति। **च** इत्यव्ययपदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते।

बहुलाधिकारादन्यस्यापि। प्रस्तुत-सूत्रेण स्वरे परे अन्त्यमकारस्य वैकल्पिकोऽनुस्वारो भवति। नैतेन सूत्रेण कस्यचिद् वर्णस्य स्थाने मकारादेशो विधीयते, परन्तु बहुलाधिकाराद् अन्यस्यापि-मकारभिन्नस्या व्यञ्जनस्य मकारो भवति। अन्यस्य व्यञ्जनस्य स्थाने मकार-विधानम्, अनुस्वार-निमित्तकमेव बोध्यमतः मकारो भवति= अनुस्वारो भवतीत्ययमेवाभिप्रायोऽवसेयः। यथा—**साक्षात्**। अव्ययपदमिदम्। ८४सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य ककारे, ६७ सू० आकारस्य विकल्पेन अकारे, लुकं बाधित्वा **बहुलाधिकारात्** २४ सू० तकारस्यापि मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सक्खं** इति सिद्धम्। **यत्**। यद्+सि। २४५ सू० यकार-स्य जकारे, **बहुलाधिकारात्** तकारस्य मकारे, मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे **जं** इति सिद्धम्। **तद्**। तद्+सि, अन्त्यतकारस्य मकारे, मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे **तं** इति सिद्धम्। **विष्वक्**। विष्वक्+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपे, ४३ सू० इकारस्य दीर्घे, ५२ सू० आदेरकारस्योत्वे, २६० सू० षकारस्य सकारे, **बहुलाधिकारात्** ककारस्यापि मकारे, मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे **वीसुं** इति सिद्धम्। **पृथक्**। अव्ययपदमिदम्। १२८ सू० ऋकारस्येकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, बहुलाधिकारात् ककारस्यापि मकारे, मकारस्यानु-स्वारे **पिहं** इति सिद्धम्। **सम्यक्**। सम्यक्+सि। ३४६ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, **बहुलाधिकारात्** ककारस्यापि मकारे, मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे **सम्मं** इति सिद्धम्। **ऋधक्**। अव्ययपद-मिदम्। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, **बहुलाधिकारात्** ककारस्यापि मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **इहं** इति सिद्धम्। **इह**। अव्ययपदमिदम्। ४३५ सू० **स्वार्थे** क-प्रत्यये, १७७ सू० कका-

रस्य लोपे, १८० सू० य-श्रुतौ, १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, बहुलाधिकारात् २४ सू० सकारस्य मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **इहयं** इति सिद्धम्। **आश्लेष्टुम्।** अव्ययपदमिदम्। ३४८ सू० शकारस्य लोपे, ३०५ सू० 'ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० ठकारस्य टकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, २८ सू० अनुस्वारस्य लोपे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सि-प्रत्यये, आलेट्ठुअ+सि इति स्थिते १।१।३७। सू०सेरिकारस्य लोपे, बहुलाधिकारात् सकारस्य मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **आलेट्ठुअं** इति सिद्धम्।

पङ्क्तिः। पङ्क्तिः+सि। २५ सूत्रेण ङकारस्यानुस्वारे, ३४८ सू० ककारस्य लोपे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **पंती** इति सिद्धम्। **पराङ्मुखः।** पराङ्मुख+सि, ८४ सू०संयोगे परे ह्रस्वे, २५ सू०ङकारस्यानुस्वारे, १८७ सू०खकारस्य हकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **परंमुहो** इति सिद्धम्। **कञ्चुकः**। कञ्चुक+सि। २५ सू० ञकारस्यानुस्वारे, १७७ सू० ककारलोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कंचुओ** इति सिद्धम्। **लाञ्छनम्।** लाञ्छन+सि। संयोगे परे ह्रस्वे, २५ सू० ञकारस्यानुस्वारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **लंछणं** इति सिद्धम्। **षण्मुखः**। षड् मुखानि यस्य सः षण्-मुखः। षण्-मुख+सि। २६५ सू० षकारस्य छकारे, २५ सू० णकारस्यानुस्वारे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **छंमुहो** इति सिद्धम्। **उत्कण्ठा**। उत्कण्ठा+सि। ३४८ सू० तकारस्य लोपे, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वे, २५ सू० णकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे, **उक्कंठा** इति सिद्धम्। **संध्या।** सन्ध्या+सि। २५ सू० नकारस्यानुस्वारे, २६७ सू० ध्यस्य झकारे, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वे प्राप्ते ३६३ सू० तन्निषेधे, सेर्लोपे, **संझा** इति सिद्धम्। **विन्ध्यः**। विन्ध्य+सि। २५ सू० नकारस्यानुस्वारे, ध्यस्य झकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **विंझो** इति सिद्धम्।

१—वक्रम्। वक्र+सि। २६ सू० प्रथमस्वरस्यान्तेऽनुस्वारागमे, ३५० सू० रेफलोपे, ककारस्य ३६० सू० द्वित्वे प्राप्ते ३६३ सू० तन्निषेधे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **वंकं** इति सिद्धम्। **२—त्र्यस्त्रम्।** त्र्यस्त्र+सि। पूर्ववदनुस्वारागमे, ३५० सू०रेफलोपे, ३४६ सू० य लोपे, ३५० सू० रेफलोपे, पूर्ववदेव द्वित्व-निषेधे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **तंसं** इति सिद्धम्। **३—अश्रु**। अश्रु+सि। प्रथमस्वरस्यान्तेऽनुस्वारागमे, रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववद् द्वित्वनिषधे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **अंसुं** इति सिद्धम्। **४—श्मश्रु**। श्मश्रु+सि। ३४८ सू०प्रथम-संयुक्त-शकारस्य लोपे, अनुस्वारागमे, २६०सू० शकारस्य सकारे, रेफ-लोपे, पूर्वरीत्या द्वित्वनिषेधे, ५०८ सू०उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे, **मंसू** इति सिद्धम्। **५—पुच्छम्।** पुच्छ+सि। अनुस्वारागमे १।३।३०। सू० छकारस्य यद् द्वित्वं तद् स्वरात्परत्वमाश्रित्यासीत्, अनुस्वारे च कृते तद्-व्यवधाने छकारस्य स्वरात् परत्वाभावेन **निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपायः** इत्यनया परि-भाषया छकार-मात्रेऽवशिष्टे सति पुंछ+सि, इति स्थिते, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **पुंछं** इति **सिद्धम्। गुच्छम्**। गुच्छ+सि। **पुंछं**—वत् **गुंछं** इति साध्यम्। **७—मूर्धा**। मूर्धन्+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, अनुस्वारागमे, ३१२ सू० र्धस्य ढकारे, ३६३ सू०द्वित्वनिषेधे, ११ सू०नकारस्य लोपे सति, ५४५ सू० राजवत्त्वात्, ५३८ सूत्रेण अकारस्य आकारे, सेर्लोपे, **मुंढा** इति सिद्धम्। वैकल्पिकत्वात् ३० सूत्रस्या-प्रवृत्तौ **मुंढा** तथा प्रवृत्तौ **मुण्ढा** इत्यपि भवति। **८—पर्शुः**। **पर्शु**+सि। प्रस्तुत-सूत्रेणानुस्वारागमे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६३ सू० द्वित्व-निषेधे, २६० सूत्रेण शकारस्य सकारे, ५०८ सूत्रेण उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **पंसू** इति सिद्धम्। **६—बुध्नः**। बुध्न+सि। अनुस्वारागमे, ३४६ सू० न-लोपे, ३६३ सू० द्वित्व-

निषेधे, पुल्लिंगस्यापि बुध्न-शब्दस्य ३४ सू० क्लीबे प्रयुक्ते, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **बुंधं** इति सिद्धम्, ३० सूत्रस्य प्रवृत्तौ तु **बुन्धं** इति भवति। १०—**कर्कोटः**। कर्कोट+सि। अनुस्वारागमे, ३५०सू० रेफलोपे, ३६३ सू० द्वित्वनिषेधे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **कंकोडो** इति सिद्धम्। ११—**कुड्मलः**। कुड्मल+सि। अनुस्वारागमे, ३२३ सू० ड्म इत्यस्य पकारे, ३६३ सू० द्वित्वनिषेधे, ३४ सू० अस्य शब्दस्य क्लीबे प्रयोगे कृते, सेर्मकारे मकारस्यानुस्वारे **कुंपलं**, ३० सूत्रस्य प्रवृत्तौ **कुम्पलं** इति भवति। १२—**दर्शनम्**। दर्शन+सि। अनुस्वारागमे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६३ सू०द्वित्वनिषेधे, शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **दंसणं** इति सिद्धम्। १३—**वृश्चिकः**। वृश्चिक+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, अनुस्वारागमे, २८७ सूत्रस्य वैकल्पिकत्वादप्रवृत्तौ सत्यां, २९२ सू० श्चस्य छकारे, ३६३ सू० द्वित्वनिषेधे, १७७ सू० ककार-लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**विंछिओ** इति सिद्धम्। १४—**गृष्टिः**। गृष्टि+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, अनुस्वारागमे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६३ सू०द्वित्वनिषेधे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे, **गिंठी** ३० सूत्रस्य प्रवृत्तौ **गिण्ठी** इति सिद्धम्। १५—**मार्जारः**। मार्जार+सि। ४०३ सूत्रस्य वैकल्पिकत्वेनाऽप्रवृत्तौ सत्यां ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, प्रस्तुत-सूत्रेणाऽनुस्वारागमे, ३५० सू०रेफलोपे, ३६० सू० द्वित्वे प्राप्ते, ३६३सू० तन्निषेधे, सेर्लोपे, **मंजारो**,३० सूत्रस्य प्रवृत्तौ **मञ्जारो** इति भवति। **एषु पूर्वोक्तेषु** प्रयोगेषु आदिस्वरस्यानुस्वारागमः। अग्रिमेषु प्रयोगेषु द्वितीयस्वरस्यानुस्वारागमोऽवगन्तव्यः। यथा १—**वयस्यः**। वयस्य+सि। २६ सू० द्वितीयस्वरस्यानुस्वारागमे, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६०सू०द्वित्वे प्राप्ते, ३६३सू० तन्निषेधे, अनुस्वारस्य व्यवधाने, ४३ सूत्रस्याप्रवृत्तौ, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वयंसो** इति सिद्धम्। २—**मनस्वी**। मनस्विन् +सि। २२८सू० नकारस्य णकारे, अनुस्वारागमे, ३५० सू० वकारस्य लोपे, ३६३ सू० द्वित्वनिनषेधे, ११ सू० नकारस्य लोपे, ५०८सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **मणंसी** इति सिद्धम्। ३—**मनस्विनी**। मनस्विनी+सि। **मणंसी**-वत् **मणंसिणी** साध्यम्। ४—**मनःशिला**। मनस्शिला+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, अनुस्वारागमे, ११ सू० वाक्यापेक्षया, मनस् इत्यत्र सकारस्यान्त्यत्वाल्लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्लोपे **मणंसिला** इति सिद्धम्। ५—**प्रतिश्रुत्**। प्रतिश्रुत्+सि। रेफलोपे, ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, अनुस्वारागमे, शकारस्य सकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, १५ सू० तकारस्य आकारे, सेर्लोपे, **पडंसुआ** इति सिद्धम्। उपरितनेषु पञ्चप्रयोगेषु द्वितीयस्वरस्यान्तेऽनुस्वारागमो विहितः। अधुना प्रयोगद्वये तृतीयस्वरान्तेऽनुस्वारस्यागमो बोधव्यः। यथा— १—**उपरि**। अव्ययपदमिदम्। १०८ सू० विकल्पेन उकारस्य अकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, २६ सू०तृतीयस्वरस्यान्तेऽनुस्वारागमे, **उवरिं** इति सिद्धम्। २—**अतिमुक्तकः**। अतिमुक्तक+सि। २०८ सू० प्रथम-तकारस्य णकारे, १७८ सू० मकारस्य लोपे, तस्य स्थाने च 'उँ' इति जाते, **अणिउँक्तक+सि** इति स्थिते, ३४८ सू० संयुक्त-ककारस्य लोपे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, ३४ सू० पुल्लिंगोऽप्ययं शब्दः क्लीबे प्रयुक्तः, ततः, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **अणिउँतयं**, यत्र बाहुल्येन २०८ सू०तकारस्य णकारो न जातः, तत्र १७७ सू० तकारस्य लोपे, बहुलाधिकारात् १७८ सू० मकारस्य लोपाभावे तत्स्थानेऽनुनासिकाभावे च, २६ सू० तृतीयस्वरस्यान्तेऽनुस्वारागमे, **अइमुंतयं** इति भवति। **क्वचिदिति**। वक्रादिभिन्नेऽपि कस्मिंश्चित् प्रयोगे बहुलाधिकारात् छन्दः-पूर्त्यर्थं द्वितीयस्वरस्यान्तेऽनुस्वारागमो जायते। यथा—**देवनाग-सुपर्णाः**। देवाश्च नागाश्च सुपर्णाश्च तेषां समाहारः, देवनागसुपर्णाः। देवनागासुपर्ण+सि। बहुलाधिकारात् छन्दःपूर्त्यर्थं २६

सू० द्वितीयस्वरान्तेऽनुस्वारागमे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्त्वे, सेर्लोपे **देवं-नाग-सुवण्ण**इति सिद्धम्। **क्वचिन्नेति**। वक्रादिषु वर्तमानानामपि केषाञ्चित् प्रयोगाणां प्रथमादेः स्वरस्य बहुलाधिकारात् २६ सू० अनुस्वारागमो न भवति। यथा— १—**गृष्टिः**। गृष्टि+सि। बहुलाधिकारात् यत्र नानुस्वारागमस्तत्र पूर्ववदेव गिठी+सि, इति जाते, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्व-ठकारस्य टकारे, सेर्लोपे **गिट्ठी** इति सिद्धम्। २—**मार्जारः**। मार्जारः+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, बाहुल्येनात्र, २६ सू० नानुस्वारः, ३५०सू० रेफस्य लोपे, ३६०सू० जकारस्य द्वित्त्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **मज्जारो** इति सिद्धम्। ४—**मनःशिला**। मनस्शिला+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, **बहुलाधिकारात्** २६ सू० नानुस्वारागमः, किन्तु, वाक्यापेक्षया सकारस्य अन्त्यत्वात् ११ सू०लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्लोपे **मणसिला**, यत्र विभक्त्यपेक्षया सकारस्य अन्त्यत्वाभावस्तत्र ३४८ सू० सकारस्य लोपे, ४३ सू० द्वितीय-स्वरस्य दीर्घे, **मणासिला** इति जातम्। **आर्षे**। आर्षप्राकृते तु ओकारे कृते **मणोसिला** इत्यपि रूपं भवति। ४—**अतिमुक्तकः**। अतिमुक्तक+सि। अत्र पूर्ववदेव **अइमुतयं** इति जाते, ३६० सू० तकारस्य द्वित्त्वे, **अइमुत्तयं** इति सिद्धम्।

कृत्वा। कृ करणे। कृ+क्त्वा=त्वा। ८८५ सू० ऋकारस्य आकारे, ४१७ सू० क्त्वास्थाने तूण (ऊण), तुआण(उआण) इत्यादेशयोः जातयोः, १७७ सू० तकारस्य लोपे, का+ऊण, का+उआण इति स्थिते, २७ सू० विकल्पेनानुस्वारागमे **काऊणं, काऊण, काउआणं, काउआण** इति सिद्धम्। **वृक्षेण**। वृक्ष+टा। १२६ सू० ऋकारस्याऽकारे, २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ४६५ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे, २७ सू० विकल्पेनानुस्वारागमे **वच्छेणं वच्छेण** इति सिद्धम्। **वृक्षेषु**। वृक्ष+सुप्। पूर्ववदेव वच्छ+सु इति जाते। ५०४ सू० अकारस्य एकारे, २७ सू० विकल्पेनाऽनुस्वारागमे **वच्छेसुं, वच्छेसु** इति सिद्धम्। **णस्वोरिति**। २७ सूत्रेण, सु इत्येतयोः ग्रहणं किमर्थम्? प्रयोगद्वय-माध्यमेन उत्तरयति वृत्तिकारः। **कृत्वा**। कृ+त्वा (कृत्वा) ६०५ सू० ऋकारस्यारादेशे, ४१७ सू० क्त्वा-स्थाने अत् (अ) इत्यादेशे, ६४६ सू०रेफस्थस्याकारस्य इकारे **करिअ** इति सिद्धम्। **अग्नयः**। अग्नि+जस्। ३४९ सू० नकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्त्वे, ५११ सू० जसः णो इत्यादेशे **अग्गिणो** इति सिद्धम्। अत्र प्रयोगद्वये णस्वोरभावात् नानुस्वारागमः। **विंशतिः**। विंशति+सि। २८ सू० अनुस्वारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे ,९२ सू० तिशब्देन सह इकारस्य दीर्घे, वीस+सि इति जाते, २।४।१८। [1]सू० आप्-प्रत्यये, सन्धौ वीसा+सि, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **वीसा** इति सिद्धम्। **त्रिंशत्**। त्रिंशत्+सि। ९२ सू० इकारस्य दीर्घे, ३५० सू० रेफलोपे, २८ सू० अनुस्वारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य तकारस्य लोपे, संस्कृतवद् आप्-प्रत्यये, सन्धौ कृते-तीसा+सि, सेर्लोपे, **तीसा** इति सिद्धम्। **संस्कृतम्**। संस्कृत+सि। २८ सू० अनुस्वारस्य लोपे, ३४८ सू० संयुक्तसकारस्य लोपे, ३६० सू० ककारस्य द्वित्त्वे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **सक्कयं** इति सिद्धम्। संस्कारः। संस्कार+सि। २८ सू० अनुस्वारलोपे, संयुक्त-सकार-लोपे, ककारस्य द्वित्त्वे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सक्कारो** इति सिद्धम्।

मांसम्। मांस+सि। २९ सू० विकल्पेनाऽनुस्वार-लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्या-

१—**आत्**। २।४।१८। अकारान्तात् स्त्रियामाप् स्यात्। खट्वा। या। सा। —हैमशब्दानुशासने।

नुस्वारे **मासं** अनुस्वार-लोपाभावे, ७० सू० आदेराकारस्य अकारे **मंसं** इत्यपि भवति । **मांसलम्** । मांसल +सि । **मासलं, मंसलं**, इति रूपद्वयं **मासं मंसं** इतिवत् साध्यम् । **कांस्यम्** । कांस्य+सि । विकल्पेनाऽनुस्वारलोपे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **कासं** लोपाभाव-पक्षे, ७० सू० आकार-ह्रस्वे **कंसं** इति भवति । **पांसुः** । पांसु+सि । २९ सू० विकल्पेनानुस्वारलोपे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, ३।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य-लोपे-**पासू**, अनुस्वारलोपाभावे, ७० सू० आकारस्य अकारे **पंसू** इति सिद्धम् । **कथम्** । अव्ययपदमिदम् । १८७ सू० थकारस्य् हकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, प्रस्तुत-सूत्रेण विकल्पेनाऽनुस्वार-लोपे, **कह** लोपाभावपक्षे **कहं** इति सिद्धम् । **एवम्** । अव्ययपदमिदम् । २३ सू० मकारस्यानु वारे, प्रस्तुत-सूत्रेण विकल्पेनानुस्वार-लोपे **एव** लोपाभावपक्षे **एवं** इति सिद्धम् । **नूनम्** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० अन्त्यनकारस्य णकारे, २९ सू० विकल्पेनानुस्वार-लोपे **नूण**, अनुस्वारलोपाभावे **नूणं** इति सिद्धम् । **इदानीम्** । अव्ययपदमिदम् । १७७ सू० दकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, २३ सू० मकारस्यानुवारे, २९ सू० विकल्पेन अनुस्वारलोपे, **इआणि** लोपाभावे, **इआणिं** इति सिद्धम् । **इदानीम्** । अव्ययपदमिदम् । शौरसेनी-भाषारीत्या ६४८ सू० **इदानीम्** इत्यस्य स्थाने **दाणि** इत्यादेशे, २९ सूत्रेण विकल्पेनानुस्वारलोपे-**दाणि**, लोपाभावे-**दाणिं** इति सिद्धम् । **किम्** । अव्ययपदमिदम् । २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, २९ सू०विकल्पेनानुस्वारस्य लोपे, **कि**, लोपाभावे—**किं** इति सिद्धम् । **करेमि** । कृ करणे । कृ+मिव् । ६०५ सू० ऋकारस्यारादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६३० सू०मिवः स्थाने 'मि' इत्यादेशे, **करेमि** इति सिद्धम् । **संमुखम्** । संमुख+सि । २९ सू० विकल्पेनानुस्वारलोपे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **समुहं**, अनुस्वारलोपाभावे **संमुहं** इति सिद्धम् । **किंशुकम्** । किंशुक+सि । ८९ सू० इकारस्य वैकल्पिक एकारे, २८ सू० विकल्पेनानुस्वारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककारस्यलोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे-**केसुअं**, अनुस्वारलोपाभावे- **किंसुअं** इति सिद्धम् । **सिंहः** । सिंह+सि । ९२ सू० विकल्पेन ईकारे, २९ सू० विकल्पेनानुस्वारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **सीहो** अनुस्वारलोपाभावे तु २६४ सू० हकारस्य घकारे **सिंघो** इति सिद्धम् ।

पङ्कः । पङ्क+सि । २५ सू० ङकारस्यानुस्वारे, ३० सूत्रेण वैकल्पिकेऽनुस्वारस्य वर्गान्त्ये (अन्ते भवः, अन्त्यः, वर्गस्य अन्त्यः, वर्गान्त्यस्तस्मिन्) ङकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **पङ्को** पक्षे (वर्गान्त्याभावे) **पंको** इति सिद्धम् । **शङ्खः** । शङ्ख+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे-**सङ्खो-संखो**, इति सिद्धम् । शेषं पङ्क-वद् बोध्यम् । **अङ्गनम्** । अङ्गन+सि । २५ सू० ङकारस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अङ्गणं, अंगणं** इति सिद्धम् । **लङ्घनम्** । लङ्घन+सि । अङ्गणं-वद् **लङ्घणं, लंघणं** इति साध्यम् । **कञ्चुकः** । कञ्चुक+सि । २५ सू० ञकारस्यानुस्वारे, विकल्पेनानुस्वारस्य वर्गान्त्ये, १७७ सू० द्वितीयककारस्य लोपे सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **कञ्चुओ, कंचुओ** इति सिद्धम् । **लाञ्छनम्** । लाञ्छन+सि । ञकाररस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे-**लञ्छणं**, **लंछणं** इति सिद्धम् । **अञ्जितम्** । अञ्जित+सि । ञकारस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे,**अञ्जिअं** वर्गान्त्याभावे **अंजिअं** इति सिद्धम् । **सन्ध्या** । सन्ध्या+सि । २५सू० नकारस्यास्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, २९७ सू० ध्यस्य स्थाने झकारे, ३६०सू० प्राप्तस्य झद्वित्वस्य ३६३ सू० निषेधे—**सञ्झा**, ञकाराभावे **संझा** इति सिद्धम् । **सञ्झा** इत्यत्र प्रकृतसूत्रेणानुस्वारस्य

ञकारे सति अनुस्वारात्परत्वाभावेन ३६३ सूत्र-विहित-निषेधाप्रवृत्तौ ३६० सूत्रेण झकारस्य कथं न द्वित्त्वमिति न वाच्यम्। **'सकृद्गतौ यद्बाधितं तद्बाधितमेवे'** ति परिभाषया सकृद्बाधितस्य तस्य पुनर-प्राप्तिरेवेति। **कण्टकः**। कण्टक+सि। २५ सू० णकारस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, १७७ सू० द्वितीय-ककारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **कण्टओ, कंटओ** इति सिद्धम्। **उत्कण्ठा**। उत्कण्ठा +सि। ३४८ सू० तकारस्यलोपे, ३६० सू० ककारस्य द्वित्त्वे, २५ सू० णकारस्यानुस्वारे, अनुस्वारस्य विकल्पेन वर्गान्त्ये सेर्लोपे-**उक्कण्ठा, उक्कंठा** इति सिद्धम्। **काण्डम्**। काण्ड+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, **२५** सू० णकारस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये णकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **कण्डं, कंडं** इति सिद्धम्। **षण्ढः**। षण्ढ+सि। २६० षकारस्य सकारे, २५सू० णकारस्यानुस्वारे, वैकल्पिके वर्गान्त्ये, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **सण्ढो, संढो** इति सिद्धम्। **अन्तरम्**। अन्तर+सि। नकारस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **अन्तरं, अंतरं** इति सिद्धम्। **पान्थः**। पान्थ+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २५सू० नकारस्यानुस्वारे, अनुस्वारस्य विकल्पेन वर्गान्त्ये, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे **पन्थो, पंथो** इति सिद्धम्। **चन्द्रः**। चन्द्र+सि। नकारस्यानुस्वारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० द्वित्वे प्राप्ते, **३६३** सू० तन्निषिद्धे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **चन्दो, चंदो** इति सिद्धम्। **बान्धवः**। बान्धव+सि। पान्थवत् **बन्धवो, बंधवो,** इति साध्यम्। **कम्पते**। कम्प् कंपने। कम्प्+ते। २३ सू० क्वचिदनन्त्यस्यापि मकारस्यानुस्वारे, अनुस्वारस्य विकल्पेन वर्गान्त्ये, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू०'ते' इत्यस्य इचादेशे **कम्पइ, कंपइ** इति सिद्धम्। **कांक्षति**। कांक्षि कांक्षायाम्। संस्कृत-नियमानुसारेण कांक्ष्+ति, इति जाते, ८६३ सू० कांक्ष् इत्यस्य वम्फ इत्यादेशे, २३ सू० क्वचिदनन्त्यस्यापि मकारस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, ६२८ सू० 'ति' इत्यस्य स्थाने इच् (इ) इत्यादेशे **वम्फइ, वंफइ** इति सिद्धम्। **कदम्बः**। कदम्बः+सि। २२२ सू० दकारस्य लकारे, २३ सू० अन-न्त्यापि मकारस्यानुस्वारे, विकल्पेन वर्गान्त्ये, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **कलम्बो, कलंबो**, इति सिद्धम्। **आरम्भः**। कदम्बवत् **आरम्भो आरंभो** इति साध्यम्। **वर्गे ति**। प्रश्नमुखेन प्रकृतसूत्रे वर्ग-ग्रहण-फलं प्रतिपादयति वृत्तिकारः। **संशयः**। संशय+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे, **संसओ** इति सिद्धम्। कवर्गादिपञ्चवर्गा भवन्ति, सकार य वर्ग-स्थितेरभावादत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **संहरति**। सम्पूर्वकः हृधातुः संहारे। संहृ+तिव्। ६०५ सू० ऋकारस्य अरादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **संहरइ** इति सिद्धम्। अत्र हकारस्य वर्गपरत्वाभावात् अनुस्वारस्य वर्गान्त्यो न जातः। **नित्यमिति**। अन्ये वैयाकरणाः शब्दशास्त्ररचयितारः **अनुस्वारस्य विकल्पेन वर्गान्त्यो भवति** इति नेच्छन्ति, तेषां मतेऽनुस्वारस्य वर्गान्त्यादेशो नित्यो जायते। ते ३० सूत्रे **वा** इत्यस्य पदस्य प्रयोगं न कुर्वन्तीति भावः।

❋ अथ अनुस्वार-विधि ❋

स्वर के बाद उच्चारण किया जाने वाला अनुनासिक वर्ण अनुस्वार कहलाता है। प्राकृत-भाषा में अनुस्वार किस वर्ण के स्थान में होता है? और अनुस्वार के स्थान में क्या आदेश होता है? आदि अनुस्वार-सम्बन्धी कार्यों का इस प्रकरण में निरूपण किया जा रहा है।

२३—पद के अन्तिम, हलन्त मकार को अनुस्वार होता है। जैसे—**१—जलम्**=जलं (पानी) **२—फलम्**=फलं (फल)। **३—वृक्षम्**=वच्छं (वृक्ष)। **४—गिरिम्**=गिरिं (पर्वत) इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से 'म्' को अनुस्वार किया गया है। **प्रेक्ष्य**-पेच्छ(देखो)यह क्रियापद है। **'बहुल'** के अधिकार से कहीं

पर अनन्त्य (जो अन्त में नहीं है) मकार को भी अनुस्वार हो जाता है। जैसे—**वने**=वणम्मि=वणंमि (वन में) यहां अन्त्य-मकार न होने पर भी उसे अनुस्वार किया गया है।

२४—यदि स्वर परे हो तो अन्त्यमकार को विकल्प से अनुस्वार हो जाता है। जहां मकार को अनुस्वार नहीं होता, वहां पर **११** सूत्र से प्राप्त होने वाले लोप के "अपवाद-स्वरूप मकार" का मकार ही रहता है। ११वाँ सूत्र अन्त्यव्यञ्जन-रूप मकार के लोप का विधान करता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र स्वर के परे रहने पर उसको विकल्प से अनुस्वार बना डालता है। ऐसी स्थिति में यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अनुस्वार के अभावपक्ष में क्या ११ सूत्र से मकार का लोप हो जाता है या मकार ज्यों का त्यों ही अवस्थित रहता है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए वृत्तिकार फरमाते हैं कि अनुस्वार के अभाव-पक्ष में मकार का लोप नहीं होता, प्रत्युत उस का (लोप का अपवादस्वरूप) मकार ही रहता है। लोप का अपवाद-बाधक होने से यहां पर मकार को लोप का अपवाद-स्वरूप मकार कहा गया है। **१—वन्दे ऋषभम् अजितम्, ऋषभमजितञ्च वन्दे**=वन्दे उसभं अजिअं, उसभमजिअं च वन्दे (ऋषभ और अजित नाथ को मैं वंदना करता हूँ) यहां पर स्वर परे रहने के कारण मकार को विकल्प से अनुस्वार किया गया है। अतएव दो रूप बने हैं। प्रस्तुत सूत्र में '**बहुल**' का अधिकार होने से मकार-भिन्न व्यञ्जन को भी अनुस्वार हो जाता है। जैसे—१—**साक्षात्**=सक्खं (प्रत्यक्ष)। २—**यत्**=जं (जो)। ३—**तत्**=तं (वह) ४—**विष्वक्**=वीसुं (चारों ओर)। ५—**पृथक्**=पिहं (अलग)। ६—**सम्यक्**=सम्मं (अच्छी तरह), ७—**ऋधक्**=इहं, (देना, मारना, निन्दा करना, लड़ना)। ८—**इह**=इहयं (यहां पर)। ९—**आश्लेष्टुम्**=आलेट्ठुअं (आलिंगन करने के लिए) यहां मकारभिन्न व्यञ्जन को मकारादेश होने से ये प्रयोग बने हैं।

२५—ङ, ञ, ण, न के स्थान पर व्यञ्जन के परे रहने पर अनुस्वार होता है। जैसे ङ के उदाहरण—**पङ्क्तिः**—पंती (रेखा, समूह), **पराङ्मुखः**=परंमुहो (विमुख), ञ के उदाहरण-**कञ्चुकः**=कंचुओ(अंगिया), **लाञ्छनम्**=लंछणं (चिन्ह), ण के उदाहरण—**षण्मुखः**=छं-मुहो (शिव-पुत्र), **उत्कण्ठा**=उक्कंठा (लालसा), न के उदाहरण-**सन्ध्या**=संझा (सन्ध्याकाल), **विन्ध्यः**=विंझो (विन्ध्याचल पर्वत) इन शब्दों में क्रमशः ङ, ञ, ण और न को अनुस्वार किया गया है।

२६—**वक्र, त्र्यस्र** आदि शब्दों में यथा—दर्शन(प्रयोग के अनुसार)प्रथम तथा द्वितीय आदि स्वरों के अन्त में आगमरूप अनुस्वार होता है। जैसे—१—**वक्रम्**=वंकं (टेढ़ा), २—**त्र्यस्रम्**=तंसं (त्रिकोण), ३—**अश्रु**=अंसुं (आँसू), ४—**श्मश्रु**=मंसू (दाढ़ी), ५—**पुच्छम्**=पुंछं (पूंछ), ६—**गुच्छम्**=गुंछं (फलों का गुच्छा), ७—**मूर्धा**=मुंढा (मस्तक), ८—**पर्शुः**=पंसू (कुल्हाड़ा), ९—**बुध्नम्**=बुंधं (सब से नीचे का भाग), १०—**कर्कोटः**=कंकोडो (एक विषैला सर्प, जिसको देखने से द्रष्टा पर सर्पविष का असर हो जाता है), ११—**कुड्मलम्**=कुंपलं (कली), १२—**दर्शनम्**=दंसणं (देखना), १३—**वृश्चिकः**=विंछिओ (बिच्छू), १४—**गृष्टिः**=गिंठी (एक बार प्रसूता गौ), १५—**मार्जारः**+मंजारो (बिल्ली), इन शब्दों में आदि स्वर के अन्त में अनुस्वार का आगम किया गया है।

१—**वयस्यः**=वयंसो (समान आयु वाला, सहयोगी), २—**मनस्विन्**=मणंसी (बुद्धिमान), ३—**मनस्विनी**=मणंसिणी (बुद्धि वाली), ४—**मनःशिला**=मणंसिला (लाल वर्ण की एक उपधातु), ५—**प्रतिश्रुत्**=पडंसुआ (प्रतिध्वनि, प्रतिज्ञा) इन शब्दों में द्वितीय स्वर के अन्त में अनुस्वारागम किया गया है। १—**उपरि**=अवरिं (ऊपर), २—**अतिमुक्तकः**=अणिउंतयं, अइमुंतयं (मुनिवर अयवन्ता कुमार) इत्यादि शब्दों में तृतीय स्वर के अन्त में अनुस्वार का आगम किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में

बहुलाधिकार होने से छन्दः-पूर्ति के निमित्त भी अनुस्वार का आगम हो जाता है। जैसे—**देव-नाग-सुपर्णाः**। यहां पर वकार को अनुस्वारागम किए बिना छन्द का विधान पूर्ण नहीं हो सकता था। अतः यहां पर अनुस्वारागम कर के देवं—नाग—सुवण्ण (वस्तु-विशेष का नाम) यह रूप बना दिया गया है। यह किसी गाथा का एक चरण है। **बहुलाधिकार** के कारण किन्हीं शब्दों में अनुस्वार का आगम नहीं भी होता। जैसे १—**गृष्टिः**= गिट्ठी, २—**मार्जारः**=मज्जारो। ३—**मनःशिला**=मणसिला, मणासिला। ४—**अतिमुक्तकः**=अइमुत्तयं। इन शब्दों में अनुस्वारागम नहीं हो पाया। तीसरे सूत्र का अधिकार होने से आर्ष-प्राकृत में **मनःशिला** शब्द का **मणोसिला** यह रूप भी बन जाता है।

२७—क्त्वाप्रत्यय, और सि, औ, जस् आदि प्रत्ययों से सम्बन्धित ण और सु के अन्त में विकल्प से अनुस्वार का आगम होता है। जैसे **कृत्वा**=काऊणं, काऊण, काउआणं, काउआण (करके) यहाँ पर क्त्वा प्रत्यय सम्बन्धी ण था, अतः प्रस्तुत सूत्र से अनुस्वार का आगम विकल्प से कर रखा है। १—**वृक्षेण**=वच्छेणं, वच्छेण (वृक्ष से), २—**वृक्षेषु**=वच्छेसुं, वच्छेसु (वृक्षों में) यहां स्यादि प्रत्ययों से सम्बन्धित सु को विकल्प से अनुस्वारागम किया गया है। ण और सु को ही विकल्प से अनुस्वारागम होता है। यह कहने का उद्देश्य इतना ही है कि **कृत्वा**=करिअ, (करके)यहां क्त्वा-सम्बन्धी अ को तथा **अग्नयः**=अग्गिणो (अग्नियां) यहाँ स्यादि प्रत्यय से सम्बन्धित णो को अनुस्वारागम न हो, इस लिये सूत्रकार ने **ण-स्वोः** यह उल्लेख किया है।

२८—विंशति आदि शब्दों के अनुस्वार का लोप हो जाता है। जैसे—१—**विंशतिः**=वीसा (२०), २—**त्रिंशत्**=तीसा (३०), ३—**संस्कृतम्**=सक्कयं (संस्कारयुक्त), ४—**संस्कारः**=सक्कारो (सजाना) इत्यादि शब्दों के अनुस्वार का प्रस्तुत सूत्र ने लोप कर दिया है।

२९—मांस आदि शब्दों के अनुस्वार का विकल्प से लोप होता है। जैसे—१—**मांसम्**=मासं, मंसं (मांस) २—**मांसलम्**=मासलं, मंसलं(मांस से पूर्ण), ३—**कांस्यम्**=कासं, कंसं (कांसी का पात्र), ४—**पांशुः**=पासू, पंसू (धूल), ५—**कथम्**=कह, कहं (कैसे), ६—**एवम्**=एव, एवं (इस प्रकार) ७—**नूनम्**=नूण, नूणं (निश्चय) ८—**इदानीम्**=इयाणि, इयाणिं (अब), ९—**इदानीम्**=(शौरसेनी भाषा में)=दाणि, दाणिं। १०—**किं करोमि**=कि करेमि, किं करेमि (मैं क्या करता हूँ) ११—**सम्मुखं**=समुहं, संमुहं (सामने)। १२—**किंशुकम्**=केसुअं, किंसुअं(ढाक)। १३—**सिंहः**=सीहो, सिंघो (शेर) इत्यादि शब्दों में प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से अनुस्वार का लोप किया गया है।

३०—वर्गीय (वर्गसम्बन्धी) अक्षर परे होने पर अनुस्वार के स्थान पर विकल्प से प्रत्यासत्ति (सामीप्य सम्बन्ध) द्वारा उसी वर्ग का अन्तिम अक्षर हो जाता है। जैसे—कवर्ग के उदाहरण १—**पङ्कः**=पङ्को, पंको (कीचड़)। २—**शङ्खः**=सङ्खो, संखो (शंख)। ३—**अङ्गणम्**=अङ्गणं, अंगणं, (आंगन)। ४—**लङ्घनम्**=लङ्घणं, लंघणं (भोजन नहीं करना)। चवर्ग के उदाहरण—५—**कञ्चुकः**=कञ्चुओ, कंचुओ (कपड़ा)। ६—**लाञ्छणम्**=लञ्छणं, लंछणं(चिन्ह)। ७—**अञ्जितम्**=अञ्जिअं, अंजिअं (अंजन-युक्त), ८—**सन्ध्या**=सञ्झा, संझा (सायंकाल)। टवर्ग के उदाहरण— ९—**कण्टकः**=कण्टओ, कंटओ (काण्टा) १०—**उत्कण्ठा**=उक्कण्ठा, उक्कंठा (उत्सुकता)। ११—**काण्डम्**=कण्डं, कंडं (ग्रन्थ का एक भाग)। १२—**षण्ढः**=सण्ढो, संढो (नसपुंक)। तवर्ग के उदाहरण—१३—**अन्तरम्**=अन्तरं, अंतरं (मध्य में) १४—**पान्थः**=पन्थो, पंथो(मार्ग)। १५—**चन्द्रः**=चन्दो, चंदो(चांद)। १६—**बान्धवः**=बन्धवो

बंधवो (भाई)। पवर्ग के उदाहरण— १७—**कम्पते**=कम्पइ, कंपइ (वह कांपता है)। १८—**कांक्षति**= वम्फइ, वंफइ (वह चाहता है) १९—**कलंबः**=कलम्बो, कलंबो (तीर, कदंब नाम का वृक्ष)। २०—**आरम्भः**=आरम्भो, आरंभो(प्रारंभ) इत्यादि शब्दों में अनुस्वार के स्थान पर सामीप्य-सम्बन्ध से उसी वर्ग का अन्तिम वर्ण किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि 'वर्ग-सम्बन्धी अक्षर परे होने पर' ऐसा क्यों कहा गया? उत्तर में निवेदन है कि ऐसा कहने से ही १—**संशयः**=संसओ (संदेह)। २. **संहरति**= संहरइ (वह संहार करता है) यहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी। 'स' यह किसी वर्ग का अक्षर नहीं है, अतः इसके अनुस्वार को कुछ नहीं किया जा सका। किन्हीं व्याकरणवेत्ताओं का मत है कि अनुस्वार को वर्ग का अन्तिम अक्षर विकल्प से न होकर नित्य ही होता है।

❀ अथ लिङ्ग-परिवर्तन-प्रकरणम् ❀

३१—**प्रावृट्-शरत्तरणयः पुंसि** ।८।१।३१। प्रावृष्, शरद्, तरणि इत्येते शब्दाः पुंसि-पुल्लिंगे प्रयोक्तव्याः। पाउसो ।सरओ। एस तरणी। तरणिशब्दस्य पुंस्त्रीलिङ्गत्वेन नियमार्थमुपादानम्।

३२—**स्नम-दाम-शिरो-नभः** ।८।१।३२। दामन्-शिरस्-नभस्-वर्जितं सकारान्तं नकारान्तं च शब्दरूपं पुंसि प्रयोक्तव्यम्। सान्तम्। जसो। पओ। तमो। तेओ। उरो। नान्तम्। जम्मो। नम्मो। मम्मो। अदाम-शिरो-नभ इति किम्? दामं, सिरं, नहं। यच्च सेयं वयं सुमणं सम्मं चम्मं इति दृश्यते तद् बहुलाधिकारात्।

३३—**वाक्ष्यर्थ - वचनाद्याः** ।८।१।३३। अक्षिपर्याया वचनादयश्च शब्दाः पुंसि वा प्रयोक्तव्याः। अक्ष्यर्थाः। अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी। नच्चावियाइँ तेणम्ह अच्छीइँ। अञ्जल्यादिपाठादक्षिशब्दः स्त्रीलिंगेऽपि। एसा अच्छी। चक्खू, चक्खूइं। नयणा, नयणाइं। लोअणा, लोअणाइं। वचनादि। वयणा, वयणाइं। विज्जुणा, विज्जूए। कुलो, कुलं। छन्दो, छन्दं। माहप्पो, माहप्पं। दुक्खा, दुक्खाइँ। भायणा, भायणाइं। इत्यादि। इति वचनादयः। नेत्ता, नेत्ताइं। कमला, कमलाइं, इत्यादि तु संस्कृतवदेव सिद्धम्।

३४—**गुणाद्याः क्लीबे वा** ।८।१।३४। गुणादयः क्लीबे वा प्रयोक्तव्याः। गुणाइं, गुणा। विहवेहिँ गुणाइँ मग्गन्ति। देवाणि, देवा। बिन्दूइं, बिन्दुणो। खग्गं, खग्गो। मण्डलग्गं, मण्डलग्गो। कररुहं, कररुहो। रुक्खाइं, रुक्खा। इत्यादि। इति गुणादयः।

३५—**वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम्** ।८।१।३५। इमान्ता अञ्जल्यादयश्च शब्दाः स्त्रियां वा प्रयोक्तव्याः। एसा गरिमा, एस गरिमा। एसा महिमा, एस महिमा। एसा निल्लज्जिमा, एस निल्लज्जिमा। एसा धुत्तिमा, एस धुत्तिमा। अञ्जल्यादि। एसा अञ्जली, एस अञ्जली। पिट्ठी, पिट्ठं। पृष्ठमित्वे कृते स्त्रियामेवेत्यन्ये। अच्छी, अच्छिं। पण्हा, पण्हो। चोरिआ,

चोरिअं । एवं । कुच्छी । बली । निही । विही । रस्सी । गण्ठी । इत्यञ्जल्यादयः । गड्डा, गड्डो इति तु संस्कृतवदेव सिद्धम् । इमेति तन्त्रेण त्वादेशस्य 'डिमा' इत्यस्य पृथ्वीदीम्नश्च संग्रहः । त्वादेशस्य स्त्रीत्वमेवेच्छन्त्येके ।

३६—**बाहोरात्** ।८।१।३६। बाहुशब्दस्य स्त्रियामाकारोऽन्तादेशो भवति । बाहाए जेण धरिओ एक्काए । स्त्रियामित्येव । वामेअरो बाहू ।

३७—**अतो डो विसर्गस्य** ।८।१।३७। संस्कृतलक्षणोत्पन्नस्यातः परस्य विसर्गस्य स्थाने 'डो' इत्यादेशो भवति । सर्वतः, सव्वओ । पुरतः, पुरओ । अग्रतः, अग्गओ । मार्गतः, मग्गओ । एवं सिद्धावस्थापेक्षया । भवतः, भवओ । भवन्तः, भवन्तो । सन्तः, सन्तो । कुतः, कुदो ।

३८—**निष्प्रती ओत्परी माल्य-स्थोर्वा** ।८।१।३८। निर् प्रति इत्येतौ माल्यशब्दे स्था-धातौ च परे यथासंख्यं ओत् परि इत्येवंरूपौ वा भवतः । अभेदनिर्देशः सर्वादेशार्थः । ओमालं । निम्मल्लं । ओमालयं वहइ । परिट्ठा, पइट्ठा । परिट्ठिअं, पइट्ठिअं ।

३९—**आदेः** ।८।१।३९। आदेरित्यधिकारः क ग च ज (८।१।१७७) इत्यादि-सूत्रात् प्रागविशेषे वेदितव्यः ।

❀ अथ लिङ्ग-परिवर्तन-प्रकरणम् ❀

अथाचार्यः पुंस्त्व-स्त्रीत्वादि-लिंग-विधि प्रतिपादयति । **प्रावृट्** । प्रावृष्+सि । **पाउसो** इति १९सूत्रे प्रतिपादितम् । **शरत्** । शरत्+सि । **सरओ**, इति १८ सूत्रे भणितम् । **एषः तरणिः** । एषः । एतद्+सि । ५७५ सूत्रेण तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **एस** इति सिद्धम् । **तरणिः** । तरणि+सि । ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **तरणी** इति सिद्धम् । **तरणिशब्दस्येति** । प्रावृष्, शरद् इति शब्दद्वयं स्त्रीलिङ्गे प्रयुज्यते, प्राकृते त्विमौ शब्दौ पुल्लिंगे प्रयुज्येते । संस्कृते तरणिशब्दः पुंस्त्रीलिंगयोः प्रयुज्यते, परन्तु प्राकृते शब्दस्यास्य पुल्लिंगे एव प्रयोगो भवतु, इति नियमार्थं प्रस्तुत-सूत्रेऽस्य ग्रहणं कृतम् । **यशः** । यशस्+सि । २४५ सूत्रेण यकारस्य जकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० सकारस्य लोपे, ३२सू० नपुंसकलिङ्गकस्यास्य शब्दस्य पुंसि प्रयुक्ते, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **जसो** इति सिद्धम् । **पयः** । पयस्+सि । १७७ सू० यकारस्य लोपे, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य लोपे, ३२ सू० पुंस्त्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **पओ** इति सिद्धम् । **तमः** । तमस्+सि । ११सू० सकारस्य लोपे, ३२सू०पुंस्त्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **तमो** इति सिद्धम् । **तेजः** । तेजस्+सि । १७७ सू०जकारस्य लोपे, अन्त्यव्यञ्जनस्य सकारस्य लोपे, **तमो**-वत् **तेओ**, इतिसिद्धम् । **उरः** । उरस्+सि । तमोवद् **उरो** इति साध्यम् । **जन्म** । जन्मन्+सि । ३३२ सू० [1]न्मस्य स्थाने मकारे, ३६० सू० मकाररस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, पुंस्त्वे, शेषं पूर्ववदेव **जम्मो** इति सिद्धम् । **नर्म** ।

१—न्म इत्यत्र ३४६ सूत्रेण नकारस्य लोपो न भवति । यत एतत्सूत्रं संयुक्तस्याधो-वर्तमानस्य=संयुक्त-वर्णे द्वितीयस्य, नकारस्य लोप-विधानं करोति, न्म इत्यत्र नकारो नाधो-वर्तमानः, प्रत्युत ऊर्ध्व-वर्तमानः (संयुक्त-वर्णे प्रथमः) वर्तते ।

नर्मन्+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, ११सू० नकारलोपे, पुंस्त्वे, शेषं पूर्ववदेव **नम्मो** इति सिद्धम्। **मर्म**। मर्मन्+सि। नम्मोवत् **मम्मो** इति साध्यम्। **अदामेति**। सूत्रेऽस्मिन् **अदाम-शिरो-नभोग्रहण**-फलं वक्ति। **अदाम-शिरो-नभः** इत्यस्य पदस्य ग्रहणं यदि न स्यात्तदा दामन्नित्यस्य नान्तत्वेन,शिरोनभसोः सान्तत्वेन च पुंस्त्वे सति **दामं, सिरं, नहं, इति** न सिद्ध्येयुः,ग्रहण-कृते तु तस्मिन् तेषां पुंस्त्वनिषेधेन न क्लीबत्वहानिरिति। यथा—**दाम**। दामन्+सि। ११सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य नकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **दामं** इति सिद्धम्। ३२ सूत्रेण दामन्शब्दस्य पुंस्त्वनिषेधाद् क्लीबे एव प्रयोगः। **शिरः**। शिरस्+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सिरं** इति सिद्धम्। अत्रापि प्रस्तुत-सूत्रेण पुंस्त्वनिषेधः। **नभः**। नभस्+सि। १८७ सू०भकारस्य हकारे, ११ सू० सकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे-**नहं** इति सिद्धम्। अत्रापि ३२ सूत्रेण पुंस्त्व-निषेधत्वात् क्लीबत्वमेव। ये **सेयं वयं** इत्यादयः प्रयोगाः नपुंसकलिङ्गे प्रयुक्ताः दृश्यन्ते, तदेतद् **बहुलाधिकाराद्** बोध्यम्। एतेषां शब्दानां साधनिकेत्थम्-**श्रेयः**। श्रेयस्+सि। ३५०सू० रेफलोपे, २६०सू० शकारस्य सकारे, ११ सू०अन्त्यव्यञ्जनस्य सकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सेयं** इति सिद्धम्। **वयः**। वयस्+सि। ११ सू० सकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **वयं** इति सिद्धम्। **सुमनाः**। सुमनस्+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य सकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सुमणं** इति सिद्धम्। **शर्म**। शर्मन्+सि। शकारस्य सकारे, रेफस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **सम्मं** इति सिद्धम्। **चर्म**। चर्मन्+सि। रेफस्य लोपे, मकारस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **चम्मं** इति सिद्धम्। **सेयं** इत्यादिषु प्रयोगेषु **बहुलाधिकारात्** पुंस्त्वाभावः।

अज्जापि सा शवति तेऽक्खिणी। अद्य। अव्ययपदमिदम्। अत्र ३४८ सूत्रेण प्राप्तं दकारस्य लोपं, बाधित्वा, २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे **अज्ज** इति सिद्धम्। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४१ सू० अपेरकारस्य लोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे **'वि'** इति सिद्धम्। **तत्**। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, स्त्रीत्वाद् आ-प्रत्यये, १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११सू० स-लोपे **सा** इति सिद्धम्। **शपति**। शप् आक्रोशे। शप्+तिव्। २६० सू० शकारस्य सकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **सवइ** इति सिद्धम्। **ते**। युष्मद्+ङस्। ५८८ सू०ङसा सह युष्मदः ते इत्यादेशे **ते** इति भवति। **अक्षिणी**। अक्षिन्+औ। इत्यत्र २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६१३ सूत्रेण अदन्तवत्त्वात्, ४६३ सूत्रेण जस्-प्रत्ययस्य लोपे, **अच्छी** इति सिद्धम्। ३३ सूत्रेण अक्षिशब्दस्य विकल्पेन पुल्लिङ्गत्वम्। पुंस्त्वाभावे क्लीबत्वमेव भवति। यथा—**नर्तिते तेन मम अक्षिणी**। **नर्तिते**। नृत् नर्तने। नृत्+णि+क्त। १२६ सूत्रेण ऋकारस्य अकारे, ८९६ सू० तकारस्य द्विरुक्ते चकारे, नच्च+णि+क्त, इति जाते, ६४१ सू० प्रेरणार्थकणिगः (णिचः) आवि इत्यादेशे, सन्धौ, नच्चावि+क्त (त) इति स्थिते, औ-प्रत्यये, १७७ सू० तकारस्य लोपे, अवर्णपूर्वकत्वाभावेऽपि **बहुलाधिकारात्** १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने, नच्चाविय—जस् इति जाते, ५१५ सू० जसः 'इँ' इत्यादेशे, पूर्वदीर्घे च **नच्चावियाइँ** इति सिद्धम्। **तेन**। तद्+टा। ११ सू० दकारस्य लोपे, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य णादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **तेण** इति सिद्धम्। **मम**। अस्मद्+ङस्। ६०२ सू० ङसा सह अस्मदः अम्ह इत्यादेशे **अम्ह** इति सिद्धम्। **तेण+अम्ह**, इत्यत्र १०

सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **तेणम्ह** इति सिद्धम्। **अक्खिणी**। अक्षि+औ। पूर्ववदेव अच्छी+औ इति जाते, द्विवचनस्य बहुवचने, जसः स्थाने इँ इत्यादेशे, पूर्व-दीर्घे च **अच्छीइँ** इति सिद्धम्। **अञ्जल्यादीति**। अक्षिशब्दस्य अञ्जल्यादिगणे पाठात् ३५ सू०**स्त्री**लिङ्गत्वमपि भवति। एतदुदाहरणेन दर्शयति वृत्तिकारः। **एतद् अक्षि**। एतद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, २।४।१८ सू० आपि प्रत्यये, १।१।३७। सू० पकारस्य लोपे, एस+आ+सि इति स्थिते, १० सू० अकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, एसा+सि, इति जाते, सेर्लोपे, **एसा** इति सिद्धम्। **अक्षि**। अक्षि+सि। पूर्ववदेव अच्छि+सि, इति जाते, ३५ सू० **स्त्री**त्वे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **अच्छी** इति सिद्धम्। **चक्षुषी**। चक्षुष्+औ। २७४ सू०क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ११ सू०अन्त्यव्यञ्जनस्य लोपे, द्विवचनस्य बहुवचने, ६१३ सू० अदन्तवत् कार्यकरणात् ४६३ सू०जसो लुकि, ५०१ सू०उकार-दीर्घे, '**चक्खू**' इति सिद्धम्। अत्र ३३ सूत्रेण विकल्पेन **पुं**स्त्वम्, पुंस्त्वाभावे, ५१५ सू० जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्व-दीर्घे च **चक्खूइं** इति भवति। **नयने**। नयन+औ। १७७ सू०यकारस्य लोपे, १८०सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू०द्वितीयनकारस्य णकारे, ३३ सू०विकल्पेन पुंस्त्वे, द्विवचनस्य बहुवचने, नयण+जस्, इति जाते, जसो लुकि, ५०१ सू०अकारस्य दीर्घे **नयणा** इति सिद्धम्। पुंस्त्वाभावे तु जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वदीर्घे च **नयणाइं** इति भवति। **लोचने**। लोचन+औ। १७७ सू० चकारलोपे, ८ सू० सन्धि-निषेधे, २२८ **सू०** नकारस्य णकारे, द्विवचनस्य बहुवचने, लोअण+जस्, इति जाते, जसो लुकि, पूर्वाकार-दीर्घे **लोअणा**, पुंस्त्वाभावे जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वदीर्घे च **लोअणाइं** इति सिद्धम्। **वचने**। वचन+औ। चकार-लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, द्विवचनस्य बहुवचने, वयण+जस् इति जाते, जसोर्लुकि, पूर्वाकारदीर्घे **वयणा**, पुंस्त्वाभावे जसः सानुस्वारे इकारादेशे, पूर्व-दीर्घे च **वयणाइं** इति सिद्धम्। **विद्युता**। विद्युत्+टा। २९५ सू०द्यस्य जकारे, ३६०सू० जकारस्य द्वित्वे, ११सू० तकारस्य लोपे, विज्जु+टा इति जाते, ३३ सू०विकल्पेन पुंस्त्वे, ५१३ सू० टा प्रत्ययस्य स्थाने 'णा' इत्यादेशे **विज्जुणा**, पुंस्त्वाभावे, ५१८ सू० टा इत्यस्य स्थाने एकारे, पूर्वदीर्घे **विज्जूए** इति भवति। **कुलं**। कुल+सि। ३३ सू०वैकल्पिके पुंस्त्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **कुलो**, पुंस्त्वाभावे **५१४** सू० सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **कुलं** इति सिद्धम्। **छन्दः**। छन्दस्+सि। वैकल्पिके पुंस्त्वे, ११ सू०सकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **छन्दो**, पुंस्त्वाभावे-सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **छन्दं** इति सिद्धम्। उभयत्रैव २५सू०नकारस्यानुस्वारे, ३०सू० पुनरनुस्वारस्य विकल्पेन नकारे, **छन्दो**, **छन्दं**, **छंदो**, **छंदं**, इति भवति। **माहात्म्यम्**। माहात्म्य+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४९ सू०यकारस्य लोपे, ३२२ सू० त्मस्य वैकल्पिके पकारे, ३६० सू० पकार-द्वित्वे, ३३ सू० वैकल्पिके पुंस्त्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **माहप्पो**, पुंस्त्वाभावे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **माहप्पं** इति भवति। **दुःखानि**। दुःख+जस्। प्रस्तुत-सूत्रेण विकल्पेन पुंस्त्वे, ३४८ सू० जिह्वा-मूलीयस्य लोपे, ३६० **सू०** खकारस्य द्वित्वे, ३६१सू० पूर्वखकारस्य ककारे, जसोर्लुकि, अकार-दीर्घे **दुक्खा**, पुंस्त्वाभावे तु जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्व-दीर्घे च कृते **दुक्खाइं** इति सिद्धम्। **भाजनानि**। भाजन+जस्। पुंस्त्वे, १७७ सू० जकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, जसोर्लुकि, अकारस्य **दीर्घे**, **भायणा**, पुंस्त्वाभावे-जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्व-दीर्घे च कृते **भायणाइं** इति सिद्धम्। **संस्कृतवदेवेति**। नेत्रकमलशब्दयोः संस्कृतेऽपि पुंस्त्वं, क्लीबत्वं च भवति, अतो नात्र ३३ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्विधेया। शब्दसाधनिकेत्थम्—**नेत्रे**। नेत्र+औ। ३५० सू० रेफस्य **लोपे**, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने, नेत्त+जस् इति जाते, जसोर्लुकि, पूर्वाकार-दीर्घे **नेत्ता**, क्लीबे तु जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वदीर्घे **नेत्ताइं** इति सिद्धम्। **कमलानि**।

कमल+जस्। पुल्लिंगे-जसोर्लुकि, पूर्वाकारदीर्घे **कमला** क्लीबे नेत्ताइं-वत् **कमलाइं** इति भवति।

गुणाः। गुण+जस्। ३४ सू० वैकल्पिके क्लीबत्वे, **५१५** सू०जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वस्वरदीर्घे **गुणाइं**, क्लीबत्वाभावे तु ४६३ सू०जसोर्लुकि, **५०१** सू०पूर्वाकार-दीर्घे **गुणा** इति सिद्धम्। **विभवैः गुणान् मार्गयन्ति। विभवैः**। विभव+भिस्। १८७सू० भकारस्य हकारे, ४६६सू० भिसः हिँ इत्यादेशे, ७।४।१०६। सू० स्थानिवत्त्वेन हिँ इत्यस्य भिस्त्वात्, **५०४** सू० अकारस्य एकारे, **विहवेहिँ** इति सिद्धम्। न चात्र १७७ सू० द्वितीयवकारस्य कुतो न लुगिति वाच्यम्, तत्र प्रायोग्रहणात् क्वचित्तदप्रवृत्तेः वकारस्य लोपो न जातः। **गुणान्**। गुण+शस्। ३४ सू० विकल्पेन क्लीबत्वे, **५१५**सू० शसः सानुनासिके इकारे, पूर्वस्वरदीर्घे च **गुणाइँ** इति सिद्धम्। **मार्गयन्ति**। मार्ग् अन्वेषणे। मार्ग्+णिग् (णिच्)+अन्ति। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३८ सू० णिगः अदादेशे, ६४२सू० आदेरकारस्य आकारे, धातोरन्तेऽकारागमस्याऽकारस्य १० सू० लुकि, माग्ग्+अ+अन्ति इति जाते, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६३१ सू० अन्ति इत्यस्य 'न्ति' इत्यादेशे, अज्भीने परेण संयोज्ये **मग्गन्ति** इति सिद्धम्। **देवाः**। देव+जस्। ३४ सू० विकल्पेन क्लीबत्वे, **५१५** सू० जसः 'णि' इत्यादेशे, पूर्व-दीर्घे च, प्रायोग्रहणात् १७७ सूत्रस्याप्रवृत्तौ वलोपाभावे, **देवाणि**, क्लीबत्वाभावे तु ४६३ सू० जसोर्लुकि, ७।४।१०६। सू० स्थानिवत्त्वेन जसः परत्वात्, **५०१** सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **देवा** इति सिद्धम्। **बिन्दवः**। बिन्दु+जस्। ३४ सू० विकल्पेन क्लीबत्वे, ५१५ सू० जसः सानुनासिके इकारे, पूर्वस्वर-दीर्घे, **बिन्दूइँ** क्लीबत्वाभावे, ५११ सू०जसः णो इत्यादेशे **बिन्दुणो** इति सिद्धम्। **खड्गः**। खड्ग+सि। ३४८ सू० डकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, ३४ सू० वैकल्पिके क्लीबत्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **खग्गं** क्लीबत्वाभावे-४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **खग्गो** इति सिद्धम्। **मण्डलाग्रः**। मण्डलाग्र+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० रेफस्य लोपे, ३६० गकारस्य द्वित्वे, प्रस्तुत-सूत्रेण वैकल्पिके क्लीबत्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, २५ सू० 'ण' इत्यस्यानुस्वारे, ३० सू० विकल्पेन वर्गान्त्ये **मण्डलग्गं**, वर्गान्त्याभावे-**मंडलग्गं** क्लीबत्वाभावे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **मण्डलग्गो, मंडलग्गो** इति सिद्धम्। **कररुहः**। कर-रुह+सि। ३४ सू० वैकल्पिके क्लीबत्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **कर-रुहं** क्लीबत्वाभावे-सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कररुहो** इति सिद्धम्। **वृक्षाः**। वृक्ष+जस्। ३६८ सू० वृक्षशब्दस्य **रुक्ख** इत्यादेशे, ३४ सू० वैकल्पिके क्लीबत्वे, जसः सानुनासिके इकारे, पूर्वदीर्घे **रुक्खाइँ** नपुंसकत्वाभावे, ४६३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्व-दीर्घे **रुक्खा** इति सिद्धम्।

एष गरिमा। एषः। एतद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११सू० दकारस्य लोपे, **"या विशेष्येषु दृश्यन्ते लिङ्ग-संख्या-विभक्तयः प्रायस्ता एव कर्तव्याः समानार्थे विशेषणे"** इति नियमाद्, ३५ सूत्रेण विकल्पेन स्त्रीत्वविशिष्टस्य गरिमाशब्दस्य विशेषणीभूतस्य एतच्छब्दस्यापि स्त्रीत्वाद् २।४।१८। सू० आपि प्रत्यये, १।१।३७। सू० पकारस्य लोपे, एस+आ+सि इति जाते, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, सेर्लोपे, **एसा** स्त्रीत्वाभावे तु पूर्ववदेव एस+सि इति जाते, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **एस** इति सिद्धम्। **गरिमा**। गुरोर्भावः गरिमा। गरिमन्+सि। ३५ सू० विकल्पेन स्त्रीत्वे, १५ सू० नकारस्याकारे, सन्धौ कृते, सेर्लोपे **गरिमा**, स्त्रीत्वाभावे गरिमन्+सि। ५४५ सू० राजवत्त्वे सति ११ सू० नकारस्य लोपे, ५३८ सू० अकारस्याकारे, सेर्लोपे **गरिमा** इति सिद्धम्। स्त्रीलिंगे-**एसा गरिमा**, पुल्लिंगे, **एस गरिमा** इति बोध्यम्। **एष महिमा**। एतद्+सि, पूर्ववदेव **एसा, एस** इति साध्यम्। **महिमा**। महतो भावो महिमा। महिमन्+सि। **गरिमावत् 'महिमा'** इति साध्यम्।

एतद् निर्लज्जत्वम्। एतद्। एतद्+सि। पूर्ववदेव **एसा** तथा **एस** इति साध्यम्। **निर्लज्जत्वम्**। निर्लज्जस्य भावो निर्लज्जत्वम्। निर्लज्ज+त्व+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० लकारस्य द्वित्वे, ४२५ सू० त्व-प्रत्ययस्य डिमा(इमा) इत्यादेशे, १।१।३७ सू०डकार-लोपे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, अनच्कं शब्दरूपं पर-वर्णमाश्रयेत्, ततः **निल्लज्जिमा**+सि, इति जाते, ३५ सू०वैकल्पिके स्त्रीत्वे, सेर्लोपे **निल्लज्जिमा** स्त्रीत्वाभाव-पक्षे **निल्लज्जिमा** इत्येवंरूपं भवति। प्रक्रिया पूर्ववदेव बोध्या। **एतद् धूर्त्तत्वम्**। एतद्। एतद्+सि। ३५ सू० वैकल्पिके स्त्रीत्वे **एसा, एस** इति पूर्ववत् साध्यम्। **धूर्त्तत्वम्**। धूर्त्तस्य भावः धूर्त्तत्वम्। धूर्त्तत्व+सि। **निल्ल-ज्जिमा** वत् **धुत्तिमा** इति साध्यम्। **अञ्जल्यादि**। **अग्रे पठिताः** शब्दाः अञ्जल्यादिगणेऽवसेयाः। **एषः अञ्जलिः**। एषः। एतद्+सि। पूर्ववदेव **एसा, एस** इति साध्यम्। अञ्जलिः। अञ्जलि+सि। ५०८ सू०इकारस्य ईकारे, सेर्लोपे **अञ्जली** इति सिद्धम्। अत्र ३५ सू० वैकल्पिकं स्त्रीत्वम्। यत्र स्त्रीत्वं तत्र-**एसा अञ्जली**। यत्र पुंस्त्वं तत्र **एस अञ्जली** इति भवति, द्वयोरपि प्रक्रिया तुल्यैव बोध्येति भावः। **पृष्ठम्**। पृष्ठ+सि। १२६ सू० ऋकारस्य इकारे, ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-ठकारस्य टकारे, ४६ सू० आदेरकारस्य इकारे, पिट्ठि+सि इति स्थिते, ५०८ सू० इकारदीर्घे, सेर्लोपे **पिट्ठी** इति सिद्धम्। अत्र ३५ सू० स्त्रीत्वं वैकल्पिकं, स्त्रीत्वाभावे तु पूर्ववदेव, **पिट्ठ+सि** इति जाते, **बहुलाधिकारात्**, ४१ सू० इकाराभावे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **'पिट्ठं'** इति सिद्धम्। **अक्षि**। अक्षि+सि। २८८ सू० क्षस्य छकारे, छकारस्य द्वित्वे, पूर्वछकारस्य चकारे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, **अच्छी**। अत्र ३५ सूत्रेण स्त्रीत्वं वैकल्पिकम्। स्त्रीत्वाभावे तु सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **अच्छिं** इति सिद्धम्। **प्रश्नः**। प्रश्न+सि। ३५० सू० रेफ-लोपे, ३४६ सू० श्नस्य ण्ह इत्यादेशे, ३५ सू० विकल्पेन स्त्रीत्वे २।४।१८ सू० आप्-प्रत्यये, सन्धौ कृते, सेर्लोपे-**पण्हा**। स्त्रीत्वाभावे तु ४६१ सू०सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **पण्हो** इति सिद्धम्। **चौर्यम्**। चौर्य+सि। १५६ सू० औकारस्य ओकारे, ३७८ सू० यकारात्पूर्वमिकारागमे, १७७ सू० यकारलोपे, ३५ सू० विकल्पेन स्त्रीत्वे, २।४।१८। सू०आप्प्रत्यये, सन्धौ, सेर्लोपे **चोरिआ**, स्त्रीलिङ्गाभावे तु सेर्मकारे, मकार-स्यानुस्वारे **चोरिअं** इति भवति। **कुक्षिः**। कुक्षि+सि। २८८ सू० क्षस्य छकारे, छकारस्य द्वित्वे, पूर्व-छकारस्य चकारे, ३५ सू० विकल्पेन स्त्रीत्वे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **कुच्छी**, पुल्लिङ्गेऽपि **कुच्छी** इदमेव रूपं भवति। **बलिः**। बलि+सि। ३५ सू० विकल्पेन स्त्रीत्वे, ५०८ सू० इकारस्य ईकारे, सेर्लोपे, **बली** पुल्लिगेऽपि **बली** इदमेव रूपं भवति। **निधिः** निधि+सि। १८७ सू० धकारस्य हकारे, ३५ सू० विकल्पेन स्त्रीलिङ्गे, इकारस्य ईकारे, सेर्लोपे, **निही**। पुल्लिंगेऽपि **निही** ईदृशमेव रूपं भवति। **विधिः**। विधि+सि। **विही**। अस्य प्रक्रिया **निही**-वत् अवसेया। **रश्मिः**। रश्मि+सि। ३४६ सू० मकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वे, इकारस्य ईकारे, सेर्लोपे, **रस्सी** इति सिद्धम्। ३५ सू० अत्र वैकल्पिकं स्त्रीलिङ्गत्वम्, पुल्लिङ्गे स्त्रीलिङ्गे च समानमेव रूपं बोध्यम्। **ग्रन्थिः**। ग्रन्थि+सि। ७६१ सू० ग्रन्थ् इत्यस्य **गण्ठ** इत्यादेशे, ५०८ सू० इकारस्य ईकारे, सेर्लोपे **गण्ठी** इति सिद्धम्। अत्र ३५ सूत्रेण वैकल्पिकं स्त्रीलिंगत्वम्। लिङ्गद्वयेऽपि समानमेव रूपं बोध्यम्। **गड्डा, गड्डो इति तु**। संस्कृते **गर्त्त-शब्दः** स्त्रीलिङ्गे, पुल्लिङ्गे च प्रयुज्यते, तद्वदेव प्राकृते अपि शब्दस्यास्य स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं च बोध्यम्। अतोऽत्र, ३५ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न विधेया। प्रक्रिया तु इत्थं बोध्या। यथा—गर्त्त+सि। ३०६ सू० संयुक्तस्य 'र्त्त' इत्यस्य डकारे, ३६० सू० डकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे २।१।११४। सू० अन्त्यस्वरादेः लोपः, अज्भीनं परेण संयोज्यम्, ततः, **गड्डो** स्त्रीलिङ्गे तु-**गर्त्ता**। गर्त्ता+सि। पूर्ववदेव, गड्डा+सि इति जाते,

१—अन्ये आचार्याः एवं मन्यन्ते यत् पृष्ठ-शब्दस्य अकारस्य इत्वे कृते एव स्त्रीलिंगे प्रयोगः, नान्यथा।

सेर्लोपे, गड्डा इति भवति । **इमा इति तन्त्रेण । वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम् ८।१।३५।** इत्यस्मिन् सूत्रे यः इमा इति तन्त्रः-पाठः पठितः, अनेन पाठेन ।८।२।१५४। सूत्रेण त्वस्य स्थाने यः डिमा(इमा) इत्यादेशो विहितः, तथा ।७।१।५८।[1] सूत्रेण यः इमन्-(इमा)-प्रत्ययो भणितः, एतयोर्द्वयोः ग्रहणं भवति । केषांचिदाचार्याणां मते त्वस्य स्थाने यः डिमा(इमा)इत्यादेशो भवति तस्य स्त्रीत्वमेव जायते, न तु पुंस्त्वम् । आचार्यश्रीहेम-चन्द्रमते तु त्वस्य स्थाने यः डिमा (इमा) इत्यादेशो भवति, तथा ।७।१।५८। सूत्रेण यः इमन्-प्रत्ययो विधीयते, एतयोः द्वयोरपि स्त्रियां विकल्पेन प्रयोगो जायते । द्विविधा अपि इमान्ताः शब्दाः स्त्रीलिङ्ग-पुल्लिङ्गयोः प्रयुज्यन्ते इति भावः ।

३६—**बाहुना येन धृतः एकेन । बाहुना ।** बाहु+टा । ३५ सू० वैकल्पिके स्त्रीत्वे, ३६ सू० ककारस्य आकारे, बाहा+टा इति जाते, ५१८ सू० टा-स्थाने एद्(ए) इत्यादेशे **बाहाए** इति सिद्धम् । **येन** । यद्+टा । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४६५ सू० टा-प्रत्ययस्य **ण** इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **जेण** इति सिद्धम् । **धृतः** । धृञ् धारणे । धृ+क्त (त)। ६०५ सू० ऋकारस्य अर इत्या-देशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे **धरित** इति जाते, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सि-प्रत्यये, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **धरिओ** इति सिद्धम् । **एकेन** । एक+टा। ३७०सू०ककारस्य द्वित्वे, २।४।१८। सू०आप्-प्रत्यये, सन्धौ-एक्का+टा इति जाते, ५१८ सू०टा-प्रत्ययस्य स्थाने एद् (ए) इत्यादेशे, पूर्वदीर्घे च **एक्काए** इति सिद्धम्। **स्त्रियामित्येव** । स्त्रीलिङ्गे एव बाहु-शब्दस्य उकारस्य आकारान्तादेशो भवति, नान्यत्र। यथा—**वामेतरः बाहुः** । वामादितरः वामेतरः । वामेतर+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वामेअरो** इति सिद्धम् । **बाहुः** । बाहु+सि । ५०८ सू०उकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **बाहू** इति सिद्धम् । अत्र स्त्रीत्वाभावात् ३६ सू० बाहोरुकारस्य आकारान्तादेशो न जातः । **३७—संस्कृत-लक्षणोत्पन्नस्य** । संस्कृत-सूत्रेण निष्पन्नस्य विसर्गस्येत्यर्थः । **सर्वतः**। सर्वस्माद् इति सर्वतः । अव्ययपदमिदम् । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपे, ३७ सू०विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, २।१।११४। सू०डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सव्वओ** इति सिद्धम् । **पुरतः** । अव्ययपदमिदम् । पूर्वस्माद् इति पुरतः ।७।२।११५। सू० पूर्वस्य पुर इत्यादेशे **पुरतः** इति निष्पन्ने, १७७सू०तकारस्य लोपे, प्रस्तुत-सूत्रेण विसर्गस्य डो इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पुरओ** इति सिद्धम् । **अग्रतः** । अग्रादिति । अग्रतः । अव्ययपदमिदम् । ३५० सू० रेफलोपे, गकारस्य द्वित्वे, १७७ सू०तकारस्य लोपे, प्रस्तुत-सूत्रेण विसर्गस्य डो इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **अग्गओ** इति सिद्धम् । **मार्गतः** । मार्गादिति । अव्ययपदमिदम् । रेफ-लोपे, मकार-द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, तकार-लोपे, विसर्गस्य डो इत्यादेशे, पूर्ववदेव-**मग्गओ** इति सिद्धम् । **एवं सिद्धावस्थापेक्षयेति** । संस्कृत-व्याकरणेन या निष्पन्ना सिबन्ता अवस्था, सा सिद्धावस्था, तदपेक्षया । यदि संस्कृत-भाषा-नियमेन निष्पन्नस्य शब्दस्याग्रे विसर्गो भवेत्तस्य स्थानेऽपि डो इत्यादेशो भवतीति भावः । यथा—**भवतः** । १७७ सू० तकारस्य लोपे, ३७ सू० विसर्गस्य डो इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भवओ** इति सिद्धम् । **भवन्तः** । प्रस्तुत-सू० विसर्गस्य डो इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **भवन्तो** इति सिद्धम् । **सन्तः** । ३७सू०विसर्गस्य डो(ओ)इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सन्तो** इति सिद्धम् । **कुतः** । कस्माद् इति कुतः । अव्ययपदमिदम् । ६३१ सू० तकारस्य दकारः, ३७ सू० विसर्गस्य डो इत्या-

१—पृथ्व्यादेर्मिन् वा ।७।१।५८। एभ्यो भावे वेमन् स्यात् । प्रथिमा । पृथुत्वम् । पृथुता । पार्थवम् । म्रदिमा । मृदुत्वं । मृदुता । मार्दवम् ।

देशे, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे, **कुदो** इति सिद्धम् । **३८-अभेद-निर्देशः सर्वादेशार्थः । स्थानी षष्ठ्यन्तो भवति, आदेशश्च प्रथमान्तः**, इति वैयाकरणानां सर्वसम्मतः सिद्धान्तः । अयमेव सिद्धान्तः **भेद-निर्देशः**, (यत्र स्थानि-आदेश-गतस्य भेदस्य निर्देशो भवेत्) इत्यनेन शब्देनापि संसूच्यते । प्रस्तुते ८।१।३८। सूत्रे निष्प्रती इति स्थानिनौ, ओत्परी इत्यादेशौ च स्तः, परन्तु सूत्रकारेण स्थानिनः षष्ठ्यन्त-निर्देशो न **कृतः**, किमत्र कारणम् ? इयमेवात्र वर्तते आशंका । एनामेवोत्तरयति वृत्तिकारः, **अभेद-निर्देश** इत्यादिना ।

निष्प्रती इत्यत्र यः भेद-निर्देशो न कृतः, तत्प्रयोजनं खल्विदम्-'निर्' इत्यस्य सर्वस्य 'ओत्' इत्यादेशो भवेत्, तथा 'प्रति' इत्यस्य सर्वस्य स्थाने 'परि' इत्यादेशश्च भवेत् । अयं भावः '**षष्ठ्याऽन्त्यस्य** ७।४।१०६। इति परिभाषा-सूत्रेण षष्ठ्यन्तस्य अन्त्यवर्णस्य स्थाने आदेशो विधीयते । तेन 'निर्' इत्यस्य रेफस्य स्थाने, 'प्रति' इत्यस्य इकारस्य च स्थाने एव क्रमशः ओत्, परि इत्याभ्यामादेशाभ्यां भाव्यं, परन्तु नैतदिष्टमत एव प्रस्तुत-सूत्रेण निष्प्रती इत्यत्र भेदनिर्देशमकृत्वा, अभेद-निर्देशः कृतः, तेन निर् प्रति इत्यनयोः समस्तयोः पदयोरेव स्थाने यथासंख्यं ओत् परि इत्येतौ आदेशौ भवतः । यथा—**निर्माल्यम्** । निर्माल्य+सि । ३८ सू० निर् इत्युपसर्गस्य स्थाने विकल्पेन ओत्(ओ)इत्यादेशे, ३४९सू०यकारस्य लोपे, ओमाल+सि इति जाते, ५१४ सू०सेर्मकारे, २३ सू०मकारस्यानुस्वारे **ओमालं**, यत्र ओकारादेशो न जातस्तत्र निर्माल्य +सि इति स्थिते, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० मलयोर्द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **निम्मल्लं** इति सिद्धम् । **निर्माल्यकं वहति । निर्माल्यकम्** । निर्माल्यक+अम् । पूर्ववदेव ओमालक+सि इति जाते, १७७ सू०ककारस्य लोपे, १८० सू० यकार-विशिष्टे अकारे, शेषं पूर्ववदेव, **ओमालयं** इति सिद्धम् । **वहति** । वह् प्रापणे । वह्+तिव् । ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **वहइ** इति सिद्धम् । **प्रतिष्ठा**=प्रतिष्ठा+सि । ३८ सू० प्रति इत्युपसर्गस्य विकल्पेन परि इत्यादेशे, ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-ठकारस्य टकारे, ।१।१।३७। सू०सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **परिट्ठा** वैकल्पिकत्वाद् यत्र परि इत्यादेशो न जातः तत्र पूर्ववदेव-**प्रतिट्ठा** इति जाते, रेफस्य लोपे, १७७ सू०तकारस्य लोपे **पइट्ठा** इति सिद्धम । **प्रतिष्ठितम्** प्रतिष्ठित+सि । पूर्ववदेव +परिट्ठित+सि, तथा पइट्ठित+सि इति जाते, तकारस्य लोपे, परिट्ठिअ+सि, पइट्ठिअ+सि इति स्थिते, पूर्ववदेव **परिट्ठिअं पइट्ठिअं** इति सिद्धम् । **३९—आदेरित्यधिकारः** । विशेषसूत्रविहित-कार्याणि वर्जयित्वा ३९ सूत्रस्य आदेरित्यस्य अधिकारः-**उत्तरानुवृत्तिः** १७७ सूत्र-पर्यन्तं बोध्यः ।

❀ अथ लिङ्ग-परिवर्त्तन प्रकरण ❀

व्याकरण-जगत में लिङ्ग का अर्थ होता है—भेद या चिन्ह । यह पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग इस तरह तीन प्रकार का होता है । राम, कृष्ण, महावीर आदि पुल्लिङ्गी शब्द हैं । सीता, चन्दनबाला आदि स्त्रीलिङ्गी और जल, फल आदि नपुंसकलिङ्गी शब्द कहलाते हैं । कुछ शब्द नियत-लिङ्ग वाले होते हैं और कुछ में परिवर्तन हो जाता है । संस्कृत-भाषा-गत शब्दों के जो लिङ्ग होते हैं, वे प्राकृत-भाषा में ज्यों के त्यों रहते हैं या इन में कुछ परिवर्त्तन हो सकता है ? इस जिज्ञासा का होना स्वाभाविक है । प्रस्तुत लिङ्ग-परिवर्त्तन प्रकरण में इसी जिज्ञासा को शान्त किया गया है ।

३१—प्रावृष्(वर्षर्तु), **शरद्** (शीतर्तु) और **तरणि**(नौका) ये तीनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं, किंतु प्राकृतभाषा में इनका प्रयोग पुल्लिङ्ग में होता है । इसीलिए प्राकृत में इनके १—**प्रावृष्**=पाउसो

१—षष्ठ्या निर्दिष्ट यदुक्तं तत् षष्ठ्युक्तस्य योऽन्त्यः, तस्य स्यात् । हैमशब्दानुशासने- ।

२—**शरद्**=सरओ, ३—एषा **तरणिः**=एस तरणी (यह नौका) ये रूप बनते हैं। संस्कृत-भाषा में तरणि शब्द के सूर्य और नौका, ये दो अर्थ होते हैं। जब यह सूर्यार्थक हो जाता है तब यह पुल्लिङ्गी और जब यह नौका-वाचक होता है तब यह स्त्रीलिङ्गी माना जाता है। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि जब तरणि शब्द पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त हो रहा है, तो फिर सूत्रकार ने इसको पुनः पुल्लिङ्गी बनाने का निर्देश क्यों किया? पुल्लिङ्ग को पुल्लिङ्ग बनाना निष्प्रयोजन है। इस आशंका का समाधान करते हुए वृत्तिकार फरमाते हैं कि संस्कृत में तरणि शब्द का प्रयोग पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों में होता है, किंतु प्राकृत-भाषा में इसका प्रयोग केवल पुल्लिङ्ग में ही हो, यह नियम बनाने के लिए प्रस्तुत सूत्र में तरणि शब्द का ग्रहण किया गया है।

३२—**दामन्, शिरस्** और **नभस्** इन शब्दों को छोड़ कर सकारान्त और नकारान्त शब्दों का प्राकृत-भाषा में पुल्लिङ्ग में प्रयोग होता है। सकारान्त शब्दों के उदाहरण, जैसे—१—**यशस्**=जसो(यश, प्रतिष्ठा) २—**पयस्**=पओ (पानी, दूध) ३—**तमस्**—तमो (अन्धकार) ४—**तेजस्**=तेओ (प्रकाश), ५—**उरस्**=उरो (छाती) इत्यादि सकारान्त शब्दों का पुल्लिङ्ग में प्रयोग किया जाता है। नकारान्त शब्दों के उदाहरण-१—**जन्मन्**=जम्मो, (उत्पत्ति), २—**नर्मन्**=नम्मो (मसखरा), ३—**मर्मन्**=मम्मो (शरीर का मर्म-स्थल) इत्यादि नकारान्त शब्दों का पुल्लिङ्ग में प्रयोग होता है। प्रश्न हो सकता है कि दामन्, शिरस् और नभस् इन शब्दों का परित्याग क्यों किया गया? उत्तर में निवेदन है कि ये शब्द प्राकृत-भाषा में नपुंसकलिङ्गी ही होते हैं, इस लिए इन का निषेध कर दिया गया है। इनके—**दामन्** =दामं, (माला), **शिरस्**=सिरं (सिर) और **नभस्**=नहं (आकाश) ये रूप बनते हैं।

श्रेयस्=सेयं (कल्याण), **वयस्**=वयं (आयु), **सुमनस्**=सुमणं (अच्छा मन, पुष्प) **शर्मन्**= सम्मं (सुख), **चर्मन्**=चम्मं (चाम) ये शब्द सकारान्त और नकारान्त होने पर भी पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त न होकर नपुंसकलिङ्ग में जो प्रयुक्त हो रहे हैं, इस का कारण **बहुलाधिकार** है। संस्कृत-भाषा में ये शब्द नपुंसकलिङ्गी माने जाते हैं, प्राकृत-भाषा में प्रस्तुत सूत्र से इन का लिङ्ग परिवर्तित हो जाना चाहिए था, किन्तु बहुलाधिकार से इनका लिङ्ग-परिवर्तन नहीं हो सका।

३३—आंख के पर्यायवाचक शब्दों तथा वचन आदि शब्दों का विकल्प से पुल्लिङ्ग में प्रयोग होता है। जैसे—आंख के पर्यायवाचक शब्द- १-**अद्यापि सा शपति तेऽक्षिणी**=अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी(आज भी वह तुम्हारी आंखों को शाप देती है)। २—**नर्तितानि तेनाऽस्माकमक्षिणी**=नच्चावियाइँ तेणम्ह अच्छीइं (उस के द्वारा हमारी आंखें नचाई गई हैं), प्रथम उदाहरण में, नपुंसकलिङ्गी 'अच्छी' शब्द को पुल्लिङ्गी मानकर प्रत्यय किया गया है और दूसरे उदाहरण में उसे नपुंसकलिङ्गी माना गया है। इस तरह एक स्थान पर अक्षि शब्द पुल्लिङ्गी और दूसरे स्थान पर वह नपुंसकलिङ्गी है। अञ्जलि आदि गण में 'अक्षि' शब्द होने से ३५ सूत्र द्वारा इस का स्त्रीलिङ्ग में भी प्रयोग होता है। जैसे—**एतद् अक्षि**=एसा अच्छी। (यह आंख है) यहां पर अक्षि शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग किया गया है। ३—**चक्षुषी**=चक्खू, चक्खूइं, ४—**नयने**=नयणा, नयणाइं, ५—**लोचने**=लोयणा, लोयणाइं। ये आंख के पर्यायवाचक शब्द हैं, इनका विकल्प से पुल्लिङ्ग में प्रयोग किया गया है। वचन आदि के उदाहरण— १—**वचने**=वयणा, वयणाइं, (उक्तियां), २—**विद्युता**=विज्जुणा विज्जूए (बिजली से) ३—**कुलम्**= कुलो, कुलं, (वंश, परिवार) ४—**छन्दः**=छन्दो, छन्दं (छन्द-शास्त्र) ५—**माहात्म्यम्**=माहप्पो, माहप्पं

(फल, गौरव), ६—**दुःखानि**=दुक्खा, दुक्खाइं (कष्ट), ७—**भाजनानि**=भायणा, भायणाइं (अनेक पात्र). इत्यादि वचनादि शब्द हैं। प्राकृत-भाषा में इन का विकल्प से पुल्लिङ्ग में प्रयोग किया जाता है। १—**नेत्रे**=नेत्ता, नेत्ताइं(नयन) २—**कमलानि**=कमला, कमलाइं (पद्म), ये दोनों शब्द संस्कृत-भाषा में पुल्लिङ्गी और नपुंसकलिङ्गी होते हैं, ये संस्कृत के समान ही प्राकृत-भाषा में प्रयुक्त किये जाते हैं, अतएव इन का वचन आदि शब्दों में ग्रहण नहीं किया गया।

३४—**गुण** आदि शब्दों का नपुंसकलिङ्ग में विकल्प से प्रयोग करना चाहिये। जैसे १—**गुणाः** =गुणाइं, गुणा (विशेषता), २—**विभवैः गुणान् मार्गयन्ति**=विहवेहिँ गुणाइँ मग्गन्ति (सम्पत्तियों से गुणों का अन्वेषण करते हैं), ३—**देवाः**=देवाइं, देवा, (देव, परमेश्वर), ४—**बिन्दवः**=बिन्दूइं, बिन्दुणो (बिन्दुऐं), ५—**खड्गः**=खग्गं, खग्गो (तलवार), ६—**मण्डलाग्रः**=मण्डलग्गं, मण्डलग्गो (मण्डल का अग्रभाग, तलवार), ७—**कररुहः**=कररुहं, कररुहो (नाखून), ८—**वृक्षाः**=रुक्खाइं, रुक्खा (अनेक वृक्ष) ये गुणादि शब्द हैं, इनका विकल्प से क्लीब-नपुंसक-लिङ्ग में प्रयोग किया गया है।

३५—इमन् (इमा) प्रत्ययान्त शब्दों और अञ्जलि-गण में पठित शब्दों का विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है। जैसे १—**एष गरिमा**=एसा गरिमा, एस गरिमा (यह गुरुता है)। २—**एष महिमा**=एसा महिमा, एस महिमा (यह महत्त्व, महानता) ३—**एतद् निर्लज्जत्वम्**=एसा निल्लज्जिमा, एस निल्लज्जिमा (यह बेशर्मी), ४—**एतद् धूर्तत्वम्**=एसा धुत्तिमा, एस धुत्तिमा (यह धूर्तता है) ये इमन्-प्रत्ययान्त शब्द हैं। इमन्-प्रत्ययान्त होने से प्रस्तुत सूत्र द्वारा इनका विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग किया गया है। अञ्जलिगण में पठित शब्दों के उदाहरण— १—**एषा अञ्जलिः**= एसा अञ्जली, एस अञ्जली (यह कर-सम्पुट है) २—**पृष्ठम्**=पिट्ठी, पिट्ठं (पीठ, शरीर के पीछे का भाग), ३—**अक्षि**=अच्छी, अच्छिं (आंख) ४—**प्रश्नः**=पण्हा, पण्हो (सवाल)। ५—**चौर्यम्**=चोरिआ, चोरिअं (चोरी), ६—**कुक्षिः**=कुच्छी (वक्षःस्थल)। ७—**बलिः**=बली (देवता को चढ़ाई जाने वाली चीज़)। ८—**निधिः**=निही (खज़ाना)। ९—**विधिः**= विही (भाग्य)। १०—**रश्मिः**—रस्सी (किरण)। ११—**ग्रन्थिः**=गंठी (गांठ) ये अञ्जलिगण-पठित शब्द हैं। प्रस्तुत सूत्र से इन का विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग किया गया है। **पृष्ठ** शब्द के सम्बन्ध में कुछ आचार्यों का कहना है कि पृष्ठ शब्द के अकार को इकार करने पर ही यह शब्द [पिट्ठी यह रूप] स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं। **गर्त्तः**=गड्डा, गड्डो (गढहा) यह शब्द जैसे संस्कृत-भाषा में स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग दोनों में प्रयुक्त होता है वैसे प्राकृत-भाषा में भी इसका उक्त दोनों लिङ्गों में प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत सूत्र में पठित **इमा** इस शब्द से ४२५ सूत्र द्वारा त्व प्रत्यय के स्थान में होने वाले डिमा (इमा) इस आदेश का तथा पृथ्वी आदि शब्दों से ७।१।५८। सू०से होने वाले इमन् (इमा) इस संस्कृत- प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है। कई एक आचार्य त्व के स्थान में ही होने वाले डिमा आदेश वाले शब्द को स्त्रीलिङ्ग में मानते हैं, उनके मत में डिमा आदेश वाले शब्द पुल्लिङ्गी नहीं होते।

३६—स्त्रीलिङ्ग में बाहु-शब्द के उकार को आकारादेश होता है। जैसे—**बाहुना येन धृतः एकेन** =बाहाए जेण धरिओ एक्काए (जिस एक भुजा से धारण किया हुआ) यहां पर बाहु-शब्द के उकार को आकार किया गया है। ध्यान रहे कि बाहु शब्द के उकार को स्त्रीलिङ्ग में ही आकार हो सकता है, अन्य लिङ्गों में नहीं, जहां बाहु शब्द पुल्लिङ्गी है, वहां पर इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे— **वामेतरः बाहुः**= वामेअरो बाहू (दाहिनी भुजा) यहां पर बाहु शब्द पुल्लिङ्गी है, अतः इसके उकार

को आकारादेश नहीं हो सका।

३७—संस्कृत-व्याकरण के नियम से उत्पन्न अवर्ण से परे यदि विसर्ग हो तो उसके स्थान में 'डो' (ओ) यह आदेश हो जाता है। जैसे—१—**सर्वतः**=सव्वओ (सब प्रकार से) २—**पुरतः**=पुरओ (आगे से) ३—**अग्रतः** =अग्गओ (आगे से)। ४—**मार्गतः**=मग्गओ (मार्ग से)। इसी प्रकार संस्कृत-भाषा से निष्पन्न शब्दों की सिद्ध अवस्था से सम्प्राप्त विसर्ग के स्थान में भी डो (ओ) यह आदेश हो जाता है। जैसे—१—**भवतः**= भवओ (आपको), २—**भवन्तः**= भवन्तो (आप), ३—**सन्तः**=सन्तो (श्रेष्ठ पुरुष), ४—**कुतः**=कुदो (कहाँ से)। इन शब्दों में विसर्ग अवर्ण से परवर्ती है तथा शब्दों की सिद्ध अवस्था से भी सम्प्राप्त है। अतः इसे प्रस्तुत सूत्र से 'डो' यह आदेश कर दिया गया है।

३८—माल्य शब्द के परे रहने पर निर् के स्थान पर ओत् (ओ) और स्था धातु के परे होने पर प्रति के स्थान में परि यह आदेश विकल्प से होता है। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि संस्कृत और प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार स्थानी तो षष्ठ्यन्त और आदेश प्रथमान्त होता है परन्तु प्रस्तुत सूत्र में **निष्प्रती** (निर् और प्रति) यह स्थानी प्रथमान्त और **ओत्परी** (ओत् और परि) यह आदेश पद भी प्रथमान्त ही है, ऐसा क्यों ? उत्तर में निवेदन है कि व्याकरण के नियमानुसार आदेश स्थानी के अन्त में हुआ करता है। परन्तु प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने स्थानी और आदेश की विभक्ति में अभेद का निर्देश करके (स्थानी को षष्ठ्यन्त न रखकर आदेश के समान प्रथमान्त ही देकर) यह संसूचित किया है कि आदेश स्थानी के अन्त में न हो कर, समस्त के स्थान में ही होता है। जैसे—१—**निर्माल्यम्**=ओमालं निम्मल्लं (निर्मलता), २—**निर्माल्यकं वहति**=ओमालयं वहइ। ३—**प्रतिष्ठा**=परिट्ठा, पइट्ठा(सम्मान), ४—**प्रतिष्ठितम्**=परिट्ठिअं, पइट्ठिअं। (प्रसिद्ध, स्थापित किया हुआ) इन शब्दों में 'निर्' के स्थान में 'ओ' और 'प्रति' के स्थान पर 'परि' यह आदेश विकल्प से किया गया है।

३९—"**आदेः**" (आदि का) यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार १७७ वें सूत्र से पूर्व में रहे हुए सभी सूत्रों में चलता है, परन्तु मध्य में यदि कोई विशेष-अपवाद सूत्र हो तो उसे छोड़ दिया जाता है, वहां यह अधिकार सूत्र अपना काम नहीं करता।

❀ अथ स्वरसम्बन्धीनि कार्याणि ❀

४०—त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक् ।८।१।४०। त्यदादेरव्ययाच्च परस्य तयोरेव त्यदाद्यव्ययोरादेः स्वरस्य बहुलं लुग् भवति। अम्हेत्थ, अम्हे एत्थ। जइमा, जइ इमा। जइहं, जइ अहं।

४१—पदादपेर्वा ।८।१।४१। पदात्परस्य अपेरव्ययस्यादेर्लुग् वा भवति। तं पि,तमवि। किं पि, किमवि। केण वि, केणावि। कहं पि, कहमवि।

४२—इतेः स्वरात् तश्च द्विः ।८।१।४२। पदात् परस्य इतेरादेर्लुग् भवति, स्वरात् परश्च तकारो द्विर्भवति। किं ति। जं ति। दिट्ठं ति। न जुत्तं ति।स्वरात्। तह त्ति। झ त्ति। पिओ त्ति। पुरिसो त्ति। पदादित्येव। इअ विञ्झ-गुहा-निलयाए।

४३—लुप्त-य-र-व-श-ष-सां श-ष-सां दीर्घः ।८।१।४३। प्राकृतलक्षणवशाल्लुप्ता याद्या उपरि अधो वा येषां शकार-षकार-सकाराणां तेषामादेः स्वरस्य दीर्घो भवति। शस्य यलोपे।

पश्यति, पासइ। कश्यपः, कासवो। आवश्यकं, आवासयं। रलोपे। विश्राम्यति, वीसमइ। विश्रामः, वीसामो। मिश्रम्, मीसं। संस्पर्शः, संफासो। वलोपे। अश्वः, आसो। विश्वसिति, वीससइ। विश्वासः, वीसासो। शलोपे। दुश्शासनः, दूसासणो। मनश्शिला (मनःशिला) मणासिला। षस्य यलोपे। शिष्यः, सीसो। पुष्यः, पूसो। मनुष्यः, मणूसो। षस्य रलोपे, कर्षकः, कासओ। वर्षाः, वासा। वर्षः, वासो। वलोपे। विष्वाणः, वीसाणो। विष्वक्, वीसुं। षलोपे। निष्षिक्तः, नीसित्तो। सस्य यलोपे। सस्यं, सासं। कस्यचित्, कासइ। रलोपे। उस्रः, ऊसो। विस्रम्भः, वीसम्भो। वलोपे। विकस्वरः, विकासरो। निःस्वः, नीसो। सलोपे। निस्सहः, नीसहो। न दीर्घानुस्वारात् (८।२।९२) इतिप्रतिषेधात् सर्वत्र अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् (२।२।८९) इति द्वित्वाभावः।

*** अथ स्वरसम्बन्धीनि कार्याणि ***

प्राकृत-भाषायां स्वराणां स्थाने लुगादीनि यानि कार्याणि जायन्ते, यथाक्रमं तानि प्रतिपादयत्याचार्यः।४०। यथा–**वयमत्र। वयम्।** अस्मद्+जस्। ५९४ सू०जसा सह अस्मदः 'अम्हे' इत्यादेशे, **अम्हे** इति सिद्धम्। **अत्र।** अव्ययपदमिदम्, ५७ सू०अकारस्य एकारे, ४३२ सू०त्र इत्यस्य 'त्थ' इत्यादेशे, **एत्थ** इति सिद्धम्। **अम्हे एत्थ** इत्यत्र ४०सू०एत्थ इत्यस्य एकारस्य विकल्पेन लोपे, **अम्हेत्थ**। लोपाभावे **अम्हे एत्थ** इति भवति। **यदि**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू०यकारस्य जकारे, १७७ सू०दकारस्य लोपे **जइ** इति सिद्धम्। **इयम्।** इदम्+सि। ५६१ सू० इदमः इम इत्यादेशे २।४।१८। सू० आप्-(आ)-प्रत्यये, सन्धौ इमा+सि इति जाते, सेर्लोपे, **इमा** इति सिद्धम्। **जइ इमा** इत्यत्र ४० सू० इकारस्य विकल्पेन लोपे **जइमा** लोपाभावपक्षे **जइ इमा** इति भवति। **यदि अहं। यदि**। अव्ययपदमिदम्। पूर्ववदेव **जइ** इति साध्यम्। **अहं**। अस्मद्+सि। ५९४ सू०अस्मदः स्थाने सिना सह अहं इत्यादेशे, **अहं** इति सिद्धम्। **जइ अहं** इत्यत्र ४०सू० बाहुल्येन अकारस्य लोपे-**जइहं**, लोपाभावपक्षे **जइ अहं** इति सिद्धम्। **४१। तद्।** तद्+सि। ११ सू० दकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **तं** इति सिद्धम्। **अपि**। अव्ययपदमिदं, ४१ सू० विकल्पेन अपेरकारलोपे, **पि** लोपाभावे पूर्ववदेव तम्+अपि=तमपि इति जाते, २३१ सूत्रेण पकारस्य वकारे, **तमवि** इति सिद्धम्। **किमपि। किम्।** कि+सि। ५६६ सू० प्रकृति-प्रत्यययोः स्थाने किम् इत्यादेशे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **किं** इति सिद्धम्। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४१ सू० अपरेरकारस्य वैकल्पिके लोपे, **पि** लोपाभावे पूर्ववदेव **किम्+अपि** इति स्थिते, २४ सू० अनुस्वाराभावे, अज्झीने परेण संयोज्ये, २३१ सू०पकारस्य वकारे-**किमवि** इति सिद्धम्। **केनापि**। केन। किम्+टा। ५६० सू० किमः क इत्यादेशे, ४९५ सू० टा इत्यस्य ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे, **केण** इति सिद्धम्। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। २३१ सू० पकारस्य वकारे **अवि** इति जाते, ४१ सू० अपेरकारस्य वैकल्पिके लोपे **केणवि**। लोपाभावे केण+अवि, सन्धौ **केणावि** इति सिद्धम्। **कथमपि**। कथं। अव्ययपदमिदम्। १८७ सू० थकारस्य हकारे, मकारस्यानुस्वारे, **कहम्** इति सिद्धम्। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४१ सू० अपेरकारस्य विकल्पेन लोपे, पकारस्य वकारे **वि** इति सिद्धं, यत्र अकारलोपाभावः तत्र कहम्+अवि इति स्थिते, पूर्ववदेव अज्झीने परेण संयोज्ये **कहमवि** इति सिद्धम्। **४२। किम् इति**। किम्। किम्+सि। ५६६ सू० किमः सिना सहैव किम् इत्यादेशे, २३ सू०मकारस्यानुस्वारे **किं** इति सिद्धम्। **इति**। अव्ययपदमिदम्। ४२ सू० इतेरिकारस्य

लोपे, **त्ति** इति सिद्धम् । **यद् इति**। यद् । यद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **जं** इति सिद्धम् । **दृष्टम्** इति । दृष्टम् । दृष्ट+सि । १२८ सूत्रेण ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० टकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ५१४ सू०सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **दिट्ठं** इति सिद्धम् । **न युक्तं इति** । न । अव्ययपदमिदम् । संस्कृत-तुल्यमेव प्राकृते प्रयुज्यते । **युक्तम्** । युक्त+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ३४८ सू० ककार-लोपे, तकारस्य द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **जुत्तं** इति सिद्धम् । **स्वरादिति** । यदि इकारः स्वरात् परो भवेत्तदैव तस्य द्वित्वं जायते नान्यथा । यथा—**तथा इति** । तथा । अव्यय-पदमिदम् । १८७ सू० थकारस्य हकारे, **तहा** इति सिद्धम् । **इति** । अव्ययपदमिदम् । स्वरात्परत्वेन प्रथमस्येकारस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे च **त्ति** इति सिद्धम् । तहा त्ति इत्यत्र ८४ सू०संयोगे परे ह्रस्वे-**तह त्ति** इति भवति । **झगिति** । झग् इति । अव्ययपदमिदम् । १०सू०गकारस्य लोपे, **झ** इति सिद्धम् । **इति**। अव्ययपदमिदम् । पूर्ववदेव '**त्ति**'इति सिद्धम् । अग्रेऽपि एवमेव बोध्यम् । **प्रिय इति** । प्रियः । प्रिय+सि । ३५०सू० रेफस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **पिओ** इति सिद्धम् । **पुरुषः इति** । पुरुषः । पुरुष+सि । १११ सू० रो रुकारस्य इकारे, २६० सू०षकारस्य सकारे, ४६१ सू० सेर्डोः,डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पुरिसो** इति सिद्धम्। **पदादित्येव** । यदि इति-शब्दः पदात् परवर्ती भवेत्तदैव तस्य आदेरिकारस्य लोपो भवति, नान्यथा । यथा—**इति विन्ध्यगुहानिलयायाः** । **इति** । अव्ययपदमिदम् । ९१ सू० तकारगतस्येकारस्य अकारे, १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपे-**इअ** इति सिद्धम् । अत्र पदात् पर-त्वाभावाद् इति-शब्दस्य आदेरिकारस्य, ४२ सूत्रेण लुग् नाभूत् । **विन्ध्यगुहानिलयायाः** । विन्ध्यस्य पर्वतविशेषस्य गुहा-कन्दरा विन्ध्यगुहा, सा एव निलयो गृहमाश्रयो यस्याः सा विन्ध्यगुहा-निलया तस्याः । **विन्ध्यगुहानिलया+ङस्** । २५ सू० नकारस्यानुस्वारः, २९७ सू० ध्यस्य झकारः, ३० सू० अनुस्वारस्य ञकारः, विञ्झगुहानिलया+ङस् इति जाते । ५१८ सू० ङसः स्थाने एत् (ए) इत्यादेशे **विञ्झगुहानिलयाए** इति सिद्धम् ।

४३—**पश्यति**। दृश्-प्रेक्षणे । दृश्+तिव् । संस्कृत नियमेन-**पश्यति** इति जाते। ३४९ सू०यकारस्य लोपः, ४३ सू० आदिस्वरस्य दीर्घः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे-**पासइ** इति सिद्धम् । **कश्यपः** । कश्यप+सि । यकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, आदेरतो दीर्घः, २३१ सू०पकारस्य वकारः, ४६१ सू०सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कासवो** इति सिद्धम्। **आवश्यकम्**। आवश्यक + सि । यकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, आदेः स्वरस्य दीर्घः, १७७ सू० ककारस्य लोपे, आवासअ+सि इति जाते, १८० सू० यकार-विशिष्टे अकारे, ५१४ सू०सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **आवासयं** इति सिद्धम्। **विश्राम्यति** । विपूर्वकः श्रमु-धातुः विश्रामे । विश्रम्+तिव् । संस्कृत-नियमेन **विश्राम्यति** इति जाते । ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, आदेः स्वरस्य दीर्घे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, तिवः इचादेशे, **वीसमइ** इति सिद्धम् । **विश्रामः** । विश्राम+सि । रेफस्य लोपे आदेः स्वरस्य दीर्घे, शकारस्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वीसामो** इति सिद्धम् । **मिश्रम्** । मिश्र+सि । रेफस्य लोपः, आदेः स्वरस्य दीर्घः, शकारस्य सकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मीसं** इति सिद्धम् । **संस्पर्शः** । संस्पर्श+सि । ३२४ सू० स्पस्य फकारः, रेफस्य लोपः, आदे स्वरस्य दीर्घः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **संफासो** इति सिद्धम् । **अश्वः** । अश्व+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, पूर्वस्वरस्य दीर्घः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **आसो** इति सिद्धम् । **विश्वसिति** । विपूर्वकः श्वस्-धातुः विश्वासे । विश्वस्+तिव् । वकारस्य लोपः, आदेः

स्वरस्य दीर्घः, शकारस्य सकारः, ६१० सू० धातोरन्ते अकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **वीससइ** इति सिद्धम् । **विश्वासः** । विश्वास+सि । वकारस्य लोपः, पूर्वस्वरदीर्घः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वीसासो** इति सिद्धम् । **दुश्शासनः** । दुश्शासन+सि । ३४८ सू० प्रथम-शकारस्य लोपः, आदेः स्वरस्य दीर्घः, शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः । ततः **दूसासणो** इति सिद्धम् । **मनश्शिला** । मनश्शिला+सि । २२८ सू०नकारस्य णकारः, आद्य-शकारस्य लोपः, द्वितीय-स्वरस्य दीर्घः, शकारस्य सकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू०सका-रस्य लोपे **मणासिला** इति सिद्धम् । **शिष्यः** । शिष्य+सि । शकारस्य सकारः, ३४९ सू०यकारस्य लोपः, प्रथमस्वरस्य दीर्घः, षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **सीसो** इति सिद्धम् । **पुष्यः** । पुष्य+सि । यकारस्य लोपः, पूर्वस्वरस्य दीर्घः, षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्व-रादेः लोपः, ततः **पूसो** इति सिद्धम् । **मनुष्यः** मनुष्य+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारः **मणूसो**, इत्यस्य शेष-प्रक्रिया पुष्यतुल्या ज्ञेया । **कर्षकः**। कर्षक+सि । ३५० सू०रेफस्य लोपः, प्रथमस्वरस्य दीर्घः, षकारस्य सकारः, १७७ सू०ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे, अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **कासओ** इति सिद्धम्। **वर्षाः** । वर्षा+जस् । रेफस्य लोपः, प्रथमस्वरस्य दीर्घः, षकारस्य सकारः, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४६३ सू०जसो लुक्, ततः **वासा** इति सिद्धम् । **वर्षः** । वर्ष। वर्ष+सि । रेफस्य लोपः, प्रथम-स्वरस्य दीर्घः, षका-रस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **वासो** इति सिद्धम् । **विष्वाणः** । विष्वाण+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपः, प्रथमस्वरस्य दीर्घः, षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादे लोपः, ततः **वीसाणो** इति सिद्धम् । **विष्वक्**। विष्वक्+सि । वकारस्य लोपः, ५२ सू० आदेरकारस्य उकारादेशः, आदिस्वरस्य दीर्घः, षकारस्य सकारः, **बहुलाधिकारात्**, २४ सू० ककारस्य मकारः, मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे, **वीसुं** इति सिद्धम् । **निष्षिक्तः** । निष्षिक्त+सि । प्रथम-षकारस्य लोपः, आदिस्वरस्य दीर्घः, षका-रस्य सकारः, ३४८ सू० ककारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **नीसित्तो** इति सिद्धम् । **सस्यं** । सस्य+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, पूर्वस्वरस्य दीर्घः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सासं** इति सिद्धम् । **कस्यचित्** । अव्ययपदमिदम् । यकारस्य लोपः, पूर्वस्वरस्य दीर्घः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, ११ सू० तकारस्य लोपे, **कासइ** इति सिद्धम् । **उस्रः** । उस्र+सि । रेफस्य लोपः, प्रथम-स्वरस्य दीर्घः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **ऊसो** इति सिद्धम् । **विस्रम्भः** । विस्रम्भ +सि । रेफस्य लोपः, प्रथम-स्वरस्य दीर्घः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **वीसम्भो** इति सिद्धम् । **विकस्वरः** । विकस्वर+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, द्वितीय-स्वरस्य दीर्घे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे **वीकासरो** इति सिद्धम् । **निस्वः** । निस्व+ सि । प्रथम-स्वरस्य दीर्घः, वकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे, **नीसो** इति सिद्धम् । **निस्सहः** । निस्सह+सि । ३४८ सू० सका-र-लोपः, प्रथमस्वरस्य दीर्घः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **नीसहो** इति सिद्धम् । **न दीर्घानुस्वा-रादिति** । एषु सर्वेषु प्रयोगेषु ३६० सूत्रेण द्वित्व-प्राप्तिरासीत् किन्तु ३६३ सूत्रेण द्वित्व-निषेधो जातोऽतो-ऽत्र द्वित्वं न जातमिति बोध्यम् ।

❀ स्वरों को होने वाले कार्य ❀

इस प्रकरण में किस स्वर को क्या विकार होता है ? किस स्वर का कहां पर लोप होता है ? आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है । ४०—त्यद् आदि शब्दों और अव्यय से परे यदि त्यद् आदि शब्द तथा अव्यय हों तो उनके आदि स्वर का बहुलता से लोप हो जाता है । जैसे—१—**वयम् अत्र**=अम्हे

एत्थ = अम्हे त्थ, अम्हे एत्थ (हम यहां हैं)। २—**यदि इयम्** = जइ + इमा = जइ मा, जइ इमा (अगर यह), ३—**यदि अहम्** = जइ + अहं = जइहं, जइ अहं (अगर मैं) यहां पर वयम्, इयम्, अहं, ये त्यदादि शब्द हैं और अत्र, यदि, ये अव्ययपद हैं, इस लिये इनके आदि स्वर का विकल्प से लोप किया गया है।

४१—यदि 'अपि' यह अव्ययपद, पद से परे हो तो इसके आदि स्वर का विकल्प से लोप होता है। जैसे—१—**तद् अपि** = तं + अपि = तं पि, तमवि (वह भी), २—**किम् अपि** = किं + अपि = किं पि, किमवि (कुछ भी), ३—**केन अपि** = केण + अवि = केण वि, केणावि (किसने भी), ४—**कथम् अपि** = कहं + अपि = कहं पि, कहमवि (कैसे भी), इन प्रयोगों में पद से परे होने के कारण 'अपि' इस अव्यय के आदि स्वर का विकल्प से लोप किया गया है।

४२—**इति** यह अव्यय शब्द यदि पद से आगे हो तो इस के आदि स्वर का विकल्प से लोप होता है और अवशिष्ट तकार यदि स्वर से परे हो तो वह द्वित्व हो जाता है। जैसे—**१—किम् इति** = किं + इति = किं ति (यह क्या है) २—**यद् + इति** = जं + इति = जंति (जो यह), **दृष्टम् इति** = दिट्ठं + इति = दिट्ठं ति (यह देखा) ४—**न युक्तम् इति** = न जुत्तं + इति = न जुत्तं ति (यह ठीक नहीं है) यहां पर पद से आगे होने के कारण **इति** इस **अव्ययपद** के आदि स्वर का लोप किया गया है। स्वर से परवर्ती इति-शब्द के उदाहरण, जैसे-**१—तथा इति** = तहा + इति = तह त्ति (वैसे ही), १—**झगिति** = झ + इति = झ त्ति (शीघ्र) **३—प्रियः इति** = पिओ + इति = पिओ त्ति (यह प्रीतम है)। ४—**पुरुषः इति** = पुरिसो + इति = पुरिसो त्ति (यह पुरुष है) इन शब्दों में स्वर से परे होने से **इति** इस अव्ययपद के [इकार-लोप के साथ-साथ] तकार को द्वित्व किया गया है। ध्यान रहे कि यदि **इति** यह अव्यय किसी पद से परवर्ती होता है, तभी इसके आदि स्वर का लोप हो सकता है, अन्यथा नहीं। जैसे—**इति विन्ध्य-गुहा-निलयायाः** = इअ विञ्झ-गुहा-निलयाए (यह विन्ध्य-पर्वतीय गुफारूप स्थान वाली का) इस वाक्यांश में **इति** यह अव्यय किसी पद से परवर्ती नहीं है, फलतः इस के आदि स्वर का लोप नहीं हो सका।

४३—प्राकृत-व्याकरण के नियमानुसार उपरि-स्थित (संयुक्त वर्ण में पहला) अथवा अधः-स्थित (संयुक्त वर्ण में दूसरा) यकार, रेफ, वकार, शकार, षकार और सकार का लोप होने पर यदि शकार, षकार, अथवा सकार शेष रहें तो इन के आदि स्वर को दीर्घ होता है। **यकार का लोप होने पर शकार के उदाहरण—१—पश्यति** = पासइ (वह देखता है), २—**कश्यपः** = कासवो (कश्यप ऋषि), **३—आवश्यकम्** = आवासयं (आवश्यक नाम का शास्त्र), यहां पर यकार का लोप होने पर शकार के पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ किया गया है। **रेफ का लोप होने पर शकार के उदाहरण—१—विश्राम्यति** = वीसमइ (वह विश्राम करता है), २—**विश्रामः** = वीसामो (आराम), **३—मिश्रम्** = मीसं (मिला हुआ), ४—**संस्पर्शः** = संफासो (स्पर्श) इन शब्दों में रेफ का लोप होने से अवशिष्ट श के आदि स्वर को दीर्घ किया गया है। **वकार के लोप से शकार के उदाहरण**— १—**अश्वः** = आसो (घोड़ा), २—**विश्वसिति**—वीससइ (वह विश्वास करता है), ३—**विश्वासः** = वीसासो (विश्वास) यहाँ पर वकार के लुप्त होजाने पर श के आदि स्वर को दीर्घ किया गया है। **शकार का लोप होने पर शकार के उदाहरण**—१-**दुश्शासनः** = दूसासणो [जिसका कष्टसाध्य शासन हो, कुरुनरेश का पुत्र] २-**मनश्शिला** = मणासिला (लाल वर्ण की एक उपधातु) यहां 'श' के लोप से शेष रहे हुए श के आदि स्वर को दीर्घ किया गया है। **षकार का लोप हो जाने पर षकार के उदाहरण—१—शिष्यः** = सीसो (अन्तेवासी), २—**पुष्यः**—

पूसो (पुष्य नामक नक्षत्र) ३—**मनुष्यः**—मणूसो (आदमी)। **रेफलोप होने पर षकार के उदाहरण**=१ —**कर्षकः**—कासओ (किसान), २—**वर्षाः**—वासा (वर्षाएं), ३—**वर्षः**—वासो (साल)। **वकार का लोप होने पर षकार के उदाहरण—१—विष्वाणः**=वीसाणो (भोजन-क्रिया), २—**विष्वक्**=बीसुं (चारों ओर से)**षकार के लुप्त होने पर षकार के उदाहरण—१-निष्षिक्तः**=नीसित्तो, (अत्यन्त आर्द्र) इन शब्दों में यकार, रेफ, वकार और षकार का लोप होने पर षकार के आदिस्वर को दीर्घ किया गया है। **य, र, व और स के लुप्त होने पर सकार के उदाहरण**— १—**सस्यम्**=सासं (अनाज), २—**कस्यचित्**=कासइ (किसी का) ३—**उस्रः**=ऊसो, (किरण), ४—**विस्रम्भः**=वीसंभो (विश्वास) ५—**विकस्वरः**=विकासरो(खिलने वाला), ६—**निस्वः**=नीसो (अपने पन से रहित), ७—**निस्सहः**=नीसहो (असह्य) इन शब्दों में य,र,व, और स का लोप होने सकार के आदि स्वर को दीर्घ किया गया है। उक्त प्रयोगों में ३६० सूत्र से, पद के अनादि में वर्तमान शेष और आदेश भूत वर्ण को द्वित्व की प्राप्ति होती है, किन्तु ३६३ सूत्र ने दीर्घ और अनुस्वार से परे रहे हुए शेष और आदेश के वर्णं को द्वित्व का निषेध कर दिया है।

❀ अथ अकार-विधिः ❀

४४—अतः समृद्ध्यादौ वा ।८।१।४४। समृद्धि इत्येवमादिषु शब्देषु आदेरकारस्य दीर्घो वा भवति। सामिद्धी, समिद्धी। पासिद्धी, पसिद्धी। पायडं, पयडं। पाडिवआ, पडिवआ। पासुत्तो, पसुत्तो। पाडिसिद्धी, पडिसिद्धी। सारिच्छो, सरिच्छो। माणंसी, मणंसी। माणंसिणी, मणंसिणी। आहिआई, अहिआई। पारोहो, परोहो। पावासू, पवासू। पाडिप्फद्धी, पडिप्फद्धी। समृद्धि। प्रसिद्धि। प्रकट। प्रतिपत्। प्रसुप्त। प्रतिसिद्धि। सदृक्ष। मनस्विन्। मनस्विनी। अभिजाति। प्ररोह। प्रवासिन्। प्रतिस्पर्द्धिन्। आकृति-गणोऽयम्। तेन-अस्पर्शः, आफंसो। परकीयम्, पारकेरं, पारक्कं। प्रवचनम्, पावयणं। चतुरन्तम्, चाउरन्तं। इत्याद्यपि भवति।

४५—दक्षिणे हे ।८।१।४५। दक्षिण-शब्दे आदेरतो हे परे दीर्घो भवति। दाहिणो। ह इति किम्? दक्खिणो।

४६—इः स्वप्नादौ ।८।१।४६। स्वप्न इत्येवमादिषु आदेरस्य इत्वं भवति। सिविणो। सिमिणो। आर्षे उकारोऽपि, सुमिणो। ईसि। वेडिसो। विलिअं। विअणं। मुइङ्गो। किविणो। उत्तिमो। मिरिअं। दिण्णं। बहुलाधिकाराण्णत्वाभावे न भवति। दत्तं। देवदत्तो। स्वप्न। ईषत्। वेतस। व्यलीक। व्यजन। मृदङ्ग। कृपण। उत्तम। मरिच। दत्त इत्यादि।

४७—पक्वाङ्गार-ललाटे वा ।८।१।४७। ऐष्वादेरत इत्वं वा भवति। पिक्कं, पक्कं। इङ्गालो, अङ्गारो। णिडालं, णडालं।

४८—**मध्यम-कतमे द्वितीयस्य** ।८।१।४८। मध्यम-शब्दे कतम-शब्दे च द्वितीयस्यात इत्त्वं भवति । मज्झिमो । कइमो ।

४९—**सप्तपर्णे वा** ।८।१।४९। सप्तपर्णे द्वितीयस्यात इत्त्वं वा भवति । छत्तिवण्णो, छत्तवण्णो ।

५०—**मयट्यइर्वा** ।८।१।५०। मयट्-प्रत्यये आदेरतः स्थाने अइ इत्यादेशो वा भवति । विषमयः । विसमइओ, विसमओ ।

५१—**ईर्हरे वा** ।८।१।५१। हर-शब्दे आदेरतः ईर्वा भवति । हीरो, हरो ।

५२—**ध्वनि-विष्वचोरुः** ।८।१।५२। अनयोरादेरस्य उत्त्वं भवति । झुणी । वीसुं । कथं सुणओ ? शुनक इति प्रकृत्यन्तरस्य । श्वन्-शब्दस्य तु सा साणो इति प्रयोगौ भवतः ।

५३—**वन्द्र-खण्डिते णा वा** ।८।१।५३। अनयोरादेरस्य णकारेण सहितस्य उत्त्वं वा भवति । वुन्द्रं, वन्द्रं । खुडिओ, खण्डिओ ।

५४—**गवये वः** ।८।१।५४। गवयशब्दे वकाराकारस्य उत्त्वं भवति । गउओ, गउआ ।

५५—**प्रथमे प-थोर्वा** ।८।१।५५। प्रथम-शब्दे पकार-थकारयोरकारस्य युगपत् क्रमेण च उकारो वा भवति । पुढुमं, पुढमं, पढुमं, पढमं ।

५६—**ज्ञो णत्वेऽभिज्ञादौ** ।८।१।५६। अभिज्ञ एवंप्रकारेषु ज्ञस्य णत्वे कृते ज्ञस्यैव अत उत्त्वं भवति । अहिण्णू । सव्वण्णू । कयण्णू । आगमण्णू । णत्व इति किम् ? अहिज्जो । सव्वज्जो । अभिज्ञादाविति किम् ? प्राज्ञः, पण्णो । येषां ज्ञस्य णत्वे उत्त्वं दृश्यते ते अभिज्ञादयः ।

५७—**एच्छय्यादौ** ।८।१।५७। शय्यादिषु आदेरस्य एत्त्वं भवति । सेज्जा । सुन्देरं । गेन्दुअं । एत्थ । शय्या । सौंदर्य । कन्दुक । अत्र । आर्षे, पुरेकम्मं ।

५८—**वल्ल्युत्कर-पर्यन्ताश्चर्ये वा** ।८।१।५८। एषु आदेरस्य एत्त्वं वा भवति । वेल्ली, वल्ली । उक्केरो, उक्करो । पेरन्तो, पज्जन्तो । अच्छेरं, अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरीअं ।

५९—**ब्रह्मचर्ये चः** ८।१।५९। ब्रह्मचर्य-शब्दे चस्य अत एत्त्वं भवति । बम्हचेरं ।

६०—**तोन्तरि** ८।१।६०। अन्तर्-शब्दे तस्य अत एत्त्वं भवति । अन्तःपुरं, अन्तेउरं । अन्तश्चारी, अन्तेआरी । क्वचिन्न भवति, अन्तग्गयं । अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआणं ।

६१—**ओत्पद्मे** ।८।१।६१। पद्म-शब्दे आदेरत ओत्त्वं भवति । पोम्मं । पद्मछद्म-८।२।११२। इति विश्लेषे न भवति । पउमं ।

६२—**नमस्कार-परस्परे द्वितीयस्य** ।८।१।६२। अनयोर्द्वितीयस्य अत ओत्त्वं भवति ।

नमोक्कारो । परोप्परं ।

६३—**वार्पौ** ।८।१।६३। अर्पयतौ धातौ आदेरस्य ओत्वं वा भवति । ओप्पेइ, अप्पेइ । ओप्पिअं, अप्पिअं ।

६४—**स्वपावुच्च** ।८।१।६४। स्वपितौ धातौ आदेरस्य ओत् उत् च भवति । सोवइ, सुवइ । ६५—**नात्पुनर्यादाई वा** ।८।१।६५। नञः परे पुनःशब्दे आदेरस्य आ आइ इत्यादेशौ वा भवतः । न उणा, न उणाइ । पक्षे । न उण, न उणो । केवलस्यापि दृश्यते, पुणाइ ।

६६—**वालाब्वरण्ये लुक्** ।८।१।६६। अलाब्वरण्यशब्दयोरादेरस्य लुग् वा भवति । लाउं, अलाउं । लाऊ, अलाऊ । रण्णं, अरण्णं । अत इत्येव । आरण्ण-कुञ्जरो व्व वेल्लन्तो ।

❀ अथ अकार-विधिः ❀

अथ आचार्यः अकारस्य स्थाने ये विकाराः भवन्ति, तान् प्रदर्शयति । ४४—**समृद्धिः** । समृद्धि+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, ४४ सू०आदेरकारस्य वैकल्पिको दीर्घः, ५०८सू० अन्त्यस्येकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू०सेरिकारस्यलोपे, ११ सू०सकारस्य लोपे **सामिद्धी, समिद्धी** इति सिद्धम् । **प्रसिद्धिः** । प्रसिद्धि+सि । ३५० सू०रेफस्य लोपः, वैकल्पिक आदेरतो दीर्घः, ५०८ सू० अन्त्यस्येकारस्य दीर्घः,सेर्लोपे-**पासिद्धी, पसिद्धी** इति सिद्धम् । **प्रकटम्** । प्रकट+सि । रेफस्य लोपः, वैकल्पिक आदेरतो दीर्घः, १७७ सू०ककारस्य लोपः, १८० सू०यकारविशिष्टोऽकारः, १९५ सू० टकारस्य डकारः, ५१४ सू०सेर्मकारः, २३ सू०मकारस्यानुस्वारे **पायडं पयडं** इति सिद्धम् । **प्रतिपत्** । प्रतिपत्+सि । रेफस्य लोपः, आदिमस्वरस्य वैकल्पिको दीर्घः, २०६ सू० प्रथम-तकारस्य डकारः, २३१ सूत्रेण पकारस्य वकारः, १५ सूत्रेण तकारस्य आकारादेशः, सेर्लोपे **पाडिवआ, पडिवआ** इति सिद्धम् । **प्रसुप्तः** । **प्रसुप्त**+सि । रेफस्य लोपः, वैकल्पिक आदेरतो दीर्घः, ३४८ सू० संयुक्तस्य द्वितीय-पकारस्य लोपः, ३६० सू०तकारस्य द्वित्त्वम् ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पासुत्तो, पसुत्तो** इति सिद्धम् । **प्रतिसिद्धिः** । प्रतिसिद्धि+सि । रेफस्य लोपः, वैकल्पिक आदेरतो दीर्घः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, अन्त्येकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **पाडिसिद्धी, पडिसिद्धी** इति सिद्धम् । **सदृक्षः** । सदृक्ष+सि । १४२ सू० दृशेर्धातोः **ऋतो रिरादेशे**, सद्रिक्ष+सि इति स्थिते, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, आदेः स्वरस्य वैकल्पिको दीर्घः, २७४ सू० क्षस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्त्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **सारिच्छो, सरिच्छो** इति सिद्धम् । **मनस्वी** । मनस्विन्+सि । आदेः स्वरस्य वैकल्पिको दीर्घः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, २६ सू० द्वितीयस्वरस्यानुस्वारागमः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **माणंसी, मणंसी** इति सिद्धम् । **मनस्विनी** । मनस्विनी+सि । २२८ सू० उभयत्रापि नकारस्य णकारे **माणंसिणी, मणंसिणी** इति सिद्धम् । शेष-प्रक्रिया, **माणंसी**-वद् बोध्या । **अभिजातिः** । अभिजाति+सि । आदेरकारस्य वैकल्पिको दीर्घः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, १७७ सू० जकारस्य तकारस्य च लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे-**आहिआई, अहिआई** इति सिद्धम् । **प्ररोहः** । प्ररोह+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, वैकल्पिको दीर्घः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पारोहो, परोहो** इति सिद्धम् । **प्रवासी** । प्रवासिन्+सि । रेफस्य लोपः, आदेः स्वरस्य वैकल्पिको दीर्घः, ९५ सू० इकारस्य उकारः, ११

सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य नकारस्य लोपः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे-**पावासू, पवासू** इति सिद्धम् । **प्रतिस्पर्द्धी** । प्रतिस्पर्द्धिन्+सि । रेफस्य लोपः, आदेः स्वरस्य वैकल्पिको दीर्घः, २०६ सू०तकारस्य डकारः, ३२४ सू० स्पस्य फकारः, ३६० सू० फकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ११ सू०अन्त्यनकारस्य लोपः, ५०८ सू०इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **पाडिप्फद्धी, पडिप्फद्धी** इति सिद्धम् ।

आकृतिगणोऽयमिति । आकृत्या-रूपेण, प्रयोगमनुसृत्य वा गण्यते इत्याकृतिगणः, तेनान्येषां शब्दानामप्यादेरकारस्य विकल्पेन दीर्घो भवति । यथा—**अस्पर्शः** । अस्पर्श+सि । ४४ सू०आदेः स्वरस्य वैकल्पिको दीर्घः, ८५३ सू० स्पर्श इत्यस्य फंस इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **आफंसो, अफंसो** इति सिद्धम् । मूले तु रूपमेकमेव दृश्यते । **परकीयम्** । परकीय+सि । आदेरकारस्य वैकल्पिको दीर्घः, ४१९ सू० इदमर्थस्य कीय इत्यस्य 'क्क' 'केर' इत्यादेशौ, **पारक्क**+सि, **पारकेर**+सि, **परक्क**+सि, **परकेर**+सि इति जाते, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पारक्कं, पारकेरं, परक्कं, परकेरं** इति सिद्धम् । मूले तु रूप-द्वयमेव लिखितम् । **प्रवचनम्** । प्रवचन+सि । ३५०सू०रेफस्य लोपः, वैकल्पिको दीर्घः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पावयणं, पवयणं** इति सिद्धम् । **चतुरन्तं** । चत्वारि अन्तानि-सीमानः यस्य तत् चतुरन्तं । चतुरन्त+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपः, आदिस्वरस्य वैकल्पिको दीर्घः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **चाउरन्तं चउरन्तं**, इति सिद्धम् । **४५—दक्षिणः** । दक्षिण+सि । ३४३ सू०संयुक्तस्य वैकल्पिको हकारः, ४५ सू०आदरेतो हे परे दीर्घः, ४६१ सू०सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **दाहिणो** इति सिद्धम् । **हं इतीति** । प्रस्तुतसूत्रे भणितं यद् हकारे पर-वर्तिनि सत्येव दक्षिणशब्दस्यादेरकारस्य दीर्घो भवति, नान्यथा । यथा—**दक्षिणः** । अत्र हकाराभावे, २७४ सू० क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वम्, पूर्वखकारस्य ककारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य- स्वरादेः लोपे, **दक्खिणो** इति भवति । **४६** । **स्वप्नः** । स्वप्न+सि । ४६ सू०आदेरकारस्य इकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३७९ सू० नकारात्पूर्वं इकारागमः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **सिविणो** इति सिद्धम् । यत्र २५९ सू० वकारस्य वैकल्पिको मकारस्तत्र **सिमिणो** इति सिद्धम् । **आर्षे** । आर्षप्राकृते स्वप्न-शब्दस्य आदेरकारस्य उकारोऽपि भवति । अकारस्य उकारे तु **सुमिणो** इति भवति । **ईषत्** । अव्ययपदमिदम् । २६० सू० षकारस्य सकारः, ४६ सू० अ-कारस्य इकारः, ११ सू० तकारस्य लोपे **ईसि** इति सिद्धम् । **वेतसः** । वेतस+सि । आदेरकारस्य इकारः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वेडिसो** इति सिद्धम् । **व्यलीकम्** । व्यलीक+सि । ३४९ सू०मकारस्य लोपः, अकारस्य इकारः, १०१ सू० ईकारस्य इकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **विलिअं** इति सिद्धम् । **व्यजनं** । व्यजन+सि । यकारस्य लोपः, ४६ सू० आदेरकारस्येकारः, १७७ सू० जकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे-**विअणं** इति सिद्धम् । **मृदङ्गः** । मृदङ्ग+सि । १३७ सू० ऋकारस्य उकारः, अकारस्येकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मुइङ्गो** इति सिद्धम् । **कृपणः** । कृपण+सि । १२८ सू०ऋकारस्य इकारः, आदेरकारस्येकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **किविणो** इति सिद्धम् । **उत्तमः** । उत्तम+सि । आदेरकारस्येकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **उत्तिमो** इति सिद्धम् । **मरिचः** । मरिच+सि । आदेरकारस्येकारः, १७७ सू०चकारस्य लोप, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मिरिअं** इति सिद्धम् । **दत्तं** । दत्त+सि । अकारस्येकारः, ३१४ सू०'त्त' इत्यस्य संयुक्तस्य णकारः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वं,

सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **दिण्णं** इति सिद्धम् । **बहुलाधिकारादिति** । ३१४ सूत्रे बहुलस्याधिकारो वर्तते, तेन क्वचित् 'त्त' इत्यस्य संयुक्त-णकारस्य आदेशो न भवति, यत्र संयुक्तणकारादेशाभावस्तत्र प्रस्तुत-सूत्रेण दत्त-शब्दस्य आदेरकारस्य इकारोऽपि न भवति । तेन दत्त+सि । इत्यत्र सेर्मकारे मकारस्यानुस्वारे **दत्तं** इति भवति । **देवदत्तः** । देवदत्त+सि । अत्र बहुलाधिकारात् ३१४ सू० 'त्त' इत्यस्य णकाराभावे, ४६ सू० अकारस्येकारोऽपि न जातः, ततः सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **देवदत्तो** इति सिद्धम् ।

४७ । **पक्वं** । पक्व+सि । ४७सू० आदेरकारस्य वैकल्पिकः इकारः, ३५०सू० वकारस्य लोपः, ३६० ०ककारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू०सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पिक्कं**, **पक्कं** इति सिद्धम् । **अङ्गारः** । अङ्गार+सि । आदेरकारस्य वैकल्पिक इकारः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **इङ्गालो**, **अङ्गालो** इति सिद्धम् । **ललाटः**+ललाट+सि । २५७ सू० आदेर्लकारस्य णकारः, १९५ सू० टकारस्य डकारः, ३६४ सू० लकार-डकारयोः व्यत्ययो (लकारस्य स्थाने डकारः, डकारस्य च स्थाने लकारः, इति व्यत्ययः) जातः, आदेरकारस्य वैकल्पिकः इकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **णिडालं**, **णडालं** इति सिद्धम् । ४८ । **मध्यमः** । मध्यम+सि । २६७ सू०संयुक्तस्य ध्यस्य झकारः, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारः, ४८ सू० द्वितीयस्याकारस्य इकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मज्झिमो** इति सिद्धम् । **कतमः** । कतम+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४८ सू० द्वितीयाकारस्येकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे, **कइमो** इति सिद्धम् । ४९ । **सप्तपर्णः** । सप्त-पर्ण+सि । २६५ सू० सकारस्य छकारः, ३४८ सू० संयुक्त-पकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, द्वितीयाकारस्य वैकल्पिकः इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, सेर्डो, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **छत्तिवण्णो**, **छत्तवण्णो** इति सिद्धम् ।

५०—विषमयः । विषमय+सि । २६० सू० षकारस्य सकारः, ५० सू० मयट्-प्रत्यय-सम्बन्धिनः आदेरकारस्य वैकल्पिकः 'अइ' इत्यादेशः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे-**विसमइओ** यत्र 'अइ' इत्यादेशो न जातस्तत्र **विसमओ** इति सिद्धम् । **५१** । **हरः** । हर+सि । **५१** सू०आदेरकारस्य वैकल्पिक ईकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **हीरो**, **हरो** इति सिद्धम् । **५२** । **ध्वनिः** । ध्वनि+सि । २८६ सू० 'ध्व' इत्यस्य भकारः, ५२ सू० अकारस्य उकारः, २२८ सू०नकारस्य णकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकास्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **झुणी** इति सिद्धम् । **विष्वक्** । विष्वक्+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, ४३ सू० इकारस्य दीर्घः, २६० सू० षकारस्य सकारः, ५२ सू० अकारस्य उकारः, **बहुलाधिकारात्** २४ सू० अन्यस्यापि (मकार-भिन्नस्यापि) व्यञ्जनस्य ककारस्य मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे-**वीसुं** इति सिद्धम् । **शुनक इति प्रकृत्यन्तरस्य** । प्रकृतसूत्रेण उक्तयोरेव उत्त्वविधानात् '**सुणओ**' इत्यस्य कथं सिद्धिरिति न शंकनीयम् । शुनक-शब्दस्य प्रकृत्यन्तरस्य सत्त्वात्, नायं **श्वन्**-शब्दनिष्पन्नः, तस्य तु '**सा, साणो**' इति रूपे भवतः । **यथा-शुनकः** । शुनक+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सुणओ** इति सिद्धम् । **सुणओ** इति रूपस्य प्रकृतिः '**शुनकः**' इत्यस्ति, न तु अत्र ५२ सू० अकारस्य उकारो जातः । **श्वा** । श्वन्+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ५४५ सू० अन्नन्तस्य राजवत्त्वात् ११ सू० नकारस्य लोपे, ५३८ सू० अन्त्याकारस्य आकारः, सेर्लोपे-**सा** इति सिद्धम् । **राजवत्त्वाभावपक्षे** । श्वन्+सि । पूर्ववदेव सन्+सि इति स्थिते, ५४५ सू०अन् इत्यस्य आण इत्यादेशे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **साणो** इति सिद्धम् ।**५३**। **वन्द्रं** । वन्द्र

सि। ५३ सू० वैकल्पिकः आदेरकारस्य उकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू०मकरस्यानुस्वारे **'वुन्द्रं', वन्द्रं** इति सिद्धम्। **खण्डितः**। खण्डित+सि। ५३ सू० णकारेण सहैव आदेरकारस्य वैकल्पिकः उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपे:, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **खुडिओ**। उत्वाभावे तु-**खण्डिओ** इति भवति। "**चण्ड-खण्डिते णा वा ।८।१।५३।**" इति पाठान्तरे तु **चण्डः**। चण्ड+सि इति स्थिते। ५३ सू०णकारेण सहितस्यादेरकारस्य वैकल्पिकः उकारः चुड+सि, चण्ड+सि इति स्थिते, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे, **चुडं, चण्डं इति** भवति। **पाठान्तरमिदं** समीचीनं प्रतीयते, यतोहि णकारेण सह अकारस्य उत्वविधान-मस्मिन् पाठे सत्येव संभवति, न तु **वन्द्र** इत्यस्मिन् पाठे। **५४। गवयः**। गवय+सि। ५४ सू०वकाराकारस्य उकारः, १७७ सू० वकारस्य यकारस्य च लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **गउओ** इति सिद्धम्। **स्त्रीलिङ्गे** तु पूर्ववदेव गउअ+सि इति स्थिते, ५२४ सू० डा-(आ)-प्रत्ययः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **गउआ** इति सिद्धम्। **५५**। **प्रथमं**। प्रथम+सि। ३५० सू० रेफ-लोपे, ५५ सू० पकार-थकारयोः अकारस्य युगपत् क्रमेण च वैकल्पिके उकारादेशे-**पुथुम+सि, पुथम+सि, पथुम+सि, पथम+सि**, इति जाते, २१५ सू०थकारस्य ढकारः, सेर्मकारः, मकारस्यनुस्वारे **पुढुमं, पुढमं, पढुमं**, यत्र उकार एव न जातस्तत्र-**पढमं** इति सिद्धम्। **५६। अभिज्ञः**। अभिज्ञ+सि। १८७ सू० भकारस्य हकारः, ३१३ सू०ज्ञस्य णकारः, ५६ सू०ज्ञस्य णत्वे कृते अकारस्य उकारः, ३६० सू०णकारस्य द्वित्वम्, ५०८ सू० उकारस्य दीर्वे, सेर्लोपे **अहिण्णू** इति सिद्धम्। **सर्वज्ञः**। सर्वज्ञ+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू०वकारस्य द्वित्वम्, शेषं **अहिण्णू-वत्-साधिते, सव्वण्णू** इति सिद्धम्। **कृतज्ञः**। कृतज्ञ +सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू०यकारविशिष्टेऽकारे, ३१३ सू० ज्ञस्य णकारे, णकारस्य द्वित्वे, शेषं **अहिण्णूवत्**-साधिते **कयण्णू** इति सिद्धम्। **आगमज्ञः**। आगमज्ञ+सि। ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वम्, शेषं पूर्ववदेव साधिते सति **आगमण्णू** इति सिद्धम्। **णत्व इतीति**। अ-भिज्ञादिषु शब्देषु ज्ञस्य णकारे कृत एव तस्य अकारस्य उकारो भवति नान्यथा। यथा। **अभिज्ञः**। अभिज्ञ +सि। १८७ सू० भकारस्य हकारः, ३५४ सू० ज्ञसम्बन्धिनो अकारस्य लोपः, ३६०सू०जकारस्य द्वित्वम्, ४६१ सू०सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अहिज्जो** इति सिद्धम्। अत्र णत्वाभावाद् ५६ सू०अकारस्य उकारो न जातः। एवमेव-**सर्वज्ञः**। सर्वज्ञ+सि। रेफस्य लोपः, वकारस्य द्वित्वम् ३५४ सू० ज्ञसम्बन्धिनो अकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, अज्झीनं परेणे संयोज्यम्, ततः **सव्वज्जो** इति भवति। **अभिज्ञादाविति**। अभिज्ञादि-शब्दानामेव ज्ञस्य अकारस्य उकारो भवति नान्यत्र, इत्येतस्य कथनस्य किं कारणम्? उत्तरयति वृत्तिकारो यदभिज्ञादि-कथनात्तद्भिन्नानां शब्दानां ज्ञस्याकारस्योकारो न भविष्यति। यथा—**प्राज्ञः**। प्राज्ञ+सि। रेफस्य लोपः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३१३ सूत्रेण ज्ञस्य णकारः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पण्णो** इति सिद्धम्। अत्र ५६ सू० ज्ञस्य णत्वे कृतेऽपि, ज्ञस्य अकारस्य उकारो न जातः, यतो हि शब्दोऽयमभिज्ञादिगणे न विद्यते। अभिज्ञादयश्च येषां ज्ञस्य णत्वे कृते ज्ञस्य अकारस्य उकारो दृश्यते, ते एव।

५७—शय्या। शय्या+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, ५७ सू० आदेरकारस्य एकारः, २६५ सू० संयुक्तस्य य्य इत्यस्य जकारः, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वम्, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सेज्जा** इति सिद्धम्। **सौन्दर्यम्**। सौन्दर्य+सि। १६० सू०औकारस्य उकारः, आदेरकारस्य एकारः, ३३४ सू० र्यस्य रेफः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सुन्देरं** इति सिद्धम्।

१—३५० सूत्रे अवन्द्रे इति पाठादत्र रेफस्य लोपाभावः।

कन्दुकः । कन्दुक+सि । १८२ सू० आद्यस्य ककारस्य गकारः, ५७ सू० आदेरकारस्य एकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **गेन्दुअं** इति सिद्धम् । **अत्र** । अव्ययपदमिदम् । आदेरकारस्य एकारः, ४३२ सू० त्रप्-प्रत्ययस्य त्थ इत्यादेशे **एत्थ** इति सिद्धम् । **आर्षे** । प्रस्तुत-सूत्रेणाकारभिन्नस्य स्वरस्य एकारादेशो न विहितः, परमार्ष-प्राकृतेऽकार-भिन्नस्याप्याकारस्य एकारो जायते । यथा—**पुराकर्म** । पुराकर्मन्+सि । आर्षत्वादत्र आकारस्यापि एकारः, रेफस्य लोपः, मकारस्य द्वित्वम्, ११ सू० नकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारानुस्वारे **पुरेकम्मं** इति सिद्धम्। **५८** । **वल्ली**। वल्ली+सि । ५८ सू० आदेरकारस्य वैकल्पिकः एकारः, सेर्लोपे, **वेल्ली, वल्ली** इति सिद्धम् । **उत्करः** । उत्कर+सि । ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वं, आदेरकारस्य वैकल्पिकः एकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **उक्केरो, उक्करो** इति सिद्धम् । **पर्यन्तः** । पर्यन्त+सि । आदेरकारस्य वैकल्पिकः एकारः, ३३६ सू० र्यस्य रेफः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **पेरन्तो** यत्र एकारो न जातस्तत्र २४५ सू० र्यस्य जकारे, जकार-द्वित्वे **पज्जन्तो** इति सिद्धम् । **आश्चर्यम्** । आश्चर्य+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, २९२ सू० श्चस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, आदेरकारस्य वैकल्पिकः एकारः, ३३७ सू० र्यस्य रेफः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अच्छेरं**, यत्र एकारो न जातस्तत्र पूर्ववदेव अच्छर्य+सि इति जाते, ३३८ सू० र्यस्य रिअ, अर, रिज्ज, रीअ इत्येते आदेशाः, ततः-अच्छरिअ +सि, अच्छअर+सि, अच्छरिज्ज+सि, अच्छरीअ+सि इति स्थिते, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं** इति सिद्धम् ।

५९—ब्रह्मचर्यम् । ब्रह्मचर्य+सि । ३५० सू०रेफस्य लोपः, ३४५ सू० संयुक्तस्य 'ह्म' इत्यस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ५९ सू०चकारस्थाकारस्य एकारः, ३३४ सू० र्यस्य रेफः, ५१४ सू०सेर्मकारः २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **बम्हचेरं** इति सिद्धम् । ६० । **अन्तःपुरं** । अन्तर्पुर+सि। अत्र वाक्यापेक्षया, ६० सू० तकारस्थस्य अकारस्य एकारः, ११ सू०रेफस्य लोपः, १७७ सू० पकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारानुस्वारे, **अन्तेउरं** इति सिद्धम् ।६०। **अन्तश्चारी** । अन्तर्-चारिन्+सि । पूर्ववदेवात्र तकारस्थाकारस्य एकारः, रेफस्य लोपः, चकारस्य लोपः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ५०८सू०इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **अन्तेआरी** इति सिद्धम् । **क्वचिन्नेति** । बहुलाधिकारात् क्वचित्-कस्मिंश्चित्स्थले अकारस्य एकारो न भवति । यथा—**अन्तर्गतम्** । अन्तर्गत +सि । अत्र विभक्त्यपेक्षया ३५०रेफस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू०तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अन्तग्गअं** सूति सिद्धम् । अत्र **बहुलाधिकारात्** ६०सू०तकारस्थाकारस्य एकारो न जातः । **अन्तः-विश्रम्भ-निवेशितानाम्** । **अन्तः** अभ्यन्तरे, **विश्रम्भः**—विश्वासः, **निवेशितः**—स्थापितः येषां ते अन्तः-विश्रम्भ-निवेशिताः तेषां । अन्तर्-विश्रम्भ-निवेशित+आम् । अन्तर् १।३।५३[1] सू० रेफस्य विसर्गः, ३७ सू० विसर्गस्य 'डो' (ओ) इत्यादेशः, २।१।११४ सू० डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, अज्भीने परेण संयोज्ये **अन्तो** इति सिद्धम् । **विश्रम्भ** । ३५० सू० रेफस्य लोपः, ४३ सू० इकारस्य दीर्घः, २६० सू० षकारस्य सकारे-**वीसम्भ** इति सिद्धम् । निवेशित+आम् । २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४६५ सू० आमः ण इत्यादेशः, ५०१ सू अकारस्य दीर्घः, २७ सू० णकारस्य अन्ते अनुस्वारागमे **निवेसिआणं** इति सिद्धम् । अत्र बाहुल्यात् अन्तर् इत्यस्य अकारस्य, ६० सू० एकारो न जातः । ६१ । **पद्मम्** । पद्म+सि । ६१ सू० आदेरकारस्य ओकारः, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, ३६० सू० मकारस्य

१—**रःपदान्ते विसर्गस्तयोः १।३।५३।** पदान्तस्थस्य रस्य तयोर्विरामाघोषयोर्विसर्गः स्यात् । वक्षः, स्वः इत्यादि । **पाणिनीये तु-खरवसानयोर्विसर्जनीयः** ८।३।१५। सूत्रेण रेफस्य विसर्गो भवति ।

द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारानुस्वारे **पोम्मं** इति सिद्धम् । **पद्म-छद्मे ति** । यत्र ३८३ सूत्रेण संयुक्तस्य अन्त्य-व्यञ्जनात्पूर्वम् इकारागमो भवति तत्र प्रस्तुतसूत्रेण आदेरकारस्य ओकारो न भवतीति भावः । यथा—३८३ सू० संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वमुकारागमे—पदुम+सि इति स्थिते १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपे पूर्ववदेव पउमं इति भवति । अत्र ३८३ सू० उकारस्य विश्लेषो (स्वरैः संयुक्तवर्णानां पृथक्करणं) जातोऽत-एव वृत्तिकारमनुसृत्यात्र ६१ सू० आदेरकारस्य ओकारो न जातः ।

६२—**नमस्कारः** । नमस्कार+सि । ६२ सू० द्वितीयाकारस्य ओकारे, ३४८ सू० सकारस्य लोपे, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**नमोक्कारो** इति सिद्धम् । ओकारविधानसामर्थ्यात् ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वो न जातः । **परस्परम्** । परस्पर+सि । द्वितीयस्य अकारस्य ओकारः, संयुक्तसकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **परोप्परं** इति सिद्धम् ।

६३—**अर्पयति** । ऋ गतौ, तस्य वर्तमाने (लट्) इयर्ति इयन्तं प्रयुङ्क्ते इति प्रेरणार्थकः णिग्, ४ । २ । २१ । सूत्रेण णिगि सति अर्पयति इति संस्कृतरूपम् । अर्प्+णिक्+तिव् इति स्थिते ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एत् (ए) इत्यादेशे, ६४२ सू० आद्या-कारस्य आकारे, ६३ सू० आद्याकारस्य विकल्पेन ओकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—ओप्प्+ए+इ अप्प्+ए+इ, इति जाते अज्भीने परेण संयोज्ये **ओप्पेइ, अप्पेइ** इति सिद्धम् । **ओप्पेइ** इत्यत्र ओकार-विधानसामर्थ्यात् ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वो न जातः । **अर्पितम्** । ऋ+णिग्+क्त । पूर्ववदेव अप्प्+णिग्+क्त इति स्थिते, ६३८ सू० णिगः अकारादेशे, अप्प्+अ+क्त इति जाते, ६४२ सू० आद्याकारस्य आकारे, ८४ सू० संयोगे परे आद्याकारे ह्रस्वे । अज्भीने परेण संयोज्ये, ६३ सू० आदेर-कारस्य विकल्पेन ओकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सि-प्रत्यये, सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **ओप्पिअं**, ओकाराभावे—**अप्पिअं** इति सिद्धम् ।

६४—**स्वपिति** । स्वप् स्वप्ने । स्वप्+तिव् । ६४ सू०० आदेरकारस्य ओकारे, उकारे च, ६१ सू० धातोरन्ते अकारागमे, ३५० सू० वकारस्य लोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, तिवः इचादेशे **सोवइ, सुवइ** इति सिद्धम् ।

६५—**न पुनः** । न पुनर् । १७७ सू० पकारस्य लोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ११ सू० रेफस्य लोपे, ६५ सू० आदेरकारस्य वैकल्पिको आ, आइ, इत्यादेशौ जातौ, ततः **न उणा, न उणाइ** इति सिद्धम् । यत्र ६५ सूत्रस्य प्रवृत्यभावस्तत्र **न पुनः** इति स्थिते, पकारस्य लोपे, नकारस्य णकारे, ३७ सू० विसर्गस्य डो इत्यादेशे २ । १ । ११४ । सू० डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **न उणो** इति सिद्धम् ।

केवलस्यापि । एकाकिनोऽपि पुनर्-शब्दस्याकारस्य **बहुलाधिकारात्** आइ इत्यादेशो दृश्यते । यथा—**पुनर्** । अव्ययपदमिदम्, नकारस्य णकारे, ११ सू० रेफस्य लोपे, **बाहुल्येन**-६५ सू० आद्याकारस्य आइ इत्यादेशे **पुणाइ** इति सिद्धम् ।

६६—**अलाबु** । अलाबु+सि । ६६ सू० आदेरकारस्य विकल्पेन लोपे, २३७ सू० बकारस्य वकारे, १७७ सू० वकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे,—**लाउं, अलाउं** इति सिद्धम् । **स्त्रीलिङ्गे** तु पूर्व-वदेव **लाउ+सि, अलाउ+सि** इति स्थिते, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे,—**लाऊ-अलाऊ** इति सिद्धम् । **अलाबु** शब्दः तुम्बस्य लतायां तु **स्त्रीलिङ्गकः**, फलार्थको **नपुंसकलिङ्गकः** । **अरण्यम्** । अरण्य+सि । ६६ सू० आदेरकारस्य विकल्पेन लोपे, ३४८ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे रण्ण+सि,

अरण्ण+सि इति जाते, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**रण्णं, अरण्णं** इति सिद्धम्। **अत इत्येव।** आदेरकारस्यैव लोपो जायते नत्वाकारस्य। यत्र दीर्घाकारस्तत्र तु लोपाभावो यथा—**आरण्यकुञ्जर इव रममाणः। आरण्यकुञ्जरः**—अरण्ये भवः आरण्यः, आरण्यश्चासौ कुञ्जरः—आरण्यकुञ्जरः। आरण्यकुञ्जर+सि। आरण्य इत्यस्य पूर्ववदेव **आरण्ण** इति जाते, कुञ्जर+सि। इत्यत्र २५ सू० ञकारस्यानुस्वारे, ३० सू० वर्गस्यान्त्ये, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये—**आरण्ण कुञ्जरो** इति सिद्धम्। **इव।** अव्ययपदमिदम्। ४५३ सू० इवार्थे व्व इत्यस्य प्रयोगे, **व्व** इति सिद्धम्। **रममाणः** रमु क्रीडायां। रम्+आनश्। ८३६ सू० रम्-धातोः **'वेल्ल'** इत्यादेशे, ६७० सू० आनशः 'न्त' इत्यादेशे, सि-प्रत्यये, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वेल्लन्तो** इति सिद्धम्।

अकार के स्थान में होने वाले कार्य

प्राकृत-भाषा में अकार के स्थान में क्या कुछ होता है? इस सम्बन्ध में इस प्रकरण में प्रकाश डाला जा रहा है।

४४—समृद्धि-गण में पठित शब्दों के आदिम अकार को विकल्प से दीर्घ हो जाता है।

जैसे—१—**समृद्धिः**=सामिद्धी, समिद्धी (संपत्ति), २—**प्रसिद्धिः**=पासिद्धी, पसिद्धी (प्रसिद्धि, विख्याति), ३—**प्रकटम्**=पायडं, पयडं (व्यक्त), ४—**प्रतिपद्**=पाडिवआ, पडिवआ (एकम), ५=**प्रसुप्तः**=पासुत्तो, पसुत्तो (सोया हुआ), ६—**प्रतिसिद्धिः**=पाडिसिद्धी, पडिसिद्धी (अनुपम या प्रतिकूल सिद्धि), ७—**सदृक्षः**—सारिच्छो, सरिच्छो (समान), ८—**मनस्विन्**=माणंसी मणंसी (विद्वान्), ६—**मनस्विनी**=माणंसिणी, मणंसिणी (बुद्धिमती नारी), १०—**अभिजातिः**=आहिआई, अहिआई, (कुलीन वंश में उत्पत्ति), ११—**प्ररोहः**=पारोहो, परोहो (उत्पत्ति, अंकुर), १२—**प्रवासिन्**=पावासू, पवासू (मुसाफिर), १३—**प्रतिस्पर्द्धिन्**=पाडिप्फद्धी, पडिप्फद्धी (प्रतिस्पर्धा करने वाला)—इन शब्दों में प्रस्तुत ४४ सूत्र द्वारा आदि स्वर को विकल्प से दीर्घ किया गया है। वृत्तिकार ने समृद्धिगण को **आकृतिगण** माना है। भाव यह है कि जिस प्रकार समृद्धि आदि शब्दों के उदाहरण दिए गए हैं वैसे ही अन्य शब्दों में भी यदि कहीं आदि-स्वर को विकल्प से दीर्घ किया गया हो तो उन शब्दों को समृद्धिगण के अन्तर्गत, ही समझ लेना चाहिए। इसी कारण १—**अस्पर्शः**=आफंसो, अफंसो (अल्प स्पर्श), २—**परकीयम्**=पारक्केरं, पारक्कं, (दूसरे से सम्बन्धित) ३—**प्रवचनम्**—पावयणं, पवयणं (व्याख्यान) ४—**चतुरन्तम्**=**चाउरन्तं**, चउरन्तं (चार सीमाओं वाला) इत्यादि शब्द भी समृद्धि-गण के अन्तर्गत माने जाते हैं और इनके आदिम स्वर को प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से दीर्घ किया गया है।

४५—दक्षिण—शब्द में (क्ष को किए गए) हकार के परे रहने पर आदिम स्वर को दीर्घ हो जाता है।

जैसे—**दक्षिणः**=दाहिणो (चतुर, दक्षिण दिशा का निवासी, दाहिना) यहां हकार के आगे होने से आदिम स्वर को दीर्घ किया गया है। तथा—**दक्षिणः**=दक्खिणो, यहां हकार परे न होने से आदि-स्वर दीर्घ नहीं हो सका। इसीलिए सूत्रकार ने सूत्र में 'हे' इस पद का उल्लेख किया है।

४६—स्वप्न-गण में पठित शब्दों के आदिम अकार को इकार होता है।

जैसे १—**स्वप्नः**=सिविणो, सिमिणो, (सपना) २—**ईषत्**=ईसि, (अल्प), ३—**वेतसः**=वेडिसो, (बेंत की लकड़ी) ४—**व्यलीकम्**—विलिअं (मिथ्याभाषण), ५—**व्यंजनम्**—विअणं (पंखा), ६—**मृदङ्गः**=

मुइङ्गो (मृदंग) ७–**कृपणः**=किविणो (कंजूस),८–**उत्तमः**=उत्तिमो,(श्रेष्ठ), ९–**मरिचम्**=मिरिअं (मिरच), १०–**दत्तम्**=दिण्णं, (दिया हुआ)यहां पर स्वप्न-गण में पठित शब्दों के आदिम अकार को इकार किया गया है।

आर्षप्राकृत में 'स्वप्न' शब्द के आदिम अकार को इकार हो जाने पर **"सुमिणे"** यह रूप भी बन जाता है। तथा **बहुलाधिकार** के कारण जहां ३१४ सूत्र से दत्त शब्द के 'त्त' को ण इस आदेश का अभाव होता है, वहां पर प्रस्तुत सूत्र से उसके आदिम अकार को इकार भी नहीं हो पाता। फलतः **दत्तम्** का **दत्तं** यह रूप भी बनता है। **देवदत्तः**=देवदत्तो (किसी व्यक्ति का नाम) यहां पर भी बहुलाधिकार से 'त्त' को ३१४ सूत्र से णकारादेश नहीं हो सका। फलतः प्रस्तुत सूत्र से दत्त के आदिम अकार को इकार भी नहीं हो पाया।

४७–**पक्व, अङ्गार** और **ललाट**, इन शब्दों में आदि के अकार को विकल्प से इकार होता है।

जैसे–१–**पक्वम्**=पिक्कं, पक्कं (पका हुआ) २–**अङ्गारः**=इङ्गारो, अङ्गारो(अंगार) ३–**ललाटम्**=णिडालं, णडालं (मस्तक) यहां पर आदिम अकार को विकल्प से इकार किया गया है।

४८–**मध्यम** और **कतम** इन शब्दों के द्वितीय अकार को उकार होता है।

जैसे –१–**मध्यमः**=मज्झिमो (बीच का), २–**कतमः**=कइमो (बहुत में से कौनसा), यहां पर द्वितीय अकार को इकार किया गया है।

४९–**सप्तपर्णः**=सप्तपर्ण शब्द के दूसरे अकार को विकल्प से 'इ' हो जाती है। जैसे छत्तिवण्णो, छत्तवण्णो (वृक्ष विशेष) यहां पर द्वितीय अकार को विकल्प से इकार किया गया है।

५०–मयट्-प्रत्यय में आद्य अकार के स्थान में "अइ" यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे–**विषमयः**=विसमइयो, विसमओ, (विष का बना हुआ) यहां पर मयट्–प्रत्यय के आदिम अकार के स्थान में विकल्प से **'अइ'** यह आदेश किया गया है।

५१–हर शब्द के आदिम अकार को विकल्प से ईकार होता है।

जैसे–**हरः**=हीरो, हरो (शंकर) यहां पर अकार को विकल्प से ईकार किया गया है।

५२–ध्वनि और विष्वक् इन शब्दों के आदिम अकार को उकार होता है।

जैसे–१–**ध्वनिः**=झुणी (आवाज़) २–**विष्वक्**=वीसु (चारों ओर से) यहां पर आदि के अकार को उकार किया गया है।

यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि सूत्रकार ने तो **ध्वनि** और **विष्वक्** इन दो शब्दों के आदिम अकार को उकारादेश का विधान किया है, किन्तु **सुणओ** यह शब्द देखने से ऐसा लगता है कि जैसे प्रस्तुत सूत्र से इस के आदिम अकार को उकार किया गया हो क्या यह सत्य है? उत्तर में निवेदन है कि बिल्कुल नहीं। **सुणओ**(कुत्ता)इस शब्द की व्युत्पत्ति का मूल **शुनक** है। **सा** और **साणो**, ये दोनों शब्द भी **श्वन्** (कुत्ता) शब्द से बनाए गए हैं। प्रस्तुत सूत्र का इन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

५३–वन्द्र और **खण्डित** इन दोनों शब्दों के णकारसहित अकार को विकल्प से उकार होता है। जैसे–१–**वन्द्रम्**=वुन्द्रं, वन्द्रं (समूह) २–**खण्डितः**=खुडिओ खण्डिओ (जिस का खण्डन कर दिया गया है)

यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि इन शब्दों के आदिम अकार को णकार के साथ विकल्प

से उकार किया गया है। किन्तु '**वन्द्र**' शब्द में णकार का अभाव है उत्तर में निवेदन है कि सूत्रकार ने सूत्र में 'वन्द्र और खण्डित' जो ये दो शब्द पढ़े हैं इस से यह प्रकट होता है कि 'ण' से ण और न इन दोनों का ग्रहण हो जाता है। किसी-किसी प्रति में '**वन्द्र**' के स्थान पर '**चण्ड**' यह पाठ भी देखने में आता है। यदि यही पाठ मान लिया जाए तब उक्त आपत्ति के लिए कोई स्थान नहीं रहता।

५४—गवय शब्द के वकार-गत अकार को उकार होता है।

जैसे—**गवयः**=गउओ गउआ (रोझ, पशु विशेष) गवय शब्द पुल्लिगी और स्त्रीलिंगी है, अतः इसके दो रूप बन गए हैं। दोनों में वकारस्थ अकार को उकार किया गया है।

५५—प्रथम शब्द में पकार और थकार के अकार को युगपत् (एक साथ) और क्रम से (पहले पकारस्थ अकार को फिर थकारस्थ अकार को) वैकल्पिक उकार होता है। इसी कारण युगपत् (एक साथ) अकार को उकारादेश होने पर **प्रथमम्=पुढुमं,** पकारस्थ अकार को उकार होने से **पुढमं,** थकार-स्थ अकार को उकार होने से **पढुमं** और दोनों जगह अकार को उकारादेश का अभाव रहने पर **पढमं** (पहला) यह रूप बनता है। इस तरह प्रथमम् शब्द के उक्त चार रूप सम्पन्न हो जाते हैं।

५६—अभिज्ञ आदि शब्दों के 'ज्ञ' को 'ण' यह आदेश करने पर ज्ञ के अकार को उकार किया जाता है।

जैसे—१—**अभिज्ञः**=अहिण्णू (अच्छी तरह से जाननेवाला) २—**सर्वज्ञः**=सव्वण्णू (सब कुछ जानने वाला) ३—**कृतज्ञः**=कयण्णू (उपकार मानने वाला) ४—**आगमज्ञः**=आगमण्णू (आगम का ज्ञान रखनेवाला) इन शब्दों में ज्ञ को णादेश करने पर उसके अकार को उकार किया गया है।

'**णादेश**' करने पर ही ज्ञ के अकार को उकार होता है, ऐसा कहने का उद्देश्य इतना ही है कि **अभिज्ञः**=अहिज्जो तथा **सर्वज्ञः**=सव्वज्जो आदि प्रयोगों में 'णादेश' न होने पर 'ज्ञ' के अकार को उकार नहीं हो पाया। '**अभिज्ञ**' आदि शब्दों का विशेष रूप से जो उल्लेख किया गया है इस का कारण भी बतलाते हुए वृत्तिकार लिखते हैं कि **प्राज्ञः**=पण्णो (बुद्धिमान) आदि शब्दों में यदि ज्ञ को णादेश कर भी दिया जाए तब भी इन के 'ज्ञ' के अकार को उकारादेश न हो, इसलिये अभिज्ञ आदि का ग्रहण किया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि अभिज्ञादि शब्द कौन-कौन से हैं? उत्तर में निवेदन है कि जिन शब्दों के 'ज्ञ' को णादेश करने पर उन के अकार को उकार किया गया हो वे सब अभिज्ञादि शब्द समझने चाहिएं।

५७—शय्या आदि शब्दों के आदिम अकार को एकार होता है। जैसे—१—**शय्या**=सेज्जा (बिछौना) २—**सौन्दर्यम्**=सुन्देरं (सुन्दरता) ३—**कन्दुकः**=गेन्दुअं (गेन्द) ४—**अत्र**=एत्थ (यहां)। इन शब्दों के आदिम अकार को एकार किया गया है। **पुरा-कर्म**=पुरेकम्मं (पूर्व का कर्म) इस शब्द के आदिम आकार को जो एकार दिखाई दे रहा है, यह शब्द आर्षप्राकृत का है, इस कारण आकार को एकार कर रखा है यह समझना चाहिए।

५८—वल्ली, उत्कर, पर्यन्त और आश्चर्य इन शब्दों के आदिम अकार को विकल्प से एकार होता है।

जैसे १—**वल्ली**=वेल्ली, वल्ली (लता) २—**उत्करः**=उक्केरो उक्करो (राशि, समूह) ३—**पर्यन्तः**=पेरन्तो, पज्जन्तो (तक) ४—**आश्चर्यम्**=अच्छेरं, अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं (विस्मय) यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा आद्य अकार को विकल्प से एकार किया गया है।

५९—**ब्रह्मचर्य** शब्द के चकार-गत अकार को एकार होता है। जैसे-**ब्रह्मचर्यम्**=बम्हचेरं, (वासना से निवृत्ति), यहां अकार को एकार किया गया है।

६०—**अन्तर्** शब्द के तकारस्थ अकार को एकार होता है। जैसे—१—**अन्तःपुरम्**=अन्तेउरं (राजमहल) २—**अन्तश्चारी**=अन्तेआरी (बीच में जानेवाला) यहां तकारस्थ अकार को एकार किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में **बहुलं** का अधिकार होने से कहीं पर अन्तर् के तकारस्थ अकार को एकार नहीं भी होता। जैसे—१—**अन्तर्गतम्**=अन्तग्गयं (अन्दर गया हुआ) २—**अन्तर्-विश्रम्भ-निवेशितानाम्**=अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआणं (जिन के हृदय में विश्वास रहा हुआ है, उनके) यहां पर **बहुलाधिकार** के कारण अन्तर् के तकारस्थ अकार को एकार नहीं हो सका।

६१—**पद्म** शब्द के आदिम अकार को ओकार होता है। जैसे—**पद्मम्**=पोम्मं (कमल) यहां प्रस्तुत सूत्र से अकार को ओकार किया गया है, किन्तु जहां पर पद्म शब्द में ३८३ सूत्र से विश्लेष होता है=संयुक्त के अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व 'उद्' यह आगम किया जाता है, वहां पर इस सूत्र से आदिम अकार को उकार नहीं हो पाता। जैसे—**पद्मम्**=पउमं। यहां पर विश्लेष अवस्था के कारण प्रस्तुत सूत्र से आद्य अकार को उकार नहीं हो सका।

६२—**नमस्कार** और **परस्पर** शब्द के द्वितीय अकार को ओकार होता है। जैसे-१-**नमस्कारः**= नमोक्कारो (प्रणाम) २—**परस्परम्**=परोप्परं (आपस में) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से द्वितीयाकार को ओकार किया गया है।

६३—**अर्पि धातु** के आदिम अकार को विकल्प से ओकार होता है। जैसे—१—**अर्पयति**= ओप्पेइ, अप्पेइ, (वह सौंपता है) २—**अर्पितम्**=ओप्पिअं अप्पिअं (सौंपा हुआ), यहां आदिम अकार को विकल्प से ओकार किया गया है।

६४—**स्वप् धातु** में आदिम अकार को ओकार और उकार होता है। जैसे—**स्वपिति**=सोवइ, सुवइ (वह शयन करता है) यहां आद्य अकार को ओकार और उकार किया गया है।

६५—**नञ्** इस अव्यय से आगे रहे हुए 'पुनः' शब्द के आद्य अकार को 'आ' और 'आइ' ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**न पुनर्**=न उणा, न उणाइ, जहां '**आ**' और '**आइ**' ये आदेश नहीं हुए वहां पर—**न उण, न उणो** (फिर नहीं) ये रूप बनते हैं। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर 'न' यह अव्यय पद पूर्व में न होने पर भी **पुनर्** के आदिम अकार को '**आइ**' यह आदेश हो जाता है। जैसे—**पुनर्**=पुणाइ। (फिर), यहां नञ् का अभाव होने पर भी पुनर् के आदि—अकार को '**आइ**' यह आदेश कर दिया गया है।

६६—**अलाबु** और **अरण्य** शब्द के आदिम अकार का विकल्प से लोप होता है। जैसे—१— **अलाबुम्**=लाउं अलाउं, लाऊ, अलाऊ (तुम्बी, तुम्बी का बरतन) २—**अरण्यम्**=रण्णं, अरण्णं (जंगल) यहां पर आद्य अकार का विकल्प से लोप किया गया है।

ध्यान रहे कि प्रस्तुत सूत्र से केवल अकार का ही लोप होता है। अ को छोड़ कर यदि कोई अन्य स्वर हो तो इस सूत्र से उसका लोप नहीं होता। जैसे—**आरण्य-कुञ्जर इव रममाणः**=आरण्ण-कुञ्जरो व्व वेल्लन्तो (जंगली हाथी के भांति रमण करता हुआ), यहां आरण्य शब्द में अकार का अभाव होने से आकार का लोप नहीं हो सका।

अथ आकार-विधिः

६७—वाव्ययोत्खातादावदातः, ८।१।६७। अव्ययेषु उत्खातादिषु च शब्देषु आदेराकारस्य अद् वा भवति। अव्ययम्—जह-जहा। तह तहा। अहव अहवा। व वा। ह हा इत्यादि। **उत्खातादि**। उक्खयं, उक्खायं। चमरो, चामरो। कलओ, कालओ। ठविओ, ठाविओ। परिट्ठविओ, परिट्ठाविओ। संठविओ, संठाविओ। पययं, पाययं। तलवेण्टं, तालवेण्टं। तलवोण्टं, तालवोण्टं। हलिओ, हालिओ। नराओ, नाराओ। बलया, बलाया। कुमरो, कुमारो। खइरं, खाइरं। उत्खात। चामर। कालक। स्थापित। परिस्थापित, संस्थापित। प्राकृत। तालवृन्त। हालिक। नाराच। बलाका। कुमार। खादिर। इत्यादि। केचिद् ब्राह्मणपूर्वाह्णयोरपीच्छन्ति। बम्हणो, बाम्हणो। पुव्वण्हो, पुव्वाण्हो। दवग्गी, दावग्गी। चडू, चाडू। इति शब्दभेदात् सिद्धम्।

६८—घञ्वृद्धेर्वा, ८।१।६८। घञ्-निमित्तो यो वृद्धिरूपः आकारस्तस्यादिभूतस्य अद् वा भवति। पवहो, पवाहो। पहरो, पहारो। पयरो, पयारो। प्रकारः प्रचारो वा। पत्थवो, पत्थावो। क्वचिन्न भवति-रागः, राओ।

६९—महाराष्ट्रे। ८।१।६९। महाराष्ट्रशब्दे आदेराकारस्य अद् भवति। मरहट्ठं, मरहट्ठो।

७०—मांसादिष्वनुस्वारे। ८।१।७०। मांसप्रकारेषु अनुस्वारे सति आदेरातः अद् भवति। मंसं। पंसू। पंसणो। कंसं। कंसिओ। वंसिओ। पंडवो। संसिद्धिओ। संजत्तिओ। अनुस्वार इति किम्? मासं। पासू। मांस। पांसु। पांसन। कांस्य। कांसिक। वांशिक। पाण्डव। सांसिद्धिक। सांयात्रिक इत्यादि।

७१—श्यामाके मः, ८।१।७१। श्यामाके मस्य आतः अद् भवति। सामओ।

७२—इः सदादौ वा ८।१।७२। सदादिषु शब्देषु आत इत्त्वं वा भवति। सइ, सया। निसिअरो, निसाअरो। कुप्पिसो, कुप्पासो।

७३—आचार्ये चोऽच्च, ८।१।७३। आचार्यशब्दे चस्य आतः इत्त्वं अत्त्वं च भवति। आइरिओ, आयरिओ।

७४—ईः स्त्यान-खल्वाटे, ८।१।७४। स्त्यान-खल्वाटयोरादेरात ईर्भवति। ठीणं, थीणं, थिण्णं। खल्लीडो। संखायं इति तु ६८६ 'समः स्त्यः खाः' (८।४।१५) इति खादेशे सिद्धम्।

७५—उः सास्ना-स्तावके ८।१।७५। अनयोरादेरात उत्त्वं भवति। सुण्हा। थुवओ।

७६—ऊद्वासारे ८।१।७६। आसार-शब्दे आदेरात ऊद् वा भवति । ऊसारो-आसारो ।

७७—आर्यायां यः श्वश्र्वाम् ८।१।७७ । आर्याशब्दे श्वश्र्वां वाच्यायां यस्यात ऊर्भवति । अज्जू । श्वश्र्वामिति किम्—अज्जा ।

७८—एद् ग्राह्ये, ८।१।७८ । ग्राह्यशब्दे आदेरात् एद् भवति । गेज्झं ।

७९—द्वारे वा, ८।१।७९। द्वारशब्दे आत एद् वा भवति । देरं । पक्षे-दुआरं, दारं, वारं। कथं नेरइओ, नारइओ ? नैरयिक-नारकिकशब्दयोर्भविष्यति। आर्षे तु अन्यत्रापि । पच्छेकम्मं । असहेज्ज देवासुरी ।

८०—पारापते रो वा,८।१।८०। पारापतशब्दे रस्थस्यात एद् वा भवति । पारेवओ, पारावओ ।

८१—मात्रटि वा, ८।१।८१ । मात्रट्-प्रत्यये आत एद् वा भवति । एत्तिअमेत्तं, एत्तिअमत्तं। बहुलाधिकारात् क्वचिन्मात्रशब्देऽपि । भोअणमेत्तं ।

८२—उदोद्वार्द्रे, ८।१।८२ । आर्द्रशब्दे आदेरात उद् ओच्च वा भवतः । उल्लं । ओल्लं । पक्षे अल्लं, अद्दं । बाह-सलिलपवहेण उल्लेइ ।

८३—ओदाल्यां पंक्तौ ८।१।८३ । आलीशब्दे पंक्तिवाचिनि आत ओत्वं भवति । ओली । पङ्क्ताविति किम्—आली—सखी ।

८४—ह्रस्वः संयोगे ८।१।८४ । दीर्घस्य यथादर्शनं संयोगे परे ह्रस्वो भवति । **आत्**, आम्रम्,अम्बं । ताम्रम्-तम्बं । विरहाग्निः—विरहग्गी । आस्यं—अस्सं । **इत्** । मुनीन्द्रः—मुणिन्दो । तीर्थं-तित्थं। **ऊत्**, गुरूल्लापाः-गुरुल्लावा । चूर्णः-चुण्णो। **एत्**। नरेन्द्रः—नरिन्दो । म्लेच्छः—मिलिच्छो। दिट्ठिक्कथण-वट्टं । **ओत्** । अधरोष्ठः-अहरुट्ठं । नीलोत्पलम्-नीलुप्पलं। संयोग इति किम्- आयासं । ईसरो । ऊसवो ।

अथ आकार-विधिः

प्राकृत-व्याकरणमनुसृत्य आकार-स्थाने अकारादेशादिकानि यानि कार्याणि भवन्ति तेषां निदर्शनमत्र क्रियते ।

यथा । अव्ययपदमिदम् । ४५ सू० यकारस्य जकारः, १८७ सू० थकारस्य हकारे, ६७ सू० आकारस्य स्थाने वैकल्पिके अकारे—**जह, जहा** इति सिद्धम् । एवमेव—**तथा**—तह-तहा । **अथवा—**अहव, अहवा । **वा**—व, वा । **हा**—ह, हा आदि—रूपाणि भवन्ति । **उत्खातं** । उत्खात+सि । ३४८ सू० तकारस्य लोपे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, विकल्पेन आकारस्य अकारे,

उक्खत+सि, उक्खात+सि इति स्थिते १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **उक्खयं, उक्खायं** इति सिद्धम् । **चामरः** । चामर+सि । आदेराकारस्य वैकल्पिकः अकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **चमरो, चामरो** इति सिद्धम् । **कालकः**—कालक+सि । आदेराकारस्य वैकल्पिके अकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **कलओ, कालओ** इति सिद्धम् । **स्थापितः** । स्थापित+सि । ६८७ सू० तिष्ठतेः "ठा" इत्यादेशः, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **ठविओ, ठाविओ** इति सिद्धम् । **प्रतिस्थापितः**—प्रतिस्थापित+सि । ३८ सू० प्रतेः 'परि' इत्यादेशे, तिष्ठतेः 'ठा' इत्यादेशे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, आदेराकारस्य विकल्पेन अकारः, पकारस्य वकारः, पूर्ववदेव **परिट्ठविओ, परिट्ठाविओ** इति सिद्धम् । **संस्थापितः** । संस्थापित+सि । स्था-धातोः ठा इत्यादेशे, आदेराकारस्य विकल्पेन अकारे, पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव—**संठविओ, संठाविओ** इति सिद्धम् । **प्राकृतम्** । प्राकृत+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, आदेराकारस्य विकल्पेन अकारे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टौ आकारौ, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**पययं, पाययं** इति सिद्धम् । **तालवृन्तम्** । तालवृन्त+सि । आदेराकारस्य विकल्पेन अकारः, १३९ सू० वृन्तशब्दे ऋकारस्य इकारे, एकारे, ओकारे च । ३०२ सू० संयुक्तस्य "न्त" इत्यस्य "ण्ट" इत्यादेशे, पूर्ववदेव—**तलविण्टं, तलवेण्टं, तलवोण्टं, तालवेण्टं, तालवोण्टं तालविण्टं**, इति सिद्धम् । प्रकृते तु चत्वारि रूपाणि संगृहीतानि । **हालिकः** । हालिक+सि । आदेराकारस्य वैकल्पिके अकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपः, पूर्ववदेव—**हलिओ, हालिओ** इति सिद्धम् । **नाराचः** । नाराच+सि । आदेराकारस्य विकल्पेन अकारः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, पूर्ववदेव—**नराओ, नाराओ** इति सिद्धम् । **बलाका** । बलाका+सि । आदेराकारस्य विकल्पेन अकारः, ककारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्लोपे **बलया, बलाया** इति सिद्धम् । **कुमारः**—कुमार+सि । आकारस्य वैकल्पिकः अकारः, पूर्ववदेव—**कुमरो, कुमारो** इति सिद्धम् । **खादिरं**, खादिर+सि । आकारस्य विकल्पेन अकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**खइरं, खाइरं** इति सिद्धम् । **ब्राह्मण-पूर्वाह्णे ति** । उत्खातादिषु ग्रहणाभावात् प्रस्तुतसूत्रेण ब्राह्मण-पूर्वाह्ण-शब्दयोः आदेराकारस्य अकारादेशाभावः स्पष्ट एव, किन्तु केचिदाचार्याः ब्राह्मण-पूर्वाह्ण-शब्दयोरादेराकारस्यापि वैकल्पिकमकारादेशमिच्छन्ति । फलतस्तेषां मते—**बम्हणो-बाम्हणो, पुव्वण्हो, पुव्वाण्हो**, एतान्यपि रूपाणि भवन्ति । शब्दसाधना त्वित्थम्—**ब्राह्मणः**—ब्राह्मण+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, आकारस्य विकल्पेन अकारः, ३४५ सू० ह्मस्य 'म्ह' इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**बम्हणो, बाम्हणो** इति सिद्धम् । **पूर्वाह्णः**—पूर्वाह्ण+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, आकारस्य वैकल्पिके अकारे, ३४६ सू० संयुक्तस्य ह्णस्य णकारान्तो हकारः, पूर्ववदेव—**पुव्वण्हो, पुव्वाण्हो** इति सिद्धम् । **शब्दभेदादिति** । **दवग्निः, दावग्निः, चटुः, चाटुः**, इत्येते चत्वारः विभिन्नाः शब्दाः सन्ति । एवं शब्दभेदादेव—**दवग्गी, दावग्गी, चडू, चाडू**—एतानि रूपाणि सिध्यन्ति । ६७ सू० आकारस्य स्थाने वैकल्पिकमकारं विधाय नैतानि रूपाणि साधनीयानीति भावः । शब्दसाधना त्वनया रीत्या ज्ञेया—**दवाग्निः**—दवाग्नि+सि । ३४९ सू० नकारस्य लोपः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, १ । १ । ३७ । सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **दवग्गी** इति सिद्धम् । **दावाग्निः**—दावाग्नि+सि । पूर्ववदेव, **दावग्गि** इति साध्यम् । **चटुः**—चटु+सि । १९५ सू० टकारस्य डकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे, **चडू** इति सिद्धम् । **चाटुः**—चाटु+सि । चडूवत्

चाडू इत्यस्य प्रक्रिया बोध्या।

६८—**प्रवाहः**—प्रवाह+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ६८ सू० घञ्-निमित्तकस्य वृद्धिरूपस्यादिभूतस्य आकारस्य वैकल्पिकः अकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे—**पवहो-पवाहो** इति सिद्धम्। **प्रहारः**—प्रहार+सि। रेफस्य लोपे, आकारस्य वैकल्पिके अकारे, पूर्ववदेव—**पहरो-पहारो** इति सिद्धम्। **प्रचारः—प्रचार+सि**। रेफस्य लोपे, १७७ सू० चकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-विशिष्टेऽकारे, आकारस्य वैकल्पिके अकारे, पूर्ववदेव--**पयरो-पयारो** इति सिद्धम्। एवमेव **प्रकारः**—प्रकार+सि, **पयरो-पयारो** इत्यस्य प्रक्रिया ज्ञेया। **प्रस्तावः**—प्रस्ताव+सि, रेफस्य लोपे, ३१६ सू० स्तस्य थकारः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, आकारस्य वैकल्पिकः अकारः, पूर्ववदेव—**पत्थवो-पत्थावो** इति सिद्धम्। **क्वचिन्न भवतीति**। बहुलाधिकारात् क्वचित्—कस्मिंश्चित् स्थले घञ्-निमित्तकस्यापि आकारस्य स्थाने अकारो न भवतीति। यथा—**रागः**--राग+सि, १७७ सू० गकारस्य लोपः, पूर्ववदेव—**राओ** इति सिद्धम्। अत्र ६८ सूत्रकार्यं न जातं, **बहुलाधिकारात्।**

६९—**महाराष्ट्रं, महाराष्ट्रो** वा। महाराष्ट्र+सि। ६९ सू० आदेराकारस्य अकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३०५ सू० ष्ट्रस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ३९० सू० हकारस्य रेफस्य च व्यत्यये (हकारस्य स्थाने रेफे, रेफस्य च स्थाने हकारे) मरहट्ठ+सि इति स्थिते, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **मरहट्ठं पुंल्लिगे** तु सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मरहट्ठो** इति सिद्धम्।

७०—**मांसम्**—मांस+सि। ७० सू० आदेराकारस्य अकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **मंसं** इति सिद्धम्। **पांसुः**—पांसु+सि। आदेराकारस्य अकारे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे सेर्लोपे, **पंसू** इति सिद्धम्। **पांसनः**—पांसन+सि। आदेराकारस्य अकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **पंसणो** इति सिद्धम्। **कांस्यम्**। कांस्य+सि। आदेराकारस्य अकारे, ३४६ सू० यकार-लोपे, ३६० सू० प्राप्त-द्वित्वस्य ३६३ सू० निषेधे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कंसं** इति सिद्धम्। **कांसिकः**। कांसिक+सि। आदेराकारस्य अकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, पूर्ववदेव **कंसिओ** इति सिद्धम्। **वांशिकः**। वांशिक+सि। आदेराकारस्य अकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, पूर्ववदेव **वंसिओ** इति सिद्धम्। **पाण्डवः**—पाण्डव+सि। आकारस्य अकारे, २५ सू० णकारस्यानुस्वारे, पूर्ववदेव **पंडवो** इति सिद्धम्। **सांसिद्धिकः**। सांसिद्धिक+सि। आकारस्य अकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, पूर्ववदेवसं **सिद्धिओ** इति सिद्धम्। **सांयात्रिकः**। सांयात्रिक+सि। आदेराकारस्य अकारे, २४५ सू० यकारस्य जकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० तकार-द्वित्वे, ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **संजत्तिओ** इति सिद्धम्। **अनुस्वारेति**। मांस-प्रकारेषु शब्देष्वनुस्वारस्य विद्यमानतायामेवादेराकारस्य अकारो भवति नान्यथेति भावः। यथा—**मांसम्**। मांस+सि। २९ सू० अनुस्वारलोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **मासं** इति सिद्धम्। अत्रानुस्वाराभावात् ७० सूत्रेण विहितं कार्यं न जातम्। **पांसुः**।पांसु+सि। २९ सू० अनुस्वार-लोपे, **५०८ सू०** उकार-दीर्घे, सेर्लोपे **पासू** इति सिद्धम्। अत्रापि अनुस्वाराभावात् ७० सूत्रेण विहितं कार्यं नाभूत्।

७१—**श्यामाकः**। श्यामाक+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ३४९ सू० यकारलोपे, ७१सू० मकारस्थस्य आकारस्य अकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे सामओ इति सिद्धम्।

७२—सदा । अव्ययपदमिदम् । १७७ सू० दकारलोपे, ७२ सू० आकारस्य वैकल्पिके इकारे, **सइ, सआ** इति स्थिते, १८० सू० यकारविशिष्टे आकारे **सइ, सया** इति सिद्धम् । **निशाकरः** । निशाकर+सि, २६० सू० शकारस्य सकारे, आकारस्य वैकल्पिके इकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **निसिअरो-निसाअरा** इति रूपद्वयं सिद्धम् । **कूर्पासः** । कूर्पास+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, आकारस्य वैकल्पिके इकारे, पूर्ववदेव कुप्पिसो-कप्पासो इति सिद्धम् ।

७३—आचार्यः । आचार्य+सि । ७३ सू० चकारस्थाकारस्य इकारे अकारे च, १७७ सू० चकार-लोपे, ३७८ सू० यकारात्पूर्वमिकारागमे, १७७ सू० यकारलोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, **आइरिअ+सि, आयरिअ+सि** इति स्थिते, पूर्ववदेव **आइरिओ, आयरिओ** इति सिद्धम् ।

७४—स्त्यानः, स्त्यान+सि । ३०४ सू० संयुक्तस्य स्त्यस्य विकल्पेन ठकारे, ७४ सू० आदेराकारस्य ईकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे ठीणं ठकाराभावे, ३४६ सू० यकारस्य लोपे, ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३७० सू० णकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे ८४सू० संयोगे परे ह्रस्वे थिण्णं, द्वित्वाभावे **थीणं** इति सिद्धम् । **खल्वाटः** । खल्वाट+सि, ३५० सू० वकार-लोपे, ३६० सू० लकारस्य द्वित्वे, आदेराकारस्य ईकारे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **खल्लीडो** इति सिद्धम् । **संखायम् इति** । संखायं शब्दोऽयं सम्-उपसर्ग-पूर्वक-स्त्यै-धातोः निष्पन्नः । ६८६ सू० स्त्यायतेः स्थाने खा इत्यादेशो जातः, अत्र प्रस्तुत-सूत्रेण आकारस्य ईकारो नाभवत् । यथा—**संस्त्यानम्** संपूर्वकः स्त्यैधातुः सम्यक्तया शब्दसंघाते । संस्त्या+क्त (त) ६८६ सू० **स्त्यायतेः खा** इत्यादेशे, १७७ सू० तकार-लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, सि-प्रत्यये सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **संखायं** इति सिद्धम् । **अत्र स्त्यान**—शब्दस्याभावात् ७४ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

७५—सास्ना । सास्ना+सि, ७५ सू० आदेः अकारस्य उकारे, ३४६ सू० स्नस्य "ण्ह" इत्यादेशे १।१।३७सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **सुण्हा** इति सिद्धम् । **स्तावकः** । स्तावक+सि । **३१६ सू० स्तस्य** थकारे, ७५ सू० आदेराकारस्य उकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति **परे अन्त्यस्वरादेः** लोपे **थुवओ** इति सिद्धम् ।

७६—आसारः । आसार+सि, ७६ सू० आदेराकारस्य वैकल्पिके ऊकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **ऊसारो आसारो** इति सिद्धम् ।

७७—आर्या । आर्या+सि, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ७७ सू० र्यस्याकारस्य ऊकारे, सेर्लोपे—**अज्जू** इति सिद्धम् । **श्वश्वामिति किम्** । आर्या-शब्दो यदि श्वश्रू-बोधकस्तदैव तस्य र्यस्य आकारस्य ऊकारो भवति, नान्यथा । श्वश्रू-भिन्नार्थके आर्या-शब्दे तु ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, र्यस्य जकारे, जकारस्य द्वित्वे, सेर्लोपे-अज्जा इति भवति । अत्र साध्यर्थकः आर्या-शब्दः, नतु श्वश्रू-बोधकः ।

७८ -ग्राह्यम् । ग्राह्य+सि, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ७८ सू० आदेराकारस्य एकारे, २६७ सू० **ह्यस्य** झकारे, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे गेज्झं इति सिद्धम् ।

७९—द्वारम् । द्वार+सि, ३५० सू० वकारस्य लोपे, ७९ सू० आकारस्य वैकल्पिके एकारे, देर+सि । एकाराभावे ३८३ सू०अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वं वैकल्पिके उकारागमे, १७७ सू० वकारस्य लोपे, दुआर +सि । उकाराभावे ३५० सू० वकारस्य लोपे दार+सि । यत्र ३४८ सू० यथादर्शनं दकारस्य लोपस्तत्र

वार+सि इति स्थिते, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **देरं, दुआरं, दारं, वारं** इति सिद्धम्। **नेरइओ नात्र ७९ सू० अकारस्य एकारो विहितः**, किन्तु **नैरयिक**-शब्दस्य ऐकारस्य स्थाने १४८ सू० एकारं विधाय—**नेरइओ** तथा **नारकिकः**, इत्यस्माद् **नारइओ** इति निष्पद्यते। यथा **नैरयिकः**। निरये भवः। नैरयिक+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारे, १७७ सू० यकारस्य ककारस्य च लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **नेरइओ** इति सिद्धम्। **नारकिकः**—नरके भवः। नारकिक+सि। १७७ सू० ककारद्वयस्य लोपे, पूर्ववदेव-**नारइओ** इति सिद्धम्। **आर्षे त्विति।** प्रस्तुत-सूत्रेण द्वार शब्दस्यैव आकारस्य वैकल्पिक एकारादेशो विहितः, किन्त्वार्षप्राकृते द्वार-भिन्नानां शब्दानामाकारस्यापि एकारो भवतीति भावः। यथा—**पश्चात्कर्म।** पश्चात्-कर्मन्+सि। २९२ सू० श्चस्य छकारे, ३६० सू० छकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ११ सू० तकारस्य नकारस्य च लोपे, ७९ सू० आर्षत्वात् आकारस्य एकारे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० मकार-द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारेः **पच्छेकम्मं** इति सिद्धम्। **असहाय्य-देवासुरी**-देवाश्च असुराश्च तेषां समाहारः देवासुरी, असहाय्या चासौ देवासुरी इति असहाय्य-देवासुरी। असहाय्य-देवासुरी+सि। आर्षत्वात् हकारगतस्याकारस्स एकारे, २९५ सू० य्य इत्यस्य जकारे, ३६० सू०जकार-द्वित्वे, सेर्लोपे, **असहेज्ज-देवासुरी** इति सिद्धम्।

८०—पारापतः। पारापत+सि, ८० सू० रेफस्थाकारस्य वैकल्पिके एकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारलोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पारेवओ-पारावओ** इति सिद्धम्।

८१—एतावन्मात्रम्। एतद्। ७। १। १४९ सू० डवादिरतु (डावतु—आवत्) प्रत्यये, २। १। ११४ सू० डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **एतावत्** इति स्थिते ७। १। १४० सू० मात्रट्(मात्र)प्रत्यये, १। ३। २। सू० अन्त्यतकारस्य नकारे एतावन्मात्र इति जाते १।१। १८ सू० सि प्रत्यये, १।४। ५७ सू० सेः अम् इत्यादेशे १।४। ४६ सू० अमोऽकारस्य लोपे, **एतावन्मन्त्रम्**, इति सिद्धम्। इयं संस्कृत-प्रक्रिया। प्राकृते तु एतावन्मात्र+सि इति स्थिते ४२८ सू० डावतोः डित् एत्तिअ इत्यादेशे, एतद्शब्दस्य लोपे च एत्तिअमात्र+सि इति जाते, ८१ सू० मात्रट्-प्रत्यय-गतस्य आकारस्य वैकल्पिके एकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, एकाराभावे ८४ सू० आकारस्य ह्रस्वे, विधानसामार्थ्यात् ८४ सू० एकारस्य न ह्रस्वः, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे[1] **एत्तिअमेत्तं, एत्तिअमत्तं** इति सिद्धम्।

बहुलाधिकारादिति। प्रस्तुत-सूत्रेण मात्रट्-प्रत्ययस्य आकारस्य एकारो भवति, किन्तु बहुलस्याधिकारात् क्वचित्-कस्मिंश्चित् स्थले मात्र-शब्दस्थस्य आकारस्यापि एकारो भवति। यथा—**भोजनमात्रम्**-भोजनमेव भोजनमात्रम् **इत्यव्ययीभावः।** भोजनमात्र+सि, १७७ सू० जकार-लोपे, १८० सू० यकार-विशिष्टेऽकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे **बहुलाधिकारात्** ८१ सू० आकारस्य एकारे भोयणमेत्र+सि इति स्थिते, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे भोयणमेत्तं इति सिद्धम्।

८२—आर्द्रम्। आर्द्र+सि, ८२ सू० आदेराकारस्य वैकल्पिके उकारे ओकारे च, ३५० सू० आद्यस्य रेफस्य लोपे, ३४८ सू० दकारलोपे, २५४ सू० रेफस्य वैकल्पिके लकारे, ३६० सू० लकार-द्वित्वे,

---

१. **एत्तिअमेत्तं** इत्यस्य छाया इयन्मात्रमपि भवति। तस्येयं प्रक्रिया—**इदम्।** १७।१।१४८। सूत्रेण अतु-प्रत्यये, तद्योगे च इदम्-शब्दस्य इय् इत्यादेशे, ४२८ सू० अतोः डेत्तिअ (एत्तिअ) इत्यादेशे २।१।११४। सू० डिति परे, अन्त्यस्वरादेः इय् इत्यस्य लोपे ७।१।१४०। सू० मात्रट् (मात्र) प्रत्यये, १।१।१८ सू० सिप्रत्यये—एत्तिअमात्र+सि इति जाते, पूर्ववदेव **एत्तिअमेत्तं** इति सिद्धम्।

५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **उल्लं, ओल्लं** इति सिद्धम्। **वाष्प-सलिल-प्रवाहेण आर्द्रयति**। वाष्पस्य सलिलं वाष्पसलिलं, तस्य प्रवाहः—वाष्पसलिलप्रवाहः, तेन। वाष्पसलिलप्रवाह+टा। ३४१ सू० ष्पस्य हकारे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ६८ सू० प्रवाहगतस्याकारस्य विकल्पेन अकारे, ४६५ सू० टा-प्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे—**वाह-सलिल-पवहेण** इति सिद्धम्। **आर्द्रयति**। तत्करोत्यर्थे णिग् (णिच्)। आर्द्र+णि+तिव्। आर्द्रशब्दस्य पूर्ववत् उल्ल इति जाते, ६३८ सू० णिगः एकारे, १० सू० अकार-लोपे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे, **उल्लेइ** (आर्द्रं करोति) इति सिद्धम्। **पक्ष इति**। आर्द्र-शब्दे आदेराकारस्य उकारः ओकारश्च विकल्पेन भवति। आदेशाभावपक्षे यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण उकार-ओकारौ न जातौ, तत्र आर्द्र+सि, इत्यत्र ३५० सू० ऊर्ध्वरेफस्य (प्रथम-रेफस्य) लोपे, दकार-लोपे, रेफस्य वैकल्पिके लकारे, लकार-द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, सेर्मकारे मकारस्यानुस्वारे **अल्लं** लकाराभावे—३५० सू० रेफद्वय-लोपे, ३६० सू० दकार-द्वित्वे, संयोगे परे ह्रस्वे, सेर्मकारे, मकार-स्यानुस्वारे **अद्दं** इति सिद्धम्।

८३—आली। आली+सि, ८३ सू० आकारस्य ओकारे १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे ११ सू० सकारस्य लोपे **ओली** इति सिद्धम्। **पंक्ताविति**। यत्र आली-शब्दः पंक्ति-वाचकस्तत्रैव प्रस्तुत-सूत्रेण आकारस्य ओकारो भवति, नान्यत्र। यथा—**आली**। आली+सि। सेर्लोपे, **आली** इति सिद्धम्। अत्र आलीशब्दः सख्यर्थकः, अत एव ८३ सू० आकारस्य ओकारो न जातः।

८४—दीर्घस्य यथादर्शनमिति। यथादर्शनं=प्रयोगानुसारं दीर्घस्वरो ह्रस्वो भवति। आकार-स्योदाहरणानि, यथा—**आम्रम्**। आम्र+सि, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वो, ३२७ सू० 'म्र' इत्यस्य म्ब इत्यादेशे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **अम्बं** इति सिद्धम्। **ताम्रम्**। ताम्र+सि। तम्बं अस्य प्रक्रिया आम्रवत् ज्ञेया। **विरहाग्निः**। विरहाग्नि+सि। संयोगे परे ह्रस्वे, ३४६ सू० नकारस्य लोपे, ३६० सू० गकार-द्वित्वे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे—**विरहग्गी** इति सिद्धम्। **आस्यम्**। आस्य+सि। संयोगे परे ह्रस्वे, ३४६ सू० यकारस्य लोपे, सकारस्य द्वित्वे, सेर्मकारे, मकार-स्यानुस्वारे **अस्सं** इति सिद्धम्। **ईदिति**—ईकारस्य उदाहरणानि। यथा—**मुनीन्द्रः** मुनीनां, मुनिषु वा इन्द्रः—मुनीन्द्रः। मुनीन्द्र+सि, २२८ सू० नकारस्य णकारे, संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मुणिन्दो** इति सिद्धम्। **तीर्थम्**। तीर्थ+सि। संयोगे परे ह्रस्वे, रेफ-लोपे, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **तित्थं** इति सिद्धम्। **ऊदिति**। ऊकारस्योदाहरणानि। यथा—**गुरूल्लापाः** गुरूणाम् उल्लापाः, गुरूल्लापाः। गुरूल्लाप+जस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ४६३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे, **गुरुल्लावा** इति सिद्धम्। **चूर्णः**। चूर्ण+सि। संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० णकार-द्वित्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **चुण्णो** इति सिद्धम्। **एदिति**। एकारस्यो-दाहरणानि। यथा—**नरेन्द्रः**, नराणामिन्द्रः नरेन्द्रः। नरेन्द्र+सि, संयोगे परे ह्रस्वे, रेफ-लोपे,सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **नरिन्दो** इति सिद्धम्। **म्लेच्छः**। म्लेच्छ+सि, ३७७ सू० संयुक्तलकारस्य पूर्वमिकारागमे, संयोगे परे ह्रस्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **मिलिच्छो** इति सिद्धम्। **दृष्टैक-स्तनवृत्तम्**। एकश्चासौ स्तनः, एकस्तनः, तस्य वृत्तम्—वृत्तान्तः, दृष्टं—ज्ञातं एक-स्तन-वृत्तं, येन, तं दृष्टैक-स्तन-वृत्तम्। दृष्टैक-स्तन-वृत्त+अम्। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १४८ सू० ऐकारस्य एकारे, ३७० सू० ककारस्य द्वित्वे,

संयोगे परे ह्रस्वे, ३१६ सू० स्तस्य थकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ३०० सू० 'त्त' इत्यस्य टकारे, ३६० सू० टकारस्य द्वित्वे, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, मकारस्यानुस्वारे, **दिट्ठिक्क-थण-वट्टं** इति सिद्धम् । **ओदिति** । येषु शब्देषु ओकारो ह्रस्वो भवति, तेषामुदाहरणानि । यथा—**अधरोष्ठः** । अधरोष्ठ+सि, १८७ सू० धकारस्य हकारे, संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० षकार-लोपे, ३६० सू० ठकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **अहरुट्ठं** इति सिद्धम् । **नीलोत्पलम्** । नीलंच तत् उत्पलम् । नीलोत्पल+सि । संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० तकार-लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **नीलुप्पलं** इति सिद्धम् । **संयोगेति** । प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तवर्णे परवर्तिनि सति दीर्घस्वरस्य ह्रस्व-विधानं विहितं, नान्यत्र । यथा—**आकाशम्** । आकाश+सि, १७७ सू० ककार-लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **आयासं** इति सिद्धम् । अत्र संयोगपरत्वाभावात् न ह्रस्वः । **ईश्वरः** । ईश्वर+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **ईसरो** इति सिद्धम् । अत्रापि संयोगपरत्वाभावात् न ह्रस्वः । **उत्सवः** । उत्सव+सि । ११४ सू० आदेरुकारस्य ऊकारः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **ऊसवो** इति सिद्धम् । अत्रापि संयोगपरत्वाभावात् न ह्रस्वः ।

आकार के स्थान में होने वाले कार्य

प्राकृत-व्याकरण के अनुसार आकार के स्थान पर जो कार्य होते हैं, इस प्रकरण में उनका निर्देश किया जाता है ।

६७—**अव्ययपदों** तथा **उत्खात** आदि शब्दों के आदिम आकार को विकल्प से अकार होता है । **अव्ययपदों के उदाहरण १—यथा**=जह, जहा (जैसे), २—**तथा**—तह, तहा (वैसे), ३—**अथवा**=अहव, अहवा (या) ४—**वा**=व, वा (अथवा) ५—**हा**—ह, हा (खेद है) इत्यादि अव्ययपदों में प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से आदिम आकार को अकारादेश किया गया है ।

उत्खात आदि शब्दों के उदाहरण—१—उत्खातम्—उक्खयं, उक्खायं (उखाड़ा हुआ) २—**चामर**=चमरो, चामरो,(**चांवर**),३—**कालकः**—कलओ, कालओ(तिल, सांप,लहसन, कनीनिका)४—**स्थापितः**=ठविओ,=ठाविओ (रखा हुआ) ५—**प्रतिस्थापितः**=परिट्ठविओ, परिट्ठाविओ (विपरीत या सामने स्थापित) ६—**संस्थापितः**=संठविओ, संठाविओ(अच्छी तरह से स्थापित) ७—**प्राकृतम्**=पययं, पाययं (पुरातन या प्राकृत-भाषा) ८—**तालवृन्तम्**=तलवेण्टं, तालवेण्टं, तलवोण्टं, तालवोण्टं(ताड का पंखा) ९—**हालिकः** हलिओ, हालिओ (हल जोतने वाला), १०—**नाराचः**=नराओ, नाराओ (संहनन-विशेष)११—**बलाका**=बलया, बलाया (बगुली) १२—**कुमारः**=कुमरो, कुमारो (अविवाहित) १३—**खादिरम्**=खइरं, खाइरं (कत्थे के वृक्ष से बना हुआ) इत्यादि शब्दों में प्रस्तुत सूत्र द्वारा आदिम आकार को विकल्प से अकार किया गया है ।

कुछ आचार्य ब्राह्मण और पूर्वाह्ण शब्दों के आद्य आकार को भी विकल्प से अकारादेश स्वीकार करते हैं । जैसे **१—ब्राह्मणः**=बम्हणो, बाम्हणो (द्विज) २—**पूर्वाण्हः**=पुव्वण्हो, पुव्वाण्हो (पहला प्रहर) यहां पर विकल्प से आदिम आकार को अकार किया गया है ।

इसके अलावा यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि **१—दवाग्निः**=दवग्गी, (जंगल की आग) २—**दावाग्निः**=दावग्गी (वन की अग्नि) ३—**चटुः**=चडू (खुशामद) ४—**चाटुः**=चाडू (खुशामद-प्रिय

वाक्य) इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र का कोई कार्य नहीं हुआ है, क्योंकि ये शब्द तो भिन्न-भिन्न शब्दों से ही सिद्ध हो जाते हैं।

६८—**घञ्-प्रत्यय** के निमित्त से बना वृद्धि रूप जो आकार है, उसे विकल्प से अकार होता है। जैसे—**१—प्रवाहः**=पवहो पवाहो (प्रवृत्ति, बर्ताव) **२—प्रहारः**=पहरो, पहारो (आक्रमण), **३—प्रकारः**=अथवा, **प्रचारः**=पयरो, पयारो (भेद, ढंग या प्रचार) **४—प्रस्तावः**=पत्थवो, पत्थावो (प्रकरण, प्रसंग) इन शब्दों में वृद्धिरूप आकार को विकल्प से अकारादेश किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर वृद्धिरूप आकार को भी अकारादेश नहीं होता। जैसे—**१—रागः**=राओ (प्रीति, रंगना) यहां आकार को अकार नहीं हो सका।

६९—**महाराष्ट्र शब्द** के आदिम, आकार को अकार होता है। जैसे **१—महाराष्ट्रम्**=मरहट्ठं (महाराष्ट्र प्रान्त), २—**महाराष्ट्रः**=मरहट्ठो, यहां पर आदिम आकार को अकारादेश किया गया है।

७०—**मांसादि** जैसे शब्दों में अनुस्वार रहने पर आदि के आकार को अकारादेश हो जाता है जैसे **१—मांसम्**=मंसं (मांस) **२—पांसुः**—पंसू (धूली), **३—पांसनः**=पंसणो (कलंकित करने वाला) **४—कांस्यं**=कंसं (कांसी का पात्र), **५—कांसिकः**=कंसिओ (ठठेरा) **६—बांशिकः**=बंसिओ (बांस का वाद्य बजाने वाला) **७—पाण्डवः**=पंडवो (राजा पाण्डु की सन्तान) **८—सांसिद्धिकः**=संसिद्धिओ (स्वभावसिद्ध) **९—सांयान्त्रिकः**=संजत्तिओ (जहाज़ से यात्रा करने वाला) इत्यादि शब्दों में अनुस्वार रहने पर आदि के आकार को अकार किया गया है।

सूत्रकार ने "**अनुस्वार रहने पर**" इस बात का जो प्रतिबन्ध लगाया है, इसका कारण इतना ही है कि जहां अनुस्वार नहीं रहता वहां पर आदिम आकार को अकारादेश नहीं हो पाता, जैसे १—**मांसम्**=मासं (मांस), २—**पांसुः**=पासू, यहां पर **मांसम्**=इस पद में तथा **पांसुः**=इस पद में अनुस्वार का लोप हो जाने से अनुस्वार का अभाव हो जाता है। इस तरह यहां अनुस्वार का अस्तित्व न होने से आदिम आकार को अकार नहीं हो सका।

७१—**श्यामाक** शब्द के मकारगत आकार को अकार होता है। जैसे—**श्यामाकः**=सामओ (धान्यविशेष)। यहां आकार को अकारादेश किया गया है।

७२—**सदा** आदि शब्दों के आकार को विकल्प से इकार होता है। जैसे—१—**सदा**=सइ, सया (हमेशा) २—**निशाचरः**=निसिअरो, निसाअरो (राक्षस) ३—**कूर्पासः**=कुप्पिसो, कुप्पासो (ज़नानी कुरती)। इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से आकार को इकार किया गया है।

७३—**आचार्य** शब्द के चकारगत आकार को अकार और इकार होता है। जैसे—**आचार्यः**=आअरिओ, आइरिओ (शिक्षक)। यहां पर चकारस्थ आकार को अकार और इकार किया गया है।

७४—**स्त्यान** और **खल्वाट** शब्द के आदिम आकार को ईकार होता है। जैसे—१—**स्त्यानम्**=ठीणं, थिण्णं, थीणं (आलस्य, प्रतिध्वनि) २—**खल्वाटः**=खल्लीडो। (गंजा)। यहां पर आदि के आकार को ईकार किया गया है। **संस्त्यानम्**=संखायं, (प्रतिध्वनि), यह रूप तो ९८६ सूत्र से सम् उपसर्ग पूर्वक स्त्यै धातु को **खा** यह आदेश होने पर निष्पन्न होता है। प्रस्तुत सूत्र से यहां कोई कार्य नहीं हो पाया है।

७५—**सास्ना** और **स्तावक** शब्द के आदिम आकार को उकारादेश होता है। जैसे—१—**सास्ना**=सुण्हा (गौ का गलकम्बल) २—**स्तावकः**—थुवओ (स्तुति करनेवाला) इन शब्दों के आद्य आकार को उकार किया गया है।

७६—**आसार** शब्द के आदिम आकार को विकल्प से ऊकार होता है। जैसे—**आसारः**= ऊसारो-आसारो (वेग से पानी का बरसना) यहां विकल्प से आद्य आकार को ऊकार कर दिया गया है।

७७—आर्या शब्द जब 'सासू' अर्थ का बोधक हो तो इस के अन्त्य आकार को ऊकार होता है। जैसे—**आर्या**=अज्जू (सासू)। जहां आर्या शब्द सासू अर्थ का बोधक नहीं होता वहां पर **आर्या** = अज्जा (साध्वी) यह रूप बनता है। यहां प्रस्तुत सूत्र से 'र्या' के आकार को ऊकारादेश नहीं हो सका।

७८—**ग्राह्य** शब्द के आदिम आकार को एकार होता है। जैसे—**ग्राह्यम्**=गेज्झं (ग्रहण करने योग्य)। यहां आकार को एकार किया गया है। प्रस्तुत प्रयोग में एक ही आकार है, अतः '**आदिम आकार**' यह कहने की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु प्रस्तुत सूत्र में ३९ सूत्र का अधिकार होने से 'आदिम आकार' कहा गया है।

७९—**द्वार** शब्द के आदिम आकार को विकल्प से एकार होता है। जैसे—**द्वारम्**=देरं, जहां एकारादेश नहीं हो पाया वहां—**दुआरं**, **दारं**, **वारं** (दरवाज़ा) ये रूप बनते हैं। प्रश्न हो सकता है कि '**नेरइयो**' और '**नारइयो**' इन शब्दों को कैसे सिद्ध किया गया है? क्या इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से कोई कार्य किया गया है? उत्तर में वृत्तिकार का कथन है कि '**नैरयिक**' से '**नेरइओ**' (नारकी) और '**नारकिकः**' से नारइओ (नारकी) रूप बनाया गया है। प्रस्तुत सूत्र से यहां पर कोई कार्य नहीं हो पाया है। तीसरे सूत्र से आर्षप्राकृत में अन्य शब्दों के आकार को भी एकार हो जाता है। जैसे—१—**पश्चात्-कर्म**=पच्छे—कम्मं (पीछे किया जानेवाला कर्म) २—**असहाय्य-देवासुरी**=असहेज्ज-देवासुरी (असहाय देव और राक्षस) यहां द्वार से भिन्न शब्दों के आकार को भी एकारादेश कर दिया गया है।

८०—**पारापत** शब्द के रेफस्थ आकार को विकल्प से एकार होता है। जैसे—**पारापतः**= पारेवओ-पारावओ (कबूतर) यहां आकार को विकल्प से एकार किया गया है।

८१—'**मात्रट्' प्रत्यय** के आकार को विकल्प से एकार होता है। जैसे—१—**एतावन्मात्रं**= एत्तिअमेत्तं एत्तिअमत्तं (इतना ही) यहां **मात्रट्**-प्रत्यय के आकार को विकल्प से एकार किया गया है। यहां **बहुलाधिकार** होने से कहीं पर **मात्र** शब्द के आकार को भी एकार हो जाता है। जैसे—**भोजन-मात्रम्**=भोयणमेत्तं (भोजन-मात्र) यहां मात्रट् प्रत्यय नहीं है, तथापि **बहुलाधिकार** से आकार को एकार कर दिया गया है।

८२—**आर्द्र** शब्द के आदिम आकार को उकार और ओकार विकल्प से होता है। जैसे—**आर्द्रम्**=उल्लं, ओल्लं। (जल-सहित) जहां यह सूत्र नहीं लगता वहां **अल्लं, अद्दं** ये रूप बनते हैं। **वाष्प-सलिल-प्रवाहेण आर्द्रयति**=वाह-सलिल-पवहेण उल्लेइ (अश्रुरूप जल के प्रवाह से वह आर्द्र करता है) इस वाक्य में भी आर्द्र शब्द के आकार को उकारादेश संसूचित किया गया है।

८३—'**आली**' यह शब्द जब '**पंक्ति**' इस अर्थ का संसूचक हो तब इस के आकार को ओकार होता है। जैसे—**आली**=ओली (पंक्ति)। यहां पंक्ति का वाचक होने से आली के आकार को ओकार कर दिया गया है। जहां यह शब्द सखी (सहेली) का बोधक होता है वहां पर इस का 'आली' यह रूप बनता है। यहां प्रस्तुत सूत्र से आकार को ओकारादेश नहीं हो सका।

८४—**यथादर्शन** (प्रयोग के अनुसार) दीर्घ स्वर के आगे यदि संयुक्त अक्षर हो तो उसे ह्रस्व स्वर हो जाता है। **आ स्वर के आगे आए संयुक्त वर्ण वाले शब्दों के उदाहरण**—१—**आम्रम्**=अम्बं

(आम्र वृक्ष या आम्र फल) २—**ताम्रम्**=तम्बं (ताम्बा) ३—**विरहाग्निः**=विरहग्गी (वियोग की आग) ४—**आस्यम्**=अस्सं (मुख)। यहां पर प्रस्तुत सूत्र से आकार को अकार किया गया है। **ईकार से आगे आए संयुक्त वर्णवाले शब्द**—१—**मुनीन्द्रः**=मुणिन्दो (मुनियों के आचार्य) २—**तीर्थम्**=तित्थं (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका का समूह) यहां ईकार को इकार बनाया गया है। १—**गुरूल्लापाः**=गुरुल्लावा (गुरु की उक्तियां) २. **चूर्णः**=चुण्णो (चूर्ण, पीसा हुआ बारीक पदार्थ), यहां ऊकार को उकार, १—**नरेन्द्रः**=नरिन्दो (राजा), २—**म्लेच्छः**=मिलिच्छो (अनार्य व्यक्ति), ३—**दृष्टैकस्तन—वृत्तम**=दिट्ठिक्क-थण-वट्टं (जिस ने एक स्तन के वृतान्त को जान लिया है, उसको), यहां पर एकार को इकार तथा १. **अधरोष्ठः**=अहरुट्ठं (नीचे का होंठ) २—**नीलोत्पलम्**=नीलुप्पलं (नील कमल)। यहां पर ओकार को उकार बनाया गया है। ध्यान रहे कि संयुक्त अक्षर परे रहने पर ही दीर्घ स्वर को ह्रस्व होता है, अन्यथा नहीं। जैसे—१—**आकाशम्**=आयासं (आकाश)। २—**ईश्वरः**=ईसरो (परमात्मा), ३—**उत्सवः**=ऊसवो (मेला) इन शब्दों में दीर्घ स्वर से परे संयुक्त वर्ण नहीं है, **अतः** यहां प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी। वृत्तिकार ने जो **"यथादर्शन"** यह पद दिया है, उसका अर्थ है—जिन शब्दों में संयुक्त अक्षर के परे होने पर दीर्घ स्वर ह्रस्व किया हुआ देखने में आवे उनको ही ह्रस्व बनाना है, अन्य को नहीं।

अथ इकार-विधिः

८५—इत एद्वा ८।१।८५। संयोग इति वर्तते। आदेरिकारस्य संयोगे परे एकारो वा भवति। पेण्डं, पिण्डं। धम्मेल्लं, धम्मिल्लं। सेन्दूरं, सिन्दूरं। वेण्हू, विण्हू। पेट्ठं, पिट्ठं। बेल्लं, बिल्लं। क्वचिन्न भवति, चिन्ता।

८६—किंशुके वा ८।१।८६। किंशुक-शब्दे आदेरित एकारो वा भवति। केसुअं, किंसुअं।

८७—मिरायाम् ८।१।८७। मिरा—शब्दे इत एकारो भवति। मेरा।

८८—पथि-पृथिवी-प्रतिश्रुन्मूषिक-हरिद्रा-बिभीतकेष्वत् ८।१।८८। एषु आदेरितो अकारो भवति॥ पहो। पुहई। पुढवी। पडसुआ। मूसओ। हलद्दी। हलद्दा। बहेडओ॥ पन्थं किर देसित्तेति तु पथि-शब्द-समानार्थस्य पन्थ-शब्दस्य भविष्यति। हरिद्रायां विकल्प इत्यन्ये। हलिद्दी हलिद्दा।

८९—शिथिलेङ्गुदे वा। ८।१।८९। अनयोरादेरितोऽद् वा भवति। सढिलं। सिढिलं। पसढिलं। पसिढिलं॥ अंगुअं, इंगुअं॥ निर्मित-शब्दे तु वा आत्वं न विधेयम्। निर्मात-निर्मित-शब्दाभ्यामेव सिद्धेः।

९०—तित्तिरौ रः ८।१।९०। तित्तिरिशब्दे रस्येतोऽद् भवति। तित्तिरो।

९१—इतौ तो वाक्यादौ। ८।१।९१। वाक्यादिभूते इति-शब्दे यस्तस्तत्सबन्धिनः

इकारस्य अकारो भवति। इअ जम्पिअावसाणे। इअ विअसिअ-कुसुमसरो। वाक्यादाविति किम् ? पिओ त्ति। पुरिसो त्ति।

९२—**ईर्जिह्वा-सिंह-त्रिंशद्विंशतौ त्या**। ८। १। ९२। जिह्वादिषु इकारस्य तिशब्देन सह ईर्भवति। जीहा। सीहो। तीसा। वीसा। बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति। सिंह-दत्तो। सिंह-राओ।

९३—**र्लुकि निरः**। ८।१।९३। निर्-उपसर्गस्य रेफलोपे सति इत ईकारो भवति। नीसरइ। नीसासो। र्लुकीति किम् ? निण्णओ। निस्सहाइं अङ्गाइं।

९४—**द्विन्योरुत्**। ८। १। ९४। द्विशब्दे नावुपसर्गे च इत उद् भवति। द्वि। दुमत्तो। दुआई। दुविहो। दुरेहो। दु-वयणं। बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः। दु-उणो। बि-उणो। दुइओ। बिइओ। क्वचिन्न भवति। द्विजः, दिओ। द्विरदः, दिरओ। क्वचिद् ओत्त्वमपि। दो-वयणं। नि। णुमज्जइ। णुमन्नो। क्वचिन्न भवति। निवडइ।

९५—**प्रवासीक्षौ**।८।१।९५। अनयोरादेरित उत्त्वं भवति। पावासुओ। उच्छू।

९६—**युधिष्ठिरे वा**।८।१।९६। युधिष्ठिर-शब्दे आदेरित उत्त्वं वा भवति। जहुट्ठिलो। जहिट्ठिलो।

९७—**ओच्च द्विधाकृगः**।८।१।९७। द्विधा-शब्दे कृग्-धातोः प्रयोगे इत ओत्त्वं चकारादुत्त्वं च भवति। दोहा-किज्जइ। दुहा-किज्जइ। दोहा-इअं। दुहा-इयं। कृग इति किम्। दिहा-गयं। क्वचित् केवलस्यापि। दुहा वि सो सुर-वहू-सत्थो।

९८—**वा निर्झरे ना**।८।१।९८। निर्झर-शब्दे नकारेण सह इत ओकारो वा भवति। ओज्झरो, निज्झरो।

अथ इकार-विधिः

प्राकृत-भाषायामिकारस्य स्थाने एकारादिकं यत्कार्य-कलापं भवति, तं प्रदर्शयत्याचार्यः।

८५—**संयोगेति**। अस्मिन् सूत्रे ८४ सूत्रोक्तस्य 'संयोगे' इति पदस्यानुवृत्तिरायाति। आदेरिकारस्य संयुक्तवर्णे परे येषु शब्देष्वेकारो भवति, तेषामुदाहरणानीमानि सन्ति। यथा—**पिण्डम्**। पिण्ड+सि, ८५ सू० आदेरिकारस्य वैकल्पिके एकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **पेण्डं, पिण्डं** इति सिद्धम्। **धम्मिल्लम्**। धम्मिल्ल+सि, आदेरिकारस्य वैकल्पिके एकारे, ३४ सू० क्लीबत्वे, पूर्ववदेव **धम्मेल्लं, धम्मिल्लं** इति सिद्धम्। **सिन्दूरम्**। सिन्दूर+सि, आदेरिकारस्य वैकल्पिके एकारे, पूर्ववदेव—**सेन्दूरं-सिन्दूरं** इति सिद्धम्। **विष्णुः**। विष्णु+सि। आदेरिकारस्य वैकल्पिके

एकारे, ३४६ सू० ष्णस्य ण्ह इत्यादेशे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे । १ । १ । ३७ । सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकार-लोपे, **वेण्हू, विण्हू** इति सिद्धम् । **पिष्टम् ।** पिष्ट+सि, आदेरिकारस्य वैकल्पिके एकारे, ३०५ सू० ष्ठस्य ठकारे, ३६० सू० ठकार-द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, पूर्ववदेव **पेट्ठं, पिट्ठं** इति सिद्धम् । **बिल्वम् ।** बिल्व+सि, आदेरिकारस्य वैकल्पिके एकारे, ३५० सू० वकार-लोपे, ३६० सू० लकार-द्वित्त्वे, पूर्ववदेव **बेल्लं, बिल्लं** इति सिद्धम् । **क्वचिन्नेति ।** बहुलाधिकारात् क्वचित् संयोगे परेऽपि आदेरिकारस्य एकारो न भवति । यथा—**चिन्ता ।** चिन्ता+सि, अत्र बहुलाधिकारात्, ८५ सू० इकारस्य एकाराभावे, सेर्लोपे **चिन्ता** इति सिद्धम् ।

८६—किंशुकः । किंशुक+सि, २९ सू० विकल्पेन अनुस्वार-लोपे, ८६ सू० आदेरिकारस्य वैकल्पिके एकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, सेर्मकारे, मकारानुस्वारे, **केसुअं-किंसुअं** इति सिद्धम् ।

८७—मिरा । मिरा+सि, ८७ सू० आदेरिकारस्य एकारे । १ । १ । ३७ । सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **मेरा** इति सिद्धम् ।

८८—पन्थाः । पथिन्+सि, १८७ सू० थकारस्य हकारे, ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारे, ११ सू० नकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **पहो** इति सिद्धम् । **पृथिवी ।** पृथिवी+सि, १३१ सू० ऋकारस्य उकारे, २१६ सू० थकारस्य वैकल्पिके ढकारे, बाहुल्येन ढकारस्य द्वित्त्वाभावे, ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारे, सेर्लोपे—**पुढवी ।** ढकाराभावे १८७ सू० थकारस्य हकारे, १७७ सू० वकारस्य लोपे, आदेरिकारस्य अकारे, **पुहई** इति सिद्धम् । **प्रतिश्रुत् ।** प्रतिश्रुत्+सि, ३५० सू० रेफ-लोपे-२०६ सू० तकारस्य डकारे, आदेरिकारस्य अकारे, २६ सू० द्वितीयस्वरस्यानुस्वारागमे, रेफ-लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १५ सू० तकारस्य आकारे, सेर्लोपे—**पडंसुआ** इति सिद्धम् । **मूषिकः ।** मूषिक+सि, आदेरिकारस्य अकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्डोः, अन्त्यस्वरादेः लोपे **मूसओ** इति सिद्धम् । **हरिद्रा ।** हरिद्रा+सि आदेरिकारस्य अकारे, २५४ सू० रेफस्य लकारे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० दकारस्य द्वित्त्वे, ५२३ सू० आप्-प्रत्यय-प्रसंगे विकल्पेन ङी-प्रत्यये, सेर्लोपे हलद्दी, ङीप्रत्ययाभावे २ । ४ । १८ । सू० आप्-प्रत्यये **हलिद्दा** इति सिद्धम् । **विभीतकः ।** विभीतक+सि । आदेरिकारस्य अकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १०५ सू० ईकारस्य एकारे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **बहेडओ** इति सिद्धम् । **पन्थं किरेति ।** "**पन्थं किर देसित्ता**" इत्यस्मिन् वाक्ये '**पन्थं**' इति पदं नहि पथिन्-शब्देन निष्पन्नं, किन्तु पथिन्-शब्दस्य समानार्थस्य, पर्यायवाचिनः पन्थशब्दस्य रूपं बोध्यम् । अतो नात्र प्रस्तुतसूत्रेण आदेरिकारस्य अकारो जातः। **शब्दसाधना त्वित्थम्—पन्थ किल देशित्वा । पन्थम् ।** पथिन् शब्दसमानार्थकोऽयमकारान्तः पन्थशब्दः । पन्थ+अम्, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे— **पन्थं** इति सिद्धम् । **किल ।** अव्ययपदमिदम् । ४५७ सू० किलार्थे किर इत्यस्य प्रयोगविधानात् **किर** इति सिद्धम् । **देशित्वा ।**(दिश-देशने) दिश्+क्त्वा=**देशित्वा** इति जाते—२६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू०वकार-लोपे, ३६० सू० तकार-द्वित्त्वे, **देसित्ता** इति सिद्धम् । **हरिद्रायामिति ।** अन्ये आचार्याः हरिद्रा-शब्दस्य आदेरिकारस्य अकारं विकल्पेन कुर्वन्ति, तेषां मते इकारस्य अकाराभावे—**हलिद्दी, हलिद्दा,** अकारसत्त्वे तु—**हलद्दी, हलद्दा** इति रूपाणि भवन्ति । एषां प्रक्रिया पूर्वमेव प्रदर्शिता ।

८९—**शिथिलम्** । शिथिल+सि, २६० सू० शकारस्य सकारे, ८९ सू० आदेरिकारस्य वैकल्पिके अकारे, २१५ सू० थकारस्य ढकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**सढिलं, सिढिलं** इति सिद्धम् । **प्रशिथिलम्** । प्रशिथिल+सि, ३५० सू० रेफ-लोपे, **पसिढिलं** इति सिद्धम् । शेषा प्रक्रिया **सिढिलवत्** बोध्या । **इंगुदम्** । **इंगुद**+सि, ८९ सू० आदेरिकारस्य वैकल्पिके अकारे, १७७ सू० दकार-लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **अंगुअं, इंगुअं** इति सिद्धम् । **निर्मितशब्दे त्विति** । निर्मितशब्दस्य इकारस्य स्थाने विकल्पेन आकारादेशस्य न काप्यावश्यकता, यतोहि **निर्मित**-शब्देन **निम्मिओ** तथा **निर्मात**-शब्देन **निम्माओ** इति रूपं जायते । शब्दसाधनिकाऽनया रीत्या ज्ञेया—**निर्मितम्** । निर्मित+सि, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० मकार-द्वित्वे, १७७ सू० तकार-लोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निम्मिओ** इति सिद्धम् । **निर्माता** । निर्माता+सि, रेफ-लोपे, मकार-द्वित्वे, तकार-लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निम्माओ** इति सिद्धम् । **निर्मित**-शब्दे इकारस्य आकारं विधाय **निम्माओ** इति न निष्पाद्यमिति भावः ।

९०—**तित्तिरिः** । तित्तिरि+सि, ९० सू० रेफस्येकारस्य अकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **तित्तिरो** इति सिद्धम् ।

९१—**इति कथितावसाने** । **इति** । अव्ययपदमिदम् । ९१ सू० तकारस्थस्येकारस्य अकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, **इअ** इति सिद्धम् । **कथितावसाने** । कथितावसान+ङि, ६७३ सू० कथेः जम्प इत्यादेशे जम्पितावसान+ङि इति स्थिते, १७७ सू० तकार-लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५०० सू० ङेः डित्-एकारे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **जम्पियावसाणे** इति सिद्धम् । **इति विकसितकुसुमशरः** । **इति** पूर्ववदेव **'इअ'** इति साध्यम् । **विकसितकुसुमशरः** । विकसिताश्च ते कुसुमाः, विकसितकुसुमाः, तेषां शरः—विकसितकुसुमशरः । विकसित-**कुसुम-शर**+सि, **१७७** सू० ककारस्य तकारस्य च लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **विअसिअ-कुसुम-सरो** इति सिद्धम् । **वाक्यादाविति** । यदि इति-शब्दः वाक्यस्य आदिभूतः, आदौ वर्तमानो भवेत्तदैव तस्य इकारस्य अकारो भवति, नान्यथा । इति भणने को हेतुः ? इति प्रश्नः । वृत्तिकारः उत्तरयति । वाक्यस्य अनादिभूतस्य इति-शब्दस्य इकारस्य अकारो मा भवेदिति हेतोः "वाक्यादौ" इति पदं पठितं । यथा—**प्रिय इति** । प्रियः । प्रिय+सि, ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **पिओ** इति सिद्धम् । **पुरुष इति** । पुरुषः । पुरुष+सि, १११ सू० रोरुकारस्य इकारे, २६० सू० षकारस्य सकारः, पूर्ववदेव—**पुरिसो** इति सिद्धम् । अत्र शब्दद्वये वाक्यादिभूतत्वाभावात्, ९१ सू० इतिशब्दस्य इकारस्य अकारो न जातः ।

९२—**जिह्वा** । जिह्वा+सि, ९२ सू० इकारस्य ईकारे, ३५० सू० वकार-लोपे, सेर्लोपे, **जीहा** इति सिद्धम् । **सिंहः** । सिंह+सि । ९२ सू० इकारस्य ईकारे, २९ सू० अनुस्वार-लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सीहो** इति सिद्धम् । **त्रिंशत्** । त्रिंशत्+सि, इकारस्य ईकारे, रेफ-लोपे, २८ सू० अनुस्वार-लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १५ सू० अन्त्यतकारस्य आकारे, १ । १ । ३७ । सूत्रेण सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **तीसा** इति सिद्धम् । **विंशतिः** । विंशति+सि, ९२ सू० ति-शब्देन सह आदेरिकारस्य ईकारे, २८ सू० अनुस्वार-लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, २ । ४ । १८ । सू० आप्-प्रत्यये, सन्धौ, सेर्लोपे—**वीसा** इति सिद्धम् । **बहुलाधिकारात्** । बाहुल्येन केषुचित् प्रयोगेषु ईकारो न भवति, तानेव प्रदर्शयति वृत्तिकारः । **सिंहदत्तः** । सिंहदत्त+सि । ९२ सू० **बहुलाधिका-**

रात् इकारस्य ईकाराभावे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **सिंहदत्तो** इति सिद्धम्। **सिंहराजा।** सिंहराजन्+सि, बहुलाधिकारात् इकारस्य नेकारे, १७७ सू० जकारस्य लोपे, ११ सू० ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **सिंहराओ** इति सिद्धम्।

६३—निस्सरति। नि-पूर्वकः सृधातुः निस्सरणे। निर्सृ+तिव्, १३ सू० रेफ-लोपे, ६३ सू० इकारस्य ईकारे, ६०५ सू० ऋकारस्य अरादेशे, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे, **नीसरइ** इति सिद्धम्। **निश्वासः।** निर्श्वास+सि, १३ सू० रेफ-लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण इकारस्य ईकारे, ३५० सू० वकार-लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **नीसासो** इति सिद्धम्। **लुंकीति।** १३ सूत्रेण यत्र निर्-उपसर्गस्य रेफ-लोपो जायते तत्रैव प्रस्तुत-सूत्रेण इकारस्य ईकारो भवति नान्यत्र। यथा—**निर्णयः।** निर्णय+सि, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० णकार-द्वित्वे, १७७ सू० यकार-लोपे, पूर्ववदेव **निण्णओ** इति सिद्धम्। अत्र १३ सूत्रेण रेफलोपाभावे, ६३ सू० इकारस्य ईकारो न जातः। **निस्सहानि अङ्गानि। निस्सहानि।** निर्सह+जस्। रेफ-लोपे, सकारस्य द्वित्वे, ५१५ सू० जसः सानुनासिके इकारे, पूर्वस्वरस्य दीर्घे, **निस्सहाइं** इति सिद्धम्। अत्रापि १३ सू० रेफलोपाभावे, ६३ सू० इकारस्य ईकारो न जातः। **अङ्गानि।** अङ्ग+जस्, जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वस्वरदीर्घे च—**अङ्गाइं** इति सिद्धम्।

६४—द्विमात्रः। द्विमात्र+सि, ३५० सूत्रेण वकार-लोपे, ६४ सूत्रेण इकारस्य उकारे, ३५० सूत्रेण रेफ-लोपे, ३६० सूत्रेण तकार-द्वित्वे, ८४ सूत्रेण संयोगे परे ह्रस्वे, ४६१ सूत्रेण सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे, **दुमत्तो** इति सिद्धम्। **द्विजातिः।** द्विजाति+सि, वकारस्य लोपे, इकारस्य उकारे, १७७ सूत्रेण जकारस्य तकारस्य च लोपे, ५०८ सूत्रेण इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे—**दुआई** इति सिद्धम्। **द्विविधः।** द्विविध+सि, वकारस्य लोपे, आदेरिकारस्य उकारे, १८७ सूत्रेण धकारस्य हकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **दुविहो** इति सिद्धम्। **द्विरेफः।** द्विरेफ+सि, वकारस्य लोपे, इकारस्य उकारे, २३६ सूत्रेण फकारस्य हकारे, पूर्ववदेव **दु-रेहो** इति सिद्धम्। **द्विवचनम्।** द्विवचन+सि, वकारस्य लोपे, इकारस्य उकारे, १७७ सूत्रेण चकारस्य लोपे, १८० सूत्रेण यकारविशिष्टेऽकारे, २२८ सूत्रेण नकारस्य णकारे, ५१४ सूत्रेण सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **दु-वयणं** इति सिद्धम्। **बहुलाधिकारादिति।** प्रस्तुत-सूत्रेण द्वि-शब्दस्थस्य इकारस्य उकारो भवति, किन्तु बहुलस्याधिकाराद् क्वचित्—कस्मिंश्चित् स्थले विकल्पेन इकारस्य उकारो जायते। यथा—**द्विगुणः।** द्विगुण+सि। वकार-लोपे, **बहुलाधिकारात्** इकारस्य वैकल्पिके उकारे, दुगुण+सि, दिगुण+सि, इति जाते। १७७ सूत्रेण गकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **दुउणो**, उकाराभावे **दिउण+सि इति स्थिते** ३४८ सूत्रेण दकारस्य लोपे, वर्णव्यत्ययत्वेन १११८ सूत्रेण वकारस्य बकारे, पूर्ववदेव, **बि-उणो** इति सिद्धम्। **द्वितीयः।** द्वितीय+सि, वकार-लोपे, **बहुलाधिकारात्** वैकल्पिके इकारस्य उकारे-दुतीय+सि, दितीय+सि इति स्थिते १७७ सूत्रेण तकारस्य यकारस्य च लोपे, १०१ सूत्रेण ईकारस्य इकारे, पूर्ववदेव दुइओ, उकाराभावे द्विइओ इति स्थिते, वकारस्य बकारे। १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपे, **बिइओ** इति सिद्धम्। **क्वचिन्नेति।** बहुलाधिका-रात् क्वचिद् इकारस्य उकारादेशो न भवति। यथा–द्विजः। द्विज+सि, वकार-लोपे, १७७ सूत्रेण जकार-लोपे, पूर्ववदेव **दिओ** इति सिद्धम्। अत्र **बहुलाधिकारात्** ६४ सूत्रेण इकारस्य उकारो न जातः। **द्विरदः।** द्विरद+सि, वकारस्य लोपे, १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **दिरओ** इति सिद्धम्। अत्रापि **बहुलाधिकारात्**

९४ सूत्रेण इकारस्य उकारो न जातः। **क्वचिद् ओत्वमति।** बहुलाधिकारात् क्वचिद् इकारस्य ओकारादेशोऽपि भवति, यथा—**द्विवचनम्।** द्विवचन+सि, वकार-लोपे, **बहुलाधिकारात्** इकारस्य ओकारे, १७७ सूत्रेण चकारलोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, २२८ सूत्रेण नकारस्य णकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**दोवयणं** इति सिद्धम्। **नि इति।** नि—उपसर्गस्य इकारस्य उकारादेशमुदाहरणेन प्रदर्शयत्याचार्यः। **निमज्जति।** नि-पूर्वक-मस्ज्-धातुः निमज्जने। निमस्ज्+तिव्, ९४ सूत्रेण नि-गतस्य इकारस्य उकारे, २२९ सूत्रेण नकारस्य वैकल्पिके णकारे, ३४८ सूत्रेण सकारस्य लोपे, ३६० सूत्रेण जकारस्य द्वित्वे, ६१० सूत्रेण धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **णुमज्जइ, नुमज्जइ** इति सिद्धम्। **निमग्नः।** निमग्न+सि, ९४ सू० इकारस्य उकारे, प्रथमनकारस्य णकारे, ३४८ सू० गकारस्य लोपे, नकारस्य द्वित्वे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **णुमन्नो** इति सिद्धम्। **क्वचिन्नेति।** बहुलाधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले नि-उपसर्गस्य इकारस्य उकारादेशो न भवति। यथा—**निपतति।** नि-पूर्वकः पत्-धातुः निपतने। निपत्+तिव्, धातोरन्तेऽकारागमे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ८९० सू० तकारस्य डकारे, तिवः इचादेशे, **निवडइ** इति सिद्धम्। ९४ सू० **बहुलाधिकारात्,** इकारस्य उकारो न जातः।

९५—प्रवासिकः। प्रवासिक+सि, ३५० सू० रेफ-लोपे, ४४ सू० आदेरकारस्य आकारे, ९५ सू० इकारस्य उकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पावासुओ** इति सिद्धम्। **इक्षुः।** इक्षु+सि, ९५ सू० इकारस्य उकारे, २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे—**उच्छू** इति सिद्धम्।

९६—युधिष्ठिरः। युधिष्ठिर+सि, २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७ सू० उकारस्य अकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ९६ सू० वैकल्पिके आदेरिकारस्य उकारे—जहुष्ठिर+सि, जहिष्ठिर+सि, इति स्थिते, ३४८ सू० षकार-लोपे, ३६० सू० ठकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, २५४ सू० रेफस्य लकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जहुट्ठिलो, जहिट्ठिलो** इति सिद्धम्।

९७—द्विधा क्रियते। द्विधा। अव्ययपदमिदम्। ३५० सू० वकारलोपे,९७ सू० इकारस्य ओकारे, उकारे च, १८७ सू० धकारस्य हकारे, **दोहा-दुहा** इति सिद्धम्। **क्रियते।** डुकृञ् (कृ) करणे। कृ+क्य+ते, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० तिवः इचादेशे, **किज्जइ** इति सिद्धम्।

द्विधाकृतम्। द्विधाकृत+सि, ३५० सू० वकार-लोपे, ९७ सू० इकारस्य ओकारे, उकारे च, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० ककारस्य तकारस्य च लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **दोहा-इअं, दुहा-इअं** इति सिद्धम्। **कृग इति किम्।** द्विधा-शब्दे यदि कृग्-धातोः प्रयोगो भवेत्तदैव तस्य इकारस्य ओकारः, उकारश्च भवति, नान्यथा। द्विधागत-शब्दे कृग्-धातोरभावादिकारस्य ओकारः उकारश्च न जायते। यथा—**द्विधागतम्।** द्विधागत+सि, वकार-लोपे, धकारस्य हकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**दिहा-गयं** इति सिद्धम्। अत्र द्विधा-शब्दे कृग्-धातोः प्रयोगाभावात् इकारस्य ओकारः, उकारश्च न जातः।

क्वचित् केवलस्यापि। प्रस्तुत-सूत्रेण यदि द्विधा-शब्दे कृग्-धातोः प्रयोगो भवेत्तदैव तस्य

इकारस्य ओकारः उकारश्च जायते नान्यथा, किन्तु बहुलाधिकारात् केवलस्य—एकाकिनोऽपि द्विधा-शब्दस्य इकारस्य उकारो भवति। यथा—**द्विधा अपि सः सुरवधूसार्थः**। द्विधा। द्विधा+सि। वकार-लोपे, धकारस्य हकारे, अत्र **बहुलाधिकारात्** कृग्-धातोरप्रयोगेऽपि ६७ सू० इकारस्य उकारे, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**दुहा** इति सिद्धम्। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४१ सू० अकारस्य लोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे **वि** इति सिद्धम्। **सः**। तद्+सि, ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—सो इति सिद्धम्। **सुरवधूसार्थः**। सुराणां वध्वः सुरवध्वः, तासां सार्थः-समूह इत्यर्थः। सुरवधूसार्थ+सि, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-थकारस्य तकारे, संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **सुर-वहू-सत्थो** इति सिद्धम्।

६८—**निर्झरः**। निर्झर+सि, ६८ सू० नकारेण सह इकारस्य वैकल्पिके ओकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे ओज्झरो, ओकाराभावे **निज्झरो** इति सिद्धम्।

इकार के स्थान में होने वाले कार्य

इस प्रकरण द्वारा प्राकृत भाषा में इकार के स्थान पर जो-जो कार्य होते हैं उन का दिग्दर्शन कराया जाएगा—

८५—इस सूत्र में पूर्व सूत्र से **'संयोग'** इस पद की **अनुवृत्ति** ग्रहण की गई है। यदि संयुक्त अक्षर परे हो तो शब्द के आदिम इकार को विकल्प से एकार होता है। जैसे—१—**पिण्डम्**=पेण्डं, पिण्डं (समूह) २—**धम्मिल्लम्**=धम्मेल्लं, धम्मिल्लं (बांधा हुआ केश), ३—**सिन्दूरम्**=सेन्दूरं, सिन्दूरं (सिन्दूर), ४—**विष्णुः**=वेण्हू, विण्हू (देव-विशेष का नाम), ५—**पिष्टम्**=पेट्ठं, पिट्ठं (पीसा हुआ आटा), ६—**बिल्वम्**=बेल्लं, बिल्लं (बिल्व पेड़ का फल), इन शब्दों में संयुक्त अक्षर के परे रहते आद्य इकार को विकल्प से एकार किया गया है।

बहुलाधिकार के कारण कहीं पर संयुक्त अक्षर के आगे रहने पर भी आदिम इकार को एकार नहीं होता। जैसे—**चिन्ता**=चिन्ता (फिक्र, शोक), यहां पर इस सूत्र का सब विधान पूर्णतया संघटित होने पर भी आदिम इकार को एकार नहीं हो सका।

८६—**किंशुक** शब्द के आदिम इकार को विकल्प से एकार होता है। जैसे—**किंशुकम्**=केसुअं, किंसुअं (ढाक, वृक्ष-विशेष), यहां इकार को विकल्प से एकार हो गया है।

८७—**मिरा** शब्द के इकार को एकार हो जाता है। जैसे—**मिरा**=मेरा (मर्यादा), यहां इकार को एकार किया गया है।

८८—**पथिन्, पृथिवी, प्रतिश्रुत्, मूषिक हरिद्रा** और **विभीतिक** इन शब्दों के आदिम इकार को अकार हो जाता है। जैसे—१—**पथिन्**=पहो (मार्ग), २—**पृथिवी**=पुहई, पुढवी (भूमि), ३—**प्रतिश्रुत्**=पडंसुआ (प्रतिध्वनि, प्रतिज्ञा), ४—**मूषिकः**=मूसओ, (चूहा), ५—**हरिद्रा**=हलद्दी, हलद्दा (हलदी), ६—**विभीतकः**=बहेडओ (बहेड़ा, फल-विशेष), इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र द्वारा आदिम इकार को अकार किया गया है। **पंथं किल देशित्वा**=पन्थं किर देसित्ता (निश्चित रूप से मार्ग का उपदेश

करके), यहां जो पन्थ शब्द का उल्लेख दिखाई दे रहा है, यह पथिन् शब्द नहीं है, किन्तु यह तो इस का ही समानार्थक (पर्यायवाचक) पन्थ शब्द है, अतः प्रस्तुत सूत्र की यहां कोई प्रवृत्ति नहीं हो सकी। **कुछ आचार्य** हरिद्रा शब्द के इकार को विकल्प से अकारादेश मानते हैं। उन के मत में—**हरिद्रा** के "**हलिद्दी, हलिद्दा**" ये रूप भी बनते हैं।

८९—**शिथिल** और **इंगुद** शब्दों के आदिम इकार को विकल्प से अकार होता है। जैसे—१—**शिथिलम्**=सढिलं, सिढिलं (ढीला), २—**प्रशिथिलम्**=पसढिलं, पसिढिलं (विशेष ढीला), ३—**इंगुदम्**=अंगुअं, इंगुअं (इंगुद वृक्ष का फल), यहां पर इकार को विकल्प से अकारादेश किया गया है। ध्यान रहे कि निर्मित और निर्मात इन शब्दों के इकार को आकारादेश करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि **निर्मित** से **निम्मिओ** (रचित) और **निर्मात** शब्द से **निम्माओ** (बनाने वाला) ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

९०—**तित्तिरि** शब्द के रेफस्थ इकार को अकारादेश होता है। जैसे—**तित्तिरिः**=तित्तिरो (तीतर), यहां पर रेफ के इकार को अकार किया गया है।

९१—वाक्य के आदि में यदि **इति** शब्द हो तो उस के तकार-गत इकार को अकार होता है। जैसे—१—**इति कथितावसाने**=इअ जम्पिआवसाणे (यह कह चुकने पर), २—**इति विकसित-कुसुमशरः**=इअ विअसिअ-कुसुम-सरो (यह खिले हुए फूलों का वाण है), यहां पर **इति** के तकार-गत इकार को अकार किया गया है। **इति शब्द वाक्य के आदि में होना चाहिए** यह कहने का इतना ही उद्देश्य है कि अनादिभूत इति शब्द के तकारस्थ इकार को अकारादेश न हो। जैसे—१—**प्रियः इति**=पिओ त्ति (यह प्रीतम है), २—**पुरुषः इति**=पुरिसो त्ति (यह पुरुष है), यहां पर अनादिभूत '**इति**' शब्द के तकारस्थ इकार को अकार नहीं हो सका।

९२—**जिह्वा, सिंह** और **त्रिंशत्** इन शब्दों के इकार को तथा **विंशति** शब्द के 'ति' को ईकारादेश होता है। जैसे—१—**जिह्वा**=जीहा (रसना), २—**सिंहः**=सीहो (शेर), ३—**त्रिंशत्**=तीसा (तीस की संख्या), ४—**विंशतिः**=वीसा (२० की संख्या), इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से ईकारादेश किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में **बहुल** का अधिकार होने पर कहीं पर '**सिंह**' आदि शब्दों के इकार को ईकारादेश नहीं भी होता। जैसे—१—**सिंहदत्तः**=सिंहदत्तो (सिंहदत्त नाम का व्यक्ति), २—**सिंहराजः**=सिंहराओ (सिंहराज नामक मनुष्य), यहां पर **बहुलाधिकार** से प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

९३—**निर्** उपसर्ग के रेफ का लोप होने पर इकार को ईकार होता है। जैसे—१—**निस्सरति**=नीसरइ (वह निकलता है) २—**निश्श्वासः**=नीसासो (सांस लेना) यहां पर निर् के रेफ का लोप होने पर इकार को ईकारादेश किया गया है। यहां पर प्रश्न हो सकता है कि रेफ-लोप होने पर ही निर् के इकार को ईकार होता है, यह क्यों कहा गया ? उत्तर में निवेदन है कि जहां उपसर्ग मान कर निर् के रेफ का लोप नहीं होता वहां इस सूत्र से उस के इकार को ईकार नहीं हो पाता। जैसे—१—**निर्णयः**=निण्णओ (फैसला), २—**निस्सहानि अंगानि**=निस्सहाइं अङ्गाइं (असहाय अङ्ग), यहां पर 'निर्' उपसर्ग मान कर १३ सूत्र से रेफलोप न करके, ३५० सूत्र से रेफ-लोप किया गया है। अतः प्रस्तुत सूत्र द्वारा यहां इकार को ईकारादेश नहीं हो सका। विशेष रूप से यह बात समझ लेनी चाहिए कि निर् को उपसर्ग मान कर १३ सूत्र से रेफ-लोप करने पर ही प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

९४—'द्वि' शब्द और 'नि' उपसर्ग के इकार को उकार होता है। जैसे—**द्वि के उदाहरण**—१—**द्विमात्रः**=दुमत्तो (दो मात्रा वाला स्वर), २—**द्विजातिः**=दुआई (ब्राह्मण), ३—**द्विविधः**=दुविहो (दो प्रकार का), ४—**द्विरेफः**=दुरेहो (भ्रमर), ५—**द्विवचनम्**=दु-वयणं (दो का बोधक व्याकरण-गत-प्रत्यय), यहां पर द्वि शब्द के इकार को उकार किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में **बहुल** का अधिकार होने से कहीं पर द्वि के इकार को विकल्प से उकार होता है। जैसे—१—**द्विगुणः**=दुउणो, बिउणो (दुगना), २—**द्वितीयः**=दुइओ, बिइओ (दूसरा), **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर द्वि शब्द के इकार को उकार नहीं भी होता। जैसे—१—**द्विजः**=दिओ (ब्राह्मण), २—**द्विरदः**=दिरओ (दो दान्त वाला, हाथी)। **बहुलाधिकार से** कहीं पर 'द्वि' के इकार को ओकार भी हो जाता है। जैसे—**द्विवचनम्**=दो-वयणं, इस तरह **बहुलाधिकार** के कारण 'द्वि' शब्द के इकार को कहीं विकल्प से उकार, कहीं उकार का अभाव और कहीं ओकार हो जाता है। **'नि' उपसर्ग के उदाहरण**—१—**निमज्जति**=णुमज्जइ (वह डूबता है), २—**निमग्नः**=णुमन्नो (डूबा हुआ, तन्मय), यहां पर 'नि' उपसर्ग के इकार को उकार किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर **'नि'** के इकार को उकार नहीं भी होता। जैसे—**निपतति**=निवडइ (वह गिरता है), यहां बहुलता से इकार को उकार नहीं हो सका।

९५—**प्रवासी** और **इक्षु** के आदिम इकार को उकार होता है। जैसे—१—**प्रवासिकः**=पावासुओ (प्रवास करने वाला), २—**इक्षुः**=उच्छू (ईख), यहां पर प्रस्तुत सूत्र से इकार को उकार हो गया।

९६—**युधिष्ठिर** शब्द के आद्य इकार को विकल्प से उकार होता है। जैसे—**युधिष्ठिरः**=**जहुट्ठिलो, जहिट्ठिलो** (राजा पाण्डु के बड़े पुत्र, धर्मराज)। यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा आदि इकार को विकल्प से उकार किया गया है।

९७—**द्विधा**-शब्द के साथ यदि **कृग्** धातु प्रयुक्त हो तो उसके इकार को क्रमशः ओकार और उकार होता है। जैसे—१—**द्विधा क्रियते**=दोहा किज्जइ, दुहा किज्जइ (दो प्रकार से किया जाता है। २—**द्विधा कृतम्**=दोहा इअं, दुहा इअं (दो प्रकार से किया गया)। यहां पर कृग् धातु का सान्निध्य है, अतः द्विधा शब्द के इकार को ओकार और उकार किया गया है। **द्विधा गतम्**=दिहा गयं (दो प्रकार से गया है), यहां पर कृग् धातु का प्रयोग नहीं था, अतः प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर अकेले 'द्विधा' शब्द के इकार को भी उकार हो जाता है। जैसे—**द्विधाऽपि स सुरवधूसार्थः**=दुहा वि सो सुर-वहू-सत्थो (वह देवों की देवियों का समूह दो प्रकार से भी), यहां पर **'कृग्'** धातु का प्रयोग न होने पर भी **बहुलाधिकार** के कारण **'द्विधा'** के इकार को उकार हो गया है।

९८—**निर्झर** शब्द के इकार को नकार के साथ विकल्प से ओकार होता है। जैसे—**निर्झरः**=ओज्झरो, निज्झरो (झरना)। यहां नकार के साथ इकार को (समस्त नि को) विकल्प से ओकार किया गया है।

अथ ईकार-विधिः

९९—हरीतक्यामीतोत् ।८।१।९९। हरीतकीशब्दे आदेरीकारस्य अद् भवति। हरडई।

१००—**आत्कश्मीरे ८।१।१००।** कश्मीर-शब्दे ईत आद् भवति। कम्हारा।

१०१—**पानीयादिष्वित् ८।१।१०१।** पानीयादिषु शब्देषु ईत इद् भवति। पाणिअं। अलिअं। जिअइ। जिअउ। विलिअं। करिसो। सिरिसो। दुइअं। तइअं। गहिरं। उवणिअं। आणिअं। पलिविअं। ओसिअन्तं। पसिअ। गहिअं। वम्मिओ। तयाणिं। पानीय। अलीक। जीवति। जीवतु। व्रीडित। करीष। शिरीष। द्वितीय। तृतीय। गभीर। उपनीत। आनीत। प्रदीपित। अवसीदत्। प्रसीद। गृहीत। वल्मीक। तदानीम् इति पानीयादयः। बहुलाधिकारादेषु क्वचिन्नित्यं, क्वचिद् विकल्पः। तेन—पाणीअं, अलीअं। जीअइ। करीसो। उवणीओ इत्यादि सिद्धम्।

१०२—**उज्जीर्णे ८।१।१०२।** जीर्णशब्दे ईत उद् भवति। जुण्ण-सुरा। क्वचिन्न भवति—जिण्णे भोअणमत्ते।

१०३—**ऊर्हीन-विहीने वा ८।१।१०३।** अनयोरीत ऊत्वं वा भवति। हूणो, हीणो। विहूणो, विहीणो। विहीन इति किम्—पहीण-जर-मरणा।

१०४—**तीर्थे हे ८।१।१०४।** तीर्थशब्दे हे सति ईत ऊत्वं भवति। तूहं। ह इति किम्—तित्थं।

१०५—**एत्पीयूषापीड-बिभीतक-कीदृशेदृशे ८।१।१०५।** एषु ईत एत्त्वं भवति। पेऊसं। आमेलो। बहेडओ। केरिसो। एरिसो।

१०६—**नीड-पीठे वा ८।१।१०६।** अनयोरीत एत्त्वं वा भवति। नेडं, नीडं। पेढं, पीढं।

अथ ईकार-विधिः

प्राकृतभाषायामीकारस्य स्थाने अकारादिकं यत्कार्यकलापं भवति तत्प्रदर्शयत्याचार्यः।

९९—हरीतकी—हरीतकी+सि, ९९ सू० आदेरीकारस्य अकारे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, १७७ सू० ककार-लोपे, ३।३।३१ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे—**हरडई** इति सिद्धम्।

१००—**कश्मीराः।** कश्मीर+जस्, १०० सू० ईकारस्य आकारे, ३४५ सू० श्मस्य "म्ह" इत्यादेशे, ४६३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० अकारस्य दीर्घे, **कम्हारा** इति सिद्धम्।

१०१—**पानीयम्**—पानीय+सि, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पाणिअं** इति सिद्धम्। **अलीकम्**—अलीक+सि, ईकारस्य इकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **अलिअं** इति सिद्धम्। **जीवति**—जीव् प्राणधारणे। जीव्+तिव्। ईकारस्य इकारे, ६१० सू० धातोरन्ते अकारागमे, १७७ सू० वकारस्य लोपे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे, **जिअइ** इति सिद्धम्। **जीवतु**—जीव्+तुव्। उकारस्य इकारे, धातोरन्ते

अकारागमे, वकारलोपे, ६६२ सू० तुवः दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, **जिअउ** इति सिद्धम्। **व्रीडितम्**—व्रीडित+सि, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ईकारस्य इकारे, २०२ सू० डकारस्य लकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव—**विलिअं** इति सिद्धम्। **करीषः**—करीष+सि, ईकारस्य इकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **करिसो** इति सिद्धम्। **शिरीषः**—शिरीष +सि, ईकारस्य इकारे, २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, पूर्ववदेव—**सिरिसो** इति सिद्धम्। **द्वितीयम्**—द्वितीय+सि, ९४ सू० इकारस्य उकारे, ३५० सू० वकारस्य लोपे, १७७ सू० तकारस्य यकारस्य च लोपे, ईकारस्य इकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **दुइअं** इति सिद्धम्। **तृतीयम्**—तृतीय +सि, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० द्वितीयतकारस्य यकारस्य च लोपे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, पूर्ववदेव, **तइअं** इति सिद्धम्। **गभीरम्**—गभीर+सि, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ईकारस्य इकारे, पूर्ववदेव **गहिरं** इति सिद्धम्। **उपनीतम्**—उपनीत+सि, २३१ सू० पकारस्य वकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ईकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **उवणिअं** इति सिद्धम्। **आनीतम्**—आनीत+सि, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ईकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **आणिअं** इति सिद्धम्। **प्रदीपितम्**—प्रदीपित+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, २२१ सू० दकारस्य लकारे, ईकारस्य इकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **पलिविअं** इति सिद्धम्। **अवसीदत्**=अव-पूर्वक: षद्लृ (सद्)धातुः अवसादे-विषादे। **अवसद्**+शतृ=१७२ सू० अवोपसर्गस्य ओकारे, ४। २। १०८ **सूत्रेण** सद् इत्यस्य **सीद्** इत्यादेशे, ईकारस्य इकारे, ६१० धातोरन्ते अकारागमे, ओसिद+शत् इति स्थिते, १७७ सू० दकारस्य लोपे, ६७० सू० शतुः 'न्त' इत्यादेशे सि-प्रत्यये, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **ओसिअन्तं** इति सिद्धम्।

प्रसीद—प्र+सद् प्रसादे। प्रसद+हि। रेफलोपे, ४। २। १०। सू० सद् इत्यस्य सीद् इत्यादेशे, ईकारस्य इकारे,१७७सू० पकारस्य लोपे,धातोरन्तेऽकारागमे,६६२ सू० हि इत्यस्य "सु" इत्यादेशे,६६४सू० सोर्लोपे **पसिअ** इति सिद्धम्। **गृहीतम्**—गृहीत+सि, १२६सू० ऋकारस्य अकारे,ईकारस्य इकारे,१७७सू० तकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **गहिअं** इति सिद्धम्। **वल्मीकः**—वल्मीक+सि, ३५० सू० लकारस्य लोपे, ३६० सू० यकारस्य द्वित्वे, ईकारस्य इकारः १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्डो, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वम्मिओ** इति सिद्धम्। **तदानीम्**=अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टाकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ईकारस्य इकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **तयाणिं** इति सिद्धम्। एषु पानीयादिषु शब्देषु बहुलाधिकाराद् बाहुल्येन क्वचिन्नित्यं, क्वचिद् विकल्पेन च ईकारस्य इकारो भवति, तेन **पाणीअं, अलीअं, जीअइ, करीसो, उवणीओ** इत्यादीनि रूपाण्यपि भवन्ति।

१०२—**जीर्णसुरा**—जीर्णसुरा+सि, १०२ सू० ईकारस्य उकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, सेर्लोपे जुण्णसुरा इति सिद्धम्। **क्वचिन्नेति**। बहुलाधिकारात् क्वचित् कस्मिंश्चित्स्थले ईकारस्य उकारो **न** भवति। यथा **जीर्णे भोजनमात्रे**। अत्र **बहुलाधिकारात्** १०२ सू० ईकारस्य उकाराभावे, **जीर्णे**--जीर्ण+ङि, इति स्थिते ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे,५००सू० ङि इत्यस्य स्थाने डे(ए) इत्यादेशे, २। १। ११४। सू० डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **जिण्णे** इति सिद्धम्। **भोजनमात्रे**—भोजनमात्र+ङि। १७७ सू० जकारस्य लोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, रेफस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ङेः स्थाने डित्-एकारे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भोअणमत्ते** इति सिद्धम्।

१०३—**हीनः**—हीन+सि, १०३ सू० ईकारस्य वैकल्पिके ऊकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे हूणो। ऊकाराभावे हीणो इति सिद्धम्। **विहीनः**—विहीन+सि, १०३ सू० वैकल्पिके ईकारस्य ऊकारे, नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **विहूणो-विहीणो** इति सिद्धम्। **विहीन इति किम्**। प्रस्तुत-सूत्रेण हीन-विहीन-शब्दयोरीकारस्य विकल्पेन ऊकारो विधीयते, शब्द-द्वय-ग्रहणेन सूत्रकारेण संसूचितमिदं यत् हीन-शब्दः स्वतन्त्रो भवेदथवा वि-उपसर्ग-पूर्वको भवेत्तदैवास्य ईकारस्य ऊकारो भवति, नान्यथा। प्रहीण-शब्दः प्र-उपसर्ग-पूर्वकः, अतोऽत्र ईकारस्य ऊकारो न जायते। यथा प्रहीण-जर-मरणाः—जरा च मरणञ्च जरामरणे, प्रहीणे जरामरणे येषां ते प्रहीण-जरा-मरणाः। प्रहीण-जरा-मरण+जस्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ४ सू० आकारस्य अकारे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **पहीणजरमरणा** इति सिद्धम्। **हीन**-शब्दस्य तथा **विहीन**-शब्दस्य चाभावात् १०३ सू० ईकारस्य ऊकारो न जातः।

१०४—**तीर्थम्**+तीर्थ+सि, १०४ सू० ईकारस्य ऊकारे, ३४३ सू० र्थस्य वैकल्पिके हकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, तूहं इति सिद्धम्। **ह इति किम्**। तीर्थ-शब्दे र्थस्य हकारे जाते एव ईकारस्य ऊकारो भवति, नान्यथा। यत्र ३४३ सू० संयुक्तस्य हकारो न जातस्तत्र हकारपरत्वाभावात् ईकारस्य ऊकारोऽपि न जातः, किन्तु ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **तित्थं** इति सिद्धम्।

१०५—**पीयूषम्**—पीयूष+सि, १०५ सू० ईकारस्य एकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, २६० सू० षकारस्य सकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **पेऊसं** इति सिद्धम्। **आपीडः**। आपीड+सि, २३४ सू० पकारस्य वैकल्पिके मकारे, ईकारस्य एकारे, २०२ सू० डकारस्य लकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादे; लोपे, **आमेलो** इति सिद्धम्। **बिभीतकः**—बिभीतक+सि, ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, इकारस्य एकारे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **बहेडओ** इति सिद्धम्। **कीदृशः**—कीदृश+सि, ईकारस्य एकारे, १४२ सू० ऋकास्य "रि" इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **केरिसो** इति सिद्धम्। **ईदृशः**—ईदृशः—सि, ईकारस्य एकारे, ऋकारस्य रि इत्यादेशे दकारस्य लोपे, शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **एरिसो** इति सिद्धम्।

१०६—**नीडम्**—नीड+सि, १०६ सू० वैकल्पिके ईकारस्य एकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **नेडं, नीडं** इति सिद्धम्। **पीठम्**—पीठ+सि; १०६ सू० वैकल्पिकेः ईकारस्य एकारे, १९९ सू० ठकारस्य ढकारे, पूर्ववदेव **पेढं, पीढं** इति सिद्धम्।

ईकार के स्थान पर होनेवाले कार्य

इस प्रकरण द्वारा प्राकृत भाषा में ईकार के स्थान पर होनेवाले कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया है—

९९—**हरीतकी** शब्द के आदिम ईकार को अकार होता है। जैसे—**हरीतकी**=हरडई (हरड़)। यहां आद्य ईकार को अकारादेश किया गया है।

१००—**कश्मीर** शब्द के ईकार को आकार होता है। जैसे—**कश्मीराः**=कम्हारा। (कश्मीर के लोग)। यहां ईकार को आकारादेश किया गया है।

१०१—**पानीय** आदि शब्दों के ईकार को इकार होता है। **जैसे—१—पानीयम्**=पाणिअं (जल), २—**अलीकम्**=अलियं (असत्य), ३—**जीवति**=जिअइ (वह प्राण धारण करता है), ४—**जीवतु**= जिअउ (वह जीवित रहे), ५—**व्रीडितम्**=विलिअं (लज्जित), ६—**करीषः**=करिसो (जलाने के लिये सुखाया हुआ गोबर), ७—**शिरीषः**=सिरिसो (सिरस का वृक्ष), ८—**द्वितीयम्**=दुइअं (दूसरा) ९—**तृतीयम्**=तइअं (तीसरा), १०—**गभीरम्**=गहिरं (गम्भीर, गहरा), ११—**उपनीतम्**=उवणिअं (समीप में लाया हुआ), १२—**आनीतम्**=आणिअं (लाया हुआ),१३—**प्रदीपितम्**=पलिविअं (जाज्व-ल्यमान), १०—**अवसीदत्**=ओसिअन्तं (पीडा को प्राप्त करता हुआ) १५—**प्रसीद**—पसिअ (प्रसन्न हो), १६—**गृहीतम्**=गहिअं (ग्रहण किया हुआ), १७—**वल्मीकः**=वम्मिओ (दीमक का बनाया हुआ मिट्टी का ढेर, आदि-कवि वाल्मीकि), १८—**तदानीम्**=तयाणिं (तब), इत्यादि पानीय गण में पठित शब्दों के ईकार को इकार किया गया है। **बहुल** का अधिकार होने से इन प्रयोगों में कहीं ईकार को नित्य और कहीं विकल्प से भी इकार होता है, जैसे—**१—पानीयम्**=पाणीअं, **२—अलीकम्**=अलीअं, **३—जीवति**=जीअइ, ४—**करीषः**=करीसो, **५—उपनीतः**=उवणीओ। यहां पर ईकार को कहीं नित्य और कहीं विकल्प से इकार करके ये रूप बनाए गए हैं।

१०२—**जीर्ण**=शब्द के ईकार को उकार होता है। **जैसे—जीर्ण सुरा**=जुण्ण-सुरा (पुरानी मदिरा), यहां ईकार को उकार किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर जीर्ण शब्द के ईकार को उकार नहीं भी होता। **जैसे—जीर्णे भोजनमात्रे**=जिण्णे भोअणमत्ते (भोजन-मात्र के पच जाने पर) यहां पर जीर्ण के ईकार को उकार नहीं हो सका।

१०३—**हीन और विहीन** के ईकार को विकल्प से ऊकार होता है। जैसे—१—**हीनः**=हूणो, हीणो (न्यून), २—**विहीनः**—विहूणो, विहीणो (रहित), यहां ईकार को विकल्प से ऊकार किया गया है। सूत्रकार द्वारा **'विहीने'** यह पद देकर वि उपसर्ग को छोड़कर अन्य उपसर्गों से युक्त हीन शब्द के ईकार को ऊकारादेश करने का निषेध कर दिया गया है। **जैसे—प्रहीण-जरा-मरणाः**=पहीण-जर-मरणा (जरा—वृद्धावस्था और मरण—मृत्यु से रहित), यहां पर हीन के साथ 'प्र' उपसर्ग होने से प्रस्तुत सूत्र से ईकार को ऊकार नहीं हो सका।

१०४—**तीर्थ** शब्द के 'र्थ' को हकारादेश हो जाने पर ईकार को ऊकार होता है, जैसे—**तीर्थम्** =तूहं (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ, पवित्र स्थान), यहां पर प्रस्तुत सूत्र से ईकार को ऊकार किया गया है, किन्तु **तीर्थम्**=तित्थं। यहां पर **'र्थ'** को हकारादेश न होने के कारण ईकार को ऊकार नहीं हो सका।

१०५—**पीयूष, आपीड, बिभीतक, कीदृश और ईदृश** इन शब्दों के ईकार को एकार होता है। जैसे—**१—पीयूषम्**=पेऊसं, (अमृत), **२— आपीडः**=आमेलो (फूलों की माला, शिरोभूषण)। **३—बिभीतकः**=बहेडओ, (बहेडा) ४—**कीदृशः**=केरिसो (कैसा), **५—ईदृशः**=एरिसो (ऐसा), यहां पर ईकार को एकार किया गया है।

१०६—**नीड और पीठ** शब्द के ईकार को विकल्प से एकार होता है। जैसे—१—**नीडम्**=नेडं, नीडं (घोंसला), २—**पीठम्**=पेढं, पीढं (आसन, पीढा) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से ईकार को विकल्प से एकार किया गया है।

अथ उकार-विधिः

१०७—**उतो मुकुलादिष्वत्** ८।१।१०७। मुकुल इत्येवमादिषु शब्देषु, आदेरुतोऽत्त्वं भवति। मउलं, मउलो। मउरं। मउडं। अगरु। गरुई। जहुट्ठिलो, जहिट्ठिलो। सोअमल्लं। गलोई। मुकुल। मुकुर। मुकुट। अगुरु। गुर्वी। युधिष्ठिर। सौकुमार्य। गुडूची इति मुकुलादयः। क्वचिदाकारोऽपि–विद्रुतः, विद्दाओ॥

१०८—**वोपरौ** ८।१।१०८। उपरावुतोऽद् वा भवति। अवरिं, उवरिं।

१०९—**गुरौ के वा** ८। १। १०९। गुरौ स्वार्थे के सति आदेरुतोऽद् वा भवति। गरुओ, गुरुओ। क इति किम्? गुरू।

११०—**इर्भ्रुकुटौ** ८।१।११०। भ्रुकुटावादेरुत इर्भवति। भिउडी।

१११—**पुरुषे रोः** ८।१।१११। पुरुषशब्दे रोरुत इर्भवति। पुरिसो, पउरिसं।

११२—**ईः क्षुते** ८।१।११२। क्षुतशब्दे आदेरुत ईत्त्वं भवति। छीअं।

११३—**ऊत्सुभग-मुसले वा** ८।१।११३। अनयोरादेरुत ऊद् वा भवति। सूहवो, सुहओ। मूसलं, मुसलं॥

११४—**अनुत्साहोत्सन्ने त्सच्छे** ८।१।११४। उत्साहोत्सन्नवर्जिते शब्दे यौ त्सच्छौ तयोः परयोरादेरुत ऊद् भवति। त्स। ऊसुओ, ऊसवो। ऊसित्तो। ऊसरइ। छ–उद्गताः शुकाः यस्मात् सः ऊसुओ। ऊससइ। अनुत्साहोत्सन्न इति किम्? उच्छाहो। उच्छन्नो।

११५—**लुकि दुरो वा** ८।१।११५। दुर् उपसर्गस्य रेफस्य लोपे सति उत ऊत्त्वं वा भवति। दूसहो, दुसहो। दूहवो, दुहओ। लुकीति किम्? दुस्सहो विरहो।

११६—**ओत्संयोगे** ८।१।११६। संयोगे परे आदेरुत ओत्त्वं भवति। तोण्डं। मोण्डं। पोक्खरं। कोट्टिमं। पोत्थओ। लोद्धओ। मोत्था। मोग्गरो। पोग्गलं। कोण्ढो। कोन्तो। वोक्कन्तं।

११७—**कुतूहले वा ह्रस्वश्च** ८।१।११७। कुतूहलशब्दे उत ओद् वा भवति, तत्सन्नियोगे ह्रस्वश्च वा। कोऊहल्लं, कुऊहलं। कोउहल्लं।

अथ उकार-विधिः

प्राकृतभाषायामुकारस्य स्थाने अकारादिकं यत्कार्यकलापं भवति तत्प्रदर्शयत्याचार्यः।

१०७—**मुकुलम्**—मुकुल+सि, १०७ सू०, आदेरुकारस्य अकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मउलं** इति सिद्धम्। **पुल्लिङ्गे तु**-४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **मउलो** इति सिद्धम्। **मुकुरः**—मुकुर+सि, आदेरुकारस्य अकारे, ककारस्य लोपे, ३४ सू० क्लीबत्वे, पूर्ववदेव **मउरं** इति सिद्धम्। **मुकुटम्**—मुकुट+सि, आदेरुकारस्य अकारे, ककारस्य

लोपे, १६५ सू० टकारस्य डकारे, पूर्ववदेव **मउडं** इति सिद्धम्। **अगुरुः**—अगुरु+सि, आदेरुकारस्य, अकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**अगरुं** इति सिद्धम्। **गुर्वी**—गुर्वी+सि, उकारस्य अकारे, ३८४ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वमुकारागमे, १७७ सू० वकारस्य लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **गरुई** इति सिद्धम्। **युधिष्ठिरः**—युधिष्ठिर+सि०। **जहुट्ठिलो-जहिट्ठिलो** इति सिद्धम्। प्रक्रिया ९६ सूत्रे द्रष्टव्या। **सौकुमार्यम्**—सौकुमार्य+सि, १५९ सू० औकारस्य ओकारे, आदेरुकारस्य अकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ८४ सू० संयोग परे ह्रस्वे, ३३९ सू० र्यस्य "ल्ल" इत्यादेशे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**सोअमल्लं** इति सिद्धम्। **गुडूची**—गुडूची+सि, उकारस्य अकारे, १२४ सू० ऊकारस्य ओकारे, २०२ सू० डकारस्य लकारे, १७७ सू० चकारस्य लोपे, सेर्लोपे-**गलोई** इति सिद्धम्। **क्वचिदाकारोऽपि**। प्रस्तुतसूत्रेण मुकुलादिषु शब्देषु आदेरुकारस्य अकारो भवति परन्तु बहुलाधिकारात् क्वचिद् उकारस्य आकारोऽपि जायते। यथा—**विद्रुतः**। विद्रुत+सि, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वे, **बहुलाधिकारात्** उकारस्य आकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **विद्दाओ** इति सिद्धम्।

१०८—उपरि। अव्ययपदमिदम्। १०८ सू० वैकल्पिके उकारस्य अकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, २६ सू० अन्त्यस्वरस्यागमरूपेऽनुस्वारे **अवरिं**-उवरिं इति सिद्धम्।

१०९—गुरुकः—गुरुक+सि, १०९ सू० आदेरुकारस्य वैकल्पिके अकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **गरुओ, गुरुओ** इति सिद्धम्। **क इति कम्**। स्वार्थे क-प्रत्यये परे सत्येव गुरु-शब्दस्य आदेरुकारस्य विकल्पेन अकारो भवति, नान्यथा। स्वार्थ-क-प्रत्ययाभावे तु गुरुः—गुरु+सि, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे, **गुरू** इति भवति। अत्र क-प्रत्ययाभावात् १०९ सू० आदि-उकारस्य अकारो न जातः।

११०—भ्रुकुटिः—भ्रुकुटि+सि, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ११० सू० आदेरुकारस्य इकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे भिउडी इति सिद्धम्।

१११—पुरुषः—पुरुष+सि, १११ सू० रोरुकारस्य इकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, सेर्डोः, डितिपरे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **पुरिसो** इति सिद्धम्। **पौरुषम्**—पौरुष+सि, १६२ सू० औकारस्य "अउ" इत्यादेशे, १११ सू० उकारस्य इकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पउरिसं** इति सिद्धम्।

११२—क्षुतम्—क्षुत+सि, २८८ सू० क्षस्य छकारे, ११२ सू० उकारस्य ईकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे, **छीअं** इति सिद्धम्।

११३—सुभगः—सुभग+सि, ११३ सू० उकारस्य वैकल्पिके ऊकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १९२ सू० उत्त्वे सति गकारस्य वकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सूहवो**, ऊकाराभावे गकारस्य वकारो न जातः, किन्तु १७७ सू० गकारस्य लोपे **सुहओ** इति सिद्धम्। **मुसलम्**—मुसल+सि। ११३ सू० आदेरुकारस्य वैकल्पिके ऊकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**मूसलं मुसलं** इति सिद्धम्।

११४—उत्सुकः—उत्सुक+सि। ११४ सू० आदिमस्य उकारस्य ऊकारे, ३४८ सू० तकारस्य लोपे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **ऊसुओ** इति सिद्धम्। **उत्सवः**—उत्सव+सि। ११४ सू० उकारस्य ऊकारे, तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव—**ऊसवो** इति सिद्धम्। **उत्सिक्तः**। उत्सिक्त+सि। ११४ सू० उकारस्य ऊकारे, ३४८ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे, ३६० सू० तकारस्य

द्वित्वे, पूर्ववदेव **ऊसित्तो** इति सिद्धम्। **उत्सरति**—उत्-पूर्वकः सृ—धातुः उत्सरणे। उत्सृ+तिव्। ११४ सू० उकारस्य ऊकारे, तकारस्य लोपे, ६०५ सू० ऋकारस्य अरादेशे, ६२८ सू० तिवः **इचादेशे ऊसरइ** इति सिद्धम्। **उच्छुकः**—उद्गताः शुकाः यस्मात् स उत्शुकः। उच्छुक+सि। ११४ सू० उकारस्य ऊकारे, ११ सू० समासे वाक्यापेक्षया अन्त्यत्त्वेन चकारस्य लोपे, **निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपायः** इति न्यायेन छकारस्य भूतपूर्व—स्वरूपः शकार एव जातः, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **ऊसुओ** इति सिद्धम्। **उच्छ्वसिति।** उत्-पूर्वकः श्वस्-धातुः उच्छ्वासे। उच्छ्वस्+तिव्। ११४ सू० उकारस्य ऊकारः, समासे वाक्यापेक्षया अन्त्यत्त्वम्, तेन ११ सू० चकारस्य लोपः, **निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपायः** अनेन न्यायेन छकारस्य भूतपूर्वस्वरूपः शकार एव जातः, ३४८ सू० वकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ६१० सू० **धातोरन्तेऽकारागमः**, ६२८ सू० तिवः इचादेशः, ततः **ऊससइ** इति सिद्धम्। **अनुत्साहोत्सन्नेति।** प्रस्तुत-सूत्रेण उत्साह-उत्सन्न-शब्दौ वर्जयित्वा यौ त्स-च्छौस्तस्तयोः परयोरादेरुकारस्य ऊकारादेशो विहितः। अत एव उत्साह-उत्सन्न-शब्दयोरादेरुकारस्य ऊकारो न भवति। यथा—**उत्साहः**—उत्साह+सि। २९२ सू० त्सस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **उच्छाहो** इति सिद्धम्। अत्र त्से परे सत्यपि ११४ सू० उत्साह—शब्द—निषेधेन उकारस्य ऊकाराभावः। **उत्सन्नः**—उत्सन्न+सि, त्सस्य छकारादेशः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपेः, **उच्छन्नो** इति सिद्धम्। अत्रापि ११४ सू० उत्सन्न-शब्दनिषेधात् उकारस्य ऊकाराभावो जातः।

११५—**दुस्सहः**। दुर्+सह+सि। वाक्यापेक्षया अन्त्यव्यञ्जनत्वात् १३ सू० रेफस्य लोपः, ११५ सू० उकारस्य वैकल्पिकः ऊकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **दूसहो** यत्र ऊकारो न जातस्तत्र **दुसहो** इति सिद्धम्। **दुर्भगः**। दुर्भग+सि। वाक्यापेक्षया अन्त्यव्यञ्जनत्वात् १३ सू० रेफस्य लोपः। ११५ सू० उकारस्य वैकल्पिकः ऊकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, १९२ सू० गकारस्य वकारः। सेर्डोः डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **दूहवो** यत्र ऊकाराभावस्तत्र १९२ सू० गकारस्य वकारोऽपि न जातः किन्तु १७७ सू० गकारस्य लोपे **दुहओ** इति सिद्धम्। **लुंकीति किम्।** यदा १३ सूत्रेण दुर्-उपसर्गस्य रेफ-लोपो जायते तदैव प्रस्तुत-सूत्रेणास्य उकारस्य-वैकल्पिक-ऊकारो भवति, नान्यथा। यत्र ३५० सू० रेफलोपः क्रियते तत्रैतस्य सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। यथा—**दुस्सहः**। दुर्सह+सि। विभक्त्यपेक्षया एक-पदत्वात् अन्त्यत्त्वभावे ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः दुस्सहो इति सिद्धम्।

११६—**तुण्डम्**—तुण्ड+सि। ११६ सू० उकारस्य ओकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, **तोण्डं** इति सिद्धम्। **मुण्डम्**—मुण्ड+सि। **मोण्डं**, अस्य प्रक्रिया **तोण्डं—वत्** ज्ञेया। **पुष्करम्**—पुष्कर+सि। प्रस्तुत-सूत्रेण उकारस्य ओकारे, २७५ सू० ष्कस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **पोक्खरं** इति सिद्धम्। **कुट्टिमम्**—कुट्टिम+सि। उकारस्य ओकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **कोट्टिमं** इति सिद्धम्। **पुस्तकम्**। पुस्तक+सि। उकारस्य ओकारे, ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६०सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६०सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ३३ सू० पुंस्त्वे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पोत्थओ** इति सिद्धम्।

कुतूहलम्। कुतूहल+सि। ११७ सू० वैकल्पिकः उकारस्य ओकारः, ओकारसन्नियोगे च

ऊकारस्य ह्रस्वः, कोतुहल+सि। यत्र ओकार एव न जातः तत्र-कुतूहल+सि इति स्थिते, १७७ सू० उभयत्र तकारस्य लोपः, ३७० सू० लकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वम्, कोउहल्ल+सि—कोउहल+सि, कुऊहल+सि, इति जाते सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**कोउहल्लं, कोउहलं, कुऊहलं** इत्येतानि रूपाणि जातानि।

अथ उकार-विधि

इस प्रकरण में उकार के स्थान पर होनेवाले अकार आदि कार्यों को प्रदर्शित किया गया है।

१०७—**मुकुल** आदि शब्दों के आदिम उकार को अकार होता है। जैसे—१—**मुकुलम्**=मउलं, मउलो (स्वल्प खिली हुई कली) २—**मुकुरम्**=मउरं (दर्पण)। ३—**मुकुटम्**=मउडं (मुकुट)। ४—**अगुरुम्**=अगरुं (लघु, अगर, सुगन्धित काष्ठ-विशेष)। ५—**गुर्वी**=गुरुई (गर्भवती स्त्री)। ६—**युधिष्ठिरः** जहुट्ठिलो, जहिट्ठिलो (पाण्डुपुत्र धर्मराज)। ७—**सौकुमार्यम्**=सोअमल्लं (सुकुमारता)। ८—**गुडूची** =गलोई (गिलोय, लता-विशेष) इन मुकुलादि शब्दों के आदिम उकार को अकार किया गया है। **बहुलाधिकार के कारण कहीं पर** आदिम उकार को आकार भी हो जाता है, जैसे—**विद्रुतः**=विद्दाओ (भाग गया) यहां पर आदि के उकार को आकार किया गया है।

१०८—**उपरि** शब्द के उकार को विकल्प से अ होता है। जैसे—**उपरि**=अवरिं, उवरिं (ऊपर) यहां उकार को अकार किया गया है।

१०९—**स्वार्थ** में क-प्रत्यय होने पर **गुरु** शब्द के आदिम उकार को विकल्प से अकार होता है। जैसे—**गुरुकः**=गरुओ, गुरुओ (महान) यहां पर आदिम उकार को विकल्प से अकारादेश किया गया है। जहां स्वार्थ में क-प्रत्यय नहीं होता, वहां—**गुरुः**=गुरू (गुरुदेव) यह रूप बनता है। यहां क-प्रत्यय न होने से प्रस्तुत सूत्र से आदिम उकार को अकार नहीं हो सका।

११०—**भ्रुकुटि** शब्द के आदिम उकार को इकार होता है। जैसे—**भ्रुकुटिः**=भिउडी (भौंह का विकार) यहां आदिम उकार को इकार किया गया है।

१११—**पुरुष** शब्द के द्वितीय उकार को इकार होता है। जैसे—१—**पुरुषः**=पुरिसो (मनुष्य) २—**पौरुषम्**=पउरिसं (पुरुषत्व), यहां रु के उकार को इकारादेश किया गया है।

११२—**क्षुत** शब्द के आदिम उकार को ईकार होता है। जैसे—**क्षुतम्**=छीअं, (छींक) यहां पर उकार को ईकार हो गया है।

११३—**सुभग और मुसल** के आदिम उकार को विकल्प से ऊकार होता है। जैसे—१—**सुभगः** =सूहवो सुहओ (अच्छे भाग्य वाला)। २—**मुसलम्**=मूसलं, मुसलं (मूसल) यहां पर उकार को विकल्प से ऊकारादेश किया गया है।

११४—**उत्साह और उत्सन्न** इन शब्दों को छोड़ कर 'त्स' तथा 'च्छ' वाले शब्दों के आदिम उकार को ऊकार होता है। **'त्स' के उदाहरण** १—**उत्सुकः**=ऊसुओ (उत्कण्ठित, चाह से आकुल)। २—**उत्सवः**=ऊसवो (त्यौहार) ३—**उत्सिक्तः**=ऊसित्तो (अभिमानयुक्त, छिड़का हुआ)। ४—**उत्सरति** =ऊसरइ (वह ऊपर को जाता है)। **'च्छ' वाले शब्दों के उदाहरण**—१—**उच्छुकः**=ऊसुओ (जहां से तोते उड़ जाते हैं, वह) २—**उच्छ्वसति**=ऊससइ (वह ऊंचा सांस लेता है), इन शब्दों में **क्रमशः 'त्स' और 'च्छ' का योग है**, अतः इन के परे रहने पर आदिम उकार को ऊकार किया गया।

११४—**उत्साह और उत्सन्न** इन शब्दों को छोड़ कर 'त्स' तथा 'च्छ' वाले शब्दों के **आदिम** उकार को ऊकार होता है। **'त्स' के उदाहरण** १—**उत्सुकः**=ऊसुओ (उत्कण्ठित, चाह से आकुल)। २—**उत्सवम्**=ऊसवो (त्योहार), ३—**उत्सिक्तः**=ऊसित्तो (अभिमानयुक्त, छिड़का हुआ) ४—**उत्सरति**=ऊसरइ (वह ऊपर को जाता है)। **'च्छ' वाले शब्दों के उदाहरण**—१—**उच्छुकः**=ऊसुओ (जहां से तोते उड़ जाते हैं, वह) २—**उच्छ्वसति**=ऊससइ (वह ऊंचा सांस लेता है), इन शब्दों में **क्रमशः** 'त्स' और 'च्छ' का योग है, अतः इन के परे रहने पर आदिम उकार को ऊकार किया गया है।

सूत्रकार ने '**अनुत्साहोत्सन्ने**' यह कह कर उत्साह और उत्सन्न शब्द का जो निषेध किया है, इसका कारण केवल इतना ही है कि इन के आदिम उकार को ऊकारादेश न हो, इसी कारण १—**उत्साहः**=उच्छाहो (साहस, सामर्थ्य) २—**उत्सन्नः**=उच्छन्न (खण्डित, नष्ट) यहां पर आदि के उकार को ऊकार नहीं हो सका।

११५—दुर् उपसर्ग के रेफ का लोप होने पर उकार को विकल्प से ऊकार होता है। जैसे—१—**दुर्सहः**=दूसहो, दुसहो (जो दुःखपूर्वक सहन किया जा सके)। २—**दुर्भगः**=दूहवो, दुहओ (खोटे भाग्य वाला) यहां पर रेफ का लोप होने से उकार को विकल्प से ऊकार हो गया है। प्रश्न हो सकता है कि रेफ का लोप होने पर ही दुर् के उकार को ऊकार होता है, यह क्यों कहा गया? उत्तर में निवेदन है कि **दुस्सहो विरहः**=दुस्सहो विरहो (विरह-वियोग दुस्सह है, दुःखपूर्वक सहन करने जैसा है)। यहां पर कहीं उकार को ऊकार न हो जाए इसलिए '**लुकि**' यह पद पढ़ा गया है। यहां दुर् उपसर्ग मान कर रेफ का लोप नहीं हुआ, अतः प्रस्तुत सूत्र का कार्य भी नहीं हो सका।

११६—**संयुक्त अक्षर** के आगे रहने पर आदि के उकार को ओकार हो जाता है। जैसे—१—**तुण्डम्**=तोण्डं (मुख) २—**मुण्डम्**=मोण्डं (मस्तक, सिर) ३—**पुष्करम्**=पोक्खरं (कमल) ४—**कुट्टिमम्**=कोट्टिमं (रत्नों की खान, आंगण-विशेष, झोंपड़ा) ५—**पुस्तकः**=पोत्थओ (किताब) ६—**लुब्धकः**=लोद्धओ (लोभी, शिकारी) ७—**मुस्ता**=मोत्था (मोथा नामक औषधि-विशेष) ८—**मुद्गरः**=मोग्गरो (मुद्गर) ९—**पुद्गलम्**=पोग्गलं (रूप, गन्ध आदि से युक्त मूर्त्त द्रव्य) १०—**कुण्ठः**=कोण्ढो (मूर्ख) ११—**कुन्तः**=कोन्तो (भाला) १२—**व्युत्क्रान्तम्**=वोक्कन्तं (विपरीत क्रम से स्थित) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से उकार को ओकारादेश हो गया है।

११७—**कुतूहल** शब्द के उकार को विकल्प से ओकार होता है और उस का सन्नियोग—सामीप्य होने पर तकारस्थ ऊकार विकल्प से ह्रस्व हो जाता है। जैसे—**कुतूहलम्**=कोउहलं, कोउहल्लं, कुऊहलं (परिहास, अपूर्व वस्तु देखने की लालसा) यहाँ पर प्रस्तुत सूत्र से उकार को विकल्प से ओकार और ओकार का सान्निध्य होने पर ऊकार को उकारादेश किया गया है।

अथ ऊकार-विधिः

११८—**अदूतः सूक्ष्मे वा** ।८।१।११८। सूक्ष्मशब्दे ऊतोद् वा भवति। सण्हं, सुण्हं। आर्षे तु—सुहुमं।

११९—**दुकूले वा लश्च द्विः** ।८।१।११९। दुकूल-शब्दे ऊकारस्य अत्त्वं वा भवति, तत्सन्नियोगे च लकारो द्विर्भवति। दुअल्लं, दुऊलं। आर्षे तु—दुगुल्लं।

१२०—**ईर्वोद्व्यूढे** ।८।१।१२०। उद्व्यूढशब्दे ऊत ईत्वं वा भवति। उव्वीढं, उव्वूढं।

१२१—**उर्भ्रू-हनूमत्कण्डूय-वातूले** ।८।१।१२१। एषु ऊत उत्वं भवति। भुमया। हणुमन्तो। कण्डुअइ। वाउलो।

१२२—**मधूके वा** ।८।१।१२२। मधूकशब्दे ऊत उद् वा भवति। महुअं, महूअं।

१२३—**इदेतौ नूपुरे वा** ।८।१।१२३। नूपुरशब्दे ऊत इत् एत् इत्येतौ वा भवतः। निउरं, नेउरं। पक्षे—नूउरं।

१२४—**ओत्कूष्माण्डी-तूणीर-कर्पूर-स्थूल-ताम्बूल-गुडूची-मूल्ये** ।८।१।१२४। एषु ऊत ओद् भवति। कोहण्डी, कोहली। तोणीरं। कोप्परं। थोरं। तम्बोलं। गलोई। मोल्लं।

१२५—**स्थूणा-तूणे वा** ।८।१।१२५। अनयोरूत ओत्वं वा भवति। थोणा, थूणा। तोणं, तूणं।

अथ ऊकार-विधिः

उकारानन्तरं स्वरेषु ऊकारस्य स्थानं विद्यते, अतएव उकार-सम्बन्धीनि कार्याणि प्रदर्श्य ऊकार-सम्बन्धीनि कार्याणि संसूचयत्याचार्यः।

११८—**सूक्ष्मम्**। सूक्ष्म+सि। ११८ सू० ऊकारस्य वैकल्पिकोऽकारः, ३४६ सू० क्ष्मस्य स्थाने 'ण्ह' इत्यादेशः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सण्हं**, यत्र ऊकारस्य अकारो न जातः तत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे—**सुण्हं** इति सिद्धम्। **आर्षे त्विति**। आर्ष-प्राकृते तु प्रस्तुत-सूत्रेण ऊकारस्य अकारः, ३४६ सू० क्ष्मस्य 'ण्ह' इत्यादेशश्च न भवति। तत्र तु ८४ सूत्रेण संयोगे परे ह्रस्वे, ३८४ सू० अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वे उकारागमे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, पूर्ववदेव—**सुहुमं** इति भवति।

११९—दुकूलम्। दुकूल+सि। ११९ सू० ऊकारस्य वैकल्पिकः अकारः, तत्सन्नियोगे लकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**दुअल्लं, दुऊलं**। **आर्षे तु**। आर्ष-प्राकृते ११९ सू० ऊकारस्य अकारादेशो न भवति। तत्र तु १०६७ सू० ककारस्य गकारः, ३७० सू० लकारस्य द्वित्वम्, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**दुगुल्लं** इति भवति।

१२०—**उद्व्यूढम्**। उद्व्यूढ+सि। ३५० सू० दकारस्य लोपः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वम्, १२० सू० ऊकारस्य वैकल्पिकः ईकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**उव्वीढं, उव्वूढं** इति सिद्धम्।

१२१—**भ्रूः**। भ्रू+सि। १२१ सू० ऊकारस्य उकारः, ४३८ सू० भ्रू—शब्दात् स्वार्थे 'मया' इति प्रत्ययः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, सेर्लोपे—**भुमया** इति सिद्धम्। **हनूमान्**। हनूमत्+सि। ऊकारस्य उकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४३० सू० मतोः स्थाने मन्त इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **हणुमन्तो** इति सिद्धम्। **कण्डूयति**। कण्डूञ् गात्र-विघर्षणे। कण्डूय+तिव् इति जाते, ऊकारस्य उकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **कण्डुअइ** इति सिद्धम्। **वातूलः**। वातूल+

सि। ऊकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वाउलो** इति सिद्धम्।

१२२—मधूकम्। मधूक+सि। १२२ सू०ऊकारस्य वैकल्पिकः उकारः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**महुग्रं, महूग्रं** इति सिद्धम्।

१२३—नूपुरम्। नूपुर+सि। १२३ सू० ऊकारस्य इकारः, एकारश्च वैकल्पिकः, १७७ सू० पकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः. ततः—**निउरं—नेउरं** इति सिद्धम्। **पक्षे नूउरं** इति च ज्ञेयम्।

१२४—कूष्माण्डी। कूष्माण्डी+सि। १२४ सू० ऊकारस्य ओकारः, ३४४ सू० 'ष्मा' इत्यस्य 'ह' इत्यादेशः तथा ण्ड इत्यस्य च वैकल्पिको लकारः, सेर्लोपे—**कोहण्डी, कोहली** इति सिद्धम्। **तूणीरः।** तूणीर+सि। ऊकारस्य ओकारः। ३४ सू० क्लीबत्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**तोणीरं** इति सिद्धम्। **कर्पूरः।** कर्पूर+सि। ऊकारस्य ओकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, ३४ सू० क्लीबत्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यनुस्वारः, ततः—**कोप्परं** इति सिद्धम्। **स्थूलम्।** स्थूल+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ऊकारस्य ओकारः, २५५ सू० लकारस्य रेफः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **थोरं** इति सिद्धम्। **ताम्बूलम्।** ताम्बूल+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ऊकारस्य ओकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**तम्बोलं** इति सिद्धम्। **गुडूची।** गुडूची+सि। १०७ सू० आदेरुकारस्य अकारः, ऊकारस्योकारः, २०२ सू० डकारस्य लकारः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, सेर्लोपे—**गलोई** इति सिद्धम्। **मूल्यम्।** मूल्य+सि। १२४ सू० ऊकारस्य ओकारः, ३४६ सू० यकारस्य लोपः, लकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**मोल्लं** इति सिद्धम्।

१२५—स्थूणा। स्थूणा+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, १२५ सू० ऊकारस्य वैकल्पिकः ओकारः, सेर्लोपे—**थोणा-थूणा** इति सिद्धम्। **तूणः।** तूण+सि। १२५ सू० ऊकारस्य वैकल्पिकः ओकारः, ३४ सू० क्लीबत्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**तोणं, तूणं** इति सिद्धम्।

ऊकार के स्थान में होने वाले कार्य

स्वरों में उकार के अनन्तर ऊकार का स्थान आता है। इसी कारण उकार के स्थान में होने वाले कार्य दिखला कर अब सूत्रकार ऊकार के स्थान में होने वाले कार्यों का निर्देश करते हैं।

११८—सूक्ष्म शब्द के ऊकार को विकल्प से अकार होता है। जैसे—**सूक्ष्मम्**=सण्हं, सुण्हं (बारीक) यहां विकल्प से ऊकार को अकार किया गया है किन्तु ३ सूत्र से आर्ष प्राकृत में **सूक्ष्मम्** का **सुहुमं** यह रूप भी बन जाता है।

११९—दुकूल के ऊकार को विकल्प से अकार होता है और इस का सान्निध्य होने पर लकार द्वित्व हो जाता है। जैसे—**दुकूलम्**=दुअल्लं, दुऊलं, (रेशमी मिहीन वस्त्र, दुपट्टा) यहां पर ऊकार को विकल्प से अकार और लकार को द्वित्व हो गया। किन्तु आर्ष प्राकृत में **दुकूलम्** का **दुगुल्लं** ऐसा रूप भी बन जाता है।

१२०—**उद्व्यूढ** के ऊकार को विकल्प से ईकार होता है। जैसे—**उद्व्यूढम्**=उव्वीढं, उव्वूढं (धारण किया हुआ, पहना हुआ) यहां पर ऊकार को विकल्प से ईकार किया गया है।

१२१—**भ्रू, हनूमत्, कण्डूयति** और **वातूल** इन शब्दों के ऊकार को उकार हो जाता है। जैसे—१—**भ्रू**=भुमया (भौंह, आंख के ऊपर के रोम)। २—**हनूमत्**=हणुमन्तो (हनुमान्)। ३—**कण्डूयति**=कण्डुअइ (वह खुजलाता है)। ४—**वातूलः**=वाउलो (वात रोग से पीड़ित, उन्मत्त) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से ऊकार को उकार किया गया है।

१२२—**मधूक** शब्द के ऊकार को विकल्प से उकार होता है। जैसे—**मधूकम्**=महुअं, महूअं (महुए का फल) यहां विकल्प से ऊकार को उकार किया गया है।

१२३—**नूपुर** शब्द के ऊकार को विकल्प से इकार और एकार होता है। जैसे—**नूपुरम्**= निउरं, नेउरं। जहां प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई वहां पर **नूउरं** (स्त्री के पांव का आभूषण) यह रूप बनता है।

१२४—**कूष्माण्डी, तूणीर, कूर्पर, स्थूल, ताम्बूल, गुडूची** और **मूल्य** इन शब्दों के ऊकार को ओकार होता है। जैसे—१—**कूष्माण्डी**=कोहण्डी, कोहली (कोहंडे की बेल—पेठा) २—**तूणीरम्**= तोणीरं (तरकस)। ३—**कूर्परम्**=कोप्परं (कोंहनी, नदी का किनारा)। ४—**स्थूलम्**=थोरं (मोटा) ५—**ताम्बूलम्**=तम्बोलं (पान) ६—**गुडूची**=गलोई (लता—विशेष, गलोय) ७—**मूल्यम्**=मोल्लं (कीमत) इन शब्दों के ऊकार को ओकार किया गया है।

१२५—**स्थूणा** और **तूण** के ऊकार को विकल्प से ओकार होता है। जैसे—१—**स्थूणा**=थोणा, थूणा (खम्बा, खूंटी) २—**तूणम्**=तोणं, तूणं (तीर रखने का भाजन, तरकश) यहां विकल्प से ऊकार को ओकार हो गया है।

अथ ऋकार-विधिः—१

१२६—**ऋतोऽत् ८।१।१२६।** आदेर्ऋकारस्य अत्त्वं भवति। घृतं—घयं। तृणं—तणं। कृतं—कयं। वृषभः—वसहो। मृगः—मओ। घृष्टः—घट्ठो। दुहाइअमिति कृपादि-पाठात्।

१२७—**आत्कृशा-मृदुकमृदुत्वे वा ८।१।१२७।** एषु आदेर्ऋत आद् वा भवति। कासा, किसा। माउक्कं, मउअं। माउक्कं, मउत्तणं।

१२८—**इत्कृपादौ ८।१।१२८।** कृपा इत्यादिषु शब्देषु आदेर्ऋत इत्वं भवति। किवा। हियय। मिट्ठं रसे एव, अन्यत्र—मट्ठं। दिट्ठं। दिट्ठी। सिट्ठं। सिट्ठी। गिण्ठी। पिच्छी। भिऊ। भिङ्गो। भिंगारो। सिंगारो। सिआलो। घिणा। घुसिणं। विद्धकई। समिद्धी। इद्धी। गिद्धी। किसो। किसाणू। किसरा। किच्छं। तिप्पं। किसिओ। निवो। किच्चा। किई। धिई। किवो। किविणो। किवाणं। विञ्चुओ। वित्तं। वित्ती। हिअं। वाहित्तं। बिंहिओ। विसी। इसी। विइण्हो। छिहा। सइ। उक्किट्ठं। निसंसो। क्वचिन्न भवति—रिद्धी। कृपा। हृदय। मृष्ट। दृष्ट। दृष्टि। सृष्ट। सृष्टि। गृष्टि।

पृथ्वी । भृगु । भृंग । भृंगार श्रृंगार । श्रृगाल । घृणा । घुसृण । वृद्धकवि । समृद्धि । ऋद्धि । गृद्धि । कृश । कृशानु । कृशरा । कृच्छ्र । तृप्र । कृषित । नृप । कृत्या । कृति । धृति । कृप । कृपण । कृपाण । वृश्चिक । वृत्त । वृत्ति । हृत । व्याहृत । बृंहित । वृषी । ऋषि । वितृष्ण । स्पृहा । सकृत् । उत्कृष्ट । नृशंस ।

१२९—**पृष्ठे वानुत्तरपदे** ८।१।१२९। पृष्ठशब्देऽनुत्तरपदे ऋत इद् भवति वा । पिट्ठी, पट्ठी । पिट्ठि—परिट्ठविअं । अनुत्तरपद इति किम् ? महिवट्ठं ।

१३०—**मसृण-मृगाङ्क-मृत्यु-शृङ्ग—धृष्टे वा** ८।१।१३०। एषु ऋत इद् वा भवति । मसिणं, मसणं । मिअङ्को, मयङ्को । मिच्चू, मच्चू । सिंगं, संगं । धिट्ठो, धट्ठो ।

१३१—**उदृत्वादौ** ८।१।१३१। ऋतु इत्यादिषु शब्देषु आदेर्ऋत उद् भवति । उऊ । परामुट्ठो । पुट्ठो । पउट्ठो । पुहई । पउत्ती । पाउसो । पाउओ । भुई । पहुडि । पाहुडं । परहुओ । निहुअं । निउअं । विउअं । संवुअं । वुत्तन्तो । निव्वुअं । निव्वुई । वुन्दं । वुन्दावणो । वुड्ढो । वुड्ढी । उसहो । मुणालं । उज्जू । जामाउओ । माउओ । माउआ । भाउओ । पिउओ । पुहुवी । ऋतु, परामृष्ट, स्पृष्ट, प्रवृष्ट, पृथिवी, प्रवृत्ति, प्रावृष्, प्रावृत, भृति, प्रभृति, प्राभृत, परभृत, निभृत, निवृत, विवृत, संवृत, वृत्तान्त, निर्वृत, निर्वृति, वृन्द, वृन्दावन, वृद्ध, वृद्धि, ऋषभ, मृणाल, ऋजु, जामातृक, मातृक, मातृका, भ्रातृक, पितृक, पृथ्वी इत्यादि ।

अथ ऋकार-विधिः-१

प्राकृते ऋकारस्य स्थानेऽकारादेशो भवत्याहोस्विद् आकारादिकं जायते ?

प्रश्नमेतं समुत्तरत्याचार्यः ।

१२६—**घृतम्** । घृत+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-विशिष्टोऽकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः **घयं** इति सिद्धम् । **तृणम्** । तृण+सि । ऋकारस्य अकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **तणं** इति सिद्धम् । **कृतम्** । कृत+सि । ऋकारस्य अकारः, तकारस्य लोपः, यकारस्य श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**कयं** इति सिद्धम् । **वृषभः** । वृषभ+सि । ऋकारस्य अकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वसहो** इति सिद्धम् । **मृगः** । मृग+सि । ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**मओ** इति सिद्धम् । **घृष्टः** । घृष्ट+सि । ऋकारस्य अकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**घट्ठो** इति सिद्धम् । **द्विधाकृतम्** । द्विधाकृत+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, ९७ सू० इकारस्य उकारः, १८७ सू० धकारस्य

ह्कारः, १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः— **दुहाइअं** इति सिद्धम्। **दुहाइअमिति**। द्विधाकृतम्, इत्यत्र १२६ सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः, यतोहि कृत—शब्दस्य कृपादिगणे पाठो वर्तते तेन १२८ सूत्रेणात्र ऋकारस्य इकारो भवति।

१२७ कृशा। कृशा+सि। १२७ सू० ऋकारस्य वैकल्पिकः आकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे, **कासा**। यत्र आकारो न जातस्तत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, **किसा** इति भवति। **मृदुकम्**। मृदुक+सि। ऋकारस्य वैकल्पिकः आकारः,१७७ सू० दकारस्य लोपः, ३७० सू० ककारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**माउक्कं**। यत्र१२७ सू० ऋकारस्य आकारो न जातः तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० दकारस्य ककारस्य च लोपे **मउअं** इति भवति। **मृदुत्वम्**। मृदुत्व+सि। ऋकारस्य वैकल्पिकः आकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, २७३सू० त्वस्य "क" इत्यादेशः ३६०सू० ककारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**माउक्कं** यत्र आकारो न जातस्तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ४२५ सू० त्व-प्रत्ययस्य स्थाने "त्तण" इत्यादेशे, १७७ सू० दकारस्य लोपे पूर्ववदेव—**मउत्तणं** इति सिद्धम्।

१२८ कृपा। कृपा+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**किवा** इति सिद्धम्। **हृदयम्**। हृदय+सि। ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **हिययं** इति सिद्धम्। **मृष्टम्**। मृष्ट+सि। ऋकारस्य इकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **मिट्ठं**। यत्र रसार्थको मृष्ट-शब्दो न विद्यते तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारे पूर्ववदेव—**मट्ठं** इति भवति। **दृष्टम्**। दृष्ट+सि। ऋकारस्य इकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**दिट्ठं** इति सिद्धम्। **दृष्टिः**। दृष्टि+सि। ऋकारस्य इकारः, ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ५०८ सू० अन्तिमस्य इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**दिट्ठी** इति सिद्धम्। **सृष्टम्**। सृष्ट+सि। ऋकारस्य इकारः, ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सिट्ठं** इति सिद्धम्। **सृष्टिः**। सृष्टि+सि। ऋकारस्य इकारः, ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**सिट्ठी** इति सिद्धम्। **गृष्टिः**। गृष्टि+सि। ऋकारस्य इकारः, ष्टस्य ठकारः, २६ सू० प्रथमस्वरस्य आगमरूपोऽनुस्वारः, ३० सू० वर्गस्य अन्त्यो वर्णः, अन्तिमस्य इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे — **गिण्ठी** इति सिद्धम्। **पृथ्वी**। पृथ्वी+सि। ऋकारस्य इकारः, २८६ सू० थ्वस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्लोपे—**पिच्छी** इति सिद्धम्। **भृगुः**। भृगु+सि। ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**भिऊ** इति सिद्धम्। **भृङ्गः**। भृङ्ग+सि। ऋकारस्य इकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः ततः—**भिङ्गो** इति सिद्धम्। **भृङ्गारः**। भृङ्गार+सि। ऋकारस्य इकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**भिङ्गारो** इति सिद्धम्। **शृङ्गारः**। शृङ्गार+सि। ऋकारस्य इकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सिङ्गारो** इति सिद्धम्। **शृगालः**। शृगाल+सि। ऋकारस्य इकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सिआलो** इति सिद्धम्। **घृणा**। घृणा+सि। ऋकारस्य इकारः, सेर्लोपे—**घिणा** इति

सिद्धम् । **घुसृणम्** । घुसृण+सि । ऋकारस्य इकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यास्वारः, ततः—**घुसिणं** इति सिद्धम् । **वृद्धकविः** । वृद्धकवि+सि । ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**विद्ध-कई** इति सिद्धम् । **समृद्धिः** । समृद्धि+सि । ऋकारस्य इकारः, इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**समिद्धी** इति सिद्धम् । **ऋद्धिः** । ऋद्धि+सि । ऋकारस्य इकारः, अन्तिमस्य इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**इद्धी** इति सिद्धम् । **गृद्धिः** । गृद्धि+सि । ऋकारस्य इकारः, अन्तिमस्येकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**गिद्धी** इति सिद्धम् । **कृशः** । कृश+सि । ऋकारस्य इकारः । २६० सू० शकारस्य सकारः । सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**किसो** इति सिद्धम् । **कृशानुः** । कृशानु+सि । ऋकारस्य इकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**किसाणू** इति सिद्धम् । **कृशरा** । कृशरा+सि । ऋकारस्य इकारः, शकारस्य सकारः, सेर्लोपे—**किसरा** इति सिद्धम् । **कृच्छ्रम्** । कृच्छ्र+सि । ऋकारस्य इकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **किच्छं** इति सिद्धम् । **तृप्रम्** । तृप्र+सि । ऋकारस्य इकारः, रेफस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**तिप्पं** इति सिद्धम् । **कृषितः** । कृषित+सि । ऋकारस्य इकारः, षकारस्य सकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**किसिओ** इति सिद्धम् । **नृपः** । नृप+सि । ऋकारस्य इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**निवो** इति सिद्धम् । **कृत्या** । कृत्या+सि । ऋकारस्य इकारः । २८४ सू० त्यस्य चकारः, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे—**किच्चा** इति सिद्धम् । **कृतिः** । कृति+सि । ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**किई** इति सिद्धम् । **धृतिः** । धृति+सि । ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, अन्तिमस्य इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**धिई** इति सिद्धम् । **कृपः** । कृप+सि । ऋकारस्य इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**किवो** इति सिद्धम् । **कृपणः** । कृपण+सि । ऋकारस्य इकारः, पकारस्य वकारः, ४६ सू० आदेरकारस्य इकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**किविणो** इति सिद्धम् । **कृपाणः** । कृपाण+सि । ऋकारस्य इकारः, पकारस्य वकारः, ३४ सू० नपुंसकत्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**किवाणं** इति सिद्धम् । **वृश्चिकः** । वृश्चिक+सि । ऋकारस्य इकारः, २८७ सू० श्चेः स्थाने "ञ्चु" इत्यादेशः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **विञ्चुओ** इति सिद्धम् । **वृत्तम्** । वृत्त+सि । ऋकारस्य इकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वित्तं** इति सिद्धम् । **वृत्तिः** । वृत्ति+सि । ऋकारस्य इकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**वित्ती** इति सिद्धम् । **हृतम्** । हृत+सि । ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**हिअं** इति सिद्धम् । **व्याहृतम्** । व्याहृत+सि । ३४६ सू० यकारस्य लोपः, ऋकारस्य इकारः, ३७० सू० तकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वाहित्तं** इति सिद्धम् । **बृंहितम्** । बृंहित+सि । ऋकारस्य इकारः, तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**बिंहिओ** इति सिद्धम् । **वृषी** । वृषी+सि । ऋकारस्य इकारः, २६० सू० षकारस्य सकारे, सेर्लोपे—**विसी** इति सिद्धम् । **ऋषिः** । ऋषि+सि । ऋकारस्य इकारः, षकारस्य सकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपः, ततः—**इसी** इति सिद्धम् । **वितृष्णः** । वितृष्ण+सि । ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ३४६ सू० ष्णस्य स्थाने "ण्ह" इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः ततः—**विइण्हो** इति

सिद्धम् । **स्पृहा** । स्पृहा+सि । ऋकारस्य इकारः । २६४ सू० स्पस्य स्थाने छकारादेशः, सेर्लोपे—**छिहा** इति सिद्धम् । **सकृत्** । अव्ययपदमिदम् । ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ११ सू० तकारस्य लोपः, ततः—**सइ** इति सिद्धम् । **उत्कृष्टम्** । उत्कृष्ट+सि । ऋकारस्य इकारः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**उक्किट्ठं** इति सिद्धम् । **नृशंसः** । नृशंस+सि । ऋकारस्य इकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**निसंसो** इति सिद्धम् । **क्वचिन्नेति** । बहुलाधिकारात् क्वचिद् ऋकारस्य इकारादेशो न भवति । यथा—**ऋद्धिः** । ऋद्धि+सि । **बहुलाधिकारात्** १२८ सू० ऋकारस्य इकारो न जातः, किन्तु १४० सू० ऋकारस्य "रि" इत्यादेशः, ५०८ सू० अन्तिमस्य इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिद्धी** इति सिद्धम् ।

१२९ **पृष्ठम्** । पृष्ठ+सि । १२९ सू० ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारः, यत्र इकारो न जातस्तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम् । ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ४६ सू० अन्त्याकारस्य इकारः, ५०८ सू० अन्त्यस्य इकारस्य दीर्घः, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**पिट्ठी, पट्ठी** इति सिद्धम् । **पृष्ठपरिस्थापितम्** । पृष्ठे परिस्थापितं पृष्ठपरिस्थापितं । पृष्ठपरिस्थापित+सि । ऋकारस्य इकारः, षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ४६ सू० अकारस्य इकारः, ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने "ठा" इत्यादेशः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ६७ सू० आकारस्य अकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **पिट्ठि-परिट्ठविअं** इति सिद्धम् । **अनुत्तरपदे इति किम्** । यदि पृष्ठशब्दः कस्यचित् पदस्य पुरोवर्ती भवेत्तदा तस्य ऋकारस्य इकारो न भवति । यथा—**मही-पृष्ठम्** । मह्याः पृष्ठं महीपृष्ठं । महीपृष्ठ+सि । पकारस्य वकारः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ४ सू० ईकारस्य ह्रस्वः, षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **महिवट्ठं** इति सिद्धम् । अत्र पृष्ठशब्दस्य उत्तरपदत्वात् १२९ सू० ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारो न जातः ।

१३० **मसृणम्** । मसृण+सि । १३० सू० ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारः, यत्र इकारो न जातस्तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**मसिणं, मसणं** इति सिद्धम् । **मृगाङ्कः** । मृगाङ्क+सि । ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **मिअङ्को** । यत्र इकारो न जातस्तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, गकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टः अकारः, **मयङ्को** इति सिद्धम् । **मृत्युः** । मृत्यु+सि । ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारः, २८४ सू० त्यस्य चकारः, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वम्, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**मच्चू, मिच्चू** इति सिद्धम् । **भृङ्गम्** । भृङ्ग+सि । ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सिङ्गं, सङ्गं** इति सिद्धम् । **धृष्टः** । धृष्ट+सि । ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**धिट्ठो**; यत्र इकारो न जातस्तत्र—**धट्ठो** इति भवति ।

१३१ **ऋतुः** । ऋतु+सि । १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू०

अन्तिमस्य उकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपः, ११ सू० सकारस्य लोपः, **उऊ** इति सिद्धम्। **परामृष्टः**। परामृष्ट+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**परामुट्ठो** इति सिद्धम्। **स्पृष्टः**। स्पृष्ट+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**पुट्ठो** इति सिद्धम्। **प्रवृष्टः**। प्रवृष्ट+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**पउट्ठो** इति सिद्धम्। **पृथिवी**। पृथिवी+सि। ऋकारस्य उकारः, १८७ सू० थकारस्य हकारः, वकारस्य लोपः, ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारः, सेर्लोपे **पुहई** इति सिद्धम्। **प्रवृत्तिः**। प्रवृत्ति+सि। रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, वकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, ततः—**पउत्ती** इति सिद्धम्। **प्रावृट्**। प्रावृष्+सि। रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, वकारस्य लोपः, १६ सू० षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**पाउसो** इति सिद्धम्। **प्रावृतः**। प्रावृत+सि। रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, वकारस्य तकारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, तत—**पाउओ** इति सिद्धम्। **भृतिः**। भृति+सि। ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**भुई** इति सिद्धम्। **प्रभृतिः**। प्रभृति+सि। रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, सेर्लोपे—**पाहुडि** इति सिद्धम्। **प्राभृतम्**। प्राभृत+सि। रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, भकारस्य हकारः, तकारस्य डकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**पाहुडं** इति सिद्धम्। **परभृतः**। परभृत+सि। ऋकारस्य उकारः, भकारस्य हकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**परहुओ** इति सिद्धम्। **निभृतम्**। निभृत+सि। ऋकारस्य उकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः **निहुअं** इति सिद्धम्। **निवृतम्**। निवृत+सि। ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० वकारस्य तकारस्य च लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**निउअं** इति सिद्धम्। **विवृतम्**। विवृत+सि। ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० वकारस्य तकारस्य च लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**विउअं** इति सिद्धम्। **संवृतम्**। संवृत+सि। ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**संवुअं** इति सिद्धम्। **वृत्तान्तः**। वृत्तान्त+सि। ऋकारस्य उकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वुत्तन्तो** इति सिद्धम्। **निर्वृतम्**। निर्वृत+सि। ऋकारस्य उकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**निव्वुअं** इति सिद्धम्। **निर्वृत्तिः**। निर्वृत्ति+सि। ऋकारस्य उकारः, रेफस्य लोपः, वकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **निव्वुई** इति सिद्धम्। **वृन्दम्**। वृन्द+सि। ऋकारस्य उकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वुन्दं** इति सिद्धम्। **वृन्दावनः**। वृन्दावन+सि। ऋकारस्य उकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वुन्दावणो** इति सिद्धम्। **वृद्धः**। वृद्ध+सि। ऋकारस्य उकारः, ३११ सू० संयुक्तस्य द्ध इत्यस्य ढकारः, ३६० सू० ढकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वुड्ढो** इति सिद्धम्। **वृद्धिः**। वृद्धि+सि।

ऋकारस्य उकारः, 'द्ध' इत्यस्य ढकारः, ३६० सू० ढकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः **वुड्ढी** इति सिद्धम्। **ऋषभः**। ऋषभ+सि। ऋकारस्य उकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**उसहो** इति सिद्धम्। **मृणालम्**। मृणाल+सि। ऋकारस्य उकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**मुणालं** इति सिद्धम्। **ऋजुः**। ऋजु+सि। ऋकारस्य उकारः, ३७० सू० जकारस्य द्वित्वम्, ५०८ सू० अन्तिमस्य उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**उज्जू** इति सिद्धम्। **जामातृकः**। जामातृक+सि। ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **जामाउओ** इति सिद्धम्। **मातृकः**। मातृक+सि। ऋकारस्य उकारः, तकारस्य ककारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**माउओ** इति सिद्धम्। यत्र **मातृका**—शब्दः तत्र तु मातृका+सि पूर्ववदेव—**माउआ+सि** इति जाते, सेर्लोपे—**माउआ** इति सिद्धम्। **भ्रातृकः**। भ्रातृक+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, तकारस्य ककारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**भाउओ** इति सिद्धम्। **पितृकः**। पितृक+सि। ऋकारस्य उकारः, तकारस्य ककारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**पिउओ** इति सिद्धम्। **पृथ्वी**। पृथ्वी+सि। ऋकारस्य उकारः, ३८४ सू० अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वसंयुक्तस्य उकारागमः, १८७ सू० थकारस्य हकारः, सेर्लोपे—**पुहुवी** इति सिद्धम्।

ऋकार के स्थान पर होने वाले कार्य [१]

प्राकृत-भाषा में ऋकार के स्थान में अकार होता है या आकार आदि अन्य वर्णों का आदेश होता है? प्रस्तुत प्रकरण में इसी प्रश्न को लेकर प्रकाश डाला गया है।

१२६—शब्द के आदिम ऋकार को अकार होता है जैसे—१—**घृतम्**=घयं (घी) २—**तृणम्**=तणं (तिनका) ३—**कृतम्**=कयं (किया) ४—**वृषभः**=वसहो (बैल) ५—**मृगः**=मओ (हरिण) ६—**घृष्टः**=घट्ठो (घिसा हुआ) इन शब्दों के ऋकार को अकारादेश किया गया है ७—**द्विधा कृतम्**=दुहा इअं (दो तरह से किया हुआ) इस शब्द की सिद्धि तो कृपादि शब्दों की तरह १२८ सूत्र द्वारा हो जाती है। कृपादि गण में **कृतम्=इअं**" यह शब्द भी मिलता है।

१२७—**कृशा, मृदुक और मृदुत्व** के आदिम ऋकार को विकल्प से आकार होता है। जैसे—१—**कृशा**=कासा, किसा (दुर्बल स्त्री) २—**मृदुकम्**=माउक्कं, मउअं (कोमल) ३—**मृदुत्वम्**=माउक्कं, मउत्तणं (कोमलता) यहां पर ऋकार को विकल्प से आकार किया गया है।

१२८—**कृपा** आदि शब्दों के आदिम ऋकार को इकार हो जाता है। जैसे—१—**कृपा**=किवा (दया, मेहरबानी) २—**हृदयम्**=हियंयं (अन्तःकरण) ३—**मृष्टम्**=मिट्ठं (रस)। मृष्ट शब्द यदि रस-वाचक हो तभी इस के ऋकार को इकार होता है, अन्यथा नहीं। जैसे—**मृष्टम्**=मट्ठं (शुद्ध, चिकना) यहां मृष्ट शब्द रसार्थक नहीं है अतः इस सूत्र से ऋकार को इकार नहीं हो सका। ४—**दृष्टम्**=दिट्ठं (देखा हुआ) ५—**दृष्टिः**=दिट्ठी (नज़र) ६—**सृष्टम्**=सिट्ठं (जिस की रचना की गई है) ७—**सृष्टिः**=सिट्ठी (रचना) ८—**गृष्टिः**=गिट्ठी, गट्ठी (एक बार ब्याई हुई गाय) ६—**पृथ्वी**=पिच्छी (ज़मीन)

१०—**भृगुः**=भिऊ (भृगु नाम का ऋषि) ११—**भृङ्गः**=भिङ्गो (भंवर, स्वर्णमय पात्र) १२—**भृङ्गारः**=भिङ्गारो (भ्रमर) १३—**शृङ्गारः**=सिङ्गारो (सजावट, काव्य का प्रसिद्ध एक रस) १४—**शृगालः**=सिम्रालो (गीदड़) १५—**घृणा**=घिणा (नफरत) १६—**घुसृणम्**=घुसिणं (केसर) १७—**वृद्धकविः**=विद्ध-कई (बूढ़ा कवि) १८—**समृद्धिः**=समिद्धी (धन-सम्पत्ति) १९—**ऋद्धिः**=इद्धी (वैभव, ऐश्वर्य) २०—**गृद्धिः**=गिद्धी (आसक्ति) २१—**कृशः**=किसो (दुर्बल) २२—**कृशानुः**=किसाणू (आग, तीन की संख्या, वृक्षविशेष) २३—**कृशरा**=किसरा (खिचड़ी) २४—**कृच्छ्रम्**=किच्छं (दुःख, कष्ट) २५—**तृप्तम्**=तिप्पं (संतुष्ट) २६—**कृषितः**=किसिओ (खींचा हुआ, जोता हुआ) २७—**नृपः**=निवो (राजा) २८—**कृत्या**=किच्चा (क्रिया, महामारी का रोग) २९—**कृतिः**=किई (क्रिया, रचना) ३०—**धृतिः**=धिई (धैर्य) ३१—**कृपः**=किवो (कृपाचार्य) ३२—**कृपणः**=किविणो (कंजूस) ३३—**कृपाणम्**=किवाणं (तलवार) ३३—**वृश्चिकः**=विञ्चुओ (बिच्छू) ३४—**वृत्तम्**=वित्तं (वृत्ति, चुना हुआ, छांटा हुआ) ३५—**वृत्तिः**=वित्ती (जीविका, निर्वाह-साधन) ३६—**हृतम्**=हिअं (हरण किया हुआ) ३७—**व्याहृतम्**=वाहित्तं (उक्त, कथित) ३८—**बृंहितः**=बिंहिओ (उगा हुआ, गरजता हुआ, बढ़ा हुआ) ३९—**वृषी**=विसी (ऋषि का आसन) ४०—**ऋषिः**=इसो (मुनि) ४१—**वितृष्णः**=विइण्हो (तृष्णा से रहित) ४२—**स्पृहा**=छिहा (इच्छा) ४३—**सकृत्**=सइ (एक बार) ४४—**उत्कृष्टम्**=उक्किट्ठं उत्तम) ४५—**नृशंसः**=निसंसो (क्रूर, निर्दयी) इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र द्वारा आदिम ऋकार को इकार किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण—**ऋद्धिः=रिद्धी** यहां पर ऋकार को इकारादेश नहीं हो सका।

१२९—**पृष्ठ** शब्द यदि किसी अन्य शब्द के अन्त में स्थित न हो तो उस के ऋकार को विकल्प से इकार हो जाता है। जैसे—१—**पृष्ठिः**=पिट्ठी, पट्ठी (पीठ) २—**पृष्ठ-परिस्थापितम्**=पिट्ठि-परिट्ठविअं (पीठ पर स्थापित किया हुआ) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से ऋकार को विकल्प से इकार किया गया है। **अनुत्तरपदे** का अर्थ है—जो पद उत्तर-आगे न हो वह अनुत्तरपद कहलाता है। यह पृष्ठ का विशेषण है। भाव यह है कि पृष्ठ शब्द किसी से आगे नहीं होना चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि यह कहने की क्या आवश्यकता थी? उत्तर में वृत्तिकार फरमाते हैं कि **महीपृष्ठम्**=महिवट्ठं (पृथ्वी का तल) में पृष्ठ शब्द मही शब्द के आगे स्थित है यहां ऋकार को इकार न हो जाए अतः सूत्रकार ने **अनुत्तरपदे** इस पद का उल्लेख किया है। यह न कहते तो यहां भी ऋकार को इकार हो जाता, जोकि इष्ट नहीं है।

१३०—**मसृण, मृगाङ्क, मृत्यु, शृङ्ग** और **धृष्ट** इन शब्दों के ऋकार को विकल्प से इकार होता है। जैसे-१—**मसृणम्**=मसिणं, मसणं (स्निग्ध, चिकना, सुकोमल) २—**मृगाङ्कः**=मिअङ्को, मयङ्को (चन्द्रमा) ३—**मृत्युः**=मिच्चू, मच्चू (मौत) ४—**शृङ्गम्**=सिङ्गं, सङ्गं (सींग) ५—**धृष्टः**=धिट्ठो, धट्ठो (ढीठ) यहां ऋकार को विकल्प से इकार किया गया है।

१३१—**ऋतु** आदि शब्दों के आदिम ऋकार को उकार होता है। जैसे-१—**ऋतुः**=उऊ (दो मास का कालविशेष) २—**परामृष्टः**=परामुट्ठो (स्पष्ट किया हुआ, विचारित) ३—**स्पृष्टः**=पुट्ठो (छुआ हुआ) ४—**प्रवृष्टः**=पउट्ठो (बरसा हुआ) ५—**पृथिवी**=पुहई (जमीन) ६—**प्रवृत्तिः**=पउत्ती समाचार, कार्य) ७—**प्रावृष्** (प्रावृट्)=पाउसो (वर्षा ऋतु) ८—**प्रावृतः**=पाउओ (आच्छादित, ढका हुआ)

९—**भृतिः**=भुई (भरण, पोषण, वेतन) १०—**प्रभृति**-=पहुडि (आदि) ११—**प्राभृतम्**=पाहुडं (उपहार, भेंट) १२—**परभृतः**=परहुओ (कोयल) १३—**निभृतम्**=निहुअं (उपशान्त, प्रच्छन्न) १४—**निवृतम्**=निउअं (परिवेषित, घेरा हुआ) १५—**विवृतम्**=विउअं (विस्तृत, व्याख्यात) १६—**संवृतम्**=संवुअं (गुप्त-स्थान) १७—**वृत्तान्तः**=वुत्तन्तो (समाचार, हकीकत) १८—**निर्वृतम्**=निव्वुअं (पूरा किया हुआ, निष्पन्न) १९—**निर्वृत्तिः**=निव्वुई (समाप्ति) २०—**वृन्दम्**=वुन्दं (समूह) २१—**वृन्दावनः**=वुन्दावणं (मथुरा के पास का नगर, स्थान विशेष) २२—**वृद्धः**=वुड्ढो (बूढ़ा) २३—**वृद्धिः**=वुड्ढी (तरक्की) २४—**ऋषभः**=उसभो (भगवान आदिनाथ) २५—**मृणालम्**=मुणालं (पद्म) २६—**ऋजुः**=उज्जू (सरल) २७—**जामातृकः**=जामाउओ (दामाद) २८—**मातृकः**=माउओ (मातासम्बन्धी, स्वर आदि मूलवर्ण) २९—**मातृका**=माउआ (माता-सम्बन्धिनी) ३०—**भ्रातृकः**=भाउओ (भाई सम्बन्धी) ३१—**पितृकः**=पिउओ (पिता से सम्बन्धित) ३२—**पृथ्वी**=पुहुवी (जमीन) यहां पर आदिम ऋकार को उकार किया गया है।

अथ ऋकार-विधिः-२

१३२—**निवृत्त-वृन्दारके वा** ।८।१।१३२। अनयोर्ऋत उद् वा भवति। निवुत्तं, निअत्तं। वुन्दारया, वन्दारया।

१३३—**वृषभे वा वा** ।८।१।१३३। वृषभे ऋतो वेन सह उद् वा भवति। उसहो-वसहो।

१३४—**गौणान्त्यस्य** ।८।१।१३४। गौण—शब्दस्य योन्त्य ऋत् तस्य उद् भवति। माउ-मण्डलं।* माउहरं। पिउहरं। माउ-सिआ। पिउ-सिआ। पिउ-वणं। पिउ-वई।

१३५—**मातुरिद्वा** ।८।१।१३५। मातृशब्दस्य गौणस्य ऋत इद् वा भवति। माइ-हरं, माउ-हरं। क्वचिद् गौणस्यापि-माईणं।

१३६—**उदूदोन्मृषि** ।८।१।१३६। मृषा शब्दे ऋत उत्, ऊत्, ओच्च भवन्ति। मुसा, मूसा, मोसा। मुसा-वाओ, मूसा-वाओ, मोसा-वाओ।

१३७—**इदुतौ वृष्ट-वृष्टि-पृथङ्-मृदङ्ग-नप्तृके** ।८।१।१३७। एषु ऋत इकारो-कारौ भवतः। विट्ठो, वुट्ठो। विट्ठी, वुट्ठी। पिहं, पुहं। मिइङ्गो, मुइङ्गो। नत्तिओ, नत्तुओ।

१३८—**वा बृहस्पतौ** ।८।१।१३८। बृहस्पतिशब्दे ऋत इदुतौ वा भवतः। बिहप्फई, बुहप्फई। पक्षे—बहप्फई।

---

*गौणः अप्रधानः इत्यर्थः। मातुः मण्डलं—मातृमण्डलम् इत्यत्र मातृशब्दः गौणः-अमुख्यो वर्तते। तेनैव अत्र ऋकारस्य उकारो जातः। यत्र ऋकारान्तः शब्दः गौणो भवति तत्रैव प्रस्तुतसूत्रेण ऋकारस्य उकार भवति, नान्यत्र।

१३९—इदेदोद्वृन्ते ।८।१।१३९। वृन्तशब्दे ऋत इत् एत् ओच्च भवन्ति । विण्टं, वेण्टं, वोण्टं ।

१४०—रिः केवलस्य ।८।१।१४०। केवलस्य व्यञ्जनेनासंपृक्तस्य ऋतो रिरादेशो भवति । रिद्धी । रिच्छो ।

१४१—ऋणर्ज्वृषभर्त्वृषौ वा ।८।१।१४१। ऋण-ऋजु-ऋषभ-ऋतु-ऋषिषु ऋतो रिर्वा भवति । रिणं, अणं । रिज्जू, उज्जू । रिसहो, उसहो । रिऊ, उऊ । रिसी, इसी ।

१४२—दृशः क्विप्-टक्सकः ।८।१।१४२। क्विप्-टक्-सक् इत्येतदन्तस्य दृशेर्धातोऋतो रिरादेशो भवति । सदृक्-सरिवण्णो । सरिरूवो सरि-बन्दीणं । सदृशः-सरिसो । सदृक्षः-सरिच्छो । एवं-एआरिसो । भवारिसो । जारिसो । तारिसो । केरिसो । एरिसो । अन्नारिसो । अम्हारिसो । तुम्हारिसो । टक्सक्साहचर्यात् त्यदाद्यन्यादि (५-१-१५२) सूत्रविहितः क्विबिह गृह्यते ।

१४३—आदृते ढिः ।८।१।१४३। आदृत-शब्दे ऋतो ढिरादेशो भवति । आढिओ ।

१४४—अरिर्दृप्ते ।८।१।१४४। दृप्तशब्दे ऋतोरिरादेशो-भवति । दरिओ । दरिअसीहेण ।

अथ ऋकार-विधिः—२

१३२—**निवृत्तम्** । निवृत्त+सि । १३२ सू० ऋकारस्य वैकल्पिकः उकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—निवुत्तं, यत्र उकारो न जातस्तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपे—**निअत्तं** इति सिद्धम् । **वृन्दारकाः** । वृन्दारक+जस् । ऋकारस्य वैकल्पिकः उकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घः, ततः—**वुन्दारया**, यत्र उकारो न जातस्तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारे **वन्दारया** इति सिद्धम् ।

१३३—**वृषभः** । वृषभ+सि । १३३ सू० ऋकारस्य वकारेण सह वैकल्पिकः उकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**उसहो**, यत्र उकारो न जातस्तत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारे—**वसहो** इति सिद्धम् ।

१३४—**मातृमण्डलम्** । मातृमण्डल+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपः, १३४ सू० ऋकारस्य-उकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**माउमण्डलं** इति सिद्धम् । **मातृगृहम्** । मातुः गृहं—मातृगृहं । मातृगृह+सि । १३४ सू० ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४१५ सू० गृहस्य "घर" इत्यादेशः, १८७ सू० घकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः **माउहरं** इति सिद्धम् । **पितृगृहम्** । पितुः गृहं पितृगृहम् । पितृगृह+सि । **पिउहरं** इति **माउहरं** वदेव साध्यम् । **मातृष्वसा** । मातुः स्वसा मातृष्वसा । मातृष्वस्+सि । १३४ सू० ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४१३ सू० स्वसृशब्दस्य "**सिआ**" इत्यादेशः, सेर्लोपे—**माउसिआ** इति सिद्धम् । **पितृष्वसा** । पितुः

स्वसा पितृष्वसा। पितृष्वस्+सि। ऋकारस्य उकारः, तकारस्य लोपः, स्वसृशब्दस्य सिआ इत्यादेशः, सेर्लोपे—**पिउसिआ** इति सिद्धम्। **पितृवनम्**। पितुः वनं पितृवनं। पितृवन+सि। ऋकारस्य उकारः, तकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**पिउवणं** इति सिद्धम्। **पितृपतिः**। पितुः पतिः पितृपतिः। पितृपति+सि। ऋकारस्य उकारः, तकारस्य लोपः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० द्वितीयतकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**पिउ-वई** इति सिद्धम्।

१३५—मातृगृहम्। मातृगृह+सि। १३५ सू० ऋकारस्य वैकल्पिकः इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४१५ सू० गृहस्य "घर" इत्यादेशः, १८७ सू० घकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**माइ-हरं** यत्र इकारो न जातः तत्र **माउ-हरं** इति भवति, तत् १३४ सूत्रे साधितमेव। **क्वचिद् गौणस्यापि**। प्रस्तुतसूत्रेण गौणस्य मातृशब्दस्य ऋकारस्य वैकल्पिक इकारो भवति किन्तु बहुलाधिकारात् क्वचिद् अगौणस्य मुख्यस्यापि मातृशब्दस्य ऋकारस्य इकारो जायते। यथा—**मातृणाम्**। मातृ+आम्। तकारस्य लोपः, बहुलाधिकारात् १३५ सू० अगौणस्यापि (प्रधानस्यापि) मातृशब्दस्य ऋकारस्य इकारः, ४६५ सू० आम्-प्रत्ययस्य "ण" इत्यादेशः, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घः, २७ सू० णकारस्यान्ते अनुस्वारागमः, ततः—**माईणं** इति सिद्धम्।

१३६—मृषा।मृषा+सि। १३६ सू० ऋकारस्यउकारः, ऊकारः ओकारश्च, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्लोपे—**मुसा, मूसा, मोसा** इति सिद्धम्। **मृषावादः**। मृषावाद+सि। ऋकारस्य उकारः, ऊकारः ओकारश्च जातः, षकारस्य सकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**मुसावाओ, मूसावाओ, मोसावाओ** इति सिद्धम्।

१३७—वृष्टः। वृष्ट+सि। १३७ सू० ऋकारस्य इकारः उकारश्च, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**विट्ठो-वुट्ठो** इति सिद्धम्। **वृष्टिः**। वृष्टि+सि। ऋकारस्य इकारः उकारश्च, ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**विट्ठी-वुट्ठी** इति सिद्धम्। **पृथक्**। अव्ययपदमिदम्। ऋकारस्य इकारः उकारश्च, १८७ सू० थकारस्य हकारः, २४ सू० ककारस्य मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, **पिहं, पुहं** इति सिद्धम्। **मृदङ्गः**। मृदङ्ग+सि। ऋकारस्य इकारः उकारश्च, १७७ सू० दकारस्य लोपः ४६ सू० आदेरकारस्य इकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**मिइङ्गो, मुइङ्गो** इति सिद्धम्। **नप्तृकः**। नप्तृक+सि। ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ऋकारस्य इकारः उकारश्च, तकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **नत्तिओ, नत्तुओ** इति सिद्धम्।

१३८—बृहस्पतिः। बृहस्पति+सि। १३८ सू० ऋकारस्य वैकल्पिकौ इकारोकारौ, ३२४ सू० स्पस्य फकारः, ३६० सू० फकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**बिहप्फई बुहप्फई**। **पक्षे**। सूत्रप्रवृत्त्यभावपक्षे। यत्र इकारः उकारश्च न जातः तत्र—**बहप्फई** इति भवति।

१३९—वृन्तम्। वृन्त+सि। ३०२ सू० संयुक्तस्य न्तस्य "ण्ट" इत्यादेशः, १३९ सू० ऋकारस्य इकारः, एकारः ओकारश्च, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**विण्टं, वेण्टं, वोण्टं** इति सिद्धम्।

१४०—**ऋद्धिः**। ऋद्धि+सि। १४० सू० व्यञ्जनेन असंयुक्तस्य (व्यंजन-रहितस्य) ऋकारस्य "रि" इत्यादेशः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिद्धी** इति सिद्धम्। **ऋक्षः**। ऋक्ष+सि। ऋकारस्य रि इत्यादेशः, २९० सू० क्षस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—रिच्छो इति सिद्धम्।

१४१—**ऋणम्**। ऋण+सि। १४१ सू० ऋकारस्य वैकल्पिकः रि इत्यादेशः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**रिणं** यत्र रि इत्यादेशो न जातः तत्र—**अणं** इति भवति, अत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारो जातः। **ऋजुः**। ऋजु+सि। ऋकारस्य वैकल्पिकः रि इत्यादेशः, ३७० सू० जकारस्य द्वित्वम्, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिज्जू** यत्र रि इत्यादेशो न जातस्तत्र १३१ सू० ऋकारस्य उकारे **उज्जू** इति भवति। **ऋषभः**। ऋषभ+सि। ऋकारस्य वैकल्पिकः रि इत्यादेशः, २९० सू० षकारस्य सकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**रिसहो**। यत्र रि इत्यादेशो न जातस्तत्र **उसहो** इति भवति। अत्र ऋकारस्य उकारो जातः। **ऋतुः**। ऋतु+सि। ऋकारस्य वैकल्पिकः रि इत्यादेशः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिऊ** यत्र रि इत्यादेशो न जातस्तत्र **उऊ** इति भवति। अत्र ऋकारस्य उकारो जात। **ऋषिः**। ऋषि+सि। ऋकारस्य वैकल्पिकः रि इत्यादेशः, षकारस्य सकारः, इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिसी**, यत्र रि इत्यादेशो न जातस्तत्र **इसी** इति सिद्धम्। अत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारो जातः।

१४२—**सदृग्वर्णः**। सदृशो वर्णो यस्य स सदृग्वर्णः। सदृग्वर्ण+सि। १४२ सू० दृशेः ऋकारस्य रि इत्यादेशः, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, ११ सू० गकारस्य लोपः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सरि-वण्णो** इति सिद्धम्। **सदृग्रूपः**। सदृग् रूपं यस्य स सदृग्रूपः। सदृग्रूप+सि। ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, गकारस्य लोपः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सरिरूवो** इति सिद्धम्। **सदृग्-वन्दिनाम्**। सदृशश्च ते वन्दिनः, सदृग्वन्दिनः, तेषां। सदृग्वन्दिन्+आम्। १४२ सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, गकारस्य नकारस्य च लोपः, ४९५ सू० आम्-प्रत्ययस्य ण इत्यादेशः, ५०१ सू० पूर्वस्य इकारस्य दीर्घः, २७ सू० णकारस्य अनुस्वारागमः, ततः—**सरि-वन्दीणं** इति सिद्धम्। **सदृशः**। सदृश+सि। ऋकारस्य रि इत्यादेशः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सरिसो** इति सिद्धम्। **सदृक्षः**। सदृक्ष+सि। ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, २८८ सू० क्षस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सरिच्छो** इति सिद्धम्। **एतादृशः**। एतादृश+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**एआरिसो** इति सिद्धम्। **भवादृशः**। भवादृश+सि। ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**भवारिसो** इति सिद्धम्। **यादृशः**। यादृश+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**जारिसो** इति सिद्धम्। **तादृशः**। तादृश+सि। ऋकारस्य रि इत्यादेशः। दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**तारिसो** इति सिद्धम्। **कीदृशः**। कीदृश+सि। १०५ सू० आदेरीकारस्य एकारः, ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः,

डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**केरिसो** इति सिद्धम्। **ईदृशः**। ईदृश+सि। आदेरीकारस्य एकारः, ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**एरिसो** इति सिद्धम्। **अन्यादृशः**। अन्यादृश+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वम्, ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**अन्नारिसो** इति सिद्धम्। **अस्मादृशः**। अस्मादृश+सि। ३४५ सू० स्म इत्यस्य "म्ह" इत्यादेशः, ऋकारस्य रि इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**अम्हारिसो** इति सिद्धम्। **युष्मादृशः**। युष्मादृश+सि। २४६ सू० यकारस्य तकारः, ष्म इत्यस्य म्ह इत्यादेशः, ऋतो रि इत्यादेशः, शकारस्य सकारः, दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**तुम्हारिसो** इति सिद्धम्। **टक्-सक्-साहचर्यादिति**। हैमशब्दानुशासनस्य ।५।१।१५२। सूत्रेण "त्यदादिभ्य उपमानेभ्यो व्याप्येभ्यः पराद् दृशेः व्याप्य एव टक्-सकौ क्विप् च स्युः" एतद् विधीयते। अत्र टक्-सक्-क्विप्-प्रत्ययानां त्रयाणामेव विधानं कृतमस्ति, प्रस्तुत-सूत्रेऽपि क्विबादि-प्रत्ययानां त्रयाणां संग्रहणं वर्तते। अतएव वृत्तिकारो भणति यत् टक्-सक्-प्रत्यययोः साहचर्यात्-सहवर्तित्वात् ।५।१।१५२। सूत्रेण विहितः क्विप्-प्रत्यय एवात्र गृह्यते, नान्यः। अयं भावः, त्यदादिसहितस्य दृश्-धातोर्यदि क्विप्-प्रत्ययः कृतो भवेत्तदैव दृश्-धातोरिकारस्य रि इत्यादेशो भवति, नान्यथा।

१४३—आदृतः। आदृत+सि। १४३ सू० ऋकारस्य ढि इत्यादेशः, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**आढिओ** इति सिद्धम्।

१४४—दृप्तः। दृप्त+सि। १४४ सू० ऋकारस्य अरि इत्यादेशः, ३४८ सू० पकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**दरिओ** इति सिद्धम्। **दृप्त-सिंहेन**। दृप्तश्चासौ सिंहः दृप्तसिंहः, तेन। दृप्तसिंह+टा। ऋकारस्य अरि इत्यादेशः, पकारस्य लोपः, तकारस्य लोपः, २९ सू० अनुस्वारस्य लोपः, ९२ सू० इकारस्य दीर्घः, ४९५ सू० टा—प्रत्ययस्य ण इत्यादेशः, ५०३ सू० पूर्वाकारस्य एकारः, ततः—**दरिअ-सीहेण** इति सिद्धम्।

ऋकार के स्थान होने वाले कार्य [२]

१३२—निवृत्त और **वृन्दारक** शब्द के ऋकार को विकल्प से उकार होता है। जैसे—१—**निवृत्तम्**=निवुत्तं, निअत्तं (हटा हुआ, प्रवृत्ति-विमुख), २—**वृन्दारकाः**=वुन्दारया, वन्दारया (मनोहर, मुख्य) यहां विकल्प से ऋकार को उकार किया गया है।

१३३—वृषभ शब्द के ऋकार को वकार के साथ विकल्प से उकार होता है। जैसे—**वृषभः**= उसहो, वसहो (बैल) यहां पर विकल्प से ऋकार को वकार के स्थान में उकार किया गया है।

१३४—गौण दशा को प्राप्त ऋकारान्त शब्द के ऋकार को उकार होता है। जैसे—१—**मातृमण्डलम्**=माउमण्डलं (माताओं का समूह) २—**मातृगृहम्**=माउहरं (माता का घर) ३—**पितृगृहम्**=पिउहरं (पिता का घर) ४—**मातृष्वसा**=माउसिआ (माता की बहिन, मासी) ५—**पितृष्वसा** पिउसिआ (पिता की बहिन, भूआ) ६—**पितृवनम्**=पिउवणं (पिता का वन) ७—**पितृपतिः**=पिउवई (पिता का स्वामी) यहां तत्पुरुष समास होने से ऋकारान्त मातृ और पितृ शब्द गौण दशा को प्राप्त हो रहे हैं। अतः इन के ऋकार को उकार किया गया है।

१३५—गौण दशा को प्राप्त मातृशब्द के ऋकार को विकल्प से इकार होता है जैसे—१—

मातृगृहम्=माइहरं, माउहरं (माता का घर), यहां तत्पुरुष-समास के कारण मातृ-शब्द गौण है। मातृ-शब्द का अपना कोई स्वतन्त्र अर्थ नहीं है। अतः यहां प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से ऋकार को इकार किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर अगौण (जो गौणता को प्राप्त न हो) मातृ-शब्द के ऋकार को भी इकार हो जाता है। जैसे—**मातृणाम्**=माईणं (माताओं की)। यहां मातृ-शब्द गौण नहीं है, तथापि बहुलता से इस के ऋकार को इकार हो गया है।

१३६—**मृषा** शब्द के ऋकार को उकार, ऊकार और ओकार होता है। जैसे—१—**मृषा**=मुसा, मूसा, मोसा (झूठ), २—**मृषावादः**=मुसावाओ, मूसावाओ, मोसावाओ (झूठ बोलना)। यहां पर ऋकार को उकार, ऊकार और ओकार किया गया है।

१३७—**वृष्ट, वृष्टि, पृथक्, मृदङ्ग** और नप्तृक इन शब्दों के ऋकार को इकार और उकार होता है। जैसे—१—**वृष्टः**=विट्ठो, वुट्ठो (बरसा हुआ), २—**वृष्टिः**=विट्ठी, वुट्ठी (वर्षा) ३—**पृथक्**=पिहं, पुहं (अलग), ४—**मृदङ्गः**=मिइङ्गो, मुइङ्गो (मृदङ्ग) ५—**नप्तृकः**=नत्तिओ, नत्तुओ (पौत्र, पुत्र का पुत्र)। यहां प्रस्तुत सूत्र से ऋकार को इकार और उकार किया गया है।

१३८—**बृहस्पति** शब्द के ऋकार को विकल्प से इकार और उकार होता है। जैसे—**बृहस्पतिः**=बिहप्फई, बुहप्फई। जहां ऋकार को इकार और उकार नहीं हो पाया वहां पर **बहप्फई** (बृहस्पति, देवताओं का गुरु) यह रूप बनता है।

१३९—**वृन्त** शब्द के ऋकार को इकार, एकार और ओकार होता है। जैसे—**वृन्तम्**=**विण्टं**, वेण्टं वोण्टं (फल, पत्र आदि का बन्धन)। यहां पर ऋकार को इकार, एकार और ओकार किया गया है।

१४०—यदि ऋकार स्वतन्त्र हो और किसी व्यञ्जन के साथ मिला हुआ न हो तो उस को 'रि' यह आदेश हो जाता है। जैसे—१—**ऋद्धिः**=रिद्धी (वैभव, सम्पत्ति), २—**ऋक्षः**=रिच्छो (रीछ, भालु) यहां पर ऋकार स्वतन्त्र है, अतः प्रस्तुत सूत्र से इसे 'रि' यह आदेश हो गया।

१४१—**ऋण, ऋजु, ऋषभ, ऋतु** और **ऋषि** इन शब्दों के ऋकार को विकल्प से 'रि' यह आदेश होता है। जैसे—१—**ऋणम्**=रिणं, अणं (कर्ज़ा), २—**ऋजुः**=रिज्जू, अज्जू (सरल), ३—**ऋषभः**=रिसहो, उसहो (भगवान आदिनाथ) ४—**ऋतुः**=रिऊ, उऊ (दो मास का कालविशेष) और ५—**ऋषिः**=रिसी, इसी (मुनि) यहां पर ऋकार को विकल्प से 'रि' यह आदेश किया गया है।

१४२—यदि **दृश् धातु** से क्विप्, टक् और सक् इन कृदन्त प्रत्ययों में से कोई एक प्रत्यय लगा हुआ हो तो इस के ऋकार को '**रि**' यह आदेश हो जाता है। जैसे—१—**सदृश्-वर्णः**=सरि-वण्णो (जिस का वर्ण समान हो), २—**सदृश्-रूपः**=सरिरूवो (जिस का रूप समान हो), ३—**सदृश्-बन्दीनाम्**=सरि-बंदीणं (एक जैसे कैदियों का), ४—**सदृशः**=सरिसो (समान), ५—**सदृक्षः**=सरिच्छो (समान) इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से ऋकार को '**रि**' यह आदेश किया गया है। इसी प्रकार १—**एतादृशः**=एआरिसो (ऐसा) २—**भवादृशः**=भवारिसो (आप जैसा) ३—**यादृशः**=जारिसो (जैसा) ४—**तादृशः**=तारिसो (वैसा), ५—**कीदृशः**=केरिसो (कैसा), ६—**ईदृशः**=एरिसो (ऐसा), ७—**अन्यादृशः**=अन्नारिसो (दूसरों जैसा), ८—**अस्मादृशः**=अम्हारिसो (हमारे जैसा), ९—**युष्मादृशः**=**तुम्हारिसो** (तुम्हारे जैसा) इन शब्दों में भी प्रस्तुत सूत्र से ऋकार को '**रि**' यह आदेश किया गया है। प्रस्तुत

सूत्र में जिस 'क्विप्' का निर्देश किया गया है वह 'टक् और सक्' इन प्रत्ययों के साथ वर्णित होने से हैम—शब्दानुशासन के । ५ । १ । १५२ । सूत्र से विहित क्विप् प्रत्यय का ही ग्रहण करना चाहिए । भाव यह है कि त्यद् आदि सर्वनाम शब्दों के साथ यदि दृश् धातु से क्विप् प्रत्यय किया गया हो तब दृश्—धातु के ऋकार को 'रि' यह आदेश हो सकता है अन्यथा नहीं ।

१४३—'आदृत' शब्द के ऋकार को 'ढि' यह आदेश होता है । जैसे—**आदृतः**=आढिओ (जिस का आदर किया गया है) यहां ऋकार को 'ढि' यह आदेश हो गया ।

१४४—दृप्त शब्द के ऋकार को 'रि' यह आदेश होता है । जैसे—१—**दृप्तः**=दरिओ (अभिमानी) और २—**दृप्तसिंहेन**=दरिअ-सीहेण (दृप्तसिंह नामक व्यक्ति ने) यहां ऋकार को 'रि' यह आदेश किया गया है ।

अथ ऌकारविधिः

१४५—ऌत इलिः क्लृप्तक्लृन्ने । ८ । १ । १४५ । अनयोर्लृत इलिरादेशो भवति । किलित्त-कुसुमोवयारेसु । धारा-किलिन्नवत्तं ।

अथ ऌकार-विधिः

अकारादिवर्णानां स्थाने यथा विभिन्नानि आदेशादिकार्याणि संभवन्ति तथा ऌकारस्य स्थानेऽपि आदेशादिकं किञ्चित् कार्यं भवति न वा ? अस्य प्रश्नस्य समाधानं क्रियतेऽत्र । यथा—

क्लृप्त-कुसमोपचारेषु । कुसुमानां उपचारः—सत्कारः—कुसुमोपचारः, क्लृप्तः=विहितः कुसुमोपचारो येषां ते क्लृप्तकुसुमोपचाराः तेषु । क्लृप्तकुसुमोपचार+सुप्-१४५ सू० ऌकारस्य इलि इत्यादेशः, ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, ५०४ सू० अकारस्य एकारः, ततः—**किलित्तकुसुमोवयोरेसु** इति सिद्धम् । **धाराक्लृन्नपात्रं ।** धाराभिः क्लृन्नं आर्द्रं पात्रं—धाराक्लृन्नपात्रम् । धाराक्लृन्नपात्र+सि । ऌकारस्य इलिरादेशः, पकारस्य वकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः,२३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः धारा-**किलिन्नवत्तं** इति सिद्धम् ।

"ऌ के स्थान में होनेवाला कार्य"

अकार आदि वर्णों के स्थान में जैसे आदेशादि अलग-अलग कार्य होते हैं वैसे ही क्या ऌकार के स्थान में भी कोई कार्य होता है ? इसी प्रश्न का प्रस्तुत प्रकरण में समाधान किया गया है ।

१४५—क्लृप्त और क्लृन्न इन शब्दों के लृकार को 'इलि' यह आदेश होता है। जैसे—१—क्लृप्त-कुसुमोपचारेषु=किलित्त-कुसुमोवयारेसु (आर्द्र कुसुमों के उपचारों-भक्तियों में) २—धारा-क्लृन्न-पात्रम्=धारा-किलिन्न-वत्तं (धारा से आर्द्र बना पात्र) यहां पर लृकार को 'इलि' यह आदेश किया गया है।

अथ एकार-विधिः

१४६—एत इद्वा वेदना-चपेटा-देवर-केसरे । ८ । १ । १४६ । वेदनादिषु एत इत्त्वं वा भवति । विअणा, वेअणा । चविडा । विअड-चवेडा-विणोआ । दिअरो, देवरो । महमी-हिअ-दसण-किसरं । केसरं । महिला महेला इति तु महिला—महेलाभ्यां शब्दाभ्यां सिद्धम् ।

१४७—ऊः स्तेने वा । ८ । १ । १४७ । स्तेने एत ऊद्वा भवति । थूणो, थेणो ।

अथ एकार-विधिः

प्राकृत-भाषायामेकारस्य स्थाने वैकल्पिक इकार उकारश्च जायते । एकारस्थानीयमेतत् कार्यद्वयं द्वाभ्यां सूत्राभ्यां निदर्शयत्याचार्यः । यथा—

१४६—वेदना । वेदना+सि । १४६ सू० एकारस्य वैकल्पिकः इकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, । १ । १ । ३७ । सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**विअणा, वेअणा** इति सिद्धम् । **चपेटा** । चपेटा+सि । एकारस्य वैकल्पिकः इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १९५ सू० टकारस्य डकारः, सेर्लोपे—**चविडा, चवेडा** इति सिद्धम् । **विकटचपेटाविनोदाः** । चपेटानां विनोदाः चपेटाविनोदाः, विकटाः चपेटाविनोदाः—विकटचपेटाविनोदाः । विकटचपेटविनोद+जस् । १७७ सू० ककारस्य लोपः, १९५ सू० टकारयोः डकारौ, २३१ सू० पकारस्य वकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वस्य दीर्घः—ततः—**विअड-चवेडा-विणोआ** इति सिद्धम् । **देवरः** । देवर+सि । एकारस्य वैकल्पिकः इकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**दिअरो-देवरो** इति सिद्धम् । **प्रसृतदशनकेसरम्** । दशनानां=दन्तानां केसरं दशनकेसरम्=दन्तसम्बन्धिकेसरमित्यर्थः । प्रसृतं दशन-केसरं यस्य यस्मिन् वा तत् प्रसृतदशनकेसरम् । प्रसृतदशनकेसर+सि । **प्रसृत** । प्र-पूर्वकः सृ-धातुः प्रसारे । प्रसृ+क्त (त) ७४९ सू० प्रसृ इत्यस्य महमह इत्यादेशः, ६४५ सू० अकारस्य इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, **महमहिअ** इति जातम् । **दशन** इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारे **दसण** इति जातम् । **केसरः** । केसर+सि इत्यत्र १४६ सू० एकारस्य वैकल्पिकः इकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**महमहिअ-दसण-किसरं** इति सिद्धम् । यत्र इकारो न जातस्तत्र केसर+सि=**केसरं** इति भवति । **महिला महेलेति** । प्रस्तुत सूत्रेण **महेला**-शब्दस्य एकारस्य वैकल्पिकमिकारं विधाय **महिला** इति रूपं न भवति । यथा—**महिला, महेला** । महिला+सि, महेला+सि । सेर्लोपे—**महिला, महेला** इति सिद्धम् । संस्कृते—**महिला महेला** इति स्वतन्त्रशब्दद्वयं विद्यते, न तु महेला—पदे १४६ सू०

एकारस्य वैकल्पिकं इकारं विधाय **महिला** इति साध्यम्।

१४७—**स्तेन:**। स्तेन+सि। १४७ सू० एकारस्य वैकल्पिक: ऊकार:, ३१६ सू० स्तस्य थकार:, २२८ सू० नकारस्य णकार:, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोप:, तत:—**थूणो थेणो** इति **सिद्धम्**।

"एकार के स्थान में होनेवाले कार्य"

प्राकृतभाषा में एकार के स्थान में विकल्प से इकार और विकल्प से उकार होता है। एकार-स्थानीय इन दोनों कार्यों का सूत्रकार इस प्रकरण में दो सूत्रों द्वारा निर्देश कर रहे हैं।

१४६—**वेदना, चपेटा, देवर** और **केसर** इन शब्दों के एकार को विकल्प से इकार होता है। जैसे—१—**वेदना**=विअणा, वेअणा (दु:ख, तकलीफ) २—**चपेटा**=चविडा(चपत), ३—**विकट-चपेटा-विनोदा:**=विअट-चवेडा-विणोआ (प्रचण्ड या व्यक्त चपत रूप विनोद अर्थात उपहास), ४—**देवर:**=दिअरो, देवरो (पति का छोटा भाई), ५—**प्रसृत-दशन-केसरम्**=महमहिअ-दसण-केसरं (जिस का दान्तों से सम्बन्धित केसर फैला हुआ है), ६—**केसरम्**=केसरं (पुष्परेणु, केसर, छन्द-विशेष, स्वर्ण)। इन शब्दों में एकार को विकल्प से इकार किया गया है। **महिला** तथा **महेला** (नारी) ये दोनों रूप तो **महिला** और **महेला** इन दोनों शब्दों से ही बन जाते हैं, यहां विकल्प से एकार को इकार नहीं किया गया।

१४७—**स्तेन** शब्द के एकार को विकल्प से ऊकार होता है। जैसे—**स्तेन:**=थूणो, थेणो (चोर) यहां एकार को विकल्प से ऊकार किया गया है।

अथ ऐकार-विधि:

१४८—**ऐत एत्**।८।१।१४८। ऐकारस्यादौ वर्तमानस्य एत्वं भवति। सेला। तेलोक्कं। एरावणो। केलासो। वेज्जो। केढवो। वेहव्वं।

१४९—**इत्सैन्धव शनैश्चरे**।८।१।१४९। एतयोरैत इत्वं भवति। सिन्धवं। सणिच्छरो।

१५०—**सैन्ये वा**।८।१।१५०। सैन्यशब्दे ऐत इद्वा भवति। सिन्न, सेन्नं।

१५१—**अइ दैत्यादौ च**।८।१।१५१। दैन्यशब्दे दैत्य इत्येवमादिषु च ऐतो अइ इत्यादेशो भवति। एत्वापवाद:। सइन्न। दइच्चो। दइन्नं। अइसिरअं। भइरवो। वइजवणो। दइवअं। वइआलिअं। वइएसो। वइएहो। वइदब्भो। वइस्साणरो। कइअवं। वइसाहो। वइसालो। सइरं। चइत्तं। दैत्य। दैन्य। ऐश्वर्य। भैरव। वैजवन।

दैवत। वैतालीय। वैदेश। वैदेह। वैदर्भ। वैश्वानर। कैतव। वैशाख। वैशाल। स्वैर। चैत्य इत्यादि। विश्लेषे न भवति—चैत्यम्। चेइअं। आर्षे चैत्यवन्दनम्-चीवन्दणं।

१५२—वैरादौ वा। ८। १। १५२। वैरादिषु ऐतः अइरादेशो वा भवति। वइरं, वेरं। कइलासो, केलासो। कइरवं, केरवं। वइसवणो, वेसवणो। वइसम्पायणो, वेसम्पायणो। वइआलिओ,वेआलिओ। वइसिअं,वेसिअं। चइत्तो, चेत्तो। वैर। कैलास। कैरव। वैश्रवण। वैशम्पायन। वैतालिक। वैशिक। चैत्र इत्यादि।

१५३—एच्च दैवे। ८। १। १५३। दैवशब्दे ऐत एत् अइश्चादेशो भवति। देव्वं, दइव्वं, दइवं।

१५४—उच्चैर्नीचस्यै अः। ८। १। १५४। अनयोरैतः "अअ" इत्यादेशो भवति। उच्चअं। नीचअं। उच्चनीचाभ्यां के सिद्धम्। उच्चैर्नीचैसोस्तु रूपान्तरनिवृत्त्यर्थं वचनम्।

१५५—ईद्धैर्ये। ८। १। १५५। धैर्यशब्दे ऐत ईद् भवति। धीरं हरइ विसाओ।

अथ ऐकार-विधिः

संस्कृत-भाषायां यथा ऐकारस्य स्थाने 'आय्' इत्यादीनि कार्याणि दृश्यन्ते तथा प्राकृतभाषायामप्येकारस्य स्थाने किमपि कार्यं भवति ? शिष्यस्यैतां जिज्ञासां समाधातुमैकार-सम्बन्धीनि कार्याणि प्रदर्शयत्याचार्यः।

१४८—शैलाः। शैल+जस्। १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० अकारस्य दीर्घः, ततः—**सेला** इति सिद्धम्। **त्रैलोक्यम्**। त्रैलोक्य+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः ततः—**तेल्लोक्कं** इति सिद्धम्। **ऐरावणः**। ऐरावण+सि। ऐकारस्य एकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**एरावणो** इति सिद्धम्। **कैलाशः**। कैलाश+सि। ऐकारस्य एकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**केलासो** इति सिद्धम्। **वैद्यः**। वैद्य+सि। ऐकारस्य एकारः, २९५ सू० द्यस्य जकारः, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वेज्जो** इति सिद्धम्। **कैटभः**। कैटभ+सि। ऐकारस्य एकारः, १९६ सू० टकारस्य ढकारः, २४० सू० भकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**केढवो** इति सिद्धम्। **वैधव्यम्**। वैधव्य+सि। ऐकारस्य एकारः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वेहव्वं** इति सिद्धम्।

१४९—सैन्धवं। सैन्धव+सि। १४९ सू० ऐकारस्य इकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः,

ततः—**सिन्धवं** इति सिद्धम्। **शनैश्चरः**। शनैश्चर+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, ऐकारस्य एकारः, २६२ सू० श्चस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सणिच्छरो** इति सिद्धम्।

१५०—**सैन्यम्**। सैन्य+सि। १५० सू० ऐकारस्य वैकल्पिकः इकारः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सिन्नं**। यत्र ऐकारस्य इकारो न जातस्तत्र—**सेन्नं** इति भवति।

१५१—**एत्वापवाद इति**। १४८ सूत्रेण आदौ वर्तमानस्य ऐकारस्य एकारो भवति, किन्तु प्रस्तुत-सूत्रेण ऐकारस्य 'अइ' इत्यादेशो विधीयते, अतः सूत्रमिदं १४८ सूत्रस्यापवादः—बाधकः। **सैन्यम्**। सैन्य+सि। १५१ सू० ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, यकारस्य लोपः, नकारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः ततः—**सइन्नं** इति सिद्धम्। **दैत्यः**। दैत्य+सि। १५१ सू० ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, २८४ सू० त्य इत्यस्य चकारः, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वम्, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**दइच्चो** इति सिद्धम्। **दैन्यम्**। दैन्य+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, यकारस्य लोपः, नकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**दइन्नं** इति सिद्धम्। **ऐश्वर्यम्**। ऐश्वर्य+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ३७८ सू० संयुक्तस्य यकारात्पूर्वमिकारागमः, १७७ सू० यकारस्य लोपः सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**अइसरिअं** इति सिद्धम्। **भैरवः**। भैरव+सि। ऐकारस्य 'अइ" इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**भइरवो** इति सिद्धम्। **वैजवनः**। वैजवन+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइजवणो** इति सिद्धम्। **दैवतम्**। दैवत+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**दइवअं** इति सिद्धम्। **वैतालीयम्**। वैतालीय+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, १७७ सू० नकारस्य यकारस्य च लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वइआलीअं** इति सिद्धम्। **वैदेशः**। वैदेश+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइएसो** इति सिद्धम्। **वैदेहः**। वैदेह+सि। ऐकारस्य 'अइ" इत्यादेशः, दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइ-एहो इति** सिद्धम्। **वैदर्भः**। वैदर्भ+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० भकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइदब्भो** इति सिद्धम्। **वैश्वानरः**। वैश्वानर+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, सकारस्य द्वित्वम्, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइस्साणरो** इति सिद्धम्। **कैतवम्**। कैतव+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**कइअवं** इति सिद्धम्। **वैशाखः**। वैशाख+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, २६० सू० शकारस्य सकारः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइसाहो** इति सिद्धम्। **वैशालः**। वैशाल+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइसालो** इति सिद्धम्। **स्वैरम्**। स्वैर+सि। ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सइरं** इति

सिद्धम् । **चैत्यम्** । चैत्य+सि । ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**चइत्तं** इति सिद्धम् । **विश्लेषे न भवतीति** । विश्लेषः—पृथक्करणम् । यत्र चैत्यशब्दे ३७८ सूत्रेण संयुक्तस्य यकारात् पूर्वमिकारागमो भवति, तत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जायते । यथा—**चैत्यम्** । चैत्य+सि । १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, ३७८ सू० संयुक्तस्य यकारात्पूर्वमिकारागमः, १७७ सू० तकारस्य यकारस्य च लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**चेइअं** इति सिद्धम् । अत्र इकारस्य विश्लेषो जातोऽतः १५१ सू० ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशो न जातः । **आर्षे** । प्रस्तुतसूत्रेण ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशो भवति, किन्तु आर्ष-प्राकृते चैत्यशब्दस्यैव **ची** इत्यादेशो जायते । यथा—**चैत्यवन्दनम्** । चैत्यवन्दन+सि । आर्षत्वात् ३ सू० चैत्यशब्दस्य 'ची' इत्यादेशः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**चीवन्दणं** इति सिद्धम् ।

१५२—**वैरम्** । वैर+सि । १५२ सू० वैकल्पिकः ऐकारस्य "अइ" इत्यादेशः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वइरं** यत्र "अइ" इत्यादेशो न जातस्तत्र **वेरं** इति सिद्धम् । अत्र १४८ सू० ऐकारस्य एकारो बोध्यः । **कैलासः** । कैलास+सि । ऐकारस्य वैकल्पिकः "अइ" इत्यादेशः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**कइलासो** । आदेशाभावे—**केलासो** इति भवति । **कैरवम्** । कैरव+सि । ऐकारस्य वैकल्पिकः "अइ"इत्यादेशः,सेर्मकारः,मकारस्यानुस्वारः,ततः—**कइरवं** आदेशाभावे—**केरवं** । अत्र १४८ सू० ऐकारस्य एकारो ज्ञातव्यः । **वैश्रवणः** । वैश्रवण+सि । ऐकारस्य वैकल्पिकः "अइ" इत्यादेशः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइसवणो**, आदेशाभावे—**वेसवणो** इति भवति । **वैशम्पायनः** । वैशम्पायन+सि । ऐकारस्य वैकल्पिकः 'अइ' इत्यादेशः, शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइसम्पायणो** । आदेशाभावे—**वेसम्पायणो** इति सिद्धम् । **वैतालिकः** । वैतालिक+सि । ऐकारस्य वैकल्पिकः "अइ" इत्यादेशः, १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वइआलिओ** । आदेशाभावे— **वेआलिओ** इति भवति । अत्र ऐकारस्य एकारो जातः । **वैशिकम्** । वैशिक+सि । ऐकारस्य वैकल्पिकः "अइ" इत्यादेशः, शकारस्य सकारः, ककारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वइसिअं** । आदेशाभावे—**वेसिअं** इति बोध्यम् । **चैत्रः** । चैत्र+सि । ऐकारस्य वैकल्पिकः "अइ" इत्यादेशः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**चइत्तो** । आदेशाभावे—**चेत्तो** इति भवति । अत्र ऐकारस्य एकारः ।

१५३—**दैवम्** । दैव+सि । १५३ सू० ऐकारस्य एकारः, "अइ" इत्यादेशश्च, ३७० सू० वैकल्पिकं वकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**देव्वं,दइव्वं,दइवं** इति सिद्धम् ।

१५४—**उच्चैः** । अव्ययपदमिदम् । उच्चैस् । १५४ सू० ऐकारस्य "अअ" इत्यादेशः, अज्झीनं परेण संयोज्यम्, ततः—**उच्चअस्**-इति स्थिते "२४ सूत्रे **बहुलाधिकारात्** अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः" इत्यस्मात् पाठात् सकारस्य मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः ततः—**उच्चअं** इति सिद्धम् । **नीचैः** । अव्ययपदमिदम् । नीचैस् । ऐकारस्य "अअ" इत्यादेशः, अज्झीनं परेण संयोज्यम् २४ **सूत्रे बहुलाधिकारात्** सकारस्य मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**नीचअं** इति सिद्धम् । अत्र १७७ सूत्रे प्रायः ग्रहणात्

चकारस्य लुगभावः। **उच्चनीचाभ्यां के सिद्धम्**। उच्च-नीच-शब्दाभ्यां क-प्रत्यये कृते **उच्चअं नीचअं** इति रूपद्वयं साधयितुं शक्यमेव, तर्हि प्रस्तुत-सूत्रेण विहितमनयोः शब्दयोरैकारस्य **'अअ'** इत्यादेश-विधानं किमर्थम् ? उत्तरयति वृत्तिकारो यद् उच्चनीचशब्दाभ्यां क-प्रत्यये कृते **उच्चअं, नीचअं** इति रूपे सिध्यतः, सत्यं, किन्तूच्चस्-नीचैस्-शब्दयोःरूपान्तर-निवारणार्थं प्रस्तुत-सूत्रस्य रचना कृता। यदीदं सूत्रं न कृतं स्यात्तर्हि उच्चैस्—शब्दस्य प्राकृतरूपं, ऐकारस्य एकारे सकारस्य लोपे च कृते **उच्चे** स्यान्न तु **उच्चअं**। एवमेव **नीचैस्**—शब्दस्य **नीचे** इति रूपं भवेन्नतु **नीचअं**।

१५५—धैर्यं हरति विषादः। धैर्यं। धैर्य+सि। १५५ सू० ऐकारस्य ईकारः, ३३५ सू० र्यस्य रेफः, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**धीरं** इति सिद्धम्। **हरति**। हृञ्—हरणे। हृ+तिव्। ६०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशः, ६२८ सू० तिवः इचादेशः, **हरइ** इति सिद्धम्। **विषादः**। विषाद+सि। २६० सू० षकारस्य सकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**विसाओ** इति सिद्धम्।

"ऐकार के स्थान पर होनेवाले कार्य"

जैसे संस्कृत-व्याकरण में ऐकार के स्थान में आय् आदि कार्य देखने में आते हैं वैसे ही प्राकृत-व्याकरण में भी क्या ऐकार के स्थान में कोई कार्य होता है ? शिष्य की इस जिज्ञासा को आगे रख कर सूत्रकार ऐकार के स्थान में होने वाले कार्यों का इस प्रकरण में वर्णन कर रहे हैं।

१४८—शब्दों के आदि में वर्तमान (विद्यमान) ऐकार को एकार हो जाता है। जैसे—१—**शैलाः**=सेला (पहाड़, चट्टानें, बड़े भारी पत्थर), २—**त्रैलोक्यम्**=तेलोक्कं (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीन लोक), ३—**ऐरावणः**=एरावणो (इन्द्र का हाथी), ४—**कैलासः**=केलासो (हिमालय की चोटी, मेरु-पर्वत), ५—**वैद्यः**=वेज्जो(इलाज करने वाला) ६—**कैटभः**=केढवो (दैत्यविशेष) और ७—**वैधव्यम्**=वेहव्वं (विधवापन, रण्डापा) यहां पर ऐकार को एकार किया गया है।

१४६—सैन्धव और शनैश्चर के ऐकार को इकार होता है। जैसे—१—**सैन्धवम्**=सिन्धवं (सेंधा नमक) और २—**शनैश्चरः**=सणिच्छरो (शनि ग्रह) यहां ऐकार को इकार किया गया है।

१५०—सैन्य शब्द के ऐकार को इकार विकल्प से होता है। जैसे—**सैन्यम्**=सिन्नं सेन्नं (सेना) यहां ऐकार को विकल्प से इकार किया गया है।

१५१—सैन्य तथा **दैत्य** आदि शब्दों के ऐकार को **'अइ'** यह आदेश होता है। यह १४८ सूत्र से ऐकार के स्थान में होने वाले एकार का अपवादसूत्र है। इस के उदाहरण इस प्रकार हैं—**१—सैन्यम्**=सइन्नं (सेना), २—**दैत्यः**=दइच्चो (राक्षस), ३—**दैन्यम्**=दइन्नं (दीनता, गरीबी), ४—**ऐश्वर्यम्**=अइसरिअं (वैभव),५—**भैरवः**=भइरवो (भैरवराग,भयानक रस), ६—**वैजवनः**=वइजवणो (गोत्र-विशेष में उत्पन्न), ७—**दैवतम्**=दइवअं (देवत्व), ८—**वैतालीयम्**=वइआलीअं (छन्दविशेष), ९—**वैदेशः**=वइएसो (विदेशी), १०—**वैदेहः**=वइएहो (मिथिला का निवासी), ११—**वैदर्भः**—वइदब्भो

(विदर्भ देश का राजा आदि), १२—**वैश्वानरः**=वइस्साणरो (वह्नि, सामवेद का अवयव-विशेष), **१३—कैतवम्**=कइअवं (कपट, दम्भ), १४—**वैशाखः**=वइसाहो (वैशाख का महीना), १५—**वैशालः**=वइसालो (विशाला में उत्पन्न), १६—**स्वैरम्**=सइरं (स्वच्छन्दता), १७—**चैत्यम्**=चइत्तं (मन्दिर, चिता पर बना स्मारक), इत्यादि शब्दों में ऐकार को **'अइ'** यह आदेश किया गया है। **चैत्य** शब्द का जब ३७८ सूत्र से विश्लेषण (पार्थक्य) करके अर्थात् यकार से पूर्व इकार का आगम करके **'चेइयं'** यह रूप बनाया जाता है, तब प्रस्तुत सूत्र से **ऐकार** को **'अइ'** यह आदेश नहीं होता। ३ सूत्र के द्वारा आर्षप्राकृत में कहीं पर **'चैत्य' के स्थान पर 'ची'** यह आदेश **करके 'चैत्यवन्दनम्' का 'चीवन्दणं'**—(चैत्य को किया गया वन्दन) यह रूप भी बनता है।

१५२—**वैर** आदि शब्दों के ऐकार को विकल्प से **अइ'** यह आदेश होता है। जैसे—१—**वैरम्**=वइरं, वेरं (शत्रुता), २—**कैलासः**=कइलासो, केलासो (हिमालय की चोटी), ३—**कैरवम्**=कइरवं, केरवं (कमल), ४—**वैश्रवणः**=वइसवणो, वेसवणो, (कुबेर), ५—**वैशम्पायनः**=वइसम्पायणो, वेसम्पायणो (व्यास ऋषि का शिष्य), ६—**वैतालिकः**=वइआलिओ, वेआलिओ (मंगलस्तुति आदि से जगाने वाला मागध), ७—**वैशिकम्**=वइसिअं, वेसिअं (कामशास्त्र), ८—**चैत्रः**=चइत्तो, चेत्तो (चैत्र-मास) इत्यादि शब्दों के ऐकार को विकल्प से **'अइ'** यह आदेश किया गया है।

१५३—**दैव** शब्द के ऐकार को 'एकार' और 'अइ' यह आदेश होता है। जैसे—**दैवम्**=देव्वं, दइव्वं, दइवं (भाग्य)। यहां पर ऐकार को **'ए'** और **'अइ'** ये दो आदेश किए गए हैं।

१५४—**उच्चैः** और **नीचैः** इन शब्दों के ऐकार को **'अअ'** यह आदेश होता है। जैसे—१—**उच्चैः**=उच्चअं (ऊंचा), २—**नीचैः**=नीचअं (नीचे), यहां ऐकार को **'अअ'** यह आदेश किया गया है। यद्यपि उच्च तथा नीच शब्दों से स्वार्थ में क-प्रत्यय होने पर भी उक्त रूप सिद्ध हो सकते हैं, परन्तु **उच्चैः** और **नीचैः** इन शब्दों से अन्य अनिष्ट रूपों की निवृत्ति के लिये प्रस्तुत सूत्र की रचना की गई है। भाव यह है कि **उच्चैः** और **नीचैः** इन शब्दों के प्राकृत-भाषा में **उच्चअं नीचअं** यही रूप बन सकते हैं अन्य नहीं।

१५५—**धैर्य** शब्द के ऐकार को ईकार होता है। जैसे—**धैर्यं हरति विषादः**=धीरं हरइ विसाओ (दुःख धैर्य खो देता है), यहाँ ऐकार को ईकार किया गया है।

अथ ओकार-विधिः

१५६—ओतोऽद्वान्योन्य-प्रकोष्ठातोद्य-शिरोवेदना-मनोहर-सरोरुहे क्तोश्च वः ।८।१।१५६।

एषु ओतोऽत्त्वं वा भवति, तत्सन्नियोगे च यथासम्भवं ककारतकारयोर्वादेशः। अन्नन्नं, अन्नुन्नं। पवट्ठो, पउट्ठो। आवज्जं, आउज्जं। सिरविअणा, सिरोविअणा। मणहरं, मणोहरं। सररुहं-सरोरुहं।

१५७—ऊत्सोच्छ्वासे ।८।१।१५७। सोच्छ्वासशब्दे ओत ऊद् भवति। सोच्छ्वासः-

सूसासो।

१५८—गव्यउ-आग्रः ।८।१।१५८। गोशब्दे ओतः अउ, आअ इत्यादेशौ भवतः। गउओ, गउआ, गाओ। हरस्स एसा गाई।

अथ ओकार-विधिः

ओकारस्य विधिः=कार्यमित्योकारविधिः। अत्र प्रकरणे ओकारस्य स्थाने येऽकाराद्यादेशा भवन्ति तान् संसूचयत्याचार्यः। यथा—

१५६—अन्योन्यम्। अन्योन्य+सि। ३४९ सू० यकारद्वयस्य लोपः, ३६० सू० नकारद्वयस्य द्वित्वम्, १५६ सू० ओकारस्य वैकल्पिकोऽकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**अन्नन्नं**। अकारादेशाभावे—८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **अन्नुन्नं** इति सिद्धम्। **प्रकोष्ठः**। प्रकोष्ठ+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ओकारस्य वैकल्पिकोऽकारः, तत्सन्नियोगे च ककारस्य वकारः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**पवट्ठो**। आदेशाभावे—**पकोट्ठ**+सि इति स्थिते १७७ सू० ककारस्य लोपः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ततः—**पउट्ठो** इति सिद्धम्। **आतोद्यम्**। आतोद्य+सि। ओकारस्य वैकल्पिकोऽकारः, तकारस्य च वकारः, २९५ सू० द्यस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**आवज्जं**। आदेशाभावे—**आतोज्ज**+सि इति स्थिते १७७ सू० तकारस्य लोपः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ततः **आउज्जं** इति सिद्धम्। **शिरोवेदना**। शिरसः वेदना शिरोवेदना। शिरोवेदना+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १५६ सू० ओकारस्य वैकल्पिकोऽकारः, १४६ सू० एकारस्य इकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सिरविअणा**। आदेशाभावे—**सिरो-विअणा** इति भवति। **मनोहरम्**। मनोहर+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, ओकारस्य वैकल्पिकोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**मणहरं**। आदेशाभावे—**मणोहरं** भवति। **सरोरुहम्**। सरोरुह+सि। ओकारस्य वैकल्पिकोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सररुहं**। आदेशाभावे—**सरोरुहं** इति भवति।

१५७—सोच्छ्वासः। उच्छ्वासेन सह—वर्तमानः सोच्छ्वासः। सोच्छ्वास+सि। १५७ सू० ओकारस्य ऊकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, समासे वाक्यापेक्षया अन्त्यत्वम्—भिन्नपदत्वम्, ततः—११ सू० चकारस्य लोपः, **निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपायः** इति न्यायेन छकारस्य शकारे सूशास्+सि इति स्थिते; २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सूसासो** इति सिद्धम्।

१५८—गौः। गो+सि। १५८ सू० ओकारस्य अउ, आअ इत्यादेशौ, ४३५ सू० क-प्रत्ययः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**गउओ**। स्त्रीलिङ्गे ।२।४।१८। सूत्रेण आप्-प्रत्यये, **गउअ+आ+सि** इति स्थिते, दीर्घे गउआ+सि इति दशायां सेर्लोपे—**गउआ**। यत्र ओकारस्य 'आअ' इत्यादेशो जातस्तत्र **गाअ+सि** इति स्थिते, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे—**गाओ** इति भवति। **हरस्य एषा गौः**। **हरस्य**। हर+ङस्। ४६६ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **हरस्स** इति सिद्धम्। **एषा**। एतद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारः, ११ सू० दकारस्य लोपः, ।२।४।१८। सू० आप्-प्रत्यये,

दीर्घे, सेर्लोपे **एसा** इति सिद्धम् । **गौः** । गो+सि । १५८ सू० ओकारस्य आअ इत्यादेशः, ।२।४।५८। सू० ङी-प्रत्ययः, १।१।३७। सू० ङकारस्य लोपे—गाअ+ई+सि इति स्थिते, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपः, सेर्लोपे, **गाई** इति सिद्धम् ।

ओकार के स्थान में होनेवाले कार्य

इस प्रकरण में ओकार के स्थान में होने वाले अकारादेश आदि कार्यों का निरूपण किया गया है ।

१५६—**अन्योन्य, प्रकोष्ठ, आतोद्य, शिरोवेदना, मनोहर** और **सरोरुह** इन शब्दों के ओकार को विकल्प से अकारादेश होता है, अकारादेश होने पर उसके संनियोग (पास) में यदि यथासम्भव (प्रयोगानुसार) ककार व तकार हो तो उस को वकारादेश हो जाता है । जैसे—१—**अन्योन्यम्**=अन्नन्नं, अन्नुन्नं (परस्पर), २—**प्रकोष्ठः**=पवट्ठो, पउट्ठो (कोहनी के नीचे के भाग का नाम), ३—**आतोद्यं**=आवज्जं, आउज्जं (बाजा), ४—**शिरोवेदना**=सिरविअणा, सिरो-वियणा (सिर का कष्ट, सरदर्द), ५—**मनोहरं**=मणहरं, मणोहरं (सुन्दर, मन को चुराने वाला), ६—**सरोरुहम्**=सररुहं, सरोरुहं (कमल), यहां ओकार को विकल्प से अकारादेश तथा अकारादेश का सान्निध्य होने पर ककार तथा तकार को यथासम्भव वकारादेश किया गया है ।

१५७—**सोच्छ्वास** शब्द के ओकार को ऊकार होता है । जैसे—**सोच्छ्वासः**=सूसासो (ऊर्ध्व श्वास वाला), यहां ओकार को ऊकारादेश किया गया है ।

१५८—**गो** शब्द के ओकार को क्रमशः '**अउ**' और '**आअ**' ये दो आदेश होते हैं । जैसे— **गौः**= गउओ, गउआ, गाओ (एक गाय) २— **हरस्य एषा गौः**=हरस्स एसा गाई (यह गौ शंकर की है) यहां पर 'गो' के ओकार को '**अउ**' और '**आअ**' ये दो आदेश किए गए हैं ।

अथ औकार-विधिः

१५९—**औत ओत्** ।८।१।१५९। औकारस्यादेरोद् भवति । कौमुदी—कोमुई । यौवनम्-जोव्वणं । कौस्तुभः-कोत्थुहो । कौशाम्बी-कोसम्बी । क्रौञ्चः-कोञ्चो । कौशिकः-कोसिओ ।

१६०—**उत्सौन्दर्यादौ** ।८।१।१६० । सौन्दर्यादिषु शब्देषु औत उद् भवति । सुन्देरं, सुन्दरिअं । मुञ्जायणो । सुण्डो । सुद्धोअणी । दुवारिओ । सुगन्धत्तणं । पुलोमी । सुवण्णिओ । सौन्दर्य । मौञ्जायन । शौण्ड । शौद्धोदनि । दौवारिक । सौगन्ध्य । पौलोमी । सौवर्णिक ।

१६१—**कौक्षेयके वा** ।८।१।१६१। कौक्षेयकशब्दे औत उद् वा भवति । कुच्छेअयं, कोच्छेअयं ।

१६२—**अउः पौरादौ च** ।८।१।१६२। कौक्षेयके, पौरादिषु च औत अउरादेशो भवति । कउच्छेअयं । पौरः-पउरो । पउर-जणो । कौरवः-कउरवो । कौशलं-कउसलं । पौरुषं-पउरिसं । सौधं-सउहं । गौडः-गउडो । मौलिः-मउली । मौनं-मउणं । सौराः-सउरा । कौलाः-कउला ।

१६३—**आच्च गौरवे** ।८।१।१६३। गौरवशब्दे औत आत्त्वं, अउश्च भवति । गारवं, गउरवं ।

१६४—**नाव्यावः** ।८।१।१६४। नौशब्दे औत आवादेशो भवति । नावा ।

अथ औकार-विधिः

स्वरेषु औकारस्य स्थानमन्तिमं विद्यते । अकारादीनां वर्णानां स्थाने जायमानानां कार्याणां यथा निर्देशो विहितः तथौकारस्य स्थाने यानि यानि कार्याणि सम्भवन्ति तेषां निदर्शनमप्यावश्यकं वर्तते, अनया दृष्ट्यैव औकार-सम्बन्धीनि कार्याणि प्रदर्शयत्याचार्यः । यथा—

१५९—**कौमुदी**। कौमुदी+सि । १५९ सू० औकारस्य ओकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, ११।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **कोमुई** इति सिद्धम् । **यौवनम्** । यौवन+सि । १५९ सू० औकारस्य ओकारः, २४५ सू० यकारस्य जकारः, ३९८ सू० वकारस्य द्वित्वम्, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**जोव्वणं** इति सिद्धम् । **कौस्तुभः** । कौस्तुभ+सि । १५९ सू० औकारस्य ओकारः, ३१६ सू० स्तस्य थकारः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः ततः—**कोत्थुहो** इति सिद्धम् । **कौशाम्बी** । कौशाम्बी+सि । १५९ सू० औकारस्य ओकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्लोपे—**कोसम्बी** इति सिद्धम् । **क्रौञ्चः** । क्रौञ्च+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, औकारस्य ओकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**कोञ्चो** इति सिद्धम् । औकारस्य ओकार-विधानान्नात्र ८४ सू० ह्रस्वो जातः । **कौशिकः** । कौशिक+सि । औकारस्य ओकारः, शकारस्य सकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**कोसिओ** इति सिद्धम् ।

१६०—**सौन्दर्यम्** । सौन्दर्य+सि । १६० सू० औकारस्य उकारः, ३३४ सू० र्यस्य रेफः, ५७ सू० आदेरकारस्य एकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सुन्देरं** इति सिद्धम् । प्रयोगदर्शनात् यत्र एकारो न जातः तत्र ३७८ सू० संयुक्तस्य यकारात्पूर्वः इकारागमः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, ततः—**सुन्दरिअं** इति सिद्धम् । **मौञ्जायनः** । मौञ्जायन+सि । औकारस्य उकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**मुञ्जायणो** इति सिद्धम् । **शौण्डः** । शौण्ड+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, औकारस्य उकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **सुण्डो** इति सिद्धम् ।

शुद्धौदनी। शुद्धौदनी+सि। शकारस्य सकारः, औकारस्य उकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, नकारस्य णकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**सुद्धोअणी** इति सिद्धम्। **दौवारिकः**। दौवारिक+सि। औकारस्य उकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**दुवारिओ** इति सिद्धम्। **सौगन्ध्यम्**। सौगन्ध्य+सि। औकारस्य उकारः, ४२५ सू० त्वस्य उपलक्षणात्‡ त्वार्थकस्य ष्यञोऽपि "त्तण" इत्यादेशः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सुगन्धत्तणं** इति सिद्धम्। **पौलोमी**। पौलोमी+सि। औकारस्य उकारः, सेर्लोपे—**पुलोमी** इति सिद्धम्। **सौवर्णिकः**। सौवर्णिक+सि। औकारस्य उकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सुवण्णिओ** इति सिद्धम्।

१६१—**कौक्षेयकम्**। कौक्षेयक+सि। १६१ सू० औकारस्य वैकल्पिकः उकारः, २८८ सू० क्षस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, १७७ सू० यकारस्य ककारस्य च लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**कुच्छेअयं**। यत्र औकारस्य उकारो न जातस्तत्र—**कोच्छेअयं** इति सिद्धम्। अत्र—१५६ सू० औकारस्य ओकारो जातः।

१६२—**कौक्षेयकम्**। कौक्षेयक+सि। १६२ सू० औकारस्य "अउ" इत्यादेशः, २८८ सू० क्षस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, १७७ सू० यकारस्य ककारस्य च लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**कउच्छेअयं** इति सिद्धम्। **पौरः**। पौर+सि। १६२ सू० औकारस्य "अउ" इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**पउरो** इति सिद्धम्। **पौरजनः**। औकारस्य 'अउ' इत्यादेशः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**पउर-जणो** इति सिद्धम्। **कौरवः**। कौरव+सि। १६२ सू० औकारस्य "अउ" इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**कउरवो** इति सिद्धम्। **कौशलम्**। कौशल+सि। औकारस्य "अउ" इत्यादेशः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**कउसलं** इति सिद्धम्। **पौरुषम्**। पौरुष+सि। औकारस्य अउ इत्यादेशः, १११ सू० रोरुकारस्य इकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**पउरिसं** इति सिद्धम्। **सौधम्**। सौध+सि। औकारस्य अउ इत्यादेशः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**सउहं** इति सिद्धम्। **गौडः**। गौड+सि। औकारस्य अउ इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**गउडो** इति सिद्धम्। **मौलिः**। मौलि+सि। औकारस्य "अउ" इत्यादेशः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**मउली** इति सिद्धम्। **मौनम्**। मौन+सि। औकारस्य अउ इत्यादेशः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**मउणं** इति सिद्धम्। **सौराः**। सौर+जस्। औकारस्य अउ इत्यादेशः, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घः, ततः—**सउरा** इति सिद्धम्। **कौलाः**। कौल+जस्। औकारस्य अउ इत्यादेशः, जसो लुक्, पूर्वस्य स्वरस्य दीर्घः, ततः—**कउला** इति सिद्धम्।

१६३—**गौरवम्**। गौरव+सि। १६३ सू० औकारस्य आ, अउ, इत्यादेशौ। सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**गारवं, गउरवं** इति सिद्धम्।

---

‡ स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वमुपलक्षणत्वम्।

१६४—नौः। नौ+सि। १६४ सू० औकारस्य आव इत्यादेशः, २।४।१८। सू० आप् (आ)—प्रत्यये, दीर्घे, सेर्लोपे—**नावा** इति सिद्धम्।

औकार के स्थान पर होने वाले कार्य

स्वरों में औकार का अन्तिम स्थान है। अकारादि वर्णों के स्थान में होने वाले कार्यों का जैसे निर्देश किया गया है वैसे औकार के स्थान में होने वाले कार्यों का निर्देश करना भी अत्यावश्यक है। इसीलिये अब सूत्रकार औकार के स्थान में होनेवाले ओकार आदि आदेश-कार्यों का निर्देश कर रहे हैं।

१५६—शब्द के आदिम औकार को ओकार होता है। जैसे—१—**कौमुदी**=कोमुई (शरद् ऋतु की पूर्णिमा, चान्दनी), २—**यौवनम्**=जोव्वणं (जवानी), ३—**कौस्तुभः**=कोत्थुहो (मणि-विशेष), ४—**कौशाम्बी**=कोसम्बी (कौशाम्बी नामक नगरी), ५—**क्रौञ्चः**=कोञ्चो (पक्षि-विशेष, क्रौञ्च नामक अनार्य देश), ६—**कौशिकः**=कोसिओ (कौशिक नाम का एक तपस्वी), यहां पर औकार को ओकार किया गया है।

१६०—सौन्दर्य आदि शब्दों के औकार को उकार होता है। जैसे—१—**सौन्दर्यम्**=सुन्देरं, सुन्दरिअं (सुन्दरता), २—**मौञ्जायनः**=मुञ्जायणो (ऋषि-विशेष), ३—**शौण्डः**=सुण्डो (मदिरा पीने वाला), ४—**शौद्धोदनिः**=सुद्धोअणी (महात्मा बुद्ध), ५—**दौवारिकः**=दुवारिओ (द्वारपाल), ६—**सौगन्ध्यम्**=सुगन्धत्तणं (सुगन्धि), ७—**पौलोमी**=पुलोमा (इन्द्राणी), ८—**सौवर्णिकः**=सुवण्णिओ (सोने का बना हुआ, स्वर्णमय), यहां पर औकार को उकारादेश किया गया है।

१६१—कौक्षेयक शब्द के औकार को विकल्प से उकार होता है। जैसे—**कौक्षेयकम्**= कुच्छेअयं, कोच्छेअयं (पेट पर बन्धी तलवार)। यहां औकार को विकल्प से उकार किया गया है।

१६२—कौक्षेयक और पौर आदि शब्दों के औकार को '**अउ**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**कौक्षेयकम्**=कउच्छेअयं (पेट पर बंधी तलवार), २—**पौरः**=पउरो (नगर में रहने वाला), ३—**पौरजनः**=पउर-जणो (नगर में रहने वाला मनुष्य), ४—**कौरवः**—कउरवो (कुरु राजा की सन्तति), ५—**कौशलम्**=कउसलं (कुशलता, चतुरता), ६—**पौरुषम्**=पउरिसं (पुरुषार्थ), ७—**सौधम्**=सउहं (महल), ८—**गौडः**=गउडो (गौड देश का वासी, बंगाल का पूर्वी भाग), ६—**मौलिः**=मउली (मुकुट, बांधे हुए बाल) १०—**मौनम्**=मउणं (खामोशी), ११—**सौराः**=सउरा (सूर्य-सम्बन्धी, ग्रह-विशेष), १२—**कौलाः**=कउला (जाति-विशेष का पुरुष), इन शब्दों में औकार को '**अउ**' यह आदेश किया गया है।

१६३—गौरव शब्द के औकार को '**आ**' और '**अउ**' ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**गौरवम्**=गारवं, गउरवं (बड़प्पन), यहां औकार को क्रमशः दो आदेश किए गए हैं।

१६४—'नौ' शब्द के औकार को 'आव' यह आदेश होता है। जैसे—'नौ' नावा (नौका), यहां औकार को 'आव' यह आदेश हो गया।

अथ सस्वर-व्यञ्जन-विधिः

१६५—एत् त्रयोदशादौ स्वरस्य सस्वरव्यञ्जनेन ।८।१।१६५। त्रयोदश इत्येवं-प्रकारेषु संख्याशब्देषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वरेण व्यञ्जनेन सह एद् भवति। तेरह। तेवीसा। तेतीसा।

१६६—स्थविरविचकिलायस्कारे ।८।१।१६६। एषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वर-व्यञ्जनेन सह एद् भवति। थेरो। वेइल्लं। मुद्ध-विअइल्ल-पसूण-पुञ्जा इत्यपि दृश्यते। एक्कारो।

१६७—वा कदले ।८।१।१६७। कदलशब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह एद् वा भवति। केलं, कयलं। केली, कयली।

१६८—वेतः कर्णिकारे ।८।१।१६८। कर्णिकारे इतः सस्वरव्यञ्जनेन सह एद् वा भवति। कण्णेरो, कण्णिआरो।

१६९—अयौ वैत् ।८।१।१६९। अयि-शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ऐद् वा भवति। ऐ बीहेमि। अइ उम्मत्तिए!। वचनादैकारस्यापि प्राकृते प्रयोगः।

१७०—ओत्पूतर-बदर-नवमालिका-नवफलिका-पूगफले ८।१।१७०। पूतरादिषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ओद् भवति। पोरो। बोरं-बोरी। नोमालिआ। नोहलिआ। पोप्फलं, पोप्फली।

१७१—न वा मयूख-लवण-चतुर्गुण-चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार-कुतूहलोदूखल-लोलूखले ८।१।१७१। मयूखादिषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ओद् वा भवति। मोहो-मऊहो। लोणं। इअ लवणुग्गमा। चोग्गुणो-चउग्गुणो। चोत्थो-चउत्थो। चोत्थी-चउत्थी। चोद्दह-चउद्दह। चोद्दसी-चउद्दसी। चोव्वारो-चउव्वारो। सोमालो-सुकुमालो। कोहलं-कोउहल्लं। तह मन्ने कोहलिए। ओहलो-उऊहलो। ओक्खलं-उलूहलं। मोरो-मऊरो इति तु मोर-मयूरशब्दाभ्यां सिद्धम्।

१७२—अवापोते ८।१।१७२। अवापयोरुपसर्गयोरुत इति विकल्पार्थनिपाते च आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ओद् वा भवति। अव-ओअरइ, अवयरइ। ओआसो, अवयासो। अप, ओसरइ, अवसरइ। ओसारिअं, अवसारिअं। उत, ओ वणं। ओ

घणो। उअ वणं। उअ घणो। क्वचिन्न भवति—अवगयं। अवसद्दो। उअ रवी।

१७३—**उच्चोपे** ८।१।१७३। उपशब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ऊत् ओच्चादेशौ वा भवतः। ऊहसिअं, ओहसिअं, उवहसिअं। ऊज्झाओ, ओज्झाओ, उवज्झाओ। ऊआसो, ओआसो, उववासो।

१७४—**उमो निषण्णे** ८।१।१७४। निषण्णशब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह उम आदेशो वा भवति। णुमण्णो। निसण्णो।

१७५—**प्रावरणे अङ्ग्वाऊ** ८।१।१७५। प्रावरणशब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह अंगु आउ इत्येतावादेशौ वा भवतः। पंगुरणं, पाउरणं, पावरणं।

अथ सस्वर-व्यञ्जन-विधिः

अकारादिवर्णानां स्थाने यानि यान्यादेशादिकार्याणि सम्भवन्ति तेषां निर्देशो विहितः, साम्प्रतं प्राकृतभाषायां सस्वरव्यञ्जनानां स्थाने यानि-यानि कार्याणीष्टानि तेषां प्रदर्शनं करोत्याचार्यः। यथा—

१६५—**त्रयोदश**। त्रयोदश+जस्। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १६५ सू० परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य एकारः, २१९ सू० दकारस्य रेफः, २६२ सू० शकारस्य हकारः, ४९३ सू० जसो लुक्, बाहुल्यात् ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घाभावः, ततः—**तेरह** इति सिद्धम्। **त्रयोविंशतिः**। त्रयोविंशति+सि। रेफस्य लोपः, परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य एकारः, २८ सू० अनुस्वारस्य लोपः, ९२ सू० ति शब्देन सह इकारस्य ईकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ३।४।१८। सू० आप् (आ) प्रत्ययः, दीर्घे १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **तेवीसा** इति सिद्धम्। **त्रयस्त्रिंशः**। त्रयस्त्रिंशत्+सि। रेफस्य लोपः, परेण **सस्वरव्यञ्ज**नेन सह आदेः स्वरस्य एकारः, अनुस्वारस्य लोपः, रेफस्य लोपः, ३४९ सू० सकारस्य लोपः, ९२ सू० इकारस्य दीर्घः, शकारस्य सकारः, ११ सू० **तकारस्य** लोपः, आप् (आ) प्रत्ययः, दीर्घे, **सेर्लोपे—तेतीसा** इति सिद्धम्।

१६६—**स्थविरः**। स्थविर+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य एकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**थेरो** इति सिद्धम्। **विचकिलम्**। विचकिल+सि। परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य एकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ३६९ सू० लकारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**वेइल्लं** इति सिद्धम्। **मुद्ध-विअइल्ल-पसूण-पुञ्जा**। प्रस्तुत-सूत्रेण विचकिलशब्दे आदि-स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन एकारो विहितः, परन्तु **बहुलाधिकारात्** क्वचित् एकारो न भवति। यथा—**मूर्द्ध-विचकिल-प्रसून-पुञ्जाः**। विचकिलस्य मल्लिकायाः मालत्याः वा प्रसूनानि पुष्पाणि-विचकिलप्रसूनानि, तेषां पुञ्जाः निकराः—विचकिल-प्रसून-पुञ्जाः, मूर्द्धनि-मस्तके विचकिलप्रसूनपुञ्जाः येषां ते—मूर्द्धविचकिलप्रसूनपुञ्जाः। मूर्द्धविचकिलप्रसूनपुञ्ज

+जस्। **मूर्द्धन्**। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ११ सू० नकारस्य लोपः। **विच-किल**। १७७ सू० चकारस्य ककारस्य च लोपः, ३६६ सू० लकारस्य द्वित्वम्। **प्रसून**। रेफस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः। **पुञ्ज+जस्**। ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्ववर्णस्य दीर्घः। **अत्र—** १६६ सू० बहुलाधिकाराद् एकारो न जातः, ततः—**मुद्ध-विअइल्ल-पसूण-पुञ्जा** इति सिद्धम्। **अयस्कारः**। अयस्कार+सि। परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य एकारः, ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**एक्कारो** इति सिद्धम्।

१६७—**कदलम्**। कदल+सि। १६७ सू० परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः एकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**केलं**। एकाराभावे—१७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे—**कयलं** इति भवति। **कदली**। कदली+सि। परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः एकारः, सेर्लोपे—**केली**। एकाराभावे—दकारस्य लोपे, यकारविशिष्टेऽकारे—**कयली** इति सिद्धम्।

१६८—**कर्णिकारः**। कर्णिकार+ सि। इकारस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह वैकल्पिकः एकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**कण्णेरो**। एकाराभावे—१७७ सू० द्वितीयककारस्य लोपे—**कण्णिआरो** इति सिद्धम्।

१६९—**अयि बिभेमि**। **अयि**। अव्ययपदमिदम्। १६९ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह अर्थात् सकलस्यैव अयि—शब्दस्य ऐकारादेशे—**ऐ** इति सिद्धम्। **बिभेमि**। ञिभी (भी) भये। भी+मिव्। ७२४ सू० भीधातोः "बीह्" इत्यादेशः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६४७ सू० अकारस्य एकारः, ६३० सू० मिवः मि इत्यादेशः ततः—**बीहेमि** इति सिद्धम्। **अयि उन्मत्तिके!**। अयि अव्ययपदमिदम्। यत्र—१६९ सू० **अयि** इत्यस्य ऐकारो न जातस्तत्र १७७ सू० यकारस्य लोपे—**अइ** इति सिद्धम्। **उन्मत्तिके!**। उन्मत्तिका+सि। ३३२ सू० न्मस्य मकारः, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ५३० सू० आकारस्य (आपः) एकारे, सेर्लोपे—**उम्मत्तिए** इति सिद्धम्। **वचनादैकारस्यापि**। यद्यपि प्रथमसूत्रे प्राकृत-भाषायामैकारस्य निषेधो विहितस्तथापि १६९ सूत्रेण अयि-शब्दस्य ऐकार-विधानसामर्थ्यात् प्राकृतेऽपि ऐकारस्य प्रयोगो भवतीति बोध्यम्।

१७०—**पूतरः**। पूतर+सि। १७० सू० परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य ओकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्य—स्वरादेः लोपः, ततः—**पोरो** इति सिद्धम्। **बदरम्**। बदर+सि। परेण सस्वर-व्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य ओकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**बोरं**। यत्र स्त्रीलिङ्गो बदरी शब्दः तत्र तु सेर्लोपे **बोरी** इति भवति। **नवमालिका**। नवमालिका+सि। परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य ओकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्लोपे—**नोमालिआ** इति सिद्धम्। **नवफलिका**। नवफलिका+सि। परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य ओकारः, १८७ सू० फकारस्य हकारः ककारस्य लोपः, सेर्लोपे—**नोहलिआ** इति सिद्धम्। **पूगफलम्**। पूगफल+सि। परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य ओकारः, ३६८ सू० फकारस्य द्वित्वम्। ३६० सू० पूर्वफकारस्य पकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**पोप्फलं**। यत्र तु **पूगफली**—शब्दः तत्र सेर्लोपे—**पोप्फली** इति भवति।

१७१—**मयूखः**। मयूख+सि। १७१ सू० परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**मोहो**।

ओकाराभावे—१७७ सू० यकारस्य लोपे—**मऊहो** इति सिद्धम्। **लवणं**। लवण+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**लोणं**। ओकाराभावे **इति लवणोद्गमाः**। इति अव्ययपदम्। ९१ सू० इति—शब्दस्य द्वितीयस्य इकारस्य अकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ततः—**इअ** इति सिद्धम्। **लवणोद्गमाः**। लवणस्य उद्गमाः= उत्पत्तिस्थानानि—लवणोद्गमाः। लवणोद्गम+जस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घः, ततः—**लवणुग्गमा** इति भवति। अत्र आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यंजनेन सह ओकारो न जातः। **चतुर्गुणः**। चत्वारो गुणाः यस्य यस्मिन् वा सः चतुर्गुणः। चतुर्गुण+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**चोग्गुणो ओकाराभावे**—चतुर्गुण+सि इति स्थिते १७७ सू० तकारस्य लोपे, रेफस्य लोपे, गकारस्य द्वित्वे—**चउग्गुणो** इति भवति। **चतुर्थः**। चतुर्णां पूरणः चतुर्थः। चतुर्थ+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह वैकल्पिकः आदेः स्वरस्य ओकारः, रेफस्य लोपः, थकारस्य द्वित्वं, पूर्वथकारस्य तकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **चोत्थो**। ओकाराभावे पूर्ववदेव—चतुत्थो इति जाते, १७७ सू० तकारस्य लोपे, **चउत्थो** इति भवति। स्त्रीलिङ्गे तु—**चतुर्थी**। चतुर्थी+सि। पूर्ववदेव **चोत्थी**, ओकाराभावे **चउत्थी** इति भवति। **चतुर्दश**। चतुर्दशन्+जस्। परेण सस्वरव्यंजनेन सह वैकल्पिकः आदेः स्वरस्य ओकारः, रेफस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वम्, २६२ सू० शकारस्य हकारः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ४६३ सू० जसो लोपः, ततः—**चोद्दह**। ओकाराभावे—**चतुद्दह** इति पूर्ववदेव जाते १७७ सू० तकारस्य लोपे, **चउद्दह** इति भवति। **चतुर्दशी**। चतुर्दशी+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह वैकल्पिकः आदेः स्वरस्य ओकारः, रेफस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वम्, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्लोपे—**चोद्दसी**। ओकाराभावे पूर्ववदेव **चतुद्दसी** इति जाते १७७ सू० तकारस्य लोपे, **चउद्दसी** इति भवति। **चतुर्द्वारम्**। चत्वारि द्वाराणि यस्य तत् चतुर्द्वारम्। चतुर्द्वार+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, रेफस्य लोपः, दकारस्य लोपः, वकारस्य द्वित्वम्, ३३ सू० पुंस्त्वम्, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**चोव्वारो**। ओकाराभावे पूर्ववदेव **चतुव्वारो** इति जाते—१७७ सू० तकारस्य लोपे—**चउव्वारो** इति सिद्धम्। **सुकुमारः**। सुकुमार+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**सोमालो**। ओकाराभावे—१७७ सू० ककारस्य लोपे—**सुउमालो**। यत्र ककारस्य लोपो न जातस्तत्र—**सुकुमालो** इति भवति। **कुतूहलं**। कुतूहल+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः, ततः—**कोहलं**। ओकाराभावे—११७ सू० उकारस्य ओकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ३७० सू० लकारस्य द्वित्वे—**कोउहल्लं** इति भवति। **तथा मन्ये कौतुहलिके!**। **तथा**। अव्ययपदम्। १८७ सू० थकारस्य हकारे, ६७ सू० आकारस्य अकारे—**तह** इति सिद्धम्। **मन्ये**। मनु (मन्) अवबोधने। मन्+ए। संस्कृते **मन्ये** इति जाते। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वं, ततः—**मन्ने** इति सिद्धम्। **कौतुहलिके** !। कौतुहलिका+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ५३० सू० आकारस्य एकारः, सेर्लोपे—**कोहलिए** इति सिद्धम्। **उदूखलम्**। उदूखल+सि। परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ओकारः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**ओहलो**।

ओकाराभावे—१७७ सू० दकारस्य लोपे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**उऊहलो** इति सिद्धम्। **उलूखलम्**। उलूखल+सि। आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यंजनेन सह वैकल्पिकः ओकारः, ३७० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः, ततः—**ओक्खलं**। ओकाराभावे—१८७ सू० खकारस्य हकारे—**उलूहलं** इति सिद्धम्। **मोरो मऊरो** इति। संस्कृत-भाषायां मोरः, तथा मयूरः एतौ द्वौ शब्दौ वर्तेते। प्राकृत-भाषायां मोरः, इत्यस्माद् मोरो, मयूरः इत्यस्माद् मऊरो इति रूपं जायते। अतः प्रस्तुतसूत्रेण नात्र किमपि कार्यं बोध्यम्। यथा—**मोरः**। मोर+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**मोरो** इति सिद्धम्। **मयूरः**। मयूर+सि। १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **मऊरो** इति सिद्धम्।

१७२—**अवतरति**। अव—पूर्वकः तृ-धातुः अवतरणे। अव+तृ+तिव्—१७२ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यंजनेन सह वैकल्पिकः ओकारः, ६०५ सू० ऋकारस्य अरादेशः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**ओअरइ**। ओकाराभावे—१७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-विशिष्टेऽकारे—**अवयरइ** इति भवति। **अवकाशः**। अवकाश+सि। आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्ज-नेन सह वैकल्पिकः ओकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः **ओआसो**। ओकाराभावे—ककारस्य लोपे, यकारविशिष्टेऽकारे—**अवयासो** इति भवति। **अपसरति**। अप-पूर्वकः सृ-धातुः अपसरणे। अपसृ+तिव्। आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह वैकल्पिकः ओकारः, ६०५ सू० ऋकारस्य अरादेशः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **ओसरइ**। ओकाराभावे २३१ सू० पकारस्य वकारे—**अवसरइ** इति सिद्धम्। **अपसारितम्**। अपसारित +सि। आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह वैकल्पिकः ओकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **ओसारिअं**। ओकाराभावे—पकारस्य वकारे—**अवसारिअं** इति भवति। **उतवनम्**। उतवन+सि। आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह वैकल्पिकः ओकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **ओवणं**। ओकाराभावे १७७ सू० तकारस्य लोपे—**उअवणं** इति भवति। **उतघनः**। उतघन+सि। आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह वैकल्पिकः ओकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**ओघणो**। ओकाराभावे—**उअघणो** इति भवति। **क्वचिन्नेति**। प्रस्तुतसूत्रेण अव, उप इत्येतयोरुपसर्गयोः, वि-कल्पार्थके उतनिपाते चादेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह वैकल्पिक ओकारो विहितः, किन्तु बहुला-धिकारात् क्वचिदेतादृश ओकारो न भवति। यथा—**अवगतम्**। अवगत+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **अवगयं** इति सिद्धम्। अत्र बहुलाधि-कारात् १७२ सू० आदेः स्वरस्य सस्वरव्यञ्जनेन सह ओकारो न जातः। **अपशब्दः**। अपशब्द+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अवसद्दो** इति सिद्धम्। अत्र बहुलाधिकारात् परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य ओकारो न जातः। **उत—रविः**। उत—रवि+सि। १७२ सू० बहुलाधिकारात् ओकारो न जातः किन्तु १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**उअ-रवी** इति सिद्धम्।

१७३—**उपहसितम्**। उपहसित+सि। १७३ सू० परेण सस्वरव्यंजनेन सह आदेः स्वरस्य

वैकल्पिकः ऊकारः ओकारश्च भवतः। यत्र ऊकारोकारौ न भवतः तत्र तु २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**ऊहसिअं, ओहसिअं, अवहसिअं** इति सिद्धम्। **उपाध्यायः**। उपाध्याय+सि। परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य वैकल्पिकः ऊकारः ओकारश्च भवतः, यत्र ऊकारोकारौ न भवतः तत्र तु पकारस्य वकारे, २९७ सू० ध्यस्य झकारः, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**ऊज्झाओ, ओज्झाओ, उवज्झाओ** इति सिद्धम्। **उपवासः**। उपवास+सि। आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह वैकल्पिकः ऊकारः ओकारश्च भवतः। यत्र ऊकारोकारौ न भवतः तत्र पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**ऊवासो, ओवासो, उववासो** इति सिद्धम्।

१७४—**निषण्णः**। निषण्ण+सि। १७४ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह 'उम' इत्यादेशो वैकल्पिकः, २२९ सू० नकारस्य वैकल्पिको णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **णुमण्णो**। आदेशाभावे—२६० सू० षकारस्य सकारः पूर्ववदेव **णिसण्णो** इति भवति।

१७५—**प्रावरणम्**। प्रावरण+सि। १७५ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह 'अंगु, आउ' इत्यादेशौ वैकल्पिकौ, ३५० सू० रेफस्य लोपः, आदेशाभावे—३५० सू० रेफलोपे, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पंगुरणं, पाउरणं, पावरणं** इति सिद्धम्।

सस्वरव्यञ्जनों के साथ स्वरों को होने वाले कार्य

अकार और आकार आदि वर्णों के स्थान में आदेशादि जो कार्य होते हैं उन का निर्देश करने के अनन्तर अब सूत्रकार स्वरसहित व्यञ्जन के साथ स्वर के स्थान में होने वाले आदेश आदि कार्यों का निर्देश कर रहे हैं।

१६५—**त्रयोदश** आदि संख्यावाचक शब्दों के आदिम स्वर को पर-वर्ती स्वरयुक्त व्यंजन के साथ एकारादेश होता है। जैसे—१—**त्रयोदश**=तेरह (१३ की संख्या), २—**त्रयोविंशतिः**=तेवीसा (२३), ३—**त्रयस्त्रिंशत्**=तेतीसा (३३), यहां पर स्वर-सहित अग्रिम व्यंजन के साथ आदि-स्वर को एकारादेश किया गया है।

१६६—**स्थविर, विचकिल और अयस्कार** इन शब्दों के आदि-स्वर को आगे रहे स्वर-सहित व्यंजन के साथ एकारादेश होता है। जैसे—१—**स्थविरः**=थेरो(६० वर्षों की आयु का या २० वर्षों का दीक्षित या आचारांग और सूत्रकृतांग इन सूत्रों का ज्ञाता व्यक्ति),२—**विचकिलं**=वेइल्लं(एक प्रकार की मल्लिका चमेली), ३—**अयस्कारः**=एवकारो (लोहार), यहां पर सस्वर व्यञ्जन के साथ आदि के स्वर को एकार किया गया है। बहुलाधिकार के कारण कहीं पर विचकिल शब्द के परवर्ती सस्वर व्यञ्जन के साथ आदि स्वरको एकारादेश नहीं होता,जैसे—४—**मुग्ध-विचकिल-प्रसून-पुञ्जाः**=मुद्ध-विअइल्ल-पसूण-पुंजा (मुग्ध-मनोहर चमेली के फूलों के समूह), यहां **विचकिल** शब्द के आदि—स्वर को पर-वर्ती सस्वर व्यंजन के साथ एकारादेश नहीं हो सका।

१६७—**कदल** शब्द के आदि-स्वर को परवर्ती सस्वर व्यंजन के साथ विकल्प से एकार होता है। जैसे—१—**कदलम्**=केलं, कयलं (कदली फल, केला), २—**कदली**=केली, कयली (केले का पेड़, मृगविशेष, ध्वजा), यहां पर आदि-स्वर को परवर्ती स्वर-सहित व्यंजन के साथ विकल्प से एकारादेश किया गया है।

१६८—**कर्णिकार** शब्द के इकार को पर-वर्ती स्वर-युक्त व्यंजन के साथ विकल्प से एकार होता है। जैसे—**कर्णिकारः**=कण्णेरो, कण्णिआरो (वृक्ष—विशेष, गौशाला का एक भक्त), यहां पर स्वर-सहित पर-वर्ती व्यंजन के साथ इकार को विकल्प से एकारादेश किया गया है।

१६९—**'अयि'** इस अव्ययपद के आदिम स्वर को पर-वर्ती स्वर-सहित व्यंजन के साथ विकल्प से ऐकारादेश होता है। जैसे—१—**अयि बिभेमि**=ऐ बीहेमि (अयि! यह अव्ययपद संभावना एवं आमन्त्रण का बोधक है, मैं डरता हूं) २—**अयि उन्मत्तिके!**=अइ उम्मत्तिए (अयि मदोन्मत्ते!) यहां **'अयि'** को विकल्प से **'ऐ'** यह आदेश किया गया है। पीछे पहले सूत्र में कहा जा चुका है कि प्राकृत भाषा में **'ऐकार'** का प्रयोग नहीं होता तो फिर यहां **'ऐकारादेश'** कैसे संगत हो सकता है? इसी प्रश्न को सामने रख कर वृत्तिकार फरमाते हैं कि इस वचन (कथन) से ही यह प्रमाणित होता है कि प्राकृत—भाषा में **'ऐकार'** का प्रयोग हो भी जाता है।

१७०—**पूतर, बदर, नवमालिका, नवफलिका और पूगफल** इन शब्दों के आदि-स्वर को परवर्ती स्वर-युक्त व्यंजन के साथ ओकारादेश होता है। जैसे—**पूतरः**=पोरो(जल में होने वाला एक क्षुद्र जन्तु), २—**बदरम्**=बोरं (बेर का फल), ३—**बदरी**=बोरी (बेर का पौधा), ४—**नवमालिका**=नो-मालिआ (सुगन्धित फूल वाला वन), ५—**नवफलिका**=नोहलिआ (ताज़ी फली), ६—**पूगफलम्**=पोप्फलं (सुपारी का फल), ७—**पूगफली**=पोप्फली (सुपारी का पेड़), यहां प्रस्तुत सूत्र से आदि-स्वर को स्वर-युक्त परवर्ती व्यंजन के साथ ओकारादेश किया गया है।

१७१—सूत्रपठित **मयूख, लवण, चतुर्गुण, चतुर्थ, चतुर्दश, चतुर्द्वार, सुकुमार, कुतूहल, उदूखल** और **उलूखल** इन शब्दों के आदिम स्वर के स्थान में पर-वर्ती सस्वरव्यञ्जन के साथ विकल्प से ओकार होता है। जैसे—१—**मयूखः**=मोहो, मऊहो (किरण, तेज, कान्ति, शोभा), २—**लवणम्**=लोणं, लवणं (नमक) ३—**इति लवणोद्गमाः**=इअ लवणुग्गमा (ये लवण के उत्पत्ति-स्थान हैं) ४—**चतुर्गुणः**=चोग्गुणो, चउग्गुणो (जहां पर चार गुण हों, वह व्यक्ति) ५—**चतुर्थः**=चोत्थो, चउत्थो(चौथा) ६—**चतुर्थी**=चोत्थी,चउत्थी(चौथी) ७—**चतुर्दशः**=चोद्दह, चउद्दह(चौदह)८—**चतुर्दशी**=चोद्दसी, चउद्दसी (चौदश तिथि) ९—**चतुर्द्वारम्ः**=चोव्वारो,चउव्वारो(जिसके चार द्वार हों),१०—**सुकुमारः**=सोमालो, सुकुमालो (अति कोमल, कुमार अवस्था वाला),११—**कुतूहलम्**=कोहलं कोउहल्लं (कौतुक,परिहास), १२—**तथा मन्ये कुतूहलिके!**=तह मन्ने कोहलिए!(हे कौतुक करने वालो! मैं वैसा मानता हूं),१३—**उदूखलः**=ओहलो, उऊहलो(ओखली, गूलर की लकड़ी का डण्डा, गुग्गुल, कान का एक गहना), १४—**उलूखलम्**=ओक्खलं उलूहलं(ओखली)इन शब्दों के आदिम स्वर को पर-वर्ती स्वरयुक्त व्यञ्जन के साथ विकल्प से ओकार किया गया है। १—**मोरो** तथा २—**मऊरो** (मोर) ये दोनों रूप मोरः तथा मयूरः इन शब्दों से बन जाते हैं अतः यहाँ प्रस्तुत सूत्र से कोई कार्य नहीं होता।

१७२—**अव और अप इन उपसर्गों के तथा विकल्पार्थक (विकल्प अर्थ वाले) उत** इस निपात

(जो शब्द स्वतः सिद्ध हो, जिसे व्याकरण के नियमों से सिद्ध नहीं किया जाता) के आदिम स्वर को पर-वर्ती सस्वरव्यञ्जन के साथ विकल्प से ओकार हो जाता है। जैसे—**अव उपसर्ग के उदाहरण**—१—**अवतरति**=ओअरइ, अवयरइ (वह अवतार—जन्म लेता है) २—**अवकाशः**=ओआसो, अवयासो (फुरसत) **अप उपसर्ग के उदाहरण**—१—**अपसरति**=ओसरइ, अवसरइ (वह सरकता है)—२—**अपसारितम्**=ओसारिअं, अवसारिअं (उसने सरका दिया) **उत अव्ययपद के उदाहरण**—१—**उत वनम्**=ओ वणं, उअ वणं (अथवा वन है), २—**उत घनः**=ओ घणो, उअ घणो (अथवा मेघ है) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से स्वर-सहित पर-व्यञ्जन के साथ आदिम स्वर को विकल्प से ओकार किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर **अव, अप** ये उपसर्ग तथा **उत** यह निपात अवस्थित होने पर भी प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे—१—**अवगतम्**=अवगयं (जाना हुआ), २—**अपशब्दः**=अवसद्दो (कुत्सित वचन), ३—**उत रविः**=उअ रवी (अथवा सूर्य) यहां अव, अप ये उपसर्ग तथा उत यह अव्यय होने पर भी प्रस्तुत सूत्र ने कोई कार्य नहीं किया।

१७३—**अपशब्द** के आदि-स्वर को सस्वर पर-व्यञ्जन के साथ विकल्प से ऊत् (ऊ) और ओत् (ओ) ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**उपहसितम्**=ऊहसिअं, ओहसिअं, उवहसिअं (जिस का परिहास किया गया है), २—**उपाध्यायः**=ऊज्झाओ, ओज्झाओ, उवज्झाओ (शास्त्रों का अध्यापन कराने वाला), ३—**उपवासः**=ऊआसो, ओआसो, उववासो (अनशन करना) यहां पर 'उप' इस उपसर्ग के स्थान में विकल्प से ऊकार और ओकार किया गया है।

१७४—**निषण्ण** शब्द के आदिम स्वर को स्वर-युक्त पर-व्यञ्जन के साथ विकल्प से 'उम' यह आदेश होता है। जैसे—**निषण्णः**=णुमण्णो, णिसण्णो (डूबा हुआ) यहां पर विकल्प से **निषण्ण** के इकार और षकार को 'उम' यह आदेश किया गया है।

१७५—**प्रावरण** शब्द के आदिम स्वर को आगे रहे स्वर-युक्त व्यञ्जन के साथ **अंगु, आउ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**प्रावरणम्**=पंगुरणं, पाउरणं, पावरणं (वस्त्र) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से 'प्रावरण' शब्द के आकार और वकार को 'अंगु, आउ' ये आदेश किए गए हैं।

स्वरात्परस्य असंयुक्तस्य अनादेर्विधिः

१७६—**स्वरादसंयुक्तस्यानादेः** । ८।१।१७६ । अधिकारोऽयम् । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्भवतीति वेदितव्यम् ।

१७७—**क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायो लुक्** । ८।१।१७७ । स्वरात्परेषामनादिभूतानामसंयुक्तानां कगचजतदपयवानां प्रायो लुग् भवति । क—तित्थयरो। लोओ । सयढं । ग—नओ, नयरं, मयङ्को । च—सई, कयग्गहो । ज—रययं, पयावई, गओ । त—विआणं, रसायलं, जई । द—गया, मयणो । प—रिऊ, सुउरिसो । य—दयालू, नयणं, विओओ । व—लावण्णं, विउहो, वलयाणलो । *प्रायो ग्रहणात्क्वचिन्न भवति । सुकुसुमं, पयागजलं, सुगओ, अगरू, सचावं, विजणं । सुतारं । विदुरो । सपावं । समवाओ । देवो । दाणवो ।

---

*प्रायः—क्वचिद् भवति, क्वचिन्न भवति सूत्रप्रवृत्तिरित्यर्थः ।

स्वरादित्येव—संकरो, संगमो। नक्कंचरो। धणंजओ। विसंतवो। पुरंदरो। संवुडो। संवरो। असंयुक्तस्येव। अक्को। वग्गो। अच्चो। वज्जं। धुजो। उद्दामो। विप्पो। कज्जं। सव्वं। क्वचित्संयुक्तस्यापि। नक्तंचरः, नक्कंचरो। अनादेरित्येव। कालो। गन्धो। चोरो। जारो। तरू। दवो। पावं। वण्णो। यकारस्य तु जत्वं आदौ वक्ष्यते। समासे तु वाक्यविभक्त्यपेक्षया भिन्नपदत्वमपि विवक्ष्यते, तेन तत्र यथादर्शनमुभयमपि भवति। सुहकरो, सुहयरो। आगमिओ। आयमिओ। जलचरो, जलयरो। बहुतरो, बहुअरो। सुहदो, सुहओ। इत्यादि। क्वचिदादेरपि—स पुनः—स उण। स च—सो अ। चिन्हं—इन्धं। क्वचिच्चस्य जः—पिशाची—पिसाजी। एकत्वं—एगत्तं। एकः—एगो। अमुकः—अमुगो। असुकः—असुगो। श्रावकः—सावगो। आकारः—आगारो। तीर्थंकरः—तित्थगरो। आकर्षः—आगरिसो। लोग्गस्सुज्जोअगरा इत्यादिषु तु ११९८—व्यत्ययश्च (४.४४७) इत्येव कस्य गत्त्वम्। आर्षे अन्यदपि दृश्यते—आकुञ्चनम्—आउण्टणं। अत्र चस्य टत्त्वम्।

स्वरात्परस्य असंयुक्तस्य अनादेर्विधिः

१७६ सूत्रं "स्वरात् परस्य असंयुक्तस्य अनादेश्च वर्णस्य कार्यं भवतु" इति प्रतिपादयति, अधिकार-सूत्रमिदम्। उत्तरोत्तर-सूत्रेष्वनुवर्तनमधिकारः, अतएव इतोऽग्रे यदनुक्रमिष्यामः, लोप-आदेशादिकं कार्यं विधास्यामः, तत् स्वरात् परस्य, असंयुक्तस्य-संयोगशून्यस्य अनादेश्च :—आदौ अविद्यमानस्य च वर्णस्य भवति, स्वरात् परवर्तिना असंयुक्तेन, अनादिना च वर्णेन सम्बन्धितो भविष्यतीति वेदितव्यम्, ज्ञातव्यमिति। सर्वप्रथमं स्वरात् परेषामनादीनामसंयुक्तानां च व्यञ्जनानां स्थाने यानि कार्याणि जायन्ते तान् प्रदर्शयत्याचार्यः। यथा—

१७७—**तीर्थंकरः**। **तीर्थकर+सि**। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **तित्थयरो** इति सिद्धम्। **लोकः**। **लोक+सि**। ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरस्य लोपे—**लोओ** इति सिद्धम्।

शकटम्। शकट+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, ककारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, १९६ सू० टकारस्य ढकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारः. ततः—**सयढं** इति सिद्धम्। **नगः**। नग+सि। १७७ सू० गकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**नअो** इति सिद्धम्। **नगरम्**। नगर+सि। गकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नयरं** इति सिद्धम्। **मृगाङ्कः**। मृगाङ्क+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, गकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मयङ्को** इति सिद्धम्। **शची**। शची+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**सई** इति सिद्धम्। **कचग्रहः**। कचानां ग्रहः कचग्रहः। कचग्रह+सि। चकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कयग्गहो** इति सिद्धम्। **रजतम्**। रजत+सि। १७७ सू० जकारस्य तकारस्य च लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**रययं** इति सिद्धम्। **प्रजापतिः**। प्रजापति+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, जकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, प्रस्तुत सूत्रेण तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**पयावई** इति सिद्धम्। **गजः**। गज+सि। जकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**गअो** इति सिद्धम्। **वितानम्**। वितान+सि। तकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**विअाणं** इति सिद्धम्। **रसातलम्**। रसातल+सि। तकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**रसायलं** इति सिद्धम्। **यतिः**। यति+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, प्रस्तुतसूत्रेण तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**जई** इति सिद्धम्। **गदा**। गदा+सि। दकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्लोपे—**गया** इति सिद्धम्। **मदनः**। मदन+सि। दकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मयणो** इति सिद्धम्। **रिपुः**। रिपु+सि। पकारस्य लोपः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिऊ** इति सिद्धम्। **सुपुरुषः**। सुपुरुष+सि। पकारस्य लोपः, १११ सू० रोरुकारस्य इकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ८ सू० स्वरसन्धिनिषेधे **सुउरिसो** इति सिद्धम्। **दयालुः**। दयालु+सि। यकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**दयालू** इति सिद्धम्। **नयनम्**। नयन+सि। यकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकार, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नयणं** इति सिद्धम्। **वियोगः**। वियोग+सि। १७७ सू० यकारस्य गकारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विअोअो** इति सिद्धम्। **लावण्यम्**। लावण्य+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपः. यकारविशिष्टोऽकारः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः मकारस्यानुस्वारे—**लायण्णं** इति सिद्धम्। **विबुधः**। विबुध+सि। २३७ सू० बकारस्य वकारः, वकारस्य लोपः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विउहो** इति सिद्धम्। **वडवानल**। वडवानल+सि। २०२ सू० डकारस्य लकारः, वकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वलयाणलो** इति सिद्धम्। **प्रायोग्रहणात् क्वचिद्**। प्रस्तुतसूत्रे 'प्रायः' इति पठितस्य पदस्यार्थः—बहुलम्। तस्माद् बहुलकाद्

क्वचित् ककारादि—व्यञ्जनानां लोपो न भवति। यथा—**सुकुसुमम्**। सुकुसुम+सि। १७७ सूत्रे **प्रायो इति ग्रहणात्** ककारस्य लोपो न जातः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**सुकुसुमं** इति सिद्धम्। **प्रयागजलम्**। प्रयागजल+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पयागजलं** इति सिद्धम्। अत्र १७७ सूत्रे **प्रायो ग्रहणात्** गकारस्य यकारस्य जकारस्य च लोपो न जातः। एवमग्रिमेषु प्रयोगेष्वपि बोध्यम्। **सुगतः**। सुगत+सि। १७७ सू० गकारस्य न लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सुगओ** इति सिद्धम्। **अगरुः**। अगरु+सि। ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, ।१।१।३७। सू० सेरकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**अगरू** इति सिद्धम्। **सचापम्**। सचाप+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सचावं** इति सिद्धम्। **व्यजनम्**। व्यजन+सि। ३४६ सू० यकारस्य लोपः, ४६ सू० अकारस्य इकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**विजणं** इति सिद्धम्। क्वचित्तु—**विजनम्** इति पाठः, नकारस्य णकारादि-कार्यं पूर्ववदेव बोध्यम्। **सुतारम्**। सुतार+सि। सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सुतारं** इति सिद्धम्। **विदुरः**। विदुर+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विदुरो** इति सिद्धम्। **सपापम्**। सपाप+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सपावं** इति सिद्धम्। **समवायः**। समवाय+सि। १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**समवाओ** इति सिद्धम्। **देवः**। देव+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**देवो** इति सिद्धम्। **दानवः**। दानव+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दाणवो** इति सिद्धम्। एषूपरितनेषु सुकुसुमादिषु प्रयोगेषु १७७ सूत्रे **प्रायो इति ग्रहणात्** ककारादीनां लुगभावः। **स्वरादित्येव**। अनादिभूता असंयुक्ताश्च ककारादयो यदि स्वरात् परवर्तिनो भवेयुस्तदैव प्रस्तुतसूत्रेण तेषां लोपो जायते, नान्यथा। यथा—**शंकरः**। शं सुखं करोति—ददातीति शंकरः। शंकर+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संकरो** इति सिद्धम्। अत्र ककारस्य स्वरात्परत्वाभावात् १७७ सूत्रेण लोपाभावः, एवमेवाग्रेऽपि बोध्यम्। **संगमः**। संगम+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संगमो** इति सिद्धम्। **नक्तंचरः**। नक्तं रात्रौ चरतीति नक्तंचरः। नक्तंचर+सि। अत्र **बहुलाधिकारात्** ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**नक्कंचरो** इति सिद्धम्। **धनञ्जयः**। धनञ्जय+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, २५ सू० ञकारस्य व्यञ्जने परे अनुस्वारः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**धणंजओ** इति सिद्धम्। **द्विषंतपः**। द्विषं शत्रुं तापयति-दुःखयतीति—द्विषंतपः। द्विषंतप+सि। ३४८ सू० दकारस्य लोपः, २६० सू० षकारस्य सकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दिसंतवो** इति सिद्धम्। **पुरंदरः**। पुरंदर+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पुरंदरो** इति सिद्धम्। **संवृतः**। संवृत+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संवुडो** इति सिद्धम्। **संवरः**। संवर+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संवरो** इति सिद्धम्। एषूपरितनेषु शंकरादिषु प्रयोगेषु स्वरात्परत्वाभावात् कगादि-व्यञ्जनानां लोपो न जातः। **असंयुक्तस्येति**। स्वरात् परवर्तिनोऽनादिभूताश्च ककारादयो यदि असंयुक्ताः भवेयुस्तदैव प्रस्तुतसूत्रेण तेषां लोपो जायते नान्यथा। यथा—**अर्कः**। अर्क+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अक्को** इति सिद्धम्। **वर्गः**। वर्ग+सि। रेफस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे

अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वग्गो** इति सिद्धम्। **अर्चः**। अर्च+सि। रेफस्य लोपः, चकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे -**अच्चो** इति सिद्धम्। **वज्रम्**। वज्र+सि। रेफस्य लोपः, जकारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**वज्जं** इति सिद्धम्। यत्र वर्यम् इतिच्छाया तत्र तु—२६५ सू० र्यस्य जकारः ३६० सू० जकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारः—**वज्जं** इति सिद्धम्। **धूर्तः**। धूर्त+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वम्, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्डो, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे -**धुत्तो** इति सिद्धम्। **उद्दामः**। उद्दाम+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**उद्दामो** इति सिद्धम्। **विप्रः**। विप्र+सि। रेफस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विप्पो** इति सिद्धम्। **कार्यम्**। कार्य+सि। २६५ सू० र्यस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वम्, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कज्जं** इति सिद्धम्। **सर्वम्**। सर्व+सि। रेफस्य लोपः, वकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सव्वं** इति सिद्धम्। एषु अर्कादिषु प्रयोगेषु ककारादीनां संयुक्तत्वात् १७७ सूत्रेण लोपो न जातः। **क्वचित् संयुक्तस्यापि**। ककारादयो यदि संयुक्ताः भवेयुस्तदा प्रस्तुतसूत्रेण तेषां लोपो न भवति, परन्तु बहुलाधिकारात् क्वचित् संयुक्त-ककारादेरपि लोपो जायते। यथा—**नक्तंचरः**। नक्तंचर+सि। १७७ सूत्रे **बहुलाधिकारात्** क्वचित् संयुक्तस्यापि तकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**नक्कंचरो**। यत्र प्रयोगदर्शनात् ककारस्य लोपो न जातस्तत्र तु **नत्तंचरो** इति भवति। **अनादेरित्येव**। यदि ककारादयो वर्णा अनादयो भवेयुस्तदैव तेषां प्रस्तुत-सूत्रेण लोपो भवति, नान्यथा। यथा—**कालः**। काल+सि। ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कालो** इति सिद्धम्। **गन्धः**। गन्ध+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**गन्धो** इति सिद्धम्। **चौरः**। चौर+सि। १५६ सू० औकारस्य ओकारः, सेर्डोः डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**चोरो** इति सिद्धम्। **जारः**। जार+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जारो** इति सिद्धम्। **तरुः**। तरु+सि। ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**तरू** इति सिद्धम्। **दवः**। दव+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे -**दवो** इति सिद्धम्। **पापम्**। पाप+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पावं** इति सिद्धम्। **वर्णः**। वर्ण+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वण्णो** इति सिद्धम्। अत्र उक्तेषु अष्टसु प्रयोगेषु ककारादीनां पदादित्वात् लोपो न जातः। **यकारस्य तु जत्वमिति**। अत्रादिभूतानां ककारादि-वर्णानां यथोदाहरणानि दत्तानि तथादिभूतस्य यकारस्याप्युदाहरणं कथन्न दत्तमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यदादिभूतस्य यकारस्य तु २४५ सूत्रेण जकारो जायते, फलतस्तस्योदाहरणं न विद्यते, अनेनैव कारणेन आदिभूत-यकारस्योदाहरणं नोपन्यस्तम्। यकारसम्बन्धिनं जकारादेशमग्रे २४५ सूत्रे प्रतिपादयिष्यन्ति सूत्रकाराः। **समासे तु वाक्येति**। समासदशायां यदा वाक्यापेक्षा भवति तदा व्यञ्जनानामन्त्यत्वं, यदा विभक्त्यपेक्षा जायते तदा तेषामनन्त्यत्वं बोध्यम्। एतद्विषये ११ सूत्रे सविस्तरमुल्लिखितम्। प्रस्तुते तु यत्र भिन्नपदत्वं तत्रादिभूतानां ककारादिव्यञ्जनानां प्रस्तुतसूत्रेण लोपो न भवति, परं यत्राभिन्नपदत्वं तत्र प्रस्तुत सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भविष्यत्येव। यथा—**सुखकरः**। सुखं करोतीति सुखकरः। सुखकर+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सुहयरो**। यत्र वाक्यापेक्षया भिन्नपद-विवक्षा न कृता तत्र तु खकारस्य हकारे, पूर्ववदेव **सुहकरो** इति सिद्धम्। **आगमिकः**। आ मर्यादया अभिविधिना वा गम्यते—ज्ञायते इति आगमः, आगममधीते वेद वा इति **आगमिकः**।

आगमिक+सि। वाक्यापेक्षया भिन्नपदत्वात् १७७ सू० पदादित्वात् गकारस्य लोपो न जातः, किन्तु ककारस्य अनादित्वात् लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः—**आगमिओ**। यत्र विभक्त्यपेक्षया १७७ सू० गकारस्य लोपो जातस्तत्र यकारविशिष्टेऽकारे—**आयमिओ** इति सिद्धम्। **जलचरः**। जले चरतीति जलचरः। जलचर+सि। वाक्यापेक्षया १७७ सू० चकारस्य लोपाभावः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जलचरो**। विभक्त्यपेक्षया तु चकारस्य लोपे, यकारविशिष्टेऽकारे—**जलयरो** इति सिद्धम्। **बहुतरः**। बहून् तरतीति बहुतरः। बहुतर+सि। वाक्यापेक्षया १७७ सू० तकारस्य लोपाभावः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः—**बहुतरो**। विभक्त्यपेक्षया तु तकारस्य लोपे, यकार-विशिष्टेऽकारे—**बहुयरो** इति सिद्धम्। **सुखदः**। सुखं ददातीति सुखदः। सुखद+सि। वाक्यापेक्षया १७७ सू० दकारस्य लोपाभावः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सुहदो**। विभक्त्यपेक्षया तु दकारस्य लोपे—**सुहओ** इति सिद्धम्।

क्वचिदादेरपि। प्रस्तुतसूत्रेण अनादिभूतानां ककारादि-व्यञ्जनानां लोपो जायते किन्तु बहुला-धिकारात् केषुचित् प्रयोगेषु आदिभूतस्य पकारस्य, चकारस्य चापि लोपो भवति। यथा—**स पुनः**। **सः**। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारः, ११ सू० दकारस्य लोपः, ४।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**स** इति सिद्धम्। **पुनः**। पुनर्। अव्ययपदमिदम्। १७७ सूत्रे "क्वचिदा-देरपि" इति पाठात् **बाहुल्यविवक्षया** पदस्यादेरपि पकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ११ सू० रेफस्य लोपे—**उण** इति सिद्धम्। **स च**। **स**। तद्+सि। पूर्ववदेव स+सि इति जाते, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सो** इति सिद्धम्। **च**। अव्ययपदमिदम्। **बाहुल्येन** पदस्या-दिभूतस्यापि चकारस्य १७७ सू० लोपे—**अ** इति सिद्धम्। **चिह्नम्**। चिह्न+सि। **बलाधिकारात्** १७७ सू० आदेरपि चकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**इन्धं** इति सिद्धम्। **क्वचिच्चस्य जः**। प्रस्तुतसूत्रेण स्वरात् परवर्तिनोऽनादिभूतस्यासंयुक्तस्य च चकारस्य लोपो जायते किन्तु बहुलाधिकारात् क्वचित् चकारस्य जकारादेशोऽपि भवति। यथा—**पिशाची**। पिशाची+सि। **बहुलाधि-कारात्**, २ सू० चकारस्य जकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्लोपे—**पिसाजी** इति सिद्धम्। **एकत्वम्**। एकत्व+सि। अत्र १७७ सू० ककारस्य लोपो न जातः, किन्तु १११८ सू० व्यत्यये कृते १०६७ सू० ककारस्य गकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मका-रस्यानुस्वारे—**एगत्तं** इति सिद्धम्। **एकः**। एक+सि। व्यत्यये कृते ककारस्य गकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**एगो** इति सिद्धम्। **अमुकः**। अमुक+सि। व्यत्यये कृते ककारस्य गकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अमुगो** इति सिद्धम्। **असुकः**। असुक+सि। व्यत्यये कृते ककारस्य गकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**असुगो** इति सिद्धम्। **श्रावकः**। श्रावक+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, व्यत्यये कृते ककारस्य गकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सावगो** इति सिद्धम्। **आकारः**। आकार+सि। व्यत्यये कृते सेर्डोः डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**आगारो** इति सिद्धम्। **तीर्थंकरः**। तीर्थंकर+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, व्यत्यये कृते—ककारस्य गकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**तित्थगरो** इति सिद्धम्। **आकर्षः**। आकर्ष+सि। व्यत्यये कृते ककारस्य गकारः, ३७६ सू० संयुक्तस्य षकारात्पूर्वः इकारागमः, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**आगरिसो** इति सिद्धम्। **लोकस्य**

उद्योतकराः। लोक+ङस्। व्यत्यये कृते ककारस्य गकारः, ४६६ सू० ङसः "स्स" इत्यादेशे—**लोगस्स** इति सिद्धम्। **उद्योतकराः।** उद्योतं—ज्ञानप्रकाशं कुर्वन्ति इति उद्योतकराः। उद्योतकर+जस्। २६५ सू० "द्य" इत्यस्य जकारः, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० तकारस्य लोपः, व्यत्यये कृते ककारस्य गकारः, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे—**उज्जोअगरा** इति सिद्धम्। **इत्यादिषु व्यत्ययश्च।** एकत्वम्, एकः, इत्यादि-शब्दानां ककारादि-व्यञ्जनानां प्रस्तुत-सूत्रेण लोपो न जातः, किन्तु ११७८ सूत्रेण व्यत्यये (ककारस्य स्थाने गकारस्य परिवर्तने) जाते **एगत्तं** इत्यादयाः प्रयोगाः सिध्यन्ति। **आर्षे अन्यदपि।** आर्षप्राकृते अन्यदपि प्रस्तुत-सूत्रोक्त-कार्येण भिन्नमपि कार्यं जायते। **आकुञ्चनम्** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण चकार-लोप-प्राप्तिरासीत् किन्तु आर्षत्वात् लोपं न विधाय तस्य स्थाने जकारादेशो विहितः। यथा—**आकुञ्चनम्।** आकुञ्चन+सि। १७७ सू० ककारस्य लोपः, २५ सू० व्यञ्जने परे ञकारस्य अनुस्वारः, बहुलाधिकारात्—३ सू० चकारस्य टकारः, ३० सू० वर्गान्त्यः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**आउण्टणं** इति सिद्धम्।

स्वर से परे असंयुक्त एवं आदि में न रहने वाले वर्णों को होने वाले कार्य

पूर्व सूत्र में सस्वर व्यञ्जनों के स्थान पर होने वाले कार्यों का निर्देश करके अब सूत्रकार उन कार्यों का वर्णन करते हैं जो स्वर से परे रहने वाले असंयुक्त एवं अनादि के व्यञ्जनों के स्थान पर होते हैं।

१७७—स्वर से परे, अनादि-भूत तथा असंयुक्त क, ग, च, ज, त, द, प, य और व इन अक्षरों का प्रायः लोप हो जाता है। **ककार के उदाहरण—१—तीर्थकरः**=तित्थयरो (धर्मरूप तीर्थ की स्थापना करने वाले महापुरुष), २—**लोकः**=लोओ (संसार), ३—**शकटम्**=सयढ (छकड़ा)। **गकार के उदाहरण**—१—**नगः**=नओ (पर्वत, वृक्ष), २—**नगरम्**=नयरं (शहर), ३—**मृगाङ्कः**= मयङ्को (चांद)। **चकार के उदाहरण**—१—**शची**=सई (इन्द्राणी), २—**कचग्रहः**=कयग्गहो (केशों का ग्रहण) **जकार के उदाहरण—१—रजतम्**=रययं (चांदी), २—**प्रजापतिः**=पयावई (ब्रह्मा, कुम्हार), ३—**गजः**=गओ (हाथी)। **तकार के उदाहरण—१—वितानम्**=विआणं (विस्तार, यज्ञ, अवसर, आच्छादन-विशेष)—२—**रसातलम्**=रसायलं (पृथ्वी के नीचे का अन्तिम भाग), ३—**यतिः**=**जई** (साधु) **दकार के उदाहरण—१—गदा**=गया (लोहे का बना एक पुराना हथियार, जिस के एक सिरे पर एक नोकदार बड़ा लट्टू लगा होता था, गुर्ज), २—**मदनः**=मयणो (कामदेव)। **पकार के उदाहरण—१—रिपुः**=रिऊ (शत्रु), २—**सुपुरुषः**=सुउरिसो (श्रेष्ठ पुरुष)। **यकार के उदाहरण—१—दयालुः** =दयालू (दया से युक्त व्यक्ति), २—**नयनं**=नयणं (आंख) ३—**वियोगः**=विओओ (संयोग का अभाव)। **वकार के उदाहरण—१—लावण्यम्**=लायण्णं (सौन्दर्य), २—**विबुधः**=विउहो (पण्डित, देव), ३—**वडवानलः** वलयानलो (बडवाग्नि)। इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से क्रमशः ककार आदि व्यञ्जनों का लोप किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में **"प्रायः"** बहुल इस पद का ग्रहण होने के कारण कहीं पर ककार आदि व्यञ्जनों का लोप नहीं भी होता। जैसे—१—**सुकुसुमम्**=सुकुसुमं (सुन्दर फूल), २—**प्रयाग-जलम्**

=पयागजलं (गंगा आदि तीन नदियों का जल), ३—**सुगतः**=सुगओ (अच्छी गति वाला, महात्मा बुद्ध) ४—**अगरुः**=अगरू (अगरु का पेड़ या लकड़ी), ५—**सचापम्**=सचावं (धनुष-सहित), ६—**व्यजनम्**=विजण (पंखा) ७—**सुतारम्**=सुतारं (अत्यन्त निर्मल, अत्यधिक ऊंची आवाज़ वाला), ८—**विदुरः**=विदुरो (विचक्षण, नागरिक), ९—**सपापम्**=सपावं (पाप से युक्त) १०—**समवायः**=समवाओ (अभेद्यसम्बन्ध), ११—**देवः**=देवो (देवता), १२—**दानवः**=दाणवो (राक्षस) इत्यादि शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से ककारादि व्यञ्जनों का लोप नहीं हो सका। वृत्तिकार फरमाते हैं कि ककार आदि व्यञ्जन का स्वर से परवर्ती होना आवश्यक है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यों ? उत्तर में निवेदन है कि यदि ऐसा न कहते तो स्वर से परे न होने पर भी ककारादि व्यंजनों का लोप हो जाता, जो कि इष्ट नहीं है। जैसे—१—**शंकरः**=संकरो (शिव), २—**संगमः**=संगमो (संगम नामक देवता, समागम) ३—**नक्तंचरः**=नक्कंचरो (राक्षस), ४—**धनंजयः**=धणंजओ (अर्जुन), ५—**द्विषंतपः**=विसंतवो (शत्रु को तपाने वाला), ६—**पुरंदरः**=पुरंदरो (देवराज, गन्ध द्रव्य विशेष), ७—**संवृतः**=संवुडो (आवृत, ढका हुआ), ८—**संवरः**=संवरो (दैत्यविशेष, आस्रव का निरोध) यहां पर ककारादि व्यंजन स्वर से परवर्ती नहीं हैं अतः प्रस्तुत सूत्र से इन का लोप नहीं हो सका। इसी दृष्टि से वृत्तिकार द्वारा "व्यञ्जन स्वर से परवर्ती हो" यह प्रतिबन्ध लगाया गया है। वृत्तिकार ने "असंयुक्तस्य (स्वर से परवर्ती व्यञ्जन असंयुक्त हों") यह कह कर यह ध्वनित किया है कि स्वर से परवर्ती संयुक्त ककारादि व्यंजनों का लोप नहीं होता, जैसे—१—**अर्कः**=अक्को (सूर्य), २—**वर्गः**=वग्गो (समूह), ३—**अर्चः**=अच्चो (पूजा), ४—**वज्रम्**=वज्जं (वज्र, कठोर), ५—**धूर्तः**=धुत्तो (शैतान), ६—**उद्दामः**=उद्दामो (स्वच्छन्द), ७—**विप्रः**—विप्पो (ब्राह्मण), ८—**कार्यम्**=कज्जं (कार्य), ९—**सर्वम्**=सव्वं (सब)। संयुक्त होने से यहां पर ककार आदि व्यंजनों का लोप नहीं हो सका। यदि "**असंयुक्तस्य**" यह पद न कहते तो इन शब्दों में संयुक्त ककारादि व्यंजनों का लोप हो जाता। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर स्वर से परवर्ती संयुक्त तकार का लोप हो भी जाता है। जैसे—**नक्तंचरः**=नक्कंचरो। यहां प्रस्तुत सूत्र से संयुक्त तकार का लोप नहीं हो सकता था किन्तु बहुलाधिकार के कारण कर दिया गया है। "**अनादेः**" यह कह कर सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र से आदि में विद्यमान ककारादि व्यंजनों के लोप का निषेध कर दिया है। जैसे—१—**कालः**=कालो, (यमराज, मृत्यु), २—**गन्धः**=गन्धो (गन्ध, बू), ३—**चौरः**=चोरो (चौर्य कर्म करने वाला), **जारः**=जारो (उपपति), ५—**तरुः**=तरू (वृक्ष), ६—**दवः**=दवो (जंगल की अग्नि), ७—**पापम्**=पावं (बुराई), ८—**वर्णः**=वण्णो (प्रशंसा) "**अनादेः**" यह कहने से प्रस्तुत सूत्र द्वारा यहां पर आदि में वर्तमान ककारादि वर्णों का लोप नहीं हो सका। प्रश्न हो सकता है कि ककारादि वर्णों में यकार का भी पाठ है किन्तु यहां उस का उदाहरण नहीं दिया गया, ऐसा क्यों ? उत्तर में निवेदन है कि आदि में विद्यमान यकार वाले शब्द का उदाहरण इसलिए नहीं दिया गया कि शब्द के आदिभूत यकार को २४५ सूत्र से जकार हो जाता है। आदिभूत यकार को जकारादेश का वर्णन २४५ सूत्र में किया जाने वाला है।

समासगत शब्दों में वाक्य (पदसमूह) और विभक्ति की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न पदों की तथा एक-एक पद की कल्पना होने से समस्त पदों में यथादर्शन प्रयोगानुसार ककारादि व्यंजनों का लोप तथा लोपाभाव ये दोनों कार्य देखे जाते हैं। जैसे—१—**सुखकरः**=सुहकरो, सुहयरो (सुख देने वाला), २—**आगमिकः**=आगमिओ, आयमिओ (शास्त्र-सम्बन्धी, शास्त्रोक्त), ३—**जलचरः**=जलचरो,

जलयरो (जलीय जीव), ४—**बहुतरः**=बहुतरो, बहुअरो (बहुत में से एक), ५—**सुखदः**=सुहदो, सुहओ (सुखकारक) इत्यादि शब्दों में वाक्य (अलग-अलग पद) तथा विभक्ति(एक पद) की दृष्टि से कहां ककारादि व्यंजनों का लोप हो गया और कहीं पर नहीं भी हो सका। **बहुलाधिकार** से कहीं पर आदि में विद्यमान ककारादि व्यंजनों का भी लोप हो जाता है। जैसे—१—**स पुनः**=स उण (वह फिर), २—**स च**=सो अ (और वह), ३—**चिन्हं**=इन्धं (निशान) यहां पर आदि में वर्तमान चकार और पकार का लोप कर दिया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर चकार के स्थान में जकारादेश भी देखने में आता है। जैसे—**पिशाची**=पिसाजी (भूताविष्ट), इस के अतिरिक्त—१—**एकत्वम्**=एगत्तं (एक पना), २—**एकः**=एगो (एक), ३—**अमुकः**=अमुगो (कोई खास आदमी या चीज़ जिस का नाम न लिया जाता हो, फलां), ४—**असुकः**=असुगो (प्राण, चित्त, ताप), ५—**श्रावकः**=सावगो (धर्मशास्त्र सुनने वाला, जैन गृहस्थ), ६—**आकारः**=आगारो (आकृति, छूट), ७—**तीर्थंकरः**=तित्थगरो (तीर्थंकर), ८—**आकर्षः**=आगरिसो (खिंचाव), ९—**लोकस्य उद्योतकराः**=लोगस्स उज्जोअगरा (तीन लोक को प्रकाशित करने वाले) आदि शब्दों में ११११८ सूत्र से ककार को गकार किया गया है। ककार के स्थान में गकार का हो जाना व्यत्यय भी कहलाता है। व्यत्यय में अक्षर उलट-पुलट हो जाते हैं, गकारादि ककारादि का और ककारादि गकारादि का रूप ले लेते हैं। **आर्ष-प्राकृत** में तो ३ सूत्र द्वारा सूत्रोक्त कार्य से अलग-थलग कार्य भी हो जाता है। जैसे—**आकुञ्चनम्**=आउण्टणं (संकोच करना) यहां पर चकार को टकारादेश किया गया है।

स्वरात्परस्य असंयुक्तस्य अनादेर्विधिः

१७८—यमुना—चामुण्डा—कामुकातिमुक्तके मोनुनासिकश्च। ८।१।१७८। एषु यस्य लुग्भवति, लुकि च सति मस्य स्थाने अनुनासिको भवति। जउँणा। चाउँडा। काउँओ। अणि-उँतयं। क्वचिन्न भवति—अइमुत्तयं।

१७९—नावर्णात्परः। ८।१।१७९। अवर्णात्परस्यानादेः यस्य लुग् न भवति। सवहो। सावो। अनादेरित्येव—पर-उट्ठो।

१८०—अवर्णो यश्रुतिः। ८।१।१८०। कगचजेत्यादिना लुकि सति शेषोऽवर्णः, अवर्णात्परो लघुप्रयत्नतरयकारश्रुतिर्भवति। तित्थयरो। सयढं। नयरं। मयङ्को। कयग्गहो। कायमणी। रययं। पयावई। रसायलं। पायालं। मयणो। गया। नयणं। दयालू। लायण्णं। अवर्ण इति किम्—सउणो। पउणो। पउरं। राईवं। निहओ। निनओ। वाऊ। कई। अवर्णादित्येव—लोअस्स। देअरो। क्वचिद् भवति—पियइ।

स्वरात्परस्य यकारस्य लोपादिविधिः

अधुना स्वरात्परस्य यस्य स्थाने यानि लोपागमादीनि
कार्याणि भवन्ति तानि प्रदर्शयत्याचार्यः।

मस्य स्थाने। मकारस्य लुकि सति तत्स्थाने अनुनासिको भवति। यत्र मकार आसीत् तत्र अनुनासिको जायते।

१७८—**यमुना**। यमुना+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, १७८ सू० मकारस्य लोपः, लोपे सति तस्य स्थाने अनुनासिकः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**जँउणा** इति सिद्धम्। **चामुण्डा**। चामुण्डा+सि। मकारस्य लुक्, तस्य स्थाने च अनुनासिकः, सेर्लोपे—**चाउँडा** इति सिद्धम्। **कामुकः**। कामुक+सि। मकारस्य लुक्, तस्य स्थाने च अनुनासिकः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**काउँओ** इति सिद्धम्। **अतिमुक्तकम्**। अतिमुक्तक+सि। २०८ सू० तकारस्य णकारः, मकारस्य लुक्, तस्य च स्थाने अनुनासिकः, ३४८ सू० संयुक्तस्य ककारस्य लोपः, १७७ सू० असंयुक्तककारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**अणिउँतयं** इति सिद्धम्। **अतिमुक्तकम्**। अतिमुक्तक+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, २६ सू० अनुस्वारागमः, संयुक्तककारस्य असंयुक्तककारस्य च लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**अइ-मुंतयं** इति सिद्धम्। अत्र बहुलाधिकारात् १७८ सू० मकारस्य लुक्, तस्य च स्थाने अनुनासिको न जातः। तथा—यत्र २६ सू० बहुलाधिकारात् अनुस्वारागमो न जातः तत्र—३६० सू० तकारस्य द्वित्वे—**अइ-मुत्तयं** इति भवति।

१७९—**शपथः**। शपथ+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० पकारस्य लुकि—प्राप्तौ १७९ सू० तन्निषेधे २३१ सू० पकारस्य वकारे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सवहो** इति सिद्धम्। **शापः**। शाप+सि। शकारस्य सकारः, पकारस्य लोपप्राप्तिः, प्रस्तुत-सूत्रेण तन्निषेधे, पकारस्य वकारे, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सावो** इति सिद्धम्। **अनादेरित्येवेति**। अनादौ विद्यमानस्यैव पकारस्यायं लोपनिषेधः। यश्चादौ विद्यमानः पकारस्तत्कृते नाऽयं निषेधः। यथा—**परपुष्टः**। परैः पुष्टः परपुष्टः। परपुष्ट+सि।। अत्र वाक्यापेक्षया पुष्टस्य भिन्न-पदत्वादनादेरभावात् पकारस्य १७९ सू० लोपनिषेधो न जातः, किन्तु **बहुलाधिकारात्** १७७ सू० पकारस्य लोपे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पर-उट्ठो** इति सिद्धम्।

१८०—**लघुप्रयत्नतरयकारश्रुतिः**। प्रस्तुतसूत्रेण अवर्णात्परोऽवशिष्टोऽवर्णो यकारविशिष्टो जायते, तस्य यकारस्य च लघुतर-प्रयत्नो बोध्यः। यथा—**तीर्थंकरः**। तीर्थंकर+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, थकारस्य द्वित्वम्, पूर्वथकारस्य तकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**तित्थयरो** इति सिद्धम्। **शकटम्**। शकट+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, १९६ सू० टकारस्य ढकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सयढं** इति सिद्धम्। **नगरम्**। नगर+सि। १७७ सू० गकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नयरं** इति सिद्धम्। **मृगाङ्कः**। मृगाङ्क+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मयङ्को** इति सिद्धम्। **कचग्रहः**। कचग्रह+सि। १७७ सू० चकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कयग्गहो** इति सिद्धम्।

काचमणिः। काचमणि+सि। १७७ सू० चकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः,

५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**कायमणी**। इति सिद्धम्। **रजतम्**। रजत+सि। १७७ सू० जकारस्य तकारस्य च लोपः, प्रस्तुतसूत्रेण उभयत्रापि यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, ५१४ सू० मकारस्यानुस्वारे—**रययं** इति सिद्धम्। **प्रजापतिः**। प्रजापति+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १७७ सू० जकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**पयावई** इति सिद्धम्। **रसातलम्**। रसातल+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, यकारस्य श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्य अनुस्वारे—**रसायलं** इति सिद्धम्। **पातालम्**। पाताल+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, यकारस्य श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पायालं** इति सिद्धम्। **मदनः**। मदन+सि। १७७ सू० दकारस्य लोपः, यकारस्य श्रुतिः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मयणो** इति सिद्धम्। **गदा**। गदा+सि। दकारस्य लोप, यकारस्य श्रुतिः, सेर्लोपे—**गया** इति सिद्धम्। **नयनम्**। नयन+सि। १७७ सू० यकारस्य लोपः, यकारस्य श्रुतिः, नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नयणं** इति सिद्धम्। **दयालुः**। दयालु+सि। १७७ सू० यकारस्य लोपः, यकारस्य श्रुतिः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**दयालू** इति सिद्धम्। **लावण्यम्**। लावण्य+सि। १७७ सू० वकारस्य लोपः, वकारोत्तर-अकारो यकार-विशिष्टः, ३४८ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**लायण्णं** इति सिद्धम्। **अवर्ण इति किम्**। यदि ककारादि-व्यञ्जनानां लोपे सति अवशिष्टोऽवर्णो भवेत्तदैवासौ यकारविशिष्टो भवति नान्यथा। अधस्तनेषु अष्टसु प्रयोगेषु शेषस्य अवर्णात्मकत्वाभावात् १८० सूत्रेण यकारविशिष्टोऽकारो न जातः, यथा—**शकुनः**। शकुन+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सउणो** इति सिद्धम्। **प्रगुणः**। प्रगुण+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पउणो** इति सिद्धम्। **प्रचुरम्**। प्रचुर+सि। रेफस्य लोपः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पउरं** इति सिद्धम्। **राजीवम्**। राजीव+सि। १७७ सू० जकारस्य लोपः। सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**राईवं** इति सिद्धम्। **निहतः**। निहत+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निहओ**[1] इति सिद्धम्। **निनदः**। निनद+सि। १७७ सू० दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निनओ** इति सिद्धम्। **वायुः**। वायु+सि। १७७ सू० यकारस्य लोपः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**वाऊ** इति सिद्धम्। **कति**। कति+जस्। तकारस्य लोपः, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वस्य दीर्घे—**कई** इति सिद्धम्। यत्र **कवि** इतिच्छाया तत्र तु **कवि+सि** इति स्थिते १७७ सू० वकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**कई** इति सिद्धम्। **अवर्णादित्येव**। यदि अवशिष्टोऽवर्णोऽवर्णपरवर्ती भवेत्तदैवासौ यकार-विशिष्टो भवति, नान्यथा। यथा—**लोकस्य**। लोक+ङस्। १७७ सू० ककारस्य लोपः, ४६६ सू० ङसः "स्स" इत्यादेशे—**लोअस्स** इति जातम्। अत्र शेषभूतस्यावर्णस्य अवर्णात् परत्वाभावात् १८० सू० यकारस्यागमो न जातः। **देवरः**। देवर+सि। १७७ सू० वकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**देअरो** इति सिद्धम्। अत्रापि शेषभूतस्य अवर्णस्य अवर्णपरत्वाभावात् यकारस्यागमो न जातः। **क्वचिद्भवति**। अवशिष्टोऽवर्णो यदि

---

१. डिति परेऽवर्णलोपेनाऽवर्णस्यासत्त्वान्न यकारश्रुतिर्जाता।

अवर्णात् परो भवेत्तदैव तस्य यकारागमो भवति, नान्यथा, किन्तु बहुलाधिकारात् क्वचिदवर्णेतर-स्वर-परोऽप्यवशिष्टावर्णो यकारविशिष्टो भवति। यथा—**पिबति**। २३७ सू० बकारस्य वकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, बहुलाधिकारात् १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**पिअइ** इति सिद्धम्। अत्र शेषभूतस्यावर्णस्य अवर्णपरत्वाभावेऽपि बाहुल्यात् अकारस्य यकारागमोऽभूद्।

"स्वर से परे रहने वाले यकार की लोप आदि विधि"

अब स्वर से परे रहने वाले यकार के स्थान पर जो भी लोप एवं आगम आदि कार्य होते हैं उनको प्रदर्शित किया जा रहा है।

१७८—**यमुना, चामुण्डा, कामुक** और **अतिमुक्तक** शब्दों के मकार का लोप और लुप्त मकार के स्थान में अनुनासिक हो जाता है। जैसे—१—**यमुना**=जउँणा (यमुना नदी, यमुना नामक कोई नारी), २—**चामुण्डा**=चाउँडा (चामुण्डा नामक देवी), ३—**कामुकः**=काउँओ (इच्छुक, कामी), ४—**अतिमुक्तकः**=अणिउँतयं (मुनिवर अतिमुक्तक कुमार) इन शब्दों में मकार का लोप हो कर उसके स्थान पर अनुनासिक किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर प्रस्तुत सूत्र से मकार का लोप और उस के स्थान पर अनुनासिक नहीं भी होता। जैसे—**अतिमुक्तकम्**=अइमुंतयं, अइमुत्तयं। यहां पर मकार के स्थान में अनुनासिक नहीं हो सका।

१७९—अवर्ण से परे, अनादि (आदि में अविद्यमान) पकार का लोप नहीं होता। जैसे—१—**शपथः**=सवहो (सौगन्ध), २—**शापः**=सावो (शाप, बद दुआ) यहां १७७ सूत्र से पकार का लोप होना था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने उसका निषेध कर दिया। सूत्रकार ने "अनादि पकार" का जो निर्देश किया है उस का अभिप्राय इतना ही है कि १—**पर-पुष्टः**=पर-उट्ठो (अन्य से पालित, कोयल) आदि शब्दों में प्रथम-पकार का लोप न हो जाए। अनादि पकार कहने से यहां पर आदि में विद्यमान पकार का लोप नहीं हो सका।

१८०—१७७ सूत्र से ककारादि व्यञ्जनों का लोप होने पर अवशिष्ट अवर्ण यदि अवर्ण से परे हो तो वह लघुप्रयत्नतर (लघु प्रयत्न वाले) यकार की श्रुति वाला होता है, अर्थात् वह अवर्ण यकार-विशिष्ट अवर्ण बन जाता है। जैसे—१—**तीर्थकरः**=तित्थयरो (चतुर्विध तीर्थ के संस्थापक), २—**शकटम्**=सयढं (छकड़ा), ३—**नगरम्**=नयरं (शहर), ४—**मृगाङ्कः**=मयङ्को (चन्द्र), ५—**कचग्रहः**=कयग्गहो (केशों का ग्रहण), ६—**काचमणिः**=कायमणी (रत्न-विशेष), ७—**रजतम्**=रययं (चांदी), ८—**प्रजापतिः**—पयावई (कुम्हार, ब्रह्मा), ९—**रसातलं**=रसायलं (पृथ्वी के नीचे का अन्तिम भाग), १०—**पातालम्**=पायालं (अधः लोक), ११—**मदनः**=मयणो (कामदेव), १२—**गदा**=गया (गुर्ज), १३—**नयनम्**=नयणं (नेत्र), १४—**दयालुः**=दयालू (दया-युक्त व्यक्ति), १५—**लावण्यं**=लायण्णं (सौन्दर्य) यहां पर १७७ सूत्र से ककारादि व्यञ्जनों के लुप्त हो जाने पर अवशिष्ट अकार यकार-शिष्ट हो गया है। सूत्रकार ने अवशिष्ट अवर्ण जो कहा है इस का कारण इतना ही है कि अवर्ण भिन्न अवशिष्ट स्वर यकार-विशिष्ट न हो जाएं। जैसे—१—**शकुनः**=सउणो (पक्षी, शुभाशुभ, सूचक बाहुस्पन्दन आदि शकुन), २—**प्रगुणः**=पउणो (पटु, निर्दोष), ३—**प्रचुरम्**=पउरं (पर्याप्त), ४—**राजीवम्**=राईवं (कमल), ५—**निहतः**=निहओ (मारा हुआ), ६—**निनदः**=निनओ (ध्वनि, कोलाहल), ७—**वायुः**=वाऊ (हवा), ८—**कति**=कई (कितने), यहां अवशिष्ट अवर्ण नहीं है अतः

प्रस्तुत सूत्र से अवशिष्ट अवर्णेतर स्वर यकार-युक्त नहीं बन सके। वृत्तिकार फरमाते हैं कि अवशिष्ट अवर्ण भी अवर्ण से परे होना चाहिए, यदि अवशिष्ट अवर्ण, अवर्ण से आगे नहीं होगा तो वहां पर भी इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी। जैसे—१—**लोकस्य**=लोअस्स (लोक का), २—**देवरः**=देअरो (पति का छोटा भाई) यहां अवशिष्ट अवर्ण तो है, किन्तु यह अवर्ण से परे नहीं है। अतः यहां प्रस्तुत सूत्र से अवशिष्ट अवर्ण यकार-विशिष्ट नहीं हो सका। **बहुलाधिकार** से कहीं पर अवर्ण से परे न रहने पर भी अवशिष्ट अवर्ण यकार-विशिष्ट हो जाता है। जैसे—**पिबति**=पियइ (वह पीता है) यहां पर अवशिष्ट अवर्ण इकार से परे है तथापि जो यह यकार-विशिष्ट हो गया इस का कारण बहुलाधिकार ही समझना चाहिए।

अथ ककारादेश-विधिः

१८१—कुब्ज-कर्पर-कीलके कः खोऽपुष्पे ।८। १ । १८१ । एषु कस्य खो भवति, पुष्पं चेत् कुब्जाभिधेयं न भवति। खुज्जो। खप्परं। खीलओ। अपुष्प इति किम्— बंधेउं कुज्जय-पसूणं। आर्षेऽन्यत्रापि—कासितं, खासिअं। कसितं, खसिअं।

१८२—मरकत-मदकले गः कन्दुके त्वादेः । ८ । १ । १८२ । अनयोः कस्य गो भवति, कन्दुके त्वाद्यस्य कस्य। मरगयं। मयगलो। गेन्दुअं।

१८३—किराते च । ८ । १ । १८३ । किराते कस्य चो भवति। चिलाओ। पुलिन्द एवायं विधिः। कामरूपिणि तु नेष्यते—नमिमो हर—किरायं।

१८४—शीकरे भ-हौ वा । ८ । १ । १८४ । शीकरे कस्य भहौ वा भवतः। सीभरो, सीहरो। पक्षे—सीअरो।

१८५—चन्द्रिकायां मः । ८ । १ । १८५ । चन्द्रिकाशब्दे कस्य मो भवति। चन्दिमा।

१८६—निकष-स्फटिक-चिकुरे हः । ८ । १ । १८६ । एषु कस्य हो भवति। निहसो। फलिहो। चिहुरो। चिहुरशब्दः संस्कृतेऽपि इति दुर्गः।

अथ ककारादेश-विधिः

साम्प्रतमादिमध्यावसानेषु विद्यमानस्य ककारस्य स्थाने ये आदेशा भवन्ति तान् प्रदर्शयत्याचार्यः।

१८१—**कुब्जः**। कुब्ज+सि। १८१ सू० ककारस्य खकारः, बाहुल्येन २३७ सू० बकारस्य वकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वम्, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खुज्जो** इति सिद्धम्। अत्र कुब्जशब्दो न पुष्पार्चकोऽतोऽस्य ककारस्य खकारो जातः। **कर्परम्**। कर्पर+सि। १८१ सू० ककारस्य खकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**खप्परं** इति सिद्धम्। **कीलकः**। कीलक+सि। १८१ सू०

ककारस्य खकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खीलओ** इति सिद्धम्। **अपुष्प इति किम्**। कुब्जशब्दः पुष्पार्थको न भवेदित्यस्य कथनस्य किं कारणमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यद् यत्र कुब्ज-शब्दः पुष्पार्थको भवति तत्रानेन सूत्रेण ककारस्य खकारो न जायते। यथा—**बन्धितुं कुब्जक-प्रसूनं**। **बन्धितुं**। बन्ध् बन्धने। ६१०सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ५।१।१३। सू० तुम्—प्रत्ययः, ६४६ सू० पूर्वाकारस्य एकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**बन्धेउं** इति सिद्धम्। **कुब्जक-प्रसूनं**। कुब्जकं च तत्प्रसूनं कुब्जकप्रसूनं। कुब्जकप्रसून+अम्। **बहुलाधिकारात्** २३७ सू० बकारस्य वकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वम्, अत्र कुब्जकशब्दः पुष्पार्थकः, अतएव १८१ सू० ककारस्य खकारो न जातः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १८० सू० यकारस्य श्रुतिः। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**कुज्जयपसूणं** इति सिद्धम्। **आर्षेऽन्यत्रापि**। आर्षप्राकृते अन्यत्रापि—सूत्रोक्तशब्दातिरिक्त-शब्दस्यापि ककारस्य खकारो भवति। **कासितं तथा कसितम्**। इत्यनयोः १८१ सूत्रेऽनुक्तयोरपि शब्दयोः आर्षत्वात् ककारस्य खकारो जातः, तद्यथा—**कासितम्**। कासित+सि। आर्षत्वादत्र—१८१ सू० ककारस्य खकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**खासिअं** इति सिद्धम्। **कसितम्**। कसित+सि। आर्षत्वादत्रापि १८१ सू० ककारस्य खकारः, तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**खसिअं** इति सिद्धम्।

१८२—**मरकतम्**। मरकत+सि। १८२ सू० ककारस्य गकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारस्य श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**मरगयं** इति सिद्धम्। **मदकलः**। मदकल+सि। १७७ सू० दकारस्य लोपः, ककारस्य गकारः, यकारस्य श्रुतिः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मयगलो** इति सिद्धम्। **कन्दुकम्**। कन्दुक+सि। आद्यककारस्य गकारः, ५७ सू० आदेरकारस्य एकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**गेन्दुअं** इति सिद्धम्।

१८३—**किरातः**। किरात+सि। १८३ सू० ककारस्य चकारः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**चिलाओ इति सिद्धम्। पुलिन्दे एवायं विधिः**। यत्र किरातस्य पुलिन्दः—भिल्लकः इत्यर्थो भवेत्,तत्रैव ककारस्य चकारो भवति। यत्र तु कामरूपी,स्वेच्छया नानाविधं रूपं धारयितुं यः समर्थः इत्यर्थो भवति, तत्र तु ककारस्य चकारो न भवति। यथा—**नमामो हर-किरातं**। **नमामः**। नम्-नमने। नम्+मस्। ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६३३ सू० मसः "मो" इत्यादेशः, ६४४ सू० अकारस्य इकारे—**नमिमो** इति सिद्धम्। **हर-किरातं**। हरश्चासौ किरातः-हर-किरातः। हरकिरात+अम्। १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारस्य श्रुतिः, ४६४ सू० अमोऽकारस्य लोपः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**हरकिरायं** इति सिद्धम्। **नमिमो हरकिरायं**—अत्र किरातशब्दस्य कामरूपी इत्यर्थोऽस्ति, अतएव १८३ सू० निर्दिष्टं कार्यं न जातम्।

१८४—**शीकरः**। शीकर+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १८४ सू० ककारस्य वैकल्पिकः भकार,ः हकारश्च। आदेशाभावे—१७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सीभरो, सीहरो, सीअरो** इति सिद्धम्।

१८५—**चन्द्रिका**। चन्द्रिका+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १८५ सू० ककारस्य मकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**चन्दिमा** इति सिद्धम्।

१८६—**निकषः**। निकष+सि। १८६ सू० ककारस्य हकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः,

४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निहसो** इति सिद्धम्। **स्फटिकः**। स्फटिक + सि, १८६ सू० ककारस्य हकारः, ३४८ सू० आदेः सकारस्य लोपे, १६७ सू० टकारस्य लकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे—**फलिहो** इति सिद्धम् । **चिकुरः**। चिकुर + सि। ककारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**चिहुरो** इति सिद्धम् । **चिहुर-शब्दः संस्कृतेऽपि**। चिहुरशब्दोऽपि संस्कृते विद्यते। इति दुर्गाचार्यस्य मतम् ।

क के स्थान में होने वाले आदेश

आदि, मध्य और अन्त में विद्यमान ककार के स्थान में जो आदेश होते हैं अब सूत्रकार उन्हें प्रदर्शित कर रहे हैं।

१८१—**कुब्ज, कर्पर**, और **कीलक** इन शब्दों के ककार को खकार हो जाता है, किन्तु कुब्ज शब्द पुष्पार्थक नहीं होना चाहिए। जैसे—१—**कुब्जः**=खुज्जो (कुबड़ा), २—**कर्परम्**=खप्परं (भिक्षापात्र, खोपड़ी, घड़े का अवयव), ३—**कीलकः**=खीलओ (खूंटी) यहां ककार को खकार किया गया है। सूत्र में "**अपुष्पे**" यह कह कर पुष्पार्थक कुब्ज शब्द के ककार को खकार न करने का जो संकेत किया है उसी के फलस्वरूप—**बन्धितुम् कुब्ज-प्रसूनम्**=बन्धेउं कुज्जयपसूणं (कुब्ज—झुके हुए या थोड़ी कोमलता वाले प्रसून को बांधने के लिए) यहां पर कुब्ज शब्द के ककार को खकारादेश नहीं हो सका। यदि कुब्ज शब्द प्रसून का विशेषण न होता तो यहां पर भी प्रस्तुत सूत्र से ककार को खकार हो जाता। **आर्षप्राकृत** में सूत्रोक्त शब्दों के अतिरिक्त कासित आदि शब्दों के ककार को भी खकारादेश हो जाता है। जैसे—१—**कासितम्**=खासिअं (खांसी), २—**कसितम्**=खसिअं (खांसी) यहां आर्ष प्राकृत के कारण ककार को खकार कर दिया गया है।

१८२—**मरकत** और **मदकल** इन के तथा **कन्दुक** शब्द के आदिम ककार को गकार होता है। जैसे—१—**मरकतम्**=मरगयं (हरितवर्ण वाला रत्नविशेष), २—**मदकलः**=मयगलो (नशे में चूर), ३—**कन्दुकः**=गेन्दुअं (गेन्द) यहां ककार को गकार किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में पठित "**आदेः**" यह पद स्पष्ट रूप से प्रकट कर रहा है कि ३६ सूत्र का अधिकार यहां नहीं आता। ३६ सूत्र में भी स्पष्ट रूप से यह कह दिया गया था कि इस सूत्र का अधिकार १७७वें सूत्र से पूर्व तक ही समझना चाहिए।

१८३—**किरात** शब्द के ककार को चकार होता है। जैसे—१—**किरातः**=चिलाओ (भील, एक जंगली जाति) यहां ककार को चकार किया गया है। ध्यान रहे कि किरात शब्द यदि पुलिन्द-भील इस अर्थ का बोधक हो तभी इस सूत्र से उस के ककार को चकारादेश होता है। इसके विपरीत यदि यह शब्द कामरूपी (यथेच्छ रूप बनाने वाला) इस अर्थ का बोधक होगा तब इस में इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे—**नमामः हर-किरातम्**=नमिमो हर-किरायं (काम-रूपी शिव को हम नमस्कार करते हैं) यहां किरात शब्द भील का वाचक नहीं है, अतः इसके ककार को खकार नहीं हो सका।

१८४—**शीकर** शब्द के ककार को भकार और हकार विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**शीकरः**=सीभरो, सीहरो। जहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, वहां पर सीअरो (पवन से फैंका हुआ जल, फुहार) यह रूप सिद्ध होता है।

१८५—**चन्द्रिका** शब्द के ककार को मकार होता है। जैसे—**चन्द्रिका**=चन्दिमा (चन्द्र की प्रभा, ज्योत्स्ना) यहां पर ककार को मकार हो गया।

१८६—**निकष, स्फटिक** और **चिकुर** के ककार को हकारादेश होता है। जैसे—१—**निकषः**= निहसो (कसौटी का पत्थर), २—**स्फटिकः**=फलिहो (स्फटिक मणि), ३—**चिकुरः**=चिहुरो (केश) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से ककार को हकार किया गया है। दुर्ग नामक आचार्य कहते हैं कि 'चिहुर' शब्द संस्कृत-भाषा में भी पाया जाता है।

अथ खादि-व्यञ्जनादेश-विधिः

१८७—ख-घ-थ-ध-भाम् । ८ । १ । १८७ । स्वरात्परेषामसंयुक्तानामनादिभूतानां ख घ थ ध भ इत्येतेषां वर्णानां प्रायो हो भवति । ख-साहा, मुहं, मेहला, लिहइ । घ-मेहो । जहणं । माहो । लाहइ । थ-नाहो । आवसहो । मिहुणं । कहइ । ध-साहू । बाहो । बहिरो । बाहइ । इन्दहणू । भ-सहा । सहावो । नहं । थणहरो । सोहइ । स्वरादित्येव—संखो । संघो । कंथा । बंधो । खंभो । असंयुक्तस्येत्येव—अक्खइ । अग्घइ । कत्थइ । सिद्धओ । बन्धइ । लब्भइ । अनादेरित्येव—गज्जन्ते खे मेहा । गच्छइ घणो । प्राय इत्येव—सरिसव-खलो । पलय-घणो । अथिरो । जिण-धम्मो । पणट्ठ-भओ । नभं ।

१८८—पृथकि धो वा । ८ । १ । १८८ । पृथक्—शब्दे थस्य धो वा भवति । पिधं, पुधं । पिहं, पुहं ।

१८९—शृङ्खले खः कः । ८ । १ । १८९ । शृङ्खले खस्य को भवति । संकलं ।

१९०—पुन्नाग-भागिन्योर्गो मः । ८ । १ । १९० । अन्योर्गस्य मो भवति । पुन्नामाइं वसन्ते । भामिणी ।

१९१—छागे लः । ८ । १ । १९१ । छागे गस्य लो भवति । छालो । छाली ।

१९२—ऊत्वे दुर्भग-सुभगे वः । ८ । १ । १९२ । अनयोरूत्वे गस्य वो भवति । दूहवो । सूहवो । ऊत्व इति किम्—दुहओ, सुहओ ।

१९३—खचित-पिशाचयोश्चः स-ल्लौ वा । ८ । १ । १९३ । अनयोश्चस्य यथासंख्यं स ल्ल इत्यादेशौ वा भवतः । खसिओ, खइओ । पिसल्लो, पिसाओ ।

१९४—जटिले जो झो वा । ८ । १ । १९४ । जटिले जस्य झो वा भवति । झडिलो, जडिलो ।

१९५—टो डः । ८ । १ । १९५ । स्वरात्परस्यासंयुक्तस्यानादेष्टस्य डो भवति । नडो । भडो । घडो । घडइ । स्वरादित्येव—घंटा । असंयुक्तस्येत्येव—खट्टा । अनादेरित्येव—टक्को । क्वचिन्न भवति—अटति, अटइ ।

१९९—सटा-शकट-कैटभे ढः । ८ । १ । १९९ । एषु टस्य ढो भवति । सढा । सयढो । केढवो ।

१९७—स्फटिके लः । ८ । १ । १९७ । स्फटिके टस्य लो भवति । फलिहो ।

१९८—चपेटा-पाटौ वा ८ । १ । १९८ । चपेटा-शब्दे ण्यन्ते च पटिधातौ टस्य लो वा भवति । चविला, चविडा । फालेइ, फाडेइ ।

अथ खादि-व्यञ्जनादेश-विधिः

ख, ग, घ, च, ज, ट, थ, ध, भ, एषां वर्णानां स्थाने यथास्थानं यान्यादेशादीनि कार्याणि भवन्ति तानि प्रदर्शयत्याचार्यः ।

१८७—शाखा । शाखा+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्लोपे—**साहा** इति सिद्धम् । **मुखम्** । मुख+सि । खकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**मुहं** इति सिद्धम् । **मेखला** । मेखला+सि । खकारस्य हकारः, सेर्लोपे । **मेहला** इति सिद्धम् । **लिखति** । लिख् लिखने । लिख्+तिव् । खकारस्य हकारः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**लिहइ** इति सिद्धम् । **मेघः** । मेघ+सि । घकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मेहो** इति सिद्धम् । **जघनम्** । जघन+सि । घकारस्य हकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**जहणं** इति सिद्धम् । **माघः** । माघ+सि । **माहो** इति **मेहो** इतिवत् साध्यम् । **श्लाघते** । श्लाघृ-श्लाघायाम् । श्लाघ्+ते । ३४८ सू० शकारस्य लोपः, घकारस्य हकारः, धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे—**लाहइ** इति सिद्धम् । **नाथः** । नाथ+सि । **नाहो** इति **माहो** इतिवत् साध्यम् । **आवसथः** । आवसथ+सि । **आवसहो** इति **नाहो** इतिवत् साध्यम् । **मिथुनम्** । मिथुन+सि । थकारस्य हकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**मिहुणं** इति सिद्धम् । **कथयति** । कथ्-कथने । कथ्+णिग्+तिव् । थकारस्य हकारः, धातोरन्तेऽकारागमः, ६३८सू० णिगः "अ" इत्यादेशः, बाहुल्यात्—६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घो न जातः, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपः, ततः—**कह्+अ+तिव्** इति स्थिते—अज्झीनं परेण संयोज्यम्, तिवः इचादेशे—**कहइ** इति सिद्धम् । **साधुः** । साधु+सि । धकारस्य हकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे - **साहू** इति सिद्धम् । **व्याधः** । व्याध+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, धकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वाहो** इति सिद्धम् । **बधिरः** । बधिर+सि । धकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**बहिरो** इति सिद्धम् । **बाधते** । बाध्-बाधने । बाध्+ते । १८७ सू० धकारस्य हकारः, ६१० सू० धातोरन्ते अकारागमः, ६२८ सू० "ते" इत्यस्य इचादेशे—**बाहइ** इति सिद्धम् । **इन्द्रधनुः** । इन्द्रस्य धनुः-इन्द्रधनुः । इन्द्रधनुष्+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, धकारस्य हकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ११ सू० षकारस्य लोपः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**इन्दहणू** इति सिद्धम् । **सभा** । सभा+सि । भकारस्य हकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सहा** इति सिद्धम् । **स्वभावः** । स्वभाव+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, भकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे -**सहावो** इति सिद्धम् । **नभः** । नभस्+सि । भकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नहं** इति सिद्धम् । **स्तनभरः** ।

स्तनयोर्भरः-स्तनभरः। स्तनभर+सि। ३१६ सू० स्तस्य थकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, भकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**थणहरो** इति सिद्धम्। **शोभते**। शुभ्+ते। २६० सू० शकारस्य सकारः, ६०६ सू० उकारस्य ओकारः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, भकारस्य हकारः, ६२८ सू० "ते" इत्यस्य -इचादेशे **सोहइ** इति सिद्धम्। **स्वरादित्येव**। यदि खकारादयो व्यंजनाः स्वर-परवर्तिनो भवेयुस्तदैव तेषां हकारादेशो भवति, नान्यथा। यथा - **शंखः**। शंख + सि। शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संखो** इति सिद्धम्। अत्र एकारस्य स्वरात्पर-त्वाभावात् हकारो न जातः। **संघः**। संघ+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **संघो** इति सिद्धम्। **कंथा**। कंथा+सि। **सेर्लोपे** **कंथा** इति सिद्धम्। **बन्धः**। । बन्ध+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**बन्धो** इति सिद्धम्। **स्तम्भः**। स्तम्भ+सि। २७६ सू० स्तस्य खकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे —**खंभो** इति सिद्धम्। उक्तेषु चतुर्षु प्रयोगेषु घकारस्य, थकारस्य, धकारस्य, भकारस्य च स्वरात्परत्वाभावात् १८७ सू० हकारो न जातः। **असंयुक्तस्येव**। यदि खका-रादयो वर्णा असंयुक्ताः-संयोगशून्या भवेयुस्तदैव तेषां हकारादेशो जायते, नान्यथा। अधस्तनेषु षड्सु प्रयोगेषु खकारादीनां संयुक्तत्वात् १८७ सूत्रेण हकारो न जातः। तथाहि—**आख्याति**। आङ् (आ)-पूर्वकः ख्या-धातुः-कथने। आख्या+तिव्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४६ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ६०६ सू० आकारस्य अकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**अक्खइ** इति सिद्धम्। **राजते**। राज्+दीप्तौ। राज्+ते। ७७१ सू० राज्धातोः "अग्घ" इत्यादेशे—६२८ सू० "ते" इत्यस्य इचादेशे—**अग्घइ** इति सिद्धम्। **कत्थति**। कत्थ् श्लाघायाम्। कत्थ्+तिव्। धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**कत्थइ** इति सिद्धम्। **सिध्रकः**। सिध्रक+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सिद्धओ** इति सिद्धम्। **बध्नाति**। बन्ध्-बन्धने। बन्ध्+तिव्। ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, तिवः स्थाने इचादेशे—**बन्धइ** इति सिद्धम्। **लभ्यते**। लभ्। लाभे। लभ्+क्य+ते। ६२० सू० भकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वम्, क्यस्य लुक् च, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारः, ते इत्यस्य इचादेशे—**लब्भइ** इति सिद्धम्। **अनादेरित्येव**। यदा खकारादयोऽनादयो भवेयुस्तदैव तेषां हकारो भवति, नान्यथा। यथा—**गर्जन्ति खे मेघाः**। **गर्जन्ति**। गर्ज् गर्जने-अव्यक्तशब्दे। गर्ज्+अन्ति। रेफस्य लोपः, जकारस्य द्वित्वम्, धातोरन्तेऽका-रागमः, ६३१ सू० "अन्ति" इत्यस्य "न्ते" इत्यादेशे- **गज्जन्ते** इति सिद्धम्। **खे**। ख+ङि। ५०० सू० 'ङि' इत्यस्य "ङे" (ए) इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खे** इति सिद्धम्। अत्र खका-रस्य पदादित्वात् १८७ सू० हकारादेशो न जातः। **मेघाः**। मेघ+जस्। १८७ सू० घकारस्य हकारः, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे—**मेहा** इति सिद्धम्। **गच्छति घनः**। **गच्छति**। गम्लृ-गतौ। गम्+तिव्। ८८६ सू० मकारस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वम्, पूर्वछकारस्य चकारः, तिवः स्थाने इचादेशे -**गच्छइ** इति सिद्धम्। **घनः**। घन+सि। अत्र घकारस्य पदादित्वात् १८७ सू० हकारो न जातः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **घणो** इति सिद्धम्। **प्रायरित्येव**। प्रस्तुतसूत्रे १७१ सूत्रतः 'प्रायः' इति पदस्यानुवृत्तिरायाति। अतोऽनेन सूत्रेण विहितं हकारविधानं न सार्वत्रिकं बोध्यम्। प्रायो-(बहुलं)-ग्रहणात् केषुचित् प्रयोगेषु खकारादिव्यञ्जनानां हकारादेशो न भवति। अतएव निम्नोक्तेषु प्रयोगेषु प्रस्तुतसूत्रेण खकारादीनां हकारो न जातः, तथा हि=**सर्षपखलः**। सर्षपाणां खलः सर्षपखलः। सर्षपखल+सि। ३७६ सू० षकारात्पूर्वः इकारागमः,

२६० सू० षकारस्य सकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सरि-सव—खलो** इति सिद्धम्। **प्रलयघनः**। प्रलयस्य घनः-प्रलयघनः । प्रलयघन+सि । रेफस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पलयघणो** इति सिद्धम् । **अस्थिरः**। अस्थिर+सि । ३४८ सू० सकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अथिरो** इति सिद्धम् । **जिन-धर्मः**। जिनानां धर्मः-जिनधर्मः । जिनधर्म+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जिणधम्मो** इति सिद्धम् । **प्रनष्टभयः**। प्रनष्टं भयं यस्य यस्मात् वा सः प्रनष्टभयः । प्रनष्टभय+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३०५ सू० "ष्टस्य" ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्व-ठकारस्य टकारः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पणट्ठभओ** इति सिद्धम्। **नभः**। नभस्+सि। ११ सू० सकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नभं** इति सिद्धम् । प्रस्तुत-सूत्रे प्रायोग्रहणादेषु शब्देषु खकारादि-व्यञ्जनानां हकारादेशो नाभूद् ।

१८८—**पृथक्** । अव्ययपदमिदम् । १३७ सू० ऋकारस्य इकारः, उकारश्च, १८८ सू० थकारस्य वैकल्पिकः धकारः, धकाराभावे –१८७ सू० थकारस्य हकारः, २४ सूत्रेण "**बहुलाधिकारात् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः**" इति पाठात् ककारस्य मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पिधं, पुधं, पिहं, पुहं** इति सिद्धम् ।

१८९—**शृङ्खलम्**। शृङ्खल+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १८९ सू० खकारस्य ककारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**संकलं** इति सिद्धम्।

१९०—**पुन्नागा वसन्ते**। **पुन्नागाः**। पुन्नाग+जस् । १९० सू० गकारस्य मकारः, ३४ सू० क्लीबत्वम्, ५१५ सू० जसः सानुनासिके इकारे, पूर्वदीर्घे च—**पुन्नामाइँ** इति सिद्धम् । **वसन्ते**। वसन्त+ङि । ५०० सू० अकारात्परस्य "ङेः" डित् एकारः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वसन्ते** इति सिद्धम् । **भागिनी**। भागिनी+सि। गकारस्य मकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**भामिणी** इति सिद्धम्।

१९१—**छागः**। छाग+सि। १९१ सू० गकारस्य लकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे—**छालो**। यत्र **छागी**। तत्र -छागी+सि इति स्थिते गकारस्य लकारे, सेर्लोपे—**छाली** इति सिद्धम्।

१९२ –**दुर्भगः**। दुर्भग+सि। १३ सू० रेफस्य वैकल्पिकः लोपः, ११५ सू० उकारस्य वैकल्पिकः ऊकारः, १९२ सू० गकारस्य वकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दूहवो**। ऊकाराभावे—१९२ सू० गकारस्य वकारोऽपि न जातः, ततःदुर्भग+सि इति स्थिते – रेफस्य लोपे, भकारस्य हकारे, १७७ सू० गकारस्य लोपे पूर्ववदेव—**दुहओ** इति सिद्धम् । **सुभगः** । सुभग+सि । ११३ सू० उकारस्य वैकल्पिकः ऊकारः, गकारस्य वकारः, भकारस्य हकारः, सेर्डोः डिति परे स्वरादेः लोपे **सूहवो**। यत्र ११३ सू० ऊकारो न जातस्तत्र १९२ सू० गकारस्य वकारोऽपि न जातः, किन्तु १७७ सू० गकारस्य लोपे पूर्ववदेव—**सुहओ** इति सिद्धम्।

ऊत्वे इति किम्। यदि दुर्भग-सुभग-शब्दयोरुकारस्य ऊकारो भवति तदैव प्रस्तुतसूत्रेण गकारस्य वकारादेशो जायते, नान्यथा। **दुहओ, सुहओ**। इत्यत्र उकारस्य ऊकाराभावस्तेन प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

१९३ –**खचितः**। खचित+सि। १९३ सू० चकारस्य वैकल्पिकः सकारः १७७ सू० तकारस्य

लोपः, यत्र चकारस्य सकारो न जातस्तत्र १७७ सू० चकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **खसिओ, खइओ** इति सिद्धम्। **पिशाचः** पिशाच+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः १६३ सू० चकारस्य वैकल्पिकः "ल्ल" इत्यादेशः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः। यत्र चकारस्य "ल्ल" इत्यादेशो न जातस्तत्र १७७ सू० चकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पिसल्लो,पिसाओ** इति सिद्धम्।

१६४—जटिलः। जटिल+सि। १६४ सू० जकारस्य वैकल्पिके झकारे, १६५ सू० टकारस्य डकारः,सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **झडिलो**। झकारादेशाभावे—**जडिलो** इति भवति।

१६५—**नटः**। नट+सि। १६५ सू० टकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे नडो इति सिद्धम्। **भटः** भट+सि। **भडो, नडो** इतिवत् साध्यम्। **घटः**। घट+सि–घडो, भडोवत् साध्यम्। **घटते**। घट्—चेष्टायाम्। घट्+ते। १६५ सू० टकारस्य डकारः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० "ते" इत्यस्य इचादेशे घडइ इति सिद्धम्। **स्वरादित्येव**। यदि टकारः स्वरात्परो भवेत्तदैव तस्य डकारादेशो भवति, नान्यथा। यथा—**घंटा**। घंटा+सि—अत्र टकारस्य स्वरात्परत्वाभावात् १६५ सू० टकारस्य डकारो न जातः, सेर्लोपे—**घंटा** इति सिद्धम्। **असंयुक्तस्येत्येव**। यदि टकारोऽसंयुक्तः—संयोग-विकलो भवेत्तदैव तस्य डकारो जायते। संयुक्तस्य टकारस्य न भवति डकारादेशो, यथा—**खट्वा**। खटवा+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपः ३६० सू० टकारस्य द्वित्वम्, सेर्लोपे—**खट्टा** इति सिद्धम्। टकारस्य संयुक्तत्वात् १६५ सू० डकारो न जातः। **अनादेरित्येव**। यदि टकारोऽनादौ वर्तमानः, आदौ अविद्यमानो भवेत्तदैव तस्य डकारादेशो भवति नान्यथा। यथा—**टक्कः**—टक्क+सि। ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **टक्को** इति सिद्धम्। अत्र टकारस्य सादित्वात् डकारो न जातः। **क्वचिन्न भवति**। प्रस्तुतसूत्रेण स्वरात्परवर्तिनोऽनादेरसंयुक्तस्य टकारस्य डकारादेशो विहितः, परन्तु क्वचित् **बहुलाधिकारात्** सूत्रविहितादेशो न भवति। यथा—**अटति**। अट्—गतौ। अट्+तिव्। ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः ६२८ सू० इचादेशे **अटइ** इति सिद्धम्। अत्र टकारस्य १६५ सूत्रेण डकारप्राप्तिरासीत् किन्तु **बहुलाधिकारात्** सा न जाता।

१६६—सटा। सटा+सि। १६६ सू० टकारस्य ढकारः, सेर्लोपे—**सढा** इति सिद्धम्। **शकटः** शकट+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १८० यकारस्य श्रुतिः, टकारस्य ढकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सयढो** इति सिद्धम्। **कैटभः**। कैटभ+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, टकारस्य ढकारः, २४० सू० भकारस्य बकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **केढवो** इति सिद्धम्।

१६७ स्फटिकः। स्फटिक+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, १६७ सू० टकारस्य लकारः, १८६ सू० ककारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**फलिहो** इति सिद्धम्।

१६८—चपेटा। चपेटा+सि। १४६ सू० एकारस्य इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १६८ सू० टकारस्य वैकल्पिकः लकारः, यत्र टकारस्य लकारो न जातस्तत्र १६५ सू० टकारस्य डकारः, ३।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**चविला, चविडा** इति सिद्धम्। **पाटयति**। पट् विदारणे[1]। पट्+णिग्+तिव्। २३२ सू० पकारस्य फकारः, १६८ सू० टकारस्य वैकल्पिकः लकारः, ६३८ सू० णिगः एदादेशः, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**फालेइ**। यत्र लकारो न जातः तत्र १६५ सू० टकारस्य डकारे—**फाडेइ** इति सिद्धम्।

१. विदारणं- द्विधाकरणमित्यर्थः।

खकारादि व्यञ्जनों के स्थान में होने वाले कार्य

ख, ग, घ, च, ज, ट, थ, ध, भ इन वर्णों के स्थान पर होने वाले आदेशों को अब आचार्य प्रदर्शित करते हैं।

१८७—यदि **ख, घ, थ, ध** और भ ये वर्ण स्वर से परे हों, असंयुक्त तथा अनादि हों तो इनके स्थान में प्रायः हकारादेश होता है। **खकार के उदाहरण**—१—**शाखा**=साहा (टहनी),२—**मुखम्**=मुहं (मुख), ३—**मेखला**=मेहला(तड़ागी, कटि-भाग में पहनने का आभूषण), ४—**लिखति**=लिहइ (वह लिखता है), **घकार के उदाहरण**—१—**मेघः**=मेहो (बादल), २—**जघनम्**=जहणं (जंघा, कमर के नीचे का भाग), ३—**माघः**=माहो (माघ का मास, माघ नामक कवि), ४ **श्लाघते**=लाहइ (वह तारीफ करता है) **थकार के उदाहरण**—१—**नाथः**—नाहो (स्वामी), २—**आवसथः**=आवसहो (घर, आश्रम), ३—**मिथुनम्**=मिहुणं (जोड़ा), ४—**कथयति**=कहइ (वह कहता है), **धकार के उदाहरण**—१—**साधुः**=साहू (साधु नाम का व्यक्ति, संसार से विरक्त प्राणी), २—**व्याधः**—वाहो (शिकारी), ३—**बधिरः**=बहिरो (जिसकी श्रोत्रेन्द्रिय काम नहीं करती), ४—**बाधते**=बाहइ (वह बाधा कर रहा है), ५—**इन्द्रधनुषः**=इन्दहणू (सूर्य की किरणों से मेघों पर पड़ने वाला एक बहुरंगी दृश्य, इन्द्र-धनुष)**भकार के उदाहरण**—१—**सभा**=सहा(जहां विचारक लोग सामूहिक रूप से एकत्रित हों, परिषद्), २—**स्वभावः**=सहावो (आदत), ३—**नभः**=नहं (आकाश), ४—**स्तनभरः**=थणहरो (स्तनों का भार), ५—**शोभते**=सोहइ (वह शोभा दे रहा है) यहां क्रमशः खकार, घकार, थकार, धकार और भकार को हकारादेश किया गया है। ध्यान रहे कि अनादि और असंयुक्त खकारादि वर्ण यदि स्वर से परे हों तभी इन को हकार होता है अन्यथा नहीं। जैसे—१—**शंखः**=संखो (शंख), २—**संघः**=संघो (चतुर्विध संघ, या जन-समुदाय), ३—**कंथा**=कंथा (पुराने कपड़ों से बनी हुई गुदड़ी), ४—**बन्धः**=बन्धो (बंधन, जीव-कर्मसंयोग), ५—**खम्भः**—खम्भो (थम्भा) यहां पर इन शब्दों के खकारादि व्यञ्जन स्वर से परे नहीं हैं, अतः इनके स्थान में हकारादेश नहीं हो सका। १—**आख्याति**=अक्खाइ (वह कहता है), २—**अर्घ्यते**=अग्घइ (वह अर्घ्य देता है), ३—**कथयति**=कत्थइ (वह तारीफ करता है), ४—**सिध्रकः**=सिद्धओ (साधु), ५—**बध्नाति**=बन्धइ (वह बांधता है),६—**लभ्यते**=लब्भइ (वह प्राप्त किया जाता है) इन शब्दों में खकारादि व्यञ्जन संयुक्त हैं, अतः प्रस्तुत सूत्र से कोई कार्य नहीं हो सका। १—**गर्जन्ति खे मेघाः**=गज्जन्ते खे मेहा (आकाश में मेघ गरजते हैं), २=**गच्छति घनः**=गच्छइ घणो (मेघ जा रहा है) यहां पर खकार और घकार अनादि नहीं हैं, आदि में विद्यमान हैं, अतः यहां इनको हकार नहीं हो सका। वृत्तिकार ने जो "**प्रायः**" (बहुल) यह पद दिया है, इसका अर्थ है—बहुलता से। भाव यह है कि सभी शब्दों में स्वर से परे असंयुक्त तथा अनादि खकारादि व्यञ्जनों को हकार नहीं होता। जैसे—**सर्षप-खलः**=सरिसव-खलो (सरसों के खलिहान को साफ करने वाला), २—**प्रलय-घनः**=पलयघणो (प्रलयकाल का बादल), ३—**अस्थिरः**=अथिरो (स्थिरता से रहित), ४—**जिनधर्मः**=जिण-धम्मो (जिनेन्द्र भगवान का धर्म), ५—**प्रणष्टभयः**=पणट्ठभओ (जिस का भय नष्ट हो गया है), ६—**नभः**=नहं (आकाश) यहां पर बहुलता के कारण खकारादि व्यञ्जनों को हकार नहीं हो सका।

१८८—**पृथक्** शब्द के थकार को विकल्प से हकार होता है। जैसे—**पृथक्**=पिधं, पुधं, पिहं पुहं (अलग) यहां थकार को विकल्प से हकार किया गया है।

१८९—**शृङ्खल** शब्द के खकार को ककार होता है। जैसे—१—शृङ्खलम्=संकलं (सांकल,

बेड़ी, आभूषण-विशेष) यहां खकार को ककार किया गया है।

१९०—**पुन्नाग** और **भागिनी** शब्द के गकार को पकार होता है। जैसे—१—**पुन्नागा वसन्ते**=पुन्नामाइं वसन्ते (वसन्त में पुन्नाग-मनुष्यों में हाथी अर्थात् प्रसिद्ध पुरुष, सफेद हाथी, सफेद कमल) २—**भागिनी**=भामिणी (हिस्से वाली) यहां पर गकार को मकार किया गया है।

१९१—**छाग** शब्द के गकार को लकार होता है। जैसे— **छागः**=छालो (बकरा), २ **छागी**=छाली (बकरी) यहां गकार को लकार किया गया है।

१९२ **दुर्भग** और **सुभग** शब्द के उकार को ऊकार होने पर गकार को वकार होता है। जैसे १—**दुर्भगः**=दूहवो (खोटे भाग्य वाला), २—**सुभगः**=सूहवो (अच्छे भाग्य वाला) जहां उकार को ऊकारादेश नहीं हो सका वहां पर **दुर्भगः**=दुहओ, **सुभगः**=सुहओ ये रूप बनते हैं।

१९३—**खचित** शब्द के चकार को सकार और **पिशाच** के चकार को 'ल्ल' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**खचितः**=खसिओ खइओ (व्याप्त, विभूषित), २—**पिशाचः**=पिसल्लो, पिसाओ (राक्षस) यहां पर विकल्प से तकार को सकार और चकार को 'ल्ल' यह आदेश किया गया है।

१९४—**जटिल** शब्द के जकार को विकल्प से झकार होता है। जैसे—**जटिलः**=झडिलो, जडिलो (कठिन, मुश्किल) यहां जकार को विकल्प से झकार किया गया है।

१९५—**स्वर** से परे, असंयुक्त और अनादि टकार को डकार होता है। जैसे १—**नटः**=नडो (नट, नाटक करने वाला), २—**भटः**=भडो (योद्धा), ३—**घटः**=घडो (घडा), ४—घटते=घडइ (वह चेष्टा करता है) यहां पर टकार को डकार किया गया है। ध्यान रहे, यह टकार स्वर से परे असंयुक्त तथा अनादि होना आवश्यक है। यदि टकार स्वर से आगे नहीं होगा, संयुक्त एवं आदि में विद्यमान होगा तो इस सूत्र से उस को डकार नहीं हो सकता। जैसे—१—**घण्टा**=घंटा(कांसी का एक वाद्यविशेष, घण्टा) यहां पर टकार अनुस्वार से परे है अतः इसे डकारादेश नहीं हो सका। २—**खट्वा**=खट्टा (चारपाई) यहां पर टकार संयुक्त है, अतः इसे डकारादेश नहीं हो सका। **टक्कः**=टक्को (देश-विशेष) यहां पर टकार को आदि में होने से प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हो सका। बहुलाधिकार से कहीं पर टकार को डकार नहीं भी होता। जैसे—**अटति**=अटइ (वह जाता है) यहां पर टकार स्वर से परे है, असंयुक्त तथा अनादि भी है तथापि उसे डकार नहीं हो सका।

१९६ —**सटा, शकट** और **कैटभ** इन शब्दों के टकार को ढकार होता है। जैसे—१—**सटा**=सढा (सिंह आदि की जटा, संन्यासियों का केश-समूह), २—**शकटः**=सयढो (छकड़ा), ३—**कैटभः**=केढवो (दैत्य-विशेष) यहां पर टकार को ढकार किया गया है।

१९७—**स्फटिक** के टकार को लकार होता है। जैसे **स्फटिकः**=फलिहो (स्फटिक मणि) यहां पर टकार को लकार किया गया है।

१९८—**चपेटा** शब्द तथा **ण्यन्त पट्** धातु के टकार को विकल्प से लकार होता है। जैसे—१—**चपेटा**=चविला, चविडा (चपत), २—**पाटयति**=फालेइ, फाडेइ (वह फाड़ता है) यहां पर टकार को विकल्प से लकार किया गया है।

अथ ठकारादि-व्यञ्जन विधिः

१९९—**ठो ढः । ८ । १ । १९९ ।** स्वरात्परस्यासंयुक्तस्यानादेष्ठस्य ढो भवति। मढो। सढो। कमढो। कुढारो। पढइ। स्वरादित्येव—वेकुंठो। असंयुक्तस्येत्येव—

चिट्ठइ। अनादेरित्येव—हिअए ठाइ।

२००—**अङ्कोठे ल्लः** । ८ ।१। २०० । अङ्कोठे ठस्य द्विरुक्तो लो भवति । अङ्कोल्ल-तेल्ल-तुप्पं ।

२०१—**पिठरे हो वा रश्च डः** । ८ । १ । २०१ । पिठरे ठस्य हो वा भवति तत्संनियोगे च रस्य डो भवति । पिहडो, पिढरो ।

२०२—**डो लः** । ८ । १ । २०२ । स्वरात्परस्यासंयुक्तस्यानादेर्डस्य प्रायो लो भवति । वडवामुखम्, वलयामुहं । गरुलो । तलायं । कीलइ । स्वरादित्येव—मोंडं । कोंडं । असंयुक्तस्येत्येव—खग्गो । अनादेरित्येव—रमइ डिम्भो । प्रायोग्रहणात् क्वचिद् विकल्पः—वलिसं, वडिसं । दालिमं, दाडिमं । गुलो, गुडो । णाली, णाडी । णलं, णडं । आमेलो, आवेडो । क्वचिन्न भवत्येव—निविडं । गउडो । पीडिअं । नीडं । उडू तडी ।

२०३—**वेणौ णो वा** । ८ । १ । २०३ । वेणौ णस्य लो वा भवति । वेलू, वेणू ।

२०४—**तुच्छे तश्च-छौ वा** । ८ । १ । २०४ । तुच्छशब्दे तस्य च-छ इत्यादेशौ वा भवतः । चुच्छं, छुच्छं, तुच्छं ।

२०५—**तगर-त्रसर-तूवरे टः** । ८ । १ । २०५ । एषु तस्य टो भवति । टगरो । टसरो । टूवरो ।

२०६—**प्रत्यादौ डः** । ८ । १ । २०६ । प्रत्यादिषु तस्य डो भवति । पडिवन्नं । पडिहासो । पडिहारो । पाडिप्फद्धी । पडिसारो । पडिनिअत्तं । पडिमा । पडिवया । पडंसुआ । पडिकरइ । प्रभृति, पहुडि । प्राभृतं, पाहुडं । व्यापृतम्, वावडो । पताका, पडाया । बिभीतकः, बहेडओ । हरीतकी, हरडई । मृतकं, मडयं । आर्षे—दुष्कृतम्, दुक्कडं । सुकृतम्, सुकडं । आहृतम्, आहडं । अवहृतम्, अवहडं, इत्यादि । प्राय इत्येव । प्रतिसमयम्, पइसमयं । प्रतीपम्, पईवं । संप्रति, संपइ । प्रतिष्ठानम्, पइट्ठाणं । प्रतिष्ठा, पइट्ठा । प्रतिज्ञा, पइण्णा ।

२०७—**इत्वे वेतसे** । ८ । १ । २०७ । वेतसे तस्य डो भवति इत्वे सति । वेडिसो । इत्व इति किम्—वेअसो । इः स्वप्नादौ (१,४६) इति इकारो न भवति, इत्व इति व्यावृत्तिबलात् ।

२०८—**गर्भितातिमुक्तके णः** । ८ । १ । २०८ । अनयोस्तस्य णो भवति । गब्भिणो । अणिउँतयं । क्वचिन्न भवत्यपि—अइमुत्तयं । कथम्-एरावणो ? ऐरावण-

शब्दस्य। एरावओ इति तु ऐरावतस्य।

२०९—**रुदिते दिना ण्णः** । ८ । १ । २०९ । रुदिते दिना सह तस्य द्विरुक्तो णो भवति। रुण्णं। अत्र केचिद् "ऋत्वादिषु द" इत्यारब्धवन्तः, स तु शौरसेनीमागधी-विषय एव दृश्यते इति नोच्यते। प्राकृते हि—ऋतुः-रिऊ, उऊ। रजतम्, रययं। एतद्, एअं। गतः, गओ। आगतः, आगओ। सांप्रतम्, संपयं। यतः, जओ। ततः, तओ। कृतं, कयं। हतम्, हयं। हताशः, हयासो। श्रुतः, सुओ। आकृतिः, आकिई। निर्वृतः, निव्वुओ। तातः, ताओ। कतरः, कयरो। द्वितीयः, दुइओ। इत्यादयः प्रयोगाः भवन्ति। न पुनः-उदू रयदं इत्यादि। क्वचिद् भावेऽपि व्यत्ययश्च (११११८) इत्येव सिद्धम्। दिही इत्येतदर्थं तु धृतेर्दिहिः (२।१३१।) इति वक्ष्यामः।

२१०—**सप्ततौ रः** । ८ । १ । २१० । सप्ततौ तस्य रो भवति। सत्तरी।

२११—**अतसी सातवाहने लः** । ८ । १ । २११ । अनयोस्तस्य लो भवति। अलसी। सालाहणो, सालवाहणो। सालाहणी। भासा।

२१२—**पलिते वा** । ८ । १ । २१२ । पलिते तस्य लो वा भवति। पलिलं, पलिअं।

२१३—**पीते वो ले वा** । ८ । १ । २१३ । पीते तस्य वो वा भवति, स्वार्थ, लकारे परे। पीवलं, पीअलं। ल इति किम्—पीअं।

२१४—**वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिंगे हः** । ८ । १ । २१४ । एषु तस्य हो भवति। विहत्थी। वसही। बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति—वसई। भरहो। काहलो। माहुलिंगं। मातुलुङ्गशब्दस्य तु—माउलुङ्गं।

अथ ठकारादि-व्यञ्जन विधिः

ठ, ड, ण, त एतेषां व्यञ्जनानां स्थाने यानि यान्यादेशाबीनि कार्याणि भवन्ति तानि प्रदर्शयत्याचार्यः।

१९९ **मठः**। मठ+सि। १९९ सू० ठकारस्य ढकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मढो** इति सिद्धम्। **शठः**। शठ+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, **सढो**। **मढो** इतिवत् साध्यम्। **कमठः**। कमठ+सि। **कमढो**। **सढो** इतिवत् साध्यम्। **कुठारः**। कुठार+सि। **कुढारो** पूर्ववदेव साध्यम्। **पठति**। पठ्-पठने[1]। पठ्+तिव्। १९९ सू० ठकारस्य ढकारः, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**पढइ** इति सिद्धम्। **स्वरादित्येव**। यदि ठकारः स्वरात्परो भवेत्तदेव तस्य ढकारादेशो भवति नान्यथा। यथा—**वैकुण्ठः**। वैकुण्ठ+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वेकुंठो** इति सिद्धम्। अत्र स्वरात्परत्वाभावात् १९९ सूत्रेण ठकारस्य

[1] पठनं स्फुटोच्चारणमिति।

ढकारो न जातः। **असंयुक्तस्येत्येव।** यदि ठकारोऽसंयुक्तो भवेत्तदैव तस्य ढकारो जायते, नान्यथा। यथा—**तिष्ठति।** स्था-'गतिनिवृत्तौ। स्था+तिव्। ६८७ सू० स्थाधातोः "चिट्ठ" इत्यादेशः, तिवः इचादेशे—**चिट्ठइ** इति सिद्धम्। अत्र ठकारस्य संयुक्तत्वात् १९९ सू० ढकारो न जातः। **अनादेरित्येव।** यदि ठकार आदौ अविद्यमानो भवेत्तदैवासौ ढकारो भवति, नान्यथा। यथा—**हृदये तिष्ठति। हृदये।** हृदय+ङि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपे, ५०० सू० "ङेः" स्थाने "ङे" (ए) इत्यादेशे, ङिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये—**हिअए** इति सिद्धम्। **तिष्ठति।** स्था+तिव्। ६८७ सू० स्थाधातोः "ठा" इत्यादेशे, तिवः इचादेशे—**ठाइ** इति सिद्धम्। अत्र ठकारस्य अनादेरभावात् १९९ सूत्रेण ढकारो न जातः।

२००—**अंकोठ-तैल-कुतुपम्।** अंकोठस्य तैलम्, अंकोठतैलं, तस्य कुतुपं—चर्मपात्रम्। अंकोठतैल-कुतुपम्। २०० सू० ठकारस्य ल्ल इत्यादेशः, १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, ३९९ सू० लकारस्य द्वित्वं, कुतुपार्थे **तुप्प** इति देश्यशब्दे प्रयुक्ते, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**अंकोल्लतेल्लतुप्पं** इति सिद्धम्।

२०१—**तत्संनियोगे।** तस्य हकारस्य सन्नियोगे-सम्बन्धास्तित्वेत्यर्थः। **पिठरः।** पिठर+सि। २०१ सू० ठकारस्य वैकल्पिकः हकारः, तत्संनियोगे रेफस्य डकारः, यत्र ठकारस्य हकारो न जातस्तत्र रेफस्य डकारोऽपि न जातः, किन्तु १९९ सू० ठकारस्य ढकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पिहडो, पिढरो** इति सिद्धम्।

२०२—**वडवामुखम्।** वडवामुख+सि। २०२ सू० डकारस्य लकारः, १७७ सू० द्वितीय-वकारस्य लोपः, १८० सू० यकारस्य श्रुतिः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**वलयामुहं** इति सिद्धम्। **गरुडः।** गरुड+सि। २०२ सू० डकारस्य लकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**गरुलो** इति सिद्धम्। **तडागः।** तडाग+सि। २०२ सू० डकारस्य लकारः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, यकारविशिष्टोऽकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**तलायं** इति सिद्धम्। **क्रीडति।** क्रीड् क्रीडायाम्। क्रीड्+तिव्। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २०२ सू० डकारस्य लकारः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**कीलइ** इति सिद्धम्। **स्वरादित्येव।** यदि डकारः स्वरात्परो भवेत्तदैव तस्य लकारो भवति, नान्यथा। यथा—**मुण्डम्।** मुण्ड+सि। ११६ सू० उकारस्य ओकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**मोंडं** इति सिद्धम्। अत्र उकारस्य स्वरात्परत्वा-भावात् २०२ सू० लकारो न जातः। **कुण्डम्।** कुण्ड+सि। **कोंडं।** मोंडंवत् साध्यम्। **असंयुक्त-स्येत्येव।** यदि डकारोऽसंयुक्तः—संयोगशून्यो भवेत्तदैव तस्य लकारो जायते, नान्यथा। यथा—**खड्गः।** खड्ग+सि। डकारस्य संयुक्तत्वात् २०२ सू० डकारस्य लकारो न जातः, किन्तु ३४८ सू० डकारस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खग्गो** इति सिद्धम्। **अनादेरित्येव।** आदौ अवर्तमानस्य डकारस्य लकारो भवति। यथा—**रमते डिम्भः।** **रमते।** रम् क्रीडायाम्। रम्+ते। धातोरन्तेऽकारागमः, "ते' इत्यस्य इचादेशे—**रमइ** इति सिद्धम्। **डिम्भः।** डिम्भ+सि। डकारस्य अनादेरभावात् २०२ सू० लकारो न जातः, किन्तु—सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डिम्भो** इति सिद्धम्। **प्रायोग्रहणाद्।** प्रायोऽत्र बहुलार्थको बोध्यः। २०२ सूत्रे **"प्रायो"** इति ग्रहणादग्रिमेषु प्रयोगेषु डकारस्य विकल्पेन लकारो भवति। यथा—**वडिशम्।** वडिश+सि। २०२ सू० डकारस्य वैकल्पिको लकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्मकारः, मकारस्या-

---

१. गति-निवृत्तिः—उत्तर-देश-संयोग-जनिकायाः क्रियाया अवरोधः।

नुस्वारे—**वलिसं, वडिसं** इति सिद्धम्। **दाडिमम्**। दाडिम+सि। वैकल्पिक-डकारस्य लकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे - **दालिमं, दाडिमं** इति सिद्धम्। **गुडः**। गुड+सि। वैकल्पिकः डकारस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**गुलो, गुडो** इति सिद्धम्। **नाडी**। नाडी+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, वैकल्पिकः डकारस्य लकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**णाली, णाडी** इति सिद्धम्। **नडम्**। नड+सि। नकारस्य णकारः, वैकल्पिकः डकारस्य लकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **णलं, णडं** इति सिद्धम्। **आपीडः**। आपीड+सि। २३४ सू० पकारस्य वैकल्पिकः मकारः, १०५ सू० ईकारस्य एकारः, डकारस्य वैकल्पिको लकारः, यत्र पकारस्य मकारो न जातस्तत्र २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**आमेलो, आवेडो** इति सिद्धम्।

क्वचिन्न भवत्येव। बहुलाधिकारात् केषुचित् प्रयोगेषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिरेव न भवति। निविडादिषु प्रयोगेषु बहुलाधिकारात् २०२ सूत्रेण डकारस्य लकारो नैव जातः यथा—**निविडम्**। निविड+सि। सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**निविडं** इति सिद्धम्। **गौडः**। गौड+सि। १६२ सू० औकारस्य 'अउ" इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**गउडो** इति सिद्धम्। **पीडितम्**। पीडित+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पीडिअं** इति सिद्धम्। **नीडम्**। नीड+सि। सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नीडं** इति सिद्धम्। **उडुः**। उडु+सि। ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**उडू** इति सिद्धम्। **तडितम्**। तडित्+सि। ११ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**तडी**। क्वचित्—"**तटी**" इतिच्छाया, तत्र—**तटी+सि**—इति स्थिते १९५ सू० टकारस्य डकारः, सेर्लोपे—**तडी** इति सिद्धम्।

२०३—**वेणुः**। वेणु+सि। २०३ सू० णकारस्य वैकल्पिको लकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**वेलू, वेणू** इति सिद्धम्।

२०४—**तुच्छम्**। तुच्छ+सि। २०४ सू० तकारस्य वैकल्पिकः चकारः छकारश्च, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**चुच्छं, छुच्छं, तुच्छं** इति सिद्धम्।

२०५—**तगरः**। तगर+सि। २०५ सू० तकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**टगरो** इति सिद्धम्। **त्रसरः**। त्रसर+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २०५ सू० तकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**टसरो** इति सिद्धम्। **तूवरः**। तूवर+सि। तकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**टूवरो** इति सिद्धम्।

२०६—**प्रतिपन्नम्**। प्रतिपन्न+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पडिवन्नं** इति सिद्धम्। **प्रतिहासः**। प्रतिहास+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य डकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पडिहासो**। यत्र—**प्रतिभासः** इतिच्छाया तत्र तु १८७ सू० भकारस्य हकारे—**पडिहासो** इति भवति। **प्रतिहारः**। प्रतिहार+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पडिहारो** इति सिद्धम्। **प्रतिस्पर्द्धी**। प्रतिस्पर्द्धिन्+सि। रेफस्य लोपः, ४४ सू० आदेरकारस्य वैकल्पिकः दीर्घः, तकारस्य डकारः, ३२४ सू० स्पस्य फकारः, ३६० सू० फकारस्य द्वित्त्वम्, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारः, रेफस्य लोपः, ११ सू० अन्त्यनकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**पाडिप्फद्धी, पडिप्फद्धि** इति सिद्धम्। **प्रतिसारः**। प्रतिसार+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य

डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पडिसारो** इति सिद्धम्। **प्रतिनिवृत्तम्।** प्रतिनिवृत्त+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य डकारः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पडिनिअत्तं** इति सिद्धम्। **प्रतिमा।** प्रतिमा+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य डकारः, सेर्लोपे—**पडिमा** इति सिद्धम्। **प्रतिपद्।** प्रतिपद्+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य डकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १५ सू० दकारस्य आकारः, **बहुलाधिकारात्** १८० सू० य-श्रुतौ—**पडिवया** इति सिद्धम्। **प्रतिश्रुत्।** प्रतिश्रुत्+सि। रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, १५ सू० तकारस्य आकारः, सेर्लोपे—**पडंसुआ** इति सिद्धम्। **प्रतिकरोति।** प्रतिकृ+तिव्। रेफस्य लोपः, तकारस्य डकारः, ६०५ सू० ऋकारस्य "अर" इत्यादेशः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**पडिकरइ** इति सिद्धम्। **प्रभृति।** प्रभृति। अव्ययपदमिदम्। रेफस्य लोपः, १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, तकारस्य डकारे—**पहुडि** इति सिद्धम्। **प्राभृतम्।** प्राभृत+सि। रेफस्य लोपः, ऋकारस्य उकारः, भकारस्य हकारः, तकारस्य डकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पाहुडं** इति सिद्धम्। **व्यापृतः।** व्यापृत+सि। ३४६ सू० यकारस्य लोपः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, तकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ततः—**वावडो** इति सिद्धम्। **पताका।** पताका+सि। तकारस्य डकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १८० सू० य—श्रुतिः, सेर्लोपे—**पडाया** इति सिद्धम्। **बिभीतकः।** बिभीतक+सि। ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारः, १०५ सू० ईकारस्य एकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, तकारस्य डकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**बहेडओ** इति सिद्धम्। **हरीतकी।** हरीतकी+सि। ९९ सू० आदेरीकारस्य अकारः, तकारस्य डकारः, ककारस्य लोपः, सेर्लोपे—**हरडई** इति सिद्धम्। **मृतकम्।** मृतक+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, तकारस्य डकारः, ककारस्य लोपः, १८० सू० य—श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**मडयं** इति सिद्धम्। **दुष्कृतम्।** दुष्कृत+सि। ऋकारस्य अकारः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्। "दुष्कृतादिशब्दानां प्रत्यादिगणबहिर्भूतत्वान्नात्र २०६ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवितुमर्हति, अतएव उक्तम्—आर्षे इति। आर्षत्वाद् दुष्कृतादिशब्दसम्बन्धित—कारानामपि डकारादेशो भवति। तेन—आर्षत्वात् तकारस्य डकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**दुक्कडं** इति सिद्धम्। **सुकृतम्।** सुकृत+सि। ऋकारस्य अकारः, आर्षत्वात् तकारस्य डकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सुकडं** इति सिद्धम्। **आहृतम्।** आहृत+सि। ऋकारस्य अकारः, आर्षत्वात् तकारस्य डकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**आहडं** इति सिद्धम्। **अवहृतम्।** अवहृत+सि। ऋकारस्य अकारः, आर्षत्वात् तकारस्य डकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**अवहडं** इति सिद्धम्। **प्राय इत्येव।** प्रस्तुतसूत्रे १७७ सूत्रपठितस्य **"प्रायः"** (बहुलं) इति पदस्यानुवृत्तेः केषुचित् प्रयोगेषु तकारस्य डकारो न भवति। यथा—**प्रतिसमयम्।** प्रतिसमय+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २०६ सूत्रे **प्रायो ग्रहणात्**—तकारस्य डकारो न जातः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पइ-समयं** इति सिद्धम्। **प्रतीपम्।** प्रतीप+सि। रेफस्य लोपः, **प्रायो-ग्रहणात्** तकारस्य डकारो न जातः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पईवं** इति सिद्धम्। **संप्रति।** अव्ययपदमिदम्। रेफस्य लोपः, **प्रायो ग्रहणात्** तकारस्य डकारो न जातः, पूर्ववदेव ककारस्य लोपे—**संपइ** इति सिद्धम्। **प्रतिष्ठानम्।** प्रतिष्ठान+सि। रेफस्य लोपः, **प्रायो-ग्रहणात्** तकारस्य डकारो न जातः, तकारस्य लोपः, ३४८

सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्। पूर्वठकारस्य टकारः, २२८ सू० नकारस्य, णकारः सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पइट्ठाणं** इति सिद्धम्। **प्रतिष्ठा** । प्रतिष्ठा+सि । रेफस्य लोपः, **प्रायोग्रहणात्** तकारस्य डकारो न जातः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वम्, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्लोपे—**पइट्ठा** इति सिद्धम्। **प्रतिज्ञा**। प्रतिज्ञा+सि। रेफस्य लोपः, **प्रायोग्रहणात्** तकारस्य डकारो न जातः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ३१३ सू० ज्ञस्य णकारे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**पइण्णा** इति सिद्धम्।

२०७—**वेतसः**। वेतस+सि। ४६ सू० आदेरकारस्य इकारः, २०७ सू० तकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वेडिसो** इति सिद्धम्। **इत्वे इति किम्**। एकारस्य इकारे जाते सत्येव प्रस्तुत—सूत्रेण वेतसशब्द-तकारस्य डकारादेशो भवति, नान्यथा। यथा—**वेतस+सि**, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **वेअसो** इति भवति। अत्र ४६ सूत्रेण एकारस्य इकारो न जातोऽतः प्रस्तुत-सूत्रेण तकारस्य डकारोऽपि नाभूद्। अत्रेयमाशंका जायते यत् ४६ सूत्रेण विहित आदेरकारस्य इकारो न वैकल्पिकस्तर्हि वेतसशब्देऽकारस्य वैकल्पिक इकारः कथं कृतः ? उत्तरयति वृत्तिकारः—४६ सूत्रेण विहित इकारादेशो न वैकल्पिकः, इति सत्यम्। २०७ सूत्रे पठितस्य **'इत्वे'** इति पदस्यायमाशयो यद् यत्र वेतसशब्दस्य आदेरकारस्य इकारो भवति तत्रैव तकारस्य डकारो भवति, यत्र इकाराभावस्तत्र तकारस्य डकारोऽपि न जायते। अनेनाशयेनेदं प्रकटितं भवति यद् वेतस-शब्दस्यादेरकारस्य इकारादेशो वैकल्पिकः। परन्तु नैतत्सत्यं, यतः ४६ सूत्रविहित इकारादेशो न वैकल्पिकः, स तु नित्यरूपेण भवति। यदि इकारादेशो न वैकल्पिकस्तर्हि प्रस्तुतसूत्रे पठितम् **"इत्वे"** इति पदं व्यर्थं, व्यर्थं पदं किञ्चिद् ज्ञापयतीति वैयाकरणानां सिद्धान्तः। तस्माद् **"इत्वे"** इति व्यर्थीभूतेन पदेन ज्ञापितमिदं यत् कुत्रचित् वेतसशब्दे ४६ सूत्रेण आदेरकारस्य इकारो विकल्पेन भवति। अयं भावः, २०७ सूत्रेण **'इत्वे'** इति ग्रहणसामर्थ्यात् कुत्रचित् इकारो भवति, कुत्रचित् इकारस्य व्यावृत्तिः—निवृत्तिर्भवति। इकार-व्यावृत्ति-बलात् ४६ सूत्रेण आदेरकारस्य इकारो न जातः, इकाराभावे च २०७ सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

२०८—**गर्भितः**। गर्भित+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० भकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारः, २०८ सू० तकारस्य णकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादे-र्लोपे—**गब्भिणो** इति सिद्धम्। **अतिमुक्तकम्**। अतिमुक्तक+सि। तकारस्य णकारः, १७८ सू० मकारस्य लुक् तस्य च स्थाने अनुनासिकः, ३४८ सू० संयुक्तस्य ककारस्य लोपः, १७७ सू० ककारस्य लोपः १८० सू० यश्रुतिः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अणिउँतयं**। **क्वचिन्न भवतीति**। **बहुलाधिकारात्**—क्वचित् तकारस्य णकारो न भवति। तदा—१७७ सू० तकारस्य लोपः। प्रयोग—दर्शनात् १७८ सू० मकारस्य लुगपि न जातः, ३४८ सू० ककारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम् १७७ सू० ककारस्य लोपः, यश्रुतिः, पूर्ववदेव—**अइमुत्तयं** इति सिद्धम्। **ऐरावणः**। ऐरावण+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**एरावणो** इति सिद्धम्। **ऐरावतः**। ऐरावत+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**एरावओ** इति सिद्धम्। २०८ सूत्रे **ऐरावत**—शब्दो न गृहीतोऽस्ति, अतः २०८ सूत्रेण **ऐरावत**—सम्बन्धितकारस्य णकारादेशो भवितुं नार्हति, अतएव वृत्तिकारेणाशङ्कितं **कथम्-एरावणो** ? समाधानं त्विदम्—संस्कृते ऐरावणः, ऐरावतश्चेति द्वौ पृथग्भूतौ शब्दौ स्तः। **ऐरावणशब्दात् एरावणो**, ऐरावतशब्दात् **एरावओ** इति च निष्पाद्यं, न तु **ऐरावतस्य** तकारस्य णकारादेशं कृत्वा **एरावणो**

इति साधनीयम्।

२०६—**रुदितम्**। रुदित+सि। २०६ सू० 'दि' इत्यनेन सह तकारस्य "ण्ण" इत्यादेशो भवति, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**रुण्णं** इति सिद्धम्। **अत्र केचिद्**। अत्र=अस्मिन् स्थले केचिद् आचार्याः **ऋत्वादिषु दः** (ऋत्वादिशब्देषु तकारस्य दकारो भवति)" इत्यस्य सूत्रस्य आरम्भं कुर्वन्ति, परन्तु नैतदुचितं, यतो हि ऋत्वादि—पदेषु तकारस्य दकारः शौरसेन्यां मागध्यां वा भवति, न तु प्राकृतभाषायाम्। वस्तुतः तकारस्य स्थाने दकारादेशस्तु शौरसेनोमागधीभाषाविषयः—। एतद्द्वयभाषया सम्बन्धितो, ज्ञेयः, नायं प्राकृतभाषा-विषयोऽवसेयः। इति हेमचन्द्राचार्यमतमतएव तत्तैरिह नोक्तम्। प्राकृतभाषायान्तु ऋत्वादिशब्दानां साधनिकानया रीत्या बोध्या। यथा—**ऋतुः**। ऋतु+सि। १४० सू० ऋकारस्य "रि" इत्यादेशः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिऊ**। यत्र ऋकारस्य रिरादेशो न जातस्तत्र १३१ सू० ऋकारस्य उकारादेशे—**उऊ** इति सिद्धम्। **रजतम्**। रजत+सि। १७७ सू० जकारस्य तकारस्य च लोपः, १८० सू० उभयत्रापि यकारश्रुतिः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**रययं** इति सिद्धम्। **एतद्**। एतद्+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, ११ सू० दकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**एअं** इति सिद्धम्। **गतः**। गत+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**गओ** इति सिद्धम्। **आगतः**। आगत+सि। **आगओ**। **गओ** इतिवत् साध्यम्। **सांप्रतम्**। अव्ययपदमिदम्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**संपयं** इति सिद्धम्। **यतः**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ३७ सू० विसर्गस्य "डो" इत्यादेशः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जओ** इति सिद्धम्। **ततः**। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० द्वितीयतकारस्य लोपः, ३७ सू० विसर्गस्य "डो" इत्यादेशः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**तओ** इति सिद्धम्। **कृतम्**। कृत+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कयं** इति सिद्धम्। **हतम्**। हत+सि। **हयं**। **कयं** इतिवत् साध्यम्। यत्र **हृतम्** इति छाया तत्र तु **हृत+सि**—इति स्थिते १२६ सू० ऋकारस्य अकारे—**हयं** इति भवति। **हताशः**। हताश+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**हयासो** इति सिद्धम्। **श्रुतः**। श्रुत+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, शकारस्य सकारः, तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सुओ** इति सिद्धम्। **आकृतिः**। आकृति+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**आकिई** इति सिद्धम्। **निर्वृतः**। निर्वृत+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वम्, १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निव्वुओ** इति सिद्धम्। **तातः**। तात+सि। १७७ सू० द्वितीयतकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**ताओ** इति सिद्धम्। **कतरः**। कतर+सि। तकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कयरो** इति सिद्धम्। **द्वितीयः**। द्वितीय+सि। ६४ सू० इकारस्य उकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य यकारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दुइओ** इति सिद्धम्। **इत्यादयः प्रयोगाः**। इत्यादय ऋतुप्रभृतयः शब्दाः प्राकृतभाषायां प्रयुज्यन्ते। प्राकृतभाषायाम् **उदू, रयदं** इत्यादीनां शब्दानां प्रयोगो न भवति। यदि क्वचित्-कस्मिंश्चित्स्थले भावेऽपि—उदू इत्यादि-शब्दानामस्तित्वं भवेत्तथापि "**ऋत्वादिषु दः**" इति सूत्रस्यावश्यकता नास्ति, यतोहि १११८ सूत्रेण व्यत्यये कृते **उदू**

इत्यादीनां पदानां निष्पत्तिर्भवति। **उदू, रयदं** शब्दयोरनयो साधनिकेत्थं बोध्या—**ऋतुः**। ऋतु+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, १११८ सू० भाषाव्यत्यये कृते, १०६७ सू० तकारस्य दकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, ११।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**उदू** इति सिद्धम्। **रजतम्**। रजत+सि। १७७ सू० जकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, पूर्ववदेव तकारस्य दकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**रयदं** इति सिद्धम्। **धृतिः**। धृति+सि। ४०२ सू० धृतेः "दिहि" इत्यादेशे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे—**दिही** इति सिद्धम्। **दिही इत्येतदर्थं तु**। धृतिशब्दे वर्णव्यत्यये कृते धकारस्य दकारे, ऋकारस्य इकारे, तकारस्य हकारे, इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे च—**दिही** इति न साध्यम्। परं धृतेः '**दिहि**' इत्यादेशो भवति तं ४०२ सूत्रे वक्ष्यामः—कथयिष्यामः इति।

२१०—**सप्ततिः**। सप्तति+सि। ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, २१० सू० तकारस्य रेफः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**सत्तरी** इति सिद्धम्।

२११—**अतसी**। अतसी+सि। २११ सू० तकारस्य लकारः, सेर्लोपे—**अलसी** इति सिद्धम्। **सातवाहनः**। सातवाहन+सि। २११ सू० तकारस्य लकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, सन्धौ—सालाहन+सि—इति स्थिते २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सालाहणो**। यत्र वकारस्य लोपो न जातस्तत्र—**सालवाहणो**। स्त्रीत्वे तु **सालाहणी** इति भवति। प्रक्रिया पूर्ववदेव बोध्या। **भाषा**। भाषा+सि। २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्लोपे—**भासा** इति सिद्धम्। **सालाहणी भासा**=शालिवाहन-सम्बन्धिनी भाषा—वाणी इत्यर्थः।

२१२—**पलितम्**। पलित+सि। २१२ सू० तकारस्य वैकल्पिको लकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पलिलं**। लकाराभावे—१७७ सू० तकारस्य लोपे—**पलिअं** इति भवति।

२१३—**पीतम्**। पीत+सि। ४४४ सू० स्वार्थे ल-प्रत्ययः, २१३ सू० तकारस्य वैकल्पिको वकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पीवलं**। वकाराभावे—१७७ सू० तकारस्य लोपे—**पीअलं** इति भवति। **ल इति किम्**। स्वार्थिक-ल-प्रत्यये परे सत्येव प्रस्तुतसूत्रेण पीत-शब्द-तकारस्य वैकल्पिको वकारो भवति। यत्र ल-प्रत्ययाभावस्तत्र प्रस्तुत-सूत्र-प्रवृत्त्यभावः। यथा—**पीतम्**। पीत+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पीअं** इति सिद्धम्। अत्र स्वार्थिक-ल-प्रत्ययपरत्वाभावात् २१३ सू० तकारस्य वकारो न जातः।

२१४—**वितस्तिः**। वितस्ति+सि। २१४ सू० तकारस्य हकारः, ३१६ सू० "स्तस्य" थकारः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**विहत्थी** इति सिद्धम्। **वसतिः**। वसति+सि। तकारस्य हकारः, इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**वसही** इति सिद्धम्। **बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति**। बहुलाधिकारात् क्वचित् तकारस्य हकारो न भवति। यत्र हकाराभावस्तत्र १७७ सू० तकारस्य लोपे—**वसई** इति सिद्धम्। **भरतः**। भरत+सि। तकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**भरहो** इति सिद्धम्। **कातरः**। कातर+सि। तकारस्य हकारः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**काहलो** इति सिद्धम्। **मातुलिङ्गम्**। मातुलिङ्ग+सि। तकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**माहुलिंगं** इति सिद्धम्। **मातुलुङ्गशब्दस्य रूपं तु माउलुङ्गं**। प्रस्तुतसूत्रे **मातुलिङ्ग** इति पाठः, न तु **मातुलुङ्गः**। अतो मातुलुङ्गशब्दस्य तकारस्य हकारो न भविष्यति, किन्तु—१७७ सू० तकारस्य लोपे—**माउलुङ्गं** इति भवति।

ठकारादि व्यञ्जनों के स्थान पर होने वाले आदेशादि कार्य

अब सूत्रकार ठ, ड, ण, त इन व्यञ्जनों के स्थान पर होने वाले आदेश आदि कार्यों को प्रदर्शित कर रहे हैं।

१९९—स्वर से परे असंयुक्त और अनादि ठकार को ढकार होता है। जैसे—१—**मठः**=मढो (संन्यासियों का आश्रम व व्रतियों का निवास स्थान), २—**शठः**=सढो (धूर्त), ३ **कमठः**=कमढो (तापसविशेष), ४—**कुठारः**=कुढारो (कुल्हाड़ा), ५—**पठति**=पढइ (वह पढ़ता है) यहां ठकार को ढकार किया गया है। यहां प्रश्न हो सकता है कि स्वर से परे ठकार हो तब उसे ढकार होता है, यह क्यों कहा? उत्तर में निवेदन है कि यदि ऐसा न कहते तो—**वैकुण्ठः**=वेकुंठो (विष्णु का धाम) यहां पर भी ठकार को ढकार हो जाता। यहां ठकार स्वर से परे नहीं है, अतः प्रस्तुत सूत्र की यहां प्रवृत्ति नहीं हो सकी। इसी तरह जो "—असंयुक्त तथा अनादि ठकार होना चाहिए—" यह कहा गया है, इस का कारण भी इतना ही है कि जो ठकार संयुक्त तथा आदि में विद्यमान है उसे प्रस्तुत सूत्र से ढकारादेश न हो सके। जैसे—१—**तिष्ठति**=चिट्ठइ (वह ठहरता है), २—**हृदये तिष्ठति**=हिअए ठाइ (वह हृदय में ठहरता है) यहां पर संयुक्त तथा आदि में विद्यमान होने के कारण ठकार ढकार का रूप नहीं ले सका।

२००—**अंकोठ** शब्द के ठकार को 'ल्ल' यह आदेश होता है। जैसे—**अंकोठ-तैल-कुतुपम्**= अङ्कोल्ल-तेल्ल-तुप्पं (वृक्षविशेष के तैल का कुतुप—घी आदि भरने का चर्मपात्र—कुप्पा) यहां ठकार को द्विरुक्त (द्वित्व) लकार किया गया है।

२०१—**पिठर** के ठकार को विकल्प से हकार होता है और हकार का संनियोग—सान्निध्य होने पर रेफ का डकार हो जाता है। जैसे—**पिठरः**=पिहडो, पिढरो (मन्थान-दण्ड, मधानी), यहां विकल्प से ढकार को हकार तथा साथ में रेफ को डकार किया गया है।

२०२—स्वर से परे असंयुक्त तथा अनादि डकार को प्रायः लकार होता है। जैसे—१—**वडवामुखम्**=वलयामुहं (वडवाग्नि), २—**गरुडः**=गरुलो (गरुड़ पक्षी), ३—**तडागम्**=तलायं (तालाब), ४—**क्रीडति**=कीलइ (वह क्रीड़ा करता है) यहां पर डकार को लकारादेश किया गया है। ध्यान रहे कि जहां डकार स्वर से परे नहीं होगा, संयुक्त तथा आदि में विद्यमान होगा, वहां प्रस्तुत सूत्र से उसे लकार नहीं हो पाता। जैसे—१—**मुण्डम्**=मोंडं (मुख), २—**कुण्डम्**=कोंडं (कुण्डा) यहां डकार स्वर से परे नहीं है अतः यहां डकार को लकार नहीं हो सका। १—**खड्गः**=खग्गो (तलवार) यहां पर डकार संयुक्त है इसलिए उसे लकार नहीं किया गया। १—**रमते डिम्भः**=रमइ डिम्भो (बालक खेलता है) यहां डकार अनादि नहीं था, फलतः प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी। वृत्तिकार ने "**प्रायः**" (बहुल) शब्द का जो ग्रहण किया है इस के कारण डकार को लकार विकल्प से भी हो जाता है। जैसे—१—**बडिशम्**=वलिसं, वडिसं (मछली पकड़ने का काण्टा), २—**दाडिमम्**= दालिमं, दाडिमं (अनार), ३—**गुडः**=गुलो, गुलो (गुड), ४—**नाडी**=णाली, णाडी (नाड़ी, नस), ५—**नडम्**=णलं, णडं (तृणविशेष, भीतर से पोला, बाण के आकार का घास), ६—**आपीडः**=आमेलो, आमेडो (फूलों की माला, शिरोभूषण)। यहां पर डकार को विकल्प से लकारादेश किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर डकार को लकार होता ही नहीं है। जैसे—१—**निबिडम्**=निविडं

(घना, सान्द्र, गाढ़), २—**गौडः**=गउडो (बंगाल का पूर्वी भाग), ३—**पीडितम्**=पीडिग्रं (दुःखित), ४—**नीडम्**=नीडं (घोंसला), ५—**उडुः** उडू (नक्षत्र), ६—**तडित्** (तटी)—तडी (तडित्-बिजली, तटी-किनारा) इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से डकार को लकार हो जाना चाहिए था, किन्तु **बहुलाधिकार** के कारण नहीं हो सका।

२०३—**वेणु** शब्द के णकार को विकल्प से लकार होता है। जैसे **वेणुः**—वेलू, वेणू (बंसी, बांस) यहां णकार को विकल्प से लकार किया गया है।

२०४—**तुच्छ** के तकार को विकल्प से चकार और छकार होता है। जैसे—**तुच्छम्**—चुच्छं, छुच्छं, तुच्छं (हीन, नगण्य) यहां पर तकार को विकल्प से चकार और छकार किया गया है।

२०५—**तगर, त्रसर** और **तूवर** के तकार को टकार होता है। जैसे—१—**तगरः**—टगरो (तगर का वृक्ष), २—**त्रसरः**—टसरो (एक प्रकार का सूत, टसर), ३—**तूवरः**—टूवरो (वह चपरासी जिस के दाढ़ी मूंछ न हों) यहां पर तकार को टकार किया गया है।

२०६—**प्रति** आदि उपसर्गों के तकार को डकार होता है। जैसे—**प्रति उपसर्ग के उदाहरण**—१—**प्रतिपन्नम्**=पडिवन्नं (स्वीकृत), २—**प्रतिभासः**=पडिहासो (आभास होना, मालूम होना), ३—**प्रतिहारः**=पडिहारो (द्वारपाल), ४—**प्रतिस्पर्धिः**=पाडिप्फद्धी (दुश्मन, प्रतिस्पर्धा करने वाला), ५—**प्रतिसारः**=पडिसारो (सजावट, विनाश), ६—**प्रतिनिवृत्तम्**=पडिनिअत्तं (पीछे लौटा हुआ), ७—**प्रतिमा**=पडिमा (फोटो, चित्र), ८—**प्रतिपदा**=पडिवया (एकम), ९—**प्रतिश्रुत्**=पडंसुआ, (प्रतिध्वनि, प्रतिज्ञा), १०—**प्रतिकरोति**=पडिकरइ (वह प्रतिकार करता है) आदि शब्दों में प्रति उपसर्ग के तकार को डकार किया गया है। **प्रभृति** आदि शब्दों के तकार को भी डकार हो जाता है।, जैसे—१—**प्रभृतिः**=पहुडि (आदि), २—**प्राभृतम्**=पाहुडं (भेंट), ३—**व्यापृतः**=वावडो (लगा हुआ), ४—**पताका**=पडाया (झण्डा), ५—**विभीतकः**=बहेडओ (बहेड़ा), ६—**हरीतकी**=हरडई (हरड़), ७—**मृतम्**=मडयं (मरा हुआ) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से तकार को डकार किया गया है। आर्ष-प्राकृत में भी ३ सूत्र द्वारा तकार के स्थान में डकारादेश देखा जाता है।, जैसे—१—**दुष्कृतम्**=दुक्कडं (निन्दित आचरण, पाप), २—**सुकृतम्**=सुकडं (प्रशंसनीय आचरण, धर्म), ३—**आहृतम्**=आहडं (छीना हुआ, चोरी किया हुआ), ४—**अवहृतम्**=अवहडं (छीना हुआ) यहां ३ सूत्र से तकार को डकार किया गया है। वृत्तिकार कहते हैं कि इस सूत्र में "**प्रायः** (बहुल)" इस पद की अनुवृत्ति ग्रहण की जाती है अतः प्रायोवाद को लेकर कहीं पर तकार को डकार नहीं भी होता। जैसे—१—**प्रतिसमयम्**=पइसमयं (प्रत्येक समय), २—**प्रतीपम्**=पईवं (प्रतिकूल), ३—**सम्प्रति**=संपइ (अब), ४—**प्रतिष्ठानम्**=पइट्ठाणं (स्थिति, आधार, आश्रय), ५—**प्रतिष्ठा**=पइट्ठा (प्रतिष्ठा, इज्जत), ६—**प्रतिज्ञा**=पइण्णा (प्रण, नियम) इन शब्दों के तकार को डकारादेश नहीं हो सका।

२०७—**वेतस** शब्द के आदिम अकार को इकार होने पर तकार को डकार हो जाता है जैसे—**वेतसः**=वेडिसो (बेंत की लकड़ी) जहां पर इकार नहीं हो पाया वहां—**वेअसो** यह रूप बनता है। प्रश्न हो सकता है कि ४६ सूत्र से अकार को जो इकार होता है वह तो वैकल्पिक नहीं होता, ऐसी दशा में "**वेअसो**" यह रूप कैसे बन सकता है ? इसी प्रश्न को आगे रखकर वृत्तिकार फरमाते हैं कि प्रस्तुत सूत्र के "**इकार के होने पर ही तकार को डकार होता है अन्यथा नहीं**" इस विधान से ही यह प्रमाणित होता है कि इकार विकल्प से होता है। कहीं पर ४६ सूत्र से विहित इकार हो जाता है और कहीं पर इकार का अभाव भी रहता है। अर्थात् मूल सूत्र में पठित "**इत्वे**" इस पाठ

से कहीं पर इकार की व्यावृत्ति-निवृत्ति भी संसूचित होती है, इस कारण ४६ सूत्र से **"वेअसो"** के अकार को इकार नहीं हो सका।

२०८—**गर्भित** और **अतिमुक्तक** शब्द के तकार को णकारादेश होता है। जैसे—१—**गर्भितः**= गब्भिणो (गर्भयुक्त), २—**अतिमुक्तकम्**=अणिउँतयं (मुनि अतिमुक्तक कुमार) यहां तकार को णकार किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर तकार को णकार नहीं भी होता। जैसे—**अतिमुक्तकम्**= अइमुत्तयं। यहां पर तकार को णकार नहीं हो सका। प्रश्न हो सकता है कि क्या **एरावणो, एरावओ,** यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से तकार को णकार किया गया है? उत्तर में निवेदन है कि दोनों शब्दों में प्रस्तुत सूत्र ने कोई कार्य नहीं किया किन्तु **ऐरावणः** से **एरावणो** (इन्द्र का हाथी) और **ऐरावतः** से **एरावओ** (इन्द्र का हाथी) यह रूप बनाया गया है।

२०९—**रुदित** शब्द के 'दि' इस अंश के साथ तकार को द्वित्व णकार होता है। जैसे—**रुदितम्**=रुण्णं (रोया हुआ) यहां रुदित शब्द के 'दित' को 'ण्ण' यह आदेश हो गया। कई एक व्याकरण-वेत्ता यहां तकार से सम्बन्धित विधि-विधानों में **"ऋत्वादिषु दः"** (ऋतु आदि शब्दों के तकार को दकार होता है) इस सूत्र की कल्पना करते हैं और इसी के आधार पर ऋतु आदि शब्दों के तकार को दकारादेश बतलाते हैं परन्तु वृत्तिकार फरमाते हैं कि प्रस्तुत में इस सूत्र की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तकार को दकारादेश तो शौरसेनी और मागधी भाषा में ही होता है, प्राकृत-भाषा में यह आदेश नहीं हो पाता। जैसे—प्राकृतभाषा में १—**ऋतुः**=रिऊ, उऊ (दो मास का काल), २—**रजतम्**=रययं (चांदी), ३—**एतद्**='एअं' (यह), ४—**गतः**=गओ (गया), ५—**आगतः**=आगओ (आ गया), ६—**साम्प्रतम्**=संपयं (अब), ७—**यतः**=जओ (क्योंकि), —**ततः**=तओ (वहां से), ९—**कृतम्**=कयं (किया), १०—**हतम्**=हयं (मर गया), ११—**हताशः**= हयासो (निराश), १२—**श्रुतः**=सुओ (सुना हुआ), १३—**आकृतिः**=आकिई (चेहरा), १४—**निर्वृतः**=निव्वुओ (समाप्त), १५—**तातः**=ताओ (पिता), १६—**कतरः**=कयरो (कौनसा), १७—**द्वितीयः**=दुइओ (दूसरा) ऐसे प्रयोग बनते हैं। प्राकृत-भाषा में—**ऋतुः**=उदू, **रजतम्**=रयदं आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता। यदि कहा प्राकृत भाषा में भी तकार को दकार का आदेश दिखाई देता है तो वह ११११८ सूत्र से सम्पन्न हो सकता है। इस के अतिरिक्त **'दिही'** (धैर्य), यह शब्द तो **धृति** को **दिहि** यह आदेश हो जाने से बन जाता है। ४०२ सूत्र में इस का वर्णन किया जाने वाला है।

२१०—**सप्तति** शब्द के द्वितीय तकार को रेफादेश होता है। जैसे—**सप्ततिः**=सत्तरी (सत्तर की संख्या), यहां द्वितीय तकार को रेफादेश किया गया है।

२११—**अतसी** और **सातवाहन** के तकार को लकार होता है। जैसे—१—**अतसी**=अलसी (अलसी, सन, पटसन), २—**सातवाहनः**=सालाहणो, सालवाहणो (शालिवाहन नाम का व्यक्ति), ३—**सातवाहनी भाषा**=सालाहणी भासा (शालिवाहन से सम्बन्ध रखने वाली भाषा), यहां पर तकार को लकार किया गया है।

२१२—**पलित** शब्द के तकार को विकल्प से लकार होता है। जैसे—**पलितम्**=पलिलं, पलिअं (वृद्धावस्था के कारण बालों का पक जाना, श्वेत हो जाना), यहां तकार को वैकल्पिक लकार किया गया है।

२१३—स्वार्थबोधक लकार परे होने पर पीत शब्द के तकार को विकल्प से वकार होता है।

जैसे—१ - **पीतलम्**=पीवलं, पीअलं (पीले रंग वाला) यहां पीत शब्द से आगे स्वार्थबोधक **लकार** था, अतः उस के तकार को विकल्प से लकार किया गया है। **प्रश्न हो सकता है** कि स्वार्थबोधक लकार परे हो, ऐसा क्यों कहा गया ? उत्तर में निवेदन है कि जहां स्वार्थबोधक लकार नहीं होगा वहां पीत शब्द के तकार को वकार नहीं हो सकेगा। जैसे—**पीतम्**=पीअं (पीला) यहां स्वार्थबोधक लकार के न होने से तकार को लकार नहीं हो सका।

२१४—**वितस्ति, वसति, भरत, कातर,** और **मातुलिङ्ग** इन शब्दों के आदिम तकार **को** हकारादेश होता है। जैसे—१—**वितस्तिः**=विहत्थी (बारह अंगुल का परिमाण), २ - **वसतिः**= वसही (स्थान, आश्रय), ३—**भरतः**=भरहो (भरत चक्रवर्ती, भगवान ऋषभदेव के बड़े पुत्र), ४— **कातरः**=काहलो (कायर, डरपोक), ५—**मातुलिङ्गम्**=माहुलिङ्गं (नींबू का फल) यहां पर तकार को हकार किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर तकार को हकारादेश नहीं भी होता। जैसे—**वसतिः**=वसई। यहां पर तकार को हकार नहीं हो सका। ध्यान रहे कि मातुलुङ्गम् शब्द का तो माउलुङ्गं (नींबू का फल) यह रूप बनता है। सूत्रोक्त न होने से यहां तकार को हकार नहीं हो सका।

अथ थकारादि-व्यञ्जनविधिः

२१५—**मेथि-शिथिर-शिथिल-प्रथमे थस्य ढः। ८। १। २१५।** एषु थस्य ढो भवति। हापवादः—मेढी। सिढिलो। सिढिलो। पढमो।

२१६—**निशीथ-पृथिव्योर्वा। ८। १। २१६।** अनयोस्थस्य ढो वा भवति। निसीढो, निसीहो। पुढवी, पुहवी।

२१७—**दशन-दष्ट-दग्ध-दोला-दण्ड-दर-दाह-दम्भ-दर्भ-कदन-दोहदे दो वा डः। ८। १। २१७।** एषु दस्य डो वा भवति। डसणं, दसणं। डट्ठो, दट्ठो। डड्ढो, दड्ढो। डोला, दोला। डण्डो, दण्डो। डरो, दरो। डाहो, दाहो। डम्भो, दम्भो। डब्भो, दब्भो। कडणं, कयणं। डोहलो, दोहलो। दरशब्दस्य च भयार्थवृत्तेरेव भवति—अन्यत्र दर-दलिअं।

२१८—**दंश-दहोः। ८। १। २१८।** अनयोर्धात्वोर्दस्य डो भवति। डसइ। डहइ।

२१९—**संख्या-गद्गदे रः। ८। १। २१९।** संख्यावाचिनि गद्गदशब्दे च दस्य रो भवति। एआरह। बारह। तेरह। गग्गरं। अनादेरित्येव लेदस। असंयुक्तस्येत्येव— चउद्दह।

२२०—**कदल्यामद्रुमे। ८। १। २२०।** कदलीशब्दे अद्रुमवाचिनि दस्य रो भवति। करली। अद्रुम इति किम् ? कयली, केली।

२२१—**प्रदीपि-दोहदे लः। ८। १। २२१।** प्रपूर्वे दीप्यतौ धातौ दोहदशब्दे

च दस्य लो भवति। पलीवेइ। पलित्तं। दोहलो।

२२२—**कदम्बे वा**। ८। १। २२२। कदम्बशब्दे दस्य लो वा भवति। कलम्बो, कयम्बो।

२२३—**दीपौ धो वा**। ८। १। २२३। दीप्यतौ दस्य धो वा भवति। धिप्पइ, दिप्पइ।

२२४—**कदर्थिते वः**। ८। १। २२४। कदर्थिते दस्य वो भवति। कवट्टिओ।

२२५—**ककुदे हः**। ८। १। २२५। ककुदे दस्य हो भवति। कउहं।

२२६—**निषधे धो ढः**। ८। १। २२६। निषधे धस्य ढो भवति। निसढो।

२२७—**वौषधे**। ८। १। २२७। औषधे धस्य ढो वा भवति। ओसढं, ओसहं।

२२८—**नो णः**। ८। १। २२८। स्वरात्परस्यासंयुक्तस्यानादेर्नस्य णो भवति। कणयं। मयणो। वयणं। नयणं। माणइ। आर्षे—आरनालं। अनिलो। अनलो। इत्याद्यपि।

२२९—**वादौ**। ८। १। २२९। असंयुक्तस्यादौ वर्तमानस्य नस्य णो वा भवति। णरो, नरो। णई, नई। णेइ, नेइ। असंयुक्तस्येत्येव—न्यायः, नाओ।

२३०—**निम्ब-नापिते ल-ण्हं वा**। ८। १। २३०। अनयोः तस्य ल, ण्ह इत्येतौ वा भवतः। लिम्बो, निम्बो। ण्हाविओ, नाविओ।

२३१—**पो वः**। ८। १। २३१। स्वरात्परस्यासंयुक्तस्यानादेः पस्य प्रायो वो भवति। सवहो। सावो। उवसग्गो। पईवो। कासवो। पावं। उवमा। कविलं। कुणवं। कलावो। कवालं। महि-वालो। गो-वई। तवइ। स्वरादित्येव—कम्पइ। असंयुक्तस्येत्येव—अप्पमत्तो। अनादेरित्येव—सुहेण पढइ। प्रायः इत्येव। कई। रिऊ। एतेन पकारस्य प्राप्तयोर्लोपवकारयोर्यस्मिन् कृते श्रुतिसुखमुत्पद्यते स तत्र कार्यः।

२३२—**पाटि-परुष-परिघ-परिखा-पनस-पारिभद्रे फः**। ८। १। २३२। ण्यन्ते पटिधातौ परुषादिषु च पस्य फो भवति। फालेइ, फाडेइ। फरुसो। फलिहो। फलिहा। फणसो। फालिहद्दो।

२३३—**प्रभूते वः**। ८। १। २३३। प्रभूते पस्य वो भवति। बहुत्तं।

२३४—**नीपापीडे मो वा**। ८। १। २३४। अनयोः पस्य मो वा भवति। नीमो, नीवो। आमेलो, आवेडो।

२३५—**पापर्द्धौ रः**। ८। १। २३५। पापर्द्धावपदादौ पकारस्य रो भवति। पारद्धी।

अथ थकारादि-व्यञ्जनविधिः

थ, द, ध, न, प इत्येतेषां व्यञ्जनानां स्थाने ये आदेशाः भवन्ति तान् प्रदर्शयत्याचार्यः ।

२१५—हापवादः । १८७ सूत्रेण थकारस्य हकारो भवति, परन्त्वनेन सूत्रेण थकारस्य ढकारादेशो विहितोऽतः सूत्रमिदं हकारस्यापवादसूत्रम् । **मेथिः** । मेथि+सि । २१५ सू० थकारस्य ढकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**मेढी** इति सिद्धम् । **शिथिरः** । शिथिर+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, थकारस्य ढकारः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सिढिलो** इति सिद्धम् । **शिथिलः** । शिथिल+सि । **सिढिलो** । एतस्य साधनिका शिथिर-तुल्या ज्ञेया । **प्रथमः** । प्रथम+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, थकारस्य ढकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पढमो** इति सिद्धम् ।

२१६—**निशीथः** । निशीथ+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, २१६ सू० थकारस्य वैकल्पिको ढकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे —**निसीढो** । ढकाराभावे—१८७ सू० थकारस्य हकारे—**निसीहो** इति सिद्धम् । **पृथिवी** । पृथिवी+सि । १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, ८८ सू० इकारस्य अकारः, थकारस्य वैकल्पिको ढकारः, सेर्लोपे—**पुढवी** । ढकाराभावे—थकारस्य हकारे—**पुहवी** इति सिद्धम् ।

२१७—दशनम् । दशन+सि । २१७ सू० वैकल्पिको दकारस्य डकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**डसणं** । डकाराभावे—**दसणं** इति सिद्धम् । **दष्टः** । दष्ट+सि । २१७ सू० दकारस्य वैकल्पिको डकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डट्ठो** । डकाराभावे **दट्ठो** इति सिद्धम् । **दग्धः** । दग्ध+सि । दकारस्य वैकल्पिको डकारः, ३११ सू० ग्धस्य ढकारः, ढकारस्य द्वित्वम्, पूर्वढकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डड्ढो** । डकाराभावे—**दड्ढो** इति सिद्धम् । **दोला** । दोला+सि । दकारस्य वैकल्पिको डकारः, सेर्लोपे—**डोला** । डकाराभावे—**दोला** इति सिद्धम् । **दण्डः** । दण्ड+सि । २१७ सू० दकारस्य वैकल्पिको डकारः ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे— **डण्डो, दण्डो** इति सिद्धम् । **दरः** । दर+सि । दकारस्य वैकल्पिको डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डरो, दरो** इति सिद्धम् । **दाहः** । दाह+सि । दकारस्य वैकल्पिको डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डाहो, दाहो** इति सिद्धम् । **दम्भः** । दम्भ+सि । दकारस्य वैकल्पिको डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डम्भो, दम्भो** इति सिद्धम् । **दर्भः** । दर्भ+सि । दकारस्य वैकल्पिको डकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० भकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डब्भो, दब्भो** इति सिद्धम् । **कदनम्** । कदन+सि । दकारस्य वैकल्पिको डकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**कडणं** । डकाराभावे—१७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ—**कयणं** इति सिद्धम् । **दोहदः** । दोहद+सि । प्रथम-दकारस्य वैकल्पिको डकारः, २२१ सू० द्वितीयदकारस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डोहलो, दोहलो** इति सिद्धम् । **दर-शब्दस्य च भयार्थवृत्तेरेव** । यत्र दरशब्दः भयार्थको भवति तत्रैव तस्य दकारस्य

डकारो भवति नान्यथा। यथा—**दरदलितम्**। दरम्-ईषद् अर्धं वा दलितं—दरदलितम्। दरदलित+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**डरदलिअं** इति सिद्धम्। **अत्र दरशब्दो** न भयार्थकः, किन्तु ईषदर्थकोऽर्धार्थको वास्ति, अत एव नात्र २१७ सूत्रेण दकारस्य डकारादेशो जातः।

२१८—**दशति**। दंश् दशने। दंश्+तिव्। २१८ सू० दकारस्य डकारः, ४।२।४६। सू० अनुस्वारस्य लोपः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**डसइ** इति सिद्धम्। **दहति**। दह्-दाहे। दह्+तिव्। २१८ सू० दकारस्य डकारः, धातोरन्तेऽकारागमः, तिवः इचादेशे—**डहइ** इति सिद्धम्।

२१६—**एकादश**। एकादश+जस्। संस्कृते **एकादश** इति जाते। १७७ सू० ककारस्य लोपे, २१६ सू० दकारस्य रेफे, २६२ सू० शकारस्य हकारे—**एआरह** इति सिद्धम्। **द्वादश**। द्वादश+जस्। संस्कृते **द्वादश** इति जाते, ३४८ सू० दकारस्य लोपे, २१६ सू० दकारस्य रेफे, २६२ सू० शकारस्य हकारे—**बारह** इति सिद्धम्। **त्रयोदश**। त्रयोदश+जस्। संस्कृते **त्रयोदश** इति सिद्धे ३५० सू० रेफस्य लोपे, १६५ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह एकारे, २१६ सू० दकारस्य रेफे, २६२ सू० शकारस्य हकारे—**तेरह** इति सिद्धम्। **गद्गदम्**। गद्गद+सि। ३४८ सू० दकारस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, २१६ सू० दकारस्य रेफः, सेर्मकारेः, मकारस्यानुस्वारे—**गग्गरं** इति सिद्धम्। **अनादेरित्येव**। यदि संख्यावाचिनि शब्दे आदिभूतो दकारो भवेत्तदैव तस्य दकारस्य रेफो भवति, नान्यथा। यथा—**ते दश। ते**। तद्+जस्। ११ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य दकारस्य लोपः, ५४७ सू० जसः डित्-एकारे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**ते** इति सिद्धम्। **दश**। दशन्+जस्। संस्कृते **दश** इति सिद्धे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० नकारस्य लोपे—**दस** इति सिद्धम्। **अत्र** दकारस्य अनादेरभावात् २१६ सू० रेफो न जातः। **असंयुक्तस्येत्येव**। संख्यावाचिनि शब्दे यदि दकारोऽसंयुक्तो भवेत्तदैव तस्य रेफो भवति, नान्यथा। यथा—**चतुर्दश**। चतुर्दश+जस्। संस्कृते **चतुर्दश** इति सिद्धे। १७७ सू० तकारस्य लोपः, रेफस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वं, २६२ सू० शकारस्य हकारे—**चउद्दह** इति सिद्धम्। अत्र दकारस्य संयुक्तत्वात् २१६ सू० रेफो न जातः।

२२०—**कदली**। कदली+सि। २२० सू० दकारस्य रेफः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**करली** इति सिद्धम्। **अद्रुम इति किम्**। यदि कदली-शब्दो द्रुमार्थको न भवेत्तदैव तस्य दकारस्य रेफो भवति, नान्यथा। यथा-कदली+सि। १७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ -**कयली**, यत्र १६७ सू० आदेः परस्य सस्वरव्यञ्जनेन सह एकारे जाते तत्र—**केली** इति रूपं भवति। अत्र कदलीशब्दो वृक्षार्थकोऽतएव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः

२२१—**प्रदीपयति**। प्र—पूर्वकः दीप्-धातुः—प्रदीप्तौ। प्रदीप्+णिग्+तिव्। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २२१ सू० दकारस्य लकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, ६३८ सू० णिगः एकारे, स्वरान्तरस्य ईकारस्य व्यवधानात् ६४२ सू० पूर्वाकारस्य न दीर्घः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**पलीवेइ** इति सिद्धम्। **प्रदीप्तम्**। प्रदीप्त+सि। रेफस्य लोपः, दकारस्य लकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पलित्तं** इति सिद्धम्। **दोहदः**। दोहद+सि। २२१ सू० द्वितीय-दकारस्य लकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दोहलो** इति सिद्धम्।

२२२—**कदम्बः**। कदम्ब+सि। २२२ सू० दकारस्य वैकल्पिको लकारः, लकाराभावे—१७७

सू० दकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कलम्बो, कयम्बो** इति सिद्धम् ।

२२३—**दीप्यते**। दीप् दीप्तौ। दीप्+श्यन्+तिव्। संस्कृते दीप्य+तिव् इति जाते, २२३ सू० दकारस्य वैकल्पिको धकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३४८ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वम्, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**धिप्पइ**। धकाराभावे—**दिप्पइ** इति भवति।

२२४—**कदर्थितः**। कदर्थित+सि। २२४ सू० दकारस्य वकारः, ३०० सू० र्थ-स्य टकारः, ३६० सू० टकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कवट्टिओ** इति सिद्धम्।

२२५—**ककुदम्**। ककुद+सि। १७७ सू० द्वितीयककारस्य लोपः, २२५ सू० दकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कउहं** इति सिद्धम्।

२२६—**निषधः**। निषध+सि। २६० सू० षकारस्य सकारः, २२६ सू० धकारस्य ढकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निसढो** इति सिद्धम्।

२२७—**औषधम्**। औषध+सि। १५६ सू० औकारस्य ओकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, २२७ सू० धकारस्य वैकल्पिको ढकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **ओसढं**। ढकाराभावे—१८७ सू० धकारस्य हकारे—**ओसहं** इति भवति।

२२८—**कनकम्**। कनक+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कणयं** इति सिद्धम्। **मदनः**। मदन+सि। दकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे—**मयणो** इति सिद्धम्। **वचनम्**। वचन+सि। १७७ सू० चकारस्य लोपः, यकार-श्रुतिः, नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**वयणं** इति सिद्धम्। **नयनम्**। नयन+सि। नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**नयणं** इति सिद्धम्। **मानति**। मान् पूजायाम्। मान्+तिव्। नकारस्य णकारः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**माणइ** इति सिद्धम्। आर्षे। आर्ष-प्राकृते क्वचिन्नकारस्य णकारो न भवति। यथा—**आरनालः**। आरनाल+सि। सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**आरनालं** इति सिद्धम्। अत्र आर्षत्वात् २२८ सूत्रेण नकारस्य णकारो न जातः। **अनिलः**। अनिल+सि। सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अनिलो** इति सिद्धम्। अत्रापि आर्षत्वात् नकारस्य णकारो न जातः। **अनलः**। अनल+सि। **अनलो**। **अनिलो** इतिवत् साध्यम्।

२२९—**नरः**। नर+सि। २२९ सू० नकारस्य वैकल्पिको णकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**णरो, नरो** इति सिद्धम्। **नदी**। नदी+सि। नकारस्य वैकल्पिको णकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**णई, नई** इति सिद्धम्। **नयति**। णीञ्-प्रापणे। नी+तिव्। ६०८ सू० ईकारस्य एकारः, ६२८ सू० तिवः इचादेशः, २२९ सू० वैकल्पिके नकारस्य णकारे—**णेइ, नेइ** इति सिद्धम्। **असंयुक्तस्येत्येव**—आदौ वर्तमानो नकारो यद्यसंयुक्तो भवेत्तदैव तस्य णकारो भवति, नान्यथा। यथा—**न्यायः**। न्याय+सि। २२९ सू० नकारस्य संयुक्तत्वात् णकारो न जातः, ३४९ सू० संयुक्तयकारस्य लोपः, १७७ सू० असंयुक्तस्य यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**नाओ** इति सिद्धम्।

२३०—**निम्बः**। निम्ब+सि। २३० सू० नकारस्य वैकल्पिको लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-

स्वरादेः लोपे—**लिम्बो**। लकाराभावे—**निम्बो** इति भवति। **नापितः**। नापित+सि। २३० सू० नकारस्य विकल्पेन "ण्ह" इत्यादेशः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**ण्हाविओ**। ण्हादेशाभावे—**नाविओ** इति भवति।

२३१—शपथः। शपथ+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १८७ सू० थकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सवहो** इति सिद्धम्। **शापः**। शाप+सि। शकारस्य सकारः, पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सावो** इति सिद्धम्। **उपसर्गः**। उपसर्ग+सि। पकारस्य वकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**उवसग्गो** इति सिद्धम्। **प्रदीपः**। प्रदीप+सि। रेफस्य लोपः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पईवो** इति भवति। **कश्यपः**। कश्यप+सि। ३४६ सू० यकारस्य लोपः, ४३ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घः, २६० सू० शकारस्य सकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कासवो** इति सिद्धम्। **पापम्**। पाप+सि। पकारस्य वकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पावं** इति सिद्धम्। **उपमा**। उपमा+सि। पकारस्य वकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**उवमा** इति सिद्धम्। **कपिलम्**। कपिल+सि। पकारस्य वकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कविलं** इति सिद्धम्। **कुणपम्**। कुणप+सि। पकारस्य वकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कुणवं** इति सिद्धम्। **कलापः**। कलाप+सि। पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कलावो** इति सिद्धम्। **कपालम्**। कपाल+सि। पकारस्य वकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कवालं** इति सिद्धम्। **महीपालः**। महीपाल+सि। ४ सू० ईकारस्य इकारः, पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**महिवालो** इति सिद्धम्। **गोपतिः**। गोपति+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, पकारस्य वकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**गोवई** इति सिद्धम्। **तपति**। तप्-तापे। तप्+तिव्। ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, पकारस्य वकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**तवइ** इति सिद्धम्। **स्वरादित्येव**। असंयुक्तोऽनादिश्च पकारो यदि स्वरात्-परवर्ती भवेत्तदैव तस्य वकारो भवति, नान्यथा। यथा—**कम्पते**। कम्प् कम्पने। कम्प्+ते। धातोरन्तेऽकारागमः, ते इत्यस्य इचादेशे—**कम्पइ** इति सिद्धम्। अत्र स्वरात्परत्वाभावात् २३१ सू० पकारस्य वकाराभावः। **असंयुक्तस्येत्येव**। स्वरात्परोऽनादिश्च पकारो यदि संयोगरहितो भवेत्तदैव तस्य वकारो भवति, नान्यथा। यथा—**अप्रमत्तः**। अप्रमत्त+सि। संयुक्तत्वात् २३१ सू० पकारस्य वकारो न जातः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अप्पमत्तो** इति सिद्धम्। **अनादेरित्येव**। स्वरात् परोऽसंयुक्तश्च पकारो यद्यादौ अविद्यमानो भवेत्तदैव तस्य वकारो भवति, नान्यथा। यथा—**सुखेन पठति**। **सुखेन**। सुख+टा। १८७ सू० खकारस्य हकारः, ४६५ सू० टा-प्रत्ययस्य "ण" इत्यादेशः, ५०३ सू० अकारस्य एकारे—**सुहेण** इति सिद्धम्। **पठति**। पठ् पाठे। पठ्+तिव्। पकारस्य पदादित्वात् पकारस्य वकारो न जातः, किन्तु १९९ सू० ठकारस्य ढकारः, धातोरन्तेऽकारागमः, तिवः इचादेशे—**पढइ** इति सिद्धम्। **प्राय इत्येव**। सूत्रेऽस्मिन् १७७ सूत्रतः "प्रायः" इति पदस्यानुवृत्तिरायाति। प्रायोऽत्र बहुलार्थकोऽतः प्रस्तुतसूत्रेण विहितः पकारस्य वकारादेशो न सार्वत्रिकः। फलतः क्वचित् पकारस्य वकारादेशो नापि भवति। यथा—**कपिः**। कपि+सि। **२३१ सूत्रे** प्रायो-ग्रहणात् पकारस्य वकाराभावः, किन्तु १७७ सू० पकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः,

सेर्लोपे—**कई** इति सिद्धम्। **रिपुः**। रिपु+सि। प्रायो-ग्रहणात् पकारस्य वकाराभावः, किन्तु पकारस्य लोपः, उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**रिऊ** इति सिद्धम्। **एतेन पकारस्येति। कई, रिऊ** (कपिः, रिपुः) इतीदृशेषु प्रयोगेषु १७७ सूत्रेण पकारस्य लोपे प्राप्तौ, २३१ सूत्रेण वकारप्राप्तौ च सत्यां तदेव करणीयम्, यस्मिन् कृते श्रुतिसुखं—श्रुतेः सुखम् (श्रवण-सुखं) उत्पद्यते-जायते इत्यर्थः।

२३२—**पाटयति**। पट् विदारणे। पट्+णिग्+तिव्। २३२ सू० पकारस्य फकारः, १९८ सू० वैकल्पिकः टकारस्य लकारः, ६३८ सू० णिगः एकारः, ६४२ सू० पूर्वाकारस्य आकारः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**फालेइ**। लकाराभावे—१९५ सू० टकारस्य डकारे—**फाडेइ** इति भवति। **परुषः**। परुष+सि। पकारस्य फकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**फरुसो** इति सिद्धम्। **परिघः**। परिघ+सि। पकारस्य फकारः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, १८७ सू० घकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**फलिहो** इति सिद्धम्। **परिखा**। परिखा+सि। पकारस्य फकारः, रेफस्य लकारः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, ३।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**फलिहा** इति सिद्धम्। **पनसः**। पनस+सि। पकारस्य फकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**फणसो** इति सिद्धम्। **पारिभद्रः**। पारिभद्र+सि। पकारस्य फकारः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**फालिहद्दो** इति सिद्धम्।

२३३—**प्रभूतम्**। प्रभूत+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २३३ सू० पकारस्य वकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, ३६९ सू० तकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**बहुत्तं** इति सिद्धम्।

२३४—**नीपः**। नीप+सि। २३४ सू० पकारस्य वैकल्पिको मकारः, मकाराभावे—२३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**नीमो, नीवो** इति सिद्धम्। **आपीडः**। आपीड+सि। २३४ सू० पकारस्य वैकल्पिको मकारः, १०५ सू० ईकारस्य एकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**आमेडो**, मकाराभावे पकारस्य वकारे—**आवेडो** इति सिद्धम्।

२३५—**पार्पद्धिः**। पार्पद्धि+सि। २३५ सू० द्वितीयस्य पकारस्य रेफः, ३५० सू० संयुक्तरेफस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे—**पारद्धी** इति सिद्धम्।

अथ थकारादि-व्यञ्जन-विधिः

थ, द, ध, न, प इन व्यञ्जनों के स्थान पर जो-जो आदेश होते हैं, अब उन्हें प्रदर्शित किया जा रहा है।

२१५—**मेथि, शिथिर, शिथिल** और **प्रथम** इन शब्दों के थकार को ढकार होता है। १८७ सूत्र थकार को हकार का विधान करता है, किन्तु यह उस हकार-विधायक सूत्र का अपवादसूत्र समझना चाहिए। जैसे—१—**मेथिः**=मेढी (खलिहान में पशु बांधने का काष्ठ—विशेष), २—**शिथिरः**=सिढिलो (ढीला), ३—**शिथिलः**=सिढिलो (ढीला), ४—**प्रथमः**=पढमो (पहला) यहां पर १८७ सूत्र से थकार को हकारादेश न करके प्रस्तुत सूत्र द्वारा थकार को ढकार किया गया है।

२१६—**निशीथ** और **पृथिवी** के थकार को विकल्प से ढकार होता है। जैसे—१—**निशीथः**=

निसीढो, निसीहो (रात), २—**पृथिवी**=पुढवी, पुहवी (ज़मीन) यहां विकल्प से थकार को ढकार किया गया है।

२१७—**दशन, दष्ट, दग्ध, दोला, दण्ड, दर, दाह, दम्भ, दर्भ, कदन** और **दोहद** इन शब्दों के पहले दकार को विकल्प से डकार होता है। जैसे—१—**दशनम्**=डसणं, दसणं (दान्त), २—**दष्टः**=डट्ठो, दट्ठो (जिस को दान्त से काटा गया हो), ३—**दग्धः**=डड्ढो, दड्ढो (जला हुआ), ४—**दोला**=डोला, दोला (हिंडोला), ५—**दण्डः**=डण्डो, दण्डो (डण्डा), ६—**दरः**=डरो, दरो (भय), ७—**दाहः**=डाहो, दाहो (जलन, गरमी, रोगविशेष), ८—**दम्भः**=डम्भो, दम्भो (कपट), ९—**दर्भः**=डब्भो, दब्भो (तृण-विशेष, डाभ), १०—**कदनम्**=कडणं, कयणं (मार डालना, हिंसा, पाप, मर्दन), ११—**दोहदः**=डोहलो, दोहलो (गर्भिणी नारी का मनोरथ) यहां पहले दकार को डकार किया गया है। वृत्तिकार कहते हैं कि दर शब्द यदि भयार्थक हो तभी उसके दकार को डकार होता है अन्यथा नहीं। जैसे—**दर-दलितम्**—दर-दलिअं (थोड़ा या आधा विकसित) यहां दर शब्द भयार्थक नहीं है अतः यहां दकार को डकार नहीं हो सका।

२१८—**दंश्** और **दह्** इन धातुओं के दकार को डकार होता है। जैसे—१—**दशति**=डसइ (वह काटता है), २—**दहति**=डहइ (वह जलाता है) यहां दकार को डकार किया गया है।

२१९—**संख्यावाचक** शब्दों तथा **गद्गद** शब्द के दकार को रेफादेश होता है। जैसे—१—**एकादश**=एआरह (११), २—**द्वादश**=बारह (१२), ३—**त्रयोदश**=तेरह (१३), ४—**गद्गदम्**=गग्गरं (आनन्द अथवा दुःख से अव्यक्त कथन), यहां दकार को डकार किया गया है। वृत्तिकार कहते हैं कि यह दकार अनादि और असंयुक्त होना चाहिए, जहां संख्यावाचक शब्दों का दकार आदि में विद्यमान और संयुक्त होगा वहां उस को रेफादेश नहीं हो सकेगा। जैसे—**तव दश**=ते दस (तेरे दस), यहां दश संख्यावाचक शब्द है, इसका दकार अनादिभूत नहीं है अतः इसे रेफादेश नहीं हो सका। **चतुर्दश**=चउद्दह (१४), यहां संख्यावाचक शब्द का दकार संयुक्त है, असंयुक्त नहीं है, इसलिये यहां भी प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य नहीं किया।

२२०—**कदली** शब्द यदि वृक्षार्थक न हो तो इसके दकार को रेफादेश हो जाता है। जैसे—**कदली**=करली (मृगविशेष) यहां कदली शब्द वृक्षार्थक नहीं है, अतः यहां प्रस्तुत सूत्र से दकार को रेफादेश हो गया। जहां कदली शब्द द्रुमार्थक होगा, वहां—**कदली**=कयली, केली (केला) ये रूप बनते हैं। यहां प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य नहीं किया।

२२१—**प्र** उपसर्ग पूर्वक **दीप्** धातु के और **दोहद** शब्द के दूसरे दकार को लकार होता है। जैसे—१—**प्रदीपयति**=पलीवेइ (वह जलाता है, सुलगाता है), २—**प्रदीप्तम्**=पलित्तं (ज्वलित), ३—**दोहदः**=दोहलो (गर्भिणी महिला का मनोरथ) यहां दूसरे दकार को लकार किया गया है।

२२२—**कदम्ब** शब्द के दकार को विकल्प से लकार होता है। जैसे—**कदम्बः**=कलम्बो, कयम्बो (वृक्षविशेष) यहां दकार को वैकल्पिक लकार किया गया है।

२२३—**दीप्** धातु के दकार को विकल्प से धकार होता है। जैसे—**दीप्यते**=धिप्पइ, दिप्पइ (वह चमकता है, वह तेज होता है) यहां दकार को विकल्प से धकारादेश किया गया है।

२२४—**कदर्थित**=शब्द के दकार को वकार होता है। जैसे—**कदर्थितः**=कवट्टिओ (तिरस्कृत) यहां द को व किया गया है।

२२५—**ककुद्** के दकार को हकार होता है। जैसे—**ककुद्**=कउहं (बैल के कन्धे का कूबड) यहां द को हकारादेश किया गया है।

२२६—**निषध**— शब्द के धकार को ढकार होता है। जैसे—**निषधः**=निसढो (निषध देश का राजा, स्वरविशेष) यहां धकार को को ढकार किया गया है।

२२७—**औषध** शब्द के धकार को विकल्प से ढकार होता है। जैसे—**औषधम्**=ओसढं, ओसहं, (दवाई) यहां धकार को वैकल्पिक ढकार किया गया है।

२२८—स्वर से परे, असंयुक्त और अनादि नकार को णकार होता है। जैसे—१—**कनकम्**= कणयं(स्वर्ण), २—**मदनः**=मयणो (कामदेव), ३- **वचनम्**=वयणं (वाणी), ४—**नयनम्**=नयणं(नेत्र), ५—**मानयति**=माणइ (वह सम्मान करता है), यहां अनादिभूत असंयुक्त तथा स्वर से आगे आए हुए नकार को णकार किया गया है। **आर्षप्राकृत** में ३ सूत्र से नकार को णकार नहीं भी होता। जैसे— १—**आरनालम्**=आरनालं (कांजी, साबूदाना, कमल), २—**अनिलः**=अनिलो (वायु), ३ -**अनलः**= अनलो (आग) इत्यादि शब्दों के नकार को णकार नहीं हो सका।

२२९—यदि नकार आदि में विद्यमान हो तथा असंयुक्त हो तो उसे विकल्प से णकारादेश होता है। जैसे—१—**नरः**=णरो, नरो (मनुष्य), २—**नदी**=णई, नई (नदी), ३—**नेति**=णेइ, नेइ (ब्रह्म या ईश्वर की अनन्तता सूचित करने वाला एक औपनिषद्—वाक्य, जिसका अर्थ है—अन्त नहीं है, अर्थात् ब्रह्म या ईश्वर की महिमा अपार है), यहां नकार आदिभूत तथा असंयुक्त है, अतः प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से नकार को णकार किया गया है। ध्यान रहे कि जहां नकार संयुक्त होगा, वहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी। जैसे—**न्यायः**=नाओ (इन्साफ), यहां नकार आदिभूत अवश्य है, किन्तु संयुक्त है, अतः इसे णकारादेश नहीं हो सका।

२३०—**निम्ब** और **नापित** शब्द के नकार को क्रमशः विकल्प से ल और ण्ह ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**निम्बः**=लिम्बो निम्बो (नीम का पेड़), २—**नापितः**=ण्हाविओ, नाविओ (हजामत बनाने वाला) यहां विकल्प से नकार को क्रमशः ल, तथा ण्ह ये दो आदेश किए गए हैं।

२३१—**पकार** यदि स्वर से परे हो, असंयुक्त और अनादि हो तो प्रायः उसे वकारादेश हो जाता है। जैसे—**१-शपथः**=सवहो (सौगन्ध), २ -**शापः**=सावो (शाप), ३—**उपसर्गः**=उवसग्गो (संकट), ४—**प्रदीपः**=पईवो (दीपक), ५—**कश्यपः**=कासवो (मदिरासेवी), ६—**पापम्**=पावो (बुराई, अशुभ कर्मपुद्गल), ७ - **उपमा**=उवमा (सादृश्यात्मक दृष्टान्त), ८—**कपिलम्**=कविलं (एक महर्षि का नाम जिन्होंने कुपित हो कर सगरराजा के ६० हज़ार पुत्रों को भस्म कर दिया था, सांख्यदर्शन के प्रणेता, कुत्ता, एक प्रकार की आग, भूरा या धूमैला रंग), ९—**कुणपम्**=कुणवं (मृतशरीरी, मुर्दा) १०—**कलापः**=कलावो (समूह),११ **कपालम्**=कवालं(खोपड़ी या घड़े के अवयव, हड्डी का भिक्षापात्र), १२-**महीपालः**=महिवालो(राजा, पृथिवी का पालक),१३-**गोपतिः**=गोवइ (जो गौ की रक्षा करनेवाला है), १४—**तपति**=तवइ (वह जलता है, सन्तप्त होता है) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से पकार को वकारादेश किया गया है। ध्यान रहे. कि उसी पकार के स्थान में वकार होता है जो स्वर से परे हो, असंयुक्त तथा आदि में अविद्यमान हो। यदि पकार स्वर से परे नहीं होगा, तथा वह संयुक्त और आदि में विद्यमान होगा, तब उसे वकारादेश नहीं हो सकेगा। जैसे १—**कम्पते**=कम्पइ (वह कांपता है), यहां पकार स्वर से परे नहीं है, अतः इसे वकारादेश नहीं हो सका। २—**अप्रमत्तः**=अप्पमत्तो (प्रमाद से रहित),

यहां पकार संयुक्त होने से वकार का रूप नहीं ले सका। ३—**सुखेन पठति**=सुहेण पढ़इ (सुख के साथ पढ़ता है) यहां पकार आदि में विद्यमान है इसीलिये इसे वकार नहीं किया गया। **वृत्तिकार** कहते है कि **प्रायः** शब्द का ग्रहण होने से कहीं पर स्वर से परे रहे, अनादि तथा असंयुक्त पकार को भी वकारादेश नहीं होता। जैसे—१—**कपिः**=कई (वानर), २—**रिपुः**=रिऊ (शत्रु) यहां पकार स्वर से परवर्ती था, असंयुक्त और अनादि था तथापि प्रायोवाद के कारण इसे वकारादेश नहीं हो सका। यहां प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जहां पर १७७ सूत्र से पकार-लोप की प्राप्ति हो और साथ ही प्रस्तुत सूत्र से पकार के स्थान में वकारादेश की स्थिति बनती हो तो वहां पर इन दोनों कार्यों में कौनसा कार्य करना आवश्यक है? पकार-लोप होना जरूरी है या पकार को वकारादेश करना उचित है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वृत्तिकार फरमाते हैं कि दोनों कार्यों में से किसी एक कार्य को करने से यदि शब्दकर्णकटु लगता हो, अथवा कान को सुखप्रद प्रतीत न होता हो तो ऐसा कार्य करना निषिद्ध है, किन्तु जिस कार्य के करने से श्रोत्रसुख उत्पन्न हो. शब्द श्रोत्रप्रिय लगे, सुनने में आनन्ददायक बन जाए, वह कार्य कर देना चाहिए।

२३२—**ण्यन्त पटि** धातु, **परुष, परिघ, परिखा, पनस,** और **पारिभद्र** इन शब्दों के पकार को फकार होता है। जैसे—१—**पाटयति**=फालेइ, फाडेइ (वह फाडता है), २—**परुषः**=फरुसो (कर्कश, कठोर), ३—**परिघः**=फलिहो (अर्गला, लोहे का डण्डा, शीशे का घड़ा), ४—**परिखा**=फलिहा (खाई, किले या नगर के चारों ओर की नहर), ५—**पनसः**=फणसो (कटहर का पेड़), ६—**परिभद्रः**=फालिहद्दो (देवदारु या निम्ब का पेड़), यहां पर पकार को फकारादेश किया गया है।

२३३—**प्रभूत** शब्द के पकार को वकार होता है। जैसे—**प्रभूतम्**=वहुत्तं (अधिक), यहां पकार को वकारादेश किया गया है।

२३४—**नीप** और **आपीड** शब्दों के पकार को विकल्प से मकार होता है। जैसे—१—**नीपः**=नीमो, नीवो (कदम्ब का पेड़), २—**आपीडः**=आमेलो, आवेडो (फलों की माला), यहां पर विकल्प से पकार को मकार किया गया है।

२३५—**पार्पद्धिः**=पारद्धी (शिकार) यहां पकार को रेफादेश किया गया है।

अथ फकारादि-व्यञ्जन-विधिः

२३६—**फो भ-हौ।** ८। १। २३६। स्वरात्परस्यासंयुक्तस्यानादेः फस्य भहौ भवतः। क्वचिद् भः—रेफः, रेभो। शिफा, सिभा। क्वचित्तु हः—मुत्ताहलं। क्वचिदुभावपि—सभलं, सहलं। सेभालिआ, सेहालिआ। सभरी, सहरी। गुभइ, गुहइ। स्वरादित्येव—गुंफइ। असंयुक्तस्येत्येव—पुप्फं। अनादिरित्येव—चिट्ठइ फणी। प्रायः इत्येव—कसण-फणी।

२३७—**बो वः।** ८। १। २३७। स्वरात्परस्यासंयुक्तस्यानादेर्बस्य वो भवति। अलाबू-अलावू, अलाऊ। शबलः, सबलो।

२३८—**बिसिन्यां भः।** ८। १। २३८। बिसिन्यां बस्य भो भवति। भिसिणी।

स्त्रीलिङ्गनिर्देशादिह न भवति—बिसतन्तु—पेलवाणं ।

२३९—कबन्धे म-यौ । ८ । १ । २३९ । कबन्धे बस्य मयौ भवतः । कमन्धो, कयन्धो ।

२४०—कैटभे भो वः । ८ । १ । २४० । कैटभे भस्य वो भवति । केढवो ।

२४१—विषमे मो ढो वा । ८ । १ । २४१ । विषमे मस्य ढो वा भवति । विसढो, विसमो ।

२४२—मन्मथे वः । ८ । १ । २४२ । मन्मथे मस्य वो भवति । वम्महो ।

२४३—वाभिमन्यौ । ८ । १ । २४३ । अभिमन्युशब्दे मो वो वा भवति । अहिवन्नू, अहिमन्नू ।

२४४—भ्रमरे सो वा । ८ । १ । २४४ । भ्रमरे मस्य सो वा भवति । भसलो, भमरो ।

२४५—आदेर्यो जः । ८ । १ । २४५ । पदादेर्यस्य जो भवति । जसो । जमो । जाइ । आदेरिति किम् ? अवयवो । विणओ । बहुलाधिकारात् सोपसर्गस्यानादेरपि—संजमो । संजोगो । अवजसो । क्वचिन्न भवति—पओओ । आर्षे लोपोऽपि—यथाख्यातम्, अहक्खायं । यथाजातम्, अहाजायं ।

२४६—युष्मद्यर्थपरे तः । ८ । १ । २४६ । युष्मच्छब्देऽर्थपरे यस्य तो भवति । तुम्हारिसो । तुम्हकेरो । अर्थपर इति किम्—जुम्ह—दम्ह-पयरणं ।

२४७—यष्ट्यां लः । ८ । १ । २४७ । यष्ट्यां यस्य लो भवति । लट्ठी । वेणु-लट्ठी । उच्छु-लट्ठी । मुहु-लट्ठी ।

२४८—वोत्तरीयानीय-तीय-कृद्ये ज्जः । ८ । १ । २४८ । उत्तरीयशब्दे, अनीय-तीय—कृद्य—प्रत्ययेषु च यस्य द्विरुक्तो जो वा भवति । उत्तरिज्जं, उत्तरीअं । अनीय—कर-णिज्जं, करणीअं । विम्हयणिज्जं, विम्हयणीअं । जवणिज्जं, जवणीअं । तीय-बिइज्जो, बीओ । कृद्य-पेज्जा, पेआ ।

२४९—छायायां होऽकान्तौ वा । ८ । १ । २४९ । अकान्तौ वर्तमाने छायाशब्दे यस्य हो वा भवति । वच्छस्स छाही, वच्छस्स छाया—आतपाभावः । सच्छाहं, सच्छायं । अकान्ताविति किम्—मुह-च्छाया, कान्तिरित्यर्थः ।

२५०—डाह-वौ कतिपये । ८ । १ । २५० । कतिपये यस्य डाह-व इत्येतौ पर्या-येण भवतः । कइवाहं, कइअवं ।

अथ फकारादि-व्यञ्जन-विधिः

साम्प्रतं स्वरात्परस्थानां फकारादि-व्यञ्जनानां स्थाने यान्यादेशादि-कार्याणि भवन्ति तानि प्रदर्शयत्याचार्यः ।

२३६—क्वचिद् भ इति । कस्मिंश्चित् स्थले फकारस्य स्थाने भकारः, क्वचिद् हकारः, क्वचिच्च उभावपि भकार-हकारौ भवतः । यथा—**रेफः** । रेफ+सि । २३६ सू० फकारस्य भकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **रेभो** इति सिद्धम् । अत्र फकारस्य भकारो जातः । **शिफा** । शिफा+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, २३६ सू० फकारस्य भकारः, सेर्लोपे—**सिभा** इति सिद्धम् । अत्रापि फकारस्य भकारोऽभूद् । **मुक्ताफलम्** । मुक्ताफल+सि । ३४८ सू० ककारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, २३६ सू० फकारस्य हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**मुत्ताहलं** इति सिद्धम् । अत्र फकारस्य हकारो जातः । **सफलम्** । सफल+सि । २३६ सू० क्रमशः फकारस्य भकार-हकारौ जातौ, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सभलं, सहलं** इति सिद्धम् । अत्र फकारस्य भकार-हकारौ द्वावपि जातौ । एवमेवाग्रिमेषु त्रिषु शब्देषु फकारस्य भहौ विहितौ । यथा—**सेफालिका** । सेफालिका+सि । २३६ सू० फकारस्य भकार-हकारौ जातौ, सेर्लोपे—**सेभालिका, सेहालिका** इति सिद्धम् । **शफरी** । शफरी+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, २३६ सू० फकारस्य भकार-हकारौ जातौ, सेर्लोपे **सभरी, सहरी** इति सिद्धम् । **गुफति** । गुफ् ग्रन्थने । गुफ्+तिव् । २३६ सू० फकारस्य भकार-हकारौ, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**गुभइ, गुहइ** इति सिद्धम् । **स्वरादित्येव** । असंयुक्तोऽनादिश्च फकारो यदि स्वरात् परवर्ती भवेत्तदैव तस्य भकार-हकारौ भवतः, नान्यथा । यथा—**गुम्फति** । गुम्फ्-गुम्फने । गुम्फ+तिव् । स्वरात्परत्वाभावात् फकारस्य २३६ सू० भकार-हकारौ न जातौ, धातोरन्तेऽकारागमः, तिवः इचादेशे—**गुम्फइ** इति सिद्धम् । **असंयुक्तस्येत्येव** । स्वरात्परोऽनादिश्च फकारो यदि संयोग-विकलो भवेत्तदैव तस्य भ-हौ भवतः, नान्यथा । यथा—**पुष्पम्** । पुष्प+सि । ३२४ सू० ष्पस्य फकारः, ३६० सू० फकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारः, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**पुप्फं** इति सिद्धम् । अस्मिन् प्रयोगे फकारस्य संयुक्तत्वात् प्रस्तुन-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः, **अनादित्येव** । स्वरात्परोऽसंयुक्तश्च फकारो यद्यादौ वर्तमानो भवेत्तदा तस्य भकार-हकारौ न भवतः । यथा—**तिष्ठति फणी** । **तिष्ठति** । स्था गतिनिवृत्तौ । स्था+तिव् । ६८७ सू० तिष्ठतेः "चिट्ठ" इत्यादेशः, तिवः इचादेशे—**चिट्ठइ** इति सिद्धम् । **फणी** । फणिन्+सि । ११ सू० नकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**फणी** इति सिद्धम् । अत्र अनादेरभावात् फकारस्य २३६ सू० भकार-हकारौ न जातौ । **प्रायः इत्येव** । प्रस्तुत-सूत्रे १७७ सूत्रतः **प्रायः** (बहुलं) इति पदस्यानुवृत्तिर्गृह्यतेऽतः क्वचित् फकारस्य भकार-हकारौ न भवतो यथा—**कृष्णफणी** । कृष्णश्चासौ फणी-कृष्णफणी । कृष्णफणिन्+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३८१ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः अकारागमः, २६० सू० षकारस्य सकारः, **प्रायो-ग्रहणात्** २३६ सू० फकारस्य भकार-हकारौ न जातौ, ११ सू० नकारस्य लोपः, सेर्लोपे—**कसण-फणी** इति सिद्धम् ।

२३७—अलाबूः । अलाबू+सि । २३७ सू० बकारस्य वकारः, १ । १ । ३७ । सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे--**अलावू** । यत्र—१७७ सू० बकारस्य लोपः, तत्र **अलाऊ** इति भवति । **शबलः** । शबल+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, बकारस्य वकारः, ४१६ सू० सेर्डोः, डिति परे

अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सवलो** इति सिद्धम् ।

२३८—**बिसिनी** । बिसिनी+सि । २३८ सू० बकारस्य भकार, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्लोपे—**भिसिणी** इति सिद्धम् । **स्त्रीलिङ्ग-निर्देशादिति** । सूत्रकारेण बिसिनी-शब्दः स्त्रीलिङ्गी निर्दिष्टोऽतएव प्रस्तुत-सूत्रेण पुल्लिङ्गि-बिस-शब्दस्य बकारस्य भकारो न भविष्यति । यथा—**बिसतन्तु-पेलवानाम्** । बिसस्य कमलस्य तन्तवः-बिसतन्तवः, बिसतन्तव इव पेलवाः-सुकुमाराः-बिसतन्तुपेलवाः, तेषां, बिसतन्तुपेलवानाम् । बिसतन्तुपेलव+आम् । ४९५ सू० आम्—प्रत्ययस्य "ण" इत्यादेशः, ५०१ सू० पूर्ववर्णस्य दीर्घः, २७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे—**बिसतन्तुपेलवाणं** इति सिद्धम् । २३८ सूत्रे बिसिनी-शब्दस्य स्त्रीलिङ्ग-निर्देशादत्र पुल्लिगे बिसशब्दे बकारस्य भकारो न जातः ।

२३९—**कबन्धः** । कबन्ध+सि । २३९ सू० बकारस्य मकार, यकारश्च । सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कमन्धो, कयन्धो** इति सिद्धम् ।

२४०—**कैटभः** । कैटभ+सि । १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, १९६ सू० टकारस्य ढकारः, २४० सू० भकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**केढवो** इति सिद्धम् ।

२४१—**विषमः** । विषम+सि । २६० सू० षकारस्य सकारः, २४१ सू० मकारस्य वैकल्पिको ढकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विसढो, विसमो** इति सिद्धम् ।

२४२—**मन्मथः** । मन्मथ+सि । २४२ सू० आदिम—मकारस्य वकारः, ३३२ सू० न्मस्य मकारे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वम्, १८७ सू० थकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वम्महो** इति सिद्धम् ।

२४३—**अभिमन्युः** । अभिमन्यु+सि । १८७ सू० भकारस्य हकारः, २४३ सू० मकारस्य वैकल्पिको वकारः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वम्, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**अहिवन्नू, अहिमन्नू** इति सिद्धम् ।

२४४—**भ्रमरः** । भ्रमर+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, २४४ सू० मकारस्य वैकल्पिकः सकारः । यत्र सकारो जातस्तत्रैव २५४ सू० रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**भसलो, भमरो** इति सिद्धम् ।

२४५—**यशः** । यशस्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ११ सू० सकारस्य लोपः, ३२ सू० पुंस्त्वम्, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जसो** इति सिद्धम् । **यमः** । यम+सि । यकारस्य जकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जमो** इति सिद्धम् । **याति** । या—गतिप्रापणयोः । या+तिव् । यकारस्य जकारः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**जाइ** इति सिद्धम् । **आदेरिति किम्** । यदि यकार आदिभूतो भविष्यति तदैव तस्य जकारादेशो भवति नान्यथा । यथा—**अवयवः** । अवयव+सि । सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, **अवयवो** इति सिद्धम् । अत्र यकारस्य आदेरभावात् २४५ सू० जकारो न जातः । **विनयः** । विनय+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारः । अत्रापि यकारस्य आदेरभावात् २४५ सू० जकारो न जातः, किन्तु १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विणओ** इति सिद्धम् । **बहुलाधिकाराद्** । प्रस्तुतसूत्रेण पदादिभूतस्य यकारस्य जकारादेशो विहितः किन्तु बहुलाधिकाराद् उपसर्ग-सहितस्या-नादिभूतस्यापि यकारस्य जकारादेशो भवति । अतएव संयमादिषु त्रिषु शब्देषु बहुलाधिकारात् सोप-सर्गस्यानादेरपि यकारस्य जकारो भवति । यथा—**संयमः** । संयम+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारः,

सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संजमो** इति सिद्धम्। **संयोगः**। संयोग+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संजोगो** इति सिद्धम्। **अपयशः**। अपयशस् +सि। २३१ सू० पकारस्य वकारः, २४५ सू० यकारस्य जकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ११ सू० सकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अवजसो** इति सिद्धम्। एषु शब्देषु बहुलाधिकारादनादेरपि यकारस्य जकारोऽभवत्। **क्वचिन्न भवति**। बहुलाधिकारादनादेरपि यकारस्य जकारादेशो भवतीत्युक्तं, परन्तु बहुलाधिकारात् कचिदनादेरपि यकारस्य जकारो न भवति। यथा—**प्रयोगः**। प्रयोग+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, बहुलाधिकारात् २४५ सू० प्राप्तस्य अनादिभूतस्य यकारस्य स्थाने जकारादेशः बहुलाधिकाराद् निषिद्धः। १७७ सू० यकारस्य गकारस्य च लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पओओ** इति सिद्धम्। **आर्षे लोपोऽपि**। आर्षे प्राकृते यकारस्य स्थाने जकारादेशं न विधाय तस्य लोपो भवति। यथा—**यथाख्यातम्**। यथाख्यात+सि। आर्षत्वात् २४५ सू० यकारस्य जकारो न जातः, किन्तु तस्य लोपोऽभवत्,१८७ सू० थकारस्य हकारः, ३४८ सू० यकारस्य लोपः ३६० सू० खकारस्य द्वित्वम्, ३६१सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारश्रुतिः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**अहक्खायं** इति सिद्धम्। **यथाजातम्**। यथाजात+सि। आर्षत्वात् २४५ सू० यकारस्य जकारो न जातः, किन्तु तस्य लोपः, १८७ सू० थकारस्य हकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, यकार-श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**अहाजायं** इति सिद्धम्।

२४६—**युष्मादृशः**। युष्मादृश+सि। २४६ सू० यकारस्य तकारः, ३४५ सू० ष्मस्य 'म्ह' इत्यादेशः, १४२ सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**तुम्हारिसो** इति सिद्धम्। **युष्मदीयः**। युष्मदीय+सि। यकारस्य तकारे, ष्मस्य म्ह इत्यादेशे, ४१८ सू० इदमर्थकस्य तद्धितप्रत्ययस्य "केर" इत्यादेशे—**तुम्हद् +केर+सि**—इति जाते—११ सू० दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**तुम्हकेरो** इति सिद्धम्। **अर्थपर इति किम्**। सूत्र-पठितस्य "**अर्थपरे**" इतिपदस्यायमर्थः—युष्मद्-शब्दस्य यः स्वतन्त्रोऽर्थस्तस्य बोधकत्वे सति। अयं भावः—यदा युष्मच्छब्दो निजार्थबोधको भवेत्तदैवास्य यकारस्य तकारो भवति, नान्यथा। इति कथनस्य काऽऽवश्यकता? इति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यद् युष्मच्छब्दो यत्र स्वतन्त्ररूपेण निजार्थस्य बोधको न भवेत्तत्र प्रस्तुतसूत्रेण यकारस्य तकारो न भविष्यति। यथा—**युष्मदस्मत्प्रकरणम्**। युष्मच्च अस्मच्च इति युष्मदस्मदौ तयोः प्रकरणमिति युष्मदस्मत्प्रकरणम्। युष्मदस्मत्प्रकरण+सि। अत्र युष्मदो निजार्थपरकत्वाभावात् २४६ सू० यकारस्य तकारो न जातः किन्तु—२४५ सू० यकारस्य जकारे—३४५ सू० "ष्म" इत्यस्य "स्म" इत्यस्य च "म्ह" इत्यादेशे, ११ सू० तकारस्य लोपे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**जुम्हदम्ह-पयरणं** इति सिद्धम्।

"**युष्मदस्मत्प्रकरणं**"पदस्यास्यायमर्थः—अनिश्चित-व्यक्तेःसम्बन्धितं कथनम्। नात्र युष्मच्छब्दस्य निजार्थः प्रकटो भवति, फलतः प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः, एतदर्थमेव '**अर्थपरे**' इति-पदमुपन्यस्तम्।

२४७—**यष्टिः**। यष्टि+सि। २४७ सू० यकारस्य लकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**लट्ठी** इति सिद्धम्। **वेणुयष्टिः**। वेणोः यष्टिः—वेणुयष्टिः। वेणुयष्टि+सि। पूर्ववदेव **वेणुलट्ठी** इति सिद्धम्। **इक्षु-यष्टिः**। इक्षोः यष्टिः—इक्षुयष्टिः।

इक्षुयष्टि+सि। ६५ सू० इकारस्य उकारे, २८८ सू० **क्षस्य छकारे**, छकारस्य द्वित्वे, पूर्वछकारस्य चकारे—**उच्छु**। यष्टिशब्दस्य पूर्ववदेव **लट्ठी** इति जाते—**उच्छुलट्ठी** इति सिद्धम्। **मधुयष्टिः**। मधोः यष्टिः, मधुयष्टिः। मधुयष्टि+सि। १८७ सू० धकारस्य हकारे, पूर्ववदेव—**महुलट्ठी** इति सिद्धम्।

२४८—**उत्तरीयम्**। उत्तरीय+सि। २४८ सू० यकारस्य वैकल्पिको द्विरुक्तो जकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे -**उत्तरिज्जं**। ज्जादेशाभावे—१७७ सू० यकारस्य लोपे—**उत्तरीअं** इति भवति। **अनीय इति**। अनीय-प्रत्ययस्योदाहरणान प्रदर्शयति वृत्तिकारः। **करणीयम्**। करणीय+सि। यकारस्य वैकल्पिको द्विरुक्तो जकारः, संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**करणिज्जं**, ज्जादेशाभावे—**करणीअं** इति सिद्धम्। **विस्मयनीयम्**। विस्मयनीय+सि। ३४५ सू० स्मस्य "म्ह" इत्यादेशः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, यकारस्य वैकल्पिको द्विरुक्तो जकारः, संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**विम्हयणिज्जं**। ज्जादेशाभावे—**विम्हयणीअं** इति सिद्धम्। **यापनीयम्**। यापनीय+सि। ७११ सू० "याप" इत्यस्य "जव" इत्यादेशः, नकारस्य णकारः, यकारस्य वैकल्पिको द्विरुक्तो जकारः, संयोगे परे ह्रस्वः, ज्जादेशाभावे १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**जवणिज्जं, जवणीअं** इति सिद्धम्। **तीय इति**। तीय-प्रत्ययान्त-शब्दस्योदाहरणं संसूचयति वृत्तिकारः। **द्वितीयः**। द्वितीय+सि। ३४८ सू० दकारस्य लोपः, १११८ सूत्रेण वर्ण-व्यत्यये कृते वकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपः, यकारस्य द्विरुक्तो जकारः, संयोगे परे ह्रस्वे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**बिइज्जो**। ज्जादेशाभावे सन्धौ—**बीओ** इति सिद्धम्। **कृद् य इति**। कृदन्तस्य य-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रतिपादयति वृत्तिकारः। **पेया**। पातुं योग्या—पेया। पेया+सि। यकारस्य वैकल्पिको द्विरुक्तो जकारः, अन्यत्र—१७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्लोपे—**पेज्जा, पेआ** इति सिद्धम्।

२४६—**वृक्षस्य छाया**। **वृक्षस्य**। वृक्ष+ङस्। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, २८८ सू० क्षस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, ४६६ सू० ङसः "स्स" इत्यादेशे—**वच्छस्स** इति सिद्धम्। **छाया**। छाया+सि। २४६ सू० यकारस्य वैकल्पिको हकारः, ५२३ सू० आप्-प्रत्यय-प्रसंगे वैकल्पिकः ङीप्-प्रत्ययः, सेर्लोपे—**छाही**। ङीपाभावे—**छाया** इति भवति। **सच्छायम्**। छायया सह वर्तते इति सच्छायम्। सच्छाय+सि। २४६ सू० यकारस्य वैकल्पिकः हकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**सच्छाहं, सच्छायं** इति सिद्धम्। **अकान्ताविति किम्** अकान्तौ-कान्तिभिन्नार्थे वर्तमानस्यैव छायाशब्दस्य यकारस्य हकारो भवति, न त्वन्यस्य। **यत्र** कान्त्यर्थकः छाया-शब्दस्तत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। यथा—**मुखच्छाया**। **मुखस्य छाया-कान्तिः**, मुखच्छाया। मुखच्छाया+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्लोपे—**मुहच्छाया** इति सिद्धम्। **अत्र** छायाशब्दः कान्त्यर्थकोऽतः प्रस्तुतसूत्रेण यकारस्य जकारो न जातः।

२५०—**कतिपयम्**। कतिपय+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, २३१ सू० **पकारस्य वकारः**, २५० सू० यकारस्य डाह (आह) इत्यादेशः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कइवाह+सि**—इति **जाते**, सेमकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कइवाहं**। आदेशाभावे तु १७७ सू० तकारस्य पकारस्य च लोपे, २५० सू० यकारस्य वकारादेशे—**कइअवं** इति सिद्धम्।

फकार आदि व्यञ्जनों को होने वाले कार्य

अब स्वर से परे रहने वाले फकारादि व्यंजनों के स्थान पर जो आदेशादि कार्य होते हैं उन्हें आचार्य प्रदर्शित कर रहे हैं।

२३६—यदि फकार स्वर से परे हो, असंयुक्त तथा अनादि हो तो उसे भकार और हकार ये दो आदेश होते हैं। फकार के स्थान में किए गए भकारादेश के उदाहरण—१—**रेफः**=रेभो ('र' यह वर्ण, दुष्ट, निर्दय), २—**शिफा**=सिभा (वृक्ष का जटाकार मूल), यहां पर फकार को भकारादेश किया गया है। फकार को किए गए हकारादेश का उदाहरण—१—**मुक्ताफलम्**=मुत्ताहलं (मोती), यहां फकार के स्थान पर हकार किया गया है। फकार को किए गए क्रमशः भकार और हकार दोनों आदेशों के उदाहरण—१—**सफलम्**=सभलं, सहलं (फल सहित, सार्थक), २—**शेफालिका**=सेभालिआ, सेहालिआ (लताविशेष), ३—**शफरी**=सभरी, सहरी (मछली), ४—**गुफति**=गुभइ, गुहइ (वह गूंथता है, गांठता है)। यहां कहीं पर फकार के स्थान में भकार, कहीं हकार और कहीं पर क्रमशः भकार, हकार ये दोनों किए गए हैं। ध्यान रहे कि यदि फकार स्वर से परे, असंयुक्त और अनादिभूत होगा तभी इस को उक्त आदेश हो सकेंगे अन्यथा नहीं। जैसे—१—**गुम्फइ**=गुंफइ (वह गूंथता है) यहां पर फकार स्वर से परे नहीं था, अतः यहां इसे भकार या हकार का आदेश नहीं हो सका। २—**पुष्पम्**=पुप्फं (फूल), यहां फकार संयुक्त होने से भकार या हकार नहीं बन सका। ३—**तिष्ठति फणी**=चिट्ठइ फणी (सर्प ठहरता है) यहां फकार आदिभूत था, अनादि नहीं था इसलिए प्रस्तुत सूत्र की यहां प्रवृत्ति नहीं हो सकी। इस सूत्र में "**प्रायः**" की अनुवृत्ति भी आती है अतः कहीं पर सूत्रोक्त कार्य नहीं भी होता। जैसे—**कृष्ण-फणी**=कसण-फणी (काला सांप), यहां फकार स्वर से परे है, असंयुक्त तथा अनादि भी है तथापि यहां फकार को भकार या हकार यह आदेश नहीं हो सका।

२३७—वकार यदि स्वर से परे हो, असंयुक्त तथा अनादिभूत हो तो उसे वकारादेश होता है। जैसे—१—**अलाबूः**=अलावू, अलाऊ (तुम्बीलता), २—**शबलः**=सवलो (रंग विरंगा) यहां पर पवर्गीय बकार को अन्तःस्थ वकार किया गया है।

२३८—**बिसिनी** के बकार को भकार होता है। जैसे- १—**बिसिनी**=भिसिणी (कमलिनी) यहां बकार को भकार किया गया है। मूल पाठ में बिसिनी शब्द स्त्रीलिङ्गी स्वीकार किया है, अतः—**बिस-तन्तु-पेलवाणाम्**=विस-तन्तु-पेलवाणं [बिस—कमल तन्तुओं के समान सुकुमारों का] यहां नपुंसकलिङ्गी बिस-शब्द होने से बकार को भकार नहीं हो सका।

२३९—**कबन्ध** के बकार को मकार और यकार ये दोनों आदेश होते हैं। जैसे - **कबन्धः**=कमन्धो, कयन्धो (मस्तक-हीन शरीर) यहां बकार के स्थान में क्रमशः मकार और यकार किया गया है।

२४०—**कैटभ** शब्द के भकार को वकार होता है। जैसे—**कैटभः**=केढवो (दैत्यविशेष), यहां भकार के स्थान में वकार किया गया है।

२४१—**विषम** शब्द के मकार को विकल्प से ढकार होता है। जैसे—**विषमः**=विसढो, विसमो (ऊंचा नीचा) यहां मकार के स्थान में विकल्प से ढकार किया गया है।

२४२—**मन्मथ** शब्द के आदि मकार को वकार होता है। जैसे—**मन्मथः**=वम्महो (कामदेव), यहां आदिम मकार को वकार किया गया है।

२४३—**अभिमन्यु** शब्द के मकार को विकल्प से वकार होता है। जैसे—**अभिमन्युः**=अहिवन्नू, अहिमन्नू (अर्जुन का पुत्र) यहां मकार को वैकल्पिक वकार किया गया है।

२४४—**भ्रमर** शब्द के मकार को विकल्प से सकार होता है। जैसे—**भ्रमरः**=भसलो, भमरो (भंवरा) यहां मकार को विकल्प से सकार किया गया है।

२४५—**पद** के आदि में वर्तमान यकार को जकार होता है। जैसे—१—**यशः**=जसो (कीर्ति), २—**यमः**=जमो (यमराज), ३—**याति**=जाइ (वह जाता है)। सूत्रकार ने "**आदेः**" इस पद का जो प्रयोग किया है इस के कारण—१—**अवयवः**=अवयवो (हिस्सा), २—**विनयः**=विणओ (नम्रता), इन शब्दों के अनादिभूत यकार को जकारादेश नहीं हो सका। **बहुलाधिकार** के कारण उपसर्ग-सहित पद के अनादिभूत यकार को भी जकारादेश हो जाता है। जैसे—१—**संयमः**=संजमो (नियन्त्रण, चारित्र), २—**संयोगः**=संजोगो (सम्बन्ध), ३—**अपयशः**=अवजसो (बेइज्जती) यहां यकार आदि में विद्यमान नहीं था तथापि **बहुलाधिकार** के कारण इसे जकारादेश कर दिया गया। **बहुलाधिकार से** कहीं पर यकार को जकारादेश होता ही नहीं है। जैसे—**प्रयोगः**=पओओ (काम में लाना, शब्द-योजना) यहां प्र उपसर्ग था, यकार अनादिभूत था, संयमादि शब्दों की भांति बहुलाधिकार से इसे जकारादेश हो जाना चाहिए था, किन्तु नहीं हो सका। **आर्ष-प्राकृत में** ३ सूत्र से कहीं पर यकार का लोप भी हो जाता है। जैसे—**यथाख्यातम्**=अहक्खायं (सर्वथा निर्दोष चारित्र), २—**यथाजातम्**=अहाजायं (नग्न) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से आदिभूत यकार के स्थान में जकारादेश हो जाना चाहिए था, किन्तु ३ सूत्र से नहीं हो सका। किन्तु उसका लोप कर दिया गया।

२४६—यदि **युष्मद्** शब्द अपने अर्थ का बोधक हो तो उसके यकार को तकारादेश हो जाता है। जैसे—१—**युष्मादृशः**=तुम्हारिसो (तुम्हारे जैसा), २—**युष्मदीयः**=तुम्हकेरो (तुम्हारा) यहां पर युष्मद् शब्द स्वतन्त्र रूप से अपने अर्थ को अभिव्यक्त कर रहा है अतः उस के मकार को तकारादेश हो गया। यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार ने "**अर्थपरे**" (युष्मद् शब्द अपने अर्थ का बोधक हो) यह पद क्यों पढ़ा ? उत्तर में निवेदन है कि इस पद के पढ़ने से जहां युष्मद् शब्द स्वतन्त्र रूप से अपने अर्थ का बोधक नहीं होगा, वहां पर प्रस्तुत सूत्र से यकार को तकारादेश नहीं हो सकेगा। जैसे—**युष्मत्-अस्मत्-प्रकरणम्**=जुम्हदम्हपयरणं (तुम्हारे-हमारे से अर्थात् अनिश्चित व्यक्ति से सम्बन्धित कथन) यहां पर युष्मद् शब्द अपने अर्थ का स्वतन्त्र रूप से बोधक नहीं है अतः इस के यकार को प्रस्तुत सूत्र द्वारा तकारादेश नहीं हो सका।

२४७—**यष्टि** शब्द के यकार को लकार होता है। जैसे—१—**यष्टिः**=लट्ठी (लाठी), २—**वेणुयष्टिः**=वेणुलट्ठी (बांस की लाठी, छड़ी), ३—**इक्षुयष्टिः**=उच्छुलट्ठी (ईख की लाठी), ४—**मधुयष्टिः**=महुलट्ठी (औषध विशेष, ईख) यहां पर यकार को लकार किया गया है।

२४८—यदि **उत्तरीय** शब्द में अनीय, तीय और कृदन्त का —प्रत्यय हो तो उस के यकार को द्विरुक्त (जिसे दो बार कहा गया है, द्वित्व) जकारादेश विकल्प से होता है। जैसे—**उत्तरीयम्**=उत्तरिज्जं, उत्तरीअं (चद्दर, दुपट्टा), **अनीय प्रत्यय के उदाहरण**—१—**करणीयम्**=करणिज्जं, करणीअं (करने योग्य), २—**विस्मयनीयम्**=विम्हयणिज्जं, विम्हयणीअं (आश्चर्य के योग्य), ३—**याप-**

नीयम्=जवणिज्जं, जवणीग्रं (गमन करवाने योग्य, व्यवस्था करवाने योग्य)। **तीय-प्रत्यय का उदाहरण**—१—**द्वितीयः**=बिइज्जो, बीग्रो (दूसरा)। **कृदन्त य प्रत्यय का उदाहरण**—१—**पेया**=पेज्जा, पेग्रा (पीने योग्य वस्तु, यवागू-जौ या—चावल को सड़ा कर खट्टा किया हुग्रा मांड, जौ की कांजी) यहां क्रमशः ग्रनीय, तीय तथा कृदन्त के य प्रत्यय वाले शब्दों के यकार को विकल्प से '**ज्ज**' यह ग्रादेश किया गया है।

२४९—यदि **छाया** शब्द कान्ति-मनोहरता का वाचक न हो तो उस के यकार को विकल्प से हकारादेश होता है। जैसे—१—**वृक्षस्य छाया**=वच्छस्स छाही, छाया। (वृक्ष की छाया-परछाईं), २—**सच्छायम्**=सच्छाहं, सच्छायं (छाया सहित)। यहां छाया शब्द कान्त्यर्थक नहीं है ग्रतः प्रस्तुत सूत्र से यकार को वैकल्पिक हकार किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि कान्त्यर्थक छाया शब्द के यकार को हकारादेश का निषेध क्यों किया गया? उत्तर में निवेदन है कि यदि ऐसा न कहते तो—**मुख-च्छाया**=मुहच्छाया (मुख की छाया-कान्ति) यहां पर भी यकार को '**ज्ज**' यह ग्रादेश हो जाता। कान्त्यर्थक छाया शब्द के यकार को 'ज्ज' यह ग्रादेश सूत्रकार को इष्ट नहीं है। ग्रतः कान्त्यर्थक छाया शब्द के यकार को '**ज्ज**' इस ग्रादेश का निषेध किया गया है।

२५०—**कतिपय** शब्द के यकार को पर्याय (क्रम) से डाह (ग्राह) ग्रौर व ये दो ग्रादेश होते हैं। जैसे—१—**कतिपयम्**=कइवाहं, कइग्रवं (कई एक), यहां पर क्रम से यकार को डाह ग्रौर व, ये दो ग्रादेश किए गए हैं।

ग्रथ रेफादि-व्यञ्जनविधिः

२५१—किरि-भेरे-रो डः। ८। १। २५१। अनय रस्य डो भवति। किडी। भेडो।

२५२—पर्याणे डा वा। ८। १। २५२। पर्याणे रस्य डा इत्यादेशो वा भवति। पडायाणं, पल्लाणं।

२५३—करवीरे णः। ८। १। २५३। करवीरे प्रथमस्य रस्य णो भवति। कणवीरो।

२५४—हरिद्रादौ लः। ८। १। २५४। हरिद्रादिषु शब्देषु असंयुक्तस्य रस्य लो भवति। हलिद्दी। दलिद्दाइ। दलिद्दो। दालिद्दं। हलिद्दो। जहुट्ठिलो। सिढिलो। मुहलो। चलणो। वलुणो। कलुणो। इङ्गालो। सक्कालो। सोमालो। चिलाग्रो। फलिहा। फलिहो। फालिहद्दो। काहलो। लुक्को। ग्रवद्दालं। भसलो। जढलं। बढलो। निट्ठुलो। बहुलाधिकाराच्चरणशब्दस्य पादार्थवृत्तेरेव। अन्यत्र—चरणकरणं। भ्रमरे ससंनियोगे एव। अन्यत्र भमरो। तथा—जढरं, बढरो, निट्ठुरो इत्याद्यपि। हरिद्रा, दरिद्राति, दरिद्र, दारिद्र्य, हरिद्र, युधिष्ठिर, शिथिर, मुखर, चरण, वरुण, करुण, अङ्गार, सत्कार, सुकुमार, किरात, परिखा, परिघ, पारिभद्र, कातर, रुग्ण, अप-

द्वार, भ्रमर, जठर, बठर, निष्ठुर इत्यादि । आर्षे–दुवालसंगे इत्याद्यपि ।

२५५—**स्थूले लो रः** । ८ । १ । २५५ । स्थूले लस्य रो भवति । थोरं । कथं थूलभद्दो ? स्थूरस्य हरिद्रादिलत्वे भविष्यति ।

२५६—**लाहल-लाङ्गल-लांगूले वादेर्णः** । ८ । १ । २५६ । एषु आदेर्लस्य णो वा भवति । णाहलो, लाहलो । णङ्गलं, लङ्गलं । णंगूलं, लंगूलं ।

२५७—**ललाटे च** । ८ । १ । २५७ । ललाटे च आदेर्लस्य णो भवति । चकार आदेरनुवृत्त्यर्थः । णिडालं, णडालं ।

२५८—**शवरे बो मः** । ८ । १ । २५८ । शवरे वस्य मो भवति । समरो ।

२५९—**स्वप्न-नीव्योर्वा** । ८ । १ । २५९ । अनयोर्वस्य मो वा भवति । सिमिणो, सिविणो । नीमी, नीवी ।

२६०—**श-षोः सः** । ८ । १ । २६० । शकार-षकारयोः सो भवति । श–सद्दो । कुसो । निसंसो । वंसो । सामा । सुद्धं । दस । सोहइ । विसइ । ष–सण्डो । निहसो । कसाओ । घोसइ । उभयोरपि–सेसो । विसेसो ।

२६१—**स्नुषायां ण्हो न वा** । ८ । १ । २६१ । स्नुषाशब्दे षस्य ण्हः णकाराक्रान्तो हो वा भवति । सुण्हा, सुसा ।

२६२—**दश-पाषाणे हः** । ८ । १ । २६२ । दशन्शब्दे पाषाणशब्दे च शषोर्यथा-दर्शनं हो वा भवति । दह-मुहो, दस-मुहो । दह-बलो, दसबलो । दहरहो, दसरहो । दह, दस । एआरह । बारह । तेरह । पाहाणो-पासाणो ।

२६३—**दिवसे सः** ८ । १ । २६३ । दिवसे सस्य हो वा भवति । दिवहो, दिवसो ।

२६४—**हो घोऽनुस्वारात्** । ८ । १ । २६४ । अनुस्वारात्परस्य हस्य घो वा भवति । सिंघो, सीहो । संघारो, संहारो । क्वचिदननुस्वारादपि, दाहः, दाघो ।

२६५—**षट्-शमी-शाव-सुधा-सप्तपर्णेष्वादेश्छः** । ८ । १ । २६५ । एषु आदेर्वर्णस्य छो भवति । छट्ठो । छट्ठी । छप्पओ । छम्मुहो । छमी । छावो । छुहा । छत्तिवण्णो ।

२६६—**शिरायां वा** । ८ । १ । २६६ । शिराशब्दे आदेश्छो वा भवति । छिरा, सिरा ।

अथ रेफादि-विधिः

र, ल, व, श, ष, स, ह इत्येतेषां वर्णानां स्थाने य आदेशा भवन्ति तान् प्रदर्शयत्याचार्यः—

२५१—किरिः। किरि+सि। २५१ सू० रेफस्य डकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**किडी** इति सिद्धम्। **भेरः**। भेर+सि। २५१ सू० रेफस्य डकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**भेडो** इति सिद्धम्।

२५२—पर्याणम्। पर्याण+सि। २५२ सू० रेफस्य वैकल्पिकः डा इत्यादेशः, आदेशाभावे – ३३६ सू० र्यस्य ल्ल इत्यादेशे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**पडायाणं, पल्लाणं** इति सिद्धम्।

२५३ - करवीरः। करवीर+सि। २५३ सू० प्रथम-रेफस्य णकार. सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कणवीरो** इति सिद्धम्।

२५४—हरिद्रा। हरिद्रा+सि। २५४ सू० रेफस्य लकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वम्, ५२३ सू० आप्-प्रसगे ङी—(ई)—प्रत्यये—**हलिद्द**+ई+सि इति जाते, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लुकि, सेर्लोपे—**हलिद्दी** इति सिद्धम्। **दरिद्राति**। दरिद्रा+दुर्गतौ। दरिद्रा+तिव्। रेफस्य लकारः, ३५० सू० संयुक्तरेफस्य लोपे, दकारस्य द्वित्वे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**दलिद्दाइ** इति सिद्धम्। **दरिद्रः**। दरिद्र+सि। प्रथमरेफस्य लकारः, द्वितीयरेफस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वम्. सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, **दलिद्दो** इति सिद्धम्। **दारिद्र्यम्**। दारिद्र्य+सि। प्रथमरेफस्य लकारः, द्वितीयरेफस्य लोपः, ३४६ सू० यकारस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**दालिद्दं** इति सिद्धम्। **हरिद्रः**। हरिद्र+सि। रेफस्य लकारः, द्वितीयरेफस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**हलिद्दो** इति सिद्धम्। **युधिष्ठिरः**। युधिष्ठिर+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, १०७ सू० उकारस्य अकारः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, ६६ सू० आदेरिकारस्य उकारः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, रेफस्य लकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जहुट्ठिलो** इति सिद्धम्। **शिथिरः**। शिथिर+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, २१५ सू० थकारस्य ढकारः, रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सिढिलो** इति सिद्धम्। **मुखरः**। मुखर+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारः, रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**मुहलो** इति सिद्धम्। **चरणः**। चरण+सि। रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**चलणो** इति सिद्धम्। **वरुणः**। वरुण+सि। **वलुणो**। **चलणो** इतिवत् साध्यम्। **करुणः**। करुण+सि। **कलुणो**। **वलुणो** इतिवत् साध्यम्। **अङ्गारः**। अङ्गार+सि। ४७ सू० अकारस्य इकारः, रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **इङ्गालो** इति सिद्धम्। **सत्कारः**। सत्कार+सि। ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सक्कालो** इति सिद्धम्। **सुकुमारः**। सुकुमार+सि। १७१ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ओकारे, रेफस्य लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सोमालो** इति सिद्धम्। **किरातः**। किरात+सि। १८३ सू० ककारस्य चकार, रेफस्य लकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**चिलाओ** इति सिद्धम्। **परिखा**। परिखा+सि। २३२ सू० पकारस्य फकारः, रेफस्य लकारः, १८७ सू० खकारस्य हकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**फलिहा**

इति सिद्धम् । **परिघः** । पकारस्य फकारे, रेफस्य लकारे, १८७ सू० घकारस्य हकारे, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे—**फलिहो** इति सिद्धम् । **पारिभद्रः** । पारिभद्र+सि । पकारस्य फकार:, रेफस्य लकार:, १८७ सू० भकारस्य हकार:, रेफस्य लोप:, दकारस्य द्वित्वम्, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**फालिहद्दो** इति सिद्धम् । **कातरः** । कातर+सि । २१४ सू० तकारस्य हकार: रेफस्य लकार:, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**काहलो** इति सिद्धम् । **रुग्णः** । रुग्ण+सि । रेफस्य लकार:, २७३ सू० ग्णस्य ककार:, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**लुक्को** इति सिद्धम् । **अपद्वारम्** । अपद्वार+सि । २३१ सू० पकारस्य वकार:, ३४८ सू० वकारस्य लोप:, दकारस्य द्वित्वम्, रेफस्य लकार:, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अवद्दालं** इति सिद्धम् । **भ्रमरः** । भ्रमर+सि । रेफस्य लोप:, २४४ सू० मकारस्य सकार:, रेफस्य लकार:, ४६१ सू० सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**भसलो** इति सिद्धम् । **जठरम्** । जठर+सि । १९९ सू० ठकारस्य ढकार:, रेफस्य लकार:, सेर्मकार:,मकारस्यानुस्वारे **जढलं**इति सिद्धम् । **बठरः** । बठर+सि । १९९ सू० ठकारस्य ढकार: रेफस्य लकार:, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**बढलो** इति सिद्धम् । **निष्ठुरः** । निष्ठुर+सि । ३४८ सू० षकारस्य लोप:, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकार:, रेफस्य लकार:, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**निट्ठुलो** इति सिद्धम् । **बहुलाधिकाराच्चरणशब्दस्य** । चरण-शब्दस्य—**पादः, श्लोकस्यैको भागः, स्तम्भः, भ्रमणं वेदशाखा, चारित्रम्** इत्यादयोऽनेकेऽर्था: सन्ति, किन्तु बहुलस्याधिकाराद् यदा चरण-शब्द: पादार्थकस्तदैव तस्य रेफस्य लकारो भवति, नान्यथा । पाद-भिन्नार्थकस्य चरणशब्दस्य तु—**चरण-करणं** इति रूपं भवति । साधना त्वित्थम्—**चरणकरणम्** । चरणं च करणं च तयो: समाहार:—चरणकरणम् । चरणकरण+सि । सेर्मकार:, मकारस्यानुस्वारे—**चरण-करणं** इति सिद्धम् । अत्र चारित्रार्थके चरणशब्दे रेफस्य २५४ सूत्रेण लकारो न जात: । **भ्रमरे ससंनियोगे एव** । भ्रमर-शब्दे यदि सकारस्य संनियोग:—सम्बन्धो भवेत्तदैव रेफस्य लकारो भवति, नान्यथा । यथा—**भ्रमरः** । भ्रमर+सि । रेफस्य लोप:, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**भमरो** इति सिद्धम् । अत्र २४४ सू० मकारस्य सकारो न जातोऽत: रेफस्य २५४ सूत्रेण लकारोऽपि न जात: । **तथा—जढरं** । क्वचिद् **बहुलाधिकारात्** जठरादिषु त्रिषु शब्देष्वपि रेफस्य लकारो न भवति । यथा—**जठरम्** । जठर+सि । १९९ सू० ठकारस्य ढकार:, सेर्मकार:, मकारस्यानुस्वारे—**जढरं** इति सिद्धम् । **बठरः** । बठर +सि । ठकारस्य ढकार:, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादे: लोपे—**बढरो** इति सिद्धम् । **निष्ठुरः** । निष्ठुर+सि । पूर्ववदेव **निट्ठुरो** इति सिद्धम् । एषु शब्देषु **बहुलाधिकारात्** रेफस्य २५४ सू० लकारो न जात: । **आर्षे** । आर्षप्राकृते द्वादशांग-शब्दस्य पुल्लिङ्ग, संयुक्त-वकारात् पूर्वम उकारागम:, द्वितीय-दकारस्य च रेफो भवति । यथा—**द्वादशांगम्** । द्वादशानामङ्गानां समाहार:—द्वादशांगम् । द्वादशांग+सि । आर्षत्वात् पुल्लिङ्गत्वं, संयुक्तवकारात्पूर्वम् उकारागम:, द्वितीयदकारस्य लकारे—**दुवालशांग+सि** इति जाते–२६० सू० शकारस्य सकार:, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्य:, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्व:, ६५८ सू० सौ परे अकारस्य एकार:, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **दुवालसंगे** इति सिद्धम् ।

२५५ स्थूलम् । स्थूल+सि । ३४८ सू० सकारस्य लोप:, १२४ सू० ऊकारस्य ओकार:, २५५ सू० लकारस्य रेफ:, ५१४ सू० सेर्मकार:, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे - **थोरं** इति सिद्धम् । **कथं थूलभद्दो** ? प्रस्तुतसूत्रेण स्थूल-शब्द-लकारस्य रेफादेशो विहित:, किन्तु '**थूल-भद्दो**' इत्यत्र लकारस्य रेफादेश: कथं न कृत: ? उत्तरयति वृत्तिकार: "**थूलभद्दो**" इत्यत्र न स्थूल-शब्द:, परं स्थूर-शब्दो वर्तते, अतोऽत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता । अत्र तु २५४ सूत्रेण रेफस्य लकारो विहित: । साधनिका

त्वेवं बोध्या—**स्थूरभद्रः**। स्थूरभद्र+सि। ३४८ सूत्रेण सकारस्य लोपे, २५४ सू० रेफस्य लकारे ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वे, ४६१ सू० सेर्डो:, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे—**थूलभद्दो** इति सिद्धम्।

२५६ - **लाहलः**। लाहल+सि। २५६ सू० प्रथम-लकारस्य वैकल्पिको णकारः, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**णाहलो, लाहलो** इति सिद्धम्। **लाङ्गलम्**। लाङ्गल+सि। प्रथम-लकारस्य वैकल्पिको णकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**णङ्गलं**, **लङ्गलं** इति सिद्धम्। **लाङ्गूलम्**। लाङ्गूल+सि। २५६ सू० प्रथम-लकारस्य वैकल्पिको णकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**णङ्गूलं, लङ्गूलं** इति सिद्धम्।

२५७—**चकार आदेरनुवृत्त्यर्थः**। प्रस्तुतसूत्रे पठितेन चकारेण २५६ सूत्रे पठितस्य **आदेः** इति पदस्यानुवृत्तिर्गृह्यते। **ललाटम्**। ललाट+सि। २५७ सू० आदेः लकारस्य णकारः, १९५ सू० टकारस्य डकारः, ३६४ सू० लकार-डकारयोः व्यत्ययः*, ७२ सू० वैकल्पिकः आदेरस्य इकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**णिडालं, णडालं** इति सिद्धम्।

२५८—**शवरः**। शवर+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, २५८ सू० वकारस्य मकारः, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**समरो** इति सिद्धम्।

२५९—**स्वप्नः**। स्वप्न+सि। ४६ सू० आदेरकारस्य इकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३७९ सू० नकारात्पूर्वमिकारागमः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, २५९ सू० वकारस्य वैकल्पिको मकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४६१ सू० सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सिमिणो, सिविणो** इति सिद्धम्। **नीवी**। नीवी+सि। २५९ सू० वकारस्य वैकल्पिको मकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**नीमी, नीवी** इति सिद्धम्।

२६०—**श इति**। शकारस्योदाहरणानि प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**शब्दः**। शब्द+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, ३५० सू० बकारस्य लोपः, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वम्, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे - **सद्दो** इति सिद्धम्। **कुशः**। कुश+सि। शकारस्य सकारः, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कुसो** इति सिद्धम्। **नृशंसः**। नृशंस+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, शकारस्य सकारः, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निसंसो** इति सिद्धम्। **वंशः**। वंश+सि। शकारस्य सकारः, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वंसो** इति सिद्धम्। **श्यामा**। श्यामा+सि। शकारस्य सकारः, ३४८ **सू०** यकारस्य लोपः, सेर्लोपे—**सामा** इति सिद्धम्। **शुद्धम्**। शुद्ध+सि। शकारस्य सकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे—**सुद्धं** इति सिद्धम्। **दश**। दशन्+जस्। शकारस्य सकारः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ४६३ सू० जसो लुक्, प्रयोगदर्शनात् ५०१ सू० दीर्घाभावे—**दस** इति सिद्धम्। **शोभते**। शोभ् शोभायाम्। शोभ्+ते। शकारस्य सकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, ६१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे—**सोहइ** इति सिद्धम्। **विशति**। विश्-प्रवेशने। विश्+तिव्। शकारस्य सकारः, धातोरन्तेऽकारागमः, तिवः इचादेशे—**विसइ** इति सिद्धम्। **ष इति**। षकारस्योदाहरणानि संसूचयति वृत्तिकारः। यथा—**षण्डः**। षण्ड+सि। षकारस्य सकारः, सेर्डो:, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सण्डो** इति सिद्धम्। **निकषः**। निकष+सि।

---

* लकारस्य स्थाने डकार, डकारस्य च स्थाने लकारः, अयमेव व्यत्ययो भवति।

षकारस्य सकारः, १८६ सू० ककारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निहसो** इति सिद्धम्। **कषायः**। कषाय+सि। षकारस्य सकारः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कसाओ** इति सिद्धम्। **घोषयति**। घोष् उद्घोषणायाम्। घोष्+णिग्+तिव्। षकारस्य सकारः, ६३८ सू० णिगः अकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**घोसइ** इति सिद्धम्। **उभयोरपि**। शकार-षकारयोः द्वयोरपि यत्र क्रमशः सकारो भवति तन्निरूपयति वृत्तिकारः। **शेषः**। शेष+सि। शकारस्य षकारस्य च सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सेसो** इति सिद्धम्। **विशेषः**। विशेष+सि। शकारस्य षकारस्य च सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विसेसो** इति सिद्धम्।

२६१—**स्नुषा**। स्नुषा+सि। ३४६ सू० नकारस्य लोपः, २६१ सू० षकारस्य वैकल्पिकः 'ण्ह' इत्यादेशः, आदेशाभावे—२६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्लोपे—**सुण्हा, सुसा** इति सिद्धम्।

२६२—**दशमुखः**। दश मुखानि यस्य स दशमुखः। दशमुख+सि। २६२ सू० वैकल्पिकः शकारस्य हकारः, हकाराभावे—२६० सू० शकारस्य सकारः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दहमुहो, दसमुहो** इति सिद्धम्। **दशबलः**। दश बलानि यस्य स दशबलः। दशबल+सि। वैकल्पिकः शकारस्य हकारः, हकाराभावे—शकारस्य सकारः, सेर्डोः डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दहबलो, दसबलो** इति सिद्धम्। **दशरथः**। दशरथ+सि। वैकल्पिकः शकारस्य हकारः, हकाराभावे—शकारस्य सकारः, १८७ सू० थकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दहरहो, दसरहो** इति सिद्धम्। **दश**। दशन्+जस्। वैकल्पिकः शकारस्य हकारः, हकाराभावे—शकारस्य सकारः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ४६३ सू० जसो लुक्, प्रयोगदर्शनात् ५०१ सू० उभयत्रापि दीर्घाभावे—**दह, दस** इति सिद्धम्। **एकादश**। एकादशन्+जस्। १७७ सू० ककारस्य लोपः, २१९ सू० दकारस्य रेफः, २६२ सू० शकारस्य वैकल्पिकः हकारः, हकाराभावे—२६० सू० शकारस्य सकारः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० प्रयोगदर्शनात् दीर्घाभावे—**एआरह, एआरस** इति सिद्धम्। प्रकृते तु एआरह इत्येव रूपमुपात्तमस्ति। **द्वादश**। द्वादशन्+जस्। ३४८ सू० दकारस्य लोपः, २१९ सू० दकारस्य रेफः, शकारस्य वैकल्पिको हकारः, हकाराभावे—शकारस्य सकारः, नकारस्य लोपः, जसो लुक्, प्रयोगदर्शनात् पूर्वाकारस्य दीर्घाभावे—**बारह, बारस** इति सिद्धम्। प्रकृते तु **बारह** इत्यस्यैव ग्रहणं कृतम्। **त्रयोदश**। त्रयोदशन्+जस्। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १६५ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह एकारादेशः, २१९ सू० दकारस्य रेफः, शकारस्य वैकल्पिको हकारः, हकाराभावे—शकारस्य सकारः, नकारस्य जसो च लुक्, प्रयोगदर्शनात् पूर्वाकारस्य दीर्घाभावे—**तेरह, तेरस** इति सिद्धम्। मूले त्वेकमेव रूपमस्ति। **पाषाणः**। पाषाण+सि। षकारस्य वैकल्पिको हकारः, हकाराभावे षकारस्य सकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पाहाणो, पासाणो** इति सिद्धम्।

२६३—**दिवसः**। दिवस+सि। २६३ सू० सकारस्य वैकल्पिकः हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दिवहो, दिवसो** इति सिद्धम्।

२६४—**सिंहः**। सिंह+सि। २६४ सू० हकारस्य वैकल्पिको घकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सिंघो** घकाराभावे २९ सू० अनुस्वारस्य लोपः, ९२ सू० इकारस्य ईकारः, पूर्ववदेव—**सीहो** इति भवति। **संहारः**। संहार+सि। २६४ सू० हकारस्य वैकल्पिको घकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**संघारो, संहारो** इति सिद्धम्। **क्वचिदननुस्वारादपि**। यदि हकारोऽनुस्वार-

परवर्ती भवेत्तदैव प्रस्तुतसूत्रेण तस्य विकल्पेन घकारो जायते, किन्तु **बहुलाधिकारात्** क्वचित् अननुस्वारात्-अनुस्वारभिन्न-वर्णात् परस्यापि हकारस्य घकारो भवति। यथा—**दाहः**। दाह+सि। बहुलाधिकारादननुस्वारादपि हकारस्य घकारो जातः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दाघो** इति सिद्धम्।

२६५—**षष्ठः**। षष्ठ+सि। २६५ सू० आद्यवर्णस्य षकारस्य छकारः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**छट्ठो** इति सिद्धम्। **षष्ठी**। षष्ठी+सि। आद्यषकारस्य छकार, षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वम्, पूर्व-ठकारस्य टकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**छट्ठी** इति सिद्धम्। **षट्पदः**। षट् पदानि यस्य स षट्पदः। षट्पद+सि। आद्यषकारस्य छकारः, ३४८ सू० टकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**छप्पओ** इति सिद्धम्। **षण्मुखः**। षट् मुखानि यस्य स षण्मुखः। षण्मुख+सि। षकारस्य छकारः, २५ सू० णकारस्य अनुस्वारः, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्यः, १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**छम्मुहो** इति सिद्धम्। **शमी**। शमी+सि। शकारस्य छकारः, सेर्लोपे—**छमी** इति सिद्धम्। **शावः**। शाव+सि। शकारस्य छकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**छावो** इति सिद्धम्। **सुधा**। सुधा+सि। सकारस्य छकारः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, सेर्लोपे—**छुहा** इति सिद्धम्। **सप्तपर्णः**। सप्तपर्णानि यस्य स सप्तपर्णः। सप्तपर्ण+सि। २६५ सू० सकारस्य छकारः, ३४८ सू० संयुक्तपकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, ४६ सू० द्वितीयस्य अकारस्य इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, णकारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**छत्तिवण्णो** इति सिद्धम्।

२६६—**शिरा**। शिरा+सि। २६६ सू० शकारस्य वैकल्पिकः छकारः, सेर्लोपे—**छिरा**। यत्र—छकारो न जातस्तत्र २६० सू० शकारस्य सकारे—**सिरा** इति सिद्धम्।

रेफ आदि वर्णों के स्थान में होने वाले कार्य

र, ल, व, श, ष, स, ह इन वर्णों के स्थान में जो आदेश होते हैं अब आचार्य उनका दिग्दर्शन करा रहे हैं—

२५१—**किरि** और **भेर** के रेफ को डकार होता है। जैसे—१—**किरिः**=किडी (सूअर), २—**भेरः**=भेडो (भीरु, कातर), यहां पर रेफ को डकारादेश किया गया है।

२५२—**पर्याण** शब्द के रेफ के स्थान में डा यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**पर्याणम्**=पडायाणं, पल्लाणं (घोड़े आदि का साज़ो सामान) यहां रेफ को विकल्प से डादेश किया गया है।

२५३—**करवीर** शब्द के प्रथम रेफ को णकार होता है। जैसे—**करवीरः**=कणवीरो (वृक्ष-विशेष, कनेर) यहां प्रथम रेफ के स्थान में णकारादेश किया गया है।

२५४—**हरिद्रा** आदि शब्दों के असंयुक्त रेफ को लकार होता है। जैसे—१—**हरिद्रा**=हलिद्दी (औषधविशेष, हलदी), २—**दरिद्राति**=दलिद्दाइ (वह दरिद्र होता है), ३—**दरिद्रः**=दलिद्दो (निर्धन, दीन), ४—**दारिद्र्यम्**=दालिद्दं (निर्धनता), ५—**हरिद्रः**=हलिद्दो (वृक्षविशेष), ६—**युधिष्ठिरः**=

जहुट्ठिलो (अर्जुन का बड़ा भाई), ७ **शिथिरः**=सिढिलो (ढीला), ८—**मुखरः**=मुहलो (वाचाल, बहुत बोलने वाला, ९-- **चरणः**=चलणो (पांव, पैर), १०—**वरुणः**=वलुणो (वरुणवर द्वीप का एक अधिष्ठाता देव), ११—**करुणः**=कलुणो (दीन, करुणा का पात्र), १२—**अङ्गारः**=इङ्गालो (जलता हुआ कोयला, जैन साधुओं की भिक्षा का एक दोष), १३—**सत्कारः**=सक्कालो (आदर), १४—**सुकुमारः**=सोमालो (अति कोमल), १५—**किरातः**=चिलाओ (भील की एक जंगली जाति) १६—**परिखा**=पलिहा (खाई), १७—**परिघः**=फलिहो (अर्गला, ज्योतिष् शास्त्रप्रसिद्ध एक योग), १८—**पारिभद्रः**=फालिहद्दो (निम्ब का वृक्ष), १९—**कातरः**=काहलो (कायर), २०—**रुग्णः**=लुक्को (रोगी), २१—**अपद्वारम्**=अवद्दालं (छोटी खिड़की, गुप्त द्वार), २२—**भ्रमरः**=भसलो (भंवरा), २३—**जठरम्**=जढलं (पेट), २४—**बठरः**=बढलो (मूर्ख, छात्र, आलसी, शठ), २५=**निष्ठुरः**=निट्ठुलो (कठोर) आदि शब्दों के रेफ को लकारादेश किया गया है। इन में पठित चरण शब्द यदि पाद=पांव अर्थ वाला हो तभी प्रस्तुत सूत्र से इसके रेफ को लकार होता है, अन्यथा—**चरणकरणम्**=चरण-करणं (संयम का मूल गुण और उत्तरगुण) ऐसा रूप बनता है। यहां चरण शब्द पादार्थक (पाद अर्थ वाला) न होने से इसके रेफ को लकार नहीं हो सका तथा **भ्रमर** शब्द के मकार को यदि सकारादेश होता हो तभी इस सूत्र से इस के रेफ को लकारादेश होता है। अन्यथा नहीं। जैसे—**भ्रमरः**=भमरो यहां पर मकार को सकारादेश न होने के कारण रेफ को लकारादेश नहीं हो सका। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर रेफ को लकारादेश वैकल्पिक होता है। जैसे—१—**जठरम्**=जढरं, जढलं, २—**बठरः**=बढरो, बढलो, ३—**निष्ठुरः**=निट्ठुरो, निट्ठुलो। यहां पर रेफ के स्थान में लकारादेश विकल्प से दिखाई दे रहा है। **आर्ष प्राकृत में** ३ सूत्र से दकार को भी लकार हो जाता है। जैसे—**द्वादशाङ्गे**=दुवालसंगे (बारह अंग-ग्रन्थों में) यह आर्ष प्रयोग है। यहां द्वितीय दकार को लकार किया गया है।

२५५—**स्थूल** शब्द के लकार को रेफादेश होता है। जैसे—**स्थूलम्**=थोरं (मोटा) यहां लकार को रेफादेश किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि "**थूलभद्दो**" यह शब्द कैसे निष्पन्न हुआ? **थूरभद्दो** होना चाहिए था? उत्तर में निवेदन है कि **थूल-भद्दो** का निर्माण **स्थूर-भद्रः** इस शब्द के रेफ को २५४ सूत्र से लकारादेश करके किया गया है। अतः यहां प्रस्तुत सूत्र से कोई कार्य नहीं किया गया। स्थूरभद्र एक जैन सन्त हो गए हैं, जो स्थूलभद्र के नाम से विख्यात हैं।

२५६—**लाहल, लाङ्गल** और **लाङ्गूल** इन शब्दों के आदिम लकार को विकल्प से णकारादेश होता है। जैसे -१—**लाहलः**=णाहलो, लाहलो (म्लेच्छ पुरुषों की एक जाति), २—**लाङ्गलम्**=णङ्गलं, लङ्गलं (हल, कृषि-औज़ार), ३—**लाङ्गूलम्**=णङ्गूलं, लङ्गूलं (पूंछ) यहां विकल्प से आदि-लकार को णकारादेश किया गया है।

२५७—और **ललाट** शब्द के आदि-लकार को णकार होता है। जैसे—**ललाटम्**=णिडालं, णडालं (मस्तक) यहां आदि लकार को णकार किया गया है। सूत्र में "**चकार**" का पाठ २५६ सूत्र में पठित "**आदेः**" इस पद की अनुवृत्ति को ग्रहण करने के लिए किया गया है।

२५८—**शबर** शब्द के बकार को मकारादेश होता है। जैसे—**शबरः**=समरो (भील जाति) यहां बकार को मकार किया गया है।

२५९—**स्वप्न** और **नीवी** के वकार को विकल्प से मकार होता है। जैसे—१—**स्वप्नः**=सिमिणो, सिविणो (सपना), २--**नीवी**=नीमी, नीवी (मूलधन, नाड़ा) यहां विकल्प से वकार ने मकार का रूप ग्रहण किया है।

२६०—**शकार** और **षकार** को **सकारादेश** होता है। **शकार के उदाहरण** १—**शब्दः**=सद्दो (ध्वनि), २—**कुशः**=कुसो (तृणविशेष, राम के पुत्र का नाम), ३—**नृशंसः**=निसंसो (क्रूर, निर्दय), ४—**वंशः**=वंसो (बांस, सन्तति), ५—**श्यामा**=सामा (श्याम वर्ण वाली स्त्री), ६—**शुद्धम्**=सुद्धं (शुद्ध, निर्दोष), ७—**दश**=दस (दस की संख्या), ८ **शोभते**=सोहइ (वह शोभा पाता है), ९—**विशति**=विसइ (वह प्रवेश करता है)। **षकार के उदाहरण**—१ **षण्डः**=सण्डो (साण्ड, बैल), २—**निकषः**=निहसो (कसौटी का पत्थर), ३—**कषायः**=कसाओ (क्रोध, मान, माया, लोभ रूप दोष), ४—**घोषयति**=घोसइ (वह घोषणा करता है, वह घोखता है) इन शब्दों में क्रमशः शकार और षकार को सकारादेश किया गया है। कहीं पर एक शब्द में ही शकार और षकार को सकारादेश देखने में आता है। जैसे—१—**शेषः**=सेसो (अवशिष्ट, शेष), २—**विशेषः**=विसेसो (खास) यहां पर एक ही शब्द में शकार और षकार दोनों को सकार किया गया है।

२६१—**स्नुषा** शब्द के षकार को विकल्प से णकाराक्रान्त (णकार से युक्त) हकार होता है। जैसे—**स्नुषा**=सुण्हा, सुसा (पुत्रवधू) यहां पर षकार को '**ण्ह**' यह आदेश किया गया है।

२६२—**दशन्** और **पाषाण** शब्द के शकार और षकार को यथादर्शन(प्रयोग के अनुसार)विकल्प से हकारादेश होता है। जैसे—१—**दशमुखः**=दहमुहो, दसमुहो (रावण), २—**दशबलः**=दह-बलो, दसबलो (महात्मा बुद्ध), ३—**दशरथः**=दहरहो, दसरहो, (राम के पिता), ४—**दश**=दह, दस (दस की संख्या), ५—**एकादश**=एआरह एआरस (११ की संख्या), ६—**द्वादश**=बारह बारस (बारह की सख्या), ७—**त्रयोदश**=तेरह तेरस (१३ की संख्या), ८—**पाषाणः**=पाहाणो, पासाणो (पत्थर) यहां शकार और षकार के स्थान में वैकल्पिक हकार किया गया है।

२६३—**दिवस** शब्द के सकार को विकल्प से हकार होता है। जैसे—१—**दिवसः**=दिवहो, दिवसो (दिन) यहां सकार को विकल्प से हकार किया गया है।

२६४—यदि हकार अनुस्वार से परे हो तो उसे विकल्प से घकार होता है। जैसे—१—**सिंहः**=सिंघो, सीहो (शेर), २—**संहारः**=संघारो, संहारो (नाश) यहां पर विकल्प से हकार को घकार किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर अनुस्वार से परे न रहने पर भी हकार को घकार हो जाता है। जैसे—**दाहः**=दाघो (जलन) यहां हकार अनुस्वार से परे नहीं है, तथापि बहुलता से उसे घकारादेश किया गया है।

२६५—**षट्, शमी, शाव, सुधा** और **सप्तपर्ण** के आदि वर्ण को छकारादेश होता है। जैसे—१—**षष्ठः**=छट्ठो (छठा), २—**षष्ठी**=छट्ठी (छठी), ३—**षट्पदः**=छप्पओ (भ्रमर), ४—**षण्मुखः**=छम्मुहो (स्कन्द, कीर्तिकेय), ५—**शमी**=छमी (ऐसा वृक्ष जिसके आन्तरिक भाग में आग हो), ६—**शावः**=छावो (बालक), ७—**सुधा**=छुहा (अमृत), ८—**सप्तपर्णः**=छत्तिवण्णो (वृक्षविशेष) यहां पर आदि के वर्ण को छकार किया गया है।

२६६—**शिरा** शब्द के शकार को विकल्प से छकारादेश होता है। जैसे—**शिरा**=छिरा, सिरा (नस, नाड़ी) यहां शकार को वैकल्पिक छकारादेश किया गया है।

अथ सस्वर-जकारादि-वर्ण-विधिः

२६७—लुग् भाजन-दनुज-राजकुले जः सस्वरस्य न वा। ८। १। २६७। एषु सस्वरजकारस्य लुग् वा भवति। भाणं, भायणं। दणु-वहो, दणुअवहो। रा-उलं, राय-उलं।

२६८—व्याकरण-प्राकारागते कगोः। ८। १। २६८। एषु को गश्च सस्वरस्य लुग् वा भवति। वारणं, वायरणं। पारो, पायारो। आओ, आगओ।

२६९—किसलय-कालायस-हृदये यः। ८। १। २६९। एषु सस्वरयकारस्य लुग् वा भवति। किसलं, किसलयं। कालासं, कालायसं। महण्णवसमा सहिआ। जाला ते सहिअएहिं घेप्पन्ति। निसमणुप्पिअ-हिअस्स हिअयं।

२७०—दुर्गादेव्युदुम्बर-पादपतन-पादपीठेऽन्तर्दः। ८। १। २७०। एषु सस्वरस्य दकारस्य अन्तर्मध्ये वर्तमानस्य लुग् वा भवति। दुग्गा-वी, दुग्गा-एवी। उम्बरो, उउम्बरो। पा-वडणं, पाय-वडणं। पा-वीढं, पायवीढं। अन्तरिति किम्—दुर्गादेव्यामादौ माभूत्।

२७१—यावत्तावज्जीवितावर्तमानावट-प्रावारक-देवकुलैवमेवे वः। ८। १। २७१। यावदादिषु सस्वरवकारस्यान्तर्वर्तमानस्य लुग् वा भवति। जा, जाव। ता, ताव। जीअं, जीविअं। अत्तमाणो, आवत्तमाणो। अडो, अवडो। पारओ, पावारओ। दे—उलं, देव-उलं। एमेव, एवमेव। अन्तरित्येव। एवमेवेऽन्त्यस्य न भवति।

इत्याचार्य—श्रीहेमचन्द्रविरचितायां सिद्धहेम-चन्द्राभिधान-स्वोपज्ञशब्दानुशासन-वृत्तौ अष्टमस्याध्यायस्य प्रथमपादः।

यद् दोर्मण्डलकुण्डलीकृतधनुर्दण्डेन सिद्धाधिपः,
क्रीतं वैरिकुलात् त्वया किल दलत् कुन्दावदातं यशः।
भ्रान्त्वा त्रीणि जगन्ति खेदविवशं तन्मालवीनां व्यधा-
दापाण्डौ स्तनमंडले च धवले गण्डस्थले च स्थितिम् ॥१॥

अथ सस्वर-जकारादि-वर्ण-विधिः

सस्वर-जकारादिवर्णानां स्थाने यानि लुगादिकार्याणि संभवितुं शक्नुवन्ति तानि प्रदर्शयत्याचार्यः—

२६७—**भाजनम्** । भाजन+सि । २६७ सू० सस्वरजकारस्य वैकल्पिको लोपः, लुगभावे १७७ सू० जकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**भाणं, भायणं** इति सिद्धम् । **दनुज-वधः** । दनुजस्य राक्षसः वधः-दनुजवधः । दनुजवध+सि । नकारस्य णकारः, सस्वरजकारस्य वैकल्पिको लोपः, लोपाभावे—जकारस्य लोपः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दणुवहो, दणुअवहो** इति सिद्धम् । **राजकुलम्** । राज्ञः कुलं राजकुलम् । राजकुल+सि । सस्वरजकारस्य वैकल्पिको लोपः, लोपाभावे—जकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**रा-उलं, राय-उलं** इति सिद्धम् ।

२६८—**व्याकरणम्** । व्याकरण+सि । ३४६ सू० यकारस्य लोपः, २६८ सू० सस्वरककारस्य वैकल्पिकः लोपः, लोपाभावे—१७७ सू० ककारस्य लोपः, यकार-श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**वारणं, वायरणं** इति सिद्धम् । **प्राकारः** । प्राकार+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, सस्वरककारस्य वैकल्पिको लोपः, लोपाभावे—ककारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पारो, पायारो** इति सिद्धम् । **आगतः** । आगत+सि । गकारस्य वैकल्पिको लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**आओ, आगओ** इति सिद्धम् ।

२६९—**किसलयम्** । किसलय+सि । २६९ सू० सस्वरयकारस्य वैकल्पिको लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**किसलं, किसलयं** इति सिद्धम् । **कालायसम्** । कालायस+सि । सस्वरयकारस्य वैकल्पिको लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**कालासं, कालायसं** इति सिद्धम् । **महार्णव-समाः सहृदयाः** । महार्णवेन समाः तुल्याः-महार्णवसमाः, हृदयेन सह वर्तमानाः-सहृदयाः । **महार्णव-समाः** । महार्णव+जस् । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वम्, ४६३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० अकारस्य दीर्घे—**महण्णवसमा** इति सिद्धम् । **सहृदयाः** । सहृदय+जस् । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, २६९ सू० सस्वर-यकारस्य वैकल्पिको लोपः, जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **सहिआ** इति सिद्धम् । यत्र सस्वर-यकारस्य लोपो न जातस्तत्र—**यदा ते सहृदयैः गृह्यन्ते** । **यदा** । यस्मिन् काले-यदा । यद्+ङि । २४५ सू० यकारस्य जकारः, ५५४ सू० ङेः डाला (आला) इत्यादेश, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**जाला** इति सिद्धम् । **ते** । तद्+जस् । ११ सू० दकारस्य लोपः, ५४७ सू० जसः डे (ए) इत्यादेशः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **ते** इति सिद्धम् । **सहृदयैः** । सहृदय+भिस् । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपः, ४६६ सू० भिसः "हिं" इत्यादेशः, ५०४ सू० अकारस्य एकारे—**सहिअ-एहिं** इति सिद्धम् । अत्र प्रस्तुतसूत्रेण सस्वर-यकारस्य लोपो न जातः । **गृह्यन्ते** । ग्रह्-ग्रहणे । ग्रह्+क्य+अन्ते । ६२७ सू० ग्रहः "घेप्प" इत्यादेशः, क्यस्य च लोपः, ६३१ सू० अन्ते इत्यस्य "न्ति" इत्यादेशे **घेप्पन्ति** इति सिद्धम् । **निशमनार्पितहृदयस्य** । निशमने-श्रवणे अर्पितं हृदयं येन स निशमनार्पितहृदयः-तस्य निशमनार्पितहृदयस्य । निशमनार्पितहृदय+ङस् । २६० सू० शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, १० सू० णकारस्थस्य अकारस्य लोपे, ६३ सू० अर्पयतौ धातौ आदेरकारस्य ओकारे, अज्झीने परेण संयोज्ये, निसमणोप्पित—हृदय+ङस्, इति स्थिते, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६१ सू० पकारस्य द्वित्वम्, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १२८ सू० ऋकारस्य

इकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, २६६ सू० सस्वरयकारस्य लोपः, ४६६ सू० ङसः "स्स" इत्यादेशे—**निसमणुप्पिग्रहिग्रस्स** इति सिद्धम्। यत्र सस्वरयकारस्य लोपो न जातस्तत्र—**हृदयं**। हृदय+सि। ऋकारस्य इकारः, दकारस्य लोपः, यकारस्य च लोपः, १८० सू० यकारश्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**हिग्रयं** इति भवति।

२७०—**दुर्गादेवी**। दुर्गादेवी+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वम् २७० सू० सस्वरस्य द्वितीयदकारस्य वैकल्पिको लोपः, दकारलोपाभावे—१७७ सू० केवलस्य (स्वर-रहितस्य) दकारस्य लोपः, ११११३७१ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे – **दुग्गावी**, **दुग्गाएवी** इति सिद्धम्। **उदुम्बरः**। उदुम्बर+सि। सस्वरस्य दकारस्य वैकल्पिको लोपः, दकारलोपाभावे—केवलस्य दकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**उम्बरो, उउम्बरो** इति सिद्धम्। **पादपतनम्**। पादयोः पतनं-पादपतनम्। पादपतन+सि। सस्वरस्य दकारस्य वैकल्पिको लोपः, दकारलोपाभावे—केवलस्य दकारस्य लोपः, १८० सू० यकारस्य श्रुतिः, २३१ सू० द्वितीयपकारस्य वकारः, ८६० सू० तकारस्य डकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**पावडणं, पायवडणं** इति सिद्धम्। **पादपीठम्**। पादपीठ+सि। सस्वरस्य दकारस्य वैकल्पिको लोपः, लोपाभावे—केवलस्य दकारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, पकारस्य वकारः, १९९ सू० ठकारस्य ढकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पावीढं, पायवीढं** इति सिद्धम्। **अन्तरिति किम्**। अन्तर्-शब्दः '**मध्ये**' इत्यर्थकः। अतः दुर्गादेव्यादिशब्दानां मध्ये विद्यमानस्य दकारस्य वैकल्पिको लोपो भवतीति फलितम्। मध्ये वर्तमानस्य दकारस्य लोपो भवतीति कथनस्य किं कारणमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारः। दुर्गादेव्यादिशब्देष्वादि-दकारस्य लोपो मा भूदेतदर्थमेवान्तरिति पदमुपन्यस्तम्।

२७१—**यावत्**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारः, २७१ सू० सस्वरस्य वकारस्य वैकल्पिको लोपः, ११ सू० तकारस्य लोपे—**जा**। वकारलोपाभावे—**जाव** इति सिद्धम्। **तावत्**। अव्ययपदमिदम्। सस्वरवकारस्य वैकल्पिको लोपः, तकारस्य लोपे—**ता**। वकारलोपाभावे—**ताव** इति सिद्धम्। **जीवितम्**। जीवित+सि। सस्वरस्य वकारस्य वैकल्पिको लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**जीग्रं, जीविग्रं** इति सिद्धम्। **आवर्तमानः**। आवर्तमान+सि। सस्वरवकारस्य वैकल्पिको लोपः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वम्, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अत्तमाणो, आवत्तमाणो** इति सिद्धम्। **अवटः**। अवट+सि। सस्वरवकारस्य वैकल्पिको लोपः, १९५ सू० टकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अडो, अवडो** इति सिद्धम्। **प्रावारकः**। प्रावारक+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, सस्वरवकारस्य वैकल्पिको लोपः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पारग्रो, पावारग्रो** इति सिद्धम्। **देवकुलम्**। देवस्य कुलं-देवकुलम्। देवकुल+सि। सस्वरवकारस्य वैकल्पिको लोपः, ककारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**दे—उलं, देव-उलं** इति सिद्धम्। **एवमेव**। अव्ययपदमिदम्। सस्वरस्य अन्तर्वर्तमानस्य वकारस्य वैकल्पिको लोपे—**एमेव-एवमेव** इति सिद्धम्। **अन्तरित्येव**। प्रस्तुतसूत्रेण सस्वरस्य वकारस्य यो लोपो विहितः, सोऽन्तः-मध्ये वर्तमानस्यैव सस्वरवकारस्य लोपो भवति, नान्यस्य। फलतः **एवमेव**, इत्यत्र मध्ये विद्यमानस्यैव सस्वर-वकारस्य लोपो जातः नत्वन्तिमस्य सस्वर-वकारस्येति भावः। **इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रेति**। इति-शब्दोऽत्र पूर्वसन्दर्भस्य सूचकः, आचार्यश्चासौ श्रीहेमचन्द्रः, आचार्य-श्री-हेमचन्द्रः, तेन विरचितायां-

निर्मितायामित्याचार्य-श्रीहेमचन्द्र-विरचितायाम् । सिद्धहेमचन्द्रोऽभिधानं-नाम यस्य तत् सिद्धहेमचन्द्राभिधानम् । स्वस्य उपज्ञा-स्वयं प्राप्तं ज्ञानं, यत्परम्परया नोपलब्धमिति स्वोपज्ञं तेन निर्मितं शब्दानुशासनं, शब्दानामनुशासनं-व्याकरणं, स्वोपज्ञशब्दानुशासनम् । सिद्धश्रीहेमचन्द्राभिधानं च तत् स्वोपज्ञशब्दानुशासनं, सिद्धहेमचन्द्राभिधान-स्वोपज्ञशब्दानुशासनं, तस्य वृत्तौ-व्याख्यायामष्टमस्याध्यायस्यायं प्रथमपादः समाप्त इत्यध्याहार्यम् ।

प्रथमपादस्य समाप्तौ ग्रन्थकारः **श्रीहेमचन्द्राचार्यः**, एतद्ग्रन्थप्रणयनाय प्रेरकं सिद्ध-राज-पद-विभूषितं **श्रीजयसिंहदेवनरेशं-"यद्-दोर्मण्डलकुण्डलीकृत-"** इत्यनया प्रशस्त्या प्रशंसति । भावार्थोऽयम्—दोरेव मण्डलं, दोर्मण्डलं=भुजमण्डलं, तेन अकुण्डलं कुण्डलं कृतमिति कुण्डलीकृतं । धनुषो दण्डोधनुर्दण्डः =चापदण्डो येन, तेन दोर्मण्डलकुण्डलीकृत-धनुर्दण्डेन त्वया, हे सिद्धाधिप ! सिद्धराज ! सिद्धराजः—जयसिंहदेव-नामधेय-महीपालः, तत्सम्बोधनम् । वैरिकुलात् शत्रुसमूहात् दलत्कुन्दावदातं-दलन् विकसन् कुन्द.-कुन्दनामधेयसुमनः दलत्कुन्दः, दलत्कुन्देन सममवदातं श्वेतमित्यर्थः, दलत्कुन्दावदातं यत्ते यशः, "यत्तदोः नित्यसम्बन्धः" इति न्यायेन तत् त्रीणि जगन्ति लोकत्रयं भ्रान्त्वा परिभ्रम्य अतएव खेदविवशं खेदेन दुःखेन विवशं पीडितं सत्, मालवीनां-मालवदेशीयराज्ञीनां आपाण्डौ आङिति ईषदर्थे-ईषत्पाण्डौ पीते स्तनमण्डले धवले-श्वेते, गण्डस्थले कपोलस्थले च स्थितिं व्यधात् अकरोदित्यर्थः ।

अस्मिन् श्लोके यद् वर्णितं तस्य हार्दमेतद् । यतोहि सिद्धराजेन भूपतिना मालवदेशाधिपतयो राजानो विनाशिता अतस्तेषां राज्यो विधवा जाताः, वधव्यदुःखेन दुःखितास्तां स्व-शरीर-शृङ्गारादिकं न विहितवत्यः, स्वस्तनेषु चन्दनादिकं न लिप्तवत्यः, तदभावे तासां स्तना ईषत् पाण्डराः प्रतीयन्ते, कान्तिरहिता दृश्यन्ते इत्यर्थः । शोकातुरत्वात् तासां राज्ञीनां गण्डस्थलानि धवलानि संजातानि दीप्तिरहितानि भूतानीत्यर्थः । श्लोकेनानेन प्रकटितमेतद् यद् सिद्धराजो महाराजः मालवदेशनरपतीन् जित्वा महान्तं विजयं समुज्ज्वलं यशश्च लेभे ।

अस्मिन् श्लोके सिद्धाधिपस्य यदुल्लेखः कृतोऽस्ति स तत्सम्मानार्थः किल । सिद्धराजस्य आचार्यपादेषु श्रीहेमचन्द्रसूरिषु महती भक्तिरासीत्, सूरिपादानां च हृदये सिद्धराजस्य महान् सम्मान आसीत्, एतदेव ध्वनयितु सूरिपादः सिद्धस्य भूपतेः नामोल्लेख—पुरस्सरं तदीयमद्भुत वीरत्वं दिग्-दिगन्तव्यापि समुज्ज्वलतमं यशश्चः वर्णितम् ।

***सोत्साहं प्रारब्धो मङ्गलवचनैः समापितस्त्वरितम् ।**
पादः प्रथम, प्रथमः प्रहरोऽधीयान-बटुकल्पः ॥१॥

हैमशब्दानुशासनीयव्याख्यायां बाल-मनोरमा समाख्यायां संस्कृतटीकायां सम्पूर्णः प्रथमः पादः ।

सस्वर जकारादि वर्णों को होनेवाले कार्य

स्वरसहित जकार आदि वर्णों को जो लुगादि कार्य होते हैं, अब आचार्य उनका निर्देश करने लगे हैं—

---

* यथाऽध्ययनशीला बटवः, नवीनोत्साहेन पठन्तः प्रथमं प्रहरं शीघ्रं काल-ज्ञानमन्तरा समापयन्ति तथैवायं मङ्गलवचनैः सोत्साहमारब्धः प्रथमः पादोऽपि शीघ्रं समाप्तः ।

२६७—**भाजन, दनुज** और **राजकुल** के सस्वर (स्वर-सहित) जकार का विकल्प से लोप होता है। जैसे १—**भाजनम्**=भाणं, भायणं (पात्र), २—**दनुजवधः**=दणु-वहो, दणुअ-वहो (दैत्य की हत्या), ३—**राजकुलम्**=रा-उलं, राय-उलं (राजा का वंश) यहां पर स्वर-युक्त जकार का वैकल्पिक लोप किया गया है।

२६८—**व्याकरण, प्राकार** और **आगत** इन शब्दों के स्वर-सहित ककार तथा गकार का लोप होता है। जैसे—१—**व्याकरणम्**=वारणं, वायरणं (शब्दशास्त्र), २—**प्राकारः**=पारो, पायारो (कोट, चार-दीवारी, नगर या किले के चारों ओर रक्षा के लिए बनाई जाने वाली दीवार, ईंट, लकड़ी आदि का बनाया हुआ घेरा), ३—**आगतः**=आओ, आगओ (आया हुआ) यहां ककार और गकार का विकल्प से लोप किया गया है।

२६९—**किसलय, कालायस** और **हृदय** के स्वर-सहित यकार का विकल्प से लोप होता है। जैसे—१—**किसलयम्**=किसलं, किसलयं (नूतन अंकुर, कोमल पत्ती), २—**कालायसम्**=कालासं, कालायासं (लोहे की एक जाति), ३—**महार्णवसमाः सहृदयाः**=महण्णव-समा स-हिआ (सुन्दर हृदय वाले व्यक्ति महार्णव—महासागर के समान होते हैं), ४—**यदा ते सहृदयैः गृह्यन्ते**=जाला ते स-हिअ-एहिं घेप्पन्ति (जब वे सहृदय व्यक्तियों द्वारा ग्रहण किए जाते हैं), ५—**निशमनार्पित-हृदयस्य हृदयम्**=निसमणुप्पिअ-हियस्स हिअयं (निशमन—सुनने में अर्पित—लगा रखे चित्त वाले व्यक्ति का हृदय) यहां पर स्वर-सहित यकार का लोप किया गया है।

२७०—**दुर्गादेवी, उदुम्बर, पाद-पतन** और **पादपीठ** के मध्य भाग में स्थित स्वर-युक्त दकार का विकल्प लोप से होता है। जैसे—१—**दुर्गादेवी**=दुग्गा-वी, दुग्गा-एवी, (पार्वती, देवीविशेष), २—**उदुम्बरः**=उम्बरो, उउम्बरो (गूलर का वृक्ष), ३—**पादपतनम्**=पा-वडणं, पाय-वडणं (पांव में गिरना), ४—**पाद-पीठम्**=पा-वीढं, पाय-वीढं (पांव रखने का आसन) यहां मध्यवर्ती पकार का विकल्प से लोप किया गया है। यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि दकार अन्तर्-मध्य भाग में ही स्थित क्यों होना आवश्यक है? उत्तर में निवेदन है कि यदि मध्यवर्ती दकार का आश्रयण नहीं किया जाता तो "**दुर्गादेवी**=दुग्गा-एवी" यहां पर आदि-दकार का लोप हो जाता। अतः सूत्रकार ने दकार मध्यवर्ती होना आवश्यक कहा है।

२७१—**यावत्, तावत्, जीवित, आवर्तमान, अवट, प्रावरक, देवकुल** और **एवमेव** इन शब्दों के मध्यवर्ती, स्वर-युक्त वकार का विकल्प से लोप होता है। जैसे—१—**यावत्**=जा, जाव (जब तक), २—**तावत्**=ता, ताव (तब तक), ३—**जीवितम्**=जीअं, जीविअं (जीवन), ४—**आवर्तमानः**=अत्त-माणो, आवत्तमाणो (चक्राकार भ्रमण करता हुआ), ५—**अवटः**=अडो, अवडो (कूप, कुंआ), ६—**प्रावारकः**=पारओ, पावारओ (आच्छादक, ढांकने वाला), ७—**देवकुलम्**=दे-उलं, देव-उलं (देवकुल, मन्दिर, देव-जाति), ८—**एवमेव**=एमेव, एवमेव (इसी तरह) यहां मध्यवर्ती, स्वर-युक्त वकार का वैकल्पिक लोप किया गया है। यदि सूत्रकार मध्यवर्ती वकार न कहते तो '**एवमेव**' यहां पर अन्त्य (अन्तिम) वकार का लोप हो जाता। वस्तुतः अन्त्य वकार के लोप की निवृत्ति के लिए ही सूत्रकार ने अन्तर्वर्तमान (मध्यवर्ती) वकार के लोप का विधान किया है।

उपसंहार

हैमशब्दानुशासन व्याकरण के ८ अध्याय हैं। पूर्व के सात अध्यायों में संस्कृत भाषा के विधि-विधान का निरूपण किया गया है और अवशिष्ट अष्टमाध्याय में प्राकृत-भाषा के नियमोपनियमों का विवेचन कर रखा है। प्रत्येक अध्याय के चार-चार पाद (भाग) हैं। प्रस्तुत में चल रहा २७१वां सूत्र अष्टमाध्याय के प्रथम पाद का अन्तिम सूत्र है। परिणामस्वरूप इस पाद की समाप्ति करते हुए वृत्तिकार कहते हैं कि इस तरह **आचार्य श्री हेमचन्द्र जी** द्वारा अपनी उपज्ञा (वह ज्ञान जो स्वयं प्राप्त किया जाए, परम्परा से प्राप्त न हुआ हो) से विरचित **हैमशब्दानुशासन** की **"सिद्धहेमचन्द्र"** नामक वृत्ति-व्याख्या में अष्टमाध्याय का प्रथमपाद सम्पूर्ण होता है।

आचार्य श्री हेमचन्द्र अपने युग के जाने-माने एक महापुरुष थे, इनके नरेश-शिष्यों में महाराजा जयसिंहदेव "सिद्धराज" का महत्त्वपूर्ण स्थान था। शिष्य के हृदय में अपने आराध्य धर्माचार्य के प्रति महान निष्ठा थी। हैमशब्दानुशासन की रचना में मुख्य रूप से प्रेरक यही गुरुभक्त सिद्धराज थे। प्रस्तुत में आचार्य श्री एक श्लोक द्वारा सिद्धराज के दिग्-दिगन्त-व्यापी वीरत्व का बड़ी अनूठी पद्धति से वर्णन कर रहे हैं।

हे सिद्धराज! आपने अपने भुजारूपी मण्डल (गोलाकार) से धनुष के दण्ड को कुण्डल की भान्ति गोल बना कर वैरियों से खिले हुए कुन्द नामक पुष्प के समान अवदात (सुन्दर, निर्मल) यश को खरीदा है। तीनों जगत में परिभ्रमण करके, अन्त में खेद-खिन्न हो कर आप के यश ने मानों मालव देश के राजाओं की रानियों के पाण्डु पडे (सफेदी लिए हुए, पीले रंग वाले) स्तन-मण्डल तथा धवल-सफेद हुए गण्डस्थल (गालों) पर विश्रान्ति प्राप्त की। इतिहास कहता है कि एक बार सिद्धराज ने मालवे पर चढ़ाई की थी, वहां के नरेश को बुरी तरह पराजित कर दिया था। परिणामस्वरूप राज-रानियों ने शृङ्गार करना—शरीर को विभूषित करना छोड़ दिया था, इस से उन के अंगोपांग निस्तेज एवं प्रभाहीन हो गए थे, तथा राज्य का पतन होने से वे निराश हो गई थीं उन का मुख-मण्डल मुरझा गया था। उन के अंगोपांगों की यह तेजोहीनता तथा मुखमण्डल की पीतिमा तीन लोक में प्रस्तुत महाराज सिद्धराज के यश की मानों प्रतिच्छाया ही थी।

कृपा हुई गुरुदेव की, हुआ मनोरथ पूर्ण।
हिन्दी-टीका में किया, प्रथम-पाद सम्पूर्ण॥

नाविक मेरो नाव के, गुरुवर आत्माराम।
इन का ही आधार है, मङ्गलमय अभिराम॥

प्रथम पाद सम्पूर्ण

अर्हम्

अथ द्वितीयःपादः

अथ ककारादि-संयुक्तव्यञ्जनविधिः

२७२--**संयुक्तस्य** । ८ । २ । १ । अधिकारोऽयम् । ज्यायामीत् (२।११५) इति यावत् । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्संयुक्तस्येति वेदितव्यम् ।

२७३—**शक्त-मुक्त-दष्ट-रुग्ण-मृदुत्वे को वा** । ८ । २ । २ । एषु संयुक्तस्य को वा भवति । सक्को-सत्तो । मुक्को, मुत्तो । उक्को, दट्ठो । लुक्को, लुग्गो । माउक्कं, माउत्तणं ।

२७४—**क्षः खः क्वचित्तु छ-झौ** । ८ । २ । ३ । क्षस्य खो भवति । खओ । लक्खणं । क्वचित्तु छझावपि-खीणं, छीणं, झीणं । झिज्जइ ।

२७५—**ष्क-स्कयोर्नाम्नि** । ८ । २ । ४ । अनयोर्नाम्नि संज्ञायां खो भवति । ष्क-पोक्खरं । पोक्खरिणी । निक्खं । स्क-खन्धो । खन्धावारो । अवक्खन्दो । नाम्नीति किम्—दुक्करं । निक्कम्पं । निक्कओ । नमोक्कारो । सक्कयं । सक्कारो । तक्करो ।

२७६—**शुष्क-स्कन्दे वा** । ८ । २ । ५ । अनयोः ष्कस्कयोः खो वा भवति । सुक्खं सुक्कं । खन्दो कन्दो ।

२७७--**क्ष्वेटकादौ** । ८ । २ । ६ । क्ष्वेटकादिषु संयुक्तस्य खो भवति । खेडओ । क्ष्वेटकशब्दो विषपर्यायः । क्ष्वोटकः । खोडओ । स्फोटकः । खोडओ । स्फेटकः-खेडओ । स्फेटिकः-खेडिओ ।

२७८—**स्थाणावहरे** । ८ । २ । ७ । स्थाणौ संयुक्तस्य खो भवति हरश्चेद् वाच्यो न भवति । खाणू । अहर इति किम्—थाणुणो रेहा ।

२७९—**स्तम्भे स्तो । वा** ८ । २ । ८ । स्तम्भशब्दे स्तस्य खो वा भवति । खम्भो, थम्भो । काष्ठादिमयः ।

२८०—**थ-ठावस्पन्दे** । ८ । २ । ९ । स्पन्दाभाववृत्तौ स्तम्भे स्तस्य थठौ भवतः । थम्भो, ठम्भो । स्तभ्यते । थम्भिज्जइ । ठम्भिज्जइ ।

अथ द्वितीयपादः

❀प्रेयो मार्गमपास्य सत्वरतया श्रेयश्च संसाधितुम् ।
यश्चक्रे तदखण्डसाधनविधेर्निर्बाधमाराधनम् ॥
कर्मोन्माथनमात्मशक्तिनिचयैर्यो वीरवीरो व्यधात् ।
तं नत्वाखिल-मङ्गलैक-निलयं श्रेयः समाधित्सया ॥ १ ॥
आद्ये वर्णविकारमात्रमखिलं विस्तारतो दर्शितम् ।
संयुक्ताक्षर-संस्कृतिं शकलयत् तत्स्थानिकादेशतः ॥
व्याख्यातुं चरणं द्वितीयमधुना ज्ञानेन्दुना साधुना ।
टीका बालमनोरमा मृदुतमा तस्येयमारभ्यते ॥ २ ॥

अथ संयुक्तककारादि-व्यञ्जनविधिः प्रारभ्यते । ककारादीनां संयुक्तव्यञ्जनानां स्थाने ये लुगादि-विकाराः भवन्ति तान्निरूपयति आचार्यः ।

२७२ सूत्रे पठितस्य "—संयुक्तस्य—" इत्येतस्य पदस्य ३८६ सूत्रं यावत्-पर्यन्तं, अधिकारः— उत्तरोत्तर-सूत्रेष्वनुवर्तनं बोध्यम । अर्थात् इतोऽग्रे यदनुक्रमिष्यामः-अनुवर्तिष्यामः-अनुवृत्तिं ग्रहिष्यामः, तत्संयुक्तस्य वेदितव्यं बोद्धव्यमिति ।

२७३—**शक्तः** । शक्त+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, २७३ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः ककारः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सक्को** । यत्र ककारो न जातस्तत्र ३४८ सू० ककारस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे—**सत्तो** इति सिद्धम् । **मुक्तः** । मुक्त +सि । संयुक्तस्य वैकल्पिकः ककारः, ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे— **मुक्को** । यत्र ककारो न जातस्तत्र ककारस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वम्, **मुत्तो** इति साध्यम् । **दष्टः** । दष्ट+सि । २१७ सू० दकारस्य वैकल्पिको डकारः, संयुक्तस्य वैकल्पिकः ककारः, ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**डक्को** । ककाराभावे—३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे—**दट्ठो** इति साध्यम् । **रुग्णः** । रुग्ण+सि । २५४ सू० रेफस्य लकारः, संयुक्तस्य वैकल्पिकः ककारः, ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**लुक्को** । ककारादेशाभावे—**लुग्ण+सि** इति जायते—**निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपायः** इति न्यायेन निमित्तस्य रेफस्य अपाये-गते (रेफस्य लकारे जाते इति) नैमित्तकस्य णकारस्य अपाये-अभावे नकारे जाते, ३४६ सू० गकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव—**लुग्गो** इति सिद्धम् । **मृदुत्वम्** । मृदुत्व+सि । १२७ सू० ऋकारस्य वैकल्पिक आकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, संयुक्तस्य वैकल्पिकः ककारः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**माउक्कं** । ककारा-

❀ यो भोगमार्गं प्रहाय शीघ्रतया कल्याणं संसाधितुं, तस्य योऽखण्डसाधनविधिः, तस्य निर्विघ्नमाराधनां चकार, यश्चात्मशक्तिसंग्रहैः कर्मणामुन्माथनं हननं चकार, तमशेषमङ्गलानामेकं निलयं वीरवीरं=वर्धमानं नत्वा ॥ १ ॥ आद्यपादे विस्तारेण निखिलो वर्णविकारः=केवल-वर्ण-विकारो दर्शितः । अधुना तत्-संयुक्ताक्षर-स्थानिकादेशप्रदर्शनपुरस्सरं संयुक्ताक्षरविषयिणीं संस्कृतिं व्युत्पत्तिं स्पष्टीकुर्वद् यद् द्वितीय-चरणं-पादः, तस्येयं मृदुतमा बालमनोरमा टीका ज्ञानेन्दुमुनिनारभ्यते ।

देशाभावे—४२५ सू० त्वप्रत्ययस्य "त्तण" इत्यादेशे—**माउत्तणं**। आकाराभावे—१२६ सू० **ऋकारस्य** अकारे—**मउत्तणं** इत्यपि भवति।

२७४—**क्षयः**। क्षय+सि। २७४ सू० क्षस्य खकारः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खओ** इति सिद्धम्। **लक्षणम्**। लक्षण+सि। २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे- **लक्खणं** इति सिद्धम्। **क्वचित्तु छ-झावपि**। कस्मिंश्चित् स्थले क्षस्य छकार-झकारावपि भवतः। यथा—**क्षीणम्**। क्षीण+सि। क्षस्य खकारः, यत्र छकारः तत्र—**छीण+सि,** यत्र—झकारः तत्र—**झीण+सि** इति स्थिते, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे -**खीणं, छीणं, झीणं** इति सिद्धम्। **क्षीयते**। क्षि क्षये। क्षि+क्य+ते। क्षस्य झकारः, ६४६ सू० क्यस्य "इज्ज" इत्यादेशे—**झि+इज्ज +ते** इति जाते, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपः, अज्झीनं परेण संयोज्यम्, ६२८ सू० "ते" इत्यस्य इचादेशे—**झिज्जइ** इति सिद्धम्।

२७५—**ष्क इति**। ष्कस्योदाहरणानि प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**पुष्करम्**। पुष्कर+सि। ११६ सू० संयोगे परे उकारस्य ओकारः, २७५ सू० ष्कस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वम्, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**पोक्खरं** इति सिद्धम्। **पुष्करिणी**। पुष्करिणी +सि। उकारस्य ओकारः, ष्कस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारः, १। १। ३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**पोक्खरिणी** इति सिद्धम्। **निष्कम्**। निष्क+सि। २७५ सू० ष्कस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वम्, पूर्वखकारस्य ककारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**निक्खं** इति सिद्धम्। **स्क इति**। स्कस्योदाहरणानि निरूपयति वृत्तिकारः। यथा—**स्कन्धः**। स्कन्ध+सि। स्कस्य खकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खन्धो** इति सिद्धम्। **स्कन्धावारः**। स्कन्धावार+सि। २७५ सू० स्कस्य खकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खन्धावारो** इति सिद्धम्। **अवस्कन्द**। अवस्कन्द+सि। स्कस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वम्, पूर्वखकारस्य ककारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**अवक्खन्दो** इति सिद्धम्। **नाम्नीति किम्**। अत्र नाम-शब्दः संज्ञार्थकः। संज्ञावाचकस्यैव शब्दस्य ष्क-स्कयोः खकार-विधानं किमर्थमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारः। शब्दाः—**व्यक्तिवाचक-जातिवाचक-भाववाचक**-भेदेन त्रिविधाः भवन्ति। **राम-कृष्णादयः** शब्दा व्यक्तिवाचकाः, **पुरुष-नारी-वृषभादयः** शब्दाः जातिवाचकाः, **नमस्कार-सत्कारादयश्च** शब्दाः भाववाचकाः कथ्यन्ते। अत्र नाम-पदेन व्यक्तिवाचकानां, जातिवाचकाश्च शब्दानामेव ग्रहणं बोध्यं न तु भाववाचक-शब्दानामपि। नामपदं व्यक्ति-जाति-शब्दानामेवाभिव्यञ्जकं बोध्यमिति भावः। तेन भाववाचक-शब्दानां ष्क-स्कयोः खकारादेशो न भवतीत्यवसेयम्। यथा—**दुष्करम्**। दुष्कर+सि। ३४८ सू० षकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**दुक्करं** इति सिद्धम्। अत्र संज्ञाभावात् ष्कस्य खकारो न जातः। एवमेव निम्नाङ्कितेषु षट्सु प्रयोगेषु अपि संज्ञाभावात् खकाराभावो बोध्यः। यथा—**निष्कम्पम्**। कम्पाद् निर्गतं निष्कम्पम्। निष्कम्प+सि। ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**निक्कम्पं** इति सिद्धम्। **निष्क्रयः**। निष्क्रय+सि। षकारस्य लोपः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० यकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**निक्कओ** इति सिद्धम्। **नमस्कारः**। नमस्कार+सि। ६२ सू० द्वितीयस्याकारस्य ओकारः, ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-

स्वरादेः लोपे—**नमोक्कारो** इति सिद्धम्। **संस्कृतम्**। संस्कृत+सि। २८ सू० अनुस्वारस्य लोपः, ३४८ सू० सकारस्य लोपः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ककारस्य द्वित्वम्, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सक्कयं** इति सिद्धम्। **संस्कारः**। संस्कार+सि। २८ सू० अनुस्वारस्य लोपः, सकारस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सक्कारो** इति सिद्धम्। यत्र **सत्कारः** इतिच्छाया, तत्र तु—**सत्कार+सि** इति स्थिते, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य **द्वित्वे—सक्कारो** इति सिद्धम्। **तस्करः**। तस्कर+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम्, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**तक्करो** इति सिद्धम्। एषु प्रयोगेषु संज्ञाभावात् खकारो न जातः।

२७६—**शुष्कम्**। शुष्क+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, २७६ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, खकाराभावे ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ककारस्य द्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**सुक्खं, सुक्कं** इति सिद्धम्। **स्कन्दः**। स्कन्द+सि। २७६ सू० स्कस्य वैकल्पिकः खकारः, खकाराभावे ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खन्दो, कन्दो** इति सिद्धम्।

२७७—१—**क्ष्वेटकः**। **क्ष्वेटक+सि**। २७७ सू० संयुक्तस्य खकारः, १६५ सू० टकारस्य डकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खेडओ** इति सिद्धम्। **क्ष्वेटक-शब्दो विषपर्यायः**। क्ष्वेटक-शब्दः विषस्य हलाहलस्य पर्यायः-वाचको बोध्यः। २—**क्ष्वोटकः**। क्ष्वोटक+सि। संयुक्तस्य खकारः, टकारस्य डकारः, ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खोडओ** इति सिद्धम्। ३—**स्फोटकः**। **स्फोटक+सि**। संयुक्तस्य खकारः, टकारस्य डकारः, ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खोडओ** इति सिद्धम्। ४—**स्फेटकः**। स्फेटक+सि। संयुक्तस्य खकारः, टकारस्य डकारः, ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खेडओ** इति सिद्धम्। ५—**स्फेटिकः**। स्फेटिक+सि। **खेडिओ**। **खेडओ** इतिवत् साध्यम्।

२७८—**स्थाणुः**। स्थाणु+सि। २७८ सू० संयुक्तस्य खकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**खाणू** इति सिद्धम्। **अहर इति किम्**। यदि स्थाणु-शब्दो हरार्थको न भवेत्तदैव तस्य स्थस्य खकारादेशो भवति, नान्यथा। यथा—**स्थाणोः रेखा**। **स्थाणोः**। स्थाणु+ङस्। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ५१२ सू० ङसः णो इत्यादेशे—**थाणुणो** इति सिद्धम्। **अत्र** हरार्थकः—शिवार्थकः स्थाणुशब्दोऽतः प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **रेखा**। रेखा+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारः, सेर्लोपे—**रेहा** इति सिद्धम्।

२७९—**स्तम्भः**। स्तम्भ+सि। २७९ सू० संयुक्तस्य स्तस्य वैकल्पिकः खकारः, खकाराभावे ३१६ सू० स्तस्य थकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**खम्भो, थम्भो** इति सिद्धम्।

२८०—**स्तम्भः**। स्तम्भ+सि। २८० सू० संयुक्तस्य स्तस्य थकारः ठकारश्च, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**थम्भो, ठम्भो** इति सिद्धम्। **स्तम्भ्यते**। स्तम्भ्, स्तम्भने-स्पन्दाभावे। स्तम्भ्+क्य+ते। २८० सू० स्तस्य थकारः ठकारश्च, ६४९ सू० क्यस्य 'इज्ज' इत्यादेशः। अज्झीनं परेण संयोज्यम्। ६२८ सू० 'ते' इत्यस्य 'इच्' (इ) इत्यादेशे—**थम्भिज्जइ, ठम्भिज्जइ** इति सिद्धम्।

अथ द्वितीय पाद

सकल लोक के नाथ हैं, महावीर भगवान।
निशिदिन सिमरण जो करे, पावे पद निर्वाण॥
गुरुवर आत्माराम हैं, क्षमा दया भण्डार।
धर्म-दिवाकर संयमी, महिमा अपरम्पार॥
गुरु-चरणों में प्रणत हो, ले इन का आधार।
पाद दूसरा लिख रहा, हिन्दी में सविचार॥

संयुक्त-व्यञ्जन-सम्बन्धी कार्य

अचों के व्यवधान से रहित दो व्यञ्जन जब मिल जाते हैं, तब वे संयुक्त (संयोग वाले) कहलाते हैं। जैसे संस्कृत-व्याकरण में संयुक्त वर्णों को लेकर अनेकानेक विधि-विधान मिलते हैं वैसे प्राकृत व्याकरण में भी संयुक्तवर्ण-सम्बन्धी अनेकों कार्य देखने में आते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में संयुक्त वर्णों के स्थान में होने वाले इन्हीं आदेश आदि कार्यों का निर्देश किया जा रहा है।

२७२—यह **अधिकार सूत्र** है। अधिकार का अर्थ है—वह मुख्य नियम जिस का दूसरे स्थान पर भी प्रभाव पड़े। अत: यह सूत्र इस से आगे आने वाले सूत्रों से सम्बन्धित रहेगा। प्रश्न हो सकता है कि इस का अधिकार-क्षेत्र असीम है, या इस की कोई सीमा है? उत्तर में निवेदन है कि इस सूत्र का अधिकार ३८६ [८। २। ११५] सूत्र तक चलेगा, इस से आगे नहीं। इस सूत्र का अर्थ है—संयुक्त वर्ण के स्थान में आदेशादि कार्य होते हैं। फलत: आगे के सूत्रों में 'संयुक्त' इस पद की अनुवृत्ति ग्रहण की जायेगी, तथा यहां से आगे जो अनुक्रमण करेंगे—आदेशादि कार्यों का विधान करेंगे वे संयुक्त वर्ण से सम्बन्धित रहेंगे, यह समझ लेना चाहिए।

२७३—**शक्त, मुक्त,** दष्ट, **रुग्ण,** और **मृदुत्व** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण को विकल्प से ककारादेश होता है। जैसे—१—**शक्तः**=सक्को, सत्तो (समर्थ), २—**मुक्तः**=मुक्को, मुत्तो, (छूटा हुआ, मोक्षप्राप्त, व्यक्त), ३—**दष्टः**=डक्को, दट्ठो (जिस को दांत से काटा गया है), ४—**रुग्णः**=लुक्को, लुग्गो (रोगी), ५. –**मृदुत्वम्**=माउक्कं माउत्तणं (मृदुता, कोमलता) यहां पर क्त आदि संयुक्त वर्णों के स्थान में विकल्प से ककार किया गया है।

२७४—क्ष के स्थान में खकारादेश होता है। जैसे—१—**क्षयः**=खओ (नाश), २—लक्षणम्=लक्खणं (वस्तुस्वरूप, अन्य से भेदसूचक चिन्ह)। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर क्ष के स्थान में छकार और झकार भी हो जाते हैं। जैसे—१ - **क्षीणं**=खीणं, छीणं,झीणं (नष्ट), २—**क्षिप्यते**=झिज्जइ (वह क्षीण होता है) इस तरह यहां पर प्रस्तुत सूत्र से क्ष को खकार तथा **बहुलाधिकार** से छकार और झकार भी किया गया है।

२७५—**नामवाचक**=संज्ञावाचक शब्दों के ष्क और स्क के स्थान में खकारादेश होता है। **ष्क के उदाहरण**—१—**पुष्करम्**=पोक्खरं (कमल), २—**पुष्करिणी**=पोक्खरिणी (जलाशय-विशेष, चौकोर, वावडी, कमलिनी), ३—**निष्कम्**=निक्खं (सोना, मोहर,मुद्रा, रुपया) **स्क के उदाहरण**—१—

स्कन्ध:=खन्धो (पिण्ड, पुद्गलों का समूह, कन्धा, पेड़ का धड़), २—**स्कन्धावार:**=खन्धावारो (सेना का पडाव, शिविर, छावनी), ३—**अवस्कन्द:**=अवक्खन्दो (छावनी, रिपुसेना के द्वारा नगर का घेरा जाना), इन संज्ञावाचक शब्दों के ष्क और स्क को क्रमश: खकारादेश किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि **नामवाचक** शब्दों के ष्क और स्क को ही खकारादेश का विधान क्यों किया गया? उत्तर में निवेदन है, कि यदि ऐसा न कहा जाता तो— १—**दुष्करम्**=दुक्करम् (कठोर), २—**निष्कम्पम्**=निक्कम्पं (कम्पनरहित, स्थिर), ३—**निष्क्रय:**=निक्कओ (वेतन, मजूदरी), ४—**नमस्कार:**=नमोक्कारो(प्रणाम), ५—**संस्कृतम्**=सक्कयं (संस्कार-युक्त), ६—**सत्कार:**=सक्कारो (समान), ७—**तस्कर:**[1]=तक्करो (चोर) इन शब्दों के ष्क और स्क को भी खकारादेश हो जाता। ये शब्द जातिवाचक नहीं है। अत: यहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी। प्रस्तुत सूत्र में पठित **'नाम्नि'** इस पद का अर्थ वृत्तिकार ने **'संज्ञायाम्'** किया है। संज्ञा शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञाधातु से बना है। इस का **अर्थ है**— सम्= सम्यक् प्रकार से ज्ञ=बोध कराना, इसे संकेत भी कहते हैं। इसके १—**व्यक्ति-वाचक**, २—**जाति-वाचक** और ३—**भाववाचक** ये तीन भेद होते हैं। जिससे किसी विशेष व्यक्ति, स्थान या वस्तु का बोध हो वह व्यक्ति-वाचक संज्ञा है। जैसे महावीर, जम्बू, काशी, प्रयाग आदि। जिस से सम्पूर्ण जाति का बोध हो, वह जातिवाचक सज्ञा है, जैसे गाय, बैल, पुरुष, नारी आदि। जिस से पदार्थ के गुण, धर्म और व्यापार आदि का बोध हो, वह भाववाचक है। जैसे—खटास, मिठास, रंगत, माधुर्य आदि। प्रस्तुत में इन में से व्यक्तिवाचक और से जाति-वाचक इन दो भेदों का ग्रहण किया जाता है, तीसरे भेद भाववाचक का ग्रहण यहां अभीष्ट नहीं है। प्राकृतव्याकरणकार भाववाचक शब्दों को यहां पर संज्ञावाचक नहीं मानते हैं।

२७६—**शुष्क अर स्कन्ध** के 'ष्क और 'स्क' को विकल्प से खकारादेश होता है। जैसे—१—**शुष्कम्**=सुक्ख, सुक्क, (सूखा हुआ), २—**स्कन्द:**=खन्दो, कन्दो (कार्तिकेय, षडानन) यहां पर विकल्प से खकारादेश किया गया है।

२७७—**क्ष्वेटक** आदि शब्दों के संयुक्त वर्ण को खकारादेश होता है। जैसे—१—**क्ष्वेटक:**—खेडओ (विष, ज़हर) वृत्तिकार **'क्ष्वेटकशब्दो'**...इन पदों द्वारा स्वयं फरमाते हैं कि क्ष्वेटक शब्द विष का पर्याय-वाचक होता है। २—**क्ष्वोटक:**=खोडओ (नख से चर्म का निष्पीडन), ३—**स्फोटिक:**=खोडओ (फोड़ा, फुंसी), ४—**स्फेटक:**=खेडओ (नाशक, नाश करने वाला), ५—**स्फेटिक:**=खेडिओ (नाश वाला, नश्वर) यहां पर संयुक्त वर्ण को खकार किया गया है।

२७८—यदि **स्थाणु** शब्द महादेव का वाचक न हो तो उसके संयुक्त वर्ण को खकारादेश होता है। जैसे—१=**स्थाणु:**=खाणू (खूंटा, धूपघड़ी का काण्टा, भाला, दीमक का छत्ता, पेड़ का ठूंठ), यहां **स्थाणु** शब्द हर-शिव का बोधक नहीं है, अत: इसके **'स्थ'** को खकार किया गया है। यदि स्थाणु शब्द महादेवार्थक होगा तो—**स्थाणो: रेखा**=थाणुणो रेखा (महादेव जी का चिन्ह)। यह रूप बनेगा। यहां प्रस्तुत सूत्र से स्थ को खाकर नहीं हो सका।

२७९—**स्तम्भ** शब्द के स्त को विकल्प से खकारादेश होता है। जैसे—**स्तम्भ:**=खम्भो, थम्भो [थम्भ], यहां पर 'स्त' को वैकल्पिक खकारादेश किया गया है।

२८०—**स्तम्भ** शब्द स्पन्दाभाव (हलन— चलन क्रिया से रहित) का बोधक हो तो उसके 'स्त' को थकार और ठकार ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**स्तम्भ:**=थम्भो, ठम्भो (खम्भा), २—

१—तस्कर शब्द जातिवाचक है परन्तु बाहुल्य के कारण स्क को खकारादेश नहीं हुआ।

स्तम्भ्यते=थम्भिज्जइ, ठम्भिज्जइ (स्तंभ के समान स्थिर हुआ जाता है) प्रश्न उपस्थित होता है कि उक्त दोनों सूत्रों में क्या अन्तर है ? उत्तर में निवेदन है कि पहले और इस सूत्र में यही अन्तर दिखाई देता है कि **स्तम्भ** शब्द का यदि स्पन्दाभाव में प्रयोग हो तब उसके '**स्त**' के स्थान में थकार और ठकार में दो आदेश होते हैं। अन्यथा २७९ सूत्र से वैकल्पिक खकारादेश ही किया जाता है।

अथ संयुक्तवर्णस्य गकारादिवर्णादेश–विधिः

२८१—**रक्ते गो वा** । ८ । २ । १० । रक्तशब्दे संयुक्तस्य गो वा भवति । रग्गो । रत्तो ।

२८२—**शुल्के ङ्गो वा** । ८ । २ । ११ । शुल्कशब्दे संयुक्तस्य ङ्गो वा भवति । सुङ्गं । सुक्कं ।

२८३—**कृत्ति-चत्वरे चः** । ८ । २ । १२ । अनयोः संयुक्तस्य चो भवति । किच्ची । चच्चरं ।

२८४—**त्यो चैत्ये** । ८ । २ । १३ । चैत्यवर्जिते त्यस्य चो भवति । सच्चं । पच्चओ । अचैत्य इति किम्—चइत्तं ।

२८५—**प्रत्यूषे षश्च हो वा** । ८ । २ । १४ । प्रत्यूषे त्यस्य चो भवति, तत्सन्नियोगे च षस्य हो वा भवति । पच्चूहो, पच्चूसो ।

२८६—**त्व-थ्व-द्व-ध्वां च-छ-ज-झाः क्वचित्** । २ । ८ । १५ । एषां यथासंख्यमेते क्वचिद् भवन्ति । भुक्त्वा-भोच्चा । ज्ञात्वा-णच्चा । श्रुत्वा-सोच्चा । पृथ्वी-पिच्छी । विद्वान्-विज्जं । **बुद्ध्वा-बुज्झा** ।

> **"भोच्चा सयलं पिच्छि, विज्जं बुज्झा अणण्णय-ग्गामि ।**
> **चइऊण तवं काउं सन्ती पत्तो सिवं परमं ॥१॥**

२८७—**वृश्चिके श्चेञ्चुर्वा** । ८ । २ । १६ । वृश्चिके श्चेः सस्वरस्य स्थाने ञ्चुरादेशो वा भवति । छापवादः । विञ्चुओ विंचुओ । पक्षे विञ्छिओ ।

२८८—**छोऽक्ष्यादौ** । ८ । २ । १७ । अक्ष्यादिषु संयुक्तस्य छो भवति । खस्यापवादः । अच्छि । उच्छू । लच्छी । कच्छो । छोअं । छीरं । सारिच्छो । वच्छो । मच्छिआ । छेत्तं । छुहा । दच्छो । कुच्छी । वच्छं । छुण्णो । कच्छा । छारो । कुच्छेअयं । छुरो । उच्छा । छयं । सारिच्छं । अक्षि । इक्षु । लक्ष्मी । कक्ष । क्षुत । क्षीर । सदृक्ष । वृक्ष । मक्षिका । क्षेत्र । क्षुध् । दक्ष । कुक्षि । वक्षस् । क्षुण्ण ।

कक्षा । क्षार । कौक्षेयक । क्षुर । उक्षन् । क्षत । सादृश्य । क्वचित् स्थगितशब्देऽपि । छइअं । आर्षे । इक्खू । खीरं । सारिक्खमित्याद्यपि दृश्यते ।

२८६—**क्षमायां कौ । ८ । २ । १८ ।** कौ-पृथिव्यां वर्तमाने क्षमाशब्दे संयुक्तस्य छो भवति । छमा, पृथिवी । लाक्षणिकस्यापि क्ष्मादेशस्य भवति । क्ष्मा, छमा । काविति किम् । खमा, क्षान्तिः ।

२६०—**ऋक्षे वा । ८ । २ । १६ ।** ऋक्षशब्दे संयुक्तस्य छो वा भवति । रिच्छं रिक्खं । रिच्छो रिक्खो । कथं छूढं क्षिप्तम् । वृक्षक्षिप्तयोः ३६८-रुक्ख-छूढौ ।[२.१२७] इति भविष्यति ।

अथ संयुक्तवर्णस्य गकारादिवर्णादेश-विधिः

अधुना क्त, ल्क आदि-संयुक्त-वर्णानां स्थाने ये गकारादेशादि-कार्याणि भवन्ति तानि प्रदर्शयत्याचार्यः ।

२८१—**रक्तः** । रक्त+सि । २८१ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिको गकारः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वं, गकाराभावे ३४८ सू० ककारस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, सेर्डो, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे —**रग्गो, रत्तो** इति सिद्धम् ।

२८२—**शुल्कम्** । शुल्क+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, २८२ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः 'ङ्ग' इत्यादेशः । आदेशाभावे—३५० सू० लकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वम् । ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**सुङ्गं, सुक्कं** इति सिद्धम् ।

२८३—**कृत्तिः** । कृत्ति+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, २८३ सू० संयुक्तस्य चकारः, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १ । १ । ३७ । सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**किच्ची** इति सिद्धम् । **चत्वरम्** । चत्वर+सि । २८३ सू० संयुक्तस्य चकारः, चकारस्य द्वित्वम्, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**चच्चरं** इति सिद्धम् ।

२८४—**सत्यम्** । सत्य+सि । २८४ सू० त्यस्य चकारः, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**सच्चं** इति सिद्धम् । **प्रत्ययः** । प्रत्यय+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, २८४ सू० त्यस्य चकारः, चकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० यकारस्य लोपः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे—**पच्चओ** इति सिद्धम् । **अचैत्य इति किम्** । अचैत्य-कथनात् चैत्यशब्दस्य त्यस्य चकारो न भवतीति भावः । यथा- **चैत्यम्** । चैत्य+सि । १५१ सू० ऐकारस्य 'अइ' इत्यादेशः, ३४६ सू० यकारस्य लोपः,३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**चइत्तं** इति जातम् । चैत्यशब्दनिषेधादत्र त्यस्य चकारो न जातः ।

२८५—**प्रत्यूषः** । प्रत्यूष+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, २८५ सू० त्यस्य चकारः, षकारस्य वैकल्पिको हकारः ३६० सू० चकारस्य द्वित्वं । हकाराभावे—२६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति

परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**पच्चूहो, पच्चूसो** इति सिद्धम् ।

२८६—यथासंख्यमिति । संख्यानुसारम् । त्वस्य चकारः, थ्वस्य छकारः, द्वयस्य जकारः, ध्वस्य च स्थाने झकारो भवतीति भावः। अत्र क्वचित्-शब्दः बहुलार्थकः । १—**भुक्त्वा** । अव्ययपदमिदम् । ११६ सू० उकारस्य ओकारः, ३४८ सू० ककारस्य लोपः, २८६ सू० त्वस्य चकारः, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वे—**भोच्चा** इति जातम् । २—**ज्ञात्वा** । अव्ययपदमिदम् । ३१३ सू० ज्ञस्य णकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य चकारः, चकारस्य द्वित्वे—**णच्चा** इति सिद्धम् । ३—**श्रुत्वा** । अव्ययपदमिदम् । ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ११६ सू० उकारस्य ओकारः, संयुक्तस्य चकारः, चकारस्य द्वित्वे, **सोच्चा** इति सिद्धम् । ४—**पृथ्वी** । पृथ्वी+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, संयुक्तस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्लोपे—**पिच्छी** इति सिद्धम् । ५—**विद्वान्** । विद्वस्+सि । संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, २४ सूत्रे बहुलाधिकारात् अन्त्यस्यापि व्यञ्जनस्य सकारस्य मकारः, मकारस्यानुस्वारः, सेर्लोपे—**विज्जं** इति जातम् । ६—**बुद्ध्वा** । ३४८ सू० दकारस्य लोपः, संयुक्तस्यध्वस्य झकारः, झकारस्य द्वित्वं, पूर्वझकारस्य जकारे—**बुज्झा** इति सिद्धम् ।

भुक्त्वा सकलां पृथ्वीं, विद्यां बुध्वा अनन्यकगामिन् !।
त्यक्त्वा तपः कृत्वा शान्तिः, प्राप्तः शिवं परमम् ॥ १ ॥

भावार्थः—सकलां निखिलां पृथ्वीं भुक्त्वा-उपभुज्य, विद्यां बुध्वा लोकान्तिक-देव-प्रदत्त-प्रेरणा-रूपं सम्यग्ज्ञानं प्राप्य, ततः पृथ्वीं-राज्यं त्यक्त्वा, तपश्च कृत्वा हे अनन्यक-गामिन् ! न-नास्ति अन्यः =उत्कृष्टो यस्मात् सोऽनन्यः। अनन्य एव अनन्यकः - अद्वितीयः। गच्छतीति गामी—गतिमान् । अनन्यकश्चासौ गामी, अनन्यगामी, यस्य समानमन्यस्य गतिर्नास्ति । तत्सम्बोधनम् । अनन्यसदृश ! यस्य सदृशोऽन्यो नास्तीति भावः । शान्तिः=शान्तिनाथो भगवान परममुत्कृष्टं शिवं-मोक्षं प्राप्तोऽसि । **भुक्त्वा** । अव्ययपदमिदम् । पूर्ववदेव—**भोच्चा** इति सिद्धम् । **सकलाम्** । सकला+अम् । १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, ५२५ सू० अमि परे ह्रस्वे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**सयलं** इति सिद्धम् । **पृथ्वीम्** । पृथ्वी+अम् । पूर्ववदेव पिच्छी+अम् इति जाते ५२५ सू० ईकारस्य इकारे, अमोऽकारस्य लोपे, मकारस्यानुस्वारे—**पिच्छिं** इति सिद्धम् । **विद्याम्** । विद्या+अम् । २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, अमोऽकारस्य लोपे, मकारस्यानुस्वारे—**विज्जं** इति सिद्धम् !। **अनन्यकगामिन्** । अनन्यक-गामिन्+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, नकारस्य णकारे, ३६० सू० द्वितीय णकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे, ३६८ सूत्रे "बहुला-धिकारात् अशेषादेशयोरपि" इति पाठात् गकारस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**अणण्णयग्गामि** इति सिद्धम् । **त्यक्त्वा** । अव्ययपदमिदम् । त्यज् त्यागे । त्यज्+क्त्वा । ७५७ सूत्रे बहुलाधिकारात् **"त्यजतेरपि"** इत्युक्तत्वात् त्यजः चय इत्यादेशे, ४१७ सू० क्त्वायाः 'तूण' इत्यादेशे, १७७ सू० यकारस्य तकारस्य च लोपे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे—**चइऊण** इति सिद्धम् । **तपः** । तपस्+सि । २३१ सू० पकारस्य वकारे, ११ सू० सकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**तवं** इति सिद्धम् । **कृत्वा** । डुकृञ् करणे । कृ+क्त्वा । ८८५ सू० ऋकारस्य आकारः, ४१७ सू० क्त्वायाः तुम् इत्यादेशे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे—**काउं** इति सिद्धम् ।

शान्तिः। शान्ति+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे—**सन्ती** इति सिद्धम्। **प्राप्तः**। प्राप्त+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० पकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे—**पत्तो** इति सिद्धम्। **शिवम्**। शिव+अम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, अमोऽकारस्य लोपे, मकारस्यानुस्वारे—**सिवं** इति सिद्धम्। **परमम्**। परम+अम्। अमोऽकारस्य लोपे, मकारस्यानुस्वारे—**परमं** इति सिद्धम्। **छापवादः**। २६२ सूत्रेण प्राप्तस्य श्चस्य स्थाने छकारस्यायं नियमोऽपवादः-बाधकोऽवसेयः।

२८७—**वृश्चिकः**। वृश्चिक+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, २८७ सू० श्चेः वैकल्पिको 'ञ्चु' इत्यादेशः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**विञ्चुओ**। यत्र ञकारस्य २५ सू० अनुस्वारस्तत्र **विंचुओ**। यत्र ञ्चुः इत्यादेशो न जातस्तत्र २६२ सू० श्चस्य छकारः, २६ सू० प्रथमस्वरस्यानुस्वारागमः, ३० सू० वर्गान्त्ये—**विञ्छिओ** इति सिद्धम्।

२८८—**खस्यापवादः**। २७४ सू० क्षस्य स्थाने विहितस्य खादेशस्यापवाद-सूत्रमिदम्। **अक्षि**। अक्षि+सि। २८८ सू० क्षस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**अच्छिं** इति सिद्धम्। **इक्षुः**। इक्षु+सि। ६५ सू० इकारस्य उकारः क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**उच्छू** इति सिद्धम्। **लक्ष्मी**। लक्ष्मी+सि। क्ष्मस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्लोपे—**लच्छी** इति सिद्धम्। **कक्षः**। कक्ष+सि। क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**कच्छो** इति सिद्धम्। **क्षुतम्**। क्षुत+सि। क्षस्य छकारः, ११२ सू० उकारस्य ईकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**छीअं** इति सिद्धम्। **क्षीरम्**। क्षीर+सि। क्षस्य छकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**छीरं** इति सिद्धम्। **सदृक्षः**। सदृक्ष+सि। १४२ सू० ऋकारस्य 'रि' इत्यादेशः, ३४८ सू० दकारस्य लोप, क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**सरिच्छो** इति सिद्धम्। **वृक्षः**। वृक्ष+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**वच्छो** इति सिद्धम्। **मक्षिका**। मक्षिका+सि। क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्लोपे—**मच्छिआ** इति सिद्धम्। **क्षेत्रम्**। क्षेत्र+सि। क्षस्य छकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**छेत्तं** इति सिद्धम्। **क्षुध्**। क्षुध्+सि। क्षस्य छकारः,१८७ सू० धकारस्य हकारः, स्त्रीत्वादापि प्रत्यये कृते १।१।३७।सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**छुहा** इति सिद्धम्। **दक्षः**। दक्ष+सि। क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ४६१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**दच्छो** इति सिद्धम्। **कुक्षिः**। कुक्षि+सि। क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**कुच्छी** इति सिद्धम्। **वक्षः**। वक्षस्+सि। क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ११ सू० सकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**वच्छं** इति सिद्धम्। **क्षुण्णः**। क्षुण्ण+सि। क्षस्य छकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे—**छुण्णो** इति सिद्धम्। **कक्षा**। कक्षा+सि। क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्लोपे—**कच्छा** इति सिद्धम्। **क्षारः**। क्षार+सि। क्षस्य छकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**छारो** इति सिद्धम्।

कौक्षेयकम्। कौक्षेयक+सि। १६१ सू० औकारस्य उकारः, क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्त्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, १७७ सू० यकारस्य ककारस्य च लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टोऽकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कुच्छेअयं** इति सिद्धम्। **क्षुरः**। क्षुर+सि। क्षस्य छकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **छुरो** इति सिद्धम्। **उक्षा**। उक्षन्+सि। क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्त्वं, पूर्वछकारस्य चकारे, ११ सू० नकारलोपे,५४५ सू० अन्नन्तस्य राजवत्त्वात् ५३८ सू० अकारस्य आकारे, सेर्लोपे **उच्छा** इति भवति। **क्षतम्**। क्षत+सि। क्षस्य छकारे, १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपः, १८० सूत्रेण अकारस्य यकार-श्रुतौ, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **छयं** इति सिद्धम्। **सादृश्यम्**। सादृश्य+सि। १४२ सू० ऋकारस्य 'रि' इत्यादेशः, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, संयुक्तस्य छकारः, छकारस्य द्वित्त्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सारिच्छं** इति सिद्धम्। **क्वचित् स्थगित-शब्देऽपि**। बहुलाधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले स्थगित-शब्दस्य स्थस्यापि छकारादेशो भवति। यथा—**स्थगितम्**। स्थगित+सि। बहुलाधिकारात् संयुक्तस्य छकारः, १७७ सूत्रेण गकारस्य तकारस्य च लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **छइअं** इति सिद्धम्। **आर्षे**। प्रस्तुत—सूत्रेण क्षस्य छकारो भवति, परन्तु आर्षप्राकृते इक्ष्वादि—शब्देषु छकारं न विधाय २७४ सू० खकारः क्रियते। यथा—**इक्षुः**। इक्षु+सि। आर्षत्वात् संयुक्तस्य छकारो न जातः किन्तु २७४ सू० संयुक्तस्य खकारादेशो भवति, खकारस्य द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **इक्खू** इति भवति। **क्षीरम्**। क्षीर+सि। आर्षत्वात् छकारादेशो न जातः किन्तु क्षस्य खकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **खीरं** इति सिद्धम्। **सादृक्ष्यम्**। सादृक्ष्य+सि। ऋकारस्य 'रि' इत्यादेशः, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, ३५० सू० यकारस्य लोपः, आर्षत्वात् संयुक्तस्य छकारो न जातः किन्तु क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सारिक्खं** इति सिद्धम्। एवमेवान्येऽपि शब्दाः साध्याः।

२८६—क्ष्मा। क्ष्मा+सि। २८९ सू० संयुक्तस्य छकारे। १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **छमा** इति सिद्धम्। अत्र क्ष्माशब्दः पृथ्व्यर्थको बोध्यः। **लाक्षणिकस्यापि क्ष्मादेशस्य भवति**। लक्षणाद्—व्याकरणसूत्राद् आगत-निष्पन्नं लाक्षणिकम्। क्ष्मायां य आदेशः क्ष्मादेशः। आदेश-शब्दस्यानेकेऽर्थाः सन्ति, परमत्र अक्षर-परिवर्तनार्थक आदेशब्दः। यथा—**क्ष्मा-शब्दे** ३७२ सूत्रेण संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वस्मिन्नकारागमे कृते **क्षमा** इति रूपं भवति। अत्र क्ष्मा-शब्दे क्ष् इत्यस्य हलन्तस्य व्यंजनस्य स्थाने 'क्ष' इत्यजन्तरूपं परिवर्तनं जातम्। परिवर्तनमेतद् व्याकरण-सूत्रेण कृतमतो लाक्षणिकमिदम्, तथाऽकारागमेनाक्षरस्य परिवर्तनं कृत्वा विहितमतः क्ष्मादेश-रूपं बोध्यम्। वृत्तिकारो भणति यत् लाक्षणिकस्यापि क्ष्मादेशस्य भवति। अयं भावः—प्रस्तुतसूत्रेण पृथ्व्यर्थकस्य क्ष्मा-शब्दस्य क्षस्य छकारो विहितः नतु क्ष्माशब्दस्य 'क्ष्' इत्यस्यापि, परं वृत्तिकारेण संसूचितं यत् क्ष्मा-शब्देऽक्षरपरिवर्तनं (संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वमकारागमं) कृत्वा निष्पन्नस्य क्षमा-रूपस्य क्षस्यापि छकारो भवति। तेन **क्षमा**। क्षमा+सि। इत्यत्र पूर्ववदेव क्षमा इति जाते, क्षस्य छकारे, सेर्लोपे **छमा** इति भवति। **क्वाविति किम्**। अत्र कुशब्दः पृथ्वी-पर्यायः। यदि क्षमा-शब्दः पृथ्व्यर्थको भवेत्तदेव तस्य क्षस्य छकारो भवति नान्यथा। यथा **क्षमा**। क्षमा+सि। २७४ सू० क्षस्य खकारे, सेर्लोपे **खमा** इति भवति। अत्र क्षमा-शब्दः शान्त्यर्थकः न तु पृथ्वीपर्यायोऽतः प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

२९०—**ऋक्षम्** । ऋक्ष+सि । १४० सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशः, २९० सू० क्षस्य वैकल्पिकः छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **रिच्छं** । यत्र छकारो न जातः तत्र २७४ सू० क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारे **रिक्खं** । **यत्र** ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपस्तत्र **रिच्छो, रिक्खो** इति भवति । ऋक्ष-शब्दस्यानेकेऽर्थाः सन्ति । यदाऽयं भालुकार्थकस्तदाऽयं पुल्लिङ्गी तथा यदाऽयं नक्षत्रार्थकस्तदाऽयं उभयलिङ्गी—पुलिङ्गी, नपुंसकलिङ्गी च भवति । यदा नपुंसकलिङ्गी तदा—**रिच्छं, रिक्खं** तथा यदा पुल्लिङ्गी तदा—**रिच्छो, रिक्खो** एते रूपे भवतः । **कथं छूढं क्षिप्तमिति** । प्रस्तुत—सूत्रेण ऋक्षशब्दस्य क्षस्य छकारोदेशो विहितः, न त्वन्यस्य शब्दस्य, तर्हि **छूढं** इति रूपं **कथं** निष्पन्नमिति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारो यदत्र प्रस्तुतसूत्रेण न किमपि कार्यं जातं किन्तु ३९८ सू० क्षिप्त-शब्दस्य छूढ इत्यादेशो भविष्यति । यथा—**क्षिप्तम्** । क्षिप्त+सि । ३९८ सू० क्षिप्तस्य छूढ इत्यादेशे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **छूढं** इति सिद्धम् ।

★ क्त आदि संयुक्त वर्णों को गकारादिवर्णादेश-विधि ★

क्त और ल्क आदि संयुक्त वर्णों के स्थान में जो गकारादि आदेश होते हैं अब सूत्रकार उनका निरूपण करते हैं :—

२८१—**रक्त** शब्द के **संयुक्त** वर्ण को विकल्प से गकार होता है। जैसे—**रक्तः**=रग्गो, रत्तो (**लाल**) यहां पर **क्त** को विकल्प से गकार किया गया है।

२८२—**शुल्क** शब्द के संयुक्त वर्ण को ङ्ग यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**१—शुल्कम्**=सुङ्गं, सुक्कं (चूंगी, मूल्य) यहाँ '**ल्क**' के स्थान में "ङ्ग" यह आदेश किया गया है।

२८३—**कृत्ति** और **चत्वर** के संयुक्त वर्ण को चकारादेश होता है। जैसे—**१—कृत्तिः**=किच्ची (कृत्तिका नक्षत्र, मृग आदि का चर्म, भोजपत्र), **२—चत्वरम्=चच्चरं** (चौरास्ता, चौंक) यहां संयुक्त वर्ण के स्थान में चकार किया गया है।

२८४—**चैत्य** के 'त्य' को छोड़ कर अन्य शब्दों के "**त्य**" को चकारादेश होता है। जैसे—**१—सत्यम्**=सच्चं (सच), **२—प्रत्ययः**=पच्चओ (व्याकरण में शब्द के साथ जुड़ने वाला शब्द विशेष, विश्वास, भरोसा, शपथ, छिद्र) यहां त्य के स्थान में चकारादेश किया गया है। सूत्र में पठित '**अचैत्ये**' इस पद के कारण—**चैत्यम्**=चइत्तं (मन्दिर, स्मारक) यहाँ पर प्रस्तुत सूत्र से त्य को चकारादेश नहीं हो सका।

२८५—**प्रत्यूष** शब्द के 'त्य' को चकार होता है और चकार का सान्निध्य होने पर षकार को विकल्प से हकारादेश होता है। जैसे=**प्रत्यूषः**=पच्चूहो पच्चूसो (प्रातः—काल) यहां पर त्य को चकार और षकार को हकार किया गया है।

२८६—सूत्र में पठित **त्व, थ्व, द्व** और **ध्व** के स्थान में कहीं पर **यथासंख्य**—क्रमशः चकार, छकार, जकार और झकार ये आदेश होते हैं। जैसे—**१—भुक्त्वा**=भोच्चा (खा कर), **२—ज्ञात्वा**=णच्चा (जानकर), **३—श्रुत्वा**=सोच्चा (सुनकर), **४—पृथ्वी**=पिच्छी। (ज़मीन), **५—विद्वान्**=विज्जो (पढा लिखा व्यक्ति), **६—बुद्ध्वा**=बुज्झा (बोध प्राप्त करके) यहाँ पर त्व आदि संयुक्त वर्णों के स्थान में क्रमशः चकारादि आदेश किए गए हैं।

भुक्त्वा सकलां पृथ्वीं, विद्यां बुद्ध्वा अनन्यकगामिन् !।
त्यक्त्वा तपः कृत्वा, शान्तिः प्राप्तः शिवं परमम् ॥ १ ॥

हे अनन्यकगामिन् ! (जिस के समान कोई दूसरा नहीं है) भगवान शान्तिनाथ ! आप ने समस्त पृथ्वी का उपभोग किया–अखिल भूमण्डल पर शासन किया, जगत्कल्याण के लिए लौकान्तिक देवों द्वारा बोधरूप प्रेरणा प्राप्त कर के तथा गृहस्थाश्रम को छोड़ कर आप साधु बने, तपस्या की। अन्त में, आप परम-सर्वोत्कृष्ट शिव-मोक्षधाम में जा विराजमान हुए। यहां १—**भुक्त्वा**=भुच्चा (भोग कर), २—**पृथ्वीम्**=पिच्छिं (भूमि का), ३—**बुद्ध्वा**=बुज्झा (बोध प्राप्त करके) इन पदों में 'त्व' को च, थ्व को छ और ध्व को झ यह आदेश किया गया है।

२८७—**वृश्चिक** शब्द के स्वर—सहित संयुक्त वर्ण को विकल्प से 'ञ्चु', यह आदेश होता है। यहां पर २९२ सूत्र **श्च** के स्थान में छकार का विधान करता है। प्रस्तुत सूत्र उस का अपवाद सूत्र है। अपवाद का अर्थ है—सामान्य नियम को बाधित या मर्यादित करने वाला विशेष नियम। इस का प्रयोग इस प्रकार है—**वृश्चिकः**=विञ्चुओ विंचुओ (बिच्छू) जहां प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ वहां—विञ्छिओ यह रूप बनता है।

२८८—**अक्षि** आदि शब्दों के संयुक्त वर्ण को छकारादेश होता है। २७४ सूत्र से क्ष को खकारादेश होना था, किन्तु यह उसका बाधक सूत्र है, अतः इसे ख-आदेश का अपवाद सूत्र माना गया है। इस के प्रयोग इस प्रकार हैं —१—**अक्षि**=अच्छिं (आँख), २—**इक्षुः**=उच्छू (ईख), ३—**लक्ष्मीः**=लच्छी (लक्ष्मी देवी), ४—**कक्षः**=कच्छो (कांख, दलदल वाली जमीन), ५—**क्षुतम्**=छीअं (छींक), ६—**क्षीरम्**=छीरं (दूध), ७—**सदृक्षः**=सरिच्छो (समान), ८—**वृक्षः**=वच्छो (वृक्ष), ९—**मक्षिका**=मच्छिआ (मक्खी), १०—**क्षेत्रम्**=छेत्तं (खेत, आकाश, देश), ११—**क्षुधा**=छुहा (भूख), १२—**दक्षः**=दच्छो (चतुर), १३—कुक्षिः=कुच्छी (कांख), १४—**वक्षस्**=वच्छं (छाती), १५—**क्षुण्णः**=छुण्णो (चूर-चूर किया हुआ, विनाशित, अभ्यस्त), १६—**कक्षा**=कच्छा (विभाग, अंश, संशय—कोटि), १७—**क्षारः**=छारो (खारा, भस्म, मात्सर्य), १८—**कौक्षेयकम्**=कुच्छेअयं (पेट पर बंधी तलवार), १९—**क्षुरः**=छुरो (नाई का उस्तरा, पशु का नख, वाण), २०—**उक्षा**=उच्छा (बैल, सांड) २१—**क्षतम्**=छयं (व्रण, घाव), २२—**सादृक्ष्यम्**=सारिच्छं (समान, तुल्य) यहाँ पर संयुक्त वर्ण को छकार किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर **स्थगित** शब्द के संयुक्त वर्ण को भी छकारादेश हो जाता है। जैसे—**स्थगितम्**=छइअं (रोका हुआ, आच्छादित, तिरोहित) यहां प्रस्तुत सूत्र में छकार की प्राप्ति नहीं थी किन्तु **बहुलाधिकार** से कहीं पर **स्थगित** शब्द के संयुक्त वर्ण को छकार किया गया है। **आर्षप्राकृत** में ३ सूत्र के द्वारा=१—**इक्षुः**=इक्खू, २—**क्षीरम्**=खीरं, ३—**सादृक्ष्यम्**=सारिक्खं आदि रूप भी बन जाते हैं। यहां छकारादेश नहीं हो सका।

२८९—यदि **क्षमा** शब्द पृथिवीवाचक हो तो उसके संयुक्त वर्ण को छकारादेश होता है। जैसे—**क्षमा**=छमा=(पृथिवी)। यहां पृथ्वी के बोधक क्षमा-शब्द के क्ष को छकार किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि लाक्षणिक क्ष्मादेश के क्षमा-शब्द के क्ष को भी छकारदेश हो जाता है। लक्षण-व्याकरण सूत्र से निष्पन्न होने वाले को लाक्षणिक कहते हैं। क्ष्मा शब्द के मकार से पूर्व ३७२ सूत्र से अकार का आगम करके क्षमा ऐसा रूप बनता है। है। यह रूप सूत्र-निष्पन्न होने से लाक्षणिक कहलाता है। आदेश का अर्थ है—अक्षर-परिवर्तन। क्ष्मा के हलन्त क्ष् को अजन्त

क्ष बनाकर जो इस में परिवर्तन किया गया है उसे क्ष्मादेश कहते हैं। इसी लिए वृत्तिकार फरमाते हैं कि लाक्षणिक-क्ष्मादेश [क्ष्मा के अक्षर-परिवर्तन से बने] क्षमा-शब्द के क्ष को भी छकारादेश हो जाता है। इस के अतिरिक्त—सूत्रकार ने पृथिव्यर्थक क्षमा—शब्द के संयुक्त वर्ण को जो छकारादेश का विधान किया है, इस का कारण इतना ही है कि शान्त्यर्थक क्षमा शब्द के संयुक्त वर्ण को कहीं छकारादेश न हो जाए। जैसे—**क्षमा**=खमा (शान्ति) यहाँ पर क्षमा शब्द पृथ्व्यर्थक न हो कर शान्त्यर्थक है, अतः प्रस्तुत सूत्र से क्ष के स्थान में छकारादेश नहीं हो सका।

२९०—**ऋक्ष** शब्द के संयुक्त वर्ण को वैकल्पिक छकारादेश होता है। जैसे—१—**ऋक्षम्**=रिच्छं, रिक्खं **ऋक्षः**=रिच्छो, रिक्खो (रीछ) ऋक्ष शब्द जब नक्षत्रार्थक होता है तब यह पुल्लिङ्ग होता है। अतः नपुंसकलिङ्ग में इस के **रिच्छं, रिक्खं** ऐसे रूप होते हैं और पुल्लिङ्ग में **रिच्छो, रिक्खो** ये रूप बनते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र तो ऋक्ष के क्ष को ही छकारादेश करता है, फ़िर छूढं यह प्रयोग कैसे बनाया गया है? उत्तर में निवेदन है कि **क्षिप्तम्=छूढं** (क्षिप्त, फैंका हुआ) यह प्रयोग तो ३९८ सूत्र द्वारा क्षिप्त के स्थान में होने वाले 'छूढ' इस आदेश के कारण निष्पन्न होता है। प्रस्तुत सूत्र ने यहां कोई कार्य नहीं किया।

★ अथ क्षादि-वर्णानां छकारादिवर्णादेशविधिः ★

२९१—**क्षण उत्सवे**। ८। २। २०। क्षणशब्दे उत्सवाभिधायिनि संयुक्तस्य छो भवति। **छणो**। उत्सव इति किम्? **खणो**।

२९२—**ह्रस्वात् थ्य-श्च-त्स-प्सामनिश्चले**। ८। २। २१। ह्रस्वात्परेषां थ्यश्च-त्सप्सां छो भवति, निश्चले तु न भवति। थ्य। पच्छं। पच्छा। मिच्छा। श्च। पच्छिमं। अच्छेरं। पच्छा। त्स। उच्छाहो। मच्छलो। मच्छरो। संवच्छलो। संवच्छरो। चिइच्छइ। प्स। लिच्छइ। जुगुच्छइ। अच्छरा। ह्रस्वादिति किम्? ऊसारिओ। अनिश्चल इति किम्? निच्चलो। आर्षे तथ्ये चोपि। तच्चं।

२९३—**सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा**। ८। २। २२। एषु संयुक्तस्य छो वा भवति। सामच्छं सामत्थं। उच्छुओ ऊसुओ। उच्छवो ऊसवो।

२९४—**स्पृहायाम्**। ८। २। २३। स्पृहाशब्दे संयुक्तस्य छो भवति। फस्यापवादः। छिहा। बहुलाधिकारात् क्वचिदन्यदपि। निप्पिहो।

२९५—**द्य-य्य-र्यां जः**। ८। २। २४। एषां संयुक्तानां जो भवति। द्य। मज्जं। अवज्जं। वेज्जो। जुई। जोओ। य्य। जज्जो। सेज्जा। र्य। भज्जा। चौर्यसमत्वात् भारिआ। कज्जं। वज्जं। पज्जाओ। पज्जत्तं। मज्जाया।

२९६—**अभिमन्यौ ज-ञ्जौ वा**। ८। २। २५। अभिमन्यौ संयुक्तस्य जो ञ्जश्च वा भवति। अहिमज्जू अहिमञ्जू। पक्षे अहिमन्नू॥ अभिग्रहणादिह न भवति। मन्नू।

२९७—**साध्वस-ध्य-ह्यां झः**। ८। २। २६। साध्वसे संयुक्तस्य ध्यह्ययोश्च झो

भवति। सज्झसं। घ्य। वज्झए। झाणं। उवज्झाओ। सज्झाओ। सज्झं। विञ्झो। ह्य। सज्झो। मज्झं। गुज्झं। णज्झइ।

२९८—**ध्वजे वा**। ८। २। २७। ध्वजशब्दे संयुक्तस्य झो वा भवति। झओ धओ।

२९९—**इन्धौ झा**। ८। २। २८। इन्धौ धातौ संयुक्तस्य झा इत्यादेशो भवति। समिज्झाइ। विज्झाइ।

३००—**वृत्त-प्रवृत्त-मृत्तिका-पत्तन-कदर्थिते टः**। ८। २। २९। एषु संयुक्तस्य टो भवति। वट्टो। पयट्टो। मट्टिआ। पट्टणं। कवट्टिओ।

३०१—**र्तस्याधूर्तादौ**। ८। २। ३०। र्तस्य टो भवति, धूर्तादीन् वर्जयित्वा। केवट्टो। वट्टी। जट्टो। पयट्टइ। वट्टुलं। रायवट्टयं। नट्टई। संवट्टिअं। अधूर्तादाविति किम्? धुत्तो। कित्ती। वत्ता। आवत्तणं। निवत्तणं। पवत्तणं। संवत्तणं। आवत्तओ। निवत्तओ। निव्वत्तओ। पवत्तओ। संवत्तओ। वत्तिआ। वत्तिओ। कत्तिओ। उक्कत्तिओ। कत्तरी। मुत्ती। मुत्तो। मुहुत्तो। बहुलाधिकारात्-वट्टा। धूर्त। कीर्ति। वार्ता। आवर्तन। निवर्तन। प्रवर्तन। संवर्तन। आवर्तक। निवर्तक। निर्वर्तक। प्रवर्तक। संवर्तक। वर्तिका। वार्तिक। कार्तिक। उत्कर्तित। कर्तरी। मूर्ति। मूर्त। मुहूर्त। इत्यादि।

३०२—**वृन्ते ण्टः**। ८। २। ३१। वृन्ते संयुक्तस्य ण्टो भवति। वेण्टं। तालवेण्टं।

३०३—**ठोस्थि-विसंस्थुले**। ८। २। ३२। अनयोः संयुक्तस्य ठो भवति। अट्ठी। विसंठुलं॥

३०४—**स्त्यान-चतुर्थार्थे वा**। ८। २। ३३। एषु संयुक्तस्य ठो वा भवति। ठीणं थीणं। चउट्ठो। अट्ठो प्रयोजनम्। अत्थो धनम्॥

३०५—**ष्टस्यानुष्ट्रेष्टासंदष्टे**। ८। २। ३४। उष्ट्रादिवर्जिते ष्टस्य ठो भवति। लट्ठी। मुट्ठी। दिट्ठी। सिट्ठी। पुट्ठो। कट्ठं। सुरट्ठा। इट्ठो। अणिट्ठं। अनुष्ट्रेष्टा-संदष्ट इति किम्? उट्टो। इट्टाचुण्णं व्व। संदट्टो॥

३०६—**गर्ते डः**। ८। २। ३५। गर्तशब्दे संयुक्तस्य डो भवति। टापवादः। गड्डो। गड्डा।

३०७—**संमर्द-वितर्दि-विच्छर्द-च्छर्दि-कपर्द-मर्दिते र्दस्य**। ८। २। ३६। एषु र्दस्य डो भवति। संमड्डो। विअड्डी। विच्छड्डो। छड्डइ। छड्डी। कवड्डो। मड्डिओ। संमड्डिओ।

३०८—**गर्दभे वा**। ८। २। ३७। गर्दभे र्दस्य डो वा भवति। गड्डहो। गद्दहो।

३०९—**कन्दरिका-भिन्दिपाले ण्डः** । ८ । २ । ३८ । अनयोः संयुक्तस्य ण्डो भवति । कण्डलिआ । भिण्डिवालो ।

३१०—**स्तब्धे ठ-ढौ** । ८ । २ । ३९ । स्तब्धे संयुक्तयोर्यथाक्रमं ठढौ भवतः। ठड्ढो।

३११—**दग्ध-विदग्ध-वृद्धि-वृद्धे ढः** । ८ । २ । ४० । एषु संयुक्तस्य ढो भवति । दड्ढो। विअड्ढो। वुड्ढी। वुड्ढो। क्वचिन्न भवति । विद्ध-कइ-निरूविअं ।

३१२—**श्रद्धर्द्धि-मूर्धार्धेऽन्ते वा** । ८ । २ । ४१ । एषु अन्ते वर्तमानस्य संयुक्तस्य ढो वा भवति । सड्ढा सद्धा । इड्ढी रिद्धी । मुण्ढा । मुद्धा । अड्ढं अद्धं ।

३१३—**म्नज्ञोर्णः** । ८ । २ । ४२ । अनयोर्णो भवति । म्न । निण्णं । पज्जुण्णो। ज्ञ । णाणं । सण्णा । पण्णा । विण्णाणं ।

३१४—**पञ्चाशत्-पञ्चदश-दत्ते** । ८ । २ । ४३ । एषु संयुक्तस्य णो भवति । पण्णासा । पण्णरह । दिण्णं ।

३१५—**मन्यौ न्तो वा** । ८ । २ । ४४ । मन्युशब्दे संयुक्तस्य न्तो वा भवति। मन्तू मन्नू ।

३१६—**स्तस्य थोसमस्त-स्तम्बे** । ८ । २ । ४५ । समस्त-स्तम्बवर्जिते स्तस्य थो भवति। हत्थो। थुई। थोत्तं । थोअं । पत्थरो। पसत्थो । अत्थि । सत्थि । असमस्त-स्तम्ब इति किम् ? समत्तो। तम्बो ।

३१७—**स्तवे वा** । ८ । २ । ४६ । स्तवशब्दे स्तस्य थो वा भवति। थवो तवो ।

३१८—**पर्यस्ते थ-टौ** । ८ । २ । ४७ । पर्यस्ते स्तस्य पर्यायेण थटौ भवतः । पल्लत्थो। पल्लट्टो ।

३१९—**वोत्साहे थो हश्च रः** । ८ । २ । ४८ । उत्साहशब्दे संयुक्तस्य थो वा भवति, तत्संनियोगे च हस्य रः । उत्थारो उच्छाहो ।

३२०—**आश्लिष्टे ल-धौ** । ८ । २ । ४९ । आश्लिष्टे संयुक्तयोर्यथासंख्यं 'ल ध' इत्येतौ भवतः । आलिद्धो ।

★ अथ क्षादिवर्णानां छकारादिवर्णादेशविधिः ★

क्ष, ध्य प्रभृतीनां–संयुक्त वर्णानां स्थाने यानि छकारादेशादि-कार्याणि भवन्ति तानि निरूपयत्याचार्य :—

२९१—क्षणः । क्षण+सि । २९१ सू० क्षस्य छकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **छणो** इति सिद्धम् । अत्र क्षणशब्द उत्सवार्थको बोध्यः । **उत्सवे इति किम्** । यदि क्षण-शब्द उत्सव-वाचको

भवेत्तदेव तस्य संयुक्तस्य छकारो भवति नान्यथा। यथा—**क्षण+सि**। इत्यत्र २७४ सू० क्षस्य खकारे, पूर्ववदेव **खणो** इति भवति। अत्र क्षण-शब्दः स्वल्प-कालार्थकोऽवसेयोऽतोऽत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

२९२—**थ्य इति**। थ्यस्य संयुक्तस्योदाहरणानि निरूपयति वृत्तिकारः। **पथ्यम्**। पथ्य+सि। २९२ सू० संयुक्तस्य थ्यस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पच्छं** इति सिद्धम्। **पथ्या**। पथ्या+सि। संयुक्तस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्लोपे **पच्छा** इति सिद्धम्। **मिथ्या**। मिथ्या+सि। प्रस्तुत—सूत्रेण संयुक्तस्य वर्णस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **मिच्छा** इति सिद्धम्। **श्च इति**। श्चस्योदाहरणानि प्रदर्शयति वृत्तिकारः। **पश्चिमम्**। पश्चिम+सि। श्चस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **पच्छिमं** इति सिद्धम्। **आश्चर्यम्**। आश्चर्य+सि। ५८ सू० आदेरकारस्य एकारः, ८४ सूत्रेण संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ३३७ सू० र्यस्य रेफः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अच्छेरं** इति सिद्धं। **पश्चात्**। अव्ययपदमिदम्। श्चस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ११ सूत्रेण तकारस्य लोपे **पच्छा** इति सिद्धम्। **त्स इति**। त्सस्योदाहरणानि प्रतिपादयति वृत्तिकारः। **उत्साहः**। उत्साह+सि। त्सस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **उच्छाहो** इति सिद्धम्। **मत्सरः**। मत्सर+सि। त्सस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, २५४ सू० रेफस्य वैकल्पिको लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मच्छलो, मच्छरो** इति सिद्धम्। **सम्वत्सरः**। सम्वत्सर+सि। प्रस्तुत—सूत्रेण त्सस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, रेफस्य वैकल्पिको लकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सम्वच्छलो, संवच्छरो** इति सिद्धम्। **चिकित्सति**। कित् रोगापनयने। स्वार्थिके सनि चिकित्स+तिव् इति जाते, १७७ सू० ककारस्य लोपे, प्रस्तुत-सूत्रेण त्सस्य छकारे, छकारस्य द्वित्वे, पूर्वछकारस्य चकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **चिइच्छइ** इति सिद्धम्। **प्स इति**। अग्रिमाणि प्सस्योदाहरणानि बोध्यानीति भावः। **लिप्सते**। लब्धुमिच्छति इति लिप्सते। लिप्स+ते। प्सस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **लिच्छइ** इति सिद्धम्। **जुगुप्सति**। गोपितुमिच्छति इति जुगुप्सति। गुप् रक्षणे। सन्नन्तात् जुगुप्स+तिव् इति जाते, प्सस्य छकारः, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, इचादेशे **जुगुच्छइ** इति सिद्धम्। **अप्सराः**। अप्सरस्+सि। प्सस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, १५ सूत्रेण सकारस्य आकारे अच्छर+आ+सि, सन्धौ अच्छरा +सि इति जाते, सेर्लोपे **अच्छरा** इति सिद्धम्। **ह्रस्वादिति किम्**। यदि थ्यादयः संयुक्तवर्णाः ह्रस्वात् परवर्तिनो भवेयुस्तदैव तेषां छकारो भवति नान्यथा। यथा—**उत्सारितः**। उत्सारित+सि। ११४ सू० आदेरकारस्य ऊकारः। अत्र ह्रस्वात् परत्वाभावात् प्रस्तुत—सूत्रेण त्सस्य छकारो न जातः किन्तु ३४८ सू० संयुक्त-तकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **ऊसारिओ** इति सिद्धम्। **अनिश्चले इति किम्**। सूत्रकारेण सूत्रे "अनिश्चले" इतिपदं किमर्थं पठितमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यद् निश्चल-शब्दस्य प्रस्तुत—सूत्रेण श्चस्य छकारो माभूदेतदर्थमेव "अनिश्चले" इत्यस्य पदस्योल्लेखः कृतः। यथा—**निश्चलः**। निश्चल+सि। २९२ सूत्रे "**अनिश्चले" इति निषेधात् श्चस्य छकाराभावः, ३४८ सू०** शकारस्य लोपः, चकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः,

डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **निच्चलो** इति सिद्धम्। **आर्षे तथ्ये चोऽपि**। आर्षप्राकृते तथ्य-शब्दस्य थ्यस्य चकारोऽपि भवति। यथा—**तथ्यम्**। तथ्य+सि। आर्षत्वात् थ्यस्य चकारः, चकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **तच्चं** इति सिद्धम्।

२९३—**सामर्थ्यम्**। सामर्थ्य+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २९३ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, छकाराभावे—३४९ सू० यकारस्य लोपः, थकारस्य द्वित्वं, पूवथकारस्य तकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सामच्छं सामत्थं** इति सिद्धम्। **उत्सुकः**। उत्सुक+सि। संयुक्तस्य वैकल्पिकः छकारः, छकारस्य द्वित्व, पूर्वछकारस्य चकारः। छकाराभावे—११४ सू० आदेरकारस्य ऊकारः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, १७७ ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **उच्छुओ ऊसुओ** इति सिद्धम्। **उत्सवः**। उत्सव+सि। संयुक्तस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, छकाराभावे—११४ सू० आदेरकारस्य ऊकारः, ३४८ सू० तकारस्य लोप, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **उच्छवो, ऊसवो** इति सिद्धम्।

२९४—**स्पस्यापवादः**। ३२४ सूत्रेण स्पस्य फकारो भवति किन्त्विदं सूत्रं तस्यापवादः—बाधको बोध्यः। यथा-**स्पृहा**। स्पृहा+सि। **१२८** सू० ऋकारस्य इकारः, २९४—सू० स्पस्य छकारः, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **छिहा** इति सिद्धम्। अत्र ३२४ सूत्रेण स्पस्य फकारो न जातः। एवमेवाग्रेऽपि बोध्यम्। **बहुलाधिकारात्**। बहुलस्य अधिकारात् क्वचित् स्थले अन्यदपि—सूत्रोक्त-भिन्नं कार्यमपि भवति। अर्थात् स्पस्य छकारो न भवति। यथा—**निस्पृहः**। निस्पृह+सि। **बहुलाधिकारात्** छकारादेशो न जातः किन्तु ३४८ सू० सकारस्य लोपे, १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**निप्पिहो** इति सिद्धम्।

२९५—**द्य इति**। द्यस्योदाहरणानि निरूपयति वृत्तिकारो यथा—**मद्यः**। मद्य+सि। २९५ सू० संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मज्जं** इति सिद्धम्। **अवद्यम्**। अवद्य+सि। संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अवज्जं** इति सिद्धम्। **वैद्यः**। वैद्य+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वेज्जो** इति सिद्धम्। **द्युतिः**। द्युति+सि। संयुक्तस्य जकारः, **१**७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **जुई** इति सिद्धम्। **द्योतः**। द्योत+सि। संयुक्तस्य जकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **जोओ** इति सिद्धम्। **य्य इति**। य्य इत्यस्य संयुक्त-वर्णस्योदाहरणानि प्रदर्शयति वृत्तिकारो यथा—**जय्यः**। जेतुं शक्यः। जय्य+सि। संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **जज्जो** इति सिद्धम्। **शैय्या**। शैय्या+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, ५७ सू० आदेरैकारस्य एकारः, संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **सेज्जा** इति सिद्धम्। र्य इति। र्यस्योदाहरणानि प्रतिपादयति वृत्तिकारः। **भार्या**। भार्या+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **भज्जा** यत्र ३७८ सू० संयुक्तस्य यकारात्पूर्वमिकारागमः, १७७ सू० यकारस्य लोपो जातस्तत्र—**भारिआ** इति भवति। **कार्यम्**। कार्य+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **कज्जं** इति सिद्धम्। **वर्यम्**। वर्य+सि। सयुक्त-स्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **वज्जं** इति सिद्धम्। **पर्यायः**। पर्याय+सि। संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे

पज्जाश्रो इति सिद्धम् । **पर्याप्तम्** । पर्याप्त+सि । संयुक्तस्य जकारे, जकारस्य द्वित्वं, ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पज्जत्तं** इति सिद्धम् । **मर्यादा** । मर्यादा+सि । संयुक्तस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० दकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, सेर्लोपे **मज्जाया** इति सिद्धम् ।

२९६—अभिमन्युः । अभिमन्यु+सि । १८७ सू० भकारस्य हकारः, २९६ सू० संयुक्तस्य जकारः, ञ्जश्च वैकल्पिको भवति, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वं, जकारस्य ञ्जस्य चाभावे ३४८ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सूत्रेण नकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **अहिमज्जू, अहिमञ्जू, अहिमन्नू** इति सिद्धम् । **अभिग्रहणादिह न भवति**। "अभिमन्यौ" इति पदेऽभिउपसर्ग-सहितस्य मन्युशब्दस्योल्लेखः कृतः । अतोऽभि-उपसर्ग-रहितस्य मन्यु-शब्दस्य न्यस्य सूत्रविहितादेशौ न भवतः । यथा—**मन्युः** । मन्यु+सि । २९६ सूत्रे **'अभि'** इति ग्रहणात् अत्र जञ्जौ न जातौ किन्तु ३४९ सू० यकारस्य लोपः, नकारस्य द्वित्वं, उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **मन्नू** इति सिद्धम् ।

२९७—साध्वसम् । साध्वस+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, २९७ सू० संयुक्तस्य झकारः, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सज्झसं** इति जातम् । **वध्यते** । हन् हिंसायाम् । हन्+क्य+ते । संस्कृते वध्यते इति जाते, संयुक्तस्य झकारः, झकारस्य द्वित्वं, पूर्वझकारस्य जकारः, ६२८ सू० ते इत्यस्य ए इत्यादेशे **वज्झए** इति सिद्धम् । **ध्यानम्** । ध्यान+सि । संयुक्तस्य झकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **झाणं** इति सिद्धम् । **उपाध्यायः** । उपाध्याय+सि । २३१ सू० पकारस्य वकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य झकारः, झकारस्य द्वित्वे जाते सति, पूर्वझकारस्य जकारः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **उवज्झाश्रो** इति सिद्धम् । **स्वाध्यायः** । स्वाध्याय+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य झकारः, झकारस्य द्वित्वं, पूर्वझकारस्य जकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **सज्झाश्रो** इति सिद्धम् । **साध्यम्** । साध्य+सि । संयोगे परे ह्रस्वे, संयुक्तस्य झकारे, झकारस्य द्वित्वे, पूर्वझकारस्य जकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सज्झं** इति सिद्धम् । **विन्ध्यः** । विन्ध्य+सि । २५ सू० नकारस्यानुस्वारे, ध्यस्य झकारे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **विञ्झो** इति सिद्धम् । **सह्यः** । सह्य+सि । ह्यस्य झकारे, झकारस्य द्वित्वे, पूर्वझकारस्य जकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **सज्झो** इति सिद्धम् । **मह्यम्** । अस्मद्+ङे । संस्कृत-व्याकरण-नियमेन मह्यम् इति जाते, संयुक्तस्य झकारे, झकारस्य द्वित्वे, पूर्वझकारस्य जकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मज्झ** इति सिद्धम् । **गुह्यम्** । गुह्य+सि । ह्यस्य झकारे, झकारस्य द्वित्वे, पूर्व-झकारस्य जकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **गुज्झं** इति सिद्धम् । **नह्यति** । नह् बन्धने । नह्+श्यन्+तिव् । सस्कृत-नियमेन नह्य+तिव् इति जाते, २२९ सू० नकारस्य णकारे, संयुक्तस्य झकारे, झकारस्य द्वित्वे, पूर्वझकारस्य जकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **णज्झइ** इति सिद्धम् ।

२९८—ध्वजः । ध्वज+सि । २९८ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिके झकारे, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **झओ, धओ** इति सिद्धम् ।

२९९ - **समिन्धते**। सम्-पूर्वकः इन्ध्-धातुः सन्दीप्तौ। समिन्ध्+ते। २९९ सू० संयुक्तस्य 'झ' इत्यादेशे, झकारस्य द्वित्वे, पूर्वझकारस्य जकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **समिज्झाइ** इति सिद्धम्। **वीन्धते**। विपूर्वक इन्ध्-धातुः विशेषेण दीप्तौ। संस्कृते—वीन्ध+ते। इति जाते, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, संयुक्तस्य 'झ' इत्यादेशे, झकारस्य द्वित्वे, पूर्वझकारस्य जकारे, 'ते' इत्यस्य इचादेशे **विज्झाइ** इति सिद्धम्।

३०० **वृत्तः**। वृत्त+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३०० सू० संयुक्तस्य टकारः, ३६० सू० टकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वट्टो** इति सिद्धम्। **प्रवृत्तः**। प्रवृत्त+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० वकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, संयुक्तस्य टकारः, टकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पयट्टो** इति सिद्धम्। **मृत्तिका**। मृत्तिका+सि। ऋकारस्य अकारः, संयुक्तस्य टकारः, टकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **मट्टिआ** इति सिद्धम्। **पत्तनम्**। पत्तन+सि। संयुक्तस्य टकारः, टकारस्य द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पट्टणं** इति सिद्धम्। **कदर्थितः**। कदर्थित+सि। २२४ सू० दकारस्य वकारः, संयुक्तस्य टकारः, टकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कवट्टिओ** इति सिद्धम्।

३०१—**कैवर्तः**। कैवर्त+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारे, ३०१ सू० संयुक्तस्य टकारे, ३६० सू० टकारस्य द्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **केवट्टो** इति सिद्धम्। **वर्तिः**। वर्ति+सि। संयुक्तस्य टकारे, टकारस्य द्वित्वे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **वट्टी** इति सिद्धम्। **जर्तः**। जर्त+सि। संयुक्तस्य टकारे, टकारस्य द्वित्वे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जट्टो** इति सिद्धम्। **प्रवर्तते**। प्र-पूर्वको वृतुधातु प्रवर्तने। संस्कृते—प्रवर्त्+ते, इति जाते, ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० वकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, संयुक्तस्य टकारे, टकारस्य द्वित्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **पयट्टइ** इति सिद्धम्। **वर्तुलम्**। वर्तुल+सि। संयुक्तस्य टकारे, टकारस्य द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **वट्टुलं** इति सिद्धम्। **राजवार्तिकम्**। राजवार्तिक+सि। १७७ सू० जकारस्य लोपे, यकारविशिष्टेऽकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १११८ सू० भाषाव्यत्यये कृते, १००० सू० इकारस्य अकारे, संयुक्तस्य टकारे, टकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, यकारविशिष्टेऽकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **रायवट्टयं** इति सिद्धम्। **नर्तकी**। नर्तकी+सि। संयुक्तस्य टकारः, टकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्लोपे **नट्टई** इति सिद्धम्। **संवर्तिकः**। संवर्तिक+सि। संयुक्तस्य टकारः, टकारस्य द्वित्वं, ककारस्य लोपः, यकारविशिष्टेऽकारे जाते, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **संवट्टिअं** इति सिद्धम्। **अधूर्तादाविति** किम्। प्रस्तुत-सूत्रेण धूर्तादीन् त्यक्त्वा र्तस्य टकारादेशो विहितः। धूर्तादि-शब्दानां परिहारस्य किं कारणमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यद् धूर्तादि-शब्देषु संयुक्तस्य टकारो मा भवेदिति हेतोः अधूर्तादौ इत्युक्तम्, तेनाग्रिमेषु विंशति-प्रयोगेषु प्रस्तुत-सूत्रेण र्तस्य टकारो न भवति। तथाहि—**धूर्तः**। धूर्त+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **धुत्तो** इति सिद्धम्। **कीर्तिः**। कीर्ति+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सूत्रेण रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **कित्ती** इति सिद्धम्। **वार्ता**। वार्ता+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **वत्ता** इति सिद्धम्। **आवर्तनम्**। आवर्तन+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **आवत्तणं** इति सिद्धम्। **निवर्तनम्**। निवर्तन+सि। रेफस्य लोपः,

तकारस्य द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **निवत्तणं** इति सिद्धम्। **प्रवर्तनम्**। प्रवर्तन+सि। रेफद्वयस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पवत्तणं** इति सिद्धम्। **संवर्तनम्**। संवर्तन+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, नकारस्य णकारः, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **संवत्तणं** इति सिद्धम्। **आवर्तकः**। आवर्तक+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **आवत्तओ** इति सिद्धम्। **निवर्तकः**। निवर्तक+सि। रेफस्य लोपे,तकारस्य द्वित्वे,१७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्डोः,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **निवत्तओ** इति सिद्धम्। **निर्वर्तकः**। निर्वर्तक+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, रेफस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **निव्वत्तओ** इति सिद्धम्। **प्रवर्तकः**। प्रवर्तक+सि। ३५० सू० उभयत्रापि रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पवत्तओ** इति सिद्धम्। **संवर्तकः**। संवर्तक+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **संवत्तओ** इति सिद्धम्। **वर्तिका**। वर्तिका+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वे, ककारस्य लोपः, सेर्लोपे **वत्तिआ** इति सिद्धम्। **वार्तिकः**। वार्तिक+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वत्तिओ** इति सिद्धम्। **कार्तिकः**। कार्तिक+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ककारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कत्तिओ** इति सिद्धम्। **उत्कर्तितः**। उत्कर्तित+सि। ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वं, रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **उक्कत्तिओ** इति सिद्धम्। **कर्तरी**। कर्तरी+सि। रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **कत्तरी** इति सिद्धम्। **मूर्तिः**। मूर्ति+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **मुत्ती** इति सिद्धम्। **मूर्तः**। मूर्त+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मुत्तो** इति सिद्धम्। **मुहूर्तः**। मुहूर्त+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मुहुत्तो** इति सिद्धम्। **बहुलाधिकारात्**। बहुलस्य अधिकाराद् क्वचित् धूर्तादि—गण-पठितस्य संयुक्तस्य र्तस्यापि टकारादेशो भवति। यथा **वार्ता**। वार्ता+सि। बहुलाधिकारात् धूर्तादिगणान्तर्भूतत्वेऽपि ३०१ सू० संयुक्तस्य र्तस्य टकारः, टकारस्य द्वित्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्लोपे **वट्टा** इति सिद्धम्।

३०२—वृन्तम्। वृन्त+सि।१३९ सू० ऋकारस्य एकारः, ३०२ सू० संयुक्तस्य ण्ट इत्यादेशः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **वेण्टं इति** सिद्धम्। **तालवृन्तम्**। तालवृन्त+सि। **तालवेण्टं** इति सिद्धम्। अस्य साधनिका ६७ सूत्रे द्रष्टव्या।

३०३—अस्थि। अस्थि+सि। ३०३ सू० संयुक्तस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, ११।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **अट्ठी** इति सिद्धम। **विसंस्थुलम्**। विसंस्थुल+सि। संयुक्तस्य ठकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **विसंठुलं** इति सिद्धम्।

३०४—स्त्यानम्। स्त्यान+सि। ३०४ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः ठकारः, ७४ सू० आदेराकारस्य ईकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **ठीणं**। यत्र ठकारो न जातस्तत्र ३४९ स० यकारस्य लोपे, ३१६ सू० स्तस्य थकारे **थीणं** इति भवति। **चतुर्थः**। चतुर्थ+सि।

१७७ सू० तकारस्य लोपः, संयुक्तस्य वैकल्पिकः ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **चउट्ठो,** यत्र ठकारादेशो न जातस्तत्र ३५० सू० रेफस्य लोपः, थकारस्य द्वित्वं, पूर्वथकारस्य तकारे **चउत्थो** इति भवति। **अर्थः**। अर्थ+सि। प्रस्तुत-सूत्रेण संयुक्तस्य वैकल्पिकः ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्व-ठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**अट्ठो** यत्र ठकारादेशो न जातस्तत्र रेफस्य लोपः, थकारस्य द्वित्वं, पूर्व-थकारस्य तकारे **अत्थो** इति भवति। **अट्ठो** शब्दोऽयं प्रयोजनार्थकस्तथा **अत्थो** इत्यस्यार्थो धनं बोध्यः।

३०५—यष्टिः। यष्टि+सि। इत्यत्र २४७ सू० यकारस्य लकारः, ३०५ सू० संयुक्तस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **लट्ठी** इति सिद्धम्। **मुष्टिः**। मुष्टि+सि। ३०५ सू० संयुक्तस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्व-ठकारस्य टकारः, इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **मुट्ठी** इति सिद्धम्। **दृष्टिः**। दृष्टि+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, संयुक्तस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **दिट्ठी इति** सिद्धम्। **सृष्टिः**। सृष्टि+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, संयुक्तस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **सिट्ठी इति** सिद्धम्। **पृष्टः**। पृष्ट+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, ३०५ सूत्रेण संयुक्तस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः, लोपे—**पुट्ठो** इति सिद्धम्। **कष्टम्**। कष्ट+सि। संयुक्तस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कट्ठं** इति सिद्धम्। **सुराष्ट्राः**। सुराष्ट्र+जस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **सुरट्ठा** इति सिद्धम्। **इष्टः**। इष्ट+सि। संयुक्तस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **इट्ठो** इति सिद्धम्। **अनिष्टम्**। अनिष्ट+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, संयुक्तस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अणिट्ठं** इति सिद्धम्। **अनुष्ट्रेष्टासंदष्टे इति किम्**। उष्ट्र, इष्ट, सन्दष्ट एतान् त्रीन् शब्दान् त्यक्त्वा ष्टस्य ठकारादेशो भवति। अनेन निषेध-बलेनैव उष्ट्रादिशब्देषु ष्टस्य ठकारो न भवति। यथा **उष्ट्रः**। उष्ट्र+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, टकारस्य द्वित्त्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **उट्टो** इति सिद्धम्। अत्र ३०५ सूत्रे **अनुष्ट्रेष्टासंदष्ट** इति निषेधात् ष्टस्य ठकारा-देशो न जातः। एवमेव इष्टा-सन्दष्टशब्दयोरपि संयुक्तस्य ष्टस्य न ठकारादेशो भवति। यथा **इष्टाचूर्णम् इव**। इष्टानां चूर्णम् इष्टाचूर्णम्। इष्टाचूर्ण+सि। ३४८ सू० षकारस्य लोपः, टकारस्य द्वित्त्वं, ८४ सूत्रेण संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्त्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **इट्टाचुण्णं** इति सिद्धम्। **इव**। अव्ययपदमिदम्। ४५३ सू० इवार्थे 'व्व' इत्यस्य प्रयोगे कृते **व्व** इति सिद्धम्। **संदष्टः**। संदष्ट+सि। ३४८ सू० षकारस्य लोपः, टकारस्य द्वित्त्वं, सेर्डोः, डिति परे ऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**संदट्टो** इति सिद्धम्। **टापवादः**। ३०१ सूत्रेण तस्य स्थाने टकारा-देशो भवति, परमनेन सूत्रेण तस्य स्थाने ठकारादेशो विहितोऽतः सूत्रमिदं तस्यापवादसूत्रं बोध्यम्।

३०६—गर्तः गर्त+सि। ३०६ सू० संयुक्तस्य डकारः, ३६० सू० डकारस्य द्वित्त्वं, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **गड्डो**। स्त्रीत्वे आपि सति गड्डा+सि, इति जाते, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**गड्डा** इति भवति।

३०७—संमर्दः । संमर्द+सि । ३०७ सू० र्दस्य डकारः, ३६० सू० डकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **संमड्डो** इति सिद्धम् । **वितर्दिः** । वितर्दि+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपः, ३०७ सू० र्दस्य डकारः, डकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **विअड्डी** इति सिद्धम् । **विच्छर्दः** । विच्छर्द+सि । र्दस्य डकारः, डकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **विच्छड्डो** इति सिद्धम । **छर्दयति** । छर्द् वमने । छर्द्+णिग्+तिव् । ६३८ सू० णिगः अकारे, र्दस्य डकारः, डकारस्य द्वित्वं, ६२८ सू० तिवः इचादशे **छड्डइ** इति सिद्धम् । **छर्दिः** । छर्दि+सि । र्दस्य डकारः, डकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य ईकारः, सेर्लोपे **छड्डी** इति सिद्धम् । **कपर्दः** । कपर्द+सि । र्दस्य डकारः, डकारस्य द्वित्वं, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**कवड्डो** इति सिद्धम् । **मर्दितः** । मर्दित+सि । र्दस्य डकारः, डकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **मड्डिओ** इति सिद्धम् । **संमर्दितः** । समर्दित+सि । र्दस्य डकारः, डकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **संमड्डिओ** इति सिद्धम् ।

३०८—गर्दभः । गर्दभ+सि । ३०८ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिको डकारः, डकारस्य द्वित्वं, १८७ सू० भकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **गड्डहो** । यत्र डकारादेशो न जातस्तत्र ३५० सू० रेफस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वे **गद्दहो** इति सिद्धम् ।

३०९—कन्दरिका—कन्दरिका+सि । ३०९ सू० संयुक्तस्य "ण्ड" इत्यादेशः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, २५४ सू० रेफस्य लकारः, सेर्लोपे **कण्डलिआ** इति सिद्धम् । **भिन्दिपालः** । भिन्दिपाल+सि । ३०९ सू० संयुक्तस्य ण्ड इत्यादेशः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**भिण्डिवालो** इति सिद्धम् ।

३१०—स्तब्धः । स्तब्ध+सि । ३१० सू० संयुक्तयोः क्रमशः ठकार-ढकारौ जातौ, ३६० सू० ढकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **ठड्ढो** इति सिद्धम् ।

३११—दग्धः । दग्ध+सि । ३११ सू० संयुक्तस्य ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **दड्ढो** इति सिद्धम् । **विदग्धः** । विदग्ध+सि । १७७ सू० दकारस्य लोपः, संयुक्तस्य ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **विअड्ढो** इति सिद्धम् । **वृद्धिः** । वृद्धि+सि । १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, संयुक्तस्य ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **वुड्ढी** इति सिद्धम् । **वृद्धः** । वृद्ध+सि । ऋकारस्य उकारः, संयुक्तस्य ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वुड्ढो** इति सिद्धम् । **क्वचिन्न भवति** । प्रस्तुतसूत्रेण दग्धादि-शब्देषु संयुक्तस्य ढकारादेशो विहितः, परन्तु **बहुलाधिकारात्** क्वचित् वृद्ध-शब्दस्य संयुक्तस्य ढकारादेशो न भवति । यथा—**वृद्ध-कवि-निरूपितम्** । वृद्ध-कविना निरूपतिम् । वृद्धकवि-निरूपित+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० द्वितीय-वकारस्य तकारस्य च लोपः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **विद्ध-कइ-निरूविअं** इति सिद्धम् । अत्र **बहुलाधिकाराद्** ३११ सू० संयुक्तस्य ढकारो न जातः ।

३१२—श्रद्धा । श्रद्धा+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ३१२ सू० संयक्तस्य वैकल्पिको ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य

लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सड्ढा सद्धा** इति सिद्धम्। **ऋद्धिः।** ऋद्धि+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, संयुक्तस्य वैकल्पिको ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, यत्र ढकारो न जातस्तत्र १४० सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, ५०८ सू० अन्त्येकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **इड्ढी रिद्धो** इति सिद्धम्। **मूर्धा।** मूर्धन्+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, २६ सू० आदि-स्वरान्ते आगमरूपोऽनुस्वारः, संयुक्तस्य ढकारः, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्यः, ५४५ सू० राजवत्त्वात् ११ सू० नकारलोपे, ५३८ सू० अन्त्यस्य अकारस्य आकारे, सेर्लोपे **मुण्डा।** ढकाराभावे ३५० सू० रेफस्य लोपः, धकारस्य द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारे **मुद्धा** इति भवति। **अर्द्धम्।** अर्ध+सि। संयुक्तस्य वैकल्पिको ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, ढकाराभावे—३५० सू० रेफस्य लोपः, धकारस्य द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अड्ढं अद्धं** इति सिद्धम्।

३१३—निम्नम्। निम्न+सि। ३१३ सू० संयुक्तस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **निण्णं** इति सिद्धम्। **प्रद्युम्नः।** प्रद्युम्न+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २९५ सू० द्यस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं, ३१३ सू० म्नस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पज्जुण्णो** इति सिद्धम्। **ज्ञानम्।** ज्ञान+सि। ३१३ सू० संयुक्तस्य णकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **णाणं** इति सिद्धम्। **संज्ञा।** संज्ञा+सि। ज्ञस्य णकारः, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्यः, सेर्लोपे **सण्णा** इति सिद्धम्। **प्रज्ञा।** प्रज्ञा+सि। रेफस्य लोपः, ज्ञस्य णकारः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **पण्णा** इति सिद्धम्। **विज्ञानम्।** विज्ञान+सि। ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **विण्णाणं** इति सिद्धम्।

३१४—१-पञ्चाशत्। पञ्चाशत्+सि। ३१४ सू० संयुक्तस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, २६० सू० शकारस्य सकारः, स्त्रीलिङ्गत्वात् १५ सू० तकारस्य आकारः, सन्धौ, सेर्लोपे **पण्णासा** इति सिद्धम्। **२-पंचदश।** संस्कृते पञ्चदशन्, इति सिद्धे, पञ्चदशन्+जस्। संयुक्तस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, २१९ सू० दकारस्य रेफः, २६२ सू० शकारस्य **हकारे**, ४९३ सू० जसो लुकि, बाहुल्येन १५ सू० नकारस्य आकाराभावे, ११ सू० न-लोपे **पण्णरह** इति सिद्धम्। **३-दत्तम्।** दत्त+सि। ४६ सू० आदेरकारस्य इकारः, संयुक्तस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **दिण्णं** इति सिद्धम्।

३१५—मन्युः। मन्यु+सि। ३१५ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिके 'न्त' इत्यादेशे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, आदेशाभावे ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वे, उकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **मन्तू, मन्नू** इति सिद्धम्।

३१६—हस्तः। हस्त+सि। ३१६ सू० संयुक्तस्य थकारे, थकारस्य द्वित्वे, पूर्व-थकारस्य तकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हत्थो** इति सिद्धम्। **स्तुतिः।** स्तुति+सि। स्तस्य थकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **थुई** इति सिद्धम्। **स्तोत्रम्।** स्तोत्र+सि। स्तस्य थकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६३ सू० द्वित्वनिषेधेऽपि बाहुल्यात् तकारस्य द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **थोत्तं** इति सिद्धम्। **स्तोकम्।** स्तोक+सि। स्तस्य थकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **थोअं** इति सिद्धम्। **प्रस्तरः।** प्रस्तर+सि। रेफस्य लोपे, स्तस्य थकारे, थकारस्य द्वित्वे, पूर्वथकारस्य तकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पत्थरो** इति सिद्धम्। **प्रशस्तः।** प्रशस्त+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य

सकारे, स्तस्य थकारः, थकारस्य द्वित्वे, पूर्वथकारस्य तकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पसत्थो** इति सिद्धम्। ***अस्ति**। अव्ययपदमिदम्। स्तस्य थकारे, थकारस्य द्वित्वे, पूर्व-थकारस्य तकारे **अत्थि** इति भवति। **स्वस्ति**। अव्ययपदमिदम्। ३५० सू० वकारस्य लोपे, स्तस्य थकारे, थकारस्य द्वित्वे, पूर्वथकारस्य तकारे **सत्थि** इति सिद्धम्। **असमस्तस्तम्ब इति किम्**? समस्तं स्तम्बञ्च वर्जयित्वा स्तस्य थकारो विहितः, अतः समस्त-स्तम्ब-शब्दयोः स्तस्य थकारो न भवति, यथा **समस्तम्**, समस्त+सि। प्रस्तुतसूत्रे "**असमस्त-स्तम्बे**" इति पाठात् स्तस्य थकाराभावे ३४८ सू० सकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **समत्तो** इति सिद्धम्। **स्तम्बः**। स्तम्ब+सि। सकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **तम्बो** इति सिद्धम्। अत्रापि स्तस्य थकारादेशो न जातः।

३१७—**स्तवः**। स्तव+सि। ३१७ सू० स्तस्य वैकल्पिके थकारे, थकाराभावे, ३४८ सू० सकारस्य लोपे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **थवो, तवो** इति सिद्धम्।

३१८—**पर्यस्तः**। पर्यस्त+सि। ३३९ सू० र्यस्य ल्ल इत्यादेशः, ३१८ सू पर्यायेण=क्रमेण स्तस्य थकारटकारौ, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, टकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पल्लत्थो, पल्लट्टो** इति सिद्धम्।

३१९—**उत्साहः**। उत्साह+सि। ३१९ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः थकारः, तत्संनियोगे च हकारस्य रेफः, थकारस्य द्वित्वं, पूर्वथकारस्य तकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**उत्थारो**। यत्र थकारादेशो न जातस्तत्र २९२ सू० त्सस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारे **उच्छाहो** इति भवति।

३२०—**आश्लिष्टः**। आश्लिष्ट+सि। ३२० सू० संयुक्तयोर्वर्णयोः यथासंख्यं-क्रमशः ल, ध इत्यादेशौ, धकारस्य द्वित्वे, पूर्वधकारस्य दकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **आलिद्धो** इति सिद्धम्।

★ क्ष आदि संयुक्त वर्णों को होने वाली ख आदि आदेशविधि ★

क्ष और थ्य आदि संयुक्त वर्णों के स्थान में ख और छ आदि जो आदेश होते हैं। अब सूत्रकार उन का निर्देश कर रहे हैं:—

२९१—यदि **क्षण** शब्द उत्सव का वाचक हो तो उसके संयुक्त वर्ण के स्थान में छकारादेश होता है। जैसे—**क्षणः**=छणो (उत्सव) जहाँ क्षण शब्द उत्सवार्थक नहीं होता, वहां पर **क्षणः**= खणो (एक क्षण—कम से कम समय) यह रूप बनता है।

२९२—यदि **ह्रस्व स्वर** से परे थ्य, श्च, त्स और प्स ये संयुक्त वर्ण हों तो क्रमशः इन के स्थान में छकारादेश होता है, निश्चल शब्द को छोड़ कर। **थ्य के उदाहरण**—१—**पथ्यम्**=पच्छं (हितकारी), २—**पथ्या**=पच्छा (हितकारिणी), ३—**मिथ्या**=मिच्छा (असत्य)। **श्च के उदाहरण**—१—**पश्चिमम्**=पच्छिमं (पश्चिम दिशा का, पाश्चात्य, पश्चिम दिशा), २—**आश्चर्यम्**=अच्छेरं (विस्मय), ३—**पश्चात्**=पच्छा (पीछे, अनन्तर)। **त्स के उदाहरण**—१—**उत्साहः**=उच्छाहो (दृढ़ संकल्प, सामर्थ्य), २—**मत्सरः**=मच्छलो, मच्छरो (ईर्षालु, द्वेषी, क्रोधी), २—**सम्वत्सरः**= संवच्छलो, संवच्छरो (वर्ष), ३—**चिकित्सति**=चिइच्छइ (वह चिकित्सा—इलाज करता है), **प्स के**

*क्रियापदमपीदम्, अस्य प्रक्रिया ६३७ सूत्रेऽवलोकनीया।

उदाहरण १—लिप्सते=लिच्छइ (वह वस्तु की प्राप्ति की अभिलाषा रखता है), २—जुगुप्सति= जुगुच्छइ (वह घृणा करता है, निन्दा करता है), ३—अप्सराः=अच्छरा (इन्द्र की पटरानी, देवी) इन शब्दों के थ्य, श्च, त्स और प्स को क्रमशः छकारादेश किया गया है। ध्यान रहे कि **थ्य** आदि संयुक्त वर्ण ह्रस्वस्वर से परे होने आवश्यक हैं, यदि ये ह्रस्व-वर्ण—पर-वर्ती नहीं होंगे तो इन के संयुक्त वर्ण को छकारादेश नहीं हो सकेगा। जैसे—**उत्सारितः**=ऊसारिओ (दूर किया हुआ) यहाँ पर सर्वप्रथम ११४ सूत्र से उकार को ऊकारादेश करने से, **त्स** यह संयुक्त ह्रस्व-वर्ण से परे नहीं रहा। अतः प्रस्तुत सूत्र से इसे छकारादेश नहीं हो सका। सूत्र में **अनिश्चले** (निश्चल शब्द को छोड़ कर) ऐसा कहने से **निश्चलः**=निच्चलो (स्थिर) यहाँ पर प्रस्तुत सूत्र से श्च को छकारादेश नहीं हो सका। **आर्ष प्राकृत** में ३ सूत्र से **तथ्य** शब्द के थ्य को चकार भी हो जाता है। जैसे—**तथ्यम्**=तच्चं (सत्य) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से थ्य को छकारादेश होना चाहिए था, किन्तु ३ सूत्र ने चकारादेश कर दिया।

२६३—**सामर्थ्य, उत्सुक और उत्सव** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण को विकल्प से छकारादेश होता है। जैसे—**१—सामर्थ्यम्**=सामच्छं सामत्थं (शक्ति), २—**उत्सुकः**=उच्छुओ, ऊसुओ (उत्कण्ठित), ३—**उत्सवः**=उच्छवो, ऊसवो (त्योहार) यहां पर संयुक्त वर्ण को विकल्प से छकार किया गया है।

२६४—**स्पृहा** शब्द के संयुक्त वर्ण के स्थान में छकारादेश होता है। ३२४ सूत्र से 'स्प' के स्थान में फकारादेश होना चाहिए था, किन्तु यह उस का अपवाद—सूत्र है। **स्पृहा**=छिहा (इच्छा) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से 'स्प' के स्थान में छकार किया गया है। **बहुलाधिकार** के **कारण** कहीं पर स्प के स्थान में छकारादेश नहीं भी होता, **जैसे—निस्पृहः**=निप्पिहो (इच्छारहित, विरक्त), यहां पर स्प को छकारादेश नहीं किया गया।

२६५—शब्दों के **द्य, य्य, र्य** इन संयुक्त वर्णों के स्थान में जकार होता है। **द्य के उदाहरण**—**१—मद्यम्**=मज्जं (मदिरा), २—**अवद्यम्**=वज्जं (पाप), ३—**वैद्यः**=वेज्जो (वैद्य), **द्युतिः**= जुई (कान्ति), ५—**द्योतः**=जोओ (प्रकाश, सूर्य की धूप, गरमी)। **य्य के उदाहरण**—१—**जय्यः**= जज्जो (जो जीता जा सके वह), २—**शय्या**=सेज्जा (बिछौना)। **र्य के उदाहरण** १—**भार्या**=भज्जा, ३७८ सूत्र से संयुक्त यकार से पूर्व इकार का आगम होने पर **भारिआ** (पत्नी), २—**कार्यम्**=कज्जं (काम), ३—**वर्यम्**=वज्जं (श्रेष्ठ), ४—**पर्यायः**=पज्जाओ (समान अर्थ का वाचक अर्थ, उत्पन्न होने वाली नूतन अवस्था), ५—**पर्याप्तम्**=पज्जत्तं (काफी), ५—**मर्यादा**=मज्जाया (सीमा, हद, किनारा) यहां पर द्य आदि संयुक्त वर्णों को क्रमशः जकारादेश किया गया है।

२६६—**अभिमन्यु** शब्द के संयुक्त वर्ण को क्रमशः ज और ञ्ज ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**अभिमन्युः**=अहिमज्जू अहिमञ्जू। जहां पर प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ वहां **अहिमन्नू** (अभिमन्यु, अर्जुन का पुत्र) यह रूप बनता है। ध्यान रहे कि सूत्र में "**अभिमन्यौ**" यह पाठ है, अतः यदि मन्यु शब्द के साथ अभिउपसर्ग का संयोग होगा तभी प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। जैसे—**मन्युः**=मन्नू (क्रोध, अहंकार, अफसोस) यहां अभि उपसर्ग का योग नहीं है, अतः प्रस्तुत सूत्र से इसके संयुक्त वर्ण को ज और ञ्ज ये दो आदेश नहीं हो सके।

२६७—**साध्वस** शब्द के संयुक्त वर्ण को, ध्य तथा ह्य को झकारादेश होता है। जैसे— **साध्वसम्**=सज्झसं (डर, भय) यहां ध्व के स्थान में झकार किया गया है। **ध्य के उदाहरण**—

१—**वध्यते**=वज्झए (वह मारा जाता है), २—**ध्यानम्**=झाणं (ध्यान, चिन्ता, उत्कण्ठा—पूर्वक स्मरण), ३—**उपाध्यायः**=उवज्झाओ (पाठक, अध्यापक), ४—**स्वाध्यायः**=सज्झाओ (शास्त्र का पठन), ५—**साध्यम्**=सज्झं (सिद्ध करने योग्य, मन्त्रविशेष) ६—**विंध्यः**=विञ्झो (विन्ध्याचल पर्वत), **ह्य के उदाहरण**=१—**सह्यः**=सज्झो (सहन करने योग्य), २—**मह्यम्**=मज्झं (मेरे लिये), ३—**गुह्यम्**=गुज्झं (छिपाने योग्य), ४—**नह्यति**=णज्झइ (वह बांधता है, लपेटता है, धारण करता है, पहनता है) यहां पर ध्य और ह्य के स्थान में झकारादेश किया गया है।

२९८ - **ध्वज** शब्द के संयुक्त वर्ण को विकल्प से झकार होता है। जैसे—**ध्वजः**=झओ, धओ (झण्डा, पताका) यहां ध्व को झकारादेश किया गया है।

२९९—**इन्ध् धातु** के संयुक्त वर्ण को 'झा' यह आदेश होता है। जैसे—**समिन्धते**=समिज्झाइ (वह चमकता है), २—**वीन्धते**=विज्झाइ (विशेषरूप से चमकता है) यहां न्ध को 'झा' यह आदेश किया गया है।

३००—**वृत्त, प्रवृत्त, मृत्तिका, पत्तन** और **कदर्थित** शब्द के संयुक्त वर्ण के स्थान में टकारादेश होता है। जैसे—१—**वृत्तः**=वट्टो (गोलाकार), २—**प्रवृत्तः**=पयट्टो (जिस मनुष्य ने प्रवृत्ति की हो वह), ३—**मृत्तिका**=मट्टिया (माटी), ४—**पत्तनम्**=पट्टणं (नगर, शहर), ५—**कदर्थितः**=कवट्टिओ (पीड़ित, हैरान किया हुआ) यहां पर संयुक्त वर्ण के स्थान में टकारादेश किया गया है।

३०१—**धूर्त** आदि शब्दों को छोड़ कर अन्य शब्दों के 'र्त' इस संयुक्त वर्ण के स्थान पर टकारादेश होता है। जैसे—१—**कैवर्त्तः**= केवट्टो (धीवर, मच्छीमार), २—**वर्तिः**=वट्टी (बत्ती, आंख में सुरमा लगाने की सलाई), ३—**जर्तः**=जट्टो (देशविशेष, इस देश का निवासी), ४—**प्रवर्तते**=पयट्टइ (वह प्रवृत्ति करता है), ५—**वर्तुलम्**=वट्टुलं (गोल, वृत्ताकार, एक प्रकार का कन्दमूल), ६—**राजवार्तिकम्**=रायवट्टयं (राजसम्बन्धी), ७—**नर्तकी**=नट्टई (नाचने वाली), ८—**संवर्तितम्**=संवट्टियं (संकुचित, पिण्डीभूत, एकत्रित), यहां पर 'र्त' इस संयुक्त वर्ण के स्थान पर टकार किया गया है। सूत्र में पठित '**अधूर्तादौ**' इस पद का अर्थ है—धूर्त आदि शब्दों को छोड़कर। अर्थात् धूर्त आदि शब्दों के 'र्त' को टकारादेश नहीं होता। जैसे—१—**धूर्तः**= धुत्तो (ठग, जुआ खेलने वाला), २—**कीर्तिः**=कित्ती (यश), ३—**वार्ता**=वत्ता (बात), ४—**आवर्तनम्**=आवत्तनं (चक्राकार भ्रमण), ५—**निवर्तनम्**=निवत्तणं (जहां रास्ता बन्द होता है, वह स्थान, निवृत्ति), ६—**प्रवर्त्तनम्**=पवत्तणं (प्रवृत्ति), ७—**संवर्तनम्**=संवत्तणं (जहाँ पर अनेक मार्ग मिलते हों वह स्थान), ८—**आवर्तकः**=आवत्तओ (चक्राकार भ्रमण करने वाला), ९—**निवर्तकः**=निवत्तओ (वापिस आने वाला, लौटाने वाला), १०—**निर्वर्तकः**=निव्वत्तओ (निष्पन्न करने वाला, बनाने वाला), ११—**प्रवर्त्तकः**=पवत्तओ (प्रवृत्ति करने वाला), १२—**संवर्तकः**=संवत्तओ (बादल-विशेष, बलदेव, बडवानल), १३—**वर्तिका**=वत्तिआ (बत्ती, सलाई, कलम), १४—**वार्तिकः**=वत्तिओ (कथाकार), १५—**कार्तिकः**=कत्तिओ (कार्तिक का महीना, कार्तिक नामक सेठ), १६—**उत्कर्तितः**=उक्कत्तिओ (कटा हुआ, छिन्न), १७—**कर्तरी** (कर्तरिः)=कत्तरी (कैंची), १८—**मूर्तिः**=मुत्ती (रूप, आकार, फोटो), १९—**मूर्त्तः**=मुत्तो (आकृति वाला, कठिन, मूर्च्छायुक्त), २०—**मुहूर्त्तः**=मुहुत्तो (दो घड़ी का काल) इत्यादि शब्दों में प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी। **बहुलाधिकार** से कहीं पर 'र्त' को टकार और कहीं पर टकाराभाव ये दोनों विधियां भी देखने में आती हैं। जैसे—**वार्ता**— वत्ता वट्टा (वार्तालाप)

यहां पर टकारादेश तथा टकाराभाव ये दोनों कार्य दिखाई दे रहे हैं।

३०२—**वृन्त** शब्द के संयुक्त वर्ण को '**ण्ट**' यह आदेश होता है । जैसे—**१—वृन्तम्**=वेण्टं (फल, पत्र आदि का बंधन), **२—तालवृन्तम्**=तालवेण्टं (ताड का पंखा) यहां पर न्त को ण्ट यह आदेश किया गया है।

३०३—**अस्थि** और **विसंस्थुल** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण को ठकारादेश होता है। जैसे—**१—अस्थिः**=अट्ठी (हड्डी), **२—विसंस्थुलम्**=विसंठुलं (व्याकुल, अव्यवस्थित) यहां संयुक्त वर्ण को टकार किया गया है।

३०४—**स्त्यान, चतुर्थ** और **अर्थ** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण को विकल्प से ठकारादेश होता है। जैसे—**१—स्त्यानम्**—ठीणं, थीणं (आलस्य, प्रतिध्वनि), **२—चतुर्थः**=चउट्ठो (चौथा), **३—अर्थः**=अट्ठो, (प्रयोजन), जहां **अर्थ**—शब्द धनार्थक होता है, वहां **अत्थो**, यह रूप बनता है।

३०५—**उष्ट्र, इष्टा** और **संदष्ट** इन शब्दों को छोड़कर शेष शब्दों के '**ष्ट**' को ठकारादेश होता है। जैसे—**१—लष्टिः**=लट्ठी (लाठी), **२—मुष्टिः**=मुट्ठी (मुट्ठी), **३—दृष्टिः**=दिट्ठी (नज़र), **४—सृष्टिः**=सिट्ठी (रचना), **५—पृष्टः**=पुट्ठो (पूछा हुआ), **६—कष्टम्**=कट्ठं (दुःख), **७—सुराष्ट्राः**=सुरट्ठा (अच्छे देश), **८—इष्टः**=इट्ठो (प्यारा), **९—अनिष्टम्**=अणिट्ठं (जो इष्ट न हो) यहां पर '**ष्ट**' को ठकार किया गया है। सूत्र में पठित **अनुष्ट्रेष्टासंदष्टे**—इस पद का **अर्थ** है—उष्ट्र, इष्टा और संदष्ट को छोड़कर। इन शब्दों के ष्ट को प्रस्तुत सूत्र से ठकारादेश नहीं होता। जैसे—**१—उष्ट्रः**—उट्टो (ऊंट), **२—इष्टाचूर्णम् इव**=इट्टा-चुण्णं व (ईण्टों के चूर्ण की तरह), **३—संदष्टः**=संदट्टो (जो काटा हुआ हो वह) यहां पर ष्ट को ठकार नहीं हो सका।

३०६—**गर्त** शब्द के संयुक्त वर्ण को डकार होता है। यहां पर **३०१—सूत्र** से 'र्त' को टकार होना था किन्तु इस सूत्र ने उस के स्थान में डकारादेश कर दिया। अतः यह सूत्र उस सूत्र से होने वाले टकार का अपवाद समझना चाहिए। जैसे—**१—गर्तः**—गड्डो (गड्ढा), **२—गर्ताः**—गड्डा (अनेक गड्ढे) यहां **३०१ सूत्र** से 'र्त' को टकारादेश न होकर प्रस्तुत सूत्र से डकारादेश हो गया है।

३०७—**संमर्द, वितर्दि, विच्छर्द, छर्दि, कपर्द** और **मर्दित** इन शब्दों के र्द को डकारादेश होता है। जैसे—**१—संमर्दः**=संमड्डो (युद्ध, लड़ाई, संघर्ष), **२—वितर्दिः**=विअड्डी (वेदिका, हवन—स्थान), **३—विच्छर्दः**=विच्छड्डो (ऋद्धि, वैभव, विस्तार), **४—छर्दयति**=छड्डइ (वह वमन करता है), **५—छर्दिः**=छड्डी (वमन, कै), **६—कपर्दः**=कवड्डो (कौडी, शिवजी का जटाजूट), **७—मर्दितः**=मड्डिओ (जिस का मर्दन किया गया हो), **८—संमर्दितः**=संमड्डिओ (जिसका अच्छी तरह मर्दन किया गया हो) यहां पर '**र्द**' के स्थान में डकारादेश किया गया है।

३०८—**गर्दभ** शब्द के संयुक्त वर्ण के स्थान में विकल्प से डकारादेश होता है। जैसे—**गर्दभः**=गड्डहो, गद्दहो (गधा) यहां संयुक्त वर्ण को वैकल्पिक डकार किया गया है।

३०९—**कन्दरिका** और **भिन्दिपाल** के संयुक्त वर्ण को ण्ड यह आदेश होता है। जैसे—**१—कन्दरिका**=कण्डलिया (गुफा, कन्दरा), **२—भिन्दिपालः**=भिण्डिपालो (शस्त्रविशेष) यहां संयुक्त वर्ण को 'ण्ड' यह आदेश किया गया है।

३१०—**स्तब्ध** शब्द के दोनों संयुक्त वर्णों को क्रमशः ठकार और ढकार ये आदेश होते हैं। **जैसे—स्तब्धः**=ठड्ढो (हक्का-बक्का, जड़ीभूत) यहां पर स्त को ठ और ब्ध को ढ आदेश किया गया है।

३११—**दग्ध, विदग्ध, वृद्धि** और **वृद्ध** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण के स्थान में ढकारादेश होता है। जैसे—१—**दग्धः**=दड्ढो (जला हुआ), २—**विदग्धः**=विअड्ढो (पण्डित, कुशल), ३—**वृद्धिः**= वुड्ढी (व्याकरण की एक संज्ञा, बढाव), ४—**वृद्धः**=वुड्ढो (बूढा) यहां पर संयुक्त वर्ण के स्थान में ढकार किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर ढकारादेश नहीं भी होता। जैसे—**वृद्ध-कवि-निरूपितम्**=विद्ध-कइ-निरूविअं (वृद्ध कवि के द्वारा जिस का निरूपण किया गया है) यहां पर वृद्ध शब्द था किन्तु **बहुलाधिकार** के कारण उसके संयुक्त वर्ण को ढकार नहीं हो सका।

३१२—**श्रद्धा, ऋद्धि, मूर्धा** और **अर्ध** इन शब्दों के अन्त में विद्यमान संयुक्त वर्ण के स्थान में विकल्प से ढकार होता है। जैसे—१—**श्रद्धा**=सड्ढा, सद्धा (आस्था), २—**ऋद्धिः**=इड्ढी, रिद्धी (ऐश्वर्य), ३—**मूर्धा**=मुण्ढा, मुद्धा (मस्तक), ४—**अर्धम्**=अड्ढं, अद्धं (आधा), यहां पर संयुक्त वर्ण को वैकल्पिक ढकार किया गया है।

३१३—**म्न** और **ज्ञ** इन संयुक्त वर्णों के स्थान में णकारादेश होता है। जैसे—**म्न के उदाहरण** १—**निम्नम्**=निण्णं (नीचे), २—**प्रद्युम्नः**=पज्जुण्णो (श्री कृष्ण का पुत्र), **ज्ञ के उदाहरण** १—**ज्ञानम्**=णाणं (जानना, बोध), २—**संज्ञा**=सण्णा (सूर्य की पत्नी, गायत्री, ज्ञान, नाम), ३—**प्रज्ञा**—पण्णा (बुद्धि), ४—**विज्ञानम्**=विण्णाणं (विशिष्ट ज्ञान) यहां पर क्रमशः म्न और ज्ञ के स्थान पर णकार किया गया है।

३१४—**पञ्चाशत्, पञ्चदश** और **दत्त** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण को णकार होता है। जैसे—१—**पञ्चाशत्**=पण्णासा (५० की संख्या), २—**पञ्चदश**=पण्णरह (१५ की संख्या), ३—**दत्तम्**= दिण्णं (दिया हुआ) यहां पर संयुक्त वर्ण को णकार किया गया है।

३१५—**मन्यु** शब्द के संयुक्त वर्ण को 'न्त' विकल्प से होता है। जैसे—**मन्युः**=मन्तू, मन्नू (क्रोध) यहां पर 'न्य' को 'न्त' यह आदेश किया गया है।

३१६=**समस्त** और **स्तम्ब** को छोड़ कर शेष शब्दों के 'स्त' को थकारादेश होता है। जैसे—१—**हस्तः**=हत्थो (हाथ), २—**स्तुतिः**=थुई (प्रशंसा), ३—**स्तोत्रम्**=थोत्तं (स्तुति, स्तवन), ४—**स्तोकम्**=थोअं (थोड़ा, स्वल्प), ५—**प्रस्तरः**=पत्थरो (पत्थर), ६—**प्रशस्तः**—पसत्थो (प्रशंसनीय), ७—**अस्ति**=अत्थि (है), ८—**स्वस्ति**=सत्थि (आशीर्वाद, कल्याण, मंगल) यहां पर 'स्त' को थकार किया गया है। सूत्र में **समस्त और स्तम्ब** इन शब्दों का निषेध होने के कारण १—**समस्तः**=समत्तो (सकल), २—**स्तम्बः**=तम्बो (थंभा) यहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

३१७—**स्तव** शब्द के संयुक्त वर्ण को विकल्प से थकार होता है। जैसे—**स्तवः**=थवो, तवो (स्तुति) यहां पर स्त को वैकल्पिक थकारादेश किया गया है।

३१८—**पर्यस्त** शब्द के 'स्त' को पर्याय-क्रम से थकार और टकार होता है। जैसे—**पर्यस्तः**= पल्लत्थो, पल्लट्टो (दूर किया हुआ) यहां पर स्त को क्रमशः थकार और टकार किया गया है।

३१९—**उत्साह** शब्द के संयुक्तवर्ण को विकल्प से थकारादेश होता है, और थकार का संनियोग-सानिध्य होने पर हकार को रेफ होता है। जैसे—**उत्साहः**=उत्थारो, उच्छाहो (हौसला) यहां 'त्स' को विकल्प से थकार और थकार के अस्तित्व में हकार को रेफ किया गया है।

३२०—**आश्लिष्ट**शब्द के दोनों संयुक्त वर्णों के स्थान में यथासंख्य=संख्या के अनुसार (क्रमशः) लकार और धकार होता है। जैसे—**आश्लिष्टः**= आलिद्धो (आलिंगित) यहां पर 'श्ल'

को लकार कौर 'ष्ट' को धकार किया गया है।

★ अथ न्हादिवर्णानां न्धादिवर्णादेशविधिः ★

३२१—**चिन्हे न्धो वा** । ८ । २ । ५० । चिन्हे संयुक्तस्य न्धो वा भवति। ण्हापवादः । पक्षे सोपि । चिन्धं । इन्धं । चिण्हं ।

३२२—**भस्मात्मनो पो वा** । ८ । २ । ५१ । अनयोः संयुक्तस्य पो वा भवति । भप्पो भस्सो । अप्पा अप्पाणो । पक्षे अत्ता ।

३२३—**ड्म-क्मोः** । ८ । २ । ५२ । ड्मक्मोः पो भवति। कुड्मलम् । कुम्पलं । रुक्मिणी । रुप्पिणी । क्वचित् च्मोपि । रुच्मी रुप्पी ।

३२४—**ष्प-स्पयोः फः** । ८ । २ । ५३ । ष्पस्पयोः फो भवति ! पुष्पम् । पुप्फं । शष्पम् । सप्फं । निष्पेषः । निप्फेसो । निष्पावः । निप्फावो । स्पन्दनम् । फन्दणं । प्रतिस्पर्धिन् । पाडिप्फद्धी । बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः । बुहप्फई बुहप्पई । क्वचिन्न भवति । निप्पहो । णिप्पुंसणं । परोप्परं ।

३२५—**भीष्मे ष्मः** । ८ । २ । ५४ । भीष्मे ष्मस्य फो भवति । भिप्फो ।

३२६—**श्लेष्मणि वा** । ८ । २ । ५५ । श्लेष्मशब्दे ष्मस्य फो वा भवति। सेफो, सिलिम्हो ।

३२७—**ताम्राम्रे म्बः** । ८ । २ । ५६ । अनयोः संयुक्तस्य मयुक्तो बो भवति । तम्बं । अम्बं । अम्बिर-तम्बिर इति देश्यौ ।

३२८—**ह्वो भो वा** । ८ । २ । ५७ । ह्वस्य भो वा भवति। जिब्भा । जीहा ।

३२९—**वा विह्वले वौ वश्च** । ८ । २ । ५८ । विह्वले ह्वस्य भो वा भवति, तत्संनियोगे च वि-शब्दे वस्य वा भो भवति। भिब्भलो, विब्भलो, विहलो ।

३३०—**वोर्ध्वे** । ८ । २ । ५९ । ऊर्ध्वशब्दे संयुक्तस्य भो वा भवति । उब्भं उद्धं ।

३३१—**कश्मीरे म्भो वा** । ८ । २ । ६० । कश्मीरशब्दे संयुक्तस्य म्भो वा भवति । कम्भारा कम्हारा ।

३३२—**न्मो मः** । ८ । २ । ६१ । न्मस्य मो भवति । अधोलोपापवादः । जम्मो । वम्महो । मम्मणं ।

३३३—**ग्मो वा** । ८ । २ । ६२ । ग्मस्य मो वा भवति । युग्मम् । जुम्मं जुग्गं । तिग्मम् । तिम्मं तिग्गं ।

३३४—**ब्रह्मचर्य-तूर्य-सौन्दर्य-शौण्डीर्ये र्यो रः** । ८ । २ । ६३ । एषु र्यस्य रो भवति ।

जापवादः । बम्हचेरं । चौर्यसमत्वाद्-बम्हचरिअं । तूरं । सुन्देरं । सोण्डीरं ।

३३५—**धैर्ये वा** । ८ । २ । ६४ । धैर्ये र्यस्य रो वा भवति । धीरं धिज्जं । सूरो, सुज्जो इति तु सूरसूर्य-प्रकृतिभेदात् ।

३३६—**एतः पर्यन्ते** । ८ । २ । ६५ । पर्यन्ते एकारात्परस्य र्यस्य रो भवति । पेरन्तो । एत इति किम् ? पज्जन्तो ।

३३७—**आश्चर्ये** । ८ । २ । ६६ । आश्चर्ये ऐतः परस्य र्यस्य रो भवति । अच्छेरं । एत इत्येव, अच्छरिअं ।

३३८—**अतो रिआर-रिज्ज-रिअं** । ८ । २ । ६७ । आश्चर्ये अकारात्परस्य र्यस्य रिअ, अर, रिज्ज, रीअ इत्येते आदेशा भवन्ति । अच्छरिअं । अच्छअरं । अच्छरिज्जं । अच्छरीअं । अत इति किम् ? अच्छेरं ।

३३९—**पर्यस्त-पर्याण-सौकुमार्ये ल्लः** । ८ । २ । ६८ । एषु र्यस्य ल्लो भवति । पर्यस्तं । पल्लट्टं पल्लत्थं । पल्लाणं । सोअमल्लं । पल्लङ्को इति च पल्यङ्कशब्दस्य यलोपे द्वित्वे च । पलिअंको इत्यपि चौर्यसमत्वात् ।

३४०—**बृहस्पति-वनस्पत्योः सो वा** । ८ । २ । ६९ । अनयोः संयुक्तस्य सो वा भवति । बहस्सई बहप्फई । भयस्सई भयप्फई । वणस्सई वणप्फई ।

३४१—**बाष्पे होऽश्रुणि** । ८ । २ । ७० । बाष्पशब्दे संयुक्तस्य हो भवति, अश्रुण्यभिधेये । बाहो नेत्रजलम् । अश्रुणीति किम् ? बप्फो ऊष्मा ।

३४२—**कार्षापणे** । ८ । २ । ७१ । कार्षापणे संयुक्तस्य हो भवति । काहावणो । कथं कहावणो ? ह्रस्वः संयोगे (१. ८४) इति पूर्वमेव ह्रस्वत्वे पश्चादादेशे । कर्षापणशब्दस्य वा भविष्यति ।

३४३—**दुःख-दक्षिण-तीर्थे वा** । ८ । २ । ७२ । एषु संयुक्तस्य हो वा भवति । दुहं दुक्खं । पर-दुक्खे दुक्खिआ विरला । दाहिणो दक्खिणो । तूहं तित्थं ।

३४४—**कूष्माण्ड्यां ष्मो लस्तु ण्डो वा** । ८ । २ । ७३ । कूष्माण्ड्यां 'ष्मा' इत्येतस्य हो भवति, 'ण्ड' इत्यस्य तु वा लो भवति । कोहली, कोहण्डी ।

३४५—**पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः** । ८ । २ । ७४ । पक्ष्मशब्दसम्बन्धिनः संयुक्तस्य श्मष्मस्मह्मां च मकाराक्रान्तो हकार आदेशो भवति । पक्ष्मन् । पम्हाइं । पम्हल-लोअणा । श्म । कुश्मानः । कुम्हाणो । कश्मीराः । कम्हारा । ष्म । ग्रीष्मः । गिम्हो । ऊष्मा । उम्हा । स्म । अस्मादृशः । अम्हारिसो । विस्मयः । विम्हओ । ह्म । ब्रह्मा । बम्हा । सुह्माः । सुम्हा ।

बम्हणो। बम्हचेरं। क्वचित् म्भोपि दृश्यते। बम्भणो। बम्भचेरं। सिम्भो। क्वचिन्न भवति। रश्मिः। रस्सी। स्मरः। सरो।

३४६—**सूक्ष्म-श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः** ।८।२।७५। सूक्ष्मशब्दसंबन्धिनः संयुक्तस्य श्नष्णस्नह्नह्णक्ष्णां च णकाराक्रान्तो हकार आदेशो भवति। सूक्ष्मं। सण्हं। श्न। पण्हो। सिण्हो। ष्ण। विण्हू। जिण्हू। कण्हो। उण्हीसं। स्न। जोण्हा। ण्हाओ। पण्हुओ। ह्न। वण्ही। जण्हू। ह्ण। पुव्वण्हो। अवरण्हो। क्ष्ण। सण्हं। तिण्हं। विप्रकर्षे तु कृष्ण-कृत्स्नशब्दयोः कसणो। कसिणो।

३४७—**ह्लो ल्हः**।८।२।७६। ह्लः स्थाने लकाराक्रान्तो हकारो भवति। कल्हारं। पल्हाओ।

३४८—**क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स-ᳵक-ᳶपामूर्ध्वं लुक्**।८।२।७७। एषां संयुक्त-वर्णसम्बन्धिनामूर्ध्वं स्थितानां लुग् भवति। क। भुत्तं। सित्थं। ग। दुद्धं। मुद्धं। ट। षट्पदः। छप्पओ। कट्फलम्। कप्फलं। ड। खड्गः। खग्गो। षड्जः। सज्जो। त। उप्पलं। उप्पाओ। द। मद्गुः। मग्गू। मोग्गरो। प। सुत्तो। गुत्तो। श। लण्हं। णिच्चलो। चुअई। ष। गोट्ठी। छट्ठो। निट्ठुरो। स। खलिओ। नेहो। ᳵक। दुᳵखम्। दुक्खं। ᳶप। अंतᳶपातः। अंतप्पाओ।

३४९—**अधो म-न-याम्**।८।२।७८। मनयां संयुक्तस्याधो-वर्तमानानां लुग् भवति। म। जुग्गं। रस्सी। सरो। सेरं। न। नग्गो। लग्गो। य। सामा। कुड्डं। वाहो।

३५०—**सर्वत्र ल-ब-रामवन्द्रे**।८।२।७९। *वन्द्रशब्दादन्यत्र लबरां सर्वत्र संयुक्तस्योर्ध्वमधश्च स्थितानां लुग् भवति। उर्ध्वं। ल। उल्का। उक्का। वल्कलम्। वक्कलं। ब। शब्दः। सद्दो। अब्दः। अद्दो। लुब्धकः। लोद्धओ। र। अर्कः। अक्को। वर्गः। वग्गो। अधः। श्लक्ष्णम्। सण्हं। विक्लवः। विक्कवो। पक्वम्। पक्कं पिक्कं। ध्वस्तः। धत्थो। चक्रम्। चक्कं। ग्रहः। गहो। रात्रिः। रत्ती। अत्र द्व इत्यादिसंयुक्तानामुभय-प्राप्तौ यथादर्शनं लोपः। क्वचिदूर्ध्वम्। उद्विग्नः। उव्विग्गो। द्विगुणः। बि-उणो। द्वितीयः। बि-उणो। द्वितीयः। बीओ। कल्मषम्। कम्मसं। सर्वम्। सव्वं। शुल्बम्। सुब्बं। क्वचित्त्वधः। काव्यम्। कव्वं। कुल्या। कुल्ला। माल्यम्। मल्लं। द्विपः। दिओ। द्विजातिः। दुआई। क्वचित्पर्यायेण। द्वारम्। बारं। दारं। उद्विग्नः। उव्विगो। उव्विण्णो। अवन्द्र इति किम्? वन्द्रं। संस्कृतसमोयं प्राकृत-शब्दः। अत्रोत्तरेण विकल्पोपि न भवति निषेधसामर्थ्यात्।

---

* वन्द्र इत्यस्य स्थाने चन्द्र, इत्यपि पाठो दृश्यते।

३५१—द्रे रो न वा। ८। २। ८०। द्रशब्दे रेफस्य वा लुग् भवति। चन्दो चन्द्रो। रुद्दो रुद्रं। भद्दं भद्रं। समुद्दो समुद्रो। ह्रदशब्दस्य स्थितिप्रवृत्तौ द्रह इति रूपम्। तत्र द्रहो दहो। केचिद् रलोपं नेच्छन्ति। द्रहशब्दमपि कश्चित् संस्कृतं मन्यते। वोद्रहादयस्तु तरुण-पुरुषादिवाचका नित्यं रेफसंयुक्ता देश्या एव। सिक्खन्तु वोद्रहीओ। वोद्रह-द्रहम्मि पडिआ।

३५२—धात्र्याम्। ८। २। ८१। धात्रीशब्दे रस्य लुग् वा भवति। धत्ती। ह्रस्वात् प्रागेव रलोपे धाई। पक्षे धारी।

३५३—तीक्ष्णे णः। ८। २। ८२। तीक्ष्णशब्दे णस्य लुग् वा भवति। तिक्खं तिण्हं।

३५४—ज्ञो ञः। ८। २। ८३। ज्ञः सम्बन्धिनो ञस्य लुग् वा भवति। जाणं णाणं। सव्वज्जो सव्वण्णू। अप्पज्जो अप्पण्णू। दइवज्जो दइवण्णू। इङ्गिअज्जो इङ्गिअण्णू। मणोज्जं मणोण्णं। अहिज्जो अहिण्णू। पज्जा पण्णा। अज्जा आणा। संजा सण्णा। क्वचिन्न भवति। विण्णाणं।

३५५—मध्याह्ने हः। ८। २। ८४। मध्याह्ने हस्य लुग् वा भवति। मज्झन्नो मज्झण्हो।

३५६—दशार्हे। ८। २। ८५। पृथग्योगाद्वेति निवृत्तम्। दशार्हे हस्य लुग् भवति। दसारो।

३५७—आदेः श्मश्रु-श्मशाने। ८। २। ८६। अनयोरादेर्लुग् भवति। मासू मंसू मस्सू। मसाणं। आर्षे श्मशानशब्दस्य सीआणं सुसाणमित्यपि भवति।

३५८—श्चो हरिश्चन्द्रे। ८। २। ८७। हरिश्चन्द्रशब्दे श्च इत्यस्य लुग् भवति। हरिअन्दो।

३५९—रात्रौ वा। ८। २। ८८। रात्रिशब्दे संयुक्तस्य लुग् वा भवति। राई रत्ती।

★ अथ न्हादिवर्णानां न्धादिवर्णादेशविधिः ★

न्ह, स्म प्रभृतीनां संयुक्त-वर्णानां स्थाने यानि न्ध, पादिवर्णादेशादि-कार्याणि भवन्ति, तानि निरूपयत्याचार्य :—

३२१—**न्हापवादः**। ३४६ सूत्रेण न्हस्य ण्ह इत्यादेशो भवति परं तस्येदमपवाद-सूत्रम्। यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावस्तत्र ३४६ सूत्रस्यापि प्रवृत्तिर्भवति। यथा—**चिन्हम्**। चिन्ह+सि। ३२१ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः 'न्ध इत्यादेशः, आदेशाभावे ३४६ सू० संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **चिन्धं चिण्हं** यत्र १७७ सूत्रस्य "**क्वचिदादेरपि**" इति पाठात् चकार-लोपस्तत्र **इन्धं** इति भवति।

३२२—**भस्म**। भस्मन्+सि, ३२२ सू०, संयुक्तस्य वैकल्पिकः पकारः, पकारस्य द्वित्वे, आदेशाभावे ३४९ सू० मकारस्य लोपे, सकारस्य द्वित्वे, उभयत्रापि ११ सू० नकारस्य लोपे, ३२ सू० पुंस्त्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **भप्पो, भस्सो** इति सिद्धम्। **आत्मा**। आत्मन्+सि।

८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३२२ सू० त्मस्य वैकल्पिकः पकारः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, ५४५ सू० राजवत्वात् ११ सू० नकारस्य लोपे, ५३८ सू० अन्त्यस्य अकारस्य आकारः, सेर्लोपे **अप्पा**। यत्र—अन् इत्यस्य ५४५ सू० 'आण' इत्यादेशो जातस्तत्र ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अप्पाणो**। यत्र पकारादेशोऽपि न जातस्तत्र ३४९ सू० मकारस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ५४५ सू० राजवत्वात् नकारस्य लोपे, अन्त्याकारस्य आकारे **अत्ता** इति भवति।

३२३—कुड्मलम्। कुड्मल+सि। ३२३ सू० संयुक्तस्य पकारः, २६ सू० प्रथमादेः स्वरस्य अन्ते अनुस्वारागमः, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्यः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **कुम्पलं** इति सिद्धम्। **रुक्मिणी**। रुक्मिणी+सि। ३२३ सू० संयुक्तस्य पकारः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **रुप्पिणी** इति सिद्धम्। **क्वचित् च्मोपि।** बहुलस्याधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले क्मस्य 'च्म' इत्यादेशोऽपि भवति। यथा—**रुक्मी**। रुक्मिन्+सि। ३२३ सूत्रे बहुलाधिकारात् क्मस्य 'च्म' इत्यादेशः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **रुच्मी** यत्र क्मस्य 'च्म' इत्यादेशो न जातस्तत्र ३२३ सू० क्मस्य पकारः, पकारस्य द्वित्वे **रुप्पी** इति भवति।

३२४—पुष्पम्। पुष्प+सि। ३२४ सू० संयुक्तस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पुप्फं** इति सिद्धम्। **शष्पम्**। शष्प+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, संयुक्तस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारः, सेर्मकारः मकारस्यानुस्वारे **सप्फं** इति सिद्धम्। **निष्पेषः**। निष्पेष+सि। संयुक्तस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **निप्फेसो** इति सिद्धम्। **निष्पावः**। निष्पाव+सि। संयुक्तस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **निप्फावो** इति सिद्धम्। **स्पन्दनम्**। स्पन्दन+सि। संयुक्तस्य फकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **फन्दणं** इति सिद्धम्। **प्रतिस्पर्धी**। प्रतिस्पर्धिन्+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ४४ सू० आदेरकारस्य आकारः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, संयुक्तस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारः, रेफस्य लोपः, धकारस्य द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **पाडिप्फद्धी** इति सिद्धम्। **बहुलाधिकारात् क्वचिद्विति।** प्रस्तुतसूत्रेण ष्प-स्पयोरवैकल्पिकः फकारो विहितः, किन्तु बहुलाधिकारात् क्वचित् फकारादेशो विकल्पेन भवति। यथा—**बृहस्पतिः**। बृहस्पति+सि। १३८ सू० ऋकारस्य उकारः, ३२४ सूत्रे बहुलाधिकारात् संयुक्तस्य वैकल्पिकः फकारः, ३६० सू० फकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारः, फकाराभावे—३४८ सू० सकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **बुहप्फई बुहप्पई** इति सिद्धं। **क्वचिन्न भवति।** बहुलाधिकारात् क्वचित् फकारादेशस्य सर्वथाभावोऽपि भवति। अतएव अग्रिम-प्रयोगत्रये ३२४ सूत्रेण संयुक्तस्य फकारादेशाभावः। तथाहि—**निष्प्रभः**। निष्प्रभ+सि। ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, १८७ सू० भकारस्य हकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **निप्पहो** इति सिद्धम्। **निष्पुंसनं**। निष्पुंसन+सि। २२९ सू० नकारस्य णकारः, षकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **निप्पुंसणं** इति सिद्धम्। **परस्परम्**। परस्पर+सि। ६२ सू० द्वितीयस्याकारस्य ओकारः,

३४८ सू० सकारस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **परोप्परं** इति सिद्धम्। प्रयोगदर्शनात् ८४ सूत्रेण ह्रस्वाभावः।

३२५—भीष्मः। भीष्म+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३२५ सू० ष्मस्य फकारः, ३६० सू० फकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भिप्फो** इति सिद्धम्।

३२६—श्लेष्मा। श्लेष्मन्+सि। ३५० सू० लकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ३२६ सू० ष्मस्य वैकल्पिकः फकारः, ११ सू० नकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सेफो**—फकाराभावे ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३७७ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् लकारात् पूर्वः इकारागमः, ३४५ सू० ष्मस्य मकाराक्रान्तो हकारः, ११ सू० नकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **सिलिम्हो** इति सिद्धम्।

३२७—ताम्रम्। ताम्र+सि। ३२७ सू० संयुक्तस्य म्ब इत्यादेशः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्य अनुस्वारे **तम्बं** इति सिद्धम्। **आम्रम्**। आम्र+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य 'म्ब' इत्यादेशः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अम्बं** इति सिद्धम्। **अम्बिर, तम्बिर**। अम्बिर, तम्बिर इत्येतौ शब्दौ देश्यौ—देश-विशेष-प्रसिद्धौ, अतएव अव्युत्पन्नौ—प्रकृति-प्रत्यय—विभागरहितौ बोध्यौ।

३२८—जिह्वा। जिह्वा+सि। ३२९ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिको भकारः, ३६० सू० भकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्व—भकारस्य बकारः, यत्र भकारादेशो न जातस्तत्र ३५० सू० वकारस्य लोपः, ९२ सू० इकारस्य ईकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **जिब्भा, जीहा** इति सिद्धम्।

३२९—विह्वलः। विह्वल+सि। ३२९ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिको भकारः, तत्संनियोगे वि-गतस्य वकारस्यापि विकल्पेन भकारः, ३६० सू० द्वितीय-भकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारः, भकाराभावे ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६४ सू० हकारस्य द्वित्वनिषेधः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भिब्भलो विब्भलो विहलो** इति सिद्धम्।

३३०—ऊर्ध्वम्। ऊर्ध्व+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३३० सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः भकारः, भकारस्य द्वित्वं, पूर्व-भकारस्य बकारः, भकाराभावे—३५० सू० रेफस्य वकारस्य च लोपः, धकारस्य द्वित्वं, पूर्व-धकारस्य दकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **उब्भं, उद्धं** इति सिद्धम्।

३३१—कश्मीराः। कश्मीर+जस्। ३३१ सू० श्मस्य वैकल्पिके 'म्भ' इत्यादेशे, १०० सू० ईकारस्य आकारे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **कम्भारा** आदेशाभावे ३४५ सू० श्मस्य म्ह इत्यादेशे **कम्हारा** इति भवति।

३३२—अधोलोपापवादः। संयुक्तवर्ण-द्वये यो द्वितीयो वर्णो भवति सः 'अधः' इति भण्यते। यथा—जन्म इत्यत्र नकारो मकारश्च संयुक्तः, अत्र परवर्तित्वात् मकारः अधोवर्णो बाध्यः। ३४९ सूत्रेण संयुक्तस्याधोवर्तमानानां मकार-नकार-यकाराणां लोपो भवति, परं प्रस्तुत-सूत्रेणाधोवर्तमानेन मकारेण सहितस्य नकारस्य स्थाने मकारादेशो विहितोऽतः सूत्रमिदं तस्य ३४९ सूत्रस्यापवादसूत्रं ज्ञेयम्। **जन्म**। जन्मन्+सि। ३३२ सू० न्मस्य मकारे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारस्य

लोपे, ३२ सू० पुँस्त्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जम्मो** इति सिद्धम्। **मन्मथः**। मन्मथ+सि। २४२ सू० प्रथममकारस्य वकारे, प्रस्तुतसूत्रेण न्मस्य मकारे, मकारस्य द्वित्वे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वम्महो** इति सिद्धम्। **मन्मनम्**। मन्मन+सि। संयुक्तस्य मकारे, मकारस्य द्वित्वे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मम्मणं** इति सिद्धम्।

३३३—युग्मम्। युग्म+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, ३३३ सू० ग्मस्य वैकल्पिको मकारः, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वं, यत्र मकारो न जातस्तत्र ३४९ सू० मकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **जुम्मं जुग्गं** इति सिद्धम्। **तिग्मम्**। तिग्म+सि। ३३३ सू० ग्मस्य वैकल्पिको मकारः, मकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **तिम्मं** यत्र मकारादेशो न जातस्तत्र ३४९ सू० मकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वे **तिग्गं** इति भवति।

३३४—जापवादः। २९५ सूत्रेण र्यस्य जकारो भवति, परमनेन सूत्रेण तस्य रेफादेशो विहितोऽत—एव सूत्रमिदं जकारस्यापवाद-सूत्रं बोध्यम्। **ब्रह्मचर्यम्**। ब्रह्मचर्य+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३४५ सू० ह्मस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ५९ सू० चकारस्थस्य अकारस्य एकारः, ३३४ सू० र्यस्य रेफः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **बम्हचेरं**, यत्र ३७८ सू० चौर्य-समत्वात् संयुक्तस्य यकारात्पूर्वः इकारागमो जातस्तत्र १७७ सू० यकारस्य लोपे **बम्हचरिअं** इति भवति। **तूर्यम्**। तूर्य+सि। र्यस्य रेफे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **तूरं** इति सिद्धम्। **सौन्दर्यम्**। सौन्दर्य+सि। १६० सू० औकारस्य उकारे, र्यस्य रेफे, ५७ सू० आदेरकारस्य एकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सुन्देरं** इति सिद्धम्। **शौण्डीर्यम्**। शौण्डीर्य+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, १५९ सू० औकारस्य ओकारे, र्यस्य रेफे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सोण्डीरं** इति सिद्धम्।

३३५—धैर्यम्। धैर्य+सि। १५५ सू० ऐकारस्य ईकारे, ३३५ सू० र्यस्य वैकल्पिके रेफे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **धीरं** रेफादेशाभावे २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **धिज्जं** इति सिद्धम्। **सूरो सुज्जो इति तु**। **सूर्यः** इत्यत्र र्यस्य विकल्पेन रेफं विधाय **सूरो सुज्जो** इत्येते रूपे भवतोऽथवा काचिदन्या प्रक्रिया वर्तते? प्रश्नस्यैतस्य समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारो भणति। सूर—शब्दात् **सूरो**, सूर्यशब्दाच्च **सुज्जो** इति भवति, नात्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते। शब्दसाधनिका त्वित्थं बोध्या—**सूरः**। सूर+सि। सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सूरो** इति सिद्धम्। **सूर्यः**। सूर्य+सि। संयोगे परे ह्रस्वे, २९५ सू० र्यस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **सुज्जो** इति सिद्धम्।

३३६—पर्यन्तः। पर्यन्त+सि। ५८ सू० आदेरकारस्य वैकल्पिक एकारः, ३३६ सू० र्यस्य रेफे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पेरन्तो** इति सिद्धम्। **एत इति किम्**। पर्यन्त-शब्दे यद्यादेरकारस्य एकारो भवेत्तदैव तस्य र्यस्य रेफादेशो भवति, नान्यथा। यथा—पर्यन्त+सि। इत्यत्र २९५ सू० र्यस्य जकारे, जकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **पज्जन्तो** इति भवति। अत्र एकाराभावे सति प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता।

३३७—आश्चर्यम्। आश्चर्य+सि। ५८ सू० आदेरकारस्य वैकल्पिके एकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २९२ सू० श्चस्य छकारे, छकारस्य द्वित्वे, पूर्वछकारस्य चकारे, ३३७ सू० र्यस्य रेफे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **अच्छेरं** इति सिद्धम्। **एत इत्येव**। यत्र आश्चर्य-शब्दस्य आदेरकारस्य

एकारो भवति तत्रैव र्यस्य रेफो भवति नान्यथा। यथा—आश्चर्य+सि। आकारस्य ह्रस्वे अकारे, श्चस्य छकारे, छकारस्य द्वित्वे, पूर्वछकारस्य चकारे, ३३८ सू० र्यस्य रिअ इत्यादेशे, पूर्ववदेव **अच्छ-रिअं** इति भवति। एकाराभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

३३८—**आश्चर्यम्**। आश्चर्य+सि। संयोगे परे ह्रस्वः, श्चस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्व-छकारस्य चकारः, ३३८ सू० र्यस्य—रिअ, अर, रिज्ज, रीअ इत्येते आदेशाः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं** इति सिद्धम्। **अत इति किम्**। आश्चर्य—शब्दस्य अकारात् परस्यैव र्यस्य रिअ इत्यादय आदेशा भवन्ति, नान्यथा। यत्र ५८ सूत्रेण आदेरकारस्य एकारो भवति तत्र तु **अच्छेरं** इति रूपं भवति। अत्र अकार—परवर्तित्वाभावात् र्यस्य रिअ इत्यादय आदेशा न जाताः। अस्य साधनिका ३३७ सूत्रेऽवलोकनीया।

३३९—**पर्यस्तम्**। पर्यस्त+सि। ३३९ सू० र्यस्य 'ल्ल' इत्यादेशः, ३१८ सू० स्तस्य क्रमेण थकारटकारौ, ३६० सू० थकारस्य टकारस्य च द्वित्वं, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **पल्लत्थं पल्लट्टं** इति सिद्धम्। **पर्याणम्**। पर्याण+सि। ३३९ सू० र्यस्य ल्ल इत्यादेशः. सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **पल्लाणं** इति सिद्धम्। **सौकुमार्यम्**। सौकुमार्य+सि। १५९ सू० औकारस्य ओकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १०७ सू० आदेरुकारस्य अकारः, ३३९ सू० र्यस्य 'ल्ल' इत्यादेशः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सोअमल्लं** इति सिद्धम। **पल्लङ्को इति च**। 'पल्लङ्को' इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण 'ल्ल' इत्यादेशो न कृतोऽस्ति किन्तु पल्यङ्कशब्दस्य यकारस्य लोपे, लकारस्य च द्वित्वे कृते **पल्लङ्को** इति सिद्ध्यति। तथा पल्यङ्कशब्दस्यैव ३७८ सूत्रोक्तस्य चोरिअं—शब्दस्य समानमेव **पलिअंको** इत्यपि रूपं भवति इति ज्ञापनार्थमेव वृत्तिकारेण उक्तं-**पल्लङ्को** इत्यादि। प्रयोगसिद्धि-स्त्वित्थम्—**पल्यङ्कः**। पल्यङ्क+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, लकारस्य द्वित्वं. सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पल्लङ्को**। यत्र ३७८ सू० यकारात्पूर्वः इकारागमस्तत्र १७७ सू० यकारस्य लोपे **पलिअङ्को** इति भवति।

३४०—**बृहस्पतिः**। बृहस्पति+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३४० सूत्रेण संयुक्तस्य वैकल्पिकः सकारः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **बहस्सई** यत्र सकारादेशो न जातस्तत्र ३२४ सू० स्पस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारे **बहप्फई** यत्र ४०८ सू० 'बह' इत्यस्य 'भय' इत्यादेशस्तत्र-**भयस्सई, भयप्फई** इति भवति। **वनस्पतिः**। वनस्पति+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३४० सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः सकारः, सकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **वणस्सई** यत्र ३२४ सू० संयुक्तस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, तत्र पूर्वफकारस्य पकारे **वणप्फई** इति भवति।

३४१ **बाष्पः**। बाष्प+सि। ३४१ सू० संयुक्तस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **बाहो** यत्र अश्रुवभिधायको बाष्प-शब्दो न वर्तते तत्र हकारो न भवति किन्तु ३२४ सू० ष्पस्य फकारः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारे **बप्फो** इति भवति।

३४२—**कार्षापणः**। कार्षापण+सि। ३४२ सू० संयुक्तस्य हकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **काहावणो** इति सिद्धम्। **कथं कहावणो। कहावणो** इत्यस्य रूपस्य सिद्धिः कथं भवतीति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यत् **कार्षापण**-शब्दे सर्वप्रथमं ८४ सू० संयोगे परे आकारस्य अकारो विधेयस्तदनन्तरं ३४२ सू० संयुक्तस्य हकारादेशः करणीयः,

अनया रीत्या **कहावणो** इति सिद्धयति । अथवा **कर्षापणः**—शब्दोऽपि वर्तते । तेन संयुक्तस्य हकारे, पकारस्य वकारे च कृते पूर्वदेव **कहावणो** इति भवितुं शक्नोत्येव ।

३४३—दुःखम् । दुःख+सि । ३४३ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिको हकारः, ३६४ सू० हकारस्य द्वित्त्व-निषेधः, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **दुहं** यत्र हकारादेशो न जातस्तत्र ३४८ सू० जिह्वामूलीयस्य लोपः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्त्वं, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य ककारे **दुक्खं** इति भवति । **परदुःखे** (पर-जनस्य कष्टे) **दुःखिताः विरलाः** । **परदुःखे** । परदुःख+ङि । ३४८ सू० जिह्वामूलीयस्य लोपे, खकारस्य द्वित्त्वे, पूर्वखकारस्य ककारे, ५०० सू० ङि-प्रत्ययस्य डित् एकारे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **परदुक्खे** इति सिद्धम् । **दुःखिताः ।** दुःखित+जस् । जिह्वामूलीयस्य लोपे, खकारस्य द्वित्त्वे, पूर्वखकारस्य ककारे, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **दुक्खिआ** इति सिद्धम् । **विरलाः** । विरल+जस् । जसो लुक्, पूर्वाकारस्य दीर्घे **विरला** इति सिद्धम् । **दक्षिणः** । दक्षिण+सि । संयुक्तस्य वैकिल्पको हकारः, ४५ सू० आदेर-कारस्य दीर्घः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दाहिणो** हकाराभावे २७४ सू० क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्त्वं, पूर्वखकारस्य ककारे **दक्खिणो** इति भवति । अत्र हकारपरत्वाभावात् ४५ सू० आदेरकारस्य दीर्घोऽपि न जातः । **तीर्थम् ।** तीर्थ+सि । १०४ सू० ईकारस्य ऊकारः, संयुक्तस्य वैकल्पिको हकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **तूहं** हकाराभावे ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्त्वं, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **तित्थं** इति सिद्धम् ।

३४४—कूष्माण्डी । कूष्माण्डी+सि । १२४ सू० ऊकारस्य ओकारः, ३४४ सू० 'ष्मा' इत्यस्य हकारः, 'ण्ड' इत्यस्य वैकल्पिको लकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**कोहली** लकारादेशाभावे—**कोहण्डी** इति सिद्धम् ।

३४५—पक्ष्माणि । पक्ष्म+जस । ३४५ सू० संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ५१५ सू० जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वस्वर्णदीर्घे च **पम्हाइं** इति सिद्धम । **पक्ष्मल-लोचना ।** पक्ष्माणि सन्त्यस्य तत् पक्ष्मलम्, पक्ष्मले लोचने यस्याः सा पक्ष्मल-लोचना । पक्ष्मल-लोचना+सि । संयुक्तस्य'म्ह' इत्यादेशः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्लोपे **पम्हल-लोअणा** इति सिद्धम् । प्रकारान्तरेण कर्मधारयसमासदशायाम्-पक्ष्मले च लोचने-**पक्ष्मलोचने** । पक्ष्मललोचन+औ । ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचनम्, पर्ववदेव-**पम्हल-लोअण**+जस इति जाते ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **पम्हलोअणा** इति सिद्धम् । **कुश्मानः** । कुश्मान+सि । संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कुम्हाणो** इति सिद्धम् । **कश्मीराः** । कश्मीर+जस् । संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, १०० सू० ईकारस्य आकारः, जसो लुक्, पूर्वाकारस्य दीर्घे **कम्हारा** इति सिद्धम् । **ग्रीष्मः** । ग्रीष्म+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **गिम्हो** इति सिद्धम् । **ऊष्मा** । ऊष्मन्+सि । संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ११ सू० नकारस्य लोपः, ५४५ सू० राजवत्वात् ५३८ सू० अकारस्य आकारः, सेर्लोपे **उम्हा** इति सिद्धम् । **अस्माद्दशः** । अस्माद्दश+सि । संयुक्तस्य 'म्ह' इत्या-देशः, १४२ सू० ऋकारस्य रिरादेशः, ३४८ सू० दकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अम्हारिसो** इति सिद्धम् । **विस्मयः** । विस्मय+सि । संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **विम्हओ** इति सिद्धम् ।

ब्रह्मा। ब्रह्मन्+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ५४५ सू० राजवत्त्वात् ११ सू० नकारस्य लोपे, ५३८ सू० अन्त्यस्य अकारस्य आकारः, सेर्लोपे **बम्हा** इति सिद्धम्। **सुह्माः**। सुह्म+जस्! संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, जसो लुक्, पूर्वाकारस्य दीर्घे **सुम्हा** इति सिद्धम्। **ब्राह्मणः**। ब्राह्मण+सि। रेफस्य लोपः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य म्ह इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **बम्हणो** इति सिद्धम। **ब्रह्मचर्यम्**। ब्रह्मचर्य+सि। रेफस्य लोपः, संयुक्तस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ५९ सू० चकारगताकारस्य एकारः, ३३४ सू० र्यस्य रेफः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **बम्हचेरं** इति सिद्धम्। **क्वचित् म्भोऽपि दृश्यते**। प्रस्तुतसूत्रेण ह्मस्य ष्मस्य च म्हादेशो भवति, किन्तु **बहुलाधिकारात्** क्वचित् ह्मस्य ष्मस्य च म्भ इत्यादेशोऽपि जायते। यथा—**ब्राह्मणः**। ब्राह्मण+सि। रेफस्य लोपे, संयोगे परे ह्रस्वे, ह्मस्य म्भ इत्यादेशे, पूर्ववदेव **बम्भणो** इति भवति। **ब्रह्मचर्यम्**। ब्रह्मचर्य+सि। रेफस्य लोपे, ह्मस्य म्भ इत्यादेशे, पूर्ववदेव **बम्भचेरं** इति जातम्। **श्लेष्मा**। श्लेष्मन्+सि। ३५० सू० लकारस्य लोपः, २६० सूत्रेण शकारस्य सकारः, ८४ सू० एकारस्य इकारः, संयुक्तस्य म्भ इत्यादेशः, ११ सू० नकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सिम्भो** इति सिद्धम्। **क्वचिन्न भवति**। बहुलाधिकारात् क्वचित् श्मस्य स्मस्य च म्हादेशोऽपि न भवति। यथा—**रश्मिः**। रश्मि+सि। ३४९ सू० मकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **रस्सी** इति सिद्धम्। **स्मरः**। स्मर+सि। मकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सरो** इति सिद्धम्। अत्र **बहुलाधिकारात्** ३४५ सू० श्म तथा स्म इत्येतयोः म्ह इत्यादेशो न जातः।

३४६—सूक्ष्मम्। सूक्ष्म+सि। ११८ सू० ऊकारस्य अकारः, ३४६ सू० संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सण्हं** इति सिद्धम्। **प्रश्नः**। प्रश्न+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, संयुक्तस्य ण्ह इत्यादेशः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **पण्हो** इति सिद्धम्। **शिश्नः**। शिश्न+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सिण्हो** इति सिद्धम्। **विष्णुः**। विष्णु+सि। संयुक्तस्य ण्ह इत्यादेशः, उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **विण्हू** इति सिद्धम्। **जिष्णुः**। जिष्णु+सि। संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **जिण्हू** इति सिद्धम्। **कृष्णः**। कृष्ण+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कण्हो** इति सिद्धम्। **उष्णीषम्**। उष्णीष+सि। संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **उण्हीसं** इति सिद्धम्। **ज्योत्स्ना**। ज्योत्स्ना+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, सेर्लोपे **जोण्हा** इति सिद्धम्। **स्नातम्**। स्नात+सि। संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **ण्हाओ** इति भवति। **प्रस्नुतः**। प्रस्नुत+सि। ३५० सू० रेफलोपे, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशे, तकारस्यलोपे, डिति परेऽन्त्य-स्वरादेः लोपे **पण्हुओ** इति सिद्धम्। **वह्निः**। वह्नि+सि। संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **वण्ही** इति सिद्धम्। **जह्नुः**। जह्नु+सि। संयुक्तस्य ण्ह इत्यादेशः, उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **जण्हू** इति सिद्धम्। **पूर्वाह्णः**। पूर्वाह्ण+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वं, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पुव्वण्हो** इति सिद्धम्। **अपराह्णः**। अपराह्ण+सि। २३१ सू० पकारस्य

वकारः, संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अवरण्हो** इति सिद्धम् । **श्लक्ष्णम्** । श्लक्ष्ण+सि। ३५० सू० लकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, सेर्मकारः: मकारस्यानुस्वारे **सण्हं** इति सिद्धम् । **तीक्ष्णम्** । तीक्ष्ण+सि। संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **तिण्हं** इति सिद्धम् । **विप्रकर्षे तु** । विप्रकर्षो विश्लेषः । श्लेषः—संयोगस्तस्याभावो विश्लेषः । संयुक्त-वर्णस्य मध्ये कस्यचिद् वर्णस्यागमं कृत्वा तयोः पृथक्करणमित्यर्थः । विश्लेषे तु प्रस्तुत - सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति । यथा— **कृष्णः** । कृष्ण+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३८१ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वं अकारागमः, इकारागमश्च, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कसणो, कसिणो** इति सिद्धम । अत्र संयुक्तस्य विप्रकर्षात्—विश्लेषत्वात् ३४६ सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

३४७—**कह्लारम्** । कह्लार+सि । ३४७ सू० संयुक्तस्य 'ल्ह' इत्यादेशः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **कल्हारं** इति सिद्धम् । **प्रह्लादः** । प्रह्लाद+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, संयुक्तस्य 'ल्ह' इत्यादेशः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पल्हाओ** इति सिद्धम् ।

३४८—**उर्ध्वं स्थितानाम** । संयुक्त-वर्णद्वये यो वर्णः पूर्वमुच्चार्यते तस्य उर्ध्व-संज्ञा भवति । यथा—**भुक्तम्** । इत्यत्र क्तस्य मध्ये ककारः प्रथमोऽतः ककारस्य ऊर्ध्वसंज्ञा अवगन्तव्या । **भुक्तम्** । भक्त+सि । ३४८ सू० ककारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **भुत्तं** इति सिद्धम् । **सिक्थम्** । सिक्थ+सि । ककारस्य लोपः, थकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सित्थं** इति सिद्धम् । **दुग्धम्** । दुग्ध+सि । ३४८ सू० गकारस्य लोपः, धकारस्य द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **दुद्धं** इति सिद्धम् । **मुग्धम्** । मुग्ध+सि । गकारस्य लोपः, धकारस्य द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मुद्धं** इति सिद्धम् । **षट्पदः** । षट्पद+सि । २६५ सू० आदि-वर्णस्य छकारः, ३४८ सू० टकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **छप्पओ** इति सिद्धम् । **कट्फलम्** । कटफल+सि । टकारस्य लोपः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **कप्फलं** इति सिद्धम् । **खड्गः** । खड्ग+सि । डकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **खग्गो** इति सिद्धम् । **षड्जः** । षडज+सि । २६० स० षकारस्य सकारः, डकारस्य लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सज्जो** इति सिद्धम । **उत्पलम्** । उत्पल+सि । तकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **उप्पलं** इति सिद्धम । **उत्पादः** । उत्पाद+सि । तकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० दकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **उप्पाओ** इति सिद्धम् । **मद्गुः** । मद्गु+सि । दकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**मग्गू** इति सिद्धम् । **मुद्गरः** । मुद्गर+सि । दकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, ११६ सू० संयोगे परे उकारस्य ओकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मोग्गरो** इति सिद्धम् । **सुप्तः** । सुप्त+सि । पकारस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सुत्तो** इति सिद्धम् । प्रयोग-दर्शनादत्र ११६ सू० उकारस्य ओकारो न जातः । **गुप्तः** । गुप्त+सि । पकारस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **गुत्तो** इति सिद्धम् । **श्लक्ष्णम्** । श्लक्ष्ण+सि । ३४८ सू० शकारस्य लोपः, संयुक्तस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **लण्हं** इति सिद्धम् । **निश्चलः** ।

निश्चल+सि। २२९ सू० नकारस्य णकारः, शकारस्य लोपः, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **णिच्चलो** इति सिद्धम्। **श्चोतति**। श्चुतिर् (श्चुत्) प्रश्रवणे। श्चुत्+ति। शकारस्य लोपः, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **चुअइ** इति सिद्धम्। **गोष्ठी**। गोष्ठी+सि। ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्लोपे **गोट्ठी** इति सिद्धम्। **षष्ठः**। षष्ठ+सि। २६५ सू० आदेर्वर्णस्य छकारः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **छट्ठो** इति सिद्धम्। **निष्ठुरः**। निष्ठुर+सि। षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **निट्ठुरो** इति सिद्धम्। **स्खलितः**। स्खलित+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **खलिओ** इति सिद्धम्। **स्नेहः**। स्नेह+सि। सकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **नेहो** इति सिद्धम्। **दुॅखम्**। दुॅख+सि। ३४८ सू० जिह्वामूलीयस्य लोपः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य ककारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **दुक्खं** इति सिद्धम्। **अन्तॅपातः**। अन्तॅपात+सि। ३४८ सू० उपध्मानीयस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अन्तप्पाओ** इति सिद्धम्।

३४९—संयुक्तस्याधो वर्तमानानाम्। संयुक्त-वर्ण-द्वये यो वर्णः द्वितीयो भवति, प्रथम-वर्णानन्तरमुच्चार्यते तस्य वर्णस्य "अध" इति संज्ञा भवति। यथा—**युग्मम्**, इत्यत्र परवर्तित्वात् मकारोऽधोसंज्ञावान् बोध्यः। संयुक्तस्य अधोवर्तमानानां, संयुक्त-वर्ण-द्वये द्वितीयानामित्यर्थः। **युग्मम्**। युग्म+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, ३४९ सू० मकारस्य लोपः, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **जुग्गं** इति सिद्धम्। **रश्मिः**। रश्मि+सि। मकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **रस्सी** इति सिद्धम्। **स्मरः**। स्मर+सि। मकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सरो** इति सिद्धम्। **स्मेरम्**। स्मेर+सि। मकारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सेरं** इति सिद्धम्। **नग्नः**। नग्न+सि। ३४९ सू० नकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **नग्गो** इति सिद्धम्। **लग्नः**। लग्न+सि। **लग्गो, नग्गो** वत् साध्यम्। **श्यामा**। श्यामा+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्लोपे **सामा** इति सिद्धम्। **कुड्यम्**। कुड्य+सि। यकारस्य लोपः, डकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **कुड्डं** इति सिद्धम्। **व्याधः**। व्याध+सि। यकारस्य लोपः, १८७ सू० धकारस्य हकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वाहो** इति सिद्धम्।

३५०—ऊर्ध्वमधः स्थितानाम्। संयुक्तवर्णे यो वर्णः प्रथमो भवति, स उर्ध्व-संज्ञावान्, यश्च द्वितीयस्तस्याधः संज्ञा भवति। लकारादयोऽधः-स्थिताः भवेयुरथवोर्ध्वस्थिताः, तेषां लोपो जायते। **ऊर्ध्वमिति**। ऊर्ध्व-स्थितानां लकारादीनामुदाहरणानि प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा –**उल्का**। उल्का+सि। ३५० सू० लकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **उक्का** इति सिद्धम्। **वल्कलम्**। वल्कल+सि। लकारस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **वक्कलं** इतिसिद्धम्। **शब्दः**। शब्द+सि। बकारस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सद्दो** इति सिद्धम्। **अब्दः**। अब्द+सि। बकारस्य लोपः, दकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अद्दो**

इति सिद्धम् । **लुब्धकः** । लुब्धक+सि । ११६ सू० संयोगे परे उकारस्य ओकारः, बकारस्य लोपः, सेर्डो, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **लोद्धओ** इति सिद्धम् । **अर्कः** । अर्क+सि । रेफस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अक्को** इति सिद्धम् । **वर्गः** । वर्ग+सि । रेफस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वग्गो** इति सिद्धम् । **अधरिति** । अधःस्थितानां लकारादीनां व्यञ्जनानामुदाहरणानि निरूपयति वृत्तिकारः । यथा—**श्लक्ष्णम्** । श्लक्ष्ण+सि । लकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ३४६ सू० संयुक्तस्य ण्ह इत्यादेशः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **सण्हं** इति सिद्धम् । **विक्लवः** विक्लव+सि । लकारस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **विक्कवो** इति सिद्धम् । **पक्वम्** । पक्व+सि । प्रस्तुतसूत्रे बकारस्योल्लेखः, परन्त्वत्र वकारो विद्यतेऽतोऽनेन सूत्रेण बकारस्य लोपो भविष्यति न वेति प्रश्नः । प्रश्नैतस्य समाधानमिदं यद्—"**बवयोरभेदः**" इति सिद्धान्तः । तेन एकस्य ग्रहणे अपरोऽपि गृह्यतेऽतः पक्वादिशब्देषु प्रस्तुतसूत्रेण वकारस्यापि लोपो जायते । फलतः प्रस्तुतसूत्रेण वकारस्य लोपे, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वे, ४७ सू० आदेरकारस्य वैकल्पिके इकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **पिक्कं पक्कं** इति सिद्धम् । **ध्वस्तः** । ध्वस्त+सि । वकारस्य लोपः, ३१६ सू० स्तस्य थकारः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० थकारस्य तकारः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **धत्थो** इति सिद्धम् । **चक्रम्** । चक्र+सि । रेफस्य लोपे, ककारस्य द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **चक्कं** इति सिद्धम् । **ग्रहः** । ग्रह+सि । रेफस्य लोपे सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **गहो** इति सिद्धम् । **रात्रिः** । रात्रि+सि । रेफस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे, संयोगे परे ह्रस्वे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, ११।३७। सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **रत्ती** इति सिद्धम् । **अत्र द्व इत्यादिसंयुक्तानाम्** । द्व इत्यादिषु संयुक्त-वर्णेषु ३४८ सूत्रेण दकारस्य लोप-प्राप्तिर्विद्यते, तथा ३५० सूत्रेण वकारस्य लोप-प्राप्तिर्वर्तते, एवमनेक-सूत्राणां यत्र युगपत्-प्राप्तिर्भवेत्तत्र प्रथमं कस्य सूत्रस्य कार्यं करणीयमिति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारो यद् यत्र लोपविधायकस्य सूत्रद्वयस्य प्राप्तिर्भवेत्तत्र यथादर्शनं-प्रयोगानुसारं सूत्रस्य प्रवृत्तिः करणीया, यादृशः प्रयोगो भवेत्तादृशं कार्यं विधेयमिति भावः । **क्वचिदूर्ध्वम्** । यत्र वर्णद्वयस्य युगपद् लोप-प्राप्तिर्भवेत्तत्र प्रयोगमनुसृत्य क्वचिद् ऊर्ध्वस्थितस्य वर्णस्य लोपो भवति । यथा **उद्विग्नः** । उद्विग्न+सि । अत्र ३४८ सू० दकारस्य तथा ३५० सू० वकारस्य लोपप्राप्तौ **प्रयोगदर्शनात्** ३४८ सू० दकारस्य लोपे, वकारस्य द्वित्वे, ३४९ सू० नकारस्य लोपे, गकारस्य द्वित्वे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **उव्विग्गो** इति भवति । एवमेव अग्रिमेषु दशप्रयोगेषु यथादर्शनं लोपो भवति । ते चेमे प्रयोगाः—**द्विगुणः** । द्विगुण+सि । ३४८ सू० दकारस्य लोपः, १७७ सू० गकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वि-उणो** इतिसिद्धम् । **द्वितीयः** । द्वितीय+सि ३४९ सू० दकारस्य लोपः, १११८ सू० वर्ण-व्यत्ययत्वाद् वकारस्य बकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपः, अज्झीने परेण संयोज्ये, १७७ सू० यकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **बीओ** इति सिद्धम् । **कल्मषम्** । कल्मष+सि । ३५० सू० लकारस्य लोपः, मकारस्य द्वित्वं, २६० सू० षकारस्य सकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **कम्मसं** इति सिद्धम् । **सर्वम्** । सर्व+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, वकारस्य द्वित्वे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सव्वं** इति सिद्धम् । **शुल्बम्** । शुल्ब+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, ३५० सू० लकारस्य लोपः, ३६० सू० बकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सुब्बं** इति सिद्धम् । **क्वचित्त्वधः** । यत्र युगपत् वर्णद्वयस्य लोप-प्राप्तिर्भवति

तत्र क्वचिद् अधःस्थितस्य वर्णस्य लोपो दृश्यते। यथा—**काव्यम्**। काव्य+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, वकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **कव्वं** इति सिद्धम्। **कुल्या**। कुल्या+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, लकारस्य द्वित्व, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **कुल्ला** इति सिद्धम्। **माल्यम्**। माल्य+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, लकारस्य द्वित्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मल्लं** इति सिद्धम्। **द्विपः**। द्विप+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपः, १७७ सू० पकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दिओ** इति सिद्धम्। **द्विजातिः**। द्विजाति+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपः, ९४ सू० द्विशब्दे इकारस्य उकारः, १७७ सू० जकारस्य तकारस्य च लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **दुआई** इति सिद्धम्। एषु प्रयोगेषु क्वचिद् ३४८ सूत्रस्य यथादर्शनं प्रवृत्तिः, क्वचिद् ३४९ सूत्रस्य एवं क्वचिद् ३५० सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति। **क्वचित्पर्यायेण**। पर्यायः-क्रमशः। यत्र युगपत् वर्णद्वयस्य लोप-प्राप्तिर्भवेत्तत्र कदाचित्प्रथमस्य लोपो भवति, कदाचिच्च द्वितीयस्य, अयमेव पर्यायो बोध्यः। यथा—**द्वारम्**। द्वार+सि। ३४८ सू० दकारस्य लोपः, १११८ सू० वर्णव्यत्यये जाते वकारस्य बकारे, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **बारं**। यत्र वकारस्य लोपस्तत्र **दारं** इति भवति। अत्र पर्यायेण दकारस्य वकारस्य च लोपो जातः। **उद्विग्नः**। उद्विग्न+सि। ३४८ सू० दकारस्य लोपः, वकारस्य द्वित्वं, ३४९ सू० नकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **उव्विग्गो**। दकारलोपाभावे—३४८ सू० गकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे **उव्विण्णो** इति सिद्धम्। **अवन्द्र इति किम्**। वन्द्रशब्दं परित्यज्य शेषशब्दानां लकार-बकार-रेफानां संयुक्त-वर्णानामूर्ध्वाधःस्थितानां लोपो भवति, इति कथनाद् वन्द्र-शब्दस्य रेफस्य लोपो न भवितुं शक्नोति। यथा—**वन्द्रम्**। वन्द्र+सि। ३५० सूत्रे "**अवन्द्रे**" इति पाठादत्र रेफस्य लोपाभावे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **वन्द्रं** इति सिद्धम्। संस्कृतभाषायां यथाऽयं शब्दः प्रयुज्यते तथैव प्राकृतभाषायामप्यस्य प्रयोगो जायते। अस्मिन् शब्दे उत्तरेण-अग्रिमेण ३५१ सूत्रेण रेफलोपविकल्पोऽपि न भवति। **निषेधसामर्थ्यात्**। रेफलोपस्य यो निषेधो विहितस्तस्य विधान-सामर्थ्यात्-निषेधबलादित्यर्थः।

३५१—**चन्द्रः**। चन्द्र+सि। ३५१ सू० रेफस्य वैकल्पिको लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **चन्दो चन्द्रो** इति सिद्धम्। **रुद्रः**। रुद्र+सि। रेफस्य वैकल्पिको लोपः, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **रुद्दो रुद्रो** इति सिद्धम्। **भद्रम्**। भद्र+सि। रेफस्य वैकल्पिको लोपः, दकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भद्दो भद्रो** इति सिद्धम्। **समुद्रः**। समुद्र+सि। रेफस्य वैकल्पिको लोपः, दकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **समुद्दो समुद्रो** इति सिद्धम्। **ह्रदशब्दस्य स्थितिपरिवृत्तौ**। स्थितेः परिवृत्तिः—परिवर्तनं, स्थिति-परिवृत्तिः=व्यत्ययः। ३९१ सूत्रेण ह्रदशब्दे हकारदकारयोः व्यत्ययो भवति, हकारस्य स्थाने दकारः, दकारस्य स्थाने हकार इति व्यत्ययः। अयमेव व्यत्ययो वृत्तिकारेण स्थितिपरिवृत्तिशब्देन संसूचितः। अयं भावः—ह्रद-शब्दे हकारदकारयोः व्यत्यये जाते सति तस्य **द्रहो दहो** एते रूपे भवतः। अत्र प्रस्तुतसूत्रेण न किमपि कार्यं कृतम्। साधनिका त्वित्थम्—**ह्रदः**। ह्रद+सि। ३९१ सू० हकारदकारयोः व्यत्ययः, रेफस्य वैकल्पिको लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दहो द्रहो** इति सिद्धम्। **केचिद् रलोपं**। केषांचित् वैयाकरणानां मते द्रहशब्दस्य रेफलोपो न भवति। **कश्चिच्च** वैयाकरणो द्रहशब्दमपि ह्रद-शब्दवत् संस्कृतभाषा-शब्दो मन्यते। **वोद्रहादयः**। वोद्रह आदयः शब्दाः

तरुणपुरुषादिवाचकाः नित्यं रेफसंयुक्ताः, देश्याः-देशविशेषप्रसिद्धाः=प्रकृतिप्रत्ययविभागरहिताश्च सन्ति। अतः शब्दानामेषां ३५१सू० वैकल्पिकोऽपि रेफलोपे न भवति। यथा—**शिक्षन्ताम् तरुण्यः**। **शिक्षन्ताम्**। शिक्ष् शिक्षायाम्। शिक्ष्+अन्ताम्। २६० सू० शकारस्य सकारः, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ६६५ सू० 'अन्ताम्' इत्यस्य 'न्तु' इत्यादेशे **सिक्खन्तु** इति सिद्धम्। **तरुण्यः**। तरुणी+जस्। अत्र तरुण्यर्थके देश्ये वोद्रही-शब्दे प्रयुक्ते **वोद्रही+जस्,** इति जाते, ५१६ सू० जसः ओकारादेशे **वोद्रहीओ** इति सिद्धम्। **तरुणह्रदे पतिता**। तरुणश्चासौ ह्रदः, तरुणह्रदः, तस्मिन्। **तरुणह्रदे**। तरुणह्रद+ङि इति जाते। अत्र तरुणार्थको देश्यः वोद्रह-शब्दः प्रयुज्यते ततः—**वोद्रह-द्रह+ङि** इति स्थिते, ५०० सू० ङेः 'म्मि' इत्यादेशे **वोद्रह-द्रहम्मि** इति सिद्धम्। **पतिता**। पतिता+सि। ८९० सू० तकारस्य डकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**पडिआ** इति सिद्धम्।

३५२—धात्री। धात्री+सि। ३५२ सू० रेफस्य वैकल्पिको लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्लोपे **धत्ती** इति भवति। **ह्रस्वात् प्रागेव**। यत्र ह्रस्वकरणात् पूर्वमेव रेफस्य लोपो जातस्तत्र ३६३ सू० तकारस्य द्वित्व-निषेधः, १७७ सू० तकारस्य लोपे **धाई**। यत्र रेफस्यैव लोपो न जातस्तत्र ३४८ सू० तकारस्य लोपे **धारी** इति भवति।

३५३—तीक्ष्णम्। तीक्ष्ण+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५३ सू० णकारस्य वैकल्पिको लोपः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **तिक्खं**। यत्र—णकारस्य लोपो न जातस्तत्र—३४६ सू० 'क्ष्ण' इत्यस्य 'ण्ह' इत्यादेशे **तिण्हं** इति भवति।

३५४—ज्ञानम्। ज्ञान+सि। ३५४ सू० ञकारस्य वैकल्पिको लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **जाणं**। लोपाभावे—३१३ सू० ज्ञस्य णकारे **णाणं** इति भवति। **सर्वज्ञः**। सर्वज्ञ+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वं, ञकारस्य वैकल्पिको लोपः, जकारस्य द्वित्वं, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सव्वज्जो**। लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, ५६ सू० ज्ञ-स्थस्य अकारस्य उकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सव्वण्णू** इति सिद्धम्। **अल्पज्ञः**। अल्पज्ञ+सि। ३५० सू० लकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वं, ञकारस्य वैकल्पिको लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अप्पज्जो,** लोपाभावे ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, ज्ञ-स्थस्य अकारस्य उकारः, उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**अप्पण्णू** इति सिद्धम्। यदि अस्य छाया **आत्मज्ञः** इति भवेत्तदा—**आत्मज्ञ**+सि। इति स्थिते ३२२ सू० त्मस्य पकारः, पकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः ञकारस्य वैकल्पिको लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अप्पज्जो** लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, णकारस्थाकारस्य उकारः, उकारस्य ऊकारः, सेर्लोपे **अप्पण्णू** इति भवति। **दैवज्ञः**। दैवज्ञ+सि। १५१ सू० ऐकारस्य 'अइ' इत्यादेशः, ञकारस्य वैकल्पिको लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दइवज्जो**, लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, णकारस्थस्याकारस्य उकारः, उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **दइवण्णो** इति सिद्धम्। **इङ्गितज्ञः**। (इङ्गितं जानाति इति इङ्गितज्ञः) इङ्गितज्ञ+सि। इत्यत्र १७७ सू० तकारस्य लोपः, ञकारस्य

वैकल्पिको लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **इङ्गिअज्जो**। लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, णकारस्थस्य अकारस्य उकारः, उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **इङ्गिअण्णू** इति सिद्धम्। **मनोज्ञः**। मनोज्ञ+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, ञकारस्य वैकल्पिकः लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मणोज्जं**। लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वे, **मणोण्णं** इति सिद्धम्। अत्र प्रयोगदर्शनात् ८४ सूत्रेण ह्रस्वो न जातः। **अभिज्ञः**। अभिज्ञ+सि। १८७ सू० भकारस्य हकारः, ञकारस्य वैकल्पिकः लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अहिज्जो**, लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, अकारस्य उकारः, उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **अहिण्णू** इति सिद्धम्। **प्रज्ञा**। प्रज्ञा+सि। रेफस्य लोपः, ञकारस्य वैकल्पिकः लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **पज्जा**, लोपाभावे ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वे **पण्णा** इति सिद्धम्। **आज्ञा**। आज्ञा+सि। ञकारस्य वैकल्पिको लोपः, जकारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **अज्जा**, लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, ३६३ सू० णकारस्य द्वित्व-निषेधे **आणा** इति सिद्धम्। **संज्ञा**। संज्ञा+सि। ञकारस्य वैकल्पिकः लोपः, ३६३ सू० द्वित्व—निषेधः, लोपाभावे—ज्ञस्य णकारः, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्यः, सेर्लोपे **संजा सण्णा** इति सिद्धम्। **क्वचिन्न भवति**। बहुलाधिकारात् क्वचित् ञकारस्य लोपो न भवति। यथा—**विज्ञानम्**। विज्ञान+सि। **बहुलाधिकारादत्र** ३५४ सू० ञकारस्य लोपो न जातः किन्तु ज्ञस्य णकारः, णकारस्य द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे—**विण्णाणं** इति सिद्धम्।

३५५—मध्याह्नः। मध्याह्न+सि। २९७ सू० ध्यस्य झकारः, ३६० सूत्रेण झकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारः, ३५५ सू० हकारस्य वैकल्पिको लोपः, नकारस्य द्वित्वं, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मज्झन्नो**। लोपाभावे—३४६ सू० 'ण्ह' इत्यादेशे **मज्झण्हो** इति सिद्धम्। **पृथग्योगाद्वेति**। ३५५ सूत्रेण ३५६ सूत्रेण च हकारस्य लोपः क्रियते। द्वयोः सूत्रयोरेव कार्यमेकमेवास्ति। अत्र प्रश्नो भवति यद् यदा एकेनैव "**मध्याह्न-दशार्हयोः ह्रः**" अनेन सूत्रेण कार्य-सिद्धिरासीत्तर्हि सूत्रद्वयरचनायाः किं प्रयोजनम्? उत्तरयति वृत्तकारो यत् **पृथग्योगाद्वेति-निवृत्तम्**। पृथग्-योगात्=सूत्रद्वयकरणात् वा इति पदस्यात्रानुवृत्तेर्निवृत्तिर्जाता। अयं भावः—३५१ सूत्रतः वा-पदस्यात्रानुवृत्तिरायाति परन्त्वनेन पार्थक्येन-सूत्रद्वयविधानेन ज्ञाप्यते यदत्र ३५६ सूत्रे वापदस्यानुवृत्तेः ग्रहणं न भवति।

३५६—दशार्हः। दशार्ह+सि। ३५६ सू० हकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **दसारो** इति भवति।

३५७—श्मश्रुः। श्मश्रु+सि। ३५७ सू० आदि-वर्णस्य लोपः, ४३ सू० आदेः स्वरस्य दीर्घे, ३५० सू० रेफस्य लोपः, शकारस्य सकारः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**मासू**। यत्र २६ सू० आदेःस्वरस्य अनुस्वारागमस्तत्र ७० सू० आकारस्य अकारे **मंसू**। यत्र प्रयोगदर्शनाद् अकार-दीर्घः, अनुस्वारश्च न जातस्तत्र ३६० सू० सकारस्य द्वित्वे **मस्सू** इति भवति। **श्मशानम्**। श्मशान+सि। ३५७ सू० आदिवर्णस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मसाणं** इति सिद्धम्। **आर्षे**। आर्ष-प्राकृते तु श्मशान-शब्दस्य **सीआणं, सुसाणं,** इत्येतद् रूपद्वयमपि भवति। यथा—**श्मशानम्**। श्मशान+सि। ३४९ सू० मकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, आर्षत्वाद् आदिम-अकारस्य ईकारे, शकारस्य च लोपे, २२८ सू० नकारस्य

णकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **सोश्राणं** यत्र आर्षत्वाद् आद्य-अकारस्य उकारः, २६० सू० द्वितीय-शकारस्य सकारस्तत्र **सुसाणं** इति भवति ।

३५८—हरिश्चन्द्रः । हरिश्चन्द्र+सि । ३५८ सू० 'श्च्' इत्यस्य लोपः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **हरिश्रन्दो** इति सिद्धम् ।

३५९—रात्रिः । रात्रि+सि । ३५९ सू० संयुक्तस्य वैकल्पिको लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **राई** । लोपाभावे—३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **रत्ती** इति भवति ।

★ न्हादि संयुक्तव्यञ्जनों को होने वाली न्ध आदि आदेशविधि ★

न्ह और स्म आदि संयुक्तव्यंजनों के स्थान में न्ध और प आदि जो आदेश होते हैं अब सूत्रकार उनका निर्देश करते हैं :—

३२१— चिन्ह शब्द के संयुक्त वर्ण को विकल्प से 'न्ध' यह आदेश होता है। चिन्ह शब्द के 'न्ह' को ३४६ सूत्र से 'ण्ह' इस आदेश की प्राप्ति थी, किन्तु इस सूत्र ने उसके स्थान में 'न्ध' इसका विधान कर दिया, अतः यह सूत्र 'न्ह' के स्थान में होने वाले 'ण्ह' इस आदेश का अपवाद माना गया है। किन्तु जहां इस सूत्र की प्राप्ति नहीं होगी, वहां 'ण्ह' यह आदेश भी हो जायगा । जैसे - **चिन्हम** =चिन्धं, इन्धं, चिण्हं (निशान) यहां 'न्ह' को वैकल्पिक 'न्ध' यह आदेश किया गया है !

३२२—भस्मन् और **आत्मन्** शब्द के संयुक्त वर्ण को विकल्प से पकार होता है। जैसे—१—**भस्मा**=भप्पो भस्सो (राख, ग्रहविशेष), २—**आत्मा**=अप्पा, अप्पाणो, पकार के अभाव-पक्ष में- अत्ता, (उपयोगस्वरूप चेतन पदार्थ) यहां संयुक्त वर्ण को वैकल्पिक पकार किया गया है।

३२३— ड्म और **क्म** इन संयुक्त व्यंजनों के स्थान में पकार होता है। जैसे—१—**कुड्मलम्**=कुम्पलं (कली), २—**रुक्मिणी**=रुप्पिणी, (वासुदेव कृष्ण की पत्नी, नामविशेष) यहां संयुक्त वर्ण को पकारादेश किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर संयुक्त वर्ण को 'च्म' यह आदेश भी हो जाता है। जैसे - **रुक्मी**=रुच्मी, रुप्पी (राजा भीष्मक के बड़े लड़के का नाम)

३२४— ष्प, स्प इन संयुक्त वर्णों के स्थान में फकारादेश होता है। जैसे— १—**पुष्पम्**=पुप्फं (फूल), २—**शष्पम्**=सप्फं (बालतृण, नया घास), ३—**निष्पेषः**=निष्फेसो (पीसना, संघर्ष), ४—**निष्पावः**=निप्फावो (धान्यविशेष), ५ - **स्पन्दनम्**=फन्दणं (थोड़ा हिलना), ६—**प्रतिस्पर्धिन्**=पाडिप्फद्धी (प्रतिस्पर्धा करने वाला), यहां पर ष्प आदि संयुक्त वर्णों को फकारादेश किया गया है। **बहुलाधिकार**— से कहीं पर फकारादेश विकल्प से भी होता है। जैसे—**बृहस्पतिः**=बुहप्फई, बुहप्पई (देवों के गुरु) यहां पर फकारादेश वैकल्पिक किया गया है। कहीं पर फकारादेश होता ही नहीं है। जैसे—१— **नि:प्रभः**=निप्पहो (निस्तेज, कान्तिहीन), २—**निष्पुंसनम्**=णिप्पुंसणं (पौंछना, मांजना), ३— **परस्परम्**=परोप्परं (आपस में) यहां पर 'ष्प' इस संयुक्त वर्ण को प्रस्तुत सूत्र से फकारादेश हो जाना चाहिए था, किन्तु बहुलाधिकार के कारण नहीं हो सका।

३२५—भीष्म शब्द के 'ष्म' को फकार होता है। जैसे—**भीष्मः**=भिप्फो (भीष्मपितामह, भयंकर, कठोर), यहां 'ष्म' को फकार किया गया है।

३२६—श्लेष्म शब्द के 'ष्म' को विकल्प से फकार होता है। जैसे—१—**श्लेष्मा**=सेफो,

सिलिम्हो (कफ) यहां पर 'ष्म' को वैकल्पिक फकार किया गया है।

३२७—**ताम्र और आम्र** के संयुक्त वर्ण को मकार से युक्त बकार (म्ब) होता है। जैसे—१—**ताम्रम्**=तम्बं (तांबा), २—**आम्रम्**=अम्बं (आम्रफल), यहां म्र के स्थान में 'म्ब' यह आदेश किया गया है। **देश्य-भाषा में ताम्र को तम्बिर और आम्र को अम्बिर** कहा जाता है।

३२८—**ह्व** इस संयुक्त वर्ण को विकल्प से भकार होता है। जैसे—**जिह्वा**=जिब्भा, जीहा (रसना) यहां पर ह्व को विकल्प से भकारादेश किया गया है।

३२९—**विह्वल** शब्द के ह्व को भकार विकल्प से होता है और भकार के संनियोग-सामीप्य में 'वि' के वकार को भी विकल्प से भकार किया जाता है। जैसे—**विह्वलः**=भिब्भलो, विब्भलो, विहलो (व्याकुल) यहां पर ह्व को विकल्प से भकार और 'वि' के वकार को भी विकल्प से भकार किया गया है।

३३०—**ऊर्ध्व** शब्द के संयुक्त वर्ण को विकल्प से भकारादेश होता है। जैसे—**ऊर्ध्वं**=उब्भं, उद्धं (ऊंचा) यहां पर ध्व को विकल्प से भकार किया गया है।

३३१—**कश्मीर** शब्द के संयुक्त वर्ण को 'म्भ' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**कश्मीराः**=कम्भारा, कम्हारा (कश्मीर के लोग) यहां पर 'श्म' को वैकल्पिक 'म्भ' यह आदेश किया गया है।

३३२—न्म इस संयुक्त वर्ण को मकारादेश होता है। ३४९ सूत्र से अधो—रूप से स्थित अर्थात् संयुक्त वर्ण में दूसरे स्थान में विद्यमान मकार, नकार और यकार का लोप होता है। जैसे—जन्म शब्द में (संयुक्त वर्णों में दूसरा वर्ण होने से) मकार अधोवर्ती है, अतः उस सूत्र से इस मकार का लोप होजाना चाहिए था, किन्तु इस (३३२) सूत्र ने उसका निषेध करके 'न्म' इस समस्त को ही मकारादेश कर दिया, इसी कारण इस सूत्र को अधो-लोप का अपवाद कहा गया है। जो अधो-लोप का अपवाद-बाधक हो वह अधोलोपापवाद कहलाता है। इस सूत्र के उदाहरण इस प्रकार हैं—१—**जन्मन्**=जम्मो (पैदायश, जन्म), २—**मन्मथः**=वम्महो (कामदेव), ३—**मन्मनम्**=मम्मणं (अव्यक्त वचन), यहां पर 'न्म' को मकारादेश किया गया है।

३३३—'ग्म' इस संयुक्त व्यंजन के स्थान में विकल्प से मकार होता है। जैसे—१—**युग्मम्**=जुम्मं, जुग्गं (युगल, जोड़ा), २—**तिग्मम्**=तिम्मं, तिग्गं (तीक्ष्ण) यहां पर 'ग्म' को वैकल्पिक मकारादेश किया गया है।

३३४—**ब्रह्मचर्य, तूर्य, सौन्दर्य और शौण्डीर्य** इन शब्दों के 'र्य' को रेफादेश होता है। जैसे—१—**ब्रह्मचर्यम्**=बम्हचेरं, यदि ३७८ सूत्र द्वारा, संयुक्त यकार से पूर्व इकारागम कर दिया जाए तो **बम्हचरिअं** (ब्रह्मचर्य, मैथुन का निरोध), २—**तूर्यम्**=तूरं (वाद्यविशेष), ३—**सौन्दर्यम्**=सुन्देरं (सुन्दरता), ४—**शौण्डीर्यम्**=सोण्डीरं (पराक्रम, शूरता, गर्व) यहां पर 'र्य' के स्थान पर रेफादेश किया गया है। यहां पर २९५ सूत्र से जकार की प्राप्ति थी किन्तु इस सूत्र ने उस का निषेध करके रेफ का विधान कर दिया इस लिए इस सूत्र को जकार का अपवाद सूत्र समझना चाहिए।

३३५—**धैर्य** शब्द के 'र्य' को विकल्प से रेफादेश होता है। जैसे—**धैर्यम्**=धीरं, धिज्जं (धीरता), यहां 'र्य' के स्थान में वैकल्पिक रेफ किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि **सूरो और सुज्जो** ये शब्द एक ही प्रकृति के हैं या इन की प्रकृति पृथक्-पृथक् है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए

वृत्तिकार फरमाते हैं कि **सूरो**, **सुज्जो** इन शब्दों की प्रकृति एक नहीं है। **सूर से सूरो** (सूर्य) तथा **सूर्य से सुज्जो** (सूर्य) यह रूप बनता है।

३३६—**पर्यन्त** शब्द के पकारस्थ अकार को एकार हो जाने पर 'र्य' को रेफादेश होता है। जैसे— **पर्यन्तः**=पेरन्तो, पज्जन्तो (तक)। ५८ सूत्र से **पर्यन्त** शब्द के आदिम अकार को विकल्प से एकार किया जाता है। जहां अकार को एकार हो गया, वहां **पेरन्तो**, जहां पर नहीं हुआ, वहां पर **पज्जन्तो**, यह रूप बनता है।

३३७—**आश्चर्य** शब्द के 'श्च' में विद्यमान अकार को एकार होने पर 'र्य' के स्थान में रेफादेश होता है। जैसे—**आश्चर्यम्**=अच्छेरं (आश्चर्य, विस्मय) यहां 'र्य' को रेफ हो गया है। जहां 'श्च' के अकार को एकारादेश नहीं होता, वहां—**आश्चर्यम्**=अच्छरिअं, यह रूप बनता है।

३३८—**आश्चर्य** शब्द के अकार से परे 'र्य' के स्थान में **रिअ**, **अर**, **रिज्ज** और **रीअ** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—**आश्चर्यम्**=अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं (विस्मय) जहां 'र्य' अकार से परवर्ती नहीं होता, वहां पर—**आश्चर्यम्**=अच्छेरं, यह रूप बनता है। ५८ सूत्र से आश्चर्य के आदिम अकार को विकल्प से एकार होता है। इसी विकल्प के कारण उक्त पांच रूपों की निष्पत्ति होती है।

३३९—**पर्यस्त**, **पर्याण**, **सौकुमार्य** इन शब्दों के र्य को ल्ल यह आदेश होता है। जैसे—१—**पर्यस्तम्**=पल्लट्टं, पल्लत्थं (बिखरा हुआ, घिरा हुआ), २—**पर्याणं**=पल्लाणं (घोडे आदि का साजो सामान), ३—**सौकुमार्यम्**=सोअमल्लं (सुकुमारता) यहां पर र्य के स्थान में ल्ल यह आदेश किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि **पल्लङ्को** इस शब्द में जो द्वित्व लकार है, क्या इस की सिद्धि प्रस्तुत सूत्र से ही की गई है? उत्तर में निवेदन है कि **पल्लङ्को** (पलंग) यह रूप तो **पल्यङ्कः**=शब्द का **३४९** सूत्र से यकार का लोप तथा ३६० सूत्र से लकार को द्वित्व करने पर बनता है। प्रस्तुत सूत्र ने यहां कोई कार्य नहीं किया। यदि यहाँ पर ३७८ सूत्र द्वारा संयुक्त यकार से पूर्व इकार का आगम कर दिया जाए तो "**पलिअङ्को**" यह रूप भी बन जाता है।

३४०—**बृहस्पति** और **वनस्पति** के संयुक्त वर्ण को विकल्प से सकारादेश होता है। जैसे—१—**बृहस्पतिः**=बहस्सई, बहप्फई. भयस्सई भयप्फई (देवताओं के गुरु, ग्रहविशेष), २—**वनस्पतिः**=वणस्सई, वणप्फई (सब्ज़ी) यहां पर संयुक्त वर्ण 'स्प' को वैकल्पिक सकारादेश किया गया है।

३४१—यदि **वाष्प** शब्द आंसू का बोधक हो तो उसके संयुक्त वर्ण को हकारादेश होता है। जैसे—१—**वाष्पः**=वाहो (नेत्रों का जल, आंसू) जहाँ वाष्प शब्द आंसुओं का बोधक नहीं होता वहां पर तो—**वप्फो** (भाप) यह रूप बनता है।

३४२—**कार्षापण** शब्द के संयुक्त वर्ण को हकारादेश होता है। जैसे—**कार्षापणः**=काहावणो (सिक्का विशेष) यहाँ पर र्ष के स्थान में हकार किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि **कहावणो** यह शब्द कैसे बनता है? उत्तर में निवेदन है कि इस शब्द को बनाने के दो ढंग हैं। जैसे—**कार्षापणः**। यहां पर ८४ सूत्र से संयोग परे होने से आकार को अकार, तदनन्तर प्रस्तुत सूत्र से र्ष के स्थान में हकारादेश करके **कहावणो** यह रूप बनाया जाता है। अथवा—**कर्षापणः** इस शब्द से ही **कहावणो** यह शब्द बनाया जा सकता है।

३४३—**दुःख**, **दक्षिण** और **तीर्थ** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण को विकल्प से हकार होता है।

जैसे—**१—दुःखम्**=दुहं दुक्खं (कष्ट), २—**पर-दुःखे दुःखिताः विरलाः**=पर-दुक्खे दुक्खिया विरला (दूसरों के दुःख से दुःखित होने वाले विरले ही होते हैं), ३—**दक्षिणः**=दाहिणो, दक्खिणो (चतुर, दाहिना, दक्षिण दिशा का वासी), ४—**तीर्थम्**=तूहं तित्थं (तीर्थ, चतुर्विध संघ) यहां संयुक्त वर्ण को वैकल्पिक हकार किया गया है।

३४४—**कूष्माण्डी** शब्द के ष्मा इस अंश के स्थान में हकारादेश होता है। तथा ण्ड इस अंश को विकल्प से लकार किया जाता है। जैसे—**कूष्माण्डी**=कोहली कोहण्डी (एक प्रसिद्ध बेल, काशीफल, पेठा) यहां पर ष्मा को ह तथा ण्ड इस अंश को ल यह आदेश किया गया है।

३४५—**पक्ष्म** शब्द के संयुक्त वर्ण को, तथा **श्म, ष्म, स्म और ह्म** इन संयुक्त वर्णों को मकाराक्रान्त (मकार से युक्त) हकार होता है। जैसे—**१—पक्ष्माणि**=पम्हाइं (आँखों के बाल, भौंह), २—**पक्ष्मललोचना**=पम्हल—लोअणा (जिस नारी के लोचन भौंह वाले हैं), **श्म के उदाहरण—१—कुश्मानः**=कुम्हाणो (देशविशेष), २ **कश्मीराः**=कम्हारा (कश्मीर के लोग), **ष्म के उदाहरण—१—ग्रीष्मः**=गिम्हो (ग्रीष्म-ऋतु, गरमी के दिन), २—**ऊष्मा**=उम्हा (भाप, ऊष्म वर्ण, गरमी), **स्म के उदाहरण**- १—**अस्मादृशः**=अम्हारिसो (हमारे जैसा), २—**विस्मयः**=विम्हओ (आश्चर्य) **ह्म के उदाहरण—१—ब्रह्मा**=बम्हा (ब्रह्मा), **२—सुह्माः**=सुम्हा (एक जाति के लोग), ३—**ब्राह्मणः**= बम्हणो (द्विज), ४—**ब्रह्मचर्यम्**=बम्हचेरं (मैथुन से निवृत्ति) आदि शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से क्ष्म आदि संयुक्त वर्णों के स्थान में 'म्ह' यह आदेश किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर ह्म और ष्म के स्थान पर 'म्भ' यह आदेश भी देखने में आता है। जैसे—**१—ब्राह्मणः**=बम्भणो, २—**ब्रह्मचर्यम्**=बम्भचेरं, ३—**श्लेष्मा**=सिम्भो (बलगम, कफ) यहां पर 'म्भ' यह आदेश किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर श्म और स्म के स्थान में कोई आदेश नहीं भी होता। जैसे—**१—रश्मिः**= रस्सी (किरण), २—**स्मरः**=सरो (स्मरणशक्ति, कामदेव, प्रेम), यहां प्रस्तुत सूत्र से कोई भी कार्य नहीं किया गया।

३४६—**सूक्ष्म** शब्द के संयुक्त वर्ण को तथा **श्न, ष्ण, स्न, ह्न, ह्ण** और **क्ष्ण** इन संयुक्त वर्णों के स्थान में णकाराक्रान्त हकार 'ण्ह' यह आदेश होता है। जैसे—**१—सूक्ष्मम्**=सण्हं (बारीक), **श्न के उदाहरण - १ - प्रश्नः**=पण्हो (सवाल), २—**शिश्नम्**=सिण्हो (जननेन्द्रिय), **ष्ण के उदाहरण —१—विष्णुः**=विण्हू (व्यक्ति-विशेष का नाम, एक स्मृतिकार जिन्होंने विष्णुस्मृति की रचना की, वैदिक परम्परा के सर्व-प्रधान देव, जो जगन्निर्माता माने जाते हैं), २—**जिष्णुः**=जिण्हू (जीतने वाला, विजयी, विष्णु, सूर्य, इन्द्र), ३—**कृष्णः**=कण्हो (वसुदेव के पुत्र, वासुदेव), ४—**उष्णीषम्**= उण्हीसं (पगड़ी), **स्न के उदाहरण—१- ज्योत्स्ना**=जोण्हा (प्रकाश, चान्दनी), २—**स्नातः**=ण्हाओ (जिसने स्नान कर लिया है), ३—**प्रस्नुतः**=पण्हुओ (झरा हुआ, जिसने झरने को प्रारंभ किया हो), **ह्न के उदाहरण—१—वन्हिः**=वण्ही (आग), २—**जन्हुः**=जण्हू (भरतवंशीय एक राजा), **ह्ण के उदाहरण—१—पूर्वाह्णः**=पुव्वण्हो (दिन का पहला भाग), २—**अपराह्णः**=अवरण्हो (दिन का तीसरा पहर), **क्ष्ण के उदाहरण—१—श्लक्ष्णम्**=सण्हं (कोमल, चमकदार), २—**तीक्ष्णम्**=तिण्हं (तेज) यहां क्ष्म आदि संयुक्त वर्णों के स्थान में 'ण्ह' यह आदेश किया गया है। जहां पर विप्रकर्ष—विश्लेष (संयुक्त वर्णों के मध्य में किसी अन्य वर्ण का आगम करके किया गया उन दोनोंका पृथक्—करण) हो वहां पर तो कृष्ण तथा कृत्स्न शब्द के **कसणो कसिणो** (काला या सम्पूर्ण) ये रूप बनते

हैं। **कृष्ण** शब्द के संयुक्त णकार से पूर्व ३८१ सूत्र से अकार का तथा कृत्स्न शब्द के नकार से पूर्व ३७५ सूत्र से इकार का आगम किया गया है। अतः यहां पर विप्रकर्ष होने से प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई।

३४७—**'ह्ल'** इस संयुक्त व्यञ्जन के स्थान में लकाराक्रान्त (लकार से युक्त) हकार होता है। जैसे—१—**कह्लारम्**=कल्हारं (सफेद कमल), २—**प्रह्लादः**=पल्हाओ (हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का पुत्र, भक्तराज प्रह्लाद) यहां 'ह्ल' के स्थान में 'ल्ह' यह आदेश किया गया है।

३४८—**क, ग, ट, ड, त, द, प, श, ष, स जिह्वामूलीय≍क** और **उपध्मानीय≍प** ये वर्ण यदि संयुक्त वर्ण में ऊर्ध्व-स्थित हों अर्थात् संयुक्त वर्ण में पूर्व पड़े हों तो इन का लोप हो जाता है। जैसे—**ककार के उदाहरण**—१—**भुक्तम्**=भुत्तं (भक्षित, २—**सिक्थम्**=सित्थं (धान्यकण, औषधविशेष), **गकार के उदाहरण**—१—**दुग्धम्**=दुद्धं (दूध), २—**मुग्धम्**=मुद्धं (मोहयुक्त, सुन्दर, मूढ़), **टकार के उदाहरण**—१—**षट्पदः**=छप्पओ (भ्रमर), २—**कट्फलम्**=कप्फलं (कट्फल नाम की एक वनस्पति), कायफल, **डकार के उदाहरण—१—खड्गः**=खग्गो (तलवार), २—**षड्जः**=सज्जो (स्वर-विशेष), **तकार के उदाहरण—१—उत्पलम्**=उप्पलं (कमल), २—**उत्पादः**=उप्पाओ (प्रादुर्भाव), **दकार के उदाहरण—१—मद्गुः**=मग्गू (पक्षि—विशेष, जलकाक, जिस की सारी देह काली और गरदन सफेद होती है, वह जलीय पक्षी), २—**मुद्गरः**=मोग्गरो (मुद्गर, एक प्राचीन अस्त्र, हथौड़ा), **पकार के उदाहरण १**-**सुप्तः**=सुत्तो (जो सो गया है), २-**गुप्तः**=गुत्तो (छिपा हुआ, विजित) **शकार के उदाहरण—१—श्लक्ष्णम्**=लण्हं (कोमल), २—**निश्चलः**=णिच्चलो (चंचलता से रहित), ३—**श्चोतति**=चुअइ (वह झरता है, टपकता है), **षकार के उदाहरण—१—गोष्ठी**=गोट्ठी (सभा) २—**षष्ठः**=छट्ठो (छठा), ३—**निष्ठुरः**=निट्ठुरो (कठोर), **सकार के उदाहरण—१—स्खलितः**=खलिओ (भ्रष्ट), २—**स्नेहः**=नेहो (प्रेम, अनुराग) ****जिह्वामूलीय≍ख का उदाहरण—१—दु≍खम्**=दुक्खं (कष्ट), **उपध्मानीय≍प का उदाहरण**=**अन्त≍पातः**=अन्तप्पाओ (अन्तर्भाव, समावेश) यहां पर ऊर्ध्व भाग में स्थित ककार आदि संयोग वाले व्यंजनों का लोप किया गया है।

३४९—**संयुक्त वर्णों** के अधोभाग में वर्तमान अर्थात् संयुक्त वर्ण में द्वितीय **म, न और य** इन व्यञ्जनों का लोप होता है। जैसे—**मकार के उदाहरण—१—युग्मम्**=जुग्गं (जोड़ा), २-**रश्मिः**=रस्सी (किरण), ३—**स्मरः**=सरो (कामदेव), ४—**स्मेरम्**= सेरं (मुस्कराने वाला), **नकार के उदाहरण—१—नग्नः**=नग्गो (वस्त्ररहित), २-**लग्नः**=लग्गो (लगा हुआ, स्तुतिपाठक), **यकार के उदाहरण—१—श्यामा**=सामा (कृष्ण वर्ण वाली नारी, नाम-विशेष), २—**कुड्यम्**=कुड्डं (दीवार), ३—**व्याधः**=वाहो (शिकारी) यहां मकार आदि व्यञ्जन युग्मम् आदि शब्दों के अधो—भाग में स्थित हैं, अर्थात् ये संयुक्त व्यञ्जन ग्म आदि में परवर्ती हैं, अतः इनका लोप किया गया है।

३५०—**चन्द्र** शब्द को छोड़कर **ल, ब** (व) और र ये **वर्ण** किसी संयुक्त वर्ण के उर्ध्व—भाग में स्थित हों (संयुक्त वर्ण में पहले हों) अथवा अधो—भाग में स्थित हों (संयुक्त वर्ण में दूसरे हों) तो इन का लोप हो जाता है। **ऊर्ध्व-भाग में स्थित संयुक्त लकार के उदाहरण इस प्रकार हैं**—जैसे—**१—उल्का**=उक्का (प्रकाश, आकाश से गिरा हुआ तारा, मशाल, अंगारा), २—**वल्कलम्**=वक्कलं

***जिह्वा के मूल से उच्चारित वर्णों को या ≍क≍ख इस प्रकार क, ख से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। प, फ से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि (≍प≍फ) को उपध्मानीय कहाजाता है।**

(वृक्ष की छाल), **संयुक्त बकार के उदाहरण—१—शब्दः** =सद्दो (आवाज़), २—**अब्दः**=अद्दो (मेघ, वर्ष, वर्षा), ३—**लुब्धकः**=लोद्धओ (लोभी, शिकारी), **रेफ के उदाहरण—१—अर्कः—**अक्को (सूर्य), २—**वर्गः**=वग्गो (ग्रन्थ का एक विभाग, समूह), यहां लकारादि व्यञ्जन संयुक्त वर्णों के ऊर्ध्व—भाग में स्थित हैं, संयुक्त वर्णों में पहले हैं। जैसे—उल्का में 'ल्क' यह संयुक्त वर्ण है, इस में लकार पूर्व में है और ककार उसके अनन्तर है। इस तरह लकार पूर्ववर्ती होने से "ऊर्ध्वभाग में स्थित" माना जाता है। लकारादि व्यञ्जनों के ऊर्ध्व-भाग में स्थित होने से प्रस्तुत सूत्र द्वारा इनका लोप किया गया है। जो वर्ण संयुक्त-वर्ण में दूसरा हो वह अधोवर्ती कहलाता है। जैसे—**श्लक्ष्ण** शब्द में 'श्ल' यह संयुक्त वर्ण है, इस में 'श्' पहले और 'ल' बाद में है। इस तरह के लकार को अधोभाग में स्थित लकार कहा जाता है। ऊपर ऊर्ध्वभाग में स्थित लकारादि व्यञ्जनों के उदाहरण दिए गए हैं, अब वृत्तिकार अधोभाग में स्थित लकारादि व्यञ्जनों के उदाहरण देने लगे हैं। जैसे—१—**श्लक्ष्णम्**= सण्हं (कोमल), २—**विक्लवः**=विक्कवो (व्याकुल, बेचैन), **वकार के उदाहरण—१—*****पक्वम्**= पक्कं, पिक्कं (पका हुआ), २—**ध्वस्तः**=धत्थो (विनष्ट), **रेफ लोप के उदाहरण—१—चक्रम्**= चक्को (चक्र, गाड़ी का पहिया), २—**ग्रहः**=गहो (सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह), ३—**रात्रिः**=रत्ती (रात) यहां पर अधो-भाग में स्थित लकारादि व्यञ्जनों का लोप किया गया है।

सूत्रकार ने फरमाया है कि लकार आदि व्यञ्जन चाहे ऊर्ध्वभाग में स्थित हों, चाहे अधो-भाग में, दोनों अवस्थाओं में इन का लोप हो सकता है। यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि किसी शब्द के ऊर्ध्वभाग तथा अधोभाग इन दोनों में लकारादि व्यञ्जनों के लोप की प्राप्ति हो तो उस स्थिति में क्या पहले ऊर्ध्वभाग में स्थित लकारादि व्यञ्जनों का लोप करना चाहिए या अधोभाग में स्थित का ? या दोनों का एक साथ ? या आगे-पीछे लोप करना चाहिए ? जैसे 'द्व' इस संयुक्त वर्ण में ३४८ सूत्र से दकार के लोप की प्राप्ति है तथा ३५० सूत्र से वकार-लोप प्राप्त हो रहा है। इसी तरह अन्य संयुक्त वर्णों में भी एक साथ उन दोनों वर्णों के लोप की स्थिति बन सकती है। उत्तर में निवेदन है कि यह सब सत्य है किन्तु यथा-दर्शन=प्रयोग के अनुसार लोप कर लेना चाहिए, जिस प्रयोग में ऊर्ध्वभाग-स्थ वर्ण का लोप देखने में आवे, वहां ऊर्ध्व-भाग-स्थ वर्ण का लोप कर लेना चाहिए और जहां अधो-भाग-वर्ती वर्ण का लोप अपेक्षित हो वहां उसका लोप कर देना चाहिए। क्योंकि किन्हीं शब्दों में ऊर्ध्व-भाग-वर्ती व्यञ्जन का लोप भी देखने में आता है। जैसे—१—**उद्विग्नः**=उव्विग्गो (परेशान, खिन्न), २—**द्विगुणः**=वि-उणो (दुगुना), ३—**द्वितीयः**=बीओ, (दूसरा), ४—**कल्मषम्**= कम्मसं (पाप), ५—**सर्वम्**=सव्वं (सर्व), **शुल्बम्**=सुब्बं (ताम्बा नामक धातु, रस्सी) यहां ऊर्ध्व-वर्ती संयुक्त दकारादि व्यञ्जनों का लोप देखने में आता है। संयुक्त वर्णों के अधोभाग में स्थित लुप्त व्यञ्जनों के उदाहरण भी उपलब्ध होते है। जैसे—१—**काव्यम्**=कव्वं (कविता, पद्यमयी रचना), २—**कुल्या**=कुल्ला (छोटी नदी, बनावटी नदी), ३—**माल्यम्**=मल्लं (मस्तक-स्थित पुष्पमाला), ४—**द्विपः**=दिओ (हाथी, नाग-केसर-महँकदार फूलों वाला एक सदा-बहार पेड़, जिस की लकड़ी बहुत कड़ी होती है), ५—**द्विजातिः**=दुआई (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), यहां पर अधःस्थित संयुक्त

*** सूत्र-पाठ में बकार का ग्रहण है, वकार का नहीं। प्रश्न उपस्थित होता है कि पक्व आदि शब्दों के वकार का लोप कैसे हो सकता है ? उत्तर में निवेदन है कि यहां व्याकरणकार ब और व में अभेद स्वीकार कर रहे हैं। अतः बकार के ग्रहण से वकार का भी ग्रहण कर लिया जाता है।**

यकारादि वर्णों का लोप किया गया है। कहीं पर पर्याय-क्रम से वकारादि का लोप होता है। जैसे—**१—द्वारम्**=बारं, दारं (दरवाजा) यहां पर एक स्थान पर दकार का और दूसरे स्थान पर वकार का लोप किया गया है। २—**उद्विग्नः**=उव्विग्गो, उव्विण्णो (दुःखी), यहां पर एक बार दकार का और एक बार गकार का लोप हुआ है। एक ही शब्द में कभी किसी वर्ण का और कभी किसी वर्ण का लोप हो जाने को ही **'पर्याय से लोप'** कहा जाता है। सूत्र में **"अवन्द्रे"** इस शब्द का अर्थ है—'वन्द्र' को छोड़कर। वन्द्र शब्द के रेफलोप का निषेध होने के कारण ही—**वन्द्रम्**=वन्द्रं (समूह, यूथ), यह शब्द निष्पन्न होता है। यह प्राकृत-शब्द संस्कृत-भाषा के **"वन्द्रम्"** के समान ही समझना चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि **'वन्द्र'** के रेफ का ३५१ सूत्र से लोप हो जाना चाहिए था तथापि लोप न करने का क्या कारण है? उत्तर में निवेदन है कि प्रस्तुत सूत्र में **"अवन्द्रे"** यह कह कर इसके रेफ-लोप का जो निषेध किया गया है, इसी निषेध-विधान के सामर्थ्य से उत्तर (अगले ३५१) सूत्र से भी रेफ का वैकल्पिक लोप नहीं हो सका। किसी-किसी प्रति में **"सर्वत्र लवरामवन्द्रे"** इस पाठ की अपेक्षा—**"सर्वत्र ल-ब-रामचन्द्रे"** यह पाठ देखने में आता है। अन्तर केवल इतना है कि पहले पाठ में वन्द्र शब्द के जबकि दूसरे पाठ में चन्द्र शब्द के निषेध का उल्लेख किया गया है।

३५१— 'द्र' इस संयुक्त व्यञ्जन के रेफ का विकल्प से लोप होता है। जैसे—**१—चन्द्रः**=चन्दो, चन्द्रो (चन्द्रमा), २—**रुद्रः**=रुद्दो, रुद्रो (महादेव), **३—भद्रम्**=भद्दं, भद्रं (कल्याण), ४—**समुद्रः**=समुद्दो, समुद्रो (सागर), **५—ह्रदः**=दहो, द्रहो (तलाब)। यहां पर ३९१ सूत्र द्वारा हकार और दकार का व्यत्यय (स्थिति-परिवृत्ति=स्थिति का परिवर्तन) होने से ह्रद का **द्रह** शब्द बना दिया गया है। कुछ वैयाकरण **'द्रहो'** के रेफ-लोप का सर्वथा निषेध करते हैं, उनके मत में केवल **'द्रहो'** यही रूप बनता है। कई एक आचार्यों की मान्यता है कि संस्कृत-भाषा में जैसे **ह्रद** शब्द का व्यवहार होता है, वैसे वहां **'द्रह'** शब्द भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, तरुणपुरुष आदि अर्थों के वाचक-बोधक **'वोद्रह'** आदि शब्द नित्य रेफ-संयुक्त होते हैं और देश्य=देशीय प्राकृतभाषा के शब्द माने गए हैं। जैसे—**१—शिक्षन्ताम् तरुण्यः**=सिक्खन्तु वोद्रहीओ (नवयुवतियां शिक्षा ग्रहण करें), **२—तरुणह्रदे पतिता**=वोद्रह-द्रहम्मि पडिआ (वह नवयुवति तरुण-पुरुष-रूपी तालाब में गिर पड़ी, अर्थात् तरुण पुरुष के प्रेम में आसक्ति रख रही है) यहां **वोद्रह** शब्द नित्य रेफ से संयुक्त है और देश्य भाषा का शब्द है। भाव यह है कि वोद्रह शब्द में प्रस्तुत सूत्र ने कोई कार्य नहीं किया।

३५२—धात्री शब्द के रेफ का विकल्प से लोप होता है। जैसे—**१—धात्री**=धत्ती, यदि ८४ सूत्र से आकार को अकार बनाने से पहले ही रेफ का लोप कर दिया जाए तो ३६३ सूत्र से द्वित्व का निषेध हो जाने के कारण—**धाई,** वैकल्पिक लोप होने से जहां प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी, वहां—**धात्री** (धायमाता, उपमाता) यह रूप बनता है।

३५३—**तीक्ष्ण** शब्द के णकार का विकल्प से लोप होता है। जैसे—**तीक्ष्णम्**=तिक्खं, तिण्हं (तेज) यहां विकल्प से णकार का लोप किया गया है।

३५४—संस्कृत भाषा के नियमानुसार **"ज—ञोर्ज्ञः"** अर्थात् जकार और ञकार को मिलाकर **'ज्ञ'** यह संयुक्त वर्ण बनता है। सूत्रकार कहते हैं कि **'ज्ञ'** से सम्बन्धित ञकार का विकल्प से लोप हो जाता है। इस तरह ञकार का लोप हो जाने पर जकार शेष बचता है। जैसे—**१—ज्ञानम्**=जाणं णाणं (बोध, जानकारी), २—**सर्वज्ञः**=सव्वज्जो, सव्वण्णू (सब कुछ जानने वाला), **३—आत्मज्ञः**,

अल्पज्ञः=अप्पज्जो अप्पण्णू (आत्म-तत्त्व का ज्ञान रखने वाला अथवा अल्पज्ञ—थोड़ा जानने वाला), ४—**दैवज्ञः**=दइवज्जो, दइवण्णू (दैव=भाग्य को जानने वाला, ज्योतिषी), ५—**इङ्गितज्ञः**=इङ्गिअज्जो, इङ्गिअण्णू (इंगित—इशारे को समझने वाला), ६—**मनोज्ञम्**=मणोज्जं, मणोण्णं (सुन्दर, मनोहर), ७—**अभिज्ञः**=अहिज्जो, अहिण्णू (अच्छी तरह जानने वाला), ८—**प्रज्ञा**=पज्जा, पण्णा (बुद्धि), ९—**आज्ञा**=अज्जा, आणा (आदेश), १०—**संज्ञा**=संजा सण्णा (नाम) यहां ज्ञ के ञकार का वैकल्पिक लोप किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं 'ज्ञ' के ञकार का लोप नहीं भी होता। जैसे—**विज्ञानं**=विण्णाणं (विशिष्ट बोध) यहां पर ञकार का लोप नहीं हो सका।

३५५—**मध्याह्न** शब्द के हकार का विकल्प से लोप होता है। जैसे—**मध्याह्नः**=मज्झन्नो, मज्झण्हो (दोपहर का समय) यहां पर विकल्प से हकार का लोप किया गया है।

३५६—**दशार्ह** शब्द के हकार का लोप होता है। जैसे—**दशार्हः**=दसारो (यादव विशेष) यहां हकार का लोप किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि इस सूत्र को अलग बनाने की क्या आवश्यकता थी? दशार्ह शब्द को ३५५ सूत्र में ही संकलित कर लेना था, यह ग्रन्थ-गौरव क्यों किया गया? उत्तर में निवेदन है कि ३५५ सूत्र विकल्प से लकार का लोप करता है किन्तु दशार्ह शब्द के हकार का लोप वैकल्पिक हो, यह इष्ट नहीं है, अतः इस की अलग रचना की गई है। यह पृथक् योग (रचना) ही '**वा**' इस पद की निवृत्ति कर देता है।

३५७—**श्मश्रु** और **श्मशान** इनके आदिम व्यञ्जनों का लोप हो जाता है। जैसे—१—**श्मश्रुः**=मासू, मंसू, मस्सू (दाढी, मूंछ), २—**श्मशानम्**=मसाणं (मरघट) यहाँ पर शकार का लोप किया गया है। आर्षप्राकृत में ३ सूत्र द्वारा श्मशान शब्द के **सीआणं, सुसाणं** ऐसे रूप भी बनाए जाते हैं।

३५८—**हरिश्चन्द्र** शब्द के 'श्च्' का लोप होता है। जैसे—**हरिश्चन्द्रः**=हरिअन्दो (दानवीर राजा हरिश्चन्द्र) यहां 'श्च्' का लोप किया गया है।

३५९—**रात्रि** शब्द के संयुक्त वर्ण का विकल्प से लोप होता है। जैसे—**रात्रिः**=राई, रत्ती (रात्रि, रात) यहां 'त्र' का वैकल्पिक लोप किया गया है।

★ अथ शेषादेश-भूत-वर्णयोर्विधिः ★

३६०—**अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्** । ८ । २ । ८९ । पदस्यानादौ वर्तमानस्य शेषस्यादेशस्य च द्वित्व भवति । शेष । कप्पतरू । भुत्तं । दुद्धं । नग्गो । उक्का । अक्को । मुक्खो । आदेश । डक्को । जक्खो । रग्गो । किच्ची । रुप्पी । क्वचिन्न भवति । कसिणो । अनादाविति किम्? खलिअं । थेरो । खम्भो । द्वयोस्तु द्वित्वमस्त्येवेति न भवति । विञ्चुओ । भिण्डिवालो ।

३६१—**द्वितीय-तूर्ययोरुपरि पूर्वः** । ८ । २ । ९० । द्वितीयतूर्ययोर्द्वित्वप्रसङ्गे उपरि पूर्वौ भवतः । द्वितीयस्योपरि प्रथमः, चतुर्थस्योपरि तृतीय इत्यर्थः । शेष । वक्खाणं । वग्घो । मुच्छा । निज्झरो । कट्ठं । तित्थं । निद्धणो । गुप्फं । निब्भरो । आदेश । जक्खो । घस्य

नास्ति । अच्छी । मज्झं । पट्टी । वुड्ढो । हत्थो । आलिद्धो । पुप्फं । भिब्भलो । तैलादौ [२—९८] द्वित्वे ओक्खलं । सेवादौ [२—९९] नक्खा । नहा । समासे वा [२—९७] कइ-द्धओ । कइ-धओ । द्वित्व इत्येव । खाओ ।

३६२—**दीर्घे वा** । ८ । २ । ९१ । दीर्घशब्दे शेषस्य घस्य उपरि पूर्वो वा भवति । दिग्घो दीहो ।

३६३—**न दीर्घानुस्वारात्** । ८ । २ । ९२ । दीर्घानुस्वाराभ्यां लाक्षणिकाभ्याम-लाक्षणिकाभ्यां च परयोः शेषादेशयोर्द्वित्वं न भवति । छूढो । नीसासो । फासो । अला-क्षणिक । पार्श्वम् । पासं । शीर्षम् । सीसं । ईश्वरः । ईसरो । द्वेष्यः । वेसो । लास्यम् । लासं । आस्यम् । आसं । प्रेष्यः । पेसो । अवमाल्यम् । ओमालं । आज्ञा । आणा । आज्ञप्तिः । आणत्ती । आज्ञपनम् । आणवणं । अनुस्वारात् । त्र्यस्रम् । तंसं । अलाक्षणिक । संझा । विंझो । कंसालो ।

३६४—**र-होः** । ८ । २ । ९३ । रेफहकारयोर्द्वित्वं न भवति । रेफः शेषो नास्ति । आदेश । सुन्देरं । बम्हचेरं । पेरन्तं । शेषस्य हस्य । विहलो । आदेशस्य । कहावणो ।

३६५—**धृष्टद्युम्ने णः** । ८ । २ । ९४ । धृष्टद्युम्नशब्दे आदेशस्य णस्य द्वित्वं न भवति । धट्ठज्जुणो ।

३६६—**कर्णिकारे वा** । ८ । २ । ९५ । कर्णिकारशब्दे शेषस्य णस्य द्वित्वं वा भवति । कण्णिआरो कणिआरो ।

३६७—**दृप्ते** । ८ । २ । ९६ । दृप्तशब्दे शेषस्य द्वित्वं न भवति । दरिअ-सीहेण ।

३६८—**समासे वा** । ८ । २ । ९७ । शेषादेशयोः समासे द्वित्वं वा भवति । नइ-ग्गामो, नइ-गामो । कुसुम-प्पयरो, कुसुम-पयरो । देव-त्थुई, देव-थुई । हर-क्खन्दा, हर-खन्दा । आणाल-क्खम्भो, आणाल-खम्भो । बहुलाधिकारादशेषादेशयोरपि । स-प्पिवासो, स-पिवासो । बद्ध-प्फलो, बद्ध-फलो । मलय-सिहर-क्खण्डं, मलय-सिहर-खण्डं । पम्मुक्कं, पमुक्कं । अद्दंसणं, अदंसणं । पडिक्कूलं, पडिकूलं । तेल्लोक्कं, तेलोक्कं इत्यादि ।

३६९—**तैलादौ** । ८ । २ । ९८ । तैलादिषु अनादौ यथादर्शनमन्त्यस्यानन्त्यस्य च व्यञ्जनस्य द्वित्वं भवति । तेल्लं । मण्डुक्को । वेइल्लं । उज्जू । विड्डा । वहुत्तं । अनन्त्यस्य । सोत्तं । पेम्मं । जुव्वणं । आर्षे । पडिसोओ । विस्सोअसिआ । तैल । मण्डूक । विचकिल । ऋजु । व्रीडा । प्रभूत । स्रोतस् । प्रेमन् । यौवन इत्यादि ।

३७०—**सेवादौ वा** । ८ । २ । ९९ । सेवादिषु अनादौ यथा-दर्शनमन्त्यस्यानन्त्यस्य

च द्वित्वं वा भवति । सेव्वा सेवा । नेड्डं, नीडं । नक्खा नहा । निहित्तो निहिओ । वाहित्तो वाहिओ । माउक्कं माउअं । एक्को एओ । कोउहल्लं कोउहलं । वाउल्लो वाउलो । थुल्लो थोरो । हुत्तं हूअं । दइव्वं दइवं । तुण्हिक्को तुण्हिओ । मुक्को मूओ । खण्णू खाणू । थिण्णं थीणं । अनन्त्यस्य । अम्हक्केरं अम्हकेरं । तं च्चेअ तं चेअ । सो च्चिअ, सो चिअ । सेवा । नीड । नख । निहित । व्याहृत । मृदुक । एक । कुतूहल । व्याकुल । स्थूल । हूत । दैव । तूष्णीक । मूक । स्थाणु । स्त्यान । अस्मदीय । चेअ । चिअ इत्यादि ।

३७१—**शार्ङ्गे ङात्पूर्वोऽत्** । ८ । २ । १०० । शार्ङ्गे ङात्पूर्वो अकारो भवति । सारङ्गं ।

३७२—**क्ष्मा-श्लाघा-रत्नेऽन्त्यव्यञ्जनात्** । ८ । २ । १०१ । एषु संयुक्तस्य यदन्त्य-व्यञ्जनं तस्मात्पूर्वोऽद् भवति । छमा । सलाहा । रयणं । आर्षे-सूक्ष्मेऽपि । सुहमं ।

३७३—**स्नेहाग्न्योर्वा** । ८ । २ । १०२ । अनयोः संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वोऽकारो वा भवति । सणेहो नेहो । अगणी अग्गी ।

३७४—**प्लक्षे लात्** । ८ । २ । १०३ । प्लक्षशब्दे संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनाल्लात्पूर्वोऽद् भवति । पलक्खो ।

३७५— **र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न-क्रिया-दिष्ट्यास्वित्** । ८ । २ । १०४ । एषु संयुक्तस्यान्त्य-व्यञ्जनात्पूर्व इकारो भवति । र्ह । अरिहइ । अरिहा । गरिहा । बरिहो । श्री । सिरी । ह्री । हिरी । ह्रीतः । हिरीओ । अह्रीकः । अहिरीओ । कृत्स्नः । कसिणो । क्रिया । किरिआ । आर्षे तु । हयं नाणं किया—हीणं । दिष्ट्या । दिट्ठिआ ।

३७६—**र्श-र्ष-तप्त-वज्रे वा** । ८ । २ । १०५ । र्शर्षयोस्तप्तवज्रयोश्च संयुक्तस्या-न्त्यव्यञ्जनात्पूर्व इकारो वा भवति । र्श । आयरिसो आयंसो सुदरिसणो सुदंसणो । दरिसणं दंसणं । र्ष । वरिसं वासं । वरिसा वासा । वरिस-सयं वास-सयं । व्यवस्थितविभाषया क्वचि-न्नित्यम् । परामरिसो । हरिसो । अमरिसो । तप्त । तविओ तत्तो । वज्र । वइरं वज्जं ।

३७७—**लात्** । ८ । २ । १०६ । संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनाल्लात्पूर्वः इद् भवति । किलिन्नं । किलिट्ठं । सिलिट्ठं । पिलुट्ठं । पिलोसो । सिलिम्हो । सिलेसो । सुक्किलं । सुइलं । सिलोओ । किलेसो । अमिलं । गिलाइ । गिलाणं । मिलाइ । मिलाणं । किलम्मइ । किलन्तं । क्वचिन्न भवति । कमो । पवो । विप्पवो । सुक्क-पक्खो । उत्प्लावयति । उप्पावेइ ।

३७८—**स्याद्-भव्य-चैत्य-चौर्यसमेषु यात्** । ८ । २ । १०७ । स्यादादिषु चौर्यशब्देन

समेषु च संयुक्तस्य यात्पूर्व इद् भवति। सिरी। सिरी-वाओ। भविओ। चेइअं। चौर्यसम। चोरिअं। थेरिअं। भारिआ। गम्भीरिअं। गहीरिअं। आयरिओ। सुन्दरिअं। सोरिअं। वोरिअं। वरिअं। सूरिओ। धीरिअं। बम्हचरिअं।

३७९—**स्वप्ने नात्**। ८। २। १०८। स्वप्नशब्दे नकारात्पूर्व इद् भवति। सिविणो।

३८०—**स्निग्धे वादितौ**। ८। २। १०९। स्निग्धे संयुक्तस्य नात्पूर्वौ अदितौ वा भवतः। सणिद्धं सिणिद्धं। पक्षे निद्धं।

३८१—**कृष्णे वर्णे वा**। ८। २। ११०। कृष्णे वर्णवाचिनि संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वौ अदितौ वा भवतः। कसणो कसिणो कण्हो। वर्णे इति किम्? विष्णौ—कण्हो।

३८२—**उच्चार्हति**। ८। २। १११। अर्हत्-शब्दे संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्व उत् अदितौ च भवतः। अरुहो अरहो अरिहो। अरुहन्तो अरहन्तो अरिहन्तो।

३८३—**पद्म-छद्म-मूर्ख-द्वारे वा**। ८। २। ११२। एषु संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्व उद् वा भवति। पउमं पोम्मं। छउमं छम्मं। मुरुक्खो मुक्खो। दुवारं। पक्षे। वारं। देरं। दारं।

३८४—**तन्वी-तुल्येषु**। ८। २। ११३। उकारान्ता ङीप्रत्ययान्तास्तन्वीतुल्याः। तेषु-संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्व उकारो भवति। तणुवी। लहुवी। गरुवी। बहुवी। पुहुवी। मउवी। क्वचिदन्यत्रापि। स्रुघ्नम्। सुरुग्घं। आर्षे। सूक्ष्मम्। सुहुमं।

३८५—**एकस्वरे श्वः-स्वे**। ८। २। ११४। एकस्वरे पदे यौ श्व स्व इत्येतौ तयोरन्त्यव्यञ्जनात्पूर्व उद् भवति। श्वः कृतम्। सुवे कयं। स्वे जनाः। सुवे जणा। एकस्वर इति किम्? स्व-जनः। स-यणो।

३८६—**ज्यायामीत्**। ८। २। ११५। ज्याशब्दे अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्व ईद् भवति। जीआ।

३८७—**करेणू-वाराणस्यो र-णोर्व्यत्ययः**। ८। २। ११६। अनयो रेफणकारयो-र्व्यत्ययः-स्थितिपरिवृत्तिर्भवति। कणेरू। वाणारसी। स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् पुंसि न भवति। एसो करेणू।

३८८—**आलाने लनोः**। ८। २। ११७। आलानशब्दे लनोर्व्यत्ययो भवति। आणालो। आणाल-क्खम्भो।

३८९—**अचलपुरे च-लोः**। ८। २। ११८। अचलपुरशब्दे चकारलकारयोर्व्यत्ययो भवति। अलचपुरं।

३९० — **महाराष्ट्रे ह-रोः** । ८ । २ । ११९ । महाराष्ट्रशब्दे हरोर्व्यत्ययो भवति । मरहट्ठं ।

३९१ — **ह्रदे ह-दोः** । ८ । २ । १२० । ह्रदशब्दे हकारदकारयोः व्यत्ययो भवति । द्रहो । आर्षे । हरए महपुण्डरिए ।

३९२ — **हरिताले र-लोर्न वा** । ८ । २ । १२१ । हरितालशब्दे रकारलकारयोः व्ययत्यो वा भवति । हलिआरो हरिआलो ।

३९३ — **लघुके ल-होः** । ८ । २ । १२२ । लघुकशब्दे घस्य हत्वे कृते लहोर्व्यत्ययो वा भवति । हलुअं लहुअं । घस्य व्ययत्ये कृते पदादित्वात् हो न प्राप्नोतीति हकरणम् ।

३९४ — **ललाटे ल-डोः** । ८ । २ । १२३ । ललाटशब्दे लकारडकारयोर्व्यत्ययो वा भवति । णडालं । णलाडं । ललाटे च [१—२५७] इति आदेर्लस्य णविधानादिह द्वितीयो लः स्थानी ।

३९५ — **ह्ये ह्योः** । ८ । २ । १२४ । ह्यशब्दे हकारयकारयोर्व्यत्ययो वा भवति । गुह्यम् । गुय्हं गुज्झं । सह्यः । सय्हो सज्झो ।

३९६ — **स्तोकस्य थोक्क-थोव-थेवाः** । ८ । २ । १२५ । स्तोकशब्दस्य एते त्रय आदेशाः वा भवन्ति । थोक्कं, थोवं, थेवं । पक्षे थोअं ।

३९७ — **दुहितृ-भगिन्योर्धूआ-बहिण्यौ** । ८ । २ । १२६ । अनयोरेतावादेशौ वा भवतः । धूआ दुहिआ । बहिणी भइणी ।

३९८ — **वृक्ष-क्षिप्तयो रुक्ख-छूढौ** । ८ । २ । १२७ । वृक्षक्षिप्तयोर्यथासंख्यं रुक्ख छूढ इत्यादेशौ वा भवतः । रुक्खो वच्छो । छूढं खित्तं । उच्छूढं उक्खित्तं ।

३९९ — **वनिताया विलया** । ८ । २ । १२८ । वनिताशब्दस्य विलया इत्यादेशो वा भवति । विलया वणिआ । विलयेति संस्कृतेऽपीति केचित् ।

४०० — **गौणस्येषतः कूरः** । ८ । २ । १२९ । ईषच्छब्दस्य गौणस्य कूर इत्यादेशो वा भवति । चिंच व्व कूर-पिक्का । पक्षे ईसि ।

★ अथ शेषादेश-भूत-वर्णयोर्विधिः ★

वर्णद्वये यो वर्णोऽवशिष्यते स वर्णः शेषः । एकस्य वर्णस्य स्थानेऽपरस्य वर्णस्य या स्थितिर्जायते साऽऽदेशपद-वाच्या भवति, अक्षरपरिवर्तनं वादेशः । अत्र शेषादेशभूतानां वर्णानां स्थाने यानि कार्याणि संभवन्ति तानि निदर्शयत्याचार्यः ।

३९० — **शेष इति** । शेषभूतानां वर्णानामुदाहरणानीमानि सन्ति । यथा — **कल्पतरुः** । कल्प-तरु+सि । ३५० सू० लकारस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे

कप्पतरू इति सिद्धम् । **भुक्तम्** । भुक्त+सि । ३४८ सू० ककारस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **भुत्तं** इति सिद्धम् । **दुग्धम्** । दुग्ध+सि । ३४८ सू० गकारस्य लोपः, धकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारः, पूर्ववदेव **दुद्धं** इति सिद्धम् । **नग्नः** । नग्न+सि । ३४९ सू० नकारस्य लोपः, गकारस्य द्वित्वं, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **नग्गो** इति सिद्धम् । **उल्का** । उल्का+सि । ३५० सू० लकारस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वं, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **उक्का** इति सिद्धम् । **अर्कः** । अर्क+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ककार-द्वित्वे, पूर्ववदेव **अक्को** इति भवति । **मूर्खः** । मूर्ख+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, खकारस्य द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारः, पूर्ववदेव **मुक्खो** इति सिद्धम् । **आदेशः** । आदेश-भूतानां वर्णानामुदाहरणानि प्रतिपादयति वृत्तिकारः । यथा—**दष्टः** । दष्ट+सि । २१७ सू० दकारस्य डकारः, २७३ सू० ष्टस्य ककारः, ककारस्य द्वित्वं, पूर्ववदेव **डक्को** इति सिद्धम् । **यक्षः** । यक्ष+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वं, पूर्व-खकारस्य ककारः, पूर्ववदेव **जक्खो** इति सिद्धम् । **रक्तः** । रक्त+सि । २८१ सू० संयुक्तस्य गकारः, गकारस्य द्वित्वं, पूर्ववदेव **रग्गो** इति सिद्धम् । **कृत्तिः** । कृत्ति+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, २८३ सू० संयुक्तस्य चकारः, चकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **किच्ची** इति सिद्धम् । **रुक्मी** । रुक्मिन्+सि । ३२३ सू० क्मस्य पकारे, पकारस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **रुप्पी** इति सिद्धम् । **क्वचिन्न भवति** । बहुलस्याधिकारात्=कस्मिंश्चित् स्थले शेषस्यादेशभूतस्य च वर्णस्य द्वित्वं न भवति । यथा—**कृत्स्नः** । कृत्स्न+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३७५ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वमिकारागमः **बहुलाधिकारात्** ३६० सू० शेषस्य सकारस्य न द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, पूर्ववदेव **कसिणो** इति सिद्धम् । **अनादाविति किम् ?** शेषादेशभूतो वर्णोऽनादौ वर्तमानो भवेत्तदैव तस्य द्वित्वं भवति, नान्यथा । यथा—**स्खलितम्** । स्खलित+सि । ३४८ सू० सकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **खलिअं** इति सिद्धम् । अत्र शेषस्य खकारस्य अनादेरभावात् द्वित्वं न जातम् । **स्थविरः** । स्थविर+सि । १६६ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह एकारः, ३४८ सू० सकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **थेरो** इति सिद्धम् । अत्र शेष-थकारस्य अनादेरभावात् द्वित्वाभावः । **स्तम्भः** । **स्तम्भ+सि** । २७९ सू० स्तस्य खकारः, पूर्ववदेव **खम्भो** इति सिद्धम् । शेषस्य खकारस्य अनादेरभावादत्र द्वित्वं न जातम् । **द्वयोस्तु द्वित्वमस्त्येवेति** । यौ द्वौ वर्णौ भवतस्तौ तु पूर्वमेव द्वित्वरूपावेव, अतस्तयोः द्वित्वं न भवति । अयं भावः—संयुक्तवर्णस्य द्वित्वाभावो बोध्यः । यथा—**वृश्चिकः** । वृश्चिक+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, २८७ सू० 'श्च' इत्यस्य '**ञ्चु**' इत्यादेशे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **विञ्चुओ** इति सिद्धम् । अत्र आदेशस्य संयुक्तत्वात् द्वित्वाभावः । **भिन्दिपालः** । भिन्दिपाल+सि । ३०९ सू० संयुक्तस्य ण्ड इत्यादेशे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, पूर्ववदेव **भिण्डिवालो** इति सिद्धम् । अत्रापि आदेशभूतस्य 'ण्ड' इत्येतस्य वर्णस्य संयुक्तत्वाद् द्वित्वाभावः ।

३६१—उपरि-पूर्वौ भवतः । वर्गाणां द्वितीयस्य चतुर्थस्य च वर्णस्य यदि द्वित्व-प्रसंगो भवेत्तदा द्वित्वदशायां स्थितयोः वर्णयोः प्रथमो वर्णो भवति, स 'उपरि' इति भण्यते । असौ उपरिवर्णः तदपेक्षया यः पूर्वरूप-वर्णः, तस्यः रूपं प्राप्नोति । इदमत्र हार्दम्=यथा—खकारः वर्गस्य द्वितीयो वर्णः,

खकारस्य द्वित्वे ख्, ख् इति दशायां प्रथम-खकारस्य पूर्ववर्णः ककारो भवति। एवमेव चतुर्थ-वर्ण-सम्बन्धेऽपि बोध्यम्। **शेष**। शेषभूतानां व्यञ्जनानामुदाहरणानि प्रतिपादयति वृत्तिकारः। यथा—**व्याख्यानम्**। व्याख्यान+सि। ३४९ सू० यकारद्वयस्य लोपः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, संयोगे परे ८४ सू० ह्रस्वे, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **वक्खाणं** इति सिद्धम्। **व्याघ्रः**। व्याघ्र+सि। यकारस्य लोपः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, घकारस्य द्वित्वं, पूर्वघकारस्य गकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **वग्घो** इति सिद्धम्। **मूर्च्छा**। मूर्च्छा+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, बाहुल्येन चकारलोपे, रेफस्य लोपः, छकारस्य द्वित्वे, पूर्व-छकारस्य चकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **मुच्छा** इति सिद्धम्। **निर्झरः**। निर्झर+सि। रेफस्य लोपः, झकारस्य द्वित्वं, पूर्वझकारस्य जकारः, पूर्ववदेव **निज्झरो** इति सिद्धम्। **कष्टम्**। कष्ट+सि। ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, पूर्ववदेव **कट्ठं** इति सिद्धम्। **तीर्थम्**। तीर्थ+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य लोपः, थकारस्य द्वित्वं, पूर्वथकारस्य तकारः, पूर्ववदेव **तित्थं** इति सिद्धम्। **निर्धनः**। निर्धन+सि। रेफस्य लोपः, धकारस्य द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, पूर्ववदेव **निद्धणो** इति सिद्धम्। **गुल्फम्**। गुल्फ+सि। ३५० सू० लकारस्य लोपः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारे, पूर्ववदेव **गुप्फं** इति सिद्धम्। **निर्भरः**। निर्भर+सि। रेफस्य लोपः, भकारस्य द्वित्वं, पूर्वभकारस्य बकारः, पूर्ववदेव **निब्भरो** इति सिद्धम्। **आदेश**। आदेशभूतस्य व्यञ्जनस्योदाहरणमिदमिति निरूप्यते। यथा—**यक्षः**। यक्ष+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, पूर्ववदेव **जक्खो** इति सिद्धम्। **घस्य नास्तीति**। घस्य-आदेशरूपस्य घकारस्य इत्यर्थः। आदेशस्वरूपस्य घकारस्य तृतीयवर्णो (गकारो) न भवति। घरूपस्यादेशस्याभाव एवात्र कारणं ज्ञातव्यम्। **अक्षि**। अक्षिन्+सि। २८८ सू० क्षस्य छकारः, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, ११ सू० नकारस्य लोपः, सेर्लोपे **अच्छी** इति सिद्धम्। **मध्यम्**। मध्य+सि। २९७ सू० ध्यस्य झकारः, झकारस्य द्वित्वं, पूर्वझकारस्य जकारः, पूर्ववदेव **मज्झं** इति सिद्धम्। **स्पृष्टिः**। स्पृष्टि+सि। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **पट्ठी** इति सिद्धम्। **वृद्धः**। वृद्ध+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, ३११ सू० संयुक्तस्य ढकारः, ढकारस्य द्वित्वं, पूर्वढकारस्य डकारः, पूर्ववदेव **वुड्ढो** इति सिद्धम्। **हस्तः**। हस्त+सि। ३१६ सू० स्तस्य थकारः, थकारस्य द्वित्वं, पूर्वथकारस्य तकारः, पूर्ववदेव **हत्थो** इति सिद्धम्। **आश्लिष्टः**। आश्लिष्ट+सि। ३२० सू० संयुक्तयोः वर्णयोः क्रमेण 'ल' 'ध' इत्यादेशौ, धकारस्य द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारः, पूर्ववदेव **आलिद्धो** इति सिद्धम्। **पुष्पम्**। पुष्प+सि। ३२४ सू० ष्पस्य फकारः, फकारस्य द्वित्व, पूर्वफकारस्य पकारः, पूर्ववदेव **पुप्फं** इति सिद्धम्। **विह्वलः**। विह्वल+सि। ३२९ सू० ह्वस्य भकारः विशब्दस्थस्य च वकारस्य भकारः, द्वितीय-भकारस्य द्वित्वं, पूर्वभकारस्य बकारः, पूर्ववदेव **भिब्भलो** इति सिद्धम्। **तैलादौ द्वित्वे**। 'ओक्खलं' इत्यत्र ३६९ सूत्रेण खकारस्य द्वित्वं जातमिति संसूचितं वृत्तिकारेण। **उदूखलम्**। उदूखल+सि। १७१ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वर-व्यञ्जनेन सह ओकारः, ३६९ सू० खकारस्य द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारे, सेर्मकारः, मकारानुस्वारे **ओक्खलं** इति सिद्धम्। **सेवादौ नक्खा**। नक्खा, इत्यत्र ३७० सूत्रेण खकारस्य द्वित्वं विधेयमिति

निर्दिश्यते वृत्तिकारेण । **नखाः** । नख+जस् । ३७० सू० खकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **नक्खा** द्वित्वाभावे—१८७ सू० खकारस्य हकारे **नहा** इति सिद्धम् । **समासे वा** । समासदशायां ३६८ सूत्रेण शेषादेशयोः वर्णयोः वैकल्पिकं द्वित्वं करणीयमिति संसूच्यते । यथा—कपिध्वजपदं समासोपेतमतोऽत्र वैकल्पिकं द्वित्वमभूद् । **कपिध्वजः** । कपिध्वज+सि । १७७ सू० पकारस्य लोपः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६८ सू० धकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्वधकारस्य दकारः, १७७ सू० जकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **कइ-द्धओ कइ-धओ** इति सिद्धम् । **द्वित्व इत्येव** । द्वित्व-दशायामेव प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा । यथा—**ख्यातः** । ख्यात+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **खाओ** इति भवति । अत्र खकारस्य द्वित्व-प्राप्ति-दशा न वर्ततेऽतः प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

३६२—दीर्घः । दीर्घ+सि । ८४ सू० ईकारस्य इकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० घकारस्य द्वित्वं, ३६२ सू० पूर्वघकारस्य वैकल्पिको गकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दिग्घो**, ८४ सूत्रे यथादर्शनोल्लेखाद् ईकारस्य न ह्रस्वे कृते, ३६३ सूत्रेण द्वित्वाभावे, १८७ सू० घकारस्य हकारे **दीहो** इति सिद्धम् ।

३६३—लाक्षणिकाभ्यामलाक्षणिकाभ्याम् । लक्षणात्-सूत्रात् आगतं निष्पन्नं **लाक्षणिकं** तदतिरिक्तम्—**अलाक्षणिकम्** । संयुक्ते पदे हलां लोपे सति य एको हल् शिष्यते स **शेष**—संज्ञको भवति, यस्य स्थाने आदेशो विधीयते सः **स्थानी**, यश्च विधीयते **स आदेशः** । **क्षिप्तः** । क्षिप्त+सि । ३९८ सू० क्षिप्तस्य 'छूढ' इत्यादेशे, पूर्ववदेव **छूढो** इति सिद्धम् । अत्र लाक्षणिक-दीर्घ-ऊकारपरवर्तित्वात् आदेश-भूतस्य ढकारस्य द्वित्वं न जातम् । **निःश्वासः** । निर्-श्वास+सि । १३ सू० रकारस्य लोपः, ९३ सू० इकारस्य दीर्घः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, पूर्ववदेव **नीसासो** इति सिद्धम् । अत्र ईकारो लाक्षणिकस्तत्परवर्तित्वात् सकारस्य द्वित्वं नाभूद् । **स्पर्शः** । स्पर्श+सि । ३२४ सू० स्पस्य फकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ४३ सू० आदेरकारस्य दीर्घः, २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **फासो** इति सिद्धम् । अत्रापि लाक्षणिक-आकार-परवर्तित्वात् सकारस्य द्वित्वाभावः । **अलाक्षणिकम्** । अग्रेतनानि पदानि अलाक्षणिकोदाहरणानि । **पार्श्वम्** । पार्श्व+सि । ३५० सू० रेफस्य वकारस्य च लोपः, शकारस्य सकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **पासं** इति सिद्धम् । **शीर्षम्** । शीर्ष+सि । २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारः, रेफस्य लोपः, पूर्ववदेव **सीसं** इति सिद्धम् । **ईश्वरः** । ईश्वर+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, शकारस्य सकारः, पूर्ववदेव **ईसरो** इति सिद्धम् । **द्वेष्यः** । द्वेष्य+सि । ३४८ सू० दकारस्य लोपः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, २६० सू० षकारस्य सकारः, पूर्ववदेव **वेसो** इति सिद्धम् । **लास्यम्** । लास्य+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **लासं** इति सिद्धम् । **आस्यम्** । आस्य+सि । यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **आसं** इति सिद्धम् । **प्रेष्यः** । प्रेष्य+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सू० षकारस्य सकारः, पूर्ववदेव **पेसो** इति सिद्धम् । **अवमाल्यम्** । अवमाल्य+सि । १७२ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ओकारः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **ओमालं** इति सिद्धम् । **आज्ञा** । आज्ञा+सि । ३१३ सू० ज्ञस्य णकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपः, ११ सू० सकारलोपे **आणा** इति सिद्धम् । **आज्ञप्तिः** । आज्ञप्ति+सि । ज्ञस्य णकारः, ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे—**आणत्ती** इति सिद्धम् । **आज्ञपनम्** । आज्ञपन+

सि। ज्ञस्य णकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, पूर्ववदेव **आणवणं** इति सिद्धम्। एषु प्रयोगेषु अलाक्षणिको दीर्घस्वरोऽतः शेषादेशभूतानां व्यञ्जनानां द्वित्वाभावः। **अनुस्वारात्**। अनुस्वारात् परवर्तिनां शेषादेशभूत-भूतानां व्यञ्जनानां द्वित्वं न भवति। यथा—**त्र्यस्रम्**। त्र्यस्र+सि। ३५० सू० रेफस्य यकारस्य च लोपः, २६ सू० आदेः स्वरस्य अनुस्वारागमः, रेफस्य लोपः, पूर्ववदेव **तंसं** इति सिद्धम्। **सन्ध्या**। सन्ध्या+सि। २५ सू० नकारस्यानुस्वारे, २९७ सू० ध्यस्य झकारे, सेर्लोपे **संझा** इति सिद्धम्। **विंध्यः**। विंध्य+सि। ध्यस्य झकारः, पूर्ववदेव **विंझो** इति सिद्धम्। **कांस्यालः**। कांस्याल+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **कंसालो** इति सिद्धम्। **तंसं** इत्यत्र लाक्षणिकोऽनुस्वारः, **संझा** इत्यादिषु रूपेष्वलाक्षणिकोऽनुस्वारः, अतरेषु प्रयोगेषु शेषादेशभूतानां व्यञ्जनानां द्वित्वाभावः।

३६४—**रेफः शेषो नास्ति**। शेषभूतस्य रेफस्य न किमप्युदाहरणं वर्ततेऽतस्तस्य नात्रोल्लेखः। **आदेश**। आदेशभूतस्य व्यञ्जनस्योदाहरणानीमानि सन्ति। यथा—**सौन्दर्यम्**। सौन्दर्य+सि। १६० सू० औकारस्य उकारे, ५७ सू० आदेरकारस्य एकारे, ३३४ सू० र्यस्य रेफे, ३६४ सू० रेफस्य द्वित्वनिषेधे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सुन्देरं** इति सिद्धम्। **ब्रह्मचर्यम्**। ब्रह्मचर्य+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३४५ सू० 'ह्म' इत्यस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ५९ सू० चकारस्याकारस्य एकारे, र्यस्य रेफः, रेफस्य द्वित्व-निषेधः, पूर्ववदेव **बम्हचेरं** इति सिद्धम्। **पर्यन्तम्**। पर्यन्त+सि। ५८ सू० आदेरकारस्य एकारे, र्यस्य रेफे, रेफस्य द्वित्वनिषेधे, पूर्ववदेव **पेरन्तं** इति सिद्धम्। **शेषस्य हस्य**। शेषभूतस्य हकारस्योदाहरणमिदम्। **विह्वलः**। विह्वल+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपे, हकारस्य द्वित्वनिषेधे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **विहलो** इति सिद्धम्। **आदेशस्य**। आदेशभूतस्य हकारस्योदाहरणम्—**कार्षापणः**। कार्षापण+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४२ सू० संयुक्तस्य हकारे, हकारस्य द्वित्वनिषेधे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, पूर्ववदेव **कहावणो** इति सिद्धम्।

३६५—**धृष्टद्युम्नः**—धृष्टद्युम्न+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, २९५ सू० द्यस्य जकारः, जकारस्य द्वित्वं ३१३ सू० म्नस्य णकारे, ३६५ सू० णकारस्य द्वित्वनिषेधे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **धट्ठज्जुणो** इति सिद्धम्।

३६६—**कर्णिकारः**। कर्णिकार+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६६ सू० णकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे, १७७ सू० द्वितीय-ककारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **कण्णिआरो**। द्वित्वाभावे—**कणिआरो** इति भवति।

३६७—**दृप्तसिंहेन**। दृप्तश्च चासौ सिंहः, दृप्तसिंहः, तेन दृप्तसिंहेन। दृप्तसिंह+टा। १४४ सू० ऋकारस्य 'अरि' इत्यादेशः, ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ३६७ सू० तकारस्य द्वित्व-निषेधः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, २९ सू० अनुस्वारस्य लोपः ९२ सू० इकारस्य ईकारः, ४९५ सू० टा-स्थाने णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **दरिअ-सीहेण** इति सिद्धम्।

३६८—**नदी-ग्रामः**। नदीसमीपे ग्रामः नदीग्रामः, मध्यमपदलोपीसमासः। नदीग्राम+सि। १७७ सू० दकारस्य लोपः, ८४ सू० ईकारस्य इकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६८ सू० गकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **नइ-ग्गामो नइ-गामो** इति सिद्धम्। **कुसुम-प्रकरः**। कुसुमानां प्रकरः-समूहः कुसुमप्रकरः। कुसुमप्रकर+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः,

३६८ सू० पकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, पूर्ववदेव **कुसुम-प्पयरो कुसुमपयरो** इति सिद्धम्। **देवस्तुतिः**। देवानां स्तुतिः देवस्तुतिः। देवस्तुति+सि। ३१६ सू० स्तस्य थकारः, ३६८ सू० थकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्व-थकारस्य तकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **देव-त्थुई**। यत्र—द्वित्वं न जातं तत्र **देव-थुई** इति भवति। **हर-स्कन्दौ**। हरश्च स्कन्दश्च इति हरस्कन्दौ। हर-स्कन्द+औ। २७६ सू० स्कस्य खकारः, समासे वैकल्पिकं द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, बहुलाधिकारात् १८७ सूत्रे प्रायोग्रहणात् खकारस्य हकाराभावः, ६१९ सू० द्विवचनस्य वहुवचनम्, ४९३ सू० जसो लक्, ५०१ सू० अकारस्य दीर्घे **हर-क्खन्दा हर-खन्दा** इति सिद्धम्। **आलान-स्तम्भः**। आलानश्चासौ स्तम्भः इति आलान-स्तम्भः। आलानस्तम्भ+सि। ३८८ सू० आलान-शब्दे लकारनकारयोः व्यत्ययः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, २७९ सू० स्तस्य खकारः, खकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारः, पूर्ववदेव, **आणाल-क्खम्भो आणाल-खम्भो** इति सिद्धम्। **बहुलाधिकारात्**। **बहुलाधिकारादशेषादेशयोरपि**। प्रस्तुत-सूत्रेण समासदशायां शेषादेशभूतानामेव व्यञ्जनानां वैकल्पिकं द्वित्वं विधीयते नान्येषां। परन्तु बहुलस्याधिकाराद् शेषादेशभिन्नानामपि व्यञ्जनानां वैकल्पिकं द्वित्वं जायते। यथा—**स-पिपासः**। पिपासया सह वर्तमानः सपिपासः। स-पिपास+सि। **बहुलाधिकारात्** ३६८ सू० अशेषादेश-रूपस्यपि पकारस्य समासे वैकल्पिकं द्वित्वं, २३१ सू० पकारस्य वकारः, पूर्ववदेव **स-प्पिवासो सपिवासो** इति सिद्धम्। **बद्धफलः**। बद्धं फलं यस्य यस्मिन् वा स बद्धफलः। बद्धफल+सि। बहुलाधिकारात् ३६८ सू० फकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारे, पूर्ववदेव **बद्धप्फलो, बद्धफलो** इति सिद्धम्। **मलय-शिखर-खण्डम्**। मलयस्य शिखरम् मलयशिखरम्, तस्य खण्डम्। मलयशिखरखण्ड+सि। २६० सू० शकारस्य सकारः, १८७ सू० प्रथम-खकारस्य हकारः, बहुलाधिकारात् ३६८ सू० खकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्वखकारस्य ककारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मलय-सिहर-क्खण्डं**—**मलय-सिहर-खण्डं** इति सिद्धम्। **प्र-मुक्तम्**। प्रकृष्टं मुक्तं प्रमुक्तम्। प्रमुक्त+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, बहुलाधिकारात् मकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, २७३ सू० संयुक्तस्य ककारः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वं, पूर्ववदेव **पम्मुक्कं, पमुक्कं** इति सिद्धम्। **अदर्शनम्**। न दर्शम् अदर्शनम्। अदर्शन+सि। बहुलाधिकाराद् दकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, २६ सू० द्वितीयस्वरस्य अनुस्वारागमः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, शकारस्य सकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, पूर्ववदेव **अद्दंसणं अदंसणं** इति सिद्धम्। **प्रतिकूलम्**। प्रतिकूल+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, बहुलाधिकारात् ककारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्ववदेव **पडिक्कूलं पडिकूलं** इति सिद्धम्। **त्रैलोक्यम्**। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्। त्रैलोक्य+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, बहुलाधिकारात् लकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० ककार-द्वित्वे, पूर्ववदेव **तेल्लोक्कं तेलोक्कं** इति सिद्धम्।

३६९—तैलम्। तैल+सि। १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, ३६९ सू० लकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **तेल्लं** इति सिद्धम्। **मण्डूकः**। मण्डूक+सि। ककारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मण्डुक्को** इति सिद्धम्। **विचकिलम्**। विचकिल+सि। १६६ सू० आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह एकारः, १७७ सू०

ककारस्य लोपः, लकारस्य द्वित्वं, पूर्ववदेव **वेइल्लं** इति सिद्धम् । **ऋजुः** । ऋजु+सि । १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, जकारस्य द्वित्वं, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः, ११।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **उज्जू** इति सिद्धम् । **व्रीडा** । व्रीडा+सिं । ३५० सू० रेफस्य लोपः, डकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सेर्लोपे **विड्डा** इति सिद्धम् । **प्रभूतम्** । प्रभूत+सि । रेफस्य लोपः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, तकारस्य द्वित्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, पूर्ववदेव **बहुत्तं** इति सिद्धम् । **अनन्त्यस्य** । अन्ते भवोऽन्त्यः, न अन्त्यः, अनन्त्यः । अनन्त्यभूतानां व्यञ्जनानामुदाहरणानि निर्दर्शयति वृत्तिकारः । यथा—**स्रोतः** । स्रोतस्+सि । रेफस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ११ सू० सकारस्य लोपः, प्रयोगदर्शनात् ८४ सू० ह्रस्वाभावे, पूर्ववदेव **सोत्तं** इति सिद्धम् । **प्रेम** । प्रेमन्+सि । रेफस्य लोपः मकारस्य द्वित्वं, ११ सू० नकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **पेम्मं** इति सिद्धम् । **यौवनम्** । यौवन+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारः, १६० सू० औकारस्य उकारः, वकारस्य द्वित्वं, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, पूर्ववदेव **जुव्वणं** इति सिद्धम् । **आर्षे** । आर्षप्राकृते अनन्त्यस्य व्यञ्जनस्य द्वित्वं न भवति । यथा—**प्रतिस्रोतः** । प्रतिस्रोतस्+सि । प्रथम-रेफस्य लोपः, २०६ सू० तकारस्य डकारः, द्वितीयरेफस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ११ सू० सकारस्य लोपः, सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पडिसोओ** इति सिद्धम् । आर्षत्वादत्र ३६९ सू० सकारस्य द्वित्वं न जातम् । **विश्रोतसिका** । विश्रोतसिका+सि । रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारे, सकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, आर्षत्वादत्र द्वितीय-सकारस्य द्वित्वं न जातम्, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सेर्लोपे **विस्सोअसिआ** इति सिद्धम् ।

३७०—सेवा । सेवा+सि । ३७० सू० वकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे, ११।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **सेव्वा सेवा** इति सिद्धम् । **नीडम्** । नीड+सि । १०६ सू० आदेरीकारस्य वैकल्पिकः एकारः, डकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **नेड्डं नीडं** इति सिद्धम् । **नखाः** । नख+जस् । खकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, ३६० सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ४९३ सू० जसोलुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घः, द्वित्वाभावे १८७ सू० खकारस्य हकारे **नक्खा नहा** इति भवति । **निहितः** । निहित+सि । तकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, द्वित्वाभावे १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **निहित्तो निहिओ** इति सिद्धम् । **व्याहृतः** । व्याहृत+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, ३७० सू० तकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, द्वित्वाभावे १७७ सू० तकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **वाहित्तो वाहिओ** इति सिद्धम् । **मृदुकम्** । मृदुक+सि । १२७ सू० ऋकारस्य आकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, ककारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, द्वित्वाभावे ककारस्य लोपः, पूर्ववदेव **माउक्कं माउअं** इति सिद्धम् । **एकः** । एक+सि । ककारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, द्वित्वाभावे, ककारस्य लोपः, पूर्ववदेव **एक्को एओ** इति सिद्धम् । **कुतूहलम्** । कुतूहल+सि । ११७ सू० उकारस्य ओकारे, तत्संनियोगे च ऊकारस्य उकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपः, लकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्ववदेव— **कोउहल्लं कोउहलं** इति सिद्धम् । **व्याकुलः** । व्याकुल+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, लकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्ववदेव **वाउल्लो वाउलो** इति सिद्धम् । **स्थूलः** । स्थूल+सि । ३४८ सू० सकारस्य लोपः, लकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, पूर्ववदेव—**थुल्लो** । द्वित्वाभावे १२४ सू० ऊकारस्य ओकारः, २५५ सू० लकारस्य रेफे **थोरो** इति सिद्धम् । **हूतम्** । हूत+सि । तकारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, पूर्ववदेव **हुत्तं**

द्वित्त्वाभावे १७७ सू० तकारस्य लोपे **हूअं** इति सिद्धम् । **दैवम्** । दैव+सि । १५३ सू० ऐकारस्य 'अइ' इत्यादेशः, वकारस्य वैकल्पिकं द्वित्त्वं, पूर्ववदेव **दइव्वं वइवं** इति सिद्धम् । **तूष्णीकः** । तूष्णीक+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३४६ सू० ष्णस्य 'ण्ह' इत्यादेशः, ककारस्य वैकल्पिकं द्वित्त्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, पूर्ववदेव **तुण्हिक्को**। द्वित्त्वाभावे १०१ सू० ईकारस्य ह्रस्वः, १७७ सू० ककारस्य लोपे **तुण्हिओ** इति भवति । **मूकः** । मूक+सि । ककारस्य वैकल्पिकं द्वित्त्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, पूर्ववदेव—**मुक्को** । द्वित्त्वाभावे—१७७ सू० ककारस्य लोपे **मूओ** इति भवति । **स्थाणुः** । स्थाणु+सि । २७८ सू० स्थस्य खकारः, ३७० सू० णकारस्य वैकल्पिकं द्वित्त्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घः ३।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **खण्णू** द्वित्त्वाभावे—**खाणू** इति भवति । **स्त्यानम्** । स्त्यान+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३१६ सू० स्तस्य थकारः, ७४ सू० आदेराकारस्य ईकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, णकारस्य वैकल्पिकं द्वित्त्वं, संयोगे परे ह्रस्वः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **थिण्णं** द्वित्त्वाभावे—**थीणं** इति भवति । **अनन्त्यस्य** । न अन्त्यः, अनन्त्यः । द्वित्त्वं प्राप्तानामनन्त्यानां व्यञ्जनानामुदाहरणानि प्रतिपादयति वृत्तिकारः । यथा—**अस्मदीयम्** । अस्मदीय+सि । ३४५ सू० स्मस्य 'म्ह' इत्यादेशे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, ४१८ सू० इदमर्थकस्य ईय-प्रत्ययस्य 'केर' इत्यादेशे, ककारस्य वैकल्पिकं द्वित्त्वं, पूर्ववदेव—**अम्हक्केरं, अम्हकेरं** इति सिद्धम् । **तद् एव** । **तद्** । तद्+सि । ११ सू० दकारस्य लोपः पूर्ववदेव **तं** इति सिद्धम् । **एव** । अव्ययपदमिद । ४५५ सू० एवार्थे 'चेअ' इत्यव्ययस्य प्रयोगः, चकारस्य वैकल्पिके द्वित्त्वे **च्चेअ चेअ** इति सिद्धम् । **तद् एव** । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, पूर्ववदेव—**सो** इति सिद्धम् । **एव** । अव्ययपदमिदम् । ४५५ सू० अवधारणार्थे 'चिअ' इत्यव्ययस्य प्रयोगे, चकारस्य वैकल्पिके द्वित्त्वे, **च्चिअ चिअ** इति सिद्धम् ।

३७१—शार्ङ्गम् । शार्ङ्ग+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, ३७१ सू० ङकारात्पूर्वोऽकारागमः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सारङ्गं** इति सिद्धम् ।

३७२—क्ष्मा । क्ष्मा+सि । ३७२ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वोऽकारागमः, २८९ सू० संयुक्तस्य छकारे, सेर्लोपे **छमा** इति सिद्धम् । **श्लाघा** । श्लाघा+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वोऽकारः, २६० सू० शकारस्य सकारः, १८७ सू० घकारस्य हकारः, सेर्लोपे **सलाहा** इति सिद्धम् । **रत्नम्** । रत्न+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वोऽकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारश्रुतिः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **रयणं** इति सिद्धम् । **आर्षे** । आर्ष-प्राकृते सूक्ष्म-शब्दस्यापि अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वोऽकारागमो भवति । यथा—**सूक्ष्मम्** । सूक्ष्म+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वोऽकारागमः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, आर्षत्वादेव क्षस्य हकारः, पूर्ववदेव **सुहमं** इति सिद्धम् ।

३७३—स्नेहः । स्नेह+सि । ३७३ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः वैकल्पिकोऽकारागमः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सणेहो** ! आगमाभावे—३४८ सू० सकारस्य लोपे **नेहो** इति भवति । **अग्निः** । अग्नि+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः वैकल्पिकोऽकारागमः, नकारस्य णकारः, ५०८ सू० इकारस्य ईकारः, ३।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **अगणी** । आगमाभावे—३४९ सू० नकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्त्वे **अग्गी** इति भवति ।

३७४—प्लक्षः । प्लक्ष+सि । ३७४ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् लात् पूर्वः अकारागमः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पलक्खो** इति सिद्धम् ।

३७५—अर्हति । अर्ह् पूजायाम् । अर्ह्+तिव् । ३७५ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वः इकारागमः, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **अरिहइ** इति सिद्धम् । **अर्हा** । अर्हा+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः इकारागमः, सेर्लोपे **अरिहा** इति सिद्धम् । **गर्हा** । गर्हा+सि । **गरिहा** । अरिहा-वत् साध्यम् । **बर्हः** । बर्ह+सि । संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनापूर्व इकारागमः, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **बरिहो** इति सिद्धम् । **श्री** । श्री+सि । संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वे इकारागमे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्लोपे **सिरी** इति सिद्धम् । **ह्रीतः** । ह्रीत+सि । संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वे इकारागमे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **हिरीओ** इति सिद्धम् । **अह्रीकः** । अह्रीक+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः इकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, पूर्ववदेव **अहिरीओ** इति सिद्धम् । **कृत्स्नः** । कृत्स्न+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वे इकारागमे, २२८ सू० नकारस्य णकारः, पूर्ववदेव—**कसिणो** इति सिद्धम् । **क्रिया** । क्रिया+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वः इकारागमः, सेर्लोपे—**किरिया** इति सिद्धम् । **आर्षे तु** । आर्षप्राकृते तु क्रिया-शब्दस्य संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात् पूर्व इकारागामो न भवति । यथा—**हतं ज्ञानं क्रिया-हीनम्** । **हतम्** । हत+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **हयं** इति सिद्धम् । **ज्ञानम्** । ज्ञान+सि । ३१३ सू० ज्ञस्य णकारः, ९७७ सू० णकारस्य नकारः, २२८ सू० अन्तिमनकारस्य णकारः, पूर्ववदेव—**नाणं** इति सिद्धम् । **क्रिया-हीनम्** । क्रियया हीनं क्रियाहीनम् । क्रियाहीन+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, आर्षत्वात् अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः इकारागमाभावः, नकारस्य णकारः, पूर्ववदेव **किया-हीणं** इति सिद्धम् । **दिष्ट्या** । अव्ययपदमिदम् । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः इकारागमः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, १७७ सू० यकारस्य लोपे **दिट्ठिआ** इति सिद्धम् ।

३७६—आदर्शः । आदर्श+सि । १७७ सू० दकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, ३७६ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः वैकल्पिकः इकारागमः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **आयरिसो** । आगमाभावे—२६ सू० द्वितीयस्याकारस्य अनुस्वारागमः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारे **आयंसो** इति सिद्धम् । **सुदर्शनः** । सुष्ठु दर्शनं यस्य स सुदर्शनः । सुदर्शन+सि । संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात् शकारात् पूर्वे इकारागमे, शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव—**सुदरिसणो** आगमाभावे—२६ सू० द्वितीयस्वरान्तेऽनुस्वारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे **सुदंसणो** इति भवति । **दर्शनम्** । दर्शन+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः वैकल्पिकः इकारागमः, शकारस्य सकारः, नकारस्य णकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **दरिसणं** । आगमाभावे २६ सू० प्रथमस्याकारस्य अनुस्वारागमे, रेफस्य लोपे **दंसणं** इति भवति । **वर्षम्** । वर्ष+सि । संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात् पूर्वे इकारागमे, २६० सू० षकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **वरिसं** आगमाभावे रेफस्य लोपे, ४३ सू० आदेरकारस्य दीर्घे **वासं** इति सिद्धम् । **वर्षा** । वर्षा+सि । संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वे इकारागमे, षकारस्य सकारे १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **वरिसा** इकारागमाभावे रेफस्य लोपे, आदेरकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **वासा** इति सिद्धम् ।

वर्षशतम्। वर्षाणां शतं वर्षशतम्। वर्षशत+सि। संयुक्तान्त्यव्यञ्जनापूर्वे इकारागमे, षकारस्य शकारस्य च सकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, पूर्ववदेव **वरिससयं** आगमाभावे रेफस्य लोपे, आदेरकारस्य दीर्घे **वाससयं** इति सिद्धम्। **व्यवस्थितविभाषया।** **क्वचित्** सूत्रस्य पृवृत्तिर्नित्या, क्वचित्प्रवृत्तिर्विकल्पेन, क्वचिदन्यदेव कार्यं भवति, इत्येवंरूपा या व्यवस्थिता-व्यवस्थां प्राप्ता, विभाषा-विकल्पः व्यवस्थित-विभाषा। अनया परिभाषया कस्मिंश्चित् स्थले संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात् पूर्वः इकारागमो नित्यरूपेण भवति, न तु वकल्पेन। यथा-**परामर्शः**। परामर्श+सि। ३७६ सू० संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात् पूर्वे नित्ये इकारागमे, शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **परामरिसो** इति सिद्धम्। **हर्षः**। हर्ष+सि। रेफस्य नित्यरूपेण इकारागमे, षकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **हरिसो** इति सिद्धम्। **अमर्षः**। अमर्ष+सि। नित्यरूपेण रेफस्य इकारागमे, षकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **अमरिसो** इति सिद्धम्। एषु त्रिषु प्रयोगेष, व्यवस्थितविभाषया अविकल्पेन=नित्यरूपेण इकारागमो जातः। अग्रिमे प्रयोगद्वये व्यवस्थितविभाषया विकल्पेन सूत्रस्य प्रवृत्तिः भवति। यथा—**तप्तः**। तप्त+सि। प्रस्तुत-सूत्रेण पकारस्य वैकल्पिके इकारागमे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **तविओ** आगमाभावे ३४८ सू० पकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे **तत्तो** इति भवति। **वज्रम्**। वज्र+सि। जकारस्य वैकल्पिके इकारागमे, १७७ सू० जकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **वइरं** आगामाभावे ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे **वज्जं** इति भवति।

३७७—❀**क्लिन्नः**। क्लिन्न+सि। ३७७ सू० संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात् पूर्वे इकारागमे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **किलिन्नं** इति सिद्धम्। **क्लिष्टम्**। क्लिष्ट+सि। ककारस्य इकारागमे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, पूर्ववदेव **किलिट्ठं** इति सिद्धम्। **श्लिष्टम्**। श्लिष्ट+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, सकारस्य इकारागमे, ष्टस्य ठकारे, ठकारस्य द्वित्वे, पूर्वठकारस्य टकारे, पूर्ववदेव **सलिट्ठं** इति सिद्धम्। **प्लुष्टम्**। प्लुष्ट+सि। पकारस्य इकारागमे, ष्टस्य ठकारे, ठकारस्य दित्वे, पूर्वठकारस्य टकारे, पूर्ववदेव **पिलुट्ठं** इति सिद्धम्। **प्लोषः**। प्लोष+सि। पकारस्य इकारागमे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पिलोसो** इति सिद्धम्। **श्लेष्मा**। श्लेष्मन्+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, सकारस्य इकारागमे, ३४५ सू० ष्मस्य 'म्ह' इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ११ सूत्रेण नकारस्य लोपे जाते सति, पूर्ववदेव **सिलिम्हो** इति सिद्धम्। **श्लेषः**। श्लेष+सि। शकारस्य सकारे, सकारस्य इकारागमे, षकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **सिलेसो** इति सिद्धम्। **शुक्लम्**। शुक्ल+सि। शकारस्य सकारः, ककारस्य इकारागमः, ३७० सू० ककारस्य वैकल्पिकं द्वित्वं, पूर्ववदेव **सुक्किलं** द्वित्वाभावे १७७ सू० ककारस्य लोपे **सुइलं** इति भवति। **श्लोकः**। श्लोक+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, लकारस्य इकारागमे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **सिलोओ** इति सिद्धम्। **क्लेशः**। क्लेश+सि। ककारस्य इकारागमे, शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **किलेसो** इति सिद्धम्। **अम्लम्**। अम्ल+सि। मकारस्य इकारागमे, पूर्ववदेव—**अमिलं** इति सिद्धम्। **ग्लायति**। ग्लै (ग्ला) हर्षक्षये। ग्ला+तिव्। गकारस्य इकारागमः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **गिलाइ** इति सिद्धम्। **ग्लानम्**। ग्लान+सि। गकारस्य इकारागमः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, पूर्ववदेव, **गिलाणं** इति सिद्धम्। **म्लायति**। म्लै (म्ला) म्लाने। म्ला+तिव्। मकारस्य इकारागमे, पूर्ववदेव **मिलाइ** इति -

❀ यदि क्लृप्तः इतिच्छाया भवेत्तदा १४५ सूत्रेण लृकारस्य इलिरादेशो विधेयः।

सिद्धम् । **म्लानम्** । म्लान+सि । मकारस्य इकारागमे, नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव – **मिलाणं** इति सिद्धम् । **क्लाम्यति** । क्लमु (क्लम्) खेदे । क्लम्+तिव् । ककारस्य इकारागमे, ९०१ सू० मकारस्य द्वित्त्वं, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, पूर्ववदेव **किलम्मइ** इति सिद्धम् । **क्लान्तम्** । क्लान्त+सि । ककारस्य इकारागमे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **किलन्तं** इति सिद्धम् । **क्वचिन्न भवति** । बहुलाधिकारात् क्वचित् संयुक्तान्त्यव्यञ्जनलकारात् पूर्वं इकारागमो न भवति । यथा—**क्लमः** । क्लम+सि । ३५० सू० लकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **कमो** इति सिद्धम् । अत्र बहुलाधिकारात् इकारगमो न जातः । एवमेव निम्नाङ्कितेषु चतुर्षु प्रयोगेषु बहुलाधिकारात् इकारागमो न भवति । यथा—**प्लवः** । प्लव+सि । लकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **पवो** इति सिद्धम् । **विप्लवः** । विप्लव+सि । लकारस्य लोपः, ३६० सू० पकारद्वित्त्वे, पूर्ववदेव **विप्पवो** इति सिद्धम् । **शुक्ल-पक्षः** । शुक्लश्चासौ पक्षः, शुक्ल-पक्षः । शुक्लपक्ष+सि । २६० सू० शकारस्य सकारः, लकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्त्वं, २७४ सू० क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्त्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, पूर्ववदेव **सुक्क-पक्खो** इति सिद्धम् । **उत्प्लावयति** । उत्प्लव् उत्प्लवने । उत्प्लव्+णिग्+तिव् । ३४८ सू० तकारस्य लोपः, लकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्त्वं, ६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घः, ६३८ सू० णिगः एकारः, पूर्ववदेव **उप्पावेइ** इति सिद्धम् ।

३७८—स्याद् । अव्ययपदमिदम् । ३७८ सू० संयुक्तस्य यकारात् पूर्वे इकारागमे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, ११ सू० दकारस्य लोपे **सिआ** इति सिद्धम् । **स्याद्-वादः** । स्याद्-वाद+सि । संयुक्तस्य यकारात्पूर्वं इकारागमः, यकारस्य लोपः, प्रथम-दकारस्य लोपः, १७७ सू० द्वितीय-दकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सिआ-वाओ** इति सिद्धम् । **भव्यः** । भव्य+सि । यकारात्पूर्वं इकारागमः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **भविओ** इति सिद्धम् । **चैत्यम्** । चैत्य+सि । १४८ स० ऐकारस्य एकारः, तकारस्य इकारागमः, १७७ सू० तकारस्य यकारस्य च लोपः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३. सू० मकारस्यानुस्वारे **चेइअं** इति सिद्धम् । **चौर्यसम** । चौर्यसमानां शब्दानामुदाहरणानि निरूपयति वृत्तिकारः । **चौर्यम्** । चौर्य+सि । १५९ सू० औकारस्य ओकारः, रेफस्य इकारागमः, १७७ स० यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **चोरिअं** इति सिद्धम् । **स्थैर्यम्** । स्थैर्य+सि । ३४८ सू० सकारस्य लोपः, १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, रेफस्य इकारागमः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **थेरिअं** इति सिद्धम् । **भार्या** । भार्या+सि । रेफस्य इकारागमे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **भारिआ** इति सिद्धम् । **गाम्भीर्यम्** । गाम्भीर्य+सि । ८४ सू० सयोगे परे ह्रस्वः, रेफस्य इकारागमः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **गम्भीरिअं** इति सिद्धम् । **गभीर्यम्** । गभीर्य+सि । १८७ सू० भकारस्य हकारः, रेफस्य इकारागमः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **गहीरिअं** इति सिद्धम् । **आचार्यः** । आचार्य+सि । ७३ सू० चकारस्याकारस्य अकारः, १७७ सू० चकारस्य लोपः, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, रेफस्य इकारागमे, यकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **आयरिओ** इति सिद्धम् । **सौन्दर्यम्** । सौन्दर्य+सि । १६० सू० औकारस्य उकारे, रेफस्य इकारागमे, यकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **सुन्दरिअं** इति सिद्धम् । **शौर्यम्** । शौर्य+सि । १५९ औकारस्य ओकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, रेफस्य इकारागमे, यकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **सोरिअं** इति सिद्धम् । **वीर्यम्** । वीर्य+सि । रेफस्य इकारागमः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **वीरिअं** इति सिद्धम् । **वर्यम्** । वर्य+सि । रेफस्य इकारागमः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **वरिअं** इति सिद्धम् । **सूर्यः** । सूर्य+सि । रेफस्य

इकारागमः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **सूरिओ** इति सिद्धम् । **धैर्यम्** । धैर्य+सि । १५५ सू० ऐकारस्य ईकारः, रेफस्य इकारागमः, यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **धीरिअं** इति सिद्धम् । **ब्रह्मचर्यम्** । ब्रह्मचर्य+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३४५ सू० ह्मस्य 'म्ह' इत्यादेशः, रेफस्य इकारागमः यकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **बम्हचरिअं** इति सिद्धम् ।

३७९—स्वप्नः । स्वप्न+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपः, ४६ सू० आदेरकारस्य इकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, ३७९ सू० नकारात्पूर्वं इकारागमः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सिविणो** इति सिद्धम् ।

३८०—स्निग्धम् । स्निग्ध+सि । ३८० सू० संयुक्तस्य नकारात्पूर्वौ वैकल्पिकौ अदितौ, ततः—**सनिग्ध+सि, सिनिग्ध+सि** इति जाते, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३४८ सू० गकारस्य लोपः, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सणिद्धं सिणिद्धं** । यत्र विश्लेषेण अकार-इकारौ न जातौ तत्र ३४८ सू० सकारस्य लोपे **निद्धं** इति भवति ।

३८१—कृष्णः । नीलपर्यायः कृष्णशब्दः । कृष्ण+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३८१ सू० संयुक्तस्य णकारात्पूर्वौ वैकल्पिकौ अदितौ, २६० सू० षकारस्य सकारः, पूर्ववदेव **कसणो कसिणो** यत्र इकार-अकारागमौ न जातौ तत्र ३४६ सू० ष्णस्य 'ण्ह' इत्यादेशे **कण्हो** इति भवति । यत्र कृष्णशब्दः **विष्णुपर्यायः** तत्र तस्य **कण्हो** इति एकमेव रूपं भविष्यति ।

३८२—अर्हः । अर्ह+सि । ३८२ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वं उकारः, अदितौ च भवतः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अरुहो, अरहो, अरिहो** इति सिद्धम् । **अर्हन्** । अर्ह् पूजायाम् । अर्ह्+शतृ=अत् । ३८२ सू० रेफस्य उकारस्य, अकारस्य, इकारस्य चागमे जाते, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, अर्हन्त+सि इति जाते, पूर्ववदेव **अरुहन्तो, अरहन्तो, अरिहन्तो** इति सिद्धम् ।

३८३—पद्मम् । पद्म+सि । ३८३ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वं वैकल्पिके उकारागमे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पउमं** । यत्र विश्लेषेण उकारो न जातस्तत्र ६१ सू० आदेरकारस्य ओकारे जाते सति, ३४८ सू० दकारस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे **पोम्मं** इति सिद्धम् । **छद्मम्** । छद्म+सि । ३८३ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वः वैकल्पिकः उकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **छउमं** । यत्र विश्लेषेण उकारो न जातस्तत्र ३४८ सू० दकारस्य लोपः, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे **छम्मं** इति सिद्धम् । **मूर्खः** । मूर्ख+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, संयुक्तस्य अन्त्य-व्यञ्जनात्पूर्वः वैकल्पिकः उकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **मुरुक्खो** उकारागमाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, पूर्वखकारस्य ककारे **मुक्खो** इति सिद्धम् । **द्वारम्** । द्वार+सि । संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वः वैकल्पिकः उकारः, पूर्ववदेव **दुवारं** । यत्र विश्लेषेण उकारागमो न जातस्तत्र ३४८ सू० दकारस्य लोपे **वारं** । यत्र ७९ सू० आकारस्य वैकल्पिकः एकारस्तत्र ३५० सू० वकारस्य लोपे **देरं** एकाराभावे **दारं** इति भवति ।

३८४—तन्वी । तन्वी+सि । ३८४ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वं उकारागमः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **तणुवी** इति सिद्धम् ।

लध्वी। लघ्वी+सि। संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वं उकारागमः, १८७ सू० घकारस्य हकारः, सेर्लोपे **लहुवी** इति भवति। **गुर्वी**। गुर्वी+सि। १०७ सू० आदेरुकारस्य अकारः, अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वं उकारागमः, सेर्लोपे **गरुवी** इति सिद्धम्। **बह्वी**। बह्वी+सि। संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वं उकारागमः, सेर्लोपे **बहुवी** इति सिद्धम्। **पृथ्वी** पृथ्वी+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, संयुक्तस्य अन्त्यव्यंजनात् पूर्वं उकारागमः, १८७ सू० थकारस्य हकारः, सेर्लोपे **पुहुवी** इति सिद्धम्। **मृद्वी**। मृद्वी+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, दकारस्य उकारागमः, १७७ सू० दकारस्म लोपः, सेर्लोपे **मउवी** इति सिद्धम्। **क्वचिदन्यत्रापि**। बहुलाधिकारात्, क्वचित् तन्वीतुल्यातिरिक्त-शब्दस्य संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनादपि पूर्वः उकारागमो भवति। यथा **स्रुघ्नम्**। स्रुघ्न+सि। **बहुलाधिकरात्** ३८४ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वमुकारागमो जातः, ३४९ नकारस्य लोपः, ३६० सू० घकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वघकारस्य गकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सुरुग्घं** इति सिद्धम्। **आर्षे**। आर्ष-प्राकृते सूक्ष्मशब्दस्यापि संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वं उकारागमो जायते। यथा **सूक्ष्मम्**। सूक्ष्म+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, आर्षत्वात् संयुक्तान्तव्यञ्जनात् पूर्वं उकारागमे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, १८७ सू० खकारस्य हकारः, पूर्ववदेव **सुहुमं** इति सिद्धम्।

३८५—एकस्वरे। एकः-एकसंख्यकः स्वरः-व्यञ्जनेतरो वर्णो यस्मिन् यस्य वा, स एकस्वरो भवति, तस्मिन्निति। **श्वःकृतम्**। **श्वः** (श्वस्)। अव्ययपदमिदम्। ३८५ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात् पूर्वं उकारागमः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ५७ सू० आदेरकारस्य एकारे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **सुवे** इति सिद्धस्। **कृतम्**। कृत+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार—श्रुतिः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कयं** इति सिद्धम्। **स्वे जनाः**। **स्वे**। स्व+जस्। संयुक्तान्त्यव्यञ्नात् पूर्वः उकारागमः, ५४७ सू० जसः 'ङे' (ए) इत्यादेशे, ङिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सुवे** इति सिद्धम्। **जनाः**। जन+जस्। २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **जणा** इति सिद्धम्। **एकस्वर इति किम्**? यदि श्वस् तथा स्व इत्येतौ शब्दौ एकस्वरवन्तौ भवेतां तदैवानयोरन्त्यव्यञ्नात् पूर्वं उकारगमो भवति, नान्यथा। समस्तत्वात् स्वजन-पदेऽनेके स्वरा विद्यन्तेऽतएवात्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। यथा-**स्व-जनः**। स्वश्चासौ जनः। स्वजन+सि। **स्वजन** इत्यस्य एक-स्वर-पदत्वाभावात् प्रस्तुत-सूत्रेण संयुक्तान्त्यव्यञ्नात् पूर्वं उकारागमो न जातः, किन्तु ३५० सू० वकारस्य लोपः, १७७ सू० जकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सयणो** इति सिद्धम्।

३८६—ज्या। ज्या+सि। ३८६ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्यञ्जनात्पूर्वः ईकारागमः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **जीआ** इति सिद्धम्।

३८७—स्थितिपरिवृत्तिः। स्थितिपरिवृत्ति-शब्दो व्यत्यय-पर्यायः। स्थितेः—स्थानस्य परिवृत्तिः परिवर्तनमिति स्थितिपरिवृत्तिः। यथा—यत्र रेफो विद्यते तत्र णकारः, यत्र णकारस्तत्र रेफस्य या स्थितिः, सैव स्थितिपरिवृत्तिः कथ्यते। **करेणूः**। करेणू+सि। ३८७ सू० रेफणकारयोः व्यत्ययः, स्थान-परिवर्तनम्, सेर्लोपे **कणेरू** इति सिद्धम्। **वाराणसी**। वाराणसी+सि। ३८७ सू० रेफणकारयोर्व्यत्ययः, सेर्लोपे **वाणारसी** इति सिद्धम्। **स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् पुंसि न भवति**। प्रस्तुतसूत्रे स्त्रीलिङ्गिनः करेणू-शब्दस्य निर्देशो विहितोऽतः पुल्लिङ्गिनः करेणु-शब्दस्य रेफ-णकारयोर्व्यत्ययो न भविष्यति।

यथा—**एष करेणुः**। **एषः**। एतद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **एसो** इति सिद्धम्। **करेणुः**। करेणु+सि। सूत्रे **करेणू** इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावे ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **करेणू** इति सिद्धम्।

३८८—आलानम्। आलान+सि। ३८८ सू० लकार-नकारयोर्व्यत्यये, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३३ सू० पुंस्त्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **आणालो** इति सिद्धम्। **आलान-स्तम्भः**। आलानश्चासौ स्तम्भः, आलानस्तम्भः=हस्तिबन्धनस्तम्भः। आलान-स्तम्भ+सि। लकार-नकारयोर्व्यत्यये, नकारस्य णकारे, २७९ सू० स्तस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **आणाल-क्खंभो** इति सिद्धम्।

३८९—अचलपुरम्। अचलपुर+सि। ३८९ सू० चकारलकारयोर्व्यत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अलचपुरं** इति सिद्धम्।

३९०—महाराष्ट्रम्। महाराष्ट्र+सि। ३९० सू० हकाररेफयोः व्यत्यये, ६९ सू० आदेराकारस्य अकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **मरहट्ठं** इति सिद्धम्।

३९१—ह्रदः। ह्रद+सि। ३९१ सू० हकारदकारयोः व्यत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**द्रहो** इति सिद्धम्। **आर्षे**। आर्षप्राकृते हकार-दकारयोर्व्यत्ययो न भवति। यथा **ह्रदः**। ह्रद+सि। आर्षत्वादेव संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात् पूर्वेऽकारागमे, १७७ सू० दकारस्य **लोपे**, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, ११।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **हरए** इति सिद्धम्। **महापुण्डरीकः**। महांश्चासौ पुण्डरीकः—कमलं महापुण्डरीकः। महापुण्डरीक+सि। ६७ सू० आकारस्य अकारे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **महपुण्डरिए** इति सिद्धम्।

३९२—हरितालः। हरिताल+सि। ३९२ सू० रेफ-लकारयोः वैकल्पिके व्यत्यये, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **हलिआरो** व्यत्ययाभावे १७७ सू० ककारस्य लोपे **हरिआलो** इति भवति।

३९३—लघुकम्। लघुक+सि। १८७ सू० घकारस्य हकारे, ३९३ सू० लकार-हकारयोः वैकल्पिके व्यत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **हलुअं**। व्यत्ययाभावे १८७ सू० घकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे **लहुअं** इति सिद्धम्। **घस्य व्यत्यये कृते**। घकारस्य हकारे जाते एव लकार-हकारयोर्व्यत्ययो भवति, नान्यथेति कथनस्य किं कारणमिति प्रश्नः? उत्तरयति वृत्तिकारो यद् यदि घकारस्य हकारं न विधाय तस्य व्यत्ययो भवेत्तदा घकारस्य व्यत्यये कृते पदादित्वात्तस्य हकारो न भवितुं शक्नोत्यतएव **घस्य हत्वे कृते** इति भणितम्। अयं भावः—लघुक-शब्दस्य लकारस्य घकारस्य च व्यत्यये कृते, लकारस्य स्थाने घकारे परिवर्तिते '**घलुक**' इति दशायां घकारस्य आदि-भूतत्वात् १८७ सूत्रेण हकारो न भविष्यतीति हेतोः "**घस्य हत्वे कृते**" इति प्रतिपादितम्। न च वाच्यं, घकारस्य आदिभूतत्वात् का हानिः? यतोहि १८७ सूत्रमनादि-भूतस्य घकारस्यैव हकार-विधानं करोति न त्वादिभूतस्य।

३९४—ललाटम्। ललाट+सि। २५७ सू० आदिलकारस्य णकारः, १९५ सू० टकारस्य डकारः, ३९४ सू० लकार-डकारयोः वैकल्पिको व्यत्ययः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **णडालं**।

व्यत्ययाभावे **णलाडं** इति भवति। **ललाटे च**। २५७ सूत्रे प्रस्तुतसूत्रे च किमन्तरमिति प्रदर्शयति वृत्तिकारः। २५७ सूत्रेण आदिभूतस्य लकारस्य णकारो विहितः, परन्तु प्रस्तुत-सूत्रेण द्वितीय-लकारस्य डकारो निर्दिष्टः। इदमेवान्तरमेतयोः सूत्रयोः मध्येऽवगन्तव्यम्।

३९५—गुह्यम्। गुह्य+सि। ३९५ सू० हकार-यकारयोः वैकल्पिकः व्यत्ययः, यत्र व्यत्ययो न जातस्तत्र २९७ सू० ह्यस्य झकारः, ३६० सूत्रेण झकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारः, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **गुय्हं गुज्झं** इति सिद्धम्। **सह्यम्**। सह्य+सि। यकार-हकारयोः वैकल्पिको व्यत्ययः, व्यत्ययाभावे ह्यस्य झकारः, झकारस्य द्वित्वं, पूर्वझकारस्य जकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सय्हो सज्झो** इति सिद्धम्।

३९६—स्तोकम्। स्तोक+सि। ३९६ सू० स्तोकशब्दस्य **थोक्क थोव थेव** एते वैकल्पिका आदेशाः, आदेशाभावे—३१६ सू० स्तस्य थकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारे **थोक्कं, थोवं, थेवं, थोअं** इति सिद्धम्।

३९७—दुहिता। दुहितृ+सि। ३९७ सू० दुहितृशब्दस्य वैकल्पिकः धूआ इत्यादेशः, आदेशाभावे—१७७ सू० तकारस्य लोपे, ५२४ सू० डा(आ)प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **धूआ दुहिआ** इति सिद्धम्। **भगिनी**। भगिनी+सि। ३९७ सू० भगिनीशब्दस्य वैकल्पिकः बहिणी इत्यादेशः, आदेशाभावे—१७७ गकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्लोपे—**बहिणी भइणी** इति सिद्धम्।

३९८—वृक्षः। वृक्ष+सि। ३९८ सू० वृक्षशब्दस्य 'रुक्ख' इत्यादेशो वैकल्पिकः, आदेशाभावे १२६ सू० ऋकारस्य अकारो भवति, २८८ सूत्रेण क्षस्य छकारः, ३६० सूत्रेण छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारः, ३९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **रुक्खो वच्छो** इति सिद्धम्। **क्षिप्तम्**। क्षिप्त+सि। ३९८ सू० क्षिप्तशब्दस्य विकल्पेन 'छूढ' इत्यादेशो भवति, आदेशाभावे २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३४८ सू० पकारस्य लोपः, ३६० तकारस्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **छूढं खित्तं** इति सिद्धम्। **उत्क्षिप्तम्**। उत्क्षिप्त+सि। ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३९८ सू० क्षिप्त—शब्दस्य विकल्पेन छूढ इत्यादेशे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, आदेशाभावे ३४८ सू० तकारस्य लोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वे, पूर्वखकारस्य ककारे, ३४८ सू० पकारस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **उच्छूढं उक्खित्तं** इति सिद्धम्।

३९९—वनिता। वनिता+सि। ३९९ सू० वनिताशब्दस्य विकल्पेन विलया इत्यादेशे, आदेशाभावे २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्लोपे **विलया वणिआ** इति सिद्धम्। **विलयेति संस्कृते**। संस्कृतभाषायामपि **विलया** इत्यस्य शब्दस्य प्रयोगो भवतीति केचिदाचार्याः स्वीकुर्वन्ति।

४००—गौणस्य। गौणस्य=अप्रधानस्य। यत्र ईषत्-शब्दस्यात्मीयः स्वतंत्रोऽर्थोऽमुख्यो भवेत्तत्र तस्य कूर इत्यादेशो वैकल्पिको भवतीति भावः। **चिंचा इव इषत्-पक्वा**। **चिंचा**। चिंचा+सि। १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **चिंचा** इति सिद्धम्। **इव**। अव्ययपदमिदम्। ४५३ सू० इवार्थे 'व्व' इन्यस्य प्रयोगे **व्व** इति सिद्धम्। **चिंचा व्व** इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **चिंच व्व** इति भवति।**ईषत्पक्वा**। ईषत्-अल्पं पक्वा ईषत्पक्वा। ईषत्पक्वा+सि। ४०० सू० गौणस्य

'ईषत्' इत्यस्य विकल्पेन 'कूर' इत्यादेशे, ४७ आदेरकारस्य इकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वं, सेर्लोपे **कूर-पिक्का** इति सिद्धम् । **पक्षे** । अगौणत्वात्-प्रधानत्वाद् यत्र इषच्छब्दस्य प्रस्तुत-सूत्रेण कूरादेशाभावस्तत्र—**ईषत्** । अव्ययपदमिदम् । ४६ सू० आदेरकारस्य इकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ११ सू० तकारस्य लोपे **ईसि** इति भवति ।

★ शेष और आदेश भूत वर्णों से सम्बन्धित विधि ★

दो वर्णों में से जो एक वर्ण बाकी रह जाता है वह शेष वर्ण कहलाता है । आदेश का अर्थ है—एक अक्षर के स्थान पर दूसरे अक्षर का आ जाना । इस प्रकरण में शेष और आदेश भूत वर्णों के स्थान में होने वाली विधि (कार्य) का निर्देश किया जाएगा ।

३६०—पद के अनादि में वर्तमान (आदि में अविद्यमान) शेष तथा आदेश भूत वर्ण को द्वित्व होता है । **शेष वर्णों के उदारहण**, जैसे—**१—कल्पतरुः**=कप्पतरू (कल्पवृक्ष), २—**भुक्तम्**=भुत्तं (भोगा हुआ), ३—**दुग्धम्**=दुद्ध (दूध), ४—**नग्नम्**=नग्गो । (वस्त्र रहित), **५—उल्का**=उक्का (अंगार) ६—**अर्कः**=अक्को (सूर्य), ७—**मूर्खः**=मुक्खो (विवेक विकल) । **आदेश-भूत वर्णों के उदाहरण**, जैसे—१—**दष्टः**=डक्को (डसा हुआ), २—**यक्षः**=जक्खो (वाणव्यन्तर देव), ३—**रक्तः**=रग्गो (रंगा हुआ, लाल), ४—**कृत्तिः**=किच्ची (रचना), **५—रुक्मी**=रुप्पी (भीष्म का ज्येष्ठ पुत्र, रुक्मिणी का भाई) यहां शेष-भूत तथा आदेश-भूत वर्णों को द्वित्व किया गया है । **बहुलाधिकार**=से कहीं पर शेष तथा आदेश भूत वर्ण को द्वित्व नहीं भी होता । जैसे—**१—कृत्स्नः**=कसिणो (सम्पूर्ण), यहां सकार शेष-भूत वर्ण था, तथापि यह द्वित्व नहीं हो सका । सूत्र में पठित "**अनादौ**" इस पद का अर्थ है—अनादि में । भाव यह है कि शेष और आदेश भूत वर्ण आदि में नहीं होने चाहिएं । ऐसा कहने से ही—**१—स्खलितम्**=खलिअं (भ्रष्ट), २—**स्थविरः**=थेरो (बूढा), ३—**स्तम्भः**=खम्भो (खंभा), इन शब्दों के आदि में विद्यमान खकार और थकार ये वर्ण द्वित्व नहीं हो सके । प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि शेष—भूत और आदेशभूत वर्ण संयुक्त हों तो उस दशा में इस सूत्र से उन को द्वित्व हो सकता है या नहीं ? उत्तर में निवेदन है कि संयुक्त वर्ण दो होने से द्वित्व (संयुक्त) हैं ही, अतः उन्हें पुनः द्वित्व करने की आवश्यकता ही नहीं है । जैसे—**१—वृश्चिकः**=विञ्चुओ (बिच्छू), २—**भिन्दिपालः**=भिण्डिवालो (शस्त्र-विशेष) यहां पर 'ञ्च' और 'ण्ड' ये दोनों वर्ण संयुक्त होने से प्रस्तुत सूत्र के द्वारा पुनः द्वित्व नहीं हो सके ।

३६१—वर्ग के द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण को द्वित्व का प्रसंग उपस्थित होने पर (द्वित्व वर्णों में से) आरंभ के वर्ण अपने से पूर्व वर्ण का रूप ले लेते हैं । अर्थात् वर्ग के द्वितीय वर्ण को जब द्वित्व की स्थिति बनती है तो (दोनों वर्णों में से) आरम्भ के वर्ण को उस से पहले वर्ण का रूप प्राप्त हो जाता है । इसी भाँति जब वर्ग का चतुर्थ वर्ण द्वित्व होता है तो दोनों वर्णों में से आरम्भ के पहले वर्ण को उस वर्ण का पहला वर्ण हो जाता है । इसे उदाहरण से समझिए । जैसे ख् वर्ग का द्वितीय और घ् वर्ग का चतुर्थ अक्षर है । ये दोनों यदि द्वित्व हों तो इन की ख् ख्, घ् घ् यह स्थिति बनती है । ख् ख् इन दोनों में पहला ख् वर्ण आरम्भ में होने से **उपरि** कहा गया है । सूत्रकार कहते हैं कि उपरि वर्ण को पूर्व का वर्ण होता है । खकार का पूर्व वर्ण ककार होता है । अतः पहले ख् को ककार हो जाता है । इसी तरह घ् घ् इन चतुर्थ वर्णों में प्रथम वर्ण घकार है । यह उपरि कहलाता है । यह भी अपने से

पहले वर्ण का रूप ले लेता है। घकार से पहला वर्ण गकार होता है। इसलिए प्रथम घकार को गकार वर्ण हो जाता है। यही पद्धति सर्वत्र समझनी चाहिए। **द्वित्व दशा को प्राप्त शेष वर्णों के उदाहरण,** जैसे – **१- व्याख्यानम्**=वक्खाणं (भाषण), **२ - व्याघ्रः**=वग्घो (बाघ), **३—मूर्च्छा**=मुच्छा (बेहोशी), **४—निर्झरः**=निज्झरो (झरना), **५ - कष्टम्**=कट्ठं (दुःख), **६ - तीर्थम्**=तित्थं (तैरने का साधन, धर्म), **७—निर्धनः**=निद्धणो (अकिंचन), **८—गुल्फम्**=गुप्फं (पैर की गांठ, गिट्टा), **९—निर्भरः**=निब्भरो (पूर्ण, अवलंबित)। द्वित्वदशा को प्राप्त हुए **आदेश-भूत वर्णों के उदाहरण,** जैसे—**१ - यक्षः**=जक्खो (व्यन्तर-विशेष), **२—अक्षि**=अच्छी (आंख), **३—मध्यम्**=मज्झं (बीच में), **४—स्पृष्टिः**=पट्ठी (छुआव, लगाव), **५ - वृद्धः**=वुड्ढो (बूढा), **६—हस्तः**=हत्थो(हाथ), **७—आश्लिष्टः**=आलिद्धो (आलिंगित), **८—पुष्पम्**=पुप्फं (फूल), **९—विह्वलः**=भिब्भलो (भयभीत) यहां पर वर्णों के द्वितीय तथा चतुर्थ उपरि वर्णों को अपने से पूर्व वर्णों में परिवर्तित किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि वृत्तिकार ने "**उपरि पूर्वौ.भवतः**" इन पदों में **उपरि** शब्द को **पूर्वौ** की भाँति द्विवचनान्त क्यों नहीं रक्खा? उत्तर में निवेदन है कि उपरि यह अव्ययपद है, अव्यय से आने वाली प्रत्येक विभक्ति का लोप हो जाता है। अतः उपरि इस अव्ययपद को द्विवचनान्त दिखलाने की स्थिति ही नहीं होती है। ध्यान रहे कि यहां पर घकार-भूत आदेश का अभाव होने से उस का कोई उदाहरण नहीं दिया गया। **उदूखलम्**=ओक्खलं (ऊखल) यहां पर ३६९ सूत्र से खकार को द्वित्व किया गया है। अतः यहां वर्ग के द्वितीय वर्ण को द्वित्व की स्थिति होने से प्रस्तुत सूत्र से पूर्व खकार को ककारादेश हो गया। **नखाः**=नक्खा, नहा (नाखून) यहां पर ३७० सूत्र से खकार को द्वित्व किया गया है। वर्ग के द्वितीय वर्ण को द्वित्व की स्थिति होने से प्रस्तुत सूत्र द्वारा पूर्व खकार को ककार हो गया। इस के अतिरिक्त, समासयुक्त पदों में भी यदि वर्ग के द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण के द्वित्व की स्थिति हो तो प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति हो जाती है। जैसे—**कपिध्वजः**=कइ-द्धओ, कइ-धओ (वानर-द्वीप के राजा का नाम) यहां कपि और ध्वज इन दो पदों का समास हो रहा है। अतः यहां पर ३६८ पर सूत्र द्वारा समास में विकल्प से द्वित्व किया जाता है। जहां द्वित्व किया गया था वहां प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य कर दिया, जहां द्वित्व नहीं हुआ, वहां इस सूत्र की भी प्रवृत्ति नहीं हो सकी। ध्यान रहे कि **ख्यातः**=खाओ (प्रसिद्ध) यहां द्वित्व का प्रसग नहीं था, इसलिए प्रस्तुत सूत्र से खकार को ककार नहीं किया गया। वृत्तिकार ने "**द्वित्व-प्रसंगे**" इस पद का उल्लेख करके "द्वित्व का प्रसंग न होने पर" इस सूत्र की प्रवृत्ति का निषेध कर दिया है।

३६२—**दीर्घ** शब्द के शेषभूत उपरि-वर्ण घकार को इस का पूर्व वर्ण गकार विकल्प से होता है। **जैसे-दीर्घः**=दिग्घो, दीहो (दो मात्रा वाला स्वर)।

३६३—दीर्घ तथा अनुस्वार ये दोनों लाक्षणिक (व्याकरण के नियमों से प्राप्त) हों या अलाक्षणिक (स्वाभाविक) इन से परे आए हुए शेषभूत और आदेश-भूत वर्णों को द्वित्व नहीं होता। **लाक्षणिक दीर्घ स्वर के उदाहरण,** जैसे – **१—क्षिप्तः**=छूढो (फेंका हुआ), **२—निःश्वासः**=नीसासो (बाहिर सांस निकालना), **३—स्पर्शः**=फासो (छूना) यहां का दीर्घ स्वर लाक्षणिक है, अतः इस से परे आए शेष-भूत या आदेश-भूत वर्ण को द्वित्व नहीं किया गया। **अलाक्षणिक दीर्घ स्वर के उदाहरण,** जैसे—**१—पार्श्वम्**=पास (कन्धे के नीचे का भाग), **२—शीर्षम्**=सीस (सिर), **३—ईश्वरः**=ईसरो (ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्ति, परमात्मा), **४—द्वेष्यः**=वेसो (द्वेष करने योग्य, अप्रीतिकर), **५—लास्यम्**=

लासं (वाद्य, नृत्य गीतमय नाटकविशेष), ६—**आस्यम्**=आस (मुख), ७—**प्रेष्यः**=पेसो (भेजने योग्य), ८—**अवमाल्यम्**=ओमालं (देवोच्छिष्ट द्रव्य), ९—**आज्ञा**=आणा (हुक्म), १०—**आज्ञप्तिः**=आणत्ती (आज्ञा), ११—**आज्ञपनं**=आणवणं (निर्देश, फरमाइश) यहां पर अलाक्षणिक दीर्घ स्वर से परे शेष तथा आदेश भूत वर्णों को द्वित्व नहीं किया गया। **लाक्षणिक अनुस्वार का उदाहरण,** जैसे—१—**त्र्यस्रम्**=तंसं (त्रिकोण), **अलाक्षणिक अनुस्वार के उदाहरण,** जैसे—१—**संध्या**=संझा (सन्ध्या-काल, सांझ), २—**विंध्यः**—विञ्झो (विन्ध्याचल पर्वत), ३—**कांस्यालः**=कंसालो (वाद्यविशेष) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से द्वित्त्व का निषेध कर दिया गया।

३६४—रेफ और हकार को द्वित्व नहीं होता है। शेषभूत रेफ का सर्वथा अभाव होने से इस का कोई उदाहरण नहीं है। **आदेशभूत रेफ के उदाहरण,** जैसे—१—**सौन्दर्यम्**=सुन्देरं (सुन्दरता), २—**ब्रह्मचर्यम्**=बम्हचेरं (मैथुन से निवृत्ति), ३—**पर्यन्तम्**=पेरन्तं (तक)। **शेषभूत हकार का उदाहरण,** जैसे—१—**विह्वलः**=विहलो (व्याकुल), **आदेशभूत हकार का उदाहरण,** जैसे—१—**कार्षापणः**=कहावणो (सिक्काविशेष) यहां शेषभूत तथा आदेशभूत रेफ तथा हकार को प्रस्तुत सूत्र से द्वित्त्व नहीं किया गया।

३६५—**धृष्टद्युम्न** के आदेश-भूत णकार को द्वित्व नहीं होता। जैसे—१—**धृष्टद्युम्नः**=धट्ठज्जुणो (राजा द्रुपद का एक पुत्र) यहां ३१३ सूत्र से म्न को णकारादेश हुआ है। इसे ३६० सूत्र से द्वित्त्व होना था किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने इस का निषेध कर दिया।

३६६—**कर्णिकार** शब्द के शेषभूत णकार को विकल्प से द्वित्त्व होता है। जैसे—**कर्णिकारः**=कण्णिआरो कणिआरो (वृक्षविशेष, गोशाला का एक भक्त) यहां णकार को विकल्प से द्वित्त्व किया गया है।

३६७—**दृप्त** शब्द के शेषभूत तकार को द्वित्व नहीं होता। जैसे—**दृप्तसिंहेन**=दरिअ-सीहेण (अभिमानी शेर ने) यहां यहां शेष वर्ण तकार को द्वित्त्व नहीं हो सका।

३६८—समासदशा में आदेशभूत वर्णों को विकल्प से द्वित्त्व होता है। जैसे—१—**नदीग्रामः**=नइग्गामो नइ-गामो (नदी के किनारे पर स्थित ग्राम), २—**कुसुमप्रकारः**=कुसुमप्पयरो कुसुम-पयरो (फूलों का समूह), ३—**देवस्तुतिः**=देवत्थुई, देव-थुई (देवताओं की स्तुति), ४—**हर-स्कन्दौ**=हरक्खन्दा, हर-खन्दा (महादेव और कार्तिकेय), ५—**आलान-स्तम्भः**=आणाल-क्खम्भो आणाल-खम्भो (जिस स्तम्भ से हाथी बांधा जाता है), **बहुलाधिकार** से जो वर्ण शेष तथा आदेश भूत नहीं हैं उनको भी विकल्प से द्वित्त्व हो जाता है। जैसे—१—**स-पिपासः**=सप्पिवासो सपिवासो (तृषातुर, प्यासा), २—**बद्धफलः**=बद्ध-प्फलो बद्ध-फलो (करञ्ज का पेड़), ३—**मलयशिखर-खण्डम्**=मलयसिहर-क्खण्डं मलय-सिहर-खण्डं (मलयाचल के शिखर-चोटी का भाग), ४—**प्रमुक्तम्**=पम्मुक्कं, पमुक्कं (परित्यक्त), ५—**अदर्शनम्**=अद्दंसणं, अदंसणं (परोक्ष, दर्शन का अभाव), ६—**प्रतिकूलम्**=पडिक्कूलं, पडिकूलं (खिलाफ), ७—**त्रैलोक्यम्**=तेल्लोक्कं, तेलोक्कं (तीन जगत, स्वर्ग मर्त्य और पाताल), आदि शब्दों में पकारादि व्यञ्जन न शेष-भूत हैं और न आदेशभूत, तथापि इन को विकल्प से द्वित्त्व हो गया है।

३६९—**तैल** आदि शब्दों के अनादिभूत (आदि में अविद्यमान) अन्त्यव्यञ्जन हों या अनन्त्य-व्यञ्जन, उन को यथादर्शन (प्रयोग के अनुसार) द्वित्त्व हो जाता है। **अन्त्यव्यञ्जन के**

उदाहरण, जैसे—**१—तैलम्**=तेल्लं (तेल), २—**मण्डूकः**=मण्डुक्को (मेंढक), ३—**विचकिलम्**=वेइल्लं (एक प्रकार की मल्लिका या चमेली), ४—**ऋजुः**=उज्जू (सरल), ५—**व्रीडा**=विड्डा (लज्जा), ६—**प्रभूतम्**=बहुत्तं (बहुत), **अनन्त्य (जो अन्त्य के न हों) व्यञ्जनों के उदाहरण**, जैसे—१—**स्रोतः**=सोत्तं (झरना), २—**प्रेम**=पेम्मं (स्नेह), ३—**यौवनम्**=जुव्वणं (जवानी)। यहां पर अन्त्य तथा अनन्त्य व्यञ्जनों को द्वित्व किया गया है। कहीं पर (आर्षप्राकृत में) ३ सूत्र से द्वित्व नहीं भी होता। जैसे—१—**प्रतिस्रोतः**=पडिसोओ (प्रतिकूल प्रवाह), २=**विस्रोतसिका**=विस्सोअसिआ (विमार्गगमन, दुष्टचिन्तन) यहां पर अनादिभूत अन्त्य तथा अनन्त्य व्यञ्जन को भी द्वित्व नहीं हो सका।

३७०—**सेवा** आदि शब्दों के अनादिभूत अन्त्य तथा अनन्त्य व्यञ्जनों को यथादर्शन=प्रयोगानुसार विकल्प से द्वित्व होता है। **अन्त्य व्यञ्जनों के उदाहरण**, जैसे—१—**सेवा**=सेव्वा, सेवा (आराधना खिदमत),२—**नीडम्**=नेड्डं नीडं (घोंसला, किसी गाडी का अन्दरुनी हिस्सा, विश्राम-स्थल), ३—**नखाः**=नक्खा, नहा (नाखून), ४—**निहितः**=निहित्तो, निहिओ (स्थापित, रक्खा हुआ), ५—**व्याहृतः**=वाहित्तो, वाहिओ (उक्त, कथित), ६—**मृदुकम्**=माउक्कं, माउअं (कोमलता), ७—**एकः**=एक्को, एओ (एक), ८—**कुतूहलम्**=कोउहल्लं, कोउहलं (अपूर्व वस्तु देखने की लालसा), ९—**व्याकुलः**=वाउल्लो, वाउलो (उद्विग्न), १०—**स्थूलः**=थुल्लो, थोरो (मोटा), ११—**हूतम्**=हुत्तं, हूअं (होमा हुआ, हवन किया हुआ), १२—**दैवं**=दइव्वं दइवं (भाग्य), १३—**तूष्णीकः**=तुण्हिक्को, तुण्हिओ(मौन रहा हुआ), १४—**मूकः**=मुक्को, मूओ (गूंगा), १५—**स्थाणुः**=खण्णु, खाणू (ठूँठ रूप वृक्ष), १६—**स्त्यानम्**=थिण्णं, थीणं (कठिन, जमा हुआ), **अनन्त्य व्यञ्जनों के उदाहरण**, जैसे—१—**अस्मदीयम्**=अम्हक्केरं, अम्हकेरं (हमारा), २—**तद् एव**=तं च्चेअ, तं चेअ (उस को ही), ३—**सः एव**=सो च्चिअ सो चिअ (वह ही), आदि शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से अन्त्यानन्त्य व्यञ्जनों को विकल्प से द्वित्व किया गया है।

३७१—**शार्ङ्ग** के ङकार से पूर्व अकार का आगम होता है। जैसे—**शार्ङ्गम्**=सारङ्गं (विष्णु का धनुष्, प्रधान दल, श्रेष्ठ अवयव) यहां पर 'ङ' से पूर्व इकार का आगम किया गया है।

३७२—**क्ष्मा, श्लाघा** और **रत्न** इन शब्दों के संयुक्त व्यञ्जनों को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व अकार का आगम होता है। जैसे—१—**क्ष्मा**=छमा (पृथ्वी), २—**श्लाघा**=सलाहा (प्रशंसा), ३—**रत्नम्** रयणं (रत्न)। यहां अकार का आगम किया गया है। **आर्षप्राकृत** में ३ सूत्र से सूक्ष्म शब्द-सम्बन्धी संयुक्त व्यञ्जन को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व भी अकार का आगम हो जाता है। जैसे—**सूक्ष्मम्**=सुहमं (बारीक), प्रस्तुत सूत्र से यहां अकारागम की प्राप्ति नहीं थी किन्तु ३ सूत्र से अकारागम कर दिया गया है।

३७३—**स्नेह** और **अग्नि** शब्द सम्बन्धी संयुक्त व्यञ्जनों को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व अकार का आगम विकल्प से होता है। जैसे—१—**स्नेहः**=सणेहो, नेहो (अनुराग), २—**अग्निः**=अगणी, अग्गी (आग), यहां अकार का आगम विकल्प से किया गया है।

३७४—**प्लक्ष** शब्द के संयुक्तान्त्यव्यञ्जन लकार से पूर्व अकार का आगम होता है। जैसे—**प्लक्षः**=पलक्खो (बड का पेड), यहां लकार से पूर्व अकार का आगम किया गया है।

३७५—**र्ह, श्री, ह्री, कृत्स्न, क्रिया** और **दिष्ट्या** इन शब्दों के संयुक्त वर्ण सम्बन्धी अन्त्यव्यञ्जनों से पूर्व इकार का आगम होता है। **र्ह के उदाहरण**, जैसे—१—**अर्हति**=अरिहइ

(वह पूजा के योग्य होता है), २—**अर्हा**=अरिहा (योग्य लायक), ३—**गर्हा**=गरिहा (निन्दा, घृणा) ४ - **बर्हः**=बरिहो (मयूर), ५—**श्री**=**सिरी** (लक्ष्मी), ६—**ह्री**=हिरी (लज्जा), ७ - **ह्रीतः**=हिरीओ (लज्जित), ८—**अ-ह्रीकः**=अहिरीओ (निर्लज्ज, बेशरम), ९—**कृत्स्नः**=कसिणो (सम्पूर्ण), १०—**क्रिया**=किरिआ (व्यापार)। **आर्षप्राकृत में** 'क्रिया' शब्द का **किया** यह रूप भी देखने में आता है। **जैसे—हतं ज्ञानं क्रिया-हीनं**=हयं नाणं किया-हीणं (आचरण से हीन ज्ञान व्यर्थ है), ११—**दिष्ट्या**=दिट्ठिआ (सौभाग्य से) यहां संयुक्तवर्णों को अन्त्यव्यञ्जनों से पूर्व इकार का आगम किया गया है।

३७६ - **र्श,र्ष, तप्त और वज्र** इन के संयुक्त वर्णों को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व विकल्प से इकार का आगम होता है। **र्श के उदाहरण**, जैसे—१—**आदर्शः**=आयरिसो आयंसो (दर्पण, बैल आदि के गले का भूषण), २—**सुदर्शनः**=सुदरिसणो, सुदंसणो (जिस का दर्शन प्रशस्त हो), ३—**दर्शनम्**=दरिसणं, दंसणं (देखना, सिद्धान्त), **र्ष के उदाहरण**, जैसे—१—**वर्षम्**=वरिसं, वासं, (मेघ, भारत आदि क्षेत्र), २—**वर्षा**=वरिसा, वासा, (पानी का बरसना), ३—**वर्षशतम्**=वरिससयं, वास-सयं (सौ वर्ष), यहां पर इकार का आगम विकल्प से किया गया है। ❀**व्यवस्थितविभाषा के** कारण कहीं पर इकार का आगम वैकल्पिक न होकर नित्य भी होता है। **जैसे—१ - परामर्षः**=परामरिसो (सलाह, मशविरा, विचार), २—**हर्षः**=हरिसो (प्रसन्नता), ३—**अमर्षः**=अमरिसो (असहिष्णुता), यहाँ पर इकार का आगम विकल्प से नहीं किया गया। ४—**तप्तः**=तविओ तत्तो (तपा हुआ), ५—**वज्रम्**=वइरं, वज्जं (कठोर, हीरा, रत्नविशेष), यहां इकार का आगम वैकल्पिक है।

३७७ - संयुक्त व्यञ्जनों के अन्त्यव्यञ्जन लकार से पूर्व इकार का आगम होता है। जैसे—१—**क्लिन्नम्**=किलिन्नं (गीला), २—**क्लिष्टम्**=किलिट्ठं (मुश्किल), ३—**श्लिष्टम्**=सिलिट्ठं (मनोज्ञ, सुन्दर), ४—**प्लुष्टम्**=पिलुट्ठं (दग्ध, जला हुआ) ५—**प्लोषः**=पिलोसो (दाह, जलन), ६—**श्लेष्मा**=सिलिम्हो (कफ), ७—**श्लेषः**=सिलेसो (आलिंगन, साहित्य में एक अलंकार जिस में एक शब्द के दो या अधिक अर्थ किये जाते हैं, दो अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग), ८—**शुक्लम्**=सुक्किलं सुइलं (श्वेत वर्ण वाला), ९—**श्लोकः**=सिलोओ (पद्यमयी रचना), १०—**क्लेशः**=किलेसो (विवाद, झगड़ा), ११—**अम्लम्**=अमिलं (खट्टा पदार्थ), १२—**ग्लायति**=गिलाइ (वह जंभाई लेता है अथवा वह म्लान होता है), १३—**ग्लानम्**=गिलाणं (थका हुआ, बीमार, उदासीन), १४—**म्लायति**=मिलाइ (वह म्लान-निस्तेज होता है), १५—**म्लानम्**=मिलाणं (निस्तेज), १६—**क्लाम्यति**=किलम्मइ (वह क्लान्त-खिन्न होता है), १७—**क्लान्तम्**=किलन्तं (दुःखी), यहां पर लकार से पूर्व इकार का आगम किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर संयुक्त वर्णों के अन्त्यव्यंजन लकार से पूर्व इकार का आगम नहीं भी होता। जैसे-**१—क्लमः**=कमो (थकावट), २—**प्लवः**=पवो (तैरना, जल की बाढ़, छलांग; छोटी नाव), ३—**विप्लवः**= विप्पवो (उपद्रव), ४—**शुक्ल-पक्षः**=सुक्क-पक्खो (चानन पक्ष), ५—**उत्प्लावयति**=उप्पावेइ (वह गोते खिलाता है, कुदवाता है), यहां पर प्रस्तुत सूत्र से लकार से पूर्व इकार का आगम होना चाहिए था किन्तु बहुलाधिकार के कारण नहीं हो सका।

३७८—**स्याद्, भव्य, चैत्य** तथा **चौर्य-तुल्य** शब्दों के संयुक्त वर्णों के यकार से पूर्व इकार का आगम होता है। जैसे—१—**स्याद्**=सिआ (प्रशंसा, प्रश्न, संशय, विवाद आदि सूचक अव्यय),

❀ व्यवस्थित-विभाषा के अर्थ के लिए देखो पृष्ठ १६

२—**स्याद्वादः**=सिआ-वाओ (अनेकान्तवाद, वस्तु के सभी धर्मों की ओर दृष्टिपात करना), ३—**भव्यः**=भविओ (सुन्दर, मुक्तियोग्य), ४—**चैत्यम्**=चेइअं (ज्ञानस्वरूप, मन्दिर), **चौर्यतुल्य शब्दों के उदाहरण**, जैसे—१ **चौर्यम्**=चोरिअं (चोरी करना), २—**स्थैर्यम**=थेरिअं (स्थिरता), ३—**भार्या**=भारिआ (अर्धाङ्गिनी, पत्नी), ४—**गाम्भीर्यम्**=गम्भीरिअं (गंभीरता), ५—**गभीर्यम्**=गहीरिअं (गहराई), ६—**आचार्यः**=आयरिओ (शिक्षक, आचारशील व्यक्ति, संघनेता), ७—**सौन्दर्यम्**=सुन्दरिअं (सुन्दरता), ८—**शौर्यम्**=सोरिअं (शूरता), ९—**वीर्यम्**=वीरिअं (शक्ति), १०—**वर्यम्**=वरिअं (चुनने योग्य, सर्वोत्तम) ११—**सूर्यः**=सूरिओ (दिवाकर), १२—**धैर्यम्**=धीरिअं (धीरता), १३—**ब्रह्मचर्यम्**=बम्हचरिअं (ब्रह्मचर्य) इन शब्दों के यकार से पूर्व इकार का आगम किया गया है।

३७९—**स्वप्न** शब्द के नकार से पूर्व इकार का आगम होता है। जैसे-**स्वप्नः**=सिविणो (सपना) यहां नकार से पूर्व इकार का आगम किया गया है।

३८०—**स्निग्ध** शब्द के संयुक्त वर्ण नकार से पूर्व विकल्प से अकार और इकार का आगम किया जाता है। जैसे—**स्निग्धम्**=सणिद्धं, सिणिद्धं, जहां पर प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ, वहां पर **निद्धं** (कोमल) यह रूप बनता है।

३८१—यदि **कृष्ण** शब्द वर्ण (रंग) का बोधक हो तो इस के संयुक्त वर्ण को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व अकार और इकार का आगम विकल्प से होता है। जैसे—**कृष्णः**=कसणो, कसिणो, कण्हो (काला रंग) जहां कृष्ण शब्द वर्णवाचक नहीं है वहां **कृष्णः**=कण्हो (वासुदेव, विष्णु) यह रूप बनता है। यहां पर प्रस्तुत सूत्र ने कोई कार्य नहीं किया।

३८२—**अर्हत्** शब्द के संयुक्त वर्ण को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व उकार, अकार और इकार का आगम होता है। जैसे—१—**अर्हः**=अरुहो, अरहो, अरिहो (जिनेन्द्र भगवान), २—**अर्हन्**=अरुहन्तो, अरहन्तो अरिहन्तो (पूज्य, राग और द्वेष के विजेता महापुरुष) यहां पर हकार से पूर्व क्रमशः उकार, अकार और इकार का आगम किया गया है।

३८३—**पद्म, छद्म, मूर्ख** और **द्वार** इन शब्दों के संयुक्त वर्णों को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व विकल्प से उकार का आगम होता है। जैसे—१—**पद्मम्**=पउमं, पोम्मं (कमल), २—**छद्मम्**=छउमं, छम्मं (कपट), ३—**मूर्खः**=मुरुक्खो, मुक्खो (विवेक-रहित मनुष्य), ४—**द्वारम्**=दुवारं, जहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, वहां **बारं, देरं दारं** (दरवाज़ा) ये रूप बनते हैं।

३८४—उकारान्त **तनु** आदि शब्द **ङीप्रत्ययान्त** होने पर **तन्वी-तुल्य** कहे जाते हैं, इन तन्वी-तुल्य शब्दों के संयुक्त वर्णों को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व उकार का आगम होता है। जैसे—१—**तन्वी**=तणुवी (ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी), २—**लघ्वी**=लहुवी (छोटी), ३—**गुर्वी**=गरुवी (बडी), ४—**बह्वी**=बहुवी (अत्यन्त), ५—**पृथ्वी**=पुहुवी (ज़मीन), ६—**मृद्वी**=मउवी (मीठी) यहां अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व उकार का आगम किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण तन्वीतुल्य शब्दों से भिन्न शब्दों के संयुक्त वर्ण को भी अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व उकार का आगम होता है। जैसे—***स्रुघ्नम्**=सुरुघं (एक जनपद का नाम) यहां पर नकार से पूर्व उकार का आगम किया गया है। **आर्ष-प्राकृत** में **सुक्ष्मम्**=सुहुमं (बारीक) इस शब्द के संयुक्तवर्ण को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व उकार का आगम देखने में आता है।

३८५—जब **श्वस्** और **स्व** ये दोनों शब्द एक स्वर वाले पाए जाते हों तो इन के अन्त्यव्यञ्जन

* संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के कोष इस शब्द को पुल्लिङ्ग मानते हैं।

से पूर्व उकार का आगम होता है। जैसे **१—स्वः कृतम्**=सुवे कयं (कल किया), **२—स्वे जनाः**=सुवे जणा (अपने आदमी), यहां **स्वः** तथा **स्वे ये** एक स्वर वाले शब्द हैं, अतः इनके संयुक्त अन्त्य-व्यञ्जन से पूर्व उकार का आगम किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि **'एक-स्वरे'** यह पद पढने का क्या उद्देश्य है ? उत्तर में निवेदन है कि **स्व-जनः**=स-यणो (अपना आदमी) यहां समास होने से स्व-जन एक पद है, किन्तु इस में स्वर तीन हैं। अतः इसके संयुक्त अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व उकार का आगम नहीं हो सका। यदि **'एक-स्वरे'** यह न कहते तो यहां पर भी उकार का आगम हो जाता, जो कि इष्ट नहीं था।

३८६—'ज्या' शब्द को अन्त्यव्यञ्जन से पूर्व ईकार का आगम होता है। जैसे—**ज्या**=जीआ (धनुष की डोर, पृथ्वी, माता) यहां ईकार का आगम किया गया है।

३८७—करेणू और **वाराणसी** इन दोनों शब्दों में रेफ और णकार का व्यत्यय हो जाता है। व्यत्यय का अर्थ है स्थिति-परिवृत्ति=स्थिति का परिवर्तन। अर्थात् जहां रेफ है वहां णकार हो जाता है और जहां णकार है वहां पर उसका स्थान रेफ ले लेता है। जैसे—**१-करेणूः**=कणेरू (हथिनी), **२—वाराणसी**=वाणारसी (काशी), यहां पर रेफ और णकार का व्यत्यय किया गया है। सूत्र में **'करेणू'** शब्द स्त्रीलिङ्ग दिखलाया गया है। अतः पुल्लिङ्ग-दशा में करेणु शब्द के रेफ और णकार का व्यत्यय नहीं हो सकेगा। जैसे—**एषः करेणुः**=एसो करेणू (यह हाथी) यहां करेणु शब्द पुल्लिङ्ग है किन्तु सूत्र में स्त्रीलिङ्ग का निर्देश है, इस लिए यहां व्यत्यय नहीं हो सका।

३८८—आलान शब्द के लकार और नकार का व्यत्यय होता है। जैसे—**१-आलानः**=आणालो (हाथी बांधने की डोरी), **२—आलान-स्तम्भः**=आणाल-क्खंभो (हाथी बांधने का खम्भा) यहां लकार और नकार का व्यत्यय किया गया है।

३८९—अचलपुर शब्द में चकार और लकार का व्यत्यय होता है। जैसे—**अचलपुरम्**=अलचपुरं (एक गांव का नाम) यहां चकार और लकार का व्यत्यय किया गया है।

३९०—महाराष्ट्र शब्द के हकार और रेफ का व्यत्यय होता है। जैसे—**महाराष्ट्रम्**=मरहट्ठं (महाराष्ट्र प्रान्त) यहां हकार और रेफ को अदल-बदल किया गया है।

३९१—ह्रद के हकार और दकार का व्यत्यय होता है। जैसे—**ह्रदः**=द्रहो (तालाब) **आर्षप्राकृत में ह्रदः** का **'हरए'** यह रूप भी बनता है। जैसे—**ह्रदः महापुण्डरीकः**=हरए मह-पुण्डरीए (ह्रद तालाब और पुण्डराक-सफेद रंग, चीता, सर्प-विशेष, चांवलविशेष, कोढ, रोगविशेष, माथे पर लगाये गये साम्प्रदायिक तिलक, चिन्ह को कहते हैं। यह ह्रद महान पुण्डरीक वाला है) यहां पर ३ सूत्र से हकार और दकार का व्यत्यय नहीं हो सका।

३९२—हरितालः शब्द के रेफ और लकार का वैकल्पिक व्यत्यय होता है। जैसे—**१—हरितालः**=हलिआरो हरिआलो (हरताल) यहां विकल्प से व्यत्यय किया गया है।

३९३—लघुक शब्द के घकार को हकार कर लेने पर लकार और हकार का विकल्प से व्यत्यय होता है। जैसे—**लघुकम्**=हलुअं, लहुअं (छोटा) यहां लकार और हकार का वैकल्पिक व्यत्यय किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि व्यत्यय करने से पूर्व घकार को हकार बनाने का विधान क्यों किया गया ? क्या व्यत्यय करने के अनन्तर घकार को हकार नहीं बनाया जा सकता था ? उत्तर में निवेदन है कि घकार को हकार बनाने वाला १८७ वाँ सूत्र है और वह घकार का अनादिभूत

होना आवश्यक मानता है, यदि घकार आदिभूत होगा तो इस सूत्र से वह हकार नहीं बन सकता। व्यत्यय करने के अनन्तर यदि घकार को हकार बनाना चाहें तो १८७ सूत्र से वह हो नहीं सकता, क्योंकि व्यत्यय हो जाने पर घकार अनादि न रह कर आदि-भूत बन जाता है। इसी विचार से सूत्र-कार ने व्यत्यय करने से पूर्व ही घकार को हकार बनाने का विधान किया है जो कि उचित ही है।

३६४— **ललाट** शब्द के लकार और डकार का विकल्प से व्यत्यय होता है। जैसे—**ललाटम्**= णडालं, णलाडं (मस्तक), यहां पर लकार और डकार का वैकल्पिक व्यत्यय किया गया है। २५७ सूत्र से जब ललाट शब्द के आदिम लकार को णकारादेश कर दिया जाता है तब इस का दूसरा लकार स्थानी (जिस के स्थान में आदेश होता है) बन जाता है। अर्थात् दूसरे लकार के स्थान में प्रस्तुत सूत्र से डकार करना अभीष्ट है।

३६५—'**ह्य**' इस संयुक्त व्यञ्जन में हकार और यकार का विकल्प से व्यत्यय होता है। जैसे—१—**गुह्यम्**=गय्हं, गुज्झं (छिपाने योग्य), २—**सह्यः**=सय्हो, सज्झो (सहन करने योग्य), यहां पर विकल्प स हकार और यकार का व्यत्यय किया गया है।

३६६—**स्तोक** शब्द के स्थान में थोक्क, थोव और थेव ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**स्तोकम्**=थोक्कं थोवं, थेवं, जहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी वहां पर **थोअं** (स्वल्प) यह रूप बनता है।

३६७—**दुहितृ** शब्द को धूआ और **भगिनी** शब्द को बहिणी यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**दुहिता**=धूआ, दुहिआ (पुत्री), २—**भगिनी**=बहिणी भइणी (बहिन) यहां दुहितृ और भगिनी शब्द को क्रमशः धूआ और बहिणी यह आदेश विकल्प से किया गया है।

३६८—**वृक्ष** और **क्षिप्त** शब्द के स्थान में यथासंख्य=संख्यानुसार (क्रमशः) **रुक्ख और छूढ** ये विकल्प से आदेश होते हैं। जैसे—१—**वृक्षः**=रुक्खो, वच्छो (वृक्ष), २—**क्षिप्तम्**=छूढं खित्तं (फेंका हुआ), ३—**उत्क्षिप्तम्**=उच्छूढं, उक्खित्तं (ऊपर को फेंका हुआ), यहां पर वृक्ष को रुक्ख और क्षिप्त को छूढ यह आदेश विकल्प से किया गया है।

३६९—**वनिता** शब्द को **विलया** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**वनिता**=विलया, वणिआ (नारी)। यहां वनिता शब्द को **विलया** यह आदेश विकल्प से किया गया है। कई आचार्य कहते हैं कि **विलया** यह शब्द संस्कृत-भाषा में भी पाया जाता है।

४००—**ईषद्** शब्द जब गौणदशा में होता है तो इस को '**कूर**' यह आदेश विकल्प से हो जाता है। जैसे—**चिंचा इव ईषत्-पक्वा**=चिंच व्व कूर-पिक्का (इमली=घुंघची के पौधे, के समान थोड़ी सी पकी हुई) जहां पर इस सूत्र से **कूर** यह आदेश नहीं हो सका वहां—**ईषत्**=**ईसि** (स्वल्प) यह रूप बनता है। "**ईषत्-पक्वा**" इस पद में ईषद् शब्द गौण है, इस का अपना कोई स्वतन्त्र अर्थ नहीं है। क्योंकि जो वस्तु स्वल्प पकी हुई होती है, उसे **ईषत्-पक्वा** कहते हैं।

★ अथ स्त्र्यादीनामित्थ्याद्यादेशविधिः ★

४०१—**स्त्रिया इत्थी** । ८ । २ । १३० । स्त्रीशब्दस्य इत्थी इत्यादेशो वा भवति। इत्थी थी।

४०२—**धृतेर्दिहिः** । ८ । २ । १३१ । धृतिशब्दस्य दिहिरित्यादेशो वा भवति। दिही धिई।

४०३—**मर्जारस्य मञ्जर-वञ्जरौ । ८ । २ । १३२ ।** मार्जारशब्दस्य मञ्जर वञ्जर इत्यादेशौ वा भवतः । मञ्जरो वञ्जरो । पक्षे मज्जारो ।

४०४—**वैडूर्यस्य वेरुलिअं । ८ । २ । १३३ ।** वैडूर्यशब्दस्य वेरुलिअ इत्यादेशो वा भवति । वेरुलिअं वेडुज्जं ।

४०५—**एण्हिं एत्ताहे इदानीमः । ८ । २ । १३४ ।** अस्य एतावादेशौ वा भवतः । एण्हिं एत्ताहे । इआणिं ।

४०६—**पूर्वस्य पुरिमः । ८ । २ । १३५ ।** पूर्वस्य स्थाने पुरिम इत्यादेशो वा भवति । पुरिमं पुव्वं ।

४०७—**त्रस्तस्य हित्थ-तट्ठौ । ८ । २ । १३६ ।** त्रस्तशब्दस्य हित्थ तट्ठ इत्यादेशौ वा भवतः । हित्थं तट्ठं तत्थं ।

४०८—**बृहस्पतौ बहो भयः । ८ । २ । १३७ ।** बृहस्पतिशब्दे बह इत्यस्यावयवस्य भय इत्यादेशो वा भवति । भयस्सई, भयप्फई, भयप्पई । पक्षे । बहस्सई, बहप्फई, बहप्पई । **वा बृहस्पतौ** [१—१३८] इति इकारे उकारे च बिहस्सई, बिहप्फई, बिहप्पई । बुहस्सई, बुहप्फई, बुहप्पई ।

४०९—**मलिनोभय-शुक्ति-छुप्तारब्ध-पदातेर्मइलावह-सिप्पि-छिक्काढत्त-पाइक्कं । ८ । २ । १३८ ।** मलिनादीनां यथासंख्यं मइलादय आदेशा वा भवन्ति । मलिन । मइलं मलिणं । उभय । अवहं । उवहमित्यपि केचित् । अवहोआसं । उभयबलं । आर्षे उभयोकालं । शुक्ति । सिप्पी सुत्ती । छुप्त । छिक्को छुत्तो । आरब्ध । आढत्तो आरद्धो । पदाति । पाइक्को पयाई ।

४१०—**दंष्ट्राया दाढा । ८ । २ । १३९ ।** पृथग्योगाद्वेति निवृत्तम् । दंष्ट्राशब्दस्य दाढा इत्यादेशो भवति । दाढा । अयं संस्कृतेऽपि ।

४११—**बहिसो बाहिं-बाहिरौ । ८ । १४० ।** बहिःशब्दस्य बाहिं बाहिर इत्यादेशौ भवतः । बाहिं बाहिरं ।

४१२—**अधसो हेट्ठं । ८ । २ । १४१ ।** अधस्शब्दस्य हेट्ठं इत्ययमादेशो भवति । हेट्ठं ।

४१३—**मातृ-पितुः स्वसुः सिआ-छौ । ८ । २ । १४२ ।** मातृपितृभ्यां परस्य स्वसृशब्दस्य सिआ छा इत्यादेशौ भवतः । माउ-सिआ माउच्छा । पिउ-सिआ पिउच्छा ।

४१४—**तिर्यचस्तिरिच्छिः । ८ । २ । १४३ ।** तिर्यच्शब्दस्य तिरिच्छिरित्यादेशो भवति । तिरिच्छि पेच्छइ । आर्षे तिरिआ इत्यादेशोऽपि । तिरिआ ।

४१५—**गृहस्य घरोऽपतौ । ८ । २ । १४४ ।** गृहशब्दस्य घर इत्यादेशो भवति पति-

शब्दश्चेत् परो न भवति। घरो। घर-सामो। राय-हरं। अपताविति किम् ? गह-वई।

४१६—शीलाद्यर्थस्येरः। ८। २। १४५। शीलधर्मसाध्वर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य इर इत्यादेशो भवति। हसनशीलः। हसिरो। रोविरो। लज्जिरो। जम्पिरो। वेविरो। भमिरो। ऊससिरो। केचित् तृन एव इरमाहुस्तेषां नमिरगमिरादयो न सिध्यन्ति। तृनोऽत्र रादिना बाधितत्वात्।

४१७—क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः। ८। २। १४६। क्त्वाप्रत्ययस्य तुम् अत् तूण तुआण इत्येते आदेशा भवन्ति। तुम्। दट्टुं। मोत्तुं। अत्। भमिअ। रमिअ। तूण। घेत्तूण। काऊण। भेत्तुआण। सोउआण। वन्दित्तु इत्यनुस्वारलोपात्। वन्दित्ता इति सिद्धसंस्कृतस्यैव वलोपेन। कट्टु इति तु आर्षे।

४१८—इदमर्थस्य केरः। ८। २। १४७। इदमर्थस्य प्रत्ययस्य केर इत्यादेशो भवति। युष्मदीयः। तुम्हकेरो। अस्मदीयः। अम्हकेरो। न च भवति। मईअ-पक्खे। पाणिणीआ।

४१९—पर-राजभ्यां क्क-डिक्कौ च। ८। २। १४८। पर राजन् इत्येताभ्यां परस्येदमर्थस्य प्रत्ययस्य यथासंख्यं संयुक्तो क्को डित् इक्कश्चादेशौ भवतः। चकारात्केरश्च। परकीयम्। पारक्कं। परक्कं। पारकेरं। राजकीयम्। राइक्कं। रायकेरं।

४२०—युष्मदस्मदोऽञ एच्चयः। ८। २। १४९। आभ्यां परस्येदमर्थस्याञ एच्चय इत्यादेशो भवति। युष्माकमिदं यौष्माकम्। तुम्हेच्चयं। एवं अम्हेच्चयं।

४२१- वतेर्व्वः। ८। २। १५०। वतेः प्रत्ययस्य द्विरुक्तो वो भवति। महुरव्व पाडलिउत्ते पासाया।

४२२—सर्वाङ्गादीनस्येकः। ८। २। १५१। सर्वाङ्गात् सर्वादेः पथ्यङ्गम् [हे–७–१–९४] इत्यादिना विहितस्येनस्य स्थाने 'इक' इत्यादेशो भवति। सर्वाङ्गीणः। सव्वङ्गिओ।

४२३—पथो णस्येकट्। ८। २। १५२। नित्यं णः पन्थश्च [हे–६–४] इति यः पथो णो विहितस्तस्य इकट् भवति। पान्थः। पहिओ।

४२४—ईयस्यात्मनो णयः। ८। २। १५३। आत्मनः परस्य ईयस्य णय इत्यादेशो भवति। आत्मीयम्। अप्पणयं।

४२५—त्वस्य डिमा-त्तणौ वा। ८। २। १५४। त्वप्रत्ययस्य डिमा त्तण इत्यादेशौ वा भवतः। पीणिमा। पुप्फिमा। पीणत्तणं। पुप्फत्तणं। पक्षे। पीणत्तं। पुप्फत्तं। इम्नः पृथ्वादिषु नियतत्वात् तदन्यप्रत्ययान्तेषु अस्य विधिः। पीनता इत्यस्य प्राकृते पीणया इति

भवति । पीणदा इति तु भाषान्तरे । तेनेह तलो दा न क्रियते ।

४२६—**अनङ्कोठात्तैलस्य डेल्लः । ८ । २ । १५५ ।** अङ्कोठवर्जिताच्छब्दात्परस्य तैलप्रत्ययस्य डेल्ल इत्यादेशो भवति। सुरहि-जलेण कडुएल्लं। अनङ्कोठादिति किम् ? अङ्कोल्लतेल्लं ।

४२७—**यत्तदेतदोतोरित्तिअ एतल्लुक् च । ८ । २ । १५६ ।** एभ्यः परस्य डावादेरतः परिमाणार्थस्य इत्तिअ इत्यादेशो भवति, एतदो लुक् च । यावत् । जित्तिअं । तावत् । तित्तिअं । एतावत् । इत्तिअं ।

४२८—**इदंकिमश्च डेत्तिअ-डेत्तिल-डेद्दहाः । ८ । २ । १५७ ।** इदंकिभ्यां यत्तदेतद्भ्यश्च परस्यातोर्डावतोर्वा डित् एत्तिअ, एत्तिल, एद्दह इत्यादेशा भवन्ति एतल्लुक् च । इयत् । एत्तिअं । एत्तिलं । एद्दहं । कियत् । केत्तिअं । केत्तिलं । केद्दहं । यावत् । जेत्तिअं । जेत्तिलं । जेद्दहं । तावत् । तेत्तिअं । तेत्तिलं । तेद्दहं । एतावत् । एत्तिअं । एत्तिलं । एद्दहं ।

४२९—**कृत्वसो हुत्तं । ८ । २ । १५८ ।** वारे कृत्वस् [हे–७–२–१०९] इति यः कृत्वस् विहितस्तस्य हुत्तमित्यादेशो भवति। सयहुत्तं । सहस्सहुत्तं। कथं प्रियाभिमुखम् ? पियहुत्तं । अभिमुखार्थेन हुत्तशब्देन भविष्यति ।

४३०—**आल्विल्लोल्लाल-वन्त-मन्तेत्तेर-मणा मतोः । ८ । २ । १५९ ।** आलु इत्यादयो नव आदेशा मतोः स्थाने यथाप्रयोगं भवन्ति । आलु । नेहालू । दयालू । ईसालू । लज्जालुआ । इल्ल । सोहिल्लो । छाइल्लो । जामइल्लो । उल्ल । विआरुल्लो । मंसुल्लो । दप्पुल्लो । आल । सद्दालो । जडालो । फडालो । रसालो । जोण्हालो । वन्त । धणवन्तो । भत्तिवन्तो । मन्त । हणुमन्तो । सिरिमन्तो । पुण्णमन्तो । इत्त । कव्वइत्तो । माणइत्तो । इर । गव्विरो । रेहिरो । मण । धणमणो । केचिन्मादेशमपीच्छन्ति । हणुमा । मतोरिति किम् ? धणी । अत्थिओ ।

४३१—**त्तो दो तसो वा । ८ । २ । १६० ।** तसः प्रत्ययस्य स्थाने त्तो दो इत्यादेशौ वा भवतः । सव्वत्तो । सव्वदो । एकत्तो । एकदो । अन्नत्तो । अन्नदो । कत्तो । कदो । जत्तो । जदो । तत्तो । तदो । इत्तो । इदो । पक्षे । सव्वओ । इत्यादि ।

४३२—**त्रपो हि-ह-त्थाः । ८ । २ । १६१ ।** त्रप्-प्रत्ययस्य एते भवन्ति । यत्र, जहि जह जत्थ । तत्र, तहि तह तत्थ । कुत्र, कहि कह कत्थ । अन्यत्र, अन्नहि अन्नह अन्नत्थ ।

४३३—**वैकाद्दः सि सिअं इआ । ८ । २ । १६२ ।** एकशब्दात्परस्य दाप्रत्ययस्य सि सिअं इआ इत्यादेशा वा भवन्ति । एकदा । एक्कसि, एक्कसिअं, एक्कइआ । पक्षे । एगया ।

४३४—**डिल्ल-डुल्लौ भवे**। ८। २। १६३। भवेऽर्थे नाम्नः परौ इल्ल उल्ल इत्येतौ डितौ प्रत्ययौ भवतः। गामिल्लिआ। पुरिल्लं। हेट्ठिल्लं। उवरिल्लं। अप्पुल्लं। आल्वालावपीच्छन्त्यन्ये।

४३५—**स्वार्थे कश्च वा**। ८। २। १६४। स्वार्थे कश्चकारादिल्लोल्लौ डितौ प्रत्ययौ वा भवतः। क। कुङ्कुमपिञ्जरयं। चन्दओ। गयणयम्मि। धरणीहर-पक्खुब्भन्तयं। दुहिअए राम-हिअयए। इहयं। आलेट्ठुअं। आश्लेष्टुमित्यर्थः। द्विरपि भवति। बहुअयं। ककारोच्चारणं पैशाचिकभाषार्थम्। यथा—वतनके वतनकं समप्पेत्तून। इल्ल। निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण। पुरिल्लो। पुरा पुरो वा। उल्ल। मह पिउल्लओ। मुहुल्लं। हत्थुल्ला। पक्षे चन्दो। गयणं। इह। आलेट्ठुं। बहु। बहुअं। मुहं। हत्था। कुत्सादिविशिष्टे तु संस्कृतवदेव कप् सिद्धः। यावादिलक्षणः कः प्रतिनियतविषय एवेति वचनम्।

४३६—**ल्लो नवैकाद्वा**। ८। २। १६५। आभ्यां स्वार्थे संयुक्तो लो वा भवति। नवल्लो। एकल्लो। सेवादित्वात् कस्य द्वित्वे एक्कल्लो। पक्षे नवो। एक्को। एओ।

४३७—**उपरेः संव्याने**। ८। २। १६६। संव्यानेऽर्थे वर्तमानादुपरिशब्दात् स्वार्थे ल्लो भवति। अवरिल्लो। संव्यान इति किम्? अवरिं।

४३८—**भ्रुवो मया डमया**। ८। २। १६७। भ्रूशब्दात् स्वार्थे मया डमया इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः। भुमया। भमया।

४३९—**शनैसो डिअम्**। ८। २। १६८। शनैस्-शब्दात् स्वार्थे डिअम् भवति। सणिअमवगूढो।

३४०—**मनाको न वा डयं च**। ८। २। १६९। मनाक्शब्दात्स्वार्थे डयम्, डिअम् च प्रत्ययो वा भवति। मणयं। मणियं। पक्षे मणा।

४४१—**मिश्राड्डालिअः**। ८। २। १७०। मिश्रशब्दात्स्वार्थे डालिअः प्रत्ययो वा भवति। मीसालिअं। पक्षे मीसं।

४४२—**रो दीर्घात्**। ८। २। १७१। दीर्घशब्दात्परः स्वार्थे रो वा भवति। दीहरं। दीहं।

४४३—**त्वादे सः**। ८। २। १७२। भावे त्व-तल् [हे० ७–१–५५] इत्यादिना विहितात्त्वादेः परः स्वार्थे स एव त्वादिर्वा भवति। मृदुकत्वेन। मउअत्तयाइ। आतिशायिकात्त्वातिशायिकः संस्कृतवदेव सिद्धः। जेयट्ठरो। कणिट्ठयरो।

४४४—**विद्युत्पत्र-पीतान्धाल्लः**। ८। २। १७३। एभ्यः स्वार्थे लो वा भवति।

विज्जुला । पत्तलं । पीवलं । पीअलं । अन्धलो । पक्षे । विज्जू । पत्तं । पीअं । अन्धो । कथं जमलं । यमलमिति संस्कृतशब्दाद् भविष्यति ।

४४५—**गोणादयः** । ८ । २ । १७४ । गोणादयः शब्दाः अनुक्तप्रकृतिप्रत्ययलोपागम-वर्णविकारा बहुलं निपात्यन्ते । गौः । गोणो । गावी । गावः । गावीओ । बलीवर्दः । बइल्लो । आपः । आऊ । पञ्चपञ्चाशत् । पञ्चावण्णा पणपन्ना । त्रिपञ्चाशत् । तेवण्णा । त्रिचत्वारिंशत् । तेआलीसा । व्युत्सर्गः । विउसग्गो । व्युत्सर्जनम् । वोसिरणं । बहिर्मैथुनं वा । बहिद्धा । कार्यम् । णामुक्कसिअं । क्वचित् । कत्थइ । उद्वहति, मुव्वहइ । अपस्मारः, बम्हलो । उत्पलम्, कन्दुट्टं । धिक्धिक्, छिछि, धिद्धि । धिगस्तु, धिरत्थु । प्रतिस्पर्धा, पडिसिद्धी, पाडिसिद्धी । स्थासकः, चच्चिक्कं । निलयः, निहेलणं । मघवान्, मघोणो । साक्षी, सक्खिणो । जन्म, जम्मणं । महान्, महन्तो । भवान् भवन्तो । आशीः, आसीसा । क्वचिद् हस्य ड्भौ । बृहत्तरम् बड्डयरं । हिमोरः, भिमोरो । ल्लस्य ड्डः । क्षुल्लकः, खुड्डुओ । घोषाणामग्रेतनो गायनः, घायणो । वडः, वढो । ककुदम्, ककुधं । अकाण्डम्, अत्थक्कं । लज्जावती, लज्जालुइणी । कुतूहलम्, कुड्डं । चूतः, मायन्दो । माकन्दशब्दः संस्कृतेऽपीत्यन्ये । विष्णुः, भट्टिओ । श्मशानम्, करसी । असुराः, अगया । खेलम्, खेड्डं । पौष्पं रजः, तिङ्गिच्छि । दिनम्, अल्लं । समर्थः, पक्कलो । पण्डकः, णेलच्छो । कर्पासः, पलही । बली, उज्जल्लो । ताम्बूलम्, झसुरं । पुंश्चली, छिछई । शाखा, साहुली । इत्यादि । वाधिकारात्पक्षे यथादर्शनं गउओ इत्याद्यपि भवति । गोला गोआवरी इति तु गोलागोदावरीभ्यां सिद्धम् । भाषाशब्दाश्च । आहित्थ, लल्लक्क, विड्डिर, पच्चड्डिअ, उप्पेहड, मडप्फर, पड्डिच्छिर, अट्टमट्ट, विहडप्फड, उज्जल्ल, हल्लप्फल इत्यादयो महाराष्ट्रविदर्भादिदेश-प्रसिद्धाः लोकतोऽवगन्तव्याः । क्रियाशब्दश्च । अवयासइ, फुम्फुल्लइ, उप्फालेइ, इत्यादयः । अतएव च कृष्ट-घृष्ट-वाक्य-विद्वस्-वाचस्पति-विष्टरश्रवस्-प्रचेतस्-प्रोक्त-प्रोतादीनां क्विबादिप्रत्ययान्तानां च अग्निचित्सोमसुत्सुग्ल-सुम्लेत्यादीनां पूर्वैः कविभिरप्रयुक्तानां प्रतीतिवैषम्यपरः प्रयोगो न कर्तव्यः, शब्दान्तरैरेव तु तदर्थोऽभिधेयः । यथा—कृष्टः कुशलः । वाचस्पतिर्गुरुः । विष्टरश्रवाः, हरिरित्यादि । घृष्टशब्दस्य तु सोपसर्गस्य प्रयोग इष्यत एव । मन्दरयडपरिघट्टं । तद्दिअस-निहट्टाणङ्ग !, इत्यादि । आर्षे तु यथादर्शनं सर्वमविरुद्धम् । यथा—घट्ठा । मट्ठा । विउसा । सुअ-लक्खणाणुसारेण । वक्कन्तरेसु अ पुणो इत्यादि ।

★ अथ स्त्र्यादीनामित्थी-आद्यादेशविधिः ★

इतः पूर्वं शेषादेश-भूत-वर्णयोर्विधिः प्रदर्शितः, साम्प्रतं स्त्र्यादिशब्दानां स्थाने ये इत्थी इत्यादय आदेशा भवन्ति, तान्निरूपयत्याचार्यः ।

४०१—स्त्री। स्त्री+सि। ४०१ सू० स्त्री-शब्दस्य विकल्पेन 'इत्थी' इत्यादेशः, आदेशाभावे—३५० सू० रेफस्य लोपः, ३१६ सू० स्तस्य थकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकार-लोपे **इत्थी थी** इति सिद्धम्।

४०२—धृतिः। धृति+सि। ४०२ सू० धृतिशब्दस्य वैकल्पिको दिहि इत्यादेशः, आदेशाभावे, १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, सेर्लोपे **दिही धिई** इति सिद्धम्।

४०३—मार्जारः। मार्जार+सि। ४०३ सू० मार्जारशब्दस्य विकल्पेन **मञ्जर, वञ्जर** इत्यादेशौ, आदेशाभावे—८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वं, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **मञ्जरो, वञ्जरो, मज्जारो** इति सिद्धम्।

४०४—वैडूर्यम्। वैडूर्य+सि। ४०४ सू० वैडूर्य-शब्दस्य विकल्पेन वेरुलिय इत्यादेशो जातः, आदेशाभावे १४८ सू० ऐकारस्य एकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, २९५ सू० र्यस्य जकारः, जकार-स्य द्वित्वं, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **वेरुलिअं वेडुज्जं** इति सिद्धम्।

४०५—इदानीम्। अव्ययपदमिदम्। ४०५ सू० 'इदानीम्' इत्यस्य एण्हिं एत्ताहे इत्यादेशौ, आदेशयोरभावे १७७ सू० दकारस्य लोपः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, १०१ सू० ईकारस्य ह्रस्वे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **एण्हिं, एत्ताहे, इआणिं** इति सिद्धम्।

४०६—पूर्वम्। पूर्व+सि। ४०६ सू० पूर्व-शब्दस्य विकल्पेन **पुरिम** इत्यादेशः, आदेशाभावे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वं, सेर्मकारः, मकारस्या-नुस्वारे **पुरिमं पुव्वं** इति सिद्धम्।

४०७—त्रस्तम्। त्रस्त+सि। ४०७ सू० त्रस्त-शब्दस्य विकल्पेन हित्थ, तट्ठ इत्यादेशौ, आदेशयोरभावे ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३१६ सू० स्तस्य थकारः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, पूर्ववदेव **हित्थं तट्ठं तत्थं** इति सिद्धम्।

४०८—बृहस्पतिः। बृहस्पति+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ४०८ सू० 'बह' इत्यस्य विकल्पेन 'भय' इत्यादेशः, ३४० सू० संयुक्तस्य वैकल्पिकः सकारः, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **भयस्सई**। सकारादेशाभावे ३२४ सू० स्पस्य विकल्पेन फकारः, फकारस्य द्वित्वं, पूर्वफकारस्य पकारे **भयप्फई**। फकाराभावे, ३४८ सू० सकारस्य लोपः, पकारस्य द्वित्वे **भयप्पई** इति भवति। **पक्षे**। यत्र '**बह**' इत्यस्य 'भय' इत्यादेशाभावस्तत्र—**बहस्सई, बहप्फई, बहप्पई** इति भवति। **वा बृहस्पतौ**। १३८ सूत्रेण बृहस्पतिशब्दस्य ऋकारस्य इकारे, उकारे च—**बिहस्सई, बिहप्फई, बिहप्पई, बुहस्सई, बुहप्फई, बुहप्पई** इति भवति।

४०९—मलिनम्। मलिन+सि। ४०९ सू० मलिनशब्दस्य विकल्पेन मइल इत्यादेशे, आदेशाभावे २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मइलं, मलिणं** इति सिद्धम्। **उभयम्**। उभय-शब्दस्य विकल्पेन अवह इत्यादेशे, पूर्ववदेव **अवहं** इति सिद्धम्। **उवहमित्यपि केचित्**। प्रस्तुतसूत्रेण उभय-शब्दस्य अवह इत्यादेशो विहितः, किन्तु केचिदाचार्याः **उवह** इत्यादेशमपि स्वीकुर्वन्ति। **उभयबलम्**। उभय-बल+सि। प्रस्तुत-सूत्रेण उभय-शब्दस्य विकल्पेन अवह इत्यादेशे, बलार्थे 'उआस' इति देशीय-पदे प्रयुक्ते, अवह-उआस+सि इति जाते, गुण-सन्धौ,

पूर्ववदेव **अवहोआसं, उभयबलं**। अथवा **अवहोआसं** इत्यस्य **उभयावकाशमित्यपि** संस्कृतरूपं भवति। उभयोरवकाशः, उभयावकाशः। उभयावकाश+सि। इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण उभयस्य अवह इत्यादेशे, १७२ सू० अव इत्युपसर्गस्य ओकारे, १० सू० हकारस्थाकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १७७ सू० ककारलोपे अवहोआश+सि इति जाते, विकल्पत्वात् ५ सू० अव्-सन्धेरभावे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३४ सू० क्लीबत्वे, पूर्ववदेव **अवहोआसं** इति भवति। **आर्षे**। आर्ष-प्राकृते उभय-शब्दस्य अवहादेशो न भवति। यथा—**उभयकालम्**। आर्षत्वाद् उभयस्य अवहादेशाभावे, आर्षत्वादेव यकारस्याकारस्य ओकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **उभयोकालं** इति सिद्धम्। **शुक्तिः**। शुक्ति+सि। शुक्तेः वैकल्पिके सिप्पि इत्यादेशे, आदेशाभावे २६० सू० शकारस्य सकारे, ३४८ सू० ककारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, ११।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **सिप्पी सुत्ती** इति सिद्धम्। **छुप्तम्**। छुप्त+सि। ४०९ सू० विकल्पेन छुप्तस्य 'छिक्क' इत्यादेशः, आदेशाभावे ३४८ सू० पकारस्य लोपः, तकारस्य द्वित्वं, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे **छिक्को छुत्तो** इति सिद्धम्। **आरब्धः**। आरब्ध+सि। इत्यत्र ४०९ सू० आरब्धस्य विकल्पेन 'आढत्त' इत्यादेशः, आदेशाभावे ३५० सू० बकारस्य लोपः, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारः, पूर्ववदेव **आढत्तो आरद्धो** इति सिद्धम्। **पदातिः**। पदाति+सि। ४०९ सू० विकल्पेन पदातेः पाइक्क इत्यादेशे, पूर्ववदेव **पाइक्को** आदेशाभावे १७७ सू० दकारस्य तकारस्य च लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **पयाई** इति सिद्धम्।

४१०—**पृथग्योगाद्वेति निवृत्तम्**। ४०९ सूत्रे एव दंष्ट्रा-शब्दस्य दाढा इत्यादेशविधानकरणात् कार्यसिद्धिरासीत्तर्हि कथमियं पृथक्-सूत्र-रचना कृता? अयं प्रश्नः? उत्तरयति वृत्तिकारो यत् पृथग्योगाद्—भिन्नसूत्र-रचनातः एव 'वा' इति पदस्यानुवृत्तेर्निवृत्तिर्जाता। अयं भावः- ४०९ सूत्र-विहितं कार्यं वैकल्पिकं, परं दाढादेशो न वैकल्पिक इष्टोऽतः पृथग्योगो विहितः। यथा—**दंष्ट्रा**। दंष्ट्रा+सि। ४१० सू० दंष्ट्राशब्दस्य दाढा इत्यादेशे जाते, सेर्लोपे **दाढा** इति सिद्धम्। दंष्ट्रार्थको दाढा-शब्दः संस्कृतभाषायामपि प्रयुज्यते। अतएव संसूचितं वृत्तिकारेण—**अयं संस्कृतेऽपि**।

४११—**बहिस्**। अव्ययपदमिदम्। बहिस्+सि। ४११ सू० बहिस्-शब्दस्य बाहिं बाहिर इत्यादेशौ, अव्ययत्वात्सेर्लोपे **बाहिं** बाहुल्येन यत्र सेर्लोपाभावस्तत्र सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **बाहिरं** इति सिद्धम्।

४१२—**अधः**। अव्ययपदमिदम्। ४१२ सू० अधस्-शब्दस्य **हेट्ठं** इत्यादेशे **हेट्ठं** इति सिद्धम्।

४१३ - **मातृ-ष्वसा**। मातुःस्वसा मातृष्वसा। मातृष्वसृ+सि। १३१ सू० ऋकारस्य उकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ४१३ सू० स्वसृशब्दस्य सिआ छा इत्यादेशौ, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्लोपे, **माउ-सिआ, माउच्छा** इति सिद्धम्। **पितृष्वसा**। पितुःस्वसा पितृष्वसा। पितृष्वसृ+सि। ऋकारस्य उकारः, तकारस्य लोपे, स्वसृशब्दस्य 'सिआ' 'छा' इत्यदेशौ, छकारस्य द्वित्वं, पूर्वछकारस्य चकारः, सेर्लोपे **पिउसिआ पिउच्छा** इति सिद्धम्।

४१४—**तिर्यक्**। अव्ययपदमिदम्। ४१४ सू० तिर्यच्शब्दस्य 'तिरिच्छि' इत्यादेशे **तिरच्छि** इति सिद्धम्। **पश्यति**। दृश् दर्शने। दृश्+तिव्। ८५२ सू० दृशेः 'पेच्छ' इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **पेच्छइ** इति सिद्धम्। **आर्षे तिरिआ**। प्रस्तुत-सूत्रेण तिर्यच्-शब्दस्य तिरिच्छि इत्यादेशो भवति, परन्त्वार्षप्राकृते **तिरिआ** इत्यादेशोऽपि जायते। यथा—**तिर्यक्**। आर्षत्वाद् तिर्यच्-शब्दस्य

'तिरिश्रा' इत्यादेशे **तिरिआ** इति भवति।

४१५—पतिशब्दश्चेत्। चेत्=यदि पति-शब्दः परवर्ती न भवेत्तदैव गृहशब्दस्य घरादेशो भवतीति भावः। **गृहम्**। गृह+सि। ४१५ सू० गृहशब्दस्य 'घर' इत्यादेशे जाते, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **घरो** इति सिद्धम्। **गृह-स्वामी**। गृहस्य स्वामी गृहस्वामी। गृह-स्वामिन्+सि। गृहशब्दस्य 'घर' इत्यादेशे, ३५० सू० वकारस्य लोपे जाते, ११ सू० नकारस्य लोपे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **घर-सामी** इति सिद्धम्। **राज-गृहम्**। राज्ञः गृहम् राजगृहम्। राजगृह+सि। १७७ सू० जकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, गृहशब्दस्य 'घर' इत्यादेशे, १८७ सूत्रेण घकारस्य हकारः, ५१४ सू० सेर्मकारः २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **राय-हरं** इति सिद्धम्। **अपताविति किम्**। पतिशब्दः परवर्ती भवेदिति कथनस्य किं कारणमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारः। यत्र हि गृहशब्दात् पतिशब्दः परवर्ती भवति तत्र प्रस्तुत—सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवेदिति हेतोः **अपतौ** इत्युक्तम्, यथा—**गृहपतिः**। गृहस्य पतिः, गृह-पतिः। गृहपति+सि। पति-शब्द-परवर्तित्वादत्र गृहस्य घरादेशाभावे १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **गहवई** इति सिद्धम्।

४१६—संस्कृतव्याकरणस्य **शीलधर्मसाध्वर्थे** ५।२।२७। आदिसूत्रैः शीलधर्म-साध्वर्थेषु तृनादयः प्रत्यया भवन्ति। प्रस्तुतसूत्रेण तेषां प्रत्ययानां स्थाने इर इत्यादेशो विहितः। यथा—**हसिता**। हसनशीलः। हस् हासे। हस्+तृन्। ४१६ सू० तृन्-प्रत्ययस्य इर इत्यादेशे, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हसिरो** इति सिद्धम्। **रोदिता**। रोदनशीलः। रुद् रोदने। रुद्+तृन्। ६०९ सू० उकारस्य ओकारे, ८९७ सू० दकारस्य वकारे, तृनः इर इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **रोविरो** इति सिद्धम्। **लज्जिता**। लज्जनशीलः। लज्ज् लज्जायाम्। लज्ज्+तृन्। तृनः इर इत्यादेशे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **लज्जिरो** इति सिद्धम्। **जल्पिता**। जल्पनशीलः। जल्प् जल्पने। जल्प्+तृन्। ३५० सू० लकारलोपे, २६ सू० आदेरकारस्य अनुस्वारागमे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, तृन इर इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **जम्पिरो** इति सिद्धम्। **वेपिता**। वेपिनशीलः। वेप् कम्पने। वेप्+तृन्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, तृनः इर इत्यादेशे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **वेविरो** इति सिद्धम्। **भ्रमिता**। भ्रमणशीलः। भ्रम् भ्रमणे। भ्रम्+तृन्। ३५० सू० रेफस्य लोपः, पूर्ववदेव **भमिरो** इति सिद्धम्। **उच्छ्वसिता**। उच्छ्वसनशीलः। उत्-श्वस् उच्छ्वासे। उच्छ्वस्+तृन्। अत्र वाक्यापेक्षया अन्त्यत्वे ११ सू० चकारस्य लोपः, **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इति न्यायेन उश्वस्+तृन् इति स्थिते, २६० सू० शकारस्य सकारः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ४३ सू० आदेः स्वरस्य दीर्घः, तृनः 'इर' इत्यादेशः, पूर्ववदेव **ऊससिरो** इति सिद्धम्। **केचित् तृन एव इरमाहुः**। केचिद् वैयाकरणाः तृन एव स्थाने इर इत्यादेशो भवतीति कथयन्ति परं तेषामिदं मतं न समीचीनं, यतस्तेषां मते नमिर-गमिरादयः शब्दाः न सेत्स्यन्ति। नमिरादिशब्देषु तृन्-प्रत्ययो र-प्रत्ययादिना बाध्यते, तेन=तृन्-प्रत्ययाभावेनात्र इरादेशो न भविष्यति, इराभावाद् गमिरादयः शब्दा कथं सेत्स्यन्ति? अतस्तेषां मतं सर्वथासमीचीनम्। तेन शील-धर्म-साध्वर्थेषु विहितानां तृनादि-सकल-प्रत्ययानां स्थाने इरादेशो भवतीत्येतदेव मतं शोभनम्। साधनिका त्वित्थं बोध्या—**नम्रः**। नमन-

शीलः। नम् नमने। नम्+र। ४१६ सू० र-प्रत्ययस्य 'इर' इत्यादेशः, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **नमिरो** इति सिद्धम्। **गम्रः**। गमनशीलः। गम्लृ (गम्) गतौ। गम्+र। र-स्थाने इर इत्यादेशे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **गमिरो** इति सिद्धम्।

४१७—**तुम्**। तुमादेशस्योदाहरणानि निरूपयति वृत्तिकारः। यथा—**दृष्ट्वा**। दृश् दर्शने। दृश्+क्त्वा। ४१७ सू० क्त्वाप्रत्ययस्य तुम् इत्यादेशे, संस्कृत-व्याकरणेन ऋकारस्य रेफे, शकारस्य षकारे, षकारयोगे च तकारस्य टकारे द्रष्टुम् इति जाते, ३५० सू० रेफलोपे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **दट्ठुं** इति सिद्धम्। **मुक्त्वा**। मुच् मोचने। मुच्+क्त्वा। क्त्वाप्रत्ययस्य तुम् इत्यादेशो जातः, संस्कृत-व्याकरणेन उकारस्य ओकारे, चकारस्य ककारे, ककार-तकारयोश्च संयोगे मोक्तुम् इति जाते, ३४८ सू० ककारस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे, मकारस्यानुस्वारे **मोत्तुं** इति सिद्धम्। **अत्**। अदादेशस्योदाहरणानि प्रदर्शयति वृत्तिकारो यथा— **भ्रमित्वा**। भ्रम् भ्रमणे। भ्रम्+क्त्वा। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ९१० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० मकारस्थस्य अकारस्य इकारे, ४१७ सू० क्त्वास्थाने अत् (अ) इत्यादेशे **भमिअ** इति सिद्धम्। **रन्त्वा**। रमु क्रीडायाम्। रम्+क्त्वा। धातोरन्तेऽकारागमे, अकारस्य इकारे, क्त्वास्थाने अत् (अ) इत्यादेशे **रमिअ** इति सिद्धम्। **तूण**। तूणादेशस्योदाहरणानि प्रतिपादयति वृत्तिकारो यथा—**गृहीत्वा**। ग्रह् धातुः उपादाने। ग्रह्+क्त्वा। इत्यत्र ८८१ सू० ग्रह् धातोः घेत् इत्यादेशे जाते सति, ४१७ सू० क्त्वास्थाने तूण इत्यादेशे **घेत्तूण** इति सिद्धम्। **कृत्वा** डुकृञ् (कृ) धातुः करणे। कृ क्त्वा। ८८५ सू० कृधातोः ऋकारस्य आकारे, क्त्वास्थाने तूण इत्यादेशे, १७७ सू० तकारस्य लोपे **काऊण** इति सिद्धम्। **तुआण**। तुआणादेशस्योदाहरणानि संसूचयति वृत्तिकारो यथा—**भित्त्वा**। भिद् भेदने। भिद्+क्त्वा। ९०८ सू० इकारस्य एकारे, १११८ सू० भाषा-व्यत्यये कृते, ९९६ सू० दकारस्य तकारे, क्त्वास्थाने तुआण इत्यादेशे **भेत्तुआण** इति सिद्धम्। **श्रुत्वा**। श्रु श्रवणे। श्रु+क्त्वा, ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९०८ सू० उकारस्य ओकारे, क्त्वास्थाने तुआण इत्यादेशे, १७७ सू० तकारस्य लोपे **सोउआण** इति सिद्धम्। **वन्दित्तु इत्यनुस्वारलोपात्**। वन्दित्तु प्रयोगोऽयमनुस्वार-लोपात् निष्पन्नो भवति। यथा—**वन्दित्वा**। वदि अभिवादन-स्तुत्योः। वन्द्+क्त्वा। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, क्त्वास्थाने तुम् इत्यादेशे, ३६९ सू० तकारस्य द्वित्वे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, बाहुल्येनानुस्वारलोपे **वन्दित्तु** इति सिद्धम्। **वन्दित्ता इति सिद्धसंस्कृतस्यैव**। वन्दित्ता इत्ययं प्रयोगस्तु संस्कृत-भाषायां निष्पन्नस्य **वन्दित्वा**—पदस्य ३५० सूत्रेण वकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य च द्वित्वे कृते सिद्धो भवति। **कट्टु इति तु आर्षे**। प्राकृतभाषायां कृत्वा-पदस्य काऊण इति रूपं भवति, कथं कट्टु इत्यस्य पदस्य प्रयोगः क्रियते? इति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यत् कट्टु इति तु कृत्वा-पदस्यैव रूपं वर्तते किन्तु रूपमिदमार्षप्राकृते एव प्रयुज्यते, नतु आर्षेतर-प्राकृते, तत्र तु **काऊण** इत्यस्यैव प्रयोगो भवति।

४१८—**युष्मदीयः**। युष्माकमयमिति युष्मदीयः। युष्मद्+ईय। २४६ सू० यकारस्य तकारे, ३४५ सू० ष्मस्य म्हादेशे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४१८ सू० ईय-प्रत्ययस्य केर इत्यादेशे, सिप्रत्यये ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तुम्हकेरो** इति सिद्धम्। **अस्मदीयः**। अस्माकमयमिति अस्मदीयः। अस्मद्+ईय। ३४५ सू० 'स्म' इत्यस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ११ सूत्रेण दकारस्य लोपे जाते, ४१८ सू० ईय-प्रत्ययस्य 'केर' इत्यादेशः, सिप्रत्ययः, पूर्ववदेव **अम्हकेरो** इति सिद्धम्। **न च भवति**।

बहुलाधिकारात् क्वचित् इदमर्थकस्य ईय-प्रत्ययस्य केर इत्यादेशो न भवति। यथा—**मदीय-पक्षे**। मदीयः (ममायं) चासौ पक्षः मदीयपक्षः तस्मिन्। मदीयपक्ष+ङि। १७७ सू० दकारस्य लोपः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्व—खकारस्य ककारः, ५०० सू० ङेः डिद् एकारः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **मईअ-पक्खे** अत्र बहुलाधिकारात् ईय्-प्रत्ययस्य 'केर' इत्यादेशो न जातः। **पाणिनीयाः**। पाणिनिना प्रोक्ताः पाणिनीयाः। पाणिनीय+जस्। २२८ सू० नकारस्य णकारः, १७७ स० यकारस्य लोपः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **पाणिणीआ** इति सिद्धम्। अत्रापि **बहुलाधिकारात्** ईय-प्रत्ययस्य 'केर' इत्यादेशो न जातः।

४१९—परकीयम्। परस्येदं परकीयम्। पर+कीय। ४४ सू० आदेरकारस्य वैकल्पिके दीर्घे, ४१९ सू० कीय-प्रत्ययस्य क्क, केर इत्यादेशौ, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पारक्कं, परक्कं, पारकेरं** इति सिद्धम्। **राजकीयम्**। राज्ञः इदं राजकीयम्। राजन्+कीय। १७७ सू० जकारस्य लोपे, ४१९ सू० कीयप्रत्ययस्य डित् इक्क, केर इत्यादेशौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **राइक्कं** केर-प्रत्यये कृते तु, बाहुल्येन १८० सू० यकार-श्रुतौ, ११ सू० नकारस्य लोपे **रायकेरं** इति भवति।

४२०—यौष्माकम्। युष्माकमिदं यौष्माकम्। युष्मद्+अञ्। २४६ सू० यकारस्य तकारे, ३४५ सू० ष्मस्य म्हादेशे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४२० सू० अञ्-प्रत्ययस्य एच्चय इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, **सिप्रत्यये,** सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **तुम्हेच्चयं** इति सिद्धम्। **आस्माकम्**। अस्माकमिदम् आस्माकम्। अस्मद्+अञ्। ३४५ सू० स्मस्य 'म्ह' इत्यादेशः, ११ सू० दकारस्य लोपः, ४२० सू० अञः एच्चय इत्यादेशः, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपः, सिप्रत्ययः, पूर्ववदेव **अम्हेच्चयं** इति सिद्धम्।

४२१—मथुरावत् पाटलिपुत्रे प्रासादाः। मथुरायामिव इति मथुरावत्। **मथुरावत्**। अव्ययपदमिदम्। १८७ सू० थकारस्य हकारः, ४२१ सू० वत्-प्रत्ययस्य 'व्व' इत्यादेशः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **महुरव्व** इति सिद्धम्। **पाटलिपुत्रे**। पाटलिपुत्र+ङि। १९५ सू० टकारस्य डकारः, १७७ सू० पकारलोपे, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ५०० सू० ङेः डित्-एकारः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पाडलिउत्ते** इति सिद्धम्। **प्रासादाः**। प्रासाद+जस्। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, १८० सू० यकारश्रुतिः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **पासाया** इति सिद्धम्।

४२२—सर्वाङ्गीणः। सर्वाङ्गीण+सि। ३५० रेफस्य लोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४२२ सू० ईन-प्रत्ययस्य इक इत्यादेशे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सव्वङ्गिओ** इति सिद्धम्।

४२३—पान्थः। पन्थानं नित्यं गच्छतीति पान्थः। पथिन्+ण। १८७ सू० थकारस्य हकारे, ११ सू० नकारस्य लोपे, ४२३ सू० ण-प्रत्ययस्य इकट् (इक) इत्यादेशे, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सिप्रत्यये, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पहिओ** इति सिद्धम्।

४२४—आत्मीयम्। आत्मनः इदम् आत्मीयम्। आत्मन्+ईय्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३२२ सू० त्मस्य पकारः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, ११ सू० नकारस्य लोपः, ४२४ सू० 'ईय'

प्रत्ययस्य 'णय' इत्यादेशः, सिप्रत्ययः, सेर्मकारः, मकारस्यानुस्वारेः **अप्पणयं** इति सिद्धम् ।

४२५—**पीणत्वम्** । पीनस्य भावः पीनत्वम् । पीन+त्व । २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४२५ सू० त्व-प्रत्ययस्य विकल्पेन डिमा (इमा) 'त्तण' इत्यादेशौ, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **पीणिमा**, आदेशाभावे ३५० सू० वकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे **पीणत्त** इति जाते, सिप्रत्यये, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **पीणिमा**, त्तणादेशपक्षे ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पीणत्तणं**, आदेशाभाव-पक्षे **पीणत्तं** इति भवति । **पुष्पत्वम्** । पुष्पस्य भावः पुष्पत्वम् । पुष्प+त्व । ३२४ सू० ष्पस्य फकारे, फकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-फकारस्य पकारे, ४२५ सू० त्वप्रत्ययस्य विकल्पेन डित् इमा, त्तण इत्यादेशौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, सेर्लोपे **पुप्फिमा**, त्तणादेशपक्षे—सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **पुप्फत्तणं**, आदेशाभावे, ३५० सू० वकारस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे—**पुप्फत्तं** इति सिद्धम् । **इमनः पृथ्वादिषु नियतत्वात्** । ※**पृथ्व्यादेरिमन्वा** ।७।१।५८। इत्यनेन सूत्रेण विहितस्य इमन्-प्रत्ययस्य पृथु-आदिशब्देषु नियतत्वात्=नियतीकृतत्वात्, तदन्यप्रत्ययान्तेषु=इमन्-प्रत्यय-भिन्न-प्रत्ययान्तेषु शब्देषु अस्य प्रस्तुतसूत्रस्य विधिः—प्रवृत्तिर्विधेया । अयं भावः, पृथु-आदि-शब्देषु ।७।१।५८। सूत्रेण इमन्-प्रत्ययस्य विधानात् प्रथिमा इत्यादयः शब्दा निष्पन्ना भवन्त्येव, तथा इमा-प्रत्ययो भवेदथवा डिमा-प्रत्ययः, अनेन प्रयोगसिद्धौ न किमप्यन्तरमायाति, तदा प्रस्तुतसूत्रेण डिमा-विधानं निष्फलं जायते, त्वस्थाने डिमा-करणस्य वैयर्थ्यमापद्यते, अतएव वृत्तिकारेणोक्तं यद् डिमादेशस्य विधिः-प्रवृत्तिः, इमन्प्रत्यय-भिन्न-त्व-तलादि-प्रत्ययेष्वेव जायते । यत्र इमन्-प्रत्ययो न विधीयते तत्रैव पृथ्वादि-भिन्नेभ्यः शब्देभ्यः डिमादेशः क्रियते, तेन न तस्य वैयर्थ्यं चिन्तनीयम् । **पीनदा इत्यस्य** । पीनता—शब्दस्य प्राकृतभाषायां **पीणया** इति रूपं भवति । यथा—पीनस्य भावः **पीनता** । पीनता+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, सेर्लोपे **पीणया** इति सिद्धम् । **पीणदा इति तु** । भाषान्तरे-शौरसेनीभाषायां **पीणदा** इति रूपं भवति । अत्र ९३१ सू० तकारस्य दकारो जायते । अतोऽत्र केनचित् सूत्रेण तल्-प्रत्ययस्य दा-विधानं न क्रियते ।

४२६—**सुरभिजलेन कटुकतैलम्** । सुरभिश्च तज्जलं सुरभिजलं तेन । सुरभिजल+सि । १८७ सू० भकारस्य हकारे, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **सुरहि-जलेण** इति सिद्धम् । **कटुकतैलम्** । कटुकस्य स्नेहः इति कटुकतैलम् । ।७।१।१७६। सू० स्नेहार्थके तैल-प्रत्यये, कटुकतैल+सि इति जाते, १९५ सू० टकारस्य डकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ४२६ सू० तैल-प्रत्यस्य डेल्ल (एल्ल) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, सेर्मकारे मकारस्यानुस्वारे **कडुएल्लं** इति सिद्धम् । **अनङ्कोठादिति किम्** ? अङ्कोठ-शब्दस्य तैल-प्रत्ययस्य डेल्ल इत्यादेशो न भवति । यथा—**अङ्कोठतैलम्** । अंकोठस्य स्नेहोऽङ्कोठ-तैलम् । अङ्कोठतैल+सि । २०० सू० ठकारस्य 'ल्ल' इत्यादेशे, १४८ सू० ऐकारस्य एकारे, ३६९ सू० लकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **अङ्कोल्लतेल्लं** इति सिद्धम् । प्रस्तुत-सूत्रे "**अनङ्कोठात्**" इति पाठादत्र तैल-प्रत्ययस्य डेल्लादेशो न जातः ।

४२७—**यावत्** । ★यत् परिमाणमस्य तत् । **यावत्** । यद्+डावतु । २४५ सू० यकारस्य

※ एभ्यो भावे वा इमन् स्यात् । प्रथिमा । पृथुत्वम् । पृथुता । पार्थवम् । मृदिमा । मृदुत्वम् । मृदुता । मार्दवम् ।

★ **यत्तदोर्डावादिः** ।७।१।१४९। एभ्यः स्यन्तेभ्यः मानार्थेभ्यः षष्ठ्यर्थे मेयेऽतुर्डावादिः स्यात् । यावान् । तावान् । एतावान् धन्यराशिः ।

जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४२७ सू० डावतु-प्रत्ययस्य इत्तिअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **जित्तिअं** इति सिद्धम्। **तावत्**। तत् परिमाणमस्य। तद्+डावतु। ११ सू० दकारस्य लोपे, डावतु-प्रत्ययस्य इत्तिअ इत्यादेशे, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, सि-प्रत्यये, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **तित्तिअं** इति सिद्धम्। **एतावत्**। एतत्परिमाणमस्य। **एतावत्**। एतद्+डावतु। डावतु-प्रत्ययस्य इत्तिअ इत्यादेशे, एतदश्च लोपे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **इत्तिअं** इति सिद्धम्।

४२८—**इयत्**। इदं मानमस्य इत्यर्थे ७।१।१४८। सू० *अतु-प्रत्यये, इदमश्च स्थाने इय् इत्यादेशे, ४२८ सू० अतुप्रत्ययस्य डेत्तिअ (एत्तिअ), डेत्तिल (एत्तिल), डेद्दह (एद्दह) इत्यादेशेषु, १।१।३७। सू० डकारलोपे, २।१।११४। सू० डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **एत्तिअं, एत्तिलं, एद्दहं** इति सिद्धम्। **कियत्**। किम् परिमाणमस्य, इत्यर्थे ७।१।१४८। सू० अतु-प्रत्यये किमश्च स्थाने किय् इत्यादेशे, अतुप्रत्ययस्य एत्तिअ, एत्तिल, एद्दह इति डिदादेशेषु, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **केत्तिअं, केत्तिलं, केद्दहं** इति सिद्धम्। **यावत्**। यत्परिमाणमस्य तत्। यद्+डावतु। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ४२८ सू० डावतु प्रत्ययस्य डेत्तिअ, डेत्तिल, डेद्दह इत्यादेशेषु जातेषु, डकारस्य लोपे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे, पूर्ववदेव **जेत्तिअं जेत्तिलं जेद्दहं** इति भवति। **तावत्**। तत्परिमाणमस्य तत्। तद्+डावतु। पूर्ववदेव **तेत्तिअं, तेत्तिलं, तेद्दहं** इति भवति। **एतावत्**। एतत् परिमाणमस्य तत्। एतद्+डावतु। डावतु-प्रत्ययस्य डेत्तिअ, डेत्तिल, डेद्दह इत्यादेशेषु, एतल्लुकि च पूर्ववदेव **एत्तिअं, एत्तिलं, एद्दहं** इति सिद्धम्।

४२९—**शतकृत्वः**। शतवारान् इति शतकृत्वः। अव्ययपदमिदम्। शतकृत्वस्। २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, ४२९ सू० कृत्वस्-प्रत्ययस्य हुत्तं इत्यादेशे **सयहुत्तं**। **सहस्रकृत्वः**। सहस्रवारान् इति सहस्रकृत्वः। अव्ययपदमिदम्। सहस्रकृत्वस्, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वं, कृत्वस्-प्रत्ययस्य हुत्तं इत्यादेशे **सहस्सहुत्तं** इति सिद्धम्। **कथमिति**। प्रस्तुतसूत्रेण कृत्वस्-प्रत्ययस्य हुत्तमित्यादेशो विहितः, परन्तु **प्रियाभिमुखम्**=पियहुत्तं, इत्यत्र हुत्तादेशः कथं जातः? इति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारो यदत्र **अभिमुखार्थकः हुत्त** इति शब्दो विद्यते, तेन **पियहुत्तं** प्रयोगोऽयं निष्पन्नः। साधनिका त्वित्थम्—**प्रियाभिमुखम्**। प्रियस्य अभिमुखम्। प्रियाभिमुख+सि। रेफस्य लोपः, १७७ सू० यकारस्य लोपः, यकार-श्रुतिः, अभिमुखार्थे हुत्तशब्दः प्रयुज्यते, स च पिय इत्यनेन समस्यते, ततः पियहुत्त+सि इति स्थिते, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पियहुत्तं** इति सिद्धम्।

४३०—**यथाप्रयोगम्**। प्रयोगानुसारमित्यर्थः। **स्नेहवान्**। स्नेहोऽस्य अस्मिन् वास्ति, इति स्नेहवान्। स्नेह+मतु। ३४८ सू० सकारस्य लोपः, ४३० सू० मतोः 'आलु' इत्यादेशः, सन्धौ, सिप्रत्यये, नेहालु+सि, इति स्थिते, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **नेहालू**। **दयावान्**। दया अस्ति अस्यास्मिन्वेति दयावान्। दया+मतु। मतुप्रत्ययस्य आलु इत्यादेशे, सन्धौ, पूर्ववदेव **द 'लू**। **ईर्षावान्**। ईर्षाऽस्ति अस्यास्मिन्वेति। ईर्षा+मतु। ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० षकारस्य सकारे, मतुप्रत्ययस्य आलु इत्यादेशे, पूर्ववदेव, **ईसालू**। **लज्जा-**

***इदंकिमोऽतुरिय्-किय् चास्य** ।७।१।१४८। आभ्यां मानार्थाभ्यां षष्ठ्यर्थे मेयेऽतुः स्यात्, तद्योगे चानयोर्यथासंख्यमिय्किया स्याताम्। इयान्, कियान् घटः।

वती। लज्जाऽस्ति अस्याः अस्यां वेति लज्जावती। लज्जा+मतु। मतोः 'आलु' इत्यादेशः, सन्धौ, ४३५ सू० स्वार्थे ककारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, स्त्रीत्वात् ३।४।१८। सू० आप् (आ) प्रत्यये, सिप्रत्यये, **लज्जालुआ+सि**, इति स्थिते, सेर्लोपे **लज्जालुआ**। **शोभावान्**। शोभाऽस्ति अस्य अस्मिन् वेति। शोभा +मतु। २६० सू० शकारस्य सकारः, १८७ सू० भकारस्य हकारः, मतोः 'इल्ल' इत्यादेशे, १० स० स्वरस्य स्वरे परे लोपः, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सोहिल्लो**। **छायावान्**। छायास्ति अस्यास्मिन्वेति। छाया+मतु। १७७ सू० यकारस्य लोपे, मतोः इल्ल इत्यादेशे, पूर्ववदेव **छाइल्लो**। **यामवान्**। यामोऽस्त्यस्यास्मिन् वेति। याम+मतु। २४५ सू० यकारस्य जकारे, मतोः इल्ल इत्यादेशे, स्वरे परे बाहुल्येन स्वरस्य लोपाभावे, पूर्ववदेव **जामइल्लो**। **विकारवान्**। विकारोऽस्त्यस्यास्मिन्वेति। विकार+मतु। १७७ सू० ककारस्य लोपे, मतोः उल्ल इत्यादेशे, पूर्ववदेव **विआरुल्लो**। **मांसवान्**। मांसमस्त्यस्यास्मिन्वेति। मांस+मतु। ७० सू० आदेराकारस्य अकारे, मतोः उल्ल इत्यादेशे, पूर्ववदेव **मंसुल्लो**। **दर्पवान्**। दर्पोऽस्त्यस्यास्मिन्वेति। दर्प+मतु। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, मतोः उल्ल इत्यादेशे, पूर्ववदेव **दप्पुल्लो**। **शब्दवान्**। शब्दोऽस्य अस्ति अस्मिन् वेति। शब्दवान्। शब्द+मतु। २६० सू० शकारस्य सकारः, ३५० सू० बकारस्य लोपः, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वं, मतोः आल इत्यादेशः, पूर्ववदेव **सद्दालो**। **जटावान्**। जटाऽस्य अस्ति अस्मिन् वा जटावान्। जटा+मतु। १९५ सू० टकारस्य डकारः, मतोः आल इत्यादेशः, सिप्रत्ययः, पूर्ववदेव **जडालो**। **फटावान्**। फटाऽस्त्यस्य अस्मिन् वा फटावान्। फटा+मतु। टकारस्य डकारः, मतोः 'आल' इत्यादेशः, पूर्ववदेव **फडालो**। **रसवान्**। रसोऽस्त्यस्य अस्मिन् वेति रसवान्। रस+मतु। मतोः 'आल' इत्यादेशे जाते, पूर्ववदेव **रसालो**। **ज्योत्स्नावान्**। ज्योत्स्नाऽस्य अस्ति अस्मिन् वेति ज्योत्स्नावान्। ज्योत्स्ना+मतु। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३४६ सू० स्नस्य ण्ह इत्यादेशः, मतोः आल इत्यादेशः, पूर्ववदेव **जोण्हालो**। **धनवान्**। धनमस्यास्त्यस्मिन्वेति। धन+मतु। २२८ सू० नकारस्य णकारे, मतोः वन्त इत्यादेशे, पूर्ववदेव **धणवन्तो**। **भक्तिमान्**। भक्तिरस्यास्त्यस्मिन्वेति। भक्ति+मतु। ३४८ सू० ककारलोपे, ३६० तकारस्य द्वित्वे, मतोः वन्त इत्यादेशे, पूर्ववदेव **भत्तिवन्तो**। **हनुमान्**। हनुरस्यास्त्यस्मिन्वेति। हनु+मतु। नकारस्य णकारे, मतोः मन्तादेशे, पूर्ववदेव **हणुमन्तो**। **श्रीमान्**। श्रीरस्यास्त्यस्मिन्वेति। श्री+मतु। २६० सू० शकारस्य सकारे, ३७५ सू० संयुक्तान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वे इकारागमे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, मतोः मन्तादेशे, पूर्ववदेव **सिरिमन्तो**। **पुण्यवान्**। पुण्यमस्यास्त्यस्मिन्वेति। पुण्य+मतु। ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, मतोः मन्तादेशे, पूर्ववदेव **पुण्णमन्तो**। **काव्यवान्**। काव्यमस्यास्त्यस्मिन्वेति। काव्य+मतु। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, वकारस्य द्वित्वे, मतोः इत्त इत्यादेशे, पूर्ववदेव **कव्वइत्तो**। **मानवान्**। मानमस्यास्त्यस्मिन्वेति। मान+मतु। २२८ सू० नकारस्य णकारे, मतोः इत्तादेशे, पूर्ववदेव **माणइत्तो** इति सिद्धम्। **गर्ववान्**। गर्वोऽस्यास्त्यस्मिन्वेति। गर्व+मतु। ३५० सू० रेफलोपे, वकारस्य द्वित्वे, मतोः इर इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, पूर्ववदेव **गव्विरो**। **रेखावान्**। रेखाऽस्यास्त्यस्मिन्वेति। रेखा+मतु। १८७ सू० खकारस्य हकारे, मतोः इरादेशो, १० सू० आकार-लोपे, पूर्ववदेव **रेहिरो**। **धनवान्**। धनमस्यास्त्यस्मिन्वेति। धन+मतु। नकारस्य णकारे, मतोः 'मण' इत्यादेशे, पूर्ववदेव **धणमणो** इति सिद्धम्। **केचिन्मादेशमपीच्छन्ति**। केचिद् वैयाकरणाः मतु-प्रत्ययस्य स्थाने '**मा**' इत्यादेशमपि स्वीकुर्वन्ति,, तेषां मते—हनु+मतु इत्यत्र नकारस्य णकारे, मतोः मा इत्यादेशे,

सिप्रत्यये, सेर्लोपे **हणुमा** इति भवति। **मतोरिति किम्**। आलु इत्यादयो नवादेशाः मतुप्रत्ययस्यैव स्थाने भवन्ति नत्वन्यस्य प्रत्ययस्य। अतएव इनादिप्रत्ययानां स्थाने नैतस्य सूत्रस्य प्रवृत्तिर्यथा—**धनी**। धनमस्यास्त्यस्मिन्वेति। धन+इन्। नकारस्य णकारे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, ११ सू० नकारस्य लोपे, ५०८ सू० इकारस्य ईकारे, सिप्रत्यये, सेर्लोपे **धणी** इति सिद्धम्। अत्र मतु-प्रत्ययस्याभावेन प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **अर्थिकः**। अर्थोऽस्त्यस्यास्मिन्वेति। अर्थ+इक। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, स्वरस्य लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **अत्थिओ** इति सिद्धम्। अत्रापि मतुप्रत्ययस्याभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्नाभूद्।

४३१—सर्वतः। सर्वस्माद् इति सर्वतः। सर्वतस्। अव्ययपदमिदम्। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वं, ४३१ सू० तस्-प्रत्ययस्य विकल्पेन त्तो दो इत्यादेशौ, ततः **सव्वत्तो सव्वदो**। आदेशयोरभावे पूर्ववदेव **सव्वतस्** इति जाते, १७७ सू० तकारस्य लोपे, संस्कृतनियमेन सकारस्य विसर्गे, ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, १।१।३७। सू० डकारस्य लोपे, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **सव्वओ**। **एकतः**। एकस्मादिति। एकतस्। अव्ययपदमिदम्। तसः त्तो दो इत्यादेशौ जातौ, ततः—**एकत्तो, एकदो**। **अन्यतः**। अन्यस्मादिति। अन्यतस्। अव्ययपदमिदम्। ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वे, तसः त्तो दो इत्यादेशौ, ततः **अन्नत्तो अन्नदो**। **कुतः**। कस्मादिति। किम्+तस्। ५६० सू० किमः क इत्यादेशे, तसः विकल्पेन त्तो, दो इत्यादेशौ, ततः **कत्तो कदो** इति सिद्धम्। **यतः**। यस्मादिति। यद्+तस्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, तसो विकल्पेन त्तो दो इत्यादेशौ, ततः—**जत्तो जदो**। **ततः**। तस्मादिति। तद्+तस्। दकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **तत्तो तदो**। **इतः**। अस्मादिति। *इतस्। तसो विकल्पेन त्तो दो इत्यादेशौ, ततः—**इत्तो इदो** इति सिद्धम्। **पक्षे**। यत्र तसः स्थाने त्तो दो इत्यादेशौ न जातौ तत्र **सर्वतः-सव्वओ** इत्यादीनि रूपाणि भवन्ति।

४३२—यत्र। यद्+त्रप्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४३२ सू० त्रप्-प्रत्ययस्य हि, ह, त्थ इत्यादेशेषु जातेषु **जहि जह जत्थ**। **तत्र**। तस्मिन्निति। तद्+त्रप्। दकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **तहि तह, तत्थ**। **कुत्र**। कस्मिन् इति कुत्र। किम्+त्रप्। ५६० सू० किमः 'क' इत्यादेशः, पूर्ववदेव **'कहि' 'कह' कत्थ**। **अन्यत्र**। अन्यस्मिन्निति। अन्यद्+त्रप्। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वं, दकारस्य लोपः, पूर्ववदेव **अन्नहि, अन्नह, अन्नत्थ** इति सिद्धम्।

४३३—एकदा। एकवारमिति एकदा। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र ३७० सू० ककारस्य द्वित्वं, ४३३ सूत्रेण दा-प्रत्ययस्य विकल्पेन 'सि' सिअं, इआ इत्यादेशाः, ततः **एक्कसि, एक्कसिअं, एक्कइआ** इति भवति। **पक्षे**। आदेशानामभावपक्षे—१०६७ सू० ककारस्य गकारे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टे अकारे **एगया** इति भवति।

४३४—ग्रामेयकाः। ग्रामे भवाः। ग्राम+एयकञ्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, संस्कृतभाषायां भवार्थे एयकञ्-प्रत्ययो भवति परन्तु प्राकृतभाषायां भवार्थे ४३४ सूत्रेण डिल्ल-प्रत्यये, गाम+डिल्ल इति जाते, १।१।३७। सू० डकारस्य लोपे, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १००० सू० अन्त्याकारस्य इकारे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, स्त्रीत्वात्

***इतोऽतः कुतः**। ७।२।१०। एतेन सूत्रेण "**इतः**" इति तसन्तो निपातितः।

२।४।१८। सू० आप् (आ) प्रत्यये, पकारस्य लोपे, सन्धौ, सिप्रत्यये १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **गामिल्लिआ। पुरातनम्**। पुरा भवम्। पुरातन+सि। भवार्थे तनस्य स्थाने डिल्ल-(इल्ल)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पुरिल्लं। अधस्तनम्**। अधोभवम्। अधस्+तन। इत्यत्र ४१२ सू० अधसः हेट्ठ इत्यादेशे. भवार्थे डिल्ल (इल्ल)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, सि-प्रत्यये, पूर्ववदेव **हेट्ठिल्लं** इति भवति। **उपरितनम्**। उपरितन+सि। २३१ सूत्रेण पकारस्य **वकारः**, ४३४ सू० भवार्थे तनस्य डिति इल्ल-प्रत्यये, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे, पूर्ववदेव **उवरिल्लं** इति भवति। **आत्मिकम्**। आत्मनि भवम्। आत्मन्+इक। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३२२ सू० संयुक्तस्य त्म इत्यस्य पकारः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, ४३४ सू० भवार्थे इकस्य डित्-इल्ल-प्रत्यये, पूर्ववदेव **अप्पुल्लं** इति सिद्धम्। **आलवालावपीच्छन्त्यन्ये**। अन्ये केचनाचार्याः 'आलु' 'आल' इति प्रत्ययावपि भवार्थे मन्यन्ते।

४३५—कुङ्कुमपिञ्जरम्। कुङ्कुमस्य पिञ्जरं कुङ्कुमपिञ्जरम्। कुङ्कुमपिञ्जर+सि। ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्ययः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, ५१४ सू० सेर्मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कुङ्कुमपिञ्जरयं** इति भवति। **चन्द्रः**। चन्द्र+सि। ३५१ सू० रेफस्य लोपः, स्वार्थे क-प्रत्ययः, ककारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **चन्दओ। गगने**। गगन+ङि। १७७ सू० द्वितीय-गकारस्य लोपः, यकार-श्रुतिः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, स्वार्थे क-प्रत्ययः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, यकारश्रुतिः, ५०० सू० ङेः 'म्मि' इत्यादेशे **गयणयम्मि। धरणीधर-प्रक्षोभ्यत्**। धरणीधर-प्रक्षुभ्+शतृ। इत्यत्र १८७ सू० द्वितीयधकारस्य हकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वं जातम्, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारः, ९०१ सू० भकारस्य द्वित्वं, पूर्वभकारस्य बकारः, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६७० सू० शतुः 'न्त' इत्यादेशः, स्वार्थे क-प्रत्ययः, ककारस्य लोपः, यकार-श्रुतिः, सि-प्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **धरणीहर-पक्खुब्भन्तयं। दुःखिते**। दुःखित+ङि। ३४३ सू० संयुक्तस्य :ख इत्यस्य हकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, स्वार्थे क-प्रत्ययः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ५०० सू० ङेः डे (ए) इत्यादेशः डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दुहिअए। रामहृदये**। रामस्य हृदयं रामहृदयं तस्मिन्। रामहृदय+ङि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, स्वार्थे क-प्रत्ययः, ककारस्य लोपः, ङेः डित् (ए) इत्यादेशः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **रामहिअयए। इह**= इहयं, प्रक्रिया २४ सूत्रे ज्ञेया। **आश्लेष्टुम्**=आलेट्ठुअं, प्रक्रिया २४ सूत्रे ज्ञेया। **द्विरपि भवति**। कस्मिंश्चित् स्थले क-प्रत्ययस्य द्विवारमपि प्रयोगो भवति। यथा **बहुः**। बहु+सि। स्वार्थे **क-प्रत्यये**, ककारस्य लोपे, पुनः स्वार्थे क-प्रत्यये, ककारस्य लोपे, १८० सू० यकार-विशिष्टेऽकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **बहुअयं** इति सिद्धम्। **ककारोच्चारणं पैशाचिक-भाषार्थम्**। प्रस्तुत-सूत्रेण विहितस्य क-प्रत्ययस्य ककारस्य लोपेन अकार एवावशिष्यतेऽतोऽकारविधानेनैवासीत् कार्यसिद्धिः, ककारोच्चारणं किमर्थं कृतमिति प्रश्नः। **उत्तरयति** वृत्तिकारः। ककारोच्चारणं पैशाचिक-भाषार्थम्, यतस्तत्र ककारस्य लोपो न भवति। यथा-**वदने वदनं समर्प्य। वदने**। वदन+ङि। ९७८ सू० पैशाच्यां दकारस्य तकारे, स्वार्थे क-प्रत्यये, ९९५ सू० कलोप-निषेधे, ५०० सू० ङेः डे (ए) इत्यादेशे, डितिपरेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **वतनके। वदनम्**। वदन+सि। पूर्ववदेव वतनक+सि इति जाते, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **वतनकं। समर्प्य**। सम्-पूर्वकः अर्प्-धातुः समर्पणे। समर्प्+क्त्वा। ३५०

सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ९८३ सू० पैशाच्यां क्त्वास्थाने तून इत्यादेशे, ६४६ सू० अकारस्य एकारे, ३६९ सू० तकारस्य द्वित्वे **समप्पेत्तून**। **निर्जिताशोक-पल्लवेन**। अशोकस्य पल्लवः अशोकपल्लवः, निर्जितः अशोकपल्लवो येन सः निर्जिताशोकपल्लवः, तेन। निर्जिताशोकपलव+टा। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० तकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, स्वार्थे डित् इल्ल-प्रत्ययः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपः, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य 'ण' इत्यादेशः, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण**। **पुरा**। अव्ययपदमिदम्। स्वार्थे डित्-इल्ल-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अजभीने परेण संयोज्ये, बाहुल्येन अव्ययत्वादपि सेर्लोपाभावे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पुरिल्लो**। यदि **पुरः**, इति संस्कृत-रूपं भवत्तेदा—पुरस्+इल्ल, इति जाते, पूर्ववदेव **पुरिल्लो** इति भवति। **मम पिता**। **मम**। अस्मद्+ङस्। ६०२ सू० ङसा **सह अस्मदः** मह इत्यादेशे कृते **मह**। **पिता**। पितृ+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपे, स्वार्थे डित् उल्लप्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, प्रस्तुतसूत्रे **द्विरपि भवति** इतिवचनात् स्वार्थे क-प्रत्यये, ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **पिउल्लओ** इति भवति। **मुखम्**। मुख+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारे, स्वार्थे डित्-उल्ल-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरार्देलोपे, सेर्मकारे, मकारस्यनुस्वारे **मुहुल्लं**। **हस्तौ**। हस्त+औ। ३१६ सू० स्तस्य **थकारे**, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-थकारस्य तकारे, स्वर्थे डित्-उल्ल-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **हत्थुल्ला** इति भवति। **पक्षे**। यत्र स्वार्थिकानामिल्लोल्लकादि-प्रत्ययानामभावस्तत्र त्विमानि रूपाणि भविष्यन्ति, यथा **चन्द्रः**=चन्दो, प्रक्रिया ३० सूत्रे ज्ञेया। अत्र स्वार्थिक-कादि-प्रत्ययानामभावो जातः। एवमेवाग्रिमेषूदाहरणेष्वपि स्वार्थिक-प्रत्ययाभावो बोध्यः। **गगनम्**। गगन+सि। १७७ सूत्रेण गकारस्य लोपः, यकार-श्रुतिः नकारस्य णकारः, सेर्मकारः, मकारस्य अनुस्वारे **गयणं**। **इह**। अव्ययपदमिदम्। संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **आश्लेष्टुम्**। अव्ययपदमिदम्। ३४८ सू० शकारस्य लोपः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारे, मकारस्यानुस्वारे **आलेट्ठुं**। **बहु**। बहु+सि। १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **बहु**। **बहुकम्**। बहुक+सि। १७७ सू० ककारस्य लोपः, पूर्ववदेव **बहुअं**। **मुखम्**=मुहं प्रक्रिया १८७ सूत्रे ज्ञेया। **हस्तौ**। हस्त+औ। स्तस्य थकारः, थकारस्य द्वित्वं, पूर्वथकारस्य तकारः, द्विवचनस्य बहुवचनम्, जसो लुक, पूर्वाकारस्य दीर्घे **हत्था** इति सिद्धम्। **कुत्सादिविशिष्टे तु**। कुत्सा-शब्दः, अपशब्दः, निन्दा, तिरस्कार इत्यादीनामर्थानां बोधकः। कुत्सा-आदिष्वर्थेषु संस्कृतभाषायां यथा कप्प्रत्ययो भवति तथैव प्राकृतभाषायामप्यवसेयम्। यथा—**कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः**। अश्वक+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४३ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, पूर्ववदेव **आसओ** इति सिद्धम्। अत्र कप्-प्रत्ययः कुत्सितार्थको बोध्यः। एवमेव अन्येऽपि प्रयोगाः संसाधनीयाः। **यावादिलक्षणः**। ७।३।१५। सूत्रेण याव-आदि-शब्देभ्यो यथा क-प्रत्ययः संस्कृतभाषायां भवति, तथैव प्राकृतभाषायामपि बोध्यम्। *याव-आदि-लक्षणः=यावादिशब्दान् निमित्तं विधाय विहितः क-प्रत्ययः प्रतिनियतविषयः—प्रतिनियतः—निश्चितो विषयः=अर्थो यस्य स प्रतिनियतविषयोऽवगन्तव्यः, इति सूत्रकारस्य वचनं=कथनं ज्ञेयम्।

---

* यावादिभ्यः कः। ७।३।१५। स्वार्थे कः स्यात्। यावकः। मणिकः।

४३६—नवः । नव+सि । ४३६ सू० स्वार्थे वैकल्पिके ल्ल-प्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**नवल्लो** प्रत्ययाभावे-**नवो** । **एकः** । एक+सि । स्वार्थे वैकल्पिके ल्ल-प्रत्यये, पूर्ववदेव **एकल्लो**, प्रत्ययाभावे, ३७० सू० वैकल्पिके ककारस्य द्वित्वे **एक्को**, द्वित्वाभावे १७७ सू० ककारलोपे **एओ** इति सिद्धम् । **सेवादित्वात् कस्य** । यत्र ३७० सूत्रेण ककारस्य द्वित्वं जातं तत्र **एक्कल्लो** इति भवति । **पक्षे** । यत्र 'ल्ल'-प्रत्ययो न जातस्तत्रेति भावः ।

४३७—संव्यानेऽर्थे वर्तमानात् । उत्तरीये-वस्त्रार्थके विद्यमानादित्यर्थः । **उपरि** । अव्ययपदमिदम् । १०८ सू० उकारस्य अकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ४३७ सू० स्वार्थे ल्ल-प्रत्यये, अव्यय-त्वादपि **बाहुल्येन** न सेर्लोपे, पूर्ववदेव **अवरिल्लो** इति भवति । **संव्यान इति किम्** ? उपरि-शब्दो यदा संव्यानार्थको भवेत्तदैव तस्मात् स्वार्थे ल्ल-प्रत्ययो भवति, नान्यथा । यथा—**उपरि**=अवरिं, प्रक्रिया २६ सूत्रे ज्ञेया । अत्र संव्यानार्थाभावत्वाद् ल्ल प्रत्ययो न जातः ।

४३८—भ्रूः । भ्रू+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, १२१ सू० ऊकारस्य उकारे, ४३८ सू० स्वार्थे मया, डमया (अमया) इत्येतौ प्रत्ययौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **भुमया, भमया** इति सिद्धम् ।

४३९—शनैरवगूढः । **शनैस्** । अव्ययपदमिदम् । २६० सू० शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४३९ सू० स्वार्थे डिअम-(इअम्)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—सणिअम्+अवगूढ+सि, इति स्थिते, अज्झीने परेण संयोज्ये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सणिअमवगूढो** इति सिद्धम् ।

४४०—मनाक् । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४४० सू० स्वार्थे विकल्पेन डयम् (अयम्), डिअम् (इअम्) इत्येतौ प्रत्ययौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मणयं मणिअं** प्रत्ययाभावे ११ सू० ककारस्य लोपे **मणा** इति भवति ।

४४१—मिश्रम् । मिश्र+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ४३ सू० इकारस्य दीर्घे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४४१ सू० स्वार्थे विकल्पेन डालिअ-(आलिअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मीसालिअं** प्रत्ययाभावे—**मीसं** इति भवति ।

४४२—दीर्घम् । दीर्घ+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, १८७ सू० घकारस्य हकारे, ४४२ सू० स्वार्थे विकल्पेन र-प्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **दीहरं, दीहं** इति सिद्धम् ।

४४३—भावे त्वतल् ।७।१।५५। इत्यादिसूत्रैः विहितेभ्यस्त्वादि-प्रत्ययेभ्योऽग्रे स्वार्थे ते एव त्वादिप्रत्यया भवन्तीति भावः । यथा **मृदुकत्वेन** । मृदु एव मृदुकम्, मृदुकस्य भावः मृदुकत्वम्, तेन । मृदुकत्व+टा । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १७७ सू० दकारस्य ककारस्य च लोपः, ३५० सू० वकारस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ४४३ सू० स्वार्थे तल्-(त)-प्रत्ययः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, स्त्रीत्वात् आप्-(आ)-प्रत्ययः, दीर्घसन्धौ, ५१८ सू० टा-प्रत्ययस्य इत् (इ) इत्यादेशे **मउअत्तयाइ** इति सिद्धम् । **आतिशायिकात्त्वातिशायिकः** । आतिशायिक-प्रत्ययान्तात्, अतिशय-बोधक-प्रत्ययान्तात् शब्दात् आतिशायिका -अतिशयबोधकाः प्रत्ययाः यथा संस्कृतभाषायाँ भवन्ति, तथैव प्राकृत-भाषायामपि जायन्ते । यथा संस्कृतभाषायामतिशयबोधकस्तरप्-प्रत्ययः प्रयुज्यते तथैव प्राकृतभाषायामपि । शब्दसाधनिका त्वित्थम् । **ज्येष्ठतरः** । अतिशयेन ज्येष्ठः । ज्येष्ठतर+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३४८ सू० षकारस्य लोपः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्व-

ठकारस्य टकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारश्रुतिः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **जेट्ठयरो** । **कनिष्ठतरः** । अतिशयेन कनिष्ठः । कनिष्ठतर+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारः, षकारलोपे, ठकारद्वित्वे, पूर्वठकारस्य टकारे, पूर्ववदेव **कणिट्ठयरो** इति सिद्धम् ।

४४४—**विद्युत्** । विद्युत्+ सि । ६ सूत्रतुल्यमेव विज्जुला+सि, इति जाते, सेर्लोपे **विज्जुला** । **पत्रम्** । पत्र+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ४४४ सू० स्वार्थे विकल्पेन ल-प्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पत्तलं** । **अन्धः** । अन्ध+सि । स्वार्थे विकल्पेन ल-प्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **अन्धलो** इति सिद्धम् । **पक्षे** । वैकल्पिकत्वात् यत्र स्वार्थे ल-प्रत्ययो न जातस्तत्र कीदृशानि रूपाणि भवन्तीति प्रति-पादयति वृत्तिकारः । यथा— **विद्युत्**=विज्जू, प्रक्रिया १५ सूत्रे ज्ञेया । **पत्रम्** । पत्र+सि=पत्त+सि । पूर्ववदेव **पत्तं** । **पीतम्**—पीअं, प्रक्रिया २१३ सूत्रे ज्ञेया । **अन्धः** । अन्ध+सि । पूर्ववदेव **अन्धो** इति सिद्धम् । **कथ जमलं** । सूत्रोक्तेषु विद्युदादि-शब्देषु यमलस्य नोल्लेखो विहितः, परमत्र ल-प्रत्ययो दृश्यते, कथमभूदत्र ल-प्रत्ययः ? इति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारः । नाऽयं **यम-शब्दः**, किन्तु **यमलः** । संस्कृतभाषायां यमल-शब्दो विद्यते, तस्मादेव प्राकृते **जमलो** इति रूपं निष्पन्नम् । शब्दसाधना त्वित्थम्—२४५ सू० यकारस्य जकारे, पूर्ववदेव ५१४ सू० सेर्मकारे २३ सू० मकारानुस्वारे **जमलं** इति सिद्धम् ।

४४५—**अनुक्त-प्रकृति-प्रत्यय-लोपागम-वर्ण-विकाराः** । प्रकृतयश्च, प्रत्ययाश्च, लोपाश्च, आगमाश्च, वर्णविकाराश्च ते प्रकृति-प्रत्यय-लोपागमवर्णविकाराः । न उक्ताः, अनुक्ताः, प्रकृति···वर्णविकाराः येषां शब्दानां तेऽनुक्त-प्रकृति-प्रत्यय-लोपागम-वर्णविकाराः । एवंभूता गोणादयः शब्दा बाहुलकेन निपात्यन्ते-निपातनात् व्युत्पाद्यन्ते । प्रकृति-प्रत्ययविभागमन्तरं विनैव सिद्धरूपस्य कथनं निपातः । यथा— **गौः** । गो+सि । ४४५ सू० गोशब्दस्य गोण, **गावी** इति निपातितौ, पुल्लिङ्गे ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **गोणो**, स्त्रीलिङ्गे-१।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **गावी** इति भवति । **गावः** । गा+जस् । गोशब्दस्य **गावी** इति निपातिते, ५१६ सू० जस ओत् (ओ) इत्यादेश **गावीओ** । **बलीवर्दः** । बलीवर्दस्य **'बइल्ल'** इति निपातिते, पूर्ववदेव **बइल्लो** । **आपः** । अप्+जस् । अपः **आउ** इति निपातिते, ६१३ सू० अदन्तत्वात्, ५०८ सू० **उकारस्य** दीर्घे, ४९३ सू० जसो लुक् **आऊ** । **पञ्चपञ्चाशत्** । पञ्चपञ्चाशत्+सि । पञ्चपञ्चाशतः **पञ्चावण्णा पणपन्ना** इति निपातितौ, सेर्लोपे, **पञ्चावण्णा पणपन्ना** इति सिद्धम् । **त्रिपञ्चाशत्**+सि । त्रिपञ्चाशतः स्थाने **तेवण्णा** इति निपातिते, सेर्लोपे **तेवण्णा** इति सिद्धम् । **त्रिचत्वारिंशत्** । त्रिचत्वारिंशत्+सि । त्रिचत्वारिंशतः **तेआलीसा** निपातिते सति, सेर्लोपे-**तेआलीसा** । **व्युत्सर्गः** । व्युत्सर्ग+सि । व्युत्सर्गस्य **विउसग्ग** इति निपातिते, पूर्ववदेव **विउसग्गो** । **व्युत्सर्जनम्** । व्युत्सर्जन+सि । व्युत्सर्जनस्य **वोसिरण** इति निपातिते, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **वोसिरणं** । **बहिः** । अव्ययपदमिदम् । बहिसव्ययस्य **बहिद्धा** इति निपातिते **बहिद्धा** । **मैथुनम्** । मैथुन+सि । मैथुनस्य **बहिद्धा** इति निपातिते, सेर्लोपे **बहिद्धा** । **कार्यम्** । कार्य+सि । कार्यस्य **णामुक्कसिअ** इति निपातिते, पूर्ववदेव **णामुक्कसिअं** । **क्वचित्** । अव्ययपदमिदम् । अस्य **'कत्थइ'** इति निपातिते **कत्थइ** । **उद्वहति** । उत्पूर्वकः वह्-धातुः उद्वहने । उद्वह्+तिव् । 'उद्वहति' इति क्रियापदस्य **मुव्वहइ** इति निपातिते **मुव्वहइ** इति सिद्धम् । **अपस्मारः** । अपस्मार+सि । अपस्मारस्य **वम्हल** इति निपातिते, पूर्ववदेव **वम्हलो** । **उत्पलम्** । उत्पल+सि । उत्पलस्य **कन्दुट्ट** इति निपातिते, पूर्ववदेव **कन्दुट्टं** । **धिक्धिक्** । अव्ययपदमिदम् । एतस्याव्ययस्य **छिछि, धिद्धि** इत्येतयोः

निपातितयोः **छिछि, धिद्धि । धिगस्तु** । धिक् इत्यव्ययपदम्, अस्तु इति क्रिया-पदम् । द्वयोः एतयोः स्थाने **धिरत्थु** इति निपातिते **धिरत्थु । प्रतिस्पर्धा** । प्रतिस्पर्धा+सि । प्रतिस्पर्धा-शब्दस्य **पडिसिद्धि पाडिसिद्धि** इत्येतयोर्निपातितयोः, ५०८ सू० इकारस्य ईकारे, सेर्लोपे **पडिसिद्धी पाडिसिद्धी । स्थासकः** । स्थासक+सि । स्थासकस्य **चच्चिक्क** इति निपातिते पूर्ववदेव **चच्चिक्कं** इति सिद्धम् । **निलयः**+सि । निलयस्य **'निहेलण'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव **निहेलणं । मघवान्** । मघवत्+सि । 'मघवत्' इत्यस्य **'मघोण'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव **मघोणो । साक्षी** । साक्षिन्+सि । साक्षिन् इत्यस्य **'सक्खिण'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव **सक्खिणो । जन्म** । जन्मन्+सि । जन्मन् इत्यस्य **'जम्मण'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव **जम्मणं । महान्** । महत्+सि । 'महत्' इत्यस्य **महन्त** इति निपात्यते, पूर्ववदेव डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **महन्तो । भवान्** । भवत्+सि । 'भवत्' इत्यस्य **'भवन्त'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **भवन्तो । आशीः** । आशिस्+सि । **'आशिस्'** इत्यस्य **आसीसा** इति निपातिते, सेर्लोपे **आसीसा** इति सिद्धम् । **क्वचिद् हस्य ड्ड-भौ** । कस्मिंश्चित्स्थले हकारस्य ड्ड, भ इति निपात्येते । यथा—**बृहत्तरम्** । बृहत्तर+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, हकारस्य 'ड्ड' इति निपात्यते, ३४८ सू० संयुक्त-तकारस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, पूर्ववदेव **वड्डयरं । हिमोरः** । हिमोर+सि । निपातनात् हकारस्य भकारः, पूर्ववदेव डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भिमोरो** इति सिद्धम् । **ल्लस्य ड्डः** । ल्ल इत्यस्य स्थानेऽपि ड्ड इति निपात्यते । यथा-**क्षुल्लकः** । क्षुल्लक+सि । २७४ सू० क्षस्य खकारे, 'ल्ल' इत्यस्य 'ड्ड' इति निपात्यते, १७७ सू० ककारस्य लोपः, पूर्ववदेव **खुड्डओ** इति सिद्धम् । **घोषाणामग्रेतनो गायनः** । **"घोष आभीरपल्ली स्याद्"** इत्यमरः । घोषाणामाभीरपल्लीनामग्रेतनो-मुख्यः, गायनः-गायकः ! घोषनिवासिषु गायकेषु यो मुख्य-गायकः स गायनः इत्यभिधीयते । गायन+सि । गायनस्य घायण इति निपातिते, पूर्ववदेव **घायणो । वडः** । वड+सि । वडस्य **वढ** इति निपातिते, पूर्ववदेव **वढो । ककुदम्** । ककुद्+सि । ककुदः **ककुधं** इति निपातिते, पूर्ववदेव **ककुधं । अकाण्डम्** । न काण्डमकाण्डम् । अकाण्ड+सि । अकाण्डस्य **अत्थक्क** इति निपातिते, पूर्ववदेव **अत्थक्कं । लज्जावती** । लज्जावती+सि । लज्जावत्याः **लज्जालुइणी** इति निपातिते, सेर्लोपे-**लज्जालुइणी । कुतूहलम्** । कुतूहल+सि । कुतूहलस्य **'कुड्ड'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव **कुड्डं । चूतः** । चूत+सि । चूतस्य **'मायन्द'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव **मायन्दो** इति सिद्धम् । **माकन्दशब्दः संस्कृतेऽपि** । अन्ये वैयाकरणाः कथयन्ति यद् संस्कृतभाषायामपि माकन्दशब्दः प्रयुज्यते, तेषां मते माकन्दशब्दादेव **मायन्दो** इति रूपं सिद्धं भवति । यथा-माकन्द+सि । १७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, पूर्ववदेव **मायन्दो । विष्णुः** विष्णु+सि विष्णुशब्दस्य **'भट्टिअ'** इति निपातिते, पर्ववदेव **भट्टिओ** इति भवति । **श्मशानम्** । श्मशान+सि । श्मशानस्य **'करसी'** इति निपात्यते, सेर्लोपे **करसी** इति निष्पन्नम् । **असुराः** । असुर+जस् । असुरस्य **'अगय'** इति निपात्यते, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **अगया । खेलम्** । खेल+सि । खेलस्य **'खेड्ड'** इति निपात्यते, पूर्ववदेव **खेड्डं । पौष्प रजः** । पुष्पस्येदं पौष्पम्=पुष्पसम्बन्धि रजः इत्यर्थे तिङ्गिच्छि इति निपातिते, सिप्रत्यये, सेर्लोपे जाते **तिङ्गिच्छि** इति भवति । **दिनम्** । दिन+सि । दिनस्य **अल्ल** इति निपातिते, पूर्ववदेव **अल्लं** इति भवति । **समर्थः** । समर्थ+सि । समर्थस्य स्थाने **पक्कल** इति निपातिते, पूर्ववदेव **पक्कलो** इति भवति । **पण्डकः** । पण्डक+सि । पण्डकस्य **णेलच्छ** इति निपातिते, पूर्ववदेव **णेलच्छो** इति भवति । **कर्पासः** । कर्पास+सि । कर्पासस्य **पलहि** इति निपातिते, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **पलही । बली** । बलिन्+सि । बलिनः स्थाने **उज्जल्ल** इति निपातिते, पूर्ववदेव

उज्जल्लो । ताम्बूलम् । ताम्बूल+सि । ताम्बूलस्य स्थाने **झसुर** इति निपातिते, पूर्ववदेव **झसुरं** इति सिद्धम् । **पुंश्चली** । पुंश्चली+सि । पुंश्चली इत्यस्य **छिंछई** इति निपातिते, सेर्लोपे **छिंछई । शाखा** । शाखा+सि । शाखायाः **साहुली** इति निपातिते, सेर्लोपे **साहुली** इति भवति । **वाधिकारात्पक्षे । 'वा'** इति पदस्याधिकारात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिविकल्पेन भवत्यतः यथादर्शनं=प्रयोगानुसारं क्वचिदनुक्त-प्रकृति-प्रत्यय-लोपागम-वर्ण-विकाराः न निपात्यन्ते । तेन—**गउओ** इत्यादयः शब्दा अपि सिध्यन्ति । यथा—**गोकः** । गोक+सि । १५८ सू० ओकारस्य अउ इत्यादेशे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **गउओ** इति भवति । **गोला-गोआवरी इति तु** । एतद् रूपद्वयं तु गोला-गोदावरी-शब्दाभ्यामेव निष्पन्नं भवति । यथा—**गोला**+सि । सेर्लोपे **गोला** इति सिद्धम् । **गोदावरी** । गोदावरी+सि । १७७ सू० दकारस्य लोपे, सेर्लोपे **गोआवरी** इति सिद्धम् । अत्र प्रयोगद्वये प्रस्तुत-सूत्रेण न किमपि कार्यं कृतम् । **भाषाशब्दाश्च** । आहित्थ इत्यादयः शब्दाः अनेक-विधानां देशीय-भाषाणां शब्दाः वर्तन्ते, एतेषां शब्दानामर्थाः महाराष्ट्रविदर्भादि-देशप्रसिद्धाः, लोकतो=तत्तद्भाषा-विशारदेभ्योऽवगन्तव्याः । प्राकृत-भाषायामपि एतेषां शब्दानां प्रयोगो दृश्यते । ते चैते शब्दाः । यथा—**१—आहित्थः**=कुपितः, आकुलो वा, **२—लल्लक्कः**=भीष्मः, **३—विड्डिरः**=आनकः, वाद्यविशेषः, शब्दायमानो मेघः, **४—पच्चड्डिअः**=क्षरितः-स्रवितः, **५—उप्पेहडः**=उद्भटः, प्रचण्डः, **६—मडप्फरः**=गर्वः, **७—पड्डिच्छिरम्**=सदृक्, क्वचिद्, **आहिच्छरः**=अग्निकारः, इत्यपि पाठः, **८—अट्टमट्टम्**=आलबालम्, **९—विहडप्फडो**=व्याकुलः, **१०—उज्जल्लम्**=स्वेदसहितं, मलिनं, बलिष्ठः, **११—हल्लप्फडम्**=औत्सुक्यं, त्वरा इत्यादयोऽनेक-विधा भाषा-शब्दाः महाराष्ट्रविदर्भादिदेशेषु प्रसिद्धाः वर्तन्ते । एतेषां शब्दानां साधनिका त्वित्थं बोध्या—**१—कुपितः, आकुलो वा** । कुपित+सि । अथवा आकुल+सि । कुपितस्य, आकुलस्य वा स्थाने **आहित्थ** इति निपातिते, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **आहित्थो** इति सिद्धम् । **२—भीष्मः** । भीष्म+सि । भीष्मस्य **लल्लक्क** इति निपातिते, पूर्ववदेव **लल्लक्को** इति भवति । **३—आनकः** । आनक+सि । आनकस्य स्थाने **विड्डिर** इति निपातिते, पूर्ववदेव **विड्डिरो । ४—क्षरितम्** । क्षरित+सि । क्षरितस्य **पच्चड्डिअ** इति निपातिते, पूर्ववदेव **पच्चड्डिओ । ५—उद्भटः** । उद्भट+सि । उद्भटस्य **उप्पेहड** इति निपातिते, पूर्ववदेव **उप्पेहडो** इति भवति । **६—गर्वः** । गर्व+सि । गर्वस्य **मडप्फर** इति निपातिते, पूर्ववदेव **मडप्फरो । ७—सदृक्** । सदृश्+सि । सदृशः **पड्डिच्छिर** इति निपातिते, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पड्डिच्छिरं** इति भवति । **८—आलबालम्** । आलबाल+सि । आलबालस्य **अट्टमट्ट** इति निपातिते, पूर्ववदेव **अट्टमट्टं । ९—व्याकुलः** । व्याकुल+सि । व्याकुलस्य **विहडप्फड** इति निपातिते, पूर्ववदेव **विहडप्फडो । १०—बलिष्ठः** । बलिष्ठ+सि । बलिष्ठस्य **उज्जल्ल** इति निपातिते, पूर्ववदेव **उज्जल्लं । ११—औत्सुक्यम्** । औत्सुक्य+सि । औत्सुक्यस्य **हल्लप्फड** इति निपातिते, पूर्ववदेव **हल्लप्फडं** इति सिद्धम् । **क्रियाशब्दाश्च** । यथा आहित्थादयः शब्दा महाराष्ट्रविदर्भादिदेशेषु प्रसिद्धाः वर्तन्ते । एवमेव केचित् क्रियाशब्दा अपि विद्यन्ते । यथा—१—**अवकाशयति**, प्रकटयतीत्यर्थः । १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **अवयासइ** । २—**उत्पाटयति** । उत्पाट् इत्यस्य **फुम्फुल्ल** इति निपातिते, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, पूर्ववदेव **फुम्फुल्लइ** । ३—**कथयति** । कथ्-धातोः स्थाने **उप्फाल्** इति निपातिते, अकारागमे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **उप्फालेइ** इति सिद्धम् । **अतएव च कृष्ट-घृष्ट-वाक्येति** । कृष्ट, घृष्ट, वाक्य, विद्वस्, वाचस्पति तथा विष्टरश्रवस् इत्यादीनां

क्विबादिप्रत्ययान्तानां, अग्निचित्-सोमसुत् इत्यादीनां च पूर्वैः-पुरातनैः कविभिः अप्रयुक्तानामकृत-प्रयोगानां शब्दानां प्रतीतिवैषम्यपरः=येषां प्रयोगे प्रतीतिवैषम्यं स्यात् तेषां प्रयोगो न कर्तव्यः, प्रत्युत तेषामर्थाः शब्दान्तरैरेव अभिधेयाः—प्रतिपाद्याः। यथा—कृष्टशब्दार्थकः कुशल-शब्द एव प्रयोक्तव्यः, नतु कृष्ट इत्यस्य प्राकृतरूपं **किट्टो** इति प्रयोक्तव्यम्। यतोहि **किट्टो** इति प्रयोगात् अर्थ-प्रतीतिः सुचारुरूपेण न जायते, किन्तु 'कुशल' इति प्रयोगेण सैव प्रतीतिः सुबोधा सम्पद्यते। एवमेव वाचस्पतिः (वाचां पतिः=स्वामी वाचस्पतिः) इत्यर्थे गुरु-शब्दः प्रयोक्तव्यः। विष्टरश्रवाः इत्यर्थे **हरि**-शब्द एव प्रयोक्तुमुचितः। **घृष्टशब्दस्य तु सोपसर्गस्य**। सोपसर्गस्य उपसर्गसहितस्य घृष्ट-शब्दस्य तु प्रयोग इष्ट एव। यथा **मन्दरतटपरिघृष्टम्**। मन्दरस्य यत् तटं मन्दरतटं, तेन तस्मिन् वा परिघृष्टम्, मन्दरतट-परिघृष्टम्। मन्दरतटपरिघृष्ट+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सूत्रेण अकारे यकार-श्रुतिः, १९५ सू० टकारस्य डकारः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, पूर्ववदेव **मन्दरयडपरिघट्टं** इति सिद्धम्। **तद्दि-वस-निघृष्टानङ्ग!**। स चासौ दिवसः तद्दिवसः, तद्दिवसे निघृष्टः-अनङ्गो येन सः तद्दिवसनिघृष्टानङ्गः, तत्सम्बोधनम्। तद्दिवसनिघृष्टानङ्ग+सि। ३५० सू० वकारस्य लोपः, १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, १८७ सू० घकारस्य हकारः, ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्वठकारस्य टकारः, २२८ सू० द्वितीय-नकारस्य णकारः, सेर्लोपे **तद्दिअस-नहट्ठाणङ्ग!** इति सिद्धम्। **आर्षे तु यथादर्शनम्**। आर्ष-प्राकृते तु यथादर्शनं-प्रयोगानुसारं सर्वमविरुद्धं भवति, तत्र सर्वे प्रयोगाः विरोध-शून्या भवन्ति। अयं भावः—कृष्टादय उपरितनाः निषिद्धाः प्रयोगाः आर्ष-प्राकृत-भाषायां तु प्रयुज्यन्ते एव। यथा—**१—घृष्टाः**। घृष्ट+जस्। १२६ सू० ऋकारस्य अकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ठकारस्य द्वित्वं, पूर्व-ठकारस्य टकारः, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **घट्ठा** इति सिद्धम्। **मृष्टाः**। मृष्ट+जस्। **मट्ठा** घट्ठा-तुल्यमेव ज्ञेयम्। **विद्वांसः**। विद्वस्+जस्। आर्षत्वाद् विद्वसः स्थाने विउस इति निपातिते, जसो लुकि, पूर्वदीर्घे **विउसा** इति सिद्धम्। **श्रुतलक्षणानुसारेण**। श्रुतस्य लक्षणं श्रुतलक्षणं, तस्य अनुसारेण। श्रुतलक्षणानुसार+टा। ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारश्रुतिः, २७४ सू० क्षस्य खकारः, खकारस्य द्वित्वं, पूर्व-खकारस्य ककारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य 'ण' इत्यादेशः, ५०३ सू० णे परे पूर्वाकारस्य एकारे **सुय-लक्खणाणुसारेण** इति सिद्धम्। **वाक्यान्तरेषु च पुनः**। वाक्यान्तरेषु। अन्यानि वाक्यानि इति वाक्यान्तराणि, तेषु। वाक्यान्तर+सुप्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ककारस्य द्वित्वं, संयोगे परे ह्रस्वे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सुप्-प्रत्ययस्य पकारस्य लोपे **वक्कन्तरेसु** इति सिद्धम्। **च**। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० चकारस्य लोपे **अ** इति भवति। **पुनः**। अव्ययपदमिदम्। २२८ सू० नकारस्य णकारः, ३७ सू० विसर्गस्य 'डो' (ओ) इत्यादेशः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **पुणो** इति सिद्धम्।

★ अथ स्त्र्यादि शब्दों को होने वाली इत्थी आदि आदेशविधि ★

स्त्री आदि शब्दों के स्थान में **इत्थी** आदि जो आदेश होते हैं। अब सूत्रकार उनका निर्देश करते हैं:—

४०१—स्त्री शब्द के स्थान में **इत्थी** यह आदेश विकल्प से होता है। **जैसे—स्त्रीः**=इत्थी, थी (नारी), यहां 'स्त्री' के स्थान में **इत्थी** यह आदेश विकल्प से किया गया है।

४०२—**धृति** शब्द के स्थान में **दिहि** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**धृतिः**= दिही, धिई (धैर्य), यहां '**दिहि**' यह वैकल्पिक आदेश किया गया है।

४०३—**मार्जार** शब्द के स्थान में **मञ्जर, वञ्जर** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। **जैसे—मार्जारः**=मञ्जरो, वञ्जरो जहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, वहां **मज्जारो** (बिल्ला) यह रूप बनता है।

४०४—**वैडूर्य** शब्द के स्थान में '**वेरुलिअ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**वैडूर्यम्**= वेरुलिअं, वेडुज्जं (वैडूर्य नामक रत्न) यहां '**वेरुलिअ**' यह आदेश विकल्प से किया गया है।

४०५—'**इदानीम्**' इस अव्ययपद के स्थान में **एण्हिं एत्ताहे** यह दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**इदानीम्**=एण्हिं, एत्ताहे, जहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई वहां **इआणि** (अब) यह रूप बनता है।

४०६—**पूर्व** शब्द के स्थान में '**पुरिम**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**पूर्वम्**= पुरिमं, जहां प्रस्तुत सूत्र से आदेश नहीं हुआ, वहां **पुव्वं** (पूर्व दिशा, पहले) यह रूप बनता है।

४०७—**त्रस्त** शब्द के स्थान में हित्थ, तट्ठ ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। **जैसे—त्रस्तम्**= हित्थं, तट्ठं, जहां ये आदेश नहीं हुए वहां **तत्थं** (डरा हुआ) यह रूप बनता है।

४०८—**बृहस्पति** शब्द के बह इस अंश को भय यह आदेश विकल्प से होता है। **जैसे—बृहस्पतिः**=भयस्सई, भयप्फई भयप्पई, जहां प्रस्तुत सूत्र से 'भय' यह आदेश नहीं हुआ वहां **बहस्सई, बहप्फई बहप्पई** (देवों के गुरु) ये रूप बनते है। १३८ सूत्र से ऋकार को विकल्प से इकार **और** उकार होने पर **बिहस्सई, बिहप्फई बिहप्पई, बुहस्सई, बुहप्फई, बुहप्पई**, ये रूप भी बन जाते हैं।

४०९—**मलिन, उभय, शुक्ति, छुप्त, आरब्ध,** और **पदाति** इन शब्दों के स्थान में यथासंख्य (क्रमशः) **मइल, अवह, सिप्पि छिक्क, आढत्त** और **पाइक्क** ये आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**१—मलिनम्**=मइलं मलिणं (मलयुक्त), **२—उभयं**=अवहं, उभयं (दोनों) कई आचार्य **अवहं** की की बजाय '**उवहं**, यह रूप स्वीकार करते हैं। **३—उभयबलम्**=अवहोआसं उभयबलं (दोनों का बल) ध्यान रहे '**अवहोआसं**' यह पद '**उभयावकाशम्**' (दोनों का अवकाश) इस संस्कृत रूप से भी बनाया जाता है। आर्षप्राकृत में ३ सूत्र से उभय को अवह यह आदेश नहीं भी होता। **जैसे—'उभयोकालं'** (दोनों समय) यहां आर्षप्राकृत होने से अवहादेश न करके उभय को **उभयो** बना दिया गया है। **४—शुक्तिः**=सिप्पी, सुत्ती (सीप), **५—छुप्तः**=छिक्को, छुत्तो (स्पृष्ट, छूआ हुआ), **६—आरब्धः**= आढत्तो, आरद्धो (प्रारम्भ), **७—पदातिः**=पाइक्को, पयाई (पैदल सैनिक, पांव से चलने वाला) यहां मलिन आदि शब्दों के स्थान में मइल आदि आदेश विकल्प से किए गए हैं।

४१०—**दंष्ट्रा** शब्द के स्थान में **दाढा** यह आदेश होता है। प्रश्न हो सकता है कि उक्त सूत्र में जहां मलिन आदि शब्दों का संग्रह किया गया था वहां दंष्ट्रा शब्द का भी संकलन कर लिया जाता तो इस पृथक् सूत्र के बनाने की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि पृथक्—योग (सूत्र की रचना) का कारण इतना ही है कि पूर्व सूत्र में इसको संकलित कर लेने पर '**दाढा**' यह आदेश वैकल्पिक होता, किन्तु अलग सूत्र बनाने से विकल्प की निवृत्ति हो गई और दाढा यह आदेश नित्य किया जायगा। जैसे—**दंष्ट्रा**=दाढा (दाढ, जबाडे के भीतर के दान्त जिन से खाते समय अन्न आदि चबाते हैं) यहां पर दंष्ट्रा को दाढा यह आदेश वैकल्पिक नहीं हुआ। ध्यान रहे कि प्राकृत-

भाषा में यह शब्द आदेश-रूप है, किन्तु संस्कृतभाषा में **दाढा** यह शब्द स्वतन्त्ररूप से दंष्ट्रा के अर्थ में व्यवहृत किया जाता है।

४११—**बहिर्** शब्द के स्थान में बाहिं, बाहिर ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**बहिस्**=बाहिं, बाहिरं (बाहिर), यहां बाहिं और बाहिर ये दो आदेश किए गए हैं।

४१२—**अधस्** शब्द के स्थान में 'हेट्ठ' यह आदेश होता है। जैसे—**अधस्=हेट्ठं** (नीचे)।

४१३—**मातृ** तथा **पितृ** शब्द से परे स्वसा शब्द हो तो उस के स्थान में सिआ और छा ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**मातृष्वसा**=माउसिआ, माउच्छा (माता की बहिन, मौसी), २—**पितृष्वसा**=पिउसिआ, पिउच्छा (पिता की बहिन, भूआ, बुआ)।

४१४—**तिर्यच्** शब्द के स्थान में "तिरिच्छि" यह आदेश होता है। जैसे—**तिर्यक् प्रेक्षते**=तिरिच्छि पेच्छइ (टेढा देखता है, पशु देखता है) **आर्ष-प्राकृत** में तिर्यच् शब्द के स्थान में '**तिरिआ**' यह आदेश भी देखने में आता है। जैसे—१—**तिर्यक्**=तिरिआ (पशु, पक्षी आदि तिर्यञ्च प्राणी)।

४१५—यदि पति शब्द परे न हो तो **गृह** शब्द के स्थान में '**घर**' यह आदेश होता है। जैसे—**गृहम्**=घरो (घर), २—**गृहस्वामी**=घरसामी (घर का मालिक, रक्षक), ३ **राजगृहम्**=रायहरं (राजा का महल, राजगृह नामक नगर), सूत्र में पठित "**अपतौ**" इस पद के कारण-**गृहपतिः**=गहवई (घर का पति, रक्षक), इस शब्द के गृह शब्द को प्रस्तुत-सूत्र द्वारा घर यह आदेश नहीं हो सका।

४१६—हैमशब्दानुशासन के "**तृन्शील-धर्म-साधुषु**" ५।२।२७। इस सूत्र से लेकर ५।२।८३। सूत्र तक शील, धर्म और साधु इन अर्थों में किए गए तृन् आदि प्रत्ययों के स्थान में 'इर' यह आदेश होता है। जैसे—**हसनशीलः इति हसिता**। यहां पर हसितृ शब्द के तृन् प्रत्यय को प्रस्तुत सूत्र से इर यह आदेश किया जाता है। उदाहरण इस प्रकार हैं। जैसे—१—**हसिता**=हसिरो (जिसका हंसने का स्वभाव है), २—**रोवितृ** (रोदिता, रुदनशीलः)=**रोविरो** (जिस का रोने का स्वभाव है), ३—**लज्जितृ** (लज्जिता, लज्जनशीलः)=लज्जिरो (लज्जा करने का जिसका स्वभाव है), ४—**जल्पितृ**=(जल्पिता, जल्पनशीलः)=**जम्पिरो** (जिस का सदा बोलते रहने का स्वभाव है), ५—**वेपितृ** (वेपिता, वेपनशीलः)=वेविरो (जिस का कांपने का स्वभाव है), ६—**भ्रमितृ**=(भ्रमिता, भ्रमणशीलः)=भमिरो (जिस का भ्रमण करने का स्वभाव है), ७—**उच्छ्वसितृ**=(उच्छ्वसिता, उच्छ्वसनशीलः)=ऊससिरो (जिस का उच्छ्वास अर्थात् आह भरना या ऊपर खींची या छोड़ी जाने वाली सांस लेने का स्वभाव है) यहां पर तृन् प्रत्यय के स्थान में 'इर' यह आदेश किया गया है। कई एक आचार्य कहते हैं कि शील, धर्म और साधु इन अर्थों में होने वाले सभी प्रत्ययों के स्थान में 'इर' यह आदेश नहीं होता, उनकी मान्यता है कि केवल तृन् प्रत्यय के स्थान में ही 'इर' यह आदेश होता है। किन्तु उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है। वृत्ति-कार का फरमान है कि यदि उन आचार्यों की बात मान ली जाए तो, **नमिरो** (नमनशीलः, नम्रः=जिस का नमस्कार करने का स्वभाव है) तथा **गमिरो** (गम्रः, गमनशीलः=जिस का जाने का स्वभाव है) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकते, यहां पर र आदि प्रत्ययों से तृन् प्रत्यय बाधित हो जाता है। फलतः उन आचार्यों के मतानुसार 'इर' यह आदेश नहीं होना चाहिए था, किन्तु किया गया है। अतः "केवल तृन प्रत्यय के स्थान में ही इर यह आदेश होता है" यह कहना युक्ति-संगत नहीं ठहरता।

४१७—**क्त्वा** प्रत्यय के स्थान में तुम्, अत्, तूण और तुआण ये आदेश होते हैं। **तुम् प्रत्यय के उदाहरण—१—दृष्ट्वा**=दट्ठुं (देख कर), २—**मुक्त्वा**=मोत्तुं (छोड कर के) **अत्-प्रत्यय के उदाहरण—१—भ्रमित्वा**=भमिअ (भ्रमण करके), २—**रन्त्वा**=रमिअ (क्रीडा करके) **तूण-प्रत्यय के उदाहरण—१—गृहीत्वा**=घेत्तूण (ग्रहण करके), २—**कृत्वा**=काऊण (करके) **तुआण प्रत्यय के उदाहरण—१—भित्त्वा**=भेत्तुआण (भदेन करके), २—**श्रुत्वा**=सोउआण (सुन कर), यहां क्त्वा के स्थान में तुम् आदि आदेश किए गए हैं। **वन्दित्वा**=वन्दित्तुं (वन्दना करके) यहां पर २ सूत्र से अनुस्वार का लोप करके वन्दित्तु यह रूप बनता है। यदि वन्दित्वा यह संस्कृत-सिद्ध रूप रख लिया जाए तो ३५० सूत्र से वकार का लोप तथा ३६० सूत्र से तकार को द्वित्व कर लिया जाए तो **वन्दित्ता** यह रूप बन जाता है। **आर्षप्राकृत** में कृत्वा का कट्टु (करके) ऐसा रूप भी होता है।

४१८—**इदम्** के अर्थ में होने वाले प्रत्यय के स्थान में **'केर'** यह आदेश होता है। जैसे—**१—युष्मदीयः**=तुम्हकेरो (तुम्हारा), २—**अस्मदीयः**=अम्हकेरो (हमारा) यहां इदमर्थक ईय् प्रत्यय के स्थान में 'केर' यह आदेश किया गया है। **बहुलाधिकार** से कहीं पर 'केर' इस आदेश की प्राप्ति नहीं भी होती है। जैसे—**मदीयपक्षे**=मईअ-पक्खे (मेरे पक्ष में) यहां इदमर्थक ईय प्रत्यय के स्थान में केर यह आदेश नहीं हो सका। तथा-**पाणिनीयाः**=पाणिणीआ (पाणिनि ऋषि से सम्बन्धित) यहां पर भी इदमर्थक ईय-प्रत्यय को केर यह आदेश नहीं किया गया।

४१९—**पर और राजन्** शब्द से परे यदि इदमर्थक प्रत्यय हो तो उसके स्थान में **यथासंख्य** (क्रमशः) क्क और डित् (जिस डकार इत हो) इक्क यह दो आदेश होते है। अर्थात् पर शब्द के इदमर्थक प्रत्यय को क्क और राजन् शब्द के इदमर्थक प्रत्यय को डित् इक्क यह आदेश किया जाता है। सूत्र में पठित चकार से 'केर' यह आदेश भी हो जाता है। जैसे—**परकीयम्**=पारक्कं, परक्कं, पारकेरं (पराया), २—**राजकीयम्**=राइक्कं, रायकेरं (राज-सम्बन्धी) यहां पर क्क, डिक्क और केर ये तीन आदेश किए गए हैं।

४२०—**युष्मद् और अस्मद्** शब्द से परे यदि इदमर्थक अञ् प्रत्यय हो तो उस के स्थान में "एच्चय" यह आदेश होता है। जैसे—**१—यौष्माकम्** (युष्माकमिदम्)=तुम्हेच्चयं (यह तुम्हारा), २—**आस्माकम्** (अस्माकमिदम्)=अम्हेच्चयं (यह हमारा) यहां इदमर्थक अञ् प्रत्यय को 'एच्चय' यह आदेश किया गया है।

४२१—**वत् प्रत्यय** के स्थान में द्विरुक्त (जिस का उच्चारण दो बार हो) वकार होता है। जैसे—**मथुरावत् पाटलिपुत्रे प्रासादाः**=महुरव्व पाडलिउत्ते पासाया (मथुरा की भाँति पटना में भी महल हैं) यहां 'वत्' को 'व्व' यह आदेश किया गया है।

४२२—**सर्वाङ्ग** शब्द से "**सर्वादेःपथ्यङ्गम् ७।१।६४।**" इस सूत्र से किए हुए 'ईन' के स्थान में 'इक' यह आदेश होता है। जैसे—**सर्वाङ्गीणः**=सव्वङ्गिओ (जो सभी अङ्गों में व्याप्त हो) यहां 'ईन' के स्थान में इक यह आदेश किया गया है।

४२३—**पथिन्** शब्द से "**नित्यं णः पन्थश्च ६।४।८९।**" इस सूत्र से होने वाले 'ण' इस प्रत्यय के स्थान में **'इकट'** यह आदेश होता है। जैसे—**पान्थः**=पहिओ (मार्ग में सदा चलने वाला, यात्री) यहां 'ण' प्रत्यय को इकट् (इक) यह आदेश किया गया है।

४२४—**आत्मन्** शब्द से परे आए ईय प्रत्यय को 'णय' यह आदेश होता है। जैसे—

आत्मीयम्=अप्पणयं (अपने से सम्बन्धित) यहां ईय को 'णय' यह आदेश किया गया है।

४२५—'**त्व**' प्रत्यय के स्थान में डिमा (इमा) और 'त्तण' ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**पीनत्वम्**=पीणिमा, पीणत्तणं, (स्थूलता), २—**पुष्पत्वम्**=पुप्फिमा, पुप्फत्तणं, (फूलपना) यहां डिमा और त्तण ये दो आदेश किए गए हैं। जहां ये आदेश नहीं होते वहां **पीणत्तं** तथा **पुप्फत्तं**, ये रूप बनते हैं। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि जब "**पृथ्वादेरिमन्वा**।७।१।५८।" इस सूत्र से भावार्थक इमन् प्रत्यय करके पीणिमा और पुप्फिमा ये दोनों शब्द बन सकते थे, तब प्रस्तुत सूत्र द्वारा 'त्व' प्रत्यय के स्थान में 'डिमा' यह आदेश करने की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि "**पृथ्वादेरिमन्वा**" इस सूत्र द्वारा भावार्थ में विहित इमन् प्रत्यय प्रत्येक शब्द से नहीं हो सकता, वह तो पृथ्वादि गण में पठित पृथु और मृदु आदि शब्दों से ही किया जाता है। पृथ्वादि गण में अपठित पीन और पुष्प आदि शब्दों से उक्त सूत्र द्वारा इमन् प्रत्यय नहीं किया जा सकता था। अतः प्रस्तुत सूत्र द्वारा पीन आदि शब्दों के त्व प्रत्यय को 'डिमा' यह आदेश करने की आवश्यकता पड़ी। **पीनता** (स्थूलता) इस शब्द का प्राकृत-भाषा में '**पीणया**' यह रूप बनता है। '**पीणदा**' यह प्रयोग तो भाषान्तर (दूसरी भाषा) में ही पाया जाता है। **शौरसेनी** आदि भाषाओं में **पीनता** को **पीणदा** कहते है। ध्यान रहे कि यहां 'तल' प्रत्यय को '**दा**' यह आदेश नहीं किया गया।

४२६—'**तैल**' प्रत्यय यदि अङ्कोठ शब्द के साथ न लगा हो तो इस को डेल्ल (एल्ल) यह आदेश होता है। जैसे—**सुरभिजलेन कटुकतैलम्**=सुरहिजलेण कडुएल्लं (सुगन्धित जल से निम्ब का तैल)। सूत्र में पठित—"**अनङ्कोठात्**" इस पद का अर्थ है—अंकोठ शब्द को छोड़ कर। भाव यह है कि यदि अङ्कोठ शब्द के साथ 'तैल' प्रत्यय लगा हो तो उसे 'डेल्ल' यह आदेश नहीं होता, जैसे—**अंकोठतैलम्** =अंङ्कोल्ल-तेल्लं (अङ्कोठ-पिश्ते का तैल-स्नेह) यहां पर **अंकोठ** से परे तैल प्रत्यय होने से उसे 'डेल्ल' यह आदेश नहीं हो सका।

४२७—**यद्**, **तद्** और **एतद्** इन शब्दों से आगे यदि परिमाण-अर्थ का बोधक डावादि (जिसके डाव आदि में हो) अतु (डावतु) प्रत्यय हो तो उस के स्थान पर 'इत्तिअ' यह आदेश होता है, और एतद् शब्द का लोप हो जाता है। जैसे—१—**यावत्**=जित्तिअं (जितना), २—**तावत्**=तित्तिअं (उतना), ३—**एतावत्**=इत्तिअं (इतना) यहां ये शब्द परिमाण अर्थ के बोधक हैं, अतः यहां डावतु प्रत्यय को 'इत्तिअ' यह आदेश किया गया है।

४२८—**इदम्**, **किम्**, **यद्**, **तद्** और **एतद्** इन शब्दों से आगे यदि अतु (अत्) अथवा डावतु (आवत्) ये प्रत्यय हों तो इन के स्थान में डित् (जिस में **डकार** इत् हो) एत्तिअ, एत्तिल और एद्दह ये आदेश होते हैं तथा एतद् शब्द का लोप हो जाता है। जैसे—१—**इयत्**=एत्तिअं, एत्तिल्लं, एद्दहं (इतना), २—**कियत्**=केत्तिअं, केत्तिलं, केद्दहं (कितना), ३—**यावत्**=जेत्तिअं, जेत्तिलं, जेद्दहं (जितना), ४—**तावत्**=तेत्तिअं, तेत्तिलं, तेद्दहं (उतना), ५—**एतावत्**=एत्तिअं एत्तिलं, एद्दहं (इतना) यहां इदम् आदि सर्वनाम शब्दों से किए गए अत् आदि प्रत्ययों के स्थान में डित् एत्तिअ आदि आदेश किए गए हैं और एतद् शब्द का लोप किया गया है।

४२९—हैमशब्दानुशासन के "**वारे कृत्वस्**।७।२।१०९।" इस सूत्र से जो 'कृत्वस्' यह प्रत्यय किया जाता है, उस के स्थान में "हुत्तं" यह आदेश होता है। जैसे—१—**शतकृत्वः**= सयहुत्तं (सौ बार), २—**सहस्रकृत्वः**=सहस्सहुत्तं (हजार बार) यहां 'कृत्वस्' प्रत्यय के स्थान 'हुत्तं'

यह आदेश किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि जब 'कृत्वस्' प्रत्यय के स्थान में ही 'हुत्तं' यह आदेश होता है तो **प्रियाभिमुखम्**=पियहुत्तं (प्रिय व्यक्ति के सामने) यहां अभिमुख शब्द को हुत्तं यह आदेश कैसे हो गया ? उत्तर में निवेदन है कि यहां 'हुत्तं' यह प्रस्तुत सूत्र से विहित आदेश नहीं है, किन्तु अभिमुखार्थक 'हुत्त' एक स्वतन्त्र शब्द है और उसका ही यहां संयोजन किया गया है।

४३०—**मतु** प्रत्यय के स्थान में यथाप्रयोग-प्रयोग के अनुसार **१—आलु**, २—**इल्ल**, **३—उल्ल**, ४—**आल**, ५—**वन्त**, ६—**मन्त**, ७—**इत्त**, ८—**इर** और ९—**मण** ये नव आदेश होते हैं। आलु आदेश **के उदाहरण**, जैसे—**१—स्नेहमान्**=नेहालू (स्नेह वाला), २—**दयावान्**=दयालू (दया वाला), **३=ईर्ष्यावान्**=ईसालू (ईर्ष्या रखने वाला), ४—**लज्जावती**=लज्जालुआ (लज्जा वाली नारी), **इल्ल के उदाहरण,** जैसे—**१—शोभावान्**=सोहिल्लो (शोभा वाला), २—**छायावान्**=छाइल्लो (छाया वाला), ३—**यामवान्**=जामइल्लो (पहरेदार, सिपाही विशेष), **उल्ल आदेश के उदाहरण**, जैसे—**१—विकारवान्**=विआरुल्लो (विकार वाला), **२—मांसवान्**=मंसुल्लो (मांसल, मांस वाला), ३—**दर्पवान्**=दप्पुल्लो (अभिमान वाला), **आल के उदाहरण,** जैसे—**१—शब्दवान्** सद्दालो (शब्द वाला), **२—जटावान्**=जडालो (जटा वाला), **३—फटावान्**=फडालो (फन वाला),४—**रसवान्**=रसालो (रस वाला), ५—**ज्योत्स्ना-वान्**=जोण्हालो (चांदनी वाला),**वन्त आदेश के उदाहरण**,जैसे—**१—धनवान्**=धणवन्तो (धन वाला) २—**भक्तिमान्**=भत्तिवन्तो (भक्ति वाला), **मन्त के उदाहरण—१—हनुमान्**=हणुमन्तो (वज्रंग बली), **२—श्रीमान्**=सिरिमन्तो (लक्ष्मी वाला), ३—**पुण्यवान्**=पुण्णमन्तो (पुण्य वाला), **इत्त के उदाहरण—१—काव्यवान्**=कव्वइत्तो (काव्य वाला), **२—मानवान्**=माणइत्तो (मान वाला), **इर के उदाहरण—१—गर्ववान्**—गव्विरो (गर्व वाला), २—**रेखावान्**=रेहिरो (रेखा वाला) **मण के उदाहरण—१—धनवान्**=धणमणो (धन वाला) यहां पर मतु प्रत्यय के स्थान में आलु आदि ये ९ आदेश किए गए हैं। कई एक आचार्य मतु प्रत्यय के स्थान में उक्त आदेशों के अलावा 'मा' यह आदेश भी स्वीकार करते हैं। जैसे—**हनुमान्**=हणुमा (हनुमान) यहां पर मतु प्रत्यय को 'मा' यह आदेश किया गया है। ध्यान रहे कि आलु आदि ये ९ आदेश मतु प्रत्यय के स्थान में ही किए जा सकते हैं, किसी अन्य प्रत्यय के स्थान में नहीं। इसलिए—**१—धनी**=धणी (अमीर व्यक्ति), २—**अर्थिकः**=अत्थिओ (अर्थवाला, धनी) यहां पर क्रमशः इन् और इक् प्रत्यय होने से आलु आदि आदेश नहीं हो सके।

४३१—**तस्** प्रत्यय के स्थान में त्तो, दो (ओ) ये दो आदेश विकल्प से किए जाते हैं। जैसे—१—**सर्वतः**=सव्वत्तो सव्वदो (सब ओर से), २—**एकतः**=एकत्तो, एकदो (एक तरफ से), ३—**अन्यतः**=अन्नत्तो, अन्नदो (दूसरी तरफ से), ४—**कुतः**=कत्तो, कुदो (कहां से), ५—**यतः**=जत्तो, जदो (क्योंकि), ६—**ततः**=तत्तो, तदो, (वहां से), ७—**इतः**=इत्तो, इदो (यहां से) यहां पर तस् प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से त्तो तथा दो ये आदेश किए गए हैं। जहां पर ये आदेश नहीं हुए वहां पर **सर्वतः**—सव्वओ, आदि रूप बन जाएंगे।

४३२—त्रप् प्रत्यय के स्थान में हि, ह और त्थ ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—**१—यत्र**=जहि, जह, जत्थ (जहां पर), **२—तत्र**=तहि, तह, तत्थ (वहां पर), ३—**कुत्र**=कहि, कह, कत्थ (कहां पर), **४—अन्यत्र**=**अन्नहि, अन्नह, अन्नत्थ** (दूसरी जगह) यहां त्रप् के स्थान में हि आदि **ये तीन आदेश** किए गए हैं।

४३३—एक शब्द से परे आए दा-प्रत्यय के स्थान में सि, सिअं, इआ ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**एकदा**=एक्कसि, एक्कसिअं, एक्कइआ, जहां इस सूत्र की प्राप्ति नहीं हुई, वहां पर **एगया** (एक बार) यह रूप बनता है।

४३४—**नाम–संज्ञावाचक** शब्दों से परे भव अर्थ में डित् (जिस का डकार इत् किया गया है) इल्ल और उल्ल ये दो प्रत्यय होते हैं। जैसे—**१–ग्रामे भवाः ग्रामेयकाः**=गामिल्लिआ (गांव के रहने वाले),**२—पुरा भवं पुरातनम्**=पुरिल्लं (पहले होने वाले), **३—अधोभवम् अधस्तनम्**=हेट्ठिल्लं (नीचे होने वाला), **४—उपरिभवम् उपरितनम्**=उवरिल्लं (ऊपर होने वाला), **५—आत्मनि भवम् आत्मिकम्**=अप्पुल्लं (आत्मा में होने वाला) यहां पर भव अर्थ में नामवाचक शब्दों से इल्ल आदि प्रत्यय किए गए हैं। कई एक आचार्यों की मान्यता है कि भव-अर्थ में संज्ञावाचक शब्दों से आलु और आल ये दो प्रत्यय भी होते हैं।

४३५—**स्वार्थ** में क (अ) प्रत्यय होता है और सूत्र में पठित चकार के कारण स्वार्थ में डित् इल्ल और उल्ल ये दो प्रत्यय भी विकल्प से होते है। **क प्रत्यय के उदाहरण—१–कुङ्कुम-पिञ्जरम्**=कुङ्कुम-पिञ्जरयं (पीले रंग वाला सुगन्धित द्रव्य), **२—चन्द्रः**=चन्दओ (चन्द्रमा), **३—गगने**=गयणयम्मि (आकाश में), **४—धरणी-धर-प्रक्षोभ्यत्**=धरणी-हर-पक्खुब्भन्तयं (धरणीधर-पर्वत को क्षुब्ध-अशान्त करना, उसे हिला देना), **५—दुःखिते रामहृदये**=दुहिअए रामहिअए=(राम के दुःखित हृदय में), **६—इह**=इहयं (यहां पर), **७—आश्लेष्टुम्**=आलेट्ठुअं (आलिंगन करने के लिए) **बहुलाधिकार** से क-प्रत्यय दो बार भी हो जाता है। जैसे—**बहु**=बहुअयं (बहुत) यहां पर क-प्रत्यय **दो** बार किया गया है। यहां एक आशंका उत्पन्न हो सकती है कि प्रस्तुत सूत्र में क (अ) प्रत्यय के स्थान पर यदि अ-प्रत्यय का विधान हो जाता तो अधिक उचित था, क्योंकि इसका १७७ सूत्र से लोप हो जाता है और शेष केवल अकार ही रहता है। **'चन्दओ'** आदि उदाहरणों में भी अवशिष्ट अकार ही उपलब्ध होता है। अतः **"प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"** इस न्याय का अनुसरण करते हुए क-प्रत्यय की अपेक्षा अ-प्रत्यय का निर्देश करना ही उचित था, यह अक्षर-गौरव क्यों किया गया ? उत्तर में निवेदन है कि ककार का विधान पैशाचिक भाषा के निमित्त किया गया है। क्योंकि पिशाची भाषा में ९९५ सूत्र द्वारा ककार के लोप का निषेध कर दिया जाता है, अतः पिशाची भाषा में क-लोप न होने से यह ककारोच्चारण अनर्थक नहीं रहता। जैसे—**वदने वदनं समर्पयित्वा**=वतनके वतनकं समप्पेत्तून (मुख पर मुख रख कर), यहां पर ककार का लोप नहीं किया गया। **इल्ल के उदाहरण—१—निर्जिताशोकपल्लवेन**=निज्जिअासोअ-पल्लविल्लेण (जिसने अशोक वृक्ष के फूल पर पूर्णतया नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है, उसने), **२—पुरो**=(पुरा), पुरिल्लो (पहले), **उल्ल के उदाहरण—१—मम पिता**=मह पिउल्लओ (मेरे पिता), **२—मुखम्**=मुहुल्लं (मुख), **३—हस्तौ**=हत्थुल्ला (दो हाथ) यहां पर स्वार्थ में क तथा डित् इल्ल और उल्ल ये प्रत्यय विकल्प से किए गए हैं। जहां इनकी प्राप्ति नहीं हुई, वहां पर–**१—चन्द्रः**=चन्दो, **२—गगनम्**=गयणं, **३—इह**=इह, **४—आश्लेष्टुम्**=आलेट्ठुं, **५—बहु**=बहु, **६—बहुकम्**=बहुअं (बहुत), **७—मुखम्**=मुहं, **८—हस्तौ**=हत्था ये रूप बन जाते हैं। इस के अतिरिक्त, प्राकृत भाषा में **कुत्सा** (निन्दा) आदि विशिष्ट अर्थों में कप् प्रत्यय संस्कृत भाषा की तरह ही किया जाता है। तथा याव आदि शब्दों से तत्तत्-प्रतिनियत अर्थों में संस्कृत-भाषा के समान ही क-प्रत्यय होता है। ऐसा

सूत्रकार का वचन-कथन है। भाव यह है कि **कुत्सितः अश्वः, अश्वकः**=आसओ (निन्दित घोडा) यहां कुत्सा अर्थ में संस्कृत-व्याकरण के नियमानुसार जो कप्-प्रत्यय किया गया है, वही कुत्सार्थक कप्-प्रत्यय प्राकृत भाषा में भी कर लिया जाता है। सिद्ध-हेमशब्दानुशासन के ७।३।१५। सूत्र द्वारा याव आदि शब्दों से स्वार्थ में क-प्रत्यय होता है। वृत्तिकार कहते हैं कि याव आदि शब्दों से विहित क-प्रत्यय का विषय (अर्थ) प्रतिनियत (निश्चित) है, अतः यह क-प्रत्यय संस्कृत—भाषा की तरह प्राकृत—भाषा में भी प्रयुक्त कर लिया जाता है।

४३६—**नव** और **एक** इन शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से संयुक्त लकार होता है। जैसे—१—**नवः**=नवल्लो, (नवीन), २—**एकः**=एकल्लो। ३७० सूत्र से ककार के द्वित्व होने पर **एक्कल्लो** (एक) यह रूप बनता है। जहां इस सूत्र की प्राप्ति नहीं हो पाई, वहां पर—१—**नवः**=नवो, २—**एकः**=एक्को, एओ, ये रूप भी बन जाते हैं।

४३७—यदि उपरि शब्द संव्यान (ऊपर लेने का वस्त्र) इस अर्थ का बोधक हो तो इस के आगे स्वार्थ में 'ल्ल' यह प्रत्यय होता है। जैसे—**उपरि**=अवरिल्लो (ऊपर लेने का वस्त्र) यहां पर 'ल्ल' यह प्रत्यय किया गया है। जहां उपरि शब्द का संव्यान अर्थ नहीं होता, वहां पर—**उपरि**=**अवरिं** (ऊपर), यह रूप बनता है।

४३८—**भ्रू** शब्द से स्वार्थ में मया और डमया (अमया) ये दो प्रत्यय होते हैं। जैसे—**भ्रूः**=भुमया, भमया (भौंह) यहां पर 'मया' और डमया ये दो प्रत्यय किए गए हैं।

४३९—**शनैस्** शब्द से स्वार्थ में डिअम् (इअम्) यह प्रत्यय होता है। जैसे—**शनैस् अवगूढः**=सणिअम्+अवगूढो=सणिअमवगूढो (धीरे से आलिंगित) यहां पर स्वार्थ में डिअम्, यह प्रत्यय किया गया है।

४४०—**मनाक्** शब्द से स्वार्थ में डयम् (अयम्) और डियम् (इयम्) ये दो प्रत्यय विकल्प से होते हैं। जैसे—**मनाक्**=मणयं, मणियं, जहां इस सूत्र की प्राप्ति नहीं हुई, वहां पर **मणा** (स्वल्प, थोड़ा सा) यह रूप बनता है।

४४१—**मिश्र** शब्द से स्वार्थ में डालिअ (आलिअ) यह प्रत्यय विकल्प से होता। जैसे—**मिश्रम्**=मीसालिअं, जहां पर इस सत्र का कार्य नहीं हुआ, वहां पर **मीसं** (मिला हुआ) यह प्रयोग बनता है।

४४२—**दीर्घ** शब्द से परे स्वार्थ में विकल्प से 'र' यह प्रत्यय किया जाता है। जैसे—**दीर्घम्**=दीहरं, जहां यह सूत्र नहीं लगा, वहां **दीहं** (दो मात्रा वाला स्वर) यह रूप बनता है।

४४३—सिद्ध-हेमशब्दानुशासन के ७।१।५५। सूत्र से भाव अर्थ में विहित त्व आदि प्रत्ययों से स्वार्थ में पुनः वही त्व आदि प्रत्यय विकल्प से किए जाते हैं। जैसे—**मृदुकत्वेन**=मउअत्तयाइ (सुकुमारता से) यहां पर स्वार्थिक त्व प्रत्यय से पुनः स्वार्थ में इस सूत्र से तल्-प्रत्यय किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि **आतिशायिक**—अतिशयबोधक प्रत्यय से आगे आतिशायिक प्रत्यय संस्कृत-भाषा के समान प्राकृत भाषा में भी किये जाते हैं। जैसे—१—**ज्येष्ठतरः**=जेट्ठयरो (अपेक्षाकृत अधिक बडा), २—**कनिष्ठतरः**=कणिट्ठयरो (अपेक्षाकृत अधिक छोटा) यहां संस्कृत—भाषा का अतिशय-बोधक तर प्रत्यय प्राकृत—भाषा में भी यर के रूप में दिखाई दे रहा है।

४४४—**विद्युत्, पत्र, पीत** और **अन्ध** इन शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से 'ल' यह प्रत्यय होता

है। जैसे-१—**विद्युत्**=विज्जुला, जहां पर इस सूत्र की प्राप्ति नहीं हुई वहां पर **विज्जू** (बिजली), इसी तरह २—**पत्रम्**=पत्तलं, पत्तं (पत्र, पत्ता), ३—**पीतम्**=पीवलं, पीअलं पीअं (पीत वर्ण, पीलिया), ४—**अन्धः**=अन्धलो, अन्धो (नेत्रहीन), ये रूप सिद्ध होते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि **जमलं** इस प्रयोग की सिद्धि कैसे होती है ? सूत्र में जब यम शब्द का उल्लेख नहीं किया गया तब इस से 'ल' यह प्रत्यय कैसे हो गया ? उत्तर में निवेदन है कि यम शब्द से ल-प्रत्यय नहीं किया गया, परन्तु संस्कृत-भाषा में ही '**यमल**' यह स्वतंत्र शब्द पाया जाता है, इसी संस्कृत-शब्द से **जमलं** (जोड़ा) इस शब्द की सिद्धि हो जाती है।

४४५—'**गोण**' आदि शब्द बहुलता से अर्थात् निपात द्वारा सिद्ध होजाते हैं। **निपात** का **अर्थ** है—वे शब्द जिन की उत्पत्ति के किसी नियम का पता न हो, या जो व्याकरण शास्त्र के नियमों से सिद्ध न किए जा सकें। इसीलिए वृत्तिकार कहते हैं कि गोण आदि शब्द प्रकृति, प्रत्यय, लोप, आगम और वर्ण—विकार के विधान से रहित होते हैं। ये शब्द बहुलता से संस्कृत-भाषा में विद्यमान शब्दों के स्थान में प्रयुक्त हो जाते हैं। शब्द का मूल रूप प्रकृति, वह अक्षर या शब्द जो किसी मूलशब्द के अन्त में जोड़ा जाता है वह प्रत्यय, अदर्शन का नाम लोप, शब्द के साधन में किसी वर्ण की वृद्धि आगम, और वर्णों की आदेश आदि विकृति विकार होता है। गोण आदि शब्दों की तालिका इस प्रकार है १—**गौः**=गोणो गावी (गौ), २—**गावः**=गावीओ (गौएं), ३—**बलीवर्दः**=बइल्लो (बैल), ४—**आपः**=आऊ (जल, पानी), ५—**पञ्चपञ्चाशत्**=पञ्चावण्णा, पणपन्ना (५५), ६—**त्रिपञ्चाशत्**=तेवण्णा (५३), ७—**त्रिचत्वारिंशत्**=तेआलीसा (४३), ८—**व्युत्सर्गः**=विउसग्गो (परित्याग, तपविशेष), ९—**व्युत्सर्जनम्**=वोसिरणं (छोड़ना, परित्याग), १०—**बहिर्**=बहिद्धा (बाहिर), ११—**मैथुनम्**=बहिद्धा (स्त्री-संभोग), १२—**कार्यम्**=णामुक्कसिअं (कृत्य), १३—**क्वचित्**=कत्थइ (कहीं पर), १४—**उद्वहति**=मुव्वहइ (वह धारण करता है), १५—**अपस्मारः**=वम्हलो (केसर), १६—**उत्पलम्**=कन्दुट्टं (कमल), १७—**धिक-धिक्**=छिछि, द्धिद्धि, (धिक्कार है, धिक्कार है), १८—**धिगस्तु**=धिरत्थु (धिक्कार हो), १९—**प्रतिस्पर्धा**=पडिसिद्धी, पाड़िसिद्धी (प्रतिकूल सिद्धि, अनुरूप सिद्धि), २०—**स्थासकः**=चच्चिक्कं (खुशबू, उबटन लगा कर शरीर को सुवासित करने वाला),२१—**निलयः**=निहेलणं (छिपने का स्थान, चिडियों का घोंसला, घर), २२—**मघवान्**=मघोणो (इन्द्र), २३—**साक्षी**=सक्खिणो (गवाही), २४—**जन्म**=जम्मणं (जन्म, उत्पत्ति), २५—**महान्**=महन्तो (बहुत बडा), २६—**भवान्**=भवन्तो (आप), २७—**आशीः**=आसीसा (आशीर्वाद) कहीं पर हकार के स्थान में 'ड्ड' और 'भ' ये आदेश भी हो जाते हैं। जैसे—२८—**बृहत्तरम्**=बड्डयरं (विशेष बडा), २९—**हिमोरः**=भिमोरो (हिम का मध्यभाग), 'ल्ल' के स्थान में 'ड्ड' यह आदेश होता है—जैसे—३०—**क्षुल्लकः**=खुड्डुओ (छोटा, लघु, अधम), ३१—**गायनः**=घायणो (घोष-आभीरपल्ली [अहीरों का गांव] के गायकों में अग्रेतन-मुख्य गायक), ३२—**वडः**=वढो (दरवाजे का एक भाग), ३३—**ककुदं**=ककुधं (पर्वत का अग्रभाग, चोटी, छत्रविशेष), ३४—**अकाण्डम्**=अत्थक्कं (अकस्मात्, असमय), ३५—**लज्जावती**=लज्जालुइणी (लज्जाशील नारी), ३६—**कुतूहलम्**=कुड्डं (उत्सुकता, अभिलाषा, कोई पदार्थ जो प्रिय या रुचिकर लगे), ३७—**चूतः**=मायन्दो (आम का पेड़), कई एक आचार्यों का कहना है कि माकन्द शब्द संस्कृत-भाषा में भी उपलब्ध होता है। ३८—**विष्णुः**=भट्टिओ (विष्णुदेवता), ३९—**श्मशानम्**=करसी (मरघट), ४०—**असुराः**=अगया (राक्षस लोग), ४१—**खेलम्**=खेड्डं

(खिलाडी, कामी) ४२—**पौष्पं रजः**—तिङ्गिच्छि (पुष्प सम्बन्धी रज, कमल की रज), ४३—**दिनम्**=अल्लं (दिन) ४४—**समर्थः**=पक्कलो (शक्तिशाली), ४५—**पण्डकः**=णेलच्छो (नपुंसक), ४६—**कर्पासः**=पलही (कपास), ४७—**बली**=उज्जल्लो (बलवान), ४८—**ताम्बूलम्**=झसरं (पान), ४९—**पुंश्चली**=छिछई (कुलटा, व्यभिचारिणी नारी), ५०—**शाखा**=साहुली (डाली) प्रस्तुत सूत्र में '**वा**' पद का अधिकार होने से दूसरे पक्ष में यथादर्शन=प्रयोग के अनुसार **गौः**=**गउओ** इत्यादि रूप भी बनते हैं। **गोला** (नाम विशेष) शब्द गोदा से और **गोआवरी** (एक नदी का नाम) यह शब्द गोदावरी से सिद्ध हो जाता है। विभिन्न देशों की भाषाओं के शब्द भी प्राकृत भाषा में प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे—१—**आहित्थ**=कुपित अथवा व्याकुल-घबराया हुआ, २—**लल्लक्क**=भयंकर, ३—**विड्डिर**=नगाडा, ढोल, गरजने वाला बादल, ४—**पच्चड्डिअ**=क्षरित, चूआ हुआ, ५—**उप्पेहड**=उद्भट, सर्वोत्तम, प्रबल, ६—**मडप्फर**=गर्व, अभिमान, ७—**पड्डिच्छिर**=समान। कहीं पर इस शब्द के स्थान पर **प्राढ्ढिवच्छर**=अग्नि पैदा करने वाला, यह पाठ भी सम्प्राप्त होता है, ८—**अट्टमट्ट**=आलबाल, पौधे या वृक्ष के चारों ओर बनाया गया क्यारी की तरह घेरा, ९—**विहडप्फड**=व्याकुल, १०—**उज्जल्ल**=स्वेद—सहित, पसीने वाला, बलवान, बलिष्ठ, ११—**हल्लप्फल**=औत्सुक्य, त्वरा, शीघ्रता, इत्यादि शब्द भी महाराष्ट्र तथा विदर्भ आदि प्रान्तों में प्रसिद्ध हैं, इन का अर्थ प्रान्तीय जनता के बोल-चाल के व्यवहार से अवगत किया जा सकता है। '**लोकतो**' (लोक से) में लोक शब्द प्रान्तीय जनता का बोधक है। इसी तरह विभिन्न देशों में प्रचलित क्रियापदों का अर्थ भी तत्सम्बन्धी जनता के बोलचाल के व्यवहार से समझ लेना चाहिए। क्रियापदों के कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं, जैसे—१—**अवकाशयति**=अव-यासइ=वह अवकाश देता है, २—**उत्पाटयति**=फुम्फुल्लेइ—वह उखाडता है, ३—**कथयति**=उप्फा-लेइ—वह कहता है आदि। वृत्तकार फरमाते हैं कि १—**कृष्ट**=(कुशल, आकृष्ट, जोता हुआ), २—**घृष्ट**=(शोधित, साफ किया हुआ, छुआ हुआ), ३—**वाक्य**=(पदों का वह समूह जिस से वक्ता का अभिप्राय स्पष्टतः समझ में आ जाय), ४—**विद्वान्**=(शिक्षित, पण्डित), ५—**वाचस्पति**=(बृहस्पति, सुवक्ता, पुष्यनक्षत्र), ६—**विष्टरश्रवस**=(विष्णु, शिव, हरि), ७—**प्रचेतस्**=(बुद्धिमान, एक स्मृतिकार), ८—**प्रोक्त**=(कहा हुआ, कथित), ९—**प्रोत**=(सिला हुआ, पिरोया हुआ) आदि शब्दों का तथा क्विबादि-प्रत्ययान्त जैसे—१—**अग्निचित्**=(अग्निहोत्री, विवाह की साक्षीभूत अग्नि में नियमपूर्वक हवन करने वाला), २—**सोमसुत्**=(यज्ञ में सोमरस (सोमलता का रस) निकालने वाला), ३—**सुग्ल**=(बहुत थका हुआ) और ४—**सुम्ल** (बहुत थका हुआ), आदि शब्दों का प्रयोग तो नहीं करना चाहिए। क्योंकि प्राचीन कवियों ने इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया। दूसरी बात, इन के अर्थ की प्रतीति सुगमता से नहीं हो पाती। अतः जहां प्रतीति (ज्ञान) का वैषम्य (काठिन्य) अनुभव हो, वहां पर इन शब्दों का प्रयोग करना ठीक भी नहीं रहता। प्रत्युत उन के स्थान पर उन्हीं शब्दों के अर्थ का ज्ञान कराने वाले अन्य सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग कर लेना चाहिए। जैसे—**कृष्ट** शब्द के स्थान पर **कुशल** (निपुण) शब्द का प्रयोग हो सकता है। इसी तरह **वाचस्पति** के लिए **गुरु** और **विष्टर—श्रवाः** के लिए **हरि** शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। **उपसर्ग-युक्त** घृष्ट शब्द का प्रयोग तो प्राकृत-भाषा में इष्ट होता ही है। जैसे—१—**मन्दिर-तट-परिघृष्टं**=मन्दर-यड-परिघट्ठं (मेरुपर्वत के तट-किनारे पर जिस का घर्षण किया गया है), २—**तद्दिवस-निघृष्टानङ्ग**! =तद्दिअस-निहट्ठाणङ्ग! (जिस ने उस दिन कामदेव को निघृष्ट किया था, उस पर प्रहार किया था, वह, उसका सम्बोधन)

यहां पर उपसर्ग-सहित घृष्ट शब्द का प्रयोग किया गया है। **आर्ष प्राकृत** में तो यथादर्शन=प्रयोग के अनुसार सब कुछ अविरुद्ध है, विरोध-रहित है, समीचीन है। भाव यह है कि प्राकृत भाषा में घृष्ट आदि शब्दों का जो प्रयोग देखने में आता है, आर्ष होने के कारण उस पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। क्योंकि आर्ष-शब्दों को तो बिना किसी ननु-नच के ही स्वीकार करना होता है। जैसे—१—**घृष्टाः**=घट्ठा (घिसे हुए), २—**मृष्टाः**=मट्ठा (घिसे हुए, चिकने किए हुए पदार्थ), ३—**विद्वांसः**=विउसा (पण्डित पुरुष), ४—**श्रुतलक्षणानुसारेण**=सुअ-लक्खणाणुसारेण (शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार), ५—**वाक्यान्तरेषु च पुनः**=वक्कन्तरेसु अ पुणो (और फिर दूसरे वाक्यों से), इस तरह **घट्ठ** आदि पदों का प्रयोग आर्ष होने से अनादरणीय नहीं है।

★ अथ अव्यय-प्रकरणम् ★

४४६—**अव्ययम्** । ८ । २ । १७५ । **अधिकारोऽयम्**। इतः परं ये वक्ष्यन्ते आ-पाद-**समाप्तेस्तेऽव्ययसंज्ञकाः ज्ञातव्याः** ।

४४७—**तं वाक्योपन्यासे** । ८ । २ । १७६ । तमिति वाक्योपन्यासे प्रयोक्तव्यम् । **तं तिअस-बन्दि-मोक्खं** ।

४४८—**आम अभ्युपगमे** । ८ । २ । १७७ । आमेत्यभ्युपगमे प्रयोक्तव्यम् । **आम-बहुला वणोली** ।

४४९—**णवि वैपरीत्ये** । ८ । २ । १७८ । णवीति वैपरीत्ये प्रयोक्तव्यम् । **णवि हा वणे** ।

४५०—**पुणरुत्तं कृतकरणे** । ८ । २ । १७९ । पुणरुत्तमिति कृतकरणे प्रयोक्तव्यम् । **अइ सुप्पइ पंसुलि ! णीसहेहिँ अङ्गेहिँ पुणरुत्तं** ।

४५१—**हन्दि विषाद-विकल्प-पश्चात्ताप-निश्चय-सत्ये** । ८ । २ । १८० । हन्दि इति विषादादिषु प्रयोक्तव्यम् ।

हन्दि चलणे णओ सो ण माणिओ हन्दि हुज्ज एत्ताहे ।
हन्दि न होही भणिरी सा सिज्जइ हन्दि तुह कज्जे ॥१॥

हन्दि-सत्यमित्यर्थः ।

४५२—**हन्द च गृहाणार्थे** । ८ । २ । १८१ । हन्द हन्दि च गृहाणार्थे प्रयोक्तव्यम् । **हन्द पलोएसु इमं** । हन्दि । गृहाणेत्यर्थः ।

४५३—**मिव पिव विव व्व व विअ इवार्थे वा** । ८ । २ । १८२ । एते इवार्थे अव्यय-**संज्ञकाः** प्राकृते वा प्रयुज्यन्ते । कुमुअं मिव । चन्दणं पिव । हंसो विव । साअरो व्व खीरोओ । **सेसस्स व निम्मोओ** । कमलं विअ । पक्षे । नोलुप्पलमाला इव ।

४५४—**जेण तेण लक्षणे** । ८ । २ । १८३ । जेण तेण इत्येतौ लक्षणे प्रयोक्तव्यौ । **भमर-रुअं** जेण कमल-वणं । भमररुअं तेण कमल-वणं ।

४५५ – **णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे** । ८ । २ । १८४ । एतेऽवधारणे प्रयोक्तव्याः । गईए णइ । जं चेअ मउलणं लोअणाणं । अणुबद्धं तं चिअ कामिणीणं । सेवादित्वात् द्वित्वमपि । ते च्चि धन्ना । ते च्चेअ सुपुरिसा । च्च । स च्च य रूवेण । स च्च सीलेण ।

४५६—**बले निर्धारण-निश्चययोः** । ८ । २ । १८५ । बले इति निर्धारणे निश्चये च प्रयोक्तव्यम् । निर्धारणे :—बले पुरिसो धणंजओ खत्तिआणं । निश्चये :—बले सोहो । सिंह एवायम् ।

४५७—**किरेर हिर किलार्थे वा** । ८ । २ । १८६ । किर इर हिर इत्येते किलार्थे वा प्रयोक्तव्याः । कल्लं किर खरहिअओ । तस्स इर । पिअ-वयंसो हिर । पक्षे । एव किल तेण सिविणए भणिआ ।

४५८— ***णवर केवले** । ८ । २ । १८७ । केवलार्थे णवर इति प्रयोक्तव्यम् । णवर पिआइं चिअ णिव्वडन्ति ।

४५९—**आनन्तर्ये णवरि** । ८ । २ । १८८ । आनन्तर्ये णवरीति प्रयोक्तव्यम् । णवरि अ से रहु-वइणा । केचित्तु "केवलानन्तर्यार्थयोर्णवरणवरि" इत्येकमेव सूत्रं कुर्वते, तन्मते उभावप्युभयार्थौ ।

४६०—**अलाहि निवारणे** । ८ । २ । १८९ । अलाहीति निवारणे प्रयोक्तव्यम् । अलाहि किं वाइएण लेहेण ।

४६१—**अण णाइं नञर्थे** । ८ । २ । १९० । अण णाइं इत्येतौ नञोऽर्थे प्रयोक्तव्यौ । अणचिन्तिअममुणन्ती । णाइं करेमि रोसं ।

४६२—**माइं मार्थे** । ८ । २ । १९१ । माइं इति मार्थे प्रयोक्तव्यम् । माइं काहीअ रोसं । मा कार्षीद् रोषम् ।

४६३—**हद्धी निर्वेदे** । ८ । २ । १९२ । हद्धी इत्यव्ययमतएव निर्देशात् हाधिक्शब्दादेशो वा निर्वेदे प्रयोक्तव्यम् । हद्धी हद्धी ! हा धाह धाह ।

४६४—**वेव्वे भय-वारण-विषादे** । ८ । २ । १९३ । भयवारणविषादेषु वेव्वे इति प्रयोक्तव्यम् ।

वेव्वे त्ति भये वेव्वे त्ति वारणे जूरणे अ वेव्वे त्ति ।
उल्लाविरीइ वि तुहं वेव्वे त्ति मयच्छि ! किं णेअं ?॥१॥
किं उल्लावेन्तीए उअ जूरन्तीए किंतु भीआए ।
उव्वाडिरीए वेव्वे त्ति तीए भणिअं न विम्हरिमो ॥२॥

---

*णवरं इत्यपि पाठः ।

४६५—वेव्व च आमन्त्रणे । ८ । २ । १९४ । वेव्व वेव्वे च आमन्त्रणे प्रयोक्तव्ये । वेव्व गोले ! । वेव्वे मुरन्दले ! वहसि पाणिअं ।

४६६—मामि हला हले सख्या वा । ८ । २ । १९५ । एते सख्या आमन्त्रणे वा प्रयोक्तव्याः । मामि ! सरिसक्खराण वि । पणवह माणस्स हला ! । हले ! हयासस्स । पक्षे । सहि ! एरिसी च्चिअ गई ।

४६७—दे संमुखीकरणे च । ८ । २ । १९६ । संमुखीकरणे सख्या आमंत्रणे च दे इति प्रयोक्तव्यम् । दे पसिअ ताव सुन्दरि ! । दे ! आपसिअ निअत्तसु ।

४६८—हुं दान-पृच्छा-निवारणे । ८ । २ । १९७ । हुं इति दानादिषु प्रयुज्यते । दाने :—हुं गेण्ह अप्पणो च्चिअ । पृच्छायाम् :—हुं साहसु सब्भावं । निवारणे :—हुं निल्लज्ज ! समोसर ।

४६९—हु खु निश्चय-वितर्क-संभावन-विस्मये । ८ । २ । १९८ । हु खु इत्येतौ निश्चयादिषु प्रयोक्तव्यौ । निश्चये :—तं पि हु अच्छिन्नसिरी । तं खु सिरीए रहस्सं । वितर्कः ऊहः संशयो वा । ऊहे :—न हु णवरं संगहिआ । एअं खु हसइ । सशये :—जलहरो खु धूमवडलो खु । संभावने :—तरीउं ण हु णवर इमं । एअं खु हसइ । विस्मये :—को खु एसो सहस्स-सिरो । बहुलाधिकारादनुस्वारात्परो हुर्न प्रयोक्तव्यः ।

४७०—ऊ गर्हाक्षेप-विस्मय-सूचने । ८ । २ । १९९ । ऊ इति गर्हादिषु **प्रयोक्तव्यम्** । गर्हा :—ऊ णिल्लज्ज ! । प्रक्रान्तस्य वाक्यस्य विपर्यासाशंकाया विनिवर्तनलक्षण **आक्षेपः** । ऊ किं मए भणिअं । विस्मये :—ऊ कह मुणिआ अहयं । सूचने :—ऊ केण न विण्णायं ।

४७१—थू कुत्सायाम् । ८ । २ । २०० । थू इति कुत्सायां **प्रयोक्तव्यम्** । थू **निल्लज्जो लोओ ।**

४७२—रे अरे संभाषण-रतिकलहे । ८ । २ । २०१ । अनयोरर्थयोर्यथासंख्यमेतौ प्रयोक्तव्यौ । रे संभाषणे :—रे हिअय ! मडह-सरिआ । अरे रतिकलहे :—अरे मए समं मा करेसु उवहासं ।

४७३—हरे क्षेपे च । ८ । २ । २०२ । क्षेपे संभाषणरतिकलहयोश्च हरे इति प्रयोक्तव्यम् । क्षेपे :—हरे णिल्लज्ज ! । संभाषणे :—हरे पुरिसा ! । रतिकलहे :—हरे बहुवल्लह ! ।

४७४—ओ सूचना-पश्चात्तापे । ८ । २ । २०३ । ओ इति सूचनापश्चात्तापयोः प्रयोक्तव्यम् । सूचनायाम् :— ओ अविणय-तत्तिल्ले ! । पश्चात्तापे :— ओ न मए छाया इत्तिआए । विकल्पे तु उतादेशेनैवोकारेण सिद्धम् । ओ विरएमि नहयले ।

४७५—**अव्वो सूचना-दुःख-संभाषणापराध-विस्मयानन्दादर-भयखेद-विषाद-पश्चातापे** ।८।२।२०४। अव्वो इति सूचनादिषु प्रयोक्तव्यम् । सूचनायाम् :—अव्वो दुक्करयारय !। दुःखे :—अव्वो दलन्ति हिययं । संभाषणे । अव्वो किमिणं किमिणं । अपराधविस्मयो :—

अव्वो हरन्ति हिअयं तह वि न वेसा हवन्ति जुवईण ।
अव्वो किं पि रहस्सं मुणन्ति धुत्ता जणब्भहिआ ॥१॥

आनन्दादरभयेषु :—

अव्वो सुपहायमिणं अव्वो अज्जम्ह सप्फलं जीअं ।
अव्वो अइअम्मि तुमे णवरं जइ सा न जूरिहिइ ॥२॥

खेदे—अव्वो न जामि छेत्तं । विषादे—

अव्वो नासेन्ति दिहिं पुलयं वड्ढेन्ति देन्ति रणरणयं ।
एण्हिं तस्सेअ गुणा ते च्चिअ, अव्वो कह णु एअं ॥१॥

पश्चात्तापे—अव्वो तह तेण कया अहयं जह कस्स साहेमि ? ।

४७६—**अइ संभावने** । ८ । २ । २०५ । संभावने अइ इति प्रयोक्तव्यम् । अइ दिअर ! किं न पेच्छसि ?

४७७—**वणे निश्चय-विकल्पानुकम्प्ये च** । ८ । २ । २०६ । वणे इति निश्चयादौ संभावने च प्रयोक्तव्यम् । वणे देमि । निश्चयं ददामि । विकल्पे :—होइ वणे न होइ । भवति वा न भवति । अनुकम्प्ये—दासो वणे न मुच्चइ । दासोऽनुकम्प्यो न त्यज्यते । संभावने :—नत्थि वणे जं न देइ विहि-परिणामो । संभाव्यते एतदित्यर्थः ।

४७८—**मणे विमर्शे** । ८ । २ । २०७ । मणे इति विमर्शे प्रयोक्तव्यम् । मणे सूरो । किंस्वित्सूर्यः । अन्ये मन्ये इत्यर्थमपीच्छन्ति ।

४७९—**अम्मो आश्चर्ये** । ८ । २ । २०८ । अम्मो इत्याश्चर्ये प्रयोक्तव्यम् । अम्मो कह पारिज्जइ ।

४८०—**स्वयमोऽर्थे अप्पणो न वा** । ८ । २ । २०९ । स्वयमित्यस्यार्थे अप्पणो वा प्रयोक्तव्यम् । विसयं विअसन्ति अप्पणो कमल-सरा । पक्षे । सयं चेअ मुणसि करणिज्जं ।

४८१—**प्रत्येकमः पाडिक्कं पाडिएक्कं** । ८ । २ । २१० । प्रत्येकमित्यस्यार्थे पाडिक्कं पाडिएक्कं इति च वा प्रयोक्तव्यम् । पाडिक्कं पाडिएक्कं । पक्षे । पत्तेअं ।

४८२—**उअ पश्य** । ८ । २ । २११ । उअ इति पश्येत्यस्यार्थे वा प्रयोक्तव्यम् ।

उअ निच्चल-निप्फंदा भिसिणी-पत्तंमि रेहइ बलाआ ।
निम्मल-मरगय-भायण-परिट्ठिआ सङ्ख-सुत्ति व्व ॥१॥ एते पुल आदयः ।

४८३—**इहरा इतरथा** । ८ । २ । २१२ । इहरा इति इतरथार्थे वा प्रयोक्तव्यम् । इहरा नीसामन्नेहिँ । पक्षे इअरहा ।

४८४—**एक्कसरिअं झगिति संप्रति** । ८ । २ । २१३ । एक्कसरिअं झगित्यर्थे संप्रत्यर्थे च प्रयोक्तव्यम् । एक्कसरिअं । झगिति साम्प्रतं वा ।

४८५—**मोरउल्ला मुधा** । ८ । २ । २१४ । मोरउल्ला इति मुधार्थे प्रयोक्तव्यम् । मोरउल्ला । मुधेत्यर्थः ।

४८६—**दरार्धाल्पे** । ८ । २ । २१५ । दर इत्यव्ययमर्धार्थे ईषदर्थे च प्रयोक्तव्यम् । दरविअसिअं । अर्धेनेषद्वा विकसितम् ।

४८७—**किणो प्रश्ने** । ८ । २ । २१६ । किणो इति प्रश्ने प्रयोक्तव्यम् । किणो धुवसि ।

४८८—**इ-जे-राः पादपूरणे** । ८ । २ । २१७ । इ जे र इत्येते पादपूरणे प्रयोक्तव्याः । न उणा इ अच्छीइं । अणुकूलं वोत्तुं जे । गेण्हइ र कलम-गोवी । अहो । हंहो । हेहो । हा । नाम । अहह । ही । सि । अयि । अहाह । अरिरिहो इत्यादयस्तु संस्कृतसमत्वेन सिद्धाः ।

४८९—**प्यादयः** । ८ । २ । २१८ । प्यादयः नियतार्थवृत्तयः प्राकृते प्रयोक्तव्याः । पि, वि अप्यर्थे ।

इत्याचार्य-श्रीहेमचन्द्रसूरिविरचितायां सिद्धहेमचन्द्राभिधान-स्वोपज्ञ-शब्दानुशासनवृत्तौ अष्टमस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

द्विषत्पुरक्षोदविनोदहेतोर्भवादवामस्य भवद्भुजस्य ।
अयं विशेषो भुवनैकवीर ! परं न यत्काममपाकरोति ॥१॥

❁ समाप्तः द्वितीयः पादः ❁

★ अथ अव्ययप्रकरणम् ★

यद् न व्येति तदव्ययम् । येषु शब्देषु लिङ्ग-संख्या-कारक-निमित्तेन कश्चिद् विकारो (अन्तरम्) न भवेत्तथा येषु शब्देषु सुबादिप्रत्ययानां लोपो जायते ते शब्दा अव्ययपदवाच्या भवन्ति । प्राकृतभाषायां यान्यव्यय-पदानि सन्ति तानि निरूपयत्याचार्यः ।

४४६—**अधिकारोऽयम्** । उत्तरोत्तरसूत्रेष्वनुवर्तनमधिकारः । इतः-अस्मात्परं ये-'**तं**' इत्यादयः शब्दाः वक्ष्यन्ते,ते आपाद-समाप्तेः=पादसमाप्तिमभिव्याप्य,पादसमाप्तिपर्यन्तमव्ययसंज्ञकाः बोधव्याः।

४४७—**वाक्योपन्यासेति** । वाक्यस्य=पदसमूहस्य उपन्यासः=सूचना, आरम्भो वा । वाक्योपन्यासे प्रायः अथ इत्यव्ययपदं प्रयुज्यतेऽतोऽथाव्ययस्य स्थाने '**तं**' इत्यस्याव्ययस्य प्रयोगो विधेयः । यथा-**अथ** । अव्ययपदमिदम् । ४४७ सू० वाक्योपन्यासे=वाक्यारंभे 'तं' इति प्रयुक्ते '**तं**' इति सिद्धम् । **त्रिदश-बन्दिमोक्षम्** । त्रिदशानां=देवानां बन्दिनः, तेषां मोक्षस्तम् । त्रिदशबन्दिमोक्ष+अम् ।

३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **तिअस-बन्दि-मोक्खं** इति सिद्धम् ।

४४८—आम । अव्ययपदमिदम् । ४४८ सू० अभ्युपगमे-स्वीकृतौ **आम** इत्यव्यये **प्रयुक्ते आम** इति सिद्धम् । **बहला** । बहला+सि १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सेर्लोपे **बहला** इति सिद्धम् । **वनाली** । वनस्य आली । वनाली+सि । ८३ सू० आकारस्य ओकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्लोपे **वणोली** इति सिद्धम् । **बहला**—विपुला घना वा वनाली वनपंक्तिरित्यर्थः ।

४४९—वैपरीत्यं हा वने । **वैपरीत्यम्** । वैपरीत्यार्थे ४४९ सू० णवि इत्यव्यये **प्रयुक्ते णवि** इति सिद्धम् । **हा** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते । **वने** । वन+ङि । नकारस्य णकारे, ५०० सू० ङेः डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वणे** इति सिद्धम् ।

४५०—कृतकरणे । कृतस्य करणं, तस्मिन् । **अयि सुप्यते पांसुलि ! निस्सहैरङ्गैः पुनरपि** । हे पांसुलि !, व्यभिचारिणि !, कुलटे ! पुनः-पुनः निस्सहैः=सोढुमशक्तैरङ्गैः सुप्यते, शय्यते ? कथमित्या-ध्याहार्यम् । **अयि** । अव्ययपदमिदम् । १७७ सू० यकारस्य लोपे **अइ** इति सिद्धम् । **सुप्यते** । स्वप् स्वापे । संस्कृत-नियमेन स्वप्+क्य+ते=सुप्यते इति जाते, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **सुप्पइ** इति सिद्धम् । **पांसुलि** ! । पांसुली+सि । ७० सू० आदेरा-कारस्य अकारे, ५३१ सू० ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे **पंसुलि** ! इति सिद्धम् । **निस्सहैः** । निर्सह+भिस् । २२९ सू० नकारस्य णकारे, वाक्यापेक्षया अन्त्यत्वे, १३ सू० अन्त्यव्यञ्जनस्य रेफस्य लोपे, ९३ सू० इकारस्य ईकारे, ४९६ सू० भिसः हिँ इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **णीसहेहिँ** इति सिद्धम् । **अङ्गैः** । अङ्ग+भिस् । भिसः हिँ इत्यादेशे, अकारस्य एकारे, **अङ्गेहिँ** इति सिद्धम् । **पुनरपि** । कृत-करणार्थे **पुणरुत्तं** इत्यव्ययस्य प्रयोगे **पुणरुत्तं** इति सिद्धम् ।

४५१—हन्दि इति । विषादादिष्वर्थेषु हन्दि इत्यव्ययस्य प्रयोगो विधेयः । यथा—

हन्दि चरणे नतः, स न मानितः, हन्दि भविष्यतीदानीम् ।
हन्दि नाभूद् भणनशीला हन्दि सा तव कार्ये स्विद्यते ॥१॥

भावार्थ :—सः=कश्चिन्नायकः चरणे-पादे नतोऽपि, नायिकया कृतनमस्कारोऽपि न मानितः-सम्मानितः, इति हन्दि विषादः, दुःखमित्यर्थः । शोक-सन्तप्ताऽसौ नायिका तत्रेदानीमधुना जीविता भविष्यति न वा, इति हन्दि-विकल्पः, इति काचित् नायिकासखी सविषादं विकल्पयति-चिन्तयति । नायको नायिकासखीं प्रत्यभणत्, यत् सा—नायिका भणनशीला—वाचालाऽपि नाभूत्तथापि मया साऽकारणमेव सक्रोधं भर्त्सिता, इति हन्दि-पश्चात्तापः । खेदखिन्नं नायकं प्रति तन्नायिका-सखी प्रोवाच—भर्त्सिताऽपि त्वया सा मम सखी, तव कार्ये स्विद्यते-प्रस्वेदयुक्ता श्रमशीला भविष्यत्येवेति हन्दि सत्यम् । प्राणान् परित्यज्यापि सा तव कार्यं साधयिष्यतीति निश्चयेन वक्तुं शक्यते ।

हन्दि । अव्ययपदमिदम् । ४५१ सू० विषादे-खेदेऽर्थे हन्दि इति प्रयुक्ते **हन्दि** इति सिद्धम् । **चरणे** । चरण+ङि । २५४ सू० रेफस्य लकारे, ५०० सू० ङेः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **चलणे** इति सिद्धम् । **नतः** । नत+सि । २२९ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **णओ** इति सिद्धम् । **सः**=सो, प्रक्रिया ९७ सूत्रे ज्ञेया । **न** । अव्यय-पदमिदम् । २२९ सू० नकारस्य णकारे **ण** इति सिद्धम् । **मानितः** । मानित+सि । इत्यत्र २२८ सू०

नकारस्य णकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **माणिओ** इति सिद्धम् । **हन्दि** । अव्ययपदमिदं प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पार्थे प्रयुज्यते । **भविष्यति** । भू+स्यति । ७३२ सू० भूधातोः हु इत्यादेशे, ६६६ सू० स्यतेः स्थाने ज्ज इत्यादेशे **हुज्ज** इति सिद्धम् । **इदानीम्**=एत्ताहे, प्रक्रिया ४०५ सूत्रे ज्ञेया । **हन्दि** । अव्ययपदमिदं पश्चात्तापार्थे प्रयुज्यते । **अभूत्** । भू+दि । ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ६५१ सू० दिप्रत्ययस्य ही इत्यादेशे **होही** इति सिद्धम् । **भणनशीला** । भण् भणने । भण्+तृन् । ४१६ सू० शीलार्थे कृतस्य तृन्-प्रत्ययस्य इरादेशे, स्त्रीत्वात् ५२१ सू० ङीप् (ई) प्रत्यये, भणिर+ई इति जाते, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, सिप्रत्यये, सेर्लोपे **भणिरी** इति सिद्धम् । **हन्दि** । अव्ययपदमिदं निश्चयार्थे सत्यार्थे च प्रयुज्यते । **सा**=सा, प्रक्रिया ३३ सूत्रे ज्ञेया । **तव**—तुह, प्रक्रिया ८ सूत्रे ज्ञेया । **कार्ये** । कार्य+ङि । २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५०० सू० ङेः डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कज्जे** इति सिद्धम् । **स्विद्यते** । ञिष्विदा स्नेहने । संस्कृतनियमेन ष्विद्य+ते इति जाते । ३५० सू० वकारस्य लोपे, २६० सू० षकारस्य सकारे, २९५ सू० **द्यस्य** जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **सिज्जइ** इति सिद्धम् ।

४५२—**हन्द** । अव्ययपदमिदं ४५२ सू० गृहाणार्थे प्रयुज्यते । **प्रलोकस्व** । प्र-पूर्वको लोकृ-धातुः प्रदर्शने । प्रलोक्+हि । ३५० सू० रेफलोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६६२ सू० 'हि' इत्यस्य सु इत्यादेशे **पलोएसु** इति सिद्धम् । **इमम्** । इदम्+अम् । ५६१ सू० इदमः इम इत्यादेशे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **इमं** इति **सिद्धम् । इमं गृहाण, इमं प्रलोकस्वेत्यर्थः** ।

४५३—**कुमुदमिव** । कुमुद+सि । १७७ सू० दकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कुमुअं** इति सिद्धम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् । ४५३ सू० इवार्थे मिव इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **चन्दनमिव** । चन्दनम् । चन्दन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **चन्दणं** इति सिद्धम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् । इवार्थे पिव इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **हंस इव** । हंसः । हंस+सि । ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हंसो** इति सिद्धम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् । इवार्थे विव इति प्रयुज्यते । **सागर इव क्षीरोदः** । **सागरः** । सागर+सि । १७७ सू० गकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **साअरो** इति सिद्धम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् । इवार्थे **व्व** इति प्रयुज्यते । **क्षीरोदः** । क्षीरोद+सि । २७४ सू० क्षस्य खकारे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **खीरोओ** इति सिद्धम् । **शेषस्य इव निर्मोकः** । **शेषस्य** । शेष+ङस् । २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **सेसस्स** इति सिद्धम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् । इवार्थे व इति प्रयुज्यते । **निर्मोकः** । निर्मोक+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, १७७ सू० ककार-लोपे, पूर्ववदेव **निम्मोओ** इति भवति । **कमलम् इव** । कमलम् । कमल+सि । **कमलं** चन्दणं-वत् साध्यम् । **इव** । अव्ययपदमिदम् इवार्थे **'विअ'** इति प्रयुक्तम् । **नीलोत्पल-माला-इव** । नीलानि च तानि उत्पलानि इति नीलोत्पलानि, तेषां नीलोत्पलानां माला । नीलोत्पलमाला+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, ३४८ सू० तकारस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **निलुप्पलमाला** इति सिद्धम् । **इव** संस्कृततुल्यमेव प्राकृते प्रयुज्यते ।

४५४—**लक्षणे** । लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणम्=ज्ञापकं, बोधकमित्यर्थः, तस्मिन् । लक्ष्य-लक्षण-भावे जेण, तेण इत्येतयोरव्यययोः प्रयोगो जायते । यथा—**भ्रमर-रुत-लक्षितं कमल-वनम्** । भ्रमररुतेन द्विरेफ-

शब्देन लक्षणेन-ज्ञापकेन लक्षितं-ज्ञातमेतद्, यदत्र कमलवनमन्यथा भ्रमराणां शब्दास्तित्वाभाव एव भाव्यः। यत्रैतादृशोऽर्थः लक्ष्यते-बोध्यते तत्र जेण, तेण इत्यनयोरव्यययोः प्रयोगो भवतीति भावः। साधनिका त्वित्थम्—भ्रमररुत+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **भमर-रुअं** इति सिद्धम्। भ्रमररुत-बोधनार्थे **जेण, तेण** इत्यव्ययपदे प्रयुज्येते। कमलवन+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **कमलवणं** इति सिद्धम्।

४५५—गत्या एव। गति+टा। १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५१८ सू० टा-प्रत्ययस्य एत् (ए) इत्यादेशे, पूर्वदीर्घे च **गईए** इति सिद्धम्। **एव**। ४५५ सू० अवधारणार्थे **णइ** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **यदेव मुकुलनं लोचनयोः**। यद्। यद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, बाहुल्येन २४ सू० दकारस्य मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे **जं** इति सिद्धम्। **मुकुलनम्**—निमीलनम्। मुकुलन+सि। १०७ सू० आद्योकारस्य अकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **मउलणं** इति सिद्धम्। **लोचनयोः**। लोचन+ओस्। १७७ सू० चकारस्य लोपः, नकारस्य णकारः, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचनम्, ४९५ सू० आमः स्थाने णकारः, ५०१ सू० पूर्वाकारस्याकारः, २७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे **लोअणाणं** इति सिद्धम्। **अनुबद्धं तद् एव कामिनीनाम्**। **अनुबद्धम्**। अनुबद्ध+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारः, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **अणुबद्धं** इति सिद्धम्। **तद्**। तद्+सि। बहुलाधिकारात् २४ सू० दकारस्य मकारः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, सेर्लोपे **तं** इति सिद्धम्। **एव**। **चिअ** इत्यव्ययपदं प्रस्तुतसूत्रेण अवधारणे प्रयुज्यते। **कामिनीनाम्**। कामिनी+आम्। नकारस्य णकारः, आमः णकारः, २७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे **कामिणीणं** इति सिद्धम्। **सेवादित्वात् द्वित्वमपि**। **चिअ, चेअ** इत्यत्र ३७० सूत्रेण चकारस्य च्च इति द्वित्वमपि जायते, तेन **च्चिअ, च्चेअ** ईदृशे रूपे भवतः। **ते एव धन्याः**। **ते**। तद्+जस्। ५४७ सू० जसः स्थाने डित् 'ए' इत्यादेशः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **ते** इति सिद्धम्। '**चिअ**' इत्यव्ययपदम्। ४५५ सूत्रे अवधारणे प्रयुज्यते, ३७० सू० चकारस्य द्वित्वे **च्चिअ** इति सिद्धम्। **धन्याः**। धन्य+जस्। ३४९ सू० यकारस्य लोपः, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वं, ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **धन्ना** इति सिद्धम्। **ते** इति पूर्ववदेव साध्यम्। '**चेअ**' इत्यव्ययपदमवधारणे प्रयुज्यते, ३७० सू० चकारस्य द्वित्वे **च्चेअ** इति सिद्धम्। **सुपुरुषाः**। शोभनाः पुरुषाः सुपुरुषा। सुपुरुष+जस्। १११ सू० रोरुकारस्य इकारः, २६० सू० षकारस्य सकारः, जसो लुक्, पूर्वाकारस्य दीर्घे **सुपुरिसा** इति सिद्धम्। **स एव च रूपेण**। **सः**। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे जाते, सेर्लोपे **स** इति सिद्धम्। '**च्च**' इत्यव्ययपदमवधारणे प्रयुज्यते। **च**। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० चकारस्य लोपः, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ **य** इति सिद्धम्। **रूपेण**। रूप+टा। २३१ सू० पकारस्य वकारे, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **रूवेण** इति सिद्धम्। **स एव शीलेन**। **सः**। तद्+सि। पूर्ववदेव **स** इति साध्यम्। च्च इत्यव्ययपदमवधारणे प्रयुज्यते। **शीलेन**। शील+टा। २६० सू० शकारस्य सकारे, टा-प्रत्ययस्य णकारे, अकारस्य एकारे **सीलेण** इति सिद्धम्।

४५६—निर्धारणे निश्चये। जाति-गुण-क्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं **निर्धारणं**, **निश्चयो**-निर्णयः। **बले पुरुषो धनञ्जयः क्षत्रियाणाम्**। 'बले' इत्यव्ययपदम्। एतदव्ययं ४५६ सू० निर्धारणार्थे प्रयुज्यते। **पुरुषः**=पुरिसो, प्रक्रिया ४२ सूत्रे ज्ञेया। **धनञ्जयः**=धणंजओ प्रक्रिया १७७ सूत्रे ज्ञेया। **क्षत्रियाणाम्**। क्षत्रिय+आम्। २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६०

तकारस्य द्वित्वं, १७७ सू० यकारस्य लोपः, ४९५ सू० आम्-प्रत्ययस्य 'ण' इत्यादेशः, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे, २७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे **खत्तिआणं** इति सिद्धम्। क्षत्रियाणां मध्ये धनञ्जयोऽर्जुनः पौरुषवान् पराक्रमशाली निर्णीयत इति भावः। **सिंह एव**। ४५६ सू० निश्चयार्थे बले इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **सिंहः=सीहो** प्रक्रिया २९ सूत्रेऽवलोकनीया। **बले सीहो**। सिंह एवायं, सिंहसमः, इति निश्चयः।

४५७—कल्यं किल खर-हृदयः। कल्यम्। कल्य+सि, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० लकारस्य द्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **कल्लं** इति सिद्धम्। **किल**। ४५७ सू० किलार्थे **किर** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **खरहृदयः**। खरस्य हृदयमिव हृदयं यस्य, सः। खरहृदय+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **खरहिअओ** इति सिद्धम्। **कल्यं किल खरहृदयः**, इदं श्लोकस्यैकं चरणं, सम्पूर्णश्लोकस्त्वित्थम्—

कल्लं किर खरहिअओ पविसहि इमा उत्ती सुव्वए जणम्मि।
तह बद्धय इति से, जहा से कल्लं वि अ न होइ ॥१॥

भावार्थः-कस्याश्चिन्नार्याः परुषहृदयं निज-पतिं प्रत्युक्तिरियम्। **किर**, इति संभाव्यते, यत् स खरहृदयः-परुषहृदयो मे स्वामी कल्यं-प्रभातं प्रविष्यति-वलिष्यति, प्रत्यावर्तिष्यते, यतः श्वस्तस्यागमनं जने-लोकेऽपि श्रूयते, अतः हे भगवन् !, निशाकर ! इत्याध्याहार्यम्, त्वमात्मानं तथा वर्धय यथा तस्य कल्यं-प्रभातमेव न भवेद्।

तस्य किल। तस्य। तद्+ङस्। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **तस्स** इति सिद्धम्। **किल** अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण किलार्थे इर इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **प्रियवयस्यः किल**। प्रियश्चासौ वयस्यः प्रियवयस्यः। प्रियवयस्य+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, १७७ सू० प्रथम-यकारस्य लोपः, २६ सू० द्वितीय-यकारस्यानुस्वारागमः, ३४९ सू० संयुक्त-यकारस्य लोपः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे जाते **पिअ-वयंसो** इति सिद्धम्। 'हिर' इत्यव्ययपदं ४५७ सू० किलार्थे प्रयुज्यते। **एवं किल तेन स्वप्नके भणिता**। **एवं** तथा **किल** इत्येते अव्ययपदे प्राकृते संस्कृतवदेव प्रयुज्येते। **तेन**। तद्+टा। ११ सू० दकारस्य लोपः, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य 'ण' इत्यादेशः, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **तेण** इतिसिद्धम्। **स्वप्नके**। स्वप्नक+ङि। ३५० सू० वकारस्य लोपः, ४६ सू० आदेरकारस्य स्थाने इकारः, ३७९ सू० नकारात्पूर्वः इकारागमः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारः, १७७ सू० ककारस्य लोपः, ५०० सू० ङेः स्थाने डित्-एकारे, डिति-परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **सिविणए** इति सिद्धम्। **भणिता**। भणिता+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे, **भणिआ** इति सिद्धम्।

४५८—केवलं प्रियाणि एव भवन्ति। **केवलम्**। केवल+सि। ४५८ सू० केवलार्थे णवर इत्यव्ययपदे प्रयुक्ते, अव्ययत्वादेव सेर्लोपे **णवर** इति सिद्धम्। **णवर** इत्यस्य स्थाने **णवरं** इत्यपि पाठ उपलभ्यते। **प्रियाणि**। प्रिय+जस्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० यकारलोपे, ५१५ सू० जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वदीर्घे च **पिआइं** इति सिद्धम्। **एव**। अव्यय-पदमिदम्। ४५५ सू० एवार्थे **चिअ** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **भवन्ति**। भू सत्तायाम्। भू+अन्ति। ७३३ सू० भूधातोः णिव्वड इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **णिव्वडन्ति** इति सिद्धम्।

४५९—आनन्तर्यं च तस्याः रघुपतिना। ४५९ सू० आनन्तर्ये (न अन्तरमनन्तरं तस्य भावः आनन्तर्यं, तस्मिन्) **णवरि** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **च**। अव्ययपदमिदम्। १७७ चकारलोपे **अ** इति सिद्धम्। **तस्याः**। तद्+ङस्। ५७० सू० ङसा सह तदः से इत्यादेशे **से** इति सिद्धम्। **रघुपतिना**। रघुपति+टा। १८७ सू० घकारस्य हकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५१३ सू० टा-प्रत्ययस्य णा इत्यादेशे **रहु-वइणा** इति सिद्धम्। "**केचित्तु केवलानन्तर्यार्थयोरिति**।" केचित् वैयाकरणास्तु ४५८ तथा ४५९ सूत्रयोरेतयोः "**केवलानन्तर्यार्थयोः णवर-णवरि**" इत्येकमेव सूत्रं स्वीकुर्वन्ति। तेषां मते **णवरणवरि** इति द्वावव्ययपदौ केवलार्थकौ आनन्तर्यार्थकौ च वर्तेते।

४६०—अलाहि किं वाचितेन लेखेन?। **अलाहि**, इत्यव्ययपदं ४६० सू० निवारणार्थे प्रयुज्यते। **किम्**। किम्+सि। २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **किं** इति सिद्धम्। **वाचितेन**। वाचित+टा। १७७ सू० चकारस्य, तकारस्य च लोपे, ४९५ टा-प्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **वाइएण** इति सिद्धम्। **लेखेन**। लेख+टा। १८७ सू० खकारस्य हकारे, टा-प्रत्ययस्य णकारे, अकारस्य एकारे **लेहेण** इति सिद्धम्।

४६१—अचिन्तितम्। न चिन्तितमचिन्तितम्। अचिन्तित+सि। ४६१ इत्यत्र सू० नञर्थे अण इत्यव्ययस्य प्रयोगे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अण-चिन्तिअं** इति सिद्धम्। **अजानन्ती**। न जानन्ती, अजानन्ती। ज्ञा अवबोधने! ज्ञा+शतृ। ६७८ सू० ज्ञाधातोः मुण इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, ५२१ सू० ङी-प्रत्यये, १।१।३७। सू० ङकारलोपे मुणन्त+ई इति जाते, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, सेर्लोपे **मुणन्ती** न अमुणन्ती इति नञ्प्रयोगे **अमुणन्ती** इति भवति। अणचिन्तिअम्+अमुणन्ती। अज्झीने परेण संयोज्ये **अणचिन्तिअममुणन्ती** इति भवति। **न करोमि रोषम्**। प्रस्तुत-सूत्रेण नञर्थे णाइं इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **करोमि=करेमि** इत्यस्य साधनिका २९ सूत्रेऽवलोकनीया। **रोषम्**। रोष+अम्। २६० सू० षकारस्य सकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **रोसं** इति सिद्धम्।

४६२—मा। अव्ययपदमिदम्। ४६२ सू० मार्थे **माइं** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **कार्षीत्**। कृ करणे। कृ+तिव्। ८८५ सू० ऋकारस्य आ इत्यादेशे, ६५१ सू० तिवः हीअ इत्यादेशे **काहीअ** इति सिद्धम्। **रोषम्**। **रोसं** इत्यस्य प्रक्रिया ४६१ सूत्रे द्रष्टव्या।

४६३—हद्धी इत्यव्ययमत एव। 'हद्धी' इति निर्देशात्=कथनादिदं प्रतीयते यत् अव्ययपदमिदं 'हाधिक्' इत्यव्यययोः स्थाने आदेशो भवति। अथवा निर्वेदे-ग्लानावेतस्य प्रयोगः करणीयः। यथा—**हाधिक्**। अव्ययपद-द्वयम्। द्वयोरव्ययोः स्थाने ४६३ सू० विकल्पेन हद्धी इत्यव्ययं प्रयुज्यते। अथवा निर्वेदे=ग्लानावपि एतस्य प्रयोगो जायते। **हद्धी हद्धी** इति द्विवारमुच्चारणन्तु *भयादिभिः क्रियते। वैकल्पिकत्वात् यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावस्तत्र तु धिक्-शब्दस्य स्थाने अस्मिन्नेवार्थे 'धाह' इति देश्यपदस्य प्रयोगो भवति, तेन **हाधाह** इति भवति। अत्रापि यद् द्विवारमुच्चारणं क्रियते तद् भयादिनिमित्तकमेव समवगन्तव्यम्।

४६४—भयवारण-विषादेषु। भयं=भीतिः, वारणं=निवारणं, विषादः=दुःखम् इत्यर्थेषु वेव्वे इत्यव्ययस्य प्रयोगो भवति। यथा—

***असकृत्संभ्रमे**। ७।४।७२। भयादिभिः प्रयोक्तुः त्वरणे द्योत्ये पदं वाक्यं वा असकृत् (अनेकवारं) प्रयोज्यम्। अहिरहिरहिः। हस्त्यागच्छति, हस्त्यागच्छति। लघु पलायध्वम्, लघु पलायध्वम्। —**हैमशब्दानुशासने**।

वेव्वे इति भये, वेव्वे इति वारणे खेदे च वेव्वे इति।
उल्लापयित्र्या अपि तव वेव्वे इति मृगाक्षि ! किं ज्ञेयम् ? ॥१॥
किमुल्लापयन्त्या उत खिद्यन्त्या किन्तु भीतया।
उद्वदित्र्या वेव्वे इति तया भणितं न विस्मरामः ॥२॥

वेव्वे इत्यनेकार्थक-शब्द-प्रयोक्त्रीं नायिकां प्रति कश्चित् प्रतिवक्ति। हे मृगाक्षि ! मृगस्य हरिणस्य अक्षिणीवाक्षिणी यस्याः सा मृगाक्षी, तत्सम्बोधने। **वेव्वे** इत्यव्ययपदं भयं, वारणं, विषादः—खेदः इत्यर्थेषु प्रयुज्यते, किन्तु **वेव्वे** इत्युल्लापयित्र्याः=उच्चारणशीलायास्तव किं ज्ञेयम् ? **वेव्वे** इत्यस्य त्रिष्वर्थेषु मध्ये को नाम अर्थो ज्ञातव्यः ? **वेव्वे** इति कथनेन कोऽर्थः संसूचितोऽत्रभवत्या ? इति प्रश्नः ॥ १ ॥ **वेव्वे** इत्यस्य भयाद्यर्थत्रिकं भङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादयिषुराचार्य आह—हे सखि ! किमुल्लापयित्र्या— किञ्चिद्वदन्त्या तया उत-अथवा खिद्यन्त्या खेदमनुभवन्त्या तया, किन्तु-अथवा भीतया-भययुक्तया तया यद् **वेव्वे** इति भणितं तन्न विस्मरामः, तस्य सदा स्मरणं कुर्मः। इति कस्यचित् काञ्चित् प्रति कस्याश्चित् सम्बन्धे उक्तिरस्ति। **वेव्वे** इत्यव्ययपदं ४६४ सू० भये, वारणे, विषादे च प्रयुज्यते। **इति**। अव्ययपदमिदम्। **त्ति** प्रक्रिया ४२ सूत्रे द्रष्टव्या। **भये**। भय+ङि। ५०० सू० ङेः डित् एकारः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **भये** इति सिद्धम्। **वारणे**। वारण+ङि। **वारणे** भये-वत् साध्यम्। **खेदे**। खेद+ङि। ८०३ सू० खिद्धातोः जूर इत्यादेशे, संज्ञानिर्माणार्थके अणप्रत्यये कृते, स्वरस्य लोपे जूरण+ङि इति जाते, **जूरणे** इति वारणे-वत् साध्यम्। च। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० चकारलोपे **अ** इति सिद्धम्। **उल्लापयित्र्याः**। उल्लापयित्री+ङस्। उत्पूर्वको लप्धातुः उल्लापे। उल्लप्+तृन्। ९०९ सू० आदेरकारस्याकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ४१६ सू० तृनः इर इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ५२१ सू० ङी (ई) प्रत्यये, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, ङस्-प्रत्यये, ५१८ सू० ङसः इत् (इ) इत्यादेशे **उल्लाविरीइ** इति सिद्धम्। **अपि=वि**, प्रक्रिया ६ सूत्र ज्ञेया। अथवा, ४८९ सू० नियतार्थवृत्तौ **वि** इति प्रयुज्यते। **तव**—तुह, प्रक्रिया ५८८ सूत्रे ज्ञेया। **मृगाक्षि** !। मृगाक्षी+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० य-श्रुतौ, २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्व—छकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्स्वे, ५३१ सू० ईकारस्य इकारे, १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **मयच्छि** ! इति सिद्धम। **किम्**=किं, एतस्य प्रक्रिया २९ सूत्रे ज्ञेया। **ज्ञेयम्**। ज्ञेय+सि। ३१३ सू० ज्ञस्य स्थाने णकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **णेअं** इति सिद्धम्। **उल्लापयन्त्या**। उल्लापयन्ती+टा। उल्लप्+णिग्। पूर्ववदेव-उल्लाव+णिग् इति जाते, ६३८ सू० णिगः ए इत्यादेशे, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, शतृ-प्रत्यये, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, ङी (ई) प्रत्यये, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, टा-प्रत्यये, ५१८ सू० टा-प्रत्ययस्य एत् (ए) इत्यादेशे **उल्लावेन्तीए** इति सिद्धम। **खिद्यन्त्या**। खिद्यन्ती+टा। खिद् खेदे। ८०३ सू० खिद्धातोः जूर इत्यादेशे, शतृ-प्रत्यये, शतुः न्त इत्यादेशे, ङी (ई) प्रत्यये, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, टा-प्रत्यये, टा-प्रत्ययस्य एत् (ए) इत्यादेशे **जुरन्तीए** इति सिद्धम। **किन्तु** अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **भीतया**। भीता+टा। १७७ सू० तकारस्य लोपे, टा-प्रत्ययस्य एत् (ए) इत्यादेशे **भीआए** इति सिद्धम्। **उद्व-वदित्र्या**। उद्वदित्री+टा। उत्पूर्वको वद् धातुः निषेधे। उद्वद्+तृन्। ३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्त्वे, ९०९ सू० आदेरकारस्य आकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारा

गमे, ४४५ सू० दकारस्य डकारे, ४१६ सू० तृन् प्रत्ययस्य इर इत्यादेशे, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ५२१ सू० ङी (ई) प्रत्यये, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, टा-प्रत्यये, ५१८ सू० टा-प्रत्ययस्य एत् (ए) इत्यादेशे **उव्वाडिरीए** इति सिद्धम् । **तया** । तद्+टा । ११ सू० दकारस्य लोपे, ५२२ सू० वैकल्पिके ङी (ई) प्रत्यये, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, टा-प्रत्ययस्य एत् (ए) इत्यादेशे **तीए** इति सिद्धम । **भणितम्** । भणित+सि । १७७ सू० तकार लोपे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **भणिअं** इति सिद्धम् । **न** । इत्यव्ययपदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते । **विस्मरामः** । विपूर्वकः स्मृधातुः विस्मरणे । विस्मृ+मस् । ७४६ सू० विस्मरतेः विम्हर इत्यादेशे, ६३३ सू० मसः मो इत्यादेशे, ६४४ सू० पूर्वाकारस्य इकारे **विम्हरिमो** इति सिद्धम् ।

४६५—हे । ४६५ सू० हे इत्यस्य आमन्त्रणार्थे **वेव्व** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **गोले** ! हे सखि ! इत्यर्थः । गोला+सि, ५३० सू० आकारस्य एकारे, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **गोले** ! इति सिद्धम् । **हे** । इत्यस्यार्थे वेव्वे इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **मुरन्दले** ! । मुरन्दल+सि । **मुरन्दले** ! इति रूपं **गोले**-वत्साध्यम् । **वहसि** । वह् धातुः प्रापणे । वह+सिव् । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२९ सू० सिवः सि इत्यादेशे **वहसि** इति सिद्धम् । **पानीयम्** । पानीय+सि । **पाणिअं**, प्रक्रिया १०१ सूत्रेऽवलोकनीया ।

४६६—हे सखि । सख्याः आमन्त्रणे मामि इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **मामि** हे हेखि ! इत्यर्थः । **सदृशाक्षराणाम्** । सदृशानि च तान्यक्षराणि तेषाम्, अथवा सदृशान्यक्षराणि येषां तानि, तेषाम् । सदृशाक्षर+आम् । इत्यत्र १४२ सू० ऋकारस्य 'रि' इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, ३६० सू० खकारस्य स्थाने द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य स्थाने ककारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९५ सू० आम्-प्रत्ययस्य 'ण' इत्यादेशे, ५०१ सू० अकारस्य दीर्घे **सरिसक्खराण** इति सिद्धम् । **अवि**-वि इत्यस्य प्रक्रिया ६ सूत्रे ज्ञेया । **प्रणमत मानस्य हला** । प्रणम् प्रणामे । प्रणम्+त । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे जाते, ८९७ सू० मकारस्य वकारः, ६६५ सू० 'त' इत्यस्य स्थाने 'ह्' इत्यादेशे **पणवह** इति सिद्धम् । **मानस्य** । मान+ङस् । इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९९ सू० ङसः स्थाने 'स्स' इत्यादेशे **माणस्स** इति सिद्धम् । **हला** । इत्यव्ययपदम् । ४६६ सू० सख्या आमन्त्रणे **हला** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **हे सखि ! हताशस्य** । **हे सखि** ! । सख्याः आमंत्रणे **हले** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **हताशस्य** । हता आशा यस्य सः, तस्य । हताश+ङस् । १७७सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकास्य-श्रुतौ, २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे, ४९९ सू० ङसः 'स्स' इत्यादेशे **हयासस्स** इति सिद्धम् । **पक्षे** । यत्र सख्या आमन्त्रणे **मामि** इत्यादयः प्रयोगा न जातास्तत्र **हे सखि** ! । सखी+सि । ५३१ सू० ईकारस्य इकारे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, सेर्लोपे **सहि** ! इति भवति । **ईदृशी** । ईदृशी+सि । १०५ सू० ईकारस्य एकारे, १४२ सू० ऋकारस्य 'रि' इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्लोपे **एरिसी** इति सिद्धम् । **एव**—च्चिअ, प्रक्रिया ८ सूत्रे ज्ञेया । **एरिसो च्चिअ** इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **एरिसि च्चिअ** इति भवति । **गतिः** । गति+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे **गई** इति सिद्धम् ।

४६७—दे प्रसीद तावत् सुन्दरि ! । ४६७ सू० सन्मुखी-करणेऽर्थे **दे** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **दे** सन्मुखीभव इत्यर्थः । **प्रसीद**=पसिअ प्रक्रिया १०१ सूत्रे ज्ञेया । **तावत्** अव्ययपदमिदम् । ११ सू०

तकारलोपे **ताव** इति सिद्धम्। **सुन्दरि !** । सुन्दरी+सि। ५३१ सू० ईकारस्य इकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **सुन्दरि !** इति सिद्धम्। **हे सखि !** । ४६७ सू० सख्या आमंत्रणे **दे** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **दे**=हे सखि ! इत्यर्थः। **आप्रसीद**। आप्रसीद्+हि। ३५० सू० रेफ-लोपे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, ९१० सू० अकारागमे, १७७ सू० दकार—लोपे, ६६२ सू० हेः सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लोपे **आपसिअ** इति भवति। **निवर्तस्व**। निपूर्वको वृतुधातुः निवृत्तौ। संस्कृतनियमेन निवर्त्+हि इति जाते, १७७ सू० वकार-लोपे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० तकार-द्वित्वे, ९१० स० धातोरन्तेऽकारागमे, ६६२ सू० हेः सु इत्यादेशे **निअत्तसु** इति सिद्धम्।

४६८—**दानादिषु**। **दाने**, **पृच्छायां**, **निवारणे** च हुं इत्यव्ययस्य प्रयोगो भवतीत्यर्थः। **दाने**। दानस्योदाहरणं यथा—**दानं गृहाण स्वयमेव**। इत्यत्र ४६८ सू० दानार्थे हुं इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **गृहाण**। ग्रह् धातुः उपादाने। ग्रह्+हि। ८८० सू० ग्रह-धातोः स्थाने गेण्ह इत्यादेशे, ६६२ सू० हेः सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लोपे **गेण्ह** इति सिद्धम्। **स्वयम्**। अव्ययपदमिदम्। ४८० सू० स्वयमित्यर्थे **अप्पणो** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **एव**। अव्ययपदमिदम्। ४५५ सू० अवधारणे चिअ इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते, ३७० सू० चकारद्वित्वे **च्चिअ** इति सिद्धम्। **पृच्छायाम्**। पृच्छाया उदाहरणं यथा—**हुं कथय सद्भावम्**। **हुं** इत्यव्ययपदं ४६८ सू० पृच्छायां प्रयुज्यते। **कथय**। कथ्+हि। ६७३ सू० कथ्-धातोः साह इत्यादेशे, ६६२ सू० हेः सु इत्यादेशे **साहसु** इति सिद्धम्। **सद्भावम्**। सद्भाव+अम्। ३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० भकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सब्भावं** इति सिद्धम्। **निवारणे**। निवारणस्योदाहरणं, यथा—**हुं निर्लज्ज ! समोसर**। प्रस्तुत-सूत्रेण हुं इत्यव्ययपदं निवारणार्थे प्रयुज्यते। **निर्लज्ज !**। निर्लज्ज+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० लकार-द्वित्वे, ५१४ सूत्रेण सेर्मकार-प्राप्तिरासीत् परं ५२६ सू० तन्निषेधे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **निल्लज्ज !** इति सिद्धम्। **समपसर**। सम्पूर्वकः सृधातुः दूरीकरणे। समपसृ+हि। १७२ सू० अप-उपसर्गस्य ओकारे, ९०५ सू० ऋवर्णस्य अकारे, ६६२ सू० हेः सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लोपे **समोसर** इति सिद्धम्।

४६९—**निश्चये**। निश्चयस्योदाहरणं, यथा—**त्वम्**=**तं** प्रक्रिया ५७९ सूत्रे ज्ञेया। **अपि खलु अच्छिन्नश्रीः**। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४१ सू० आदेरकारस्य लोपे **पि** इति सिद्धम्। **खलु**। अव्ययपदमिदम्। ४६९ सू० निश्चयार्थे (खल्वर्थे) हु इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **अच्छिन्नश्रीः** अच्छिन्ना-अनिष्टा श्रीः यस्य सः। अच्छिन्नश्री+सि। ३७५ सू० संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वमिकारागमः, २६० सू० शकारस्य सकारः, सेर्लोपे **अच्छिन्नसिरी** इति सिद्धम्। **त्वं खलु श्रियाः रहस्यम्**। **त्वम्**= पूर्ववदेव तं इति साध्यम्। निश्चयार्थे खु इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **श्रियाः**। श्री+ङस्। संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात्पूर्वे इकारागमे,शकारस्य सकारे, ५१८ सू० ङसः स्थाने 'एत्' (ए) इत्यादेशे **सिरीए** इति सिद्धम्। **रहस्यम्**। रहस्य+सि। ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वं, ५१४ स० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **रहस्सं** इति सिद्धम्। **वितर्कः**। वितर्क-शब्दः ऊहे-विचारे, संशये-सन्देहे वा प्रयुज्यते। **ऊहे**। ऊहस्योदाहरणं प्रदर्श्यते—**न हु केवलं संगृहीता**। '**न**' इत्यव्ययपदं संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। ४६९ सू० ऊहेऽर्थे 'हु' इति प्रयुज्यते। **केवलम्**। अव्ययपदमिदम्। ४५८ सू० केवलार्थे *'णवर' इति प्रयुज्यते। **संगृहीता**। संगृहीता+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे,

*णवरं इत्यपि पाठान्तरम्।

१०१ सू० ईकारस्य ह्रस्वे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्लोपे **संगहिआ** इति सिद्धम्। **एतां खु हसति**। एतद्+अम्। १७७ सू० तकारस्य लोपे, ११ सू० दकारस्य लोपे, स्त्रीत्वात् आप्-(आ)-प्रत्यये, सन्धौ-एता+अम् इति जाते, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **एअं** इति सिद्धम्। **खु**। ४६९ सू० ऊहेऽर्थे 'खु' इत्यव्ययं प्रयुज्यते। **हसति**। हस् हासे। हस्+तिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **हसइ** इति सिद्धम्। **संशये**। संशयस्योदाहरणं निदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**जलधरः खु धूमपटलः**। **जलधरः**। जलधर+सि। १८७ सू० धकारस्य हकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जलहरो** इति सिद्धम्। **खु**, इत्यव्ययपदं संशयेऽर्थे प्रयुज्यते। **धूमपटलः**। धूमस्य पटलः-समूहः। धूमपटल+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, पूर्ववदेव **धूमवडलो** इति सिद्धम्। धूमपुञ्जं वीक्ष्य कश्चिद् ब्रूते यदय जलधरः=मेघोऽस्त्यथवा धूमपटलः। **संभावने**। संभावनस्योदाहरणं, यथा—**तरीतुं न हु केवलम्**। तरितुम्। तृ तरणे। तृ+तुमुन् (तुम्), ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ९०९ सू० इकारस्य ईकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **तरीउं** इति सिद्धम्। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसमानमेव प्राकृते प्रयुज्यते। **हु**। प्रस्तुतसूत्रेण संभावनेऽर्थे **हु** इत्यव्ययपद प्रयुज्यते। हु=संभावयामीत्यर्थः। ४५८ सू० केवलार्थे **णवर** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **इमाम्=इमं** प्रक्रिया ४५२ सूत्रे ज्ञेया। **एतां खु हसति**। **एताम्**। एतद्+अम्=**एअं** अस्य प्रक्रिया पूववदेव ज्ञेया। संभावनायां खु इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **हसति**। हस्+तिव, पूर्ववदेव **हसइ** इति बोध्यम्। **विस्मये**। विस्मयस्योदाहरणं यथा—**कः खु एषः सहस्रशिराः**। **कः**=को, इत्यस्य प्रक्रिया ५६० सूत्रे ज्ञेया। प्रस्तुतसूत्रेण विस्मये खु, इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **एषः=एसो** प्रक्रिया ३८७ सूत्रे ज्ञेया। **सहस्रशिराः**। सहस्राणि शिराणि यस्य, सः। सहस्रशिरस्+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० सकार-द्वित्वे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० सकारलोपे, पूर्ववदेव **सहस्ससिरो** इति सिद्धम्। **बहुलाधिकारात्**। बहुलस्याधिकाराद् हु इत्यव्ययपदमनुस्वारस्याग्रे न प्रयोक्तव्यम्। यथा **एअं हु हसइ** इत्यत्र हु इत्यस्यानुस्वरात्परः प्रयोगो विद्यते परमेतादृशः प्रयोगो न विधेयः।

४७०—**गर्हादिषु**। १—**गर्हायां**—निन्दायाम्, २—**आक्षेपे**—आशंकानिवृत्तौ, केनचित् किञ्चिद्वाक्यमुक्तं तत्र कोऽप्याशङ्कते, तदीयाशंकायाः निवृत्तिराक्षेपः, ३—**विस्मये**—आश्चर्ये, ४—**सूचने**=उद्बोधने, इत्यर्थेषु **ऊ** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **गर्हा**। गर्हाया उदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**ऊ**। ४७० सू० गर्हायां ऊ इत्यव्ययपदं प्रयुक्तम्। **निर्लज्ज !**। निर्लज्ज+सि। २२९ सू० नकारस्य स्थाने णकारे **णिल्लज्ज !** इति सिद्धम्। शेष-प्रक्रिया ४६८ सूत्रे द्रष्टव्या। **प्रक्रान्तस्य वाक्यस्य**। आक्षेपशब्दस्यार्थं प्रतिपादयति वृत्तिकारः। प्रक्रान्तस्य=आरब्धस्य वाक्यस्य यो विपर्यासः—विपरीतोऽर्थस्तस्य आशंकाया विनिवर्तनलक्षणः—विनिवर्तनं-निषेधनं तदेव लक्षणं-स्वरूपं यस्य स **आक्षेपः**। **ऊ किं मया भणितम्**। इत्यत्र ४७० सूत्रेण आक्षेपेऽर्थे **ऊ** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **किम्**। किम्+सि=**किं**, इत्यस्य प्रक्रिया २९ सूत्रे ज्ञेया। **मए** इत्यस्य प्रक्रिया ५९८ सूत्रे ज्ञेया। **भणितम्**=भणिअं प्रक्रिया ४६४ सूत्रे ज्ञेया। **विस्मये**। विस्मयस्योदाहरणं, यथा—**ऊ कथं ज्ञाता अहम्**। अत्र विस्मयार्थे ऊ इत्यव्ययपदं प्रयुक्तम्। **कथम्=कह**, इत्यस्य प्रक्रिया २९ सूत्रे ज्ञेया। **ज्ञाता**। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा+क्त। ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने मुण इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, स्त्रीत्वादाप्प्रत्यये, सन्धौ, सिप्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, सेर्लोपे **मुणिआ** इति सिद्धम्। **अहम्=अहयं** प्रक्रिया ५९४ सूत्रे ज्ञेया। **सूचने**। सूचन-

स्योदाहरणं, यथा—**ऊ केन न विज्ञातम्**। ४७० सूत्रेण सूचनार्थे ऊ इत्यव्ययं प्रयुक्तम्। **केन=केण** प्रक्रिया ५६० सूत्रे ज्ञेया। **न**। इत्यव्ययपदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **विज्ञातम्**। विज्ञात+सि। ३१३ सू० ज्ञस्य णकारे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **विण्णायं** इति सिद्धम्।

४७१—**थू निर्लज्जो लोकः**। **थू**। इत्यत्र ४७१ सू० कुत्सायां-निन्दायां **थू** इत्यव्ययपदं प्रयुक्तम्। **निर्लज्जः**। निर्लज्ज+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० लकारस्य द्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **निल्लज्जो** इति सिद्धम्। **लोकः**=लोओ, प्रक्रिया १७७ सूत्रे ज्ञेया।

४७२—**यथासंख्यमेतौ**। रे इत्यव्ययपदं संभाषणे, **अरे** इत्यव्ययपदं रतिकलहे, रतिः सम्भोगः, कामक्रीडा वा तन्निमित्तके क्लेषे प्रयुज्यते। यथा—**रे हृदय ! अल्पसरित्**। ४७२ सू० सम्भाषणेऽर्थे **रे** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **हृदय !**। हृदय+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकार-लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारप्राप्तिरासीत्परन्तु ५२६ सू० तन्निषेधे, १।१।३७। सू० सेरिकार-लोपे, ११ सू० सकारलोपे **हिअय** ! इति सिद्धम्। **अल्पसरित्**। अल्पा चासौ सरित् अल्पसरित्। अल्पसरित्+सि। अल्पार्थे मडह इति देश्य-पदे प्रयुक्ते, १५ सू० तकारस्य आकारे, सेर्लोपे **मडह-सरिआ** प्रति सिद्धम्। श्लोकस्यैतच्चरणमेकं, सम्पूर्ण-श्लोकस्त्वित्थम्—

***रे हिअअ ! मडह-सरिआ-जलभर-वुज्झन्तसुक्कदारु व्व।**
ठाणे-ठाणे विलग्गमाणस्स केणावि डज्झिहिसि ॥१॥

भावार्थ :—स्थाने-स्थाने आसक्तिं कुर्वाणं मनः शिक्षमाणः कश्चित् कविराह—अरे हृदय ! अल्पसरिज्जलभरेण अल्पसरित्-लघ्वी सरिता अल्पोदका नदी इत्यर्थः। तस्याः यज्जलं, तस्य यो भरः-समूहः तेन उह्यमानं-नीयमानं, यत् शुष्कदारु-शुष्कं नीरसं दारु काष्ठमिति शुष्कदारु, कीदृशं तद् दारु ? स्थाने स्थाने विलग्मानं, यत्र तत्र स्थितिं कुर्वदिति, यथा केनचिद् गृहीत्वा धक्ष्यते-प्रक्षिप्यते तथा त्वमपि तादृशीं स्थितिमापद्यमानं, यत्र-तत्र रागं कुर्वाणं धक्ष्यसे=सन्तापं प्रापयिष्यसे इति भावः। अतएवोक्त—**अव्यवस्थितचित्तानां, प्रस्खलनं पदे पदे।**

अरे रतिकलहे। "रति-कलहे अरे इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते" इत्युदाहरणेन प्रदर्शयति वृत्तिकारः। **अरे मया समं मा कुरु उपहासम्**। ४७२ सू० रतिकलहे अरे इत्यव्यय प्रयुज्यते। **मया=मए** प्रक्रिया ५९८ सूत्रे ज्ञया। **समम्**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **कुरु**। डुकृञ् (कृ) करणे। कृ+हि। ९०५ सू० ऋकारस्य अरादेशे, ६६२ सू० हेः स्थाने सु इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे **करेसु** इति सिद्धम्। **उपहासम्**। उपहास+अम्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **उवहासं** इति सिद्धम्।

४७३—**हरे निर्लज्ज !**। ४७३ सू० क्षेपे-निन्दायां **हरे** इत्यव्ययपदं प्रयुक्तम्। **निर्लज्ज !**। निर्लज्ज+सि=**णिल्लज्ज** ! इत्यस्य प्रक्रिया ४७० सूत्रे द्रष्टव्या। **संभाषणे**। **हरे** इत्यव्ययपदं क्षेपा-दिष्वर्थेषु प्रयुज्यते। क्षेपस्योदाहरणं निर्दिष्टं, सम्प्रति वृत्तिकारेण संभाषणस्योदाहरणं प्रदर्श्यते—**हरे पुरुषाः !**। 'हरे' इत्यव्ययपदं संभाषणार्थे प्रयुज्यते। **पुरुषाः**। पुरुष+जस्। १११ सू० रोरुकारस्य इकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **पुरिसा** इति

---

*रे हृदय ! अल्पसरिज्जलभरोह्यमानं शुष्कदारु इव।
स्थाने-स्थाने विलग्मानं केनापि धक्ष्यसे ॥१॥

सिद्धम्। **रतिकलहे**। रतिकलहार्थकस्य हरे इत्यव्ययस्योदाहरणं यथा—**हरे बहुवल्लभ**!। 'हरे' इत्यव्ययपदं रतिकलहे प्रयुज्यते। **बहुवल्लभ**!। बह्वीनां वल्लभः-प्रियः। बहुवल्लभ+सि। १८७ सू० भकारस्य हकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **बहु-वल्लह**! इति सिद्धम्।

४७४—सूचनायाम्। सूचनार्थकस्य ओ इत्यव्ययस्योदाहरणं, यथा—**ओ अविनयतृप्तिमति**!। ओ इत्यव्ययपदं ४७४ सू० सूचनायां प्रयुज्यते। **अविनयतृप्तिमति**!। अविनयेन तृप्तिः, अविनयतृप्तिः, सा अस्याः अस्तीति अविनय-तृप्तिमती, तत्सम्बोधनम्। अविनयतृप्तिमर्त्+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ३४८ सू० पकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ४३० सू० मतोः स्थाने 'इल्ल' इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, स्त्रीत्वादाप्-प्रत्यये, सन्धौ **अविणय-तत्तिल्ला**+सि इति जाते, ५३० सू० आकारस्य एकारे, सेर्लोपे **अविणय-तत्तिल्ले**! इति सिद्धम्। **पश्चात्तापे**। पश्चात्तापार्थकस्य ओ इत्यव्ययस्योदाहरणं, यथा—**ओ न मया छाया एतावत्याम्**। पश्चात्तापे ओ इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **मया=मए** प्रक्रिया ५९८ सूत्रेऽवलोकनीया। **छाया**। छाया+सि। १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकार-लोपे **छाया** इति सिद्धम्। **एतावत्याम्**। एतद्+डावतु। ४२७ सू० डावतोः इत्तिअ इत्यादेशे, एतदो लुकि च, स्त्रीत्वादाप्-प्रत्यये, सन्धौ, ङि (इ) प्रत्यये, ५१८ सू० ङेः एत् (ए) इत्यादेशे **इत्तिआए** इति सिद्धम्। **विकल्पे तु उतादेशेनैव**। प्रस्तुत-सूत्रेण ओ इत्यव्ययपदं सूचना—पश्चात्तापार्थयोरेव प्रयुज्यते, न तु विकल्पार्थेऽपि, तर्हि विकल्पार्थकम् ओ इत्यव्ययपदं कथं साध्यमित्याशङ्क्य उत्तरयति वृत्तिकारः। विकल्पे-विकल्पार्थकं यद् ओ इति अव्ययपदं तदुतादेशेन ओकारेणैव सेत्स्यति। अयं भावः, १७२ सू० **उत** इत्यव्ययस्य यः ओकारादेशो जायते तेनैव कार्यसिद्धिर्भवति, अतस्तस्य विकल्पार्थ-कस्य ओ इत्यव्ययस्य प्रस्तुत-सूत्रेण न कोऽपि सम्बन्धो बोध्यः। यथा—**उत**। अव्ययपदमिदम्। १७२ सू० उत इत्यस्य ओकारादेशे **ओ** इति सिद्धम्। **विरचयामि**। विपूर्वकः रच्धातुः विरचने। विरच्+मिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० चकारलोपे, ६३० सू० मिवः मि इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे **विरएमि** इति सिद्धम्। **नभस्तले**। नभस्तल+ङि। १८७ सू० भकारस्य हकारे, समासे वाक्यापेक्षया अन्त्यत्वेन ११ सू० सकार-लोपे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, ५०० सू० ङेः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **नहयले** इति सिद्धम्।

४७५—सूचनादिषु। अव्वो इत्यव्ययपदं सूचना—दुःखादिष्वर्थेषु प्रयुज्यते इति भावः। **सूचना-याम्**। सूचनाया उदाहरणं प्रदीयते, यथा—**अव्वो दुष्करकारक**!। ४७५ सू० अव्वो इत्यव्ययपदं सूचनार्थे प्रयुज्यते। **दुष्करकारक**!। दुष्करस्य कार्यस्य कारकः-कर्ता तत्सम्बोधनम्। दुष्करकारक+सि। ३४८ सू० षकार-लोपे, ३६० सू० ककार-द्वित्वे, १७७ सू० असंयुक्त-ककार-द्वय-लोपे, १८० सू० उभयत्रापि यकार-श्रुतौ, सेर्लोपे-**दुक्कर-यारय**! इति सिद्धम्। **दुःखे**। दुःखस्योदाहरणं, यथा—**अव्वो**। प्रस्तुतसूत्रेण दुःखार्थे अव्वो इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **दलन्ति**। दल् दलने। दल्+अन्ति। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **दलन्ति** इति सिद्धम्। **हृदयम्**। हृदय+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकार-लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **हिययं** इति सिद्धम्। **संभाषणे**। संभाषणस्योदाहरणं, यथा—**अव्वो**। प्रस्तुतसूत्रेण संभाषणार्थे **अव्वो** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **किम्**। किम्+सिव्। ५६९ सू० सिव्-प्रत्ययेन सह किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति सिद्धम्। **इदम्**। इदम्+सिव्। ५६८ सू० सिवा सह इदमः इणम्

इत्यादेशे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **इणं** इति सिद्धम्। किम् इणं इत्यत्र अज्झीने परेण संयोज्ये **किमिणं** इति भवति। **अपराधविस्मयोः**। अपराध-विस्मयोदाहरणं प्रदीयते यथा—

"**अव्वो हरन्ति हृदयं तथापि न द्वेष्या भवन्ति युवतीनाम्।**
अव्वो किमपि रहस्यं जानन्ति धूर्ताः जनाभ्यधिकाः॥१॥"

भावार्थ :—जनाभ्यधिकाः=जनेभ्योऽभ्यधिकाः-विशिष्टाः, जनाभ्यधिकाः, धूर्त्ताः-मायाविनः, युवतीनां हृदयं हरन्ति, हृदयहरणरूपमपराधं कुर्वन्ति, तथापि ते द्वेष्याः=द्वेषार्हाः न भवन्ति। आश्चर्यमिदं यत्-किमपि-किञ्चिदत्र रहस्यं वर्तते तत्तु ते धूर्त्ता एव जानन्ति=अवगच्छन्ति। अस्मिन् श्लोके अपराधकरणेऽपि द्वेषाकरणेन हेतुना विस्मयो ध्वन्यते।

'**अव्वो**' इत्यव्ययपदम् अपराधार्थे प्रयुज्यते। **हरन्ति**। हृञ् हरणे। हृ+अन्ति। ९०५ सू० ऋकारस्य **अरादेशे**, ६३१ सू० अन्तेः 'न्ति' इत्यादेशे **हरन्ति** इति सिद्धम्। **हृदयम्**=हिअयं, प्रक्रिया ७ सूत्रे ज्ञेया। **तथा**=तह, प्रक्रिया ६७ सूत्रे ज्ञेया। **अपि**=वि, प्रक्रिया ६ सूत्रे तथा न=न इत्यस्य प्रक्रियाऽपि ६ सूत्रे ज्ञेया। **द्वेष्याः**। द्वेष्य+जस्। ३४८ सू० दकारस्य लोपे, ३४९ सू० यकारलोपे, २६० सू० षकारस्य स्थाने सकारे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० अकार-दीर्घे **वेसा** इति सिद्धम्। **भवन्ति**। भू सत्तायाम्। भू+अन्ति। ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हुव इत्यादेशे, ६३१ अन्तेः न्ति इत्यादेशे **हुवन्ति** इति सिद्धम्। **युवतीनाम्**। युवती+आम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ४९५ सू० आमः स्थाने णकारे **जुवईण** इति सिद्धम्। **विस्मयार्थे** अव्वो इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **किम्**=किं, प्रक्रिया २९ सूत्रे ज्ञेया। **अपि=पि** प्रक्रिया ४१ सूत्रे तथा—**रहस्यम्**=रहस्सं, इत्यस्य प्रक्रिया ४६९ सूत्रे ज्ञेया। **जानन्ति**। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा+अन्ति। ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने मुण इत्यादेशे, पूर्ववदेव अन्तेः न्ति इत्यादेशे **मुणन्ति** इति सिद्धम्। **धूर्ताः**। धूर्त+जस्। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्त्वे, ८४ सू० संयोगे ह्रस्वे, जसो लुकि, पूर्वाकारदीर्घे **धुत्ता** इति सिद्धम्। **जनाभ्यधिकाः**। जनाभ्यधिक+जस्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० भकार-द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १७७ सू० ककार लोपे, पूर्ववदेव जसो लुकि, पूर्वाकारदीर्घे **जणब्भहिआ** इति सिद्धम्। **आनन्दादरभयेषु**। आनन्दादरभयानामुदाहरणं, यथा—

अव्वो सुप्रभातमिदम् अव्वो अद्य मम सफलं जीवितम्।
अव्वो अतीते त्वयि केवलं यदि सा न खेदिष्यति॥१॥

भावार्थ :—सुप्रभातं-शोभनं प्रभातं, सुप्रभातमिदमिति कथनेन कस्याश्चिद् व्यक्तेर्हृदयस्य आनन्दः, **अव्वो** इत्यव्ययेन अभिव्यज्यते। अद्य मम जीवितं-जीवनं सफलं संजातमिति कमपि श्रद्धास्पदमागन्तुकं पुरुषं प्रति **अव्वो** इत्यव्ययेनादरः-सम्मानः संसूचितः। यदि सा केवलं त्वयि अतीते-गते न खेदिष्यति। अयं भावः-त्वयि गते साऽवश्यमेव खेदमनुभविष्यति। इत्यत्र **अव्वो** इत्यव्ययेन भयं ध्वन्यते। केनचित् कामप्युद्दिश्य भयं प्रदर्श्यते यत्त्वयि गते सा—त्वय्यनुरक्ताऽवश्यमेव खिन्ना भविष्यतीति भावः। प्रस्तुतसूत्रेण **अव्वो** इत्यव्ययपदमानन्दार्थे प्रयुज्यते। **सुप्रभातम्**। सुप्रभात+सि। ३५० सू० रेफ-लोपे, १८७ सू० भकारस्य स्थाने हकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सुपहायं** इति सिद्धम्। **इदम्**। इदम्+सि, पूर्ववदेव **इणं** इति भवति। सुपहायम्+इणं, अज्झीने परेण संयोज्ये **सुपहायमिणं** इति भवति। आदरार्थे **अव्वो** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **अद्य**। अव्ययपदमिदम्। २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्त्वे

अज्ज इति सिद्धम्। **मम**। अस्मद्+ङस्। ६०२ सू० ङसा सह अस्मदः स्थाने अम्ह इत्यादेशे **अम्ह** इति सिद्धम्। अज्ज+अम्ह इत्यत्र ४० सू० अम्हस्य अकार-लोपे **अज्जम्मह** इति भवति। **सफलम्**। सफलम+सि। ३७० सू० फकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-फकारस्य पकारे, पूर्ववदेव **सप्फलं** इति सिद्धम्। **जीवितम्**। जीवित+सि। २७१ सू० सस्वर-वकारस्य लोपे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **जीअं** इति सिद्धम्। **अव्वो** इत्यव्ययपदं भये प्रयुज्यते। **अतीते**। अतीत+ङि। १७७ सू० तकारद्वय-लोपे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **अइअम्मि** इति सिद्धम्। **त्वयि**। युष्मद्+ङि। ५९० स० ङिना सह युष्मदः स्थाने तुमे इत्यादेशे **तुमे** इति सिद्धम्। **केवलम्**। अव्ययपदमिदम्। केवल+सि+। ४५८ सू० केवलार्थे णवरं इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। अव्ययत्वात्सेर्लोपे **णवरं** इति भवति। **यदि**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० जकारस्य-लोपे **जइ** इति सिद्धम्। **सा**। तद्+सि=सा, प्रक्रिया ३३ सूत्रे ज्ञेया। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव प्राकृतभाषायां प्रयुज्यते। **खेदिष्यति**। खिद् खेदे। खिद्+स्यति। ८०३ सू० खिद्-धातोः जूर इत्यादेशे, ६५५ सू० प्रत्ययादौ हि इत्यस्यागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इचादेशे **जूरिहिइ** इति सिद्धम्। **खेदे**। खेदस्योदाहरणम्। यथा—**अव्वो** न **यामि क्षेत्रम्**। **अव्वो**। खेदार्थे **अव्वो** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते **न** इत्यव्ययपदं संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। **यामि**। या प्रापणे। या+मिव्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे **जामि** इति सिद्धम्। **क्षेत्रम्**। क्षेत्र+अम्। २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **छेत्तं** इति सिद्धम्। **विषादे**। विषादार्थकस्य अव्वो इत्यव्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः—

अव्वो नाशयन्ति धृतिं, पुलकं वर्धयन्ति, ददति रणरणकम्।
इदानीं तस्यैव गुणास्ते एव, अव्वो कथन्नु एतद् ॥१॥

भावार्थ :—कस्याचित् प्रोषितभर्तृकायाः पतिगुणस्मृत्या विषीदन्त्याः इयमुक्तिः। सुखकराः मे वल्लभगुणाः, कथमिदानीम्मे धैर्यं विधुरयन्ति, रोमाञ्चं समेधयन्ति, रण-रणकं=कामौत्सुक्यं च जनयन्ति। हितावहा अपि अमी गुणाः, पतिवलितायाः-पतिवियुक्तायाः मम दुःखजनकाः कथमभूवन्निति काचिन्नारी आत्मनो विषादं व्यनक्ति। अयं भावः-प्रतीपायां परिस्थितौ प्रतीपे वानेहसि सुखसमर्थका अपि गुणाः दुःखमेवार्पयन्ति, सुखसाधनमपि दुःखजनकं जायते। यथा हेमन्ते ये रविरश्मयः शर्मदाः संभवन्ति, ग्रीष्मे चोत्तपन्ति ते एव।

अव्वो। अव्ययपदमिदं प्रस्तुत-सूत्रेण विषादार्थे प्रयुज्यते। **नाशयन्ति**। नश् नाशे। नश्+णिग्+अन्ति। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ६३८ सू० णिगः एकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, १० सू० अकारस्य लोपे, ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **नासेन्ति** इति सिद्धम्। **धृतिम्**। धृति+अम्। ४०२ सू० धृतेः स्थाने दिहि इत्यादेशे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **दिहिं** इति सिद्धम्। **पुलकम्**। पुलक+अम्। १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सूत्रेण यकारश्रुतौ, पूर्ववदेव **पुलयं** इति सिद्धम्। **वर्धयन्ति**। वृध् वृद्धौ। वृध्+णिग्+अन्ति। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ९१० सू० अकारागमे, ८९१ सू० धकारस्य ढकारे, ३६० सू० ढकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारे, वड्ढ+णिग्+अन्ति इति स्थिते, णिगः एकारे, पूर्ववदेव—**वड्ढेन्ति** इति सिद्धम्। **ददति**। दा दाने। दा+अन्ति। अन्तेः 'न्ति' इत्यादेशे, ९०९ सू० आकारस्य एकारे **देन्ति** इति सिद्धम्। **रणरणकम्**। रणरणक+अम्। **रणरणयं** पुलयंवत् साध्यम्। **इदानीम्**।

अव्ययपदमिदम् । ४०५ सू० इदानीमः एण्हिं इत्यादेशे **एण्हिं** इति सिद्धम् । **तस्स** । तद्+ङस् । ११ सू० दकारस्य लोपे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **तस्स** इति सिद्धम् । **एव** । अव्ययपदमिदम् । १७७ सू० वकारलोपे **एअ** इति सिद्धम् । **तस्स+एअ** इत्यत्र १० सू० अकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **तस्सेअ** इति भवति । **गुणाः** । गुण+जस । ४९३ सू० जसो लोपे, ५०१ सू० अकारदीर्घे **गुणा** इति सिद्धम् । **एव**=च्चिअ इत्यस्य प्रक्रिया ८ सूत्रे ज्ञेया । **अव्वो** इत्यव्ययपदं विषादार्थे प्रयुज्यते । **कथम्** । अव्ययपदमिदम् । १८७ सू० थकारस्य हकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कहं** इति सिद्धम् । **नु** । अव्ययपदमिदम् ।२२९ सू० नकारस्य णकारे **णु** इति सिद्धम् । **एतद्**—एअं, प्रक्रिया २०९ सूत्रे ज्ञेया । **पश्चात्तापे** । पश्चात्तापस्योदाहरणं—यथा—"**अव्वो तथा तेन कृताऽहं यथा कस्य कथयामि ?**" । भावार्थ :—तेन पुरुषेणाहं तथा कृता, तादृशीं दुरवस्थां प्रापिता, यथा कस्याग्रे कथयामि ? कस्याप्यग्रे न वक्तुं शक्या । परवशंप्राप्तायाः कस्याश्चित् कुलीनायाः उक्तिरियम् । अत्र अव्वो, इत्यव्ययपदेन पश्चात्तापो व्यज्यते । प्रस्तुतसूत्रेण पश्चात्तापे **अव्वो** इत्यव्ययस्य प्रयोगो जायते । **तथा**—तह, प्रक्रिया ६७ सूत्रे ज्ञेया । **तेन**—तेण प्रक्रिया ४५७ सू० ज्ञेया । **कृता** । कृता+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **कया** इति सिद्धम् । **अहं**=अहयं, प्रक्रिया ४७० सूत्रे ज्ञेया । **यथा**=जह, इत्यस्य प्रक्रिया ६७ सूत्रे ज्ञेया । **कस्य** । किम+ङस् । ५६० सू० किमः क इत्यादेशे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **कस्स** इति सिद्धम् । **कथयामि** । कथ् कथने । कथ +णिग्+मिव् । ६७३ सू० कथेः साह इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः एकारे, १० सू० स्वरलोपे, ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे **साहेमि** इति सिद्धम् ।

४७६—अयि देवर ! किं न प्रेक्षसे । **अयि** । ४७६ सू० संभावनायाम् **अइ** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **देवर** ! । देवर+सि । १४६ सू० एकारस्य इकारे, १७७ सू० वकार-लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ स० सकारलोपे—**दिअर** ! इति सिद्धम् । **किम्** । किम्+सिव् । ५६९ सू० सिवा सह किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति सिद्धम् । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते । **प्रेक्षसे** । प्रपूर्वकः ईक्ष्-धातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+से । ३५० सू० रेफलोपे, २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकार-द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२९ सू० से इत्यस्य स्थाने सि इत्यादेशे **पेच्छसि** इति सिद्धम् ।

४७७—निश्चयं ददामि । **निश्चयम्** । निश्चय+अम् । ४७७ सू० निश्चयार्थे वणे इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । अव्ययत्वादेव अमो लोपे **वणे** इति सिद्धम् । **ददामि** । दा दाने । दा+मिव् । ९०९ सू० आकारस्य एकारे, ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे **देमि** इति सिद्धम् । **विकल्पे** । विकल्पस्योदाहरणं यथा—**भवति**—होइ, इत्यस्य प्रक्रिया ९ सूत्रे ज्ञेया । **वा** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुत-सूत्रेण विकल्पार्थे **वणे** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते । **अनुकम्प्ये** । अनुकम्प्यस्योदाहरणं यथा—**दासोऽनुकम्प्यो न मुच्यते** । दासः । दास+सि । ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **दासो** इति सिद्धम् । **अनुकम्प्यः** । अनुकम्पितुं योग्यः । अनुकम्प्य+सि । प्रस्तुत—सूत्रेण अनुकम्प्यार्थे 'वणे' इत्यव्ययपदं ˎयुज्यते, अव्ययत्वादेव सेर्लोपे **वणे** इति भवति । **मुच्यते** । मुच्लृ मोचने । संस्कृतनियमेन मुच्+क्य्+ते=मुच्यते इति जाते ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० चकार-द्वित्त्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **मुच्चइ** इति सिद्धम् । **संभावने** । संभावनस्योदाहरणं यथा—**नास्ति संभावना यन्न ददाति विधिपरिणामः** । न इत्यव्ययपदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते । **अस्ति** । अस्+

तिव्। ६३७ सू० तिवा सह अस्धातोः अत्थि इत्यादेशे **अत्थि** इति सिद्धम्। न+अत्थि, इत्यत्र १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **नत्थि** इति भवति। **संभावना**। प्रस्तुतसूत्रेण संभावनार्थे **वणे** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **यद्**=जं, प्रक्रिया २४ सूत्रे ज्ञेया। **ददाति**। दा+तिव्। ९०९ सू० आकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **देइ** इति सिद्धम्। **विधिपरिणामः**। विधिपरिणाम+सि। १८७ सू० धकारस्य हकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **विहिपरिणामो** इति सिद्धम्।

४७८—**किंस्वित्सूरः**। किंस्वित्। अव्ययपदमिदम्। ४७८ सू० विमर्श-विचारे मणे इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **सूरः**=सूरो, प्रक्रिया ३३५ सूत्रे ज्ञेया। **अन्ये मन्ये इत्यर्थमपि**। अन्ये आचार्याः 'मन्ये' इत्यस्मिन्नर्थेऽपि '**मणे**' इत्यव्ययस्य प्रयोगं कुर्वन्ति। तेषां मते—**मणे सूरो** इतिपदद्वयस्य "**अयं सूर्यः इति मन्ये-स्वीकरोमि**" अर्थोऽयं बोध्यः।

४७९—**आश्चर्यं कथं पार्यते**। **आश्चर्यमित्यर्थे** ४७९ सू० **अम्मो** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **कथम्**=कह, प्रक्रिया २९ सूत्रे ज्ञेया। **पार्यते**। पार् पारगमने। पार्+क्य+ते। ६४९ सू० क्यस्य इज्जादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **पारिज्जइ** इति सिद्धम्।

४८०—**विशदं विकसन्ति स्वयं कमलसरांसि**। **विशदम्**। विशद+अम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **विसयं** इति सिद्धम्। **विकसन्ति**। विकस् विकासे। विकस्+अन्ति। १७७ सू० ककार-लोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **विअसन्ति** इति सिद्धम्। **स्वयम्**। अव्ययपदमिदम्। ४८० सू० स्वयमित्यर्थे वैकल्पिके अप्पणो इत्यव्यये प्रयुक्त **अप्पणो** इति सिद्धम्। **कमलसरांसि**। कमलयुक्तानि सरांसि। कमलसरस्+जस्। ३२ सू० पुंस्त्वे, ११ सू० सकारलोपे, ५०१ सू० अकारदीर्घे, ४९३ सू० जसो लोपे **कमलसरा** इति सिद्धम्। **पक्षे**। यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण **अप्पणो** इत्यादेशाभावस्तत्र **स्वयं चैव जानासि करणीयम्**। **स्वयम्**। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र ३५० सू० वकार-लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सयं** इति भवति। **च एव**=अव्ययपदद्वयं ४५५ सूत्रेण अवधारणे (चैव इत्यर्थे) **चेअ** इति प्रयुज्यते। **जानासि**। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा+सिव्। ६७८ सू० ज्ञाधातोः मुण इत्यादेशे, ६२९ सू० सिवः सि इत्यादेशे **मुणसि** इति सिद्धम्। **करणीयम्**=करणिज्जं, प्रक्रिया २४८ सूत्रे ज्ञेया।

४८१—**प्रत्येकम्**। अव्ययपदमिदम्। ४८१ सू० प्रत्येकार्थे विकल्पेन **पाडिक्कं, पाडिएक्कं**, इत्यव्ययपदे प्रयुज्येते, प्रयोगाभावे ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० ककारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पत्तेअं** इति भवति।

४८२—**'उअ'** इत्यव्ययस्योदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण यथा—

पश्य निश्चलनिष्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका।
निर्मल-मरकत-भाजन-प्रतिष्ठिता शंखशुक्तिरिव ॥१॥

भावार्थ :—बिसिनीपत्रे बिसिन्याः कमलिन्याः (भिस इति भाषायाम्) पत्रं, तस्मिन् निश्चल-निष्पन्दा-निश्चला-स्थिरा चासौ निष्पन्दा-स्पन्दनरहिता निश्चलनिष्पन्दा, बलाका-पक्षिविशेषः, राजते-शोभते, तां त्वं पश्य=अवलोकय इत्यर्थः। सा हि निर्मल-मरकत-भाजन-प्रतिष्ठिता, मरकतस्य हरिद्वर्णमणिविशेषस्य भाजनं-पात्रं मरकतभाजनम्। निर्मलं च तद् मरकतभाजनं निर्मलमरकत-भाजनम् तस्मिन् प्रतिष्ठिता=अवस्थिता निर्मलमरकतभाजनप्रतिष्ठिता, शंखशुक्तिः-शंखरूपा शुक्तिः शङ्खशुक्तिः इव प्रतिभाति। अयं भावः—शंखशुक्तिः स्वच्छमरकतभाजनस्थिता यादृशीं शोभां विन्दते-प्राप्नोति तथैव बिसिनीपत्रे बलाकाऽपि सुशोभते, इति कविना उत्प्रेक्ष्यते।

पश्य। दृशिर् दर्शने। दृश्+हि। ४८२ सू० पश्यार्थे दृश+हि, इत्यस्य समस्तस्य स्थाने **'उअ'** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **निश्चलनिष्पन्दा**। निश्चलनिष्पन्दा+सि। ३४८ सू० शकारस्य लोपे, ३६० सू० चकारस्य द्वित्वे, ३२४ सू० ष्पस्य फकारे, ३६० सू० फकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-फकारस्य पकारे, सेर्लोपे **निच्चल-निप्फन्दा** इति सिद्धम्। **बिसिनीपत्रे**। बिसिनीपत्र+ङि। २३८ सू० बकारस्य भकारः, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, तकारस्य द्वित्वे, ५०० सू० ङेः स्थाने 'म्मि' इत्यादेशे, **बहुलाधिकारात्** २३ सूत्रे क्वचित् अनन्त्यस्यापि मकारस्यानुस्वारे **भिसिणी-पत्तंमि** इति सिद्धम्। **राजते**। राजृ धातुः दीप्तौ। राज्+ते। ७७१ सू० राजेः स्थाने रेह इत्यादेशे, ६२८ सू० 'ते' इत्यस्य इचादेशे **रेहइ** इति सिद्धम्। **बलाका**। बलाका+सि। १७७ सू० ककारस्य लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे—**बलाआ** इति सिद्धम्। **निर्मल-मरकत-भाजन-प्रतिष्ठिता**। निर्मलमरकतभाजनप्रतिष्ठिता+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, १८२ सू० ककारस्य गकारे, १७७ सू० तकारस्य जकारस्य च लोपे, १८० सू० उभयत्रापि यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३८ सू० 'प्रति' इत्यस्य स्थाने 'परि' इत्यादेशे, ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ठकारस्य द्वित्वे, पूर्वठकारस्य टकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्लोपे **निम्मल-मरगय-भायण-परि-ट्ठिआ** इति सिद्धम्। **शंखशुक्तिः**। शंखशुक्ति+सि। २६० सू० शकारद्वयस्य सकारद्वये, ३४८ सू० ककार-लोपे, तकारद्वित्वे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, सेर्लोपे **संखसुत्ती** इति सिद्धम्। **इव**। अव्ययपदमिदम्। ४५३ सू० इवार्थे व्व इत्यव्ययपद प्रयुज्यते। **संखसुत्ती व्व** इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **संखसुत्ति व्व** इति भवति। **एते पुलग्रादयः**। यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्यभावस्तत्र ८५२ सू० दृश्धातोः स्थाने **पुलअ, निग्र** इत्यादय आदेशा अपि भवन्तीति भावः।

४८३—इतरथा निःसामान्यैः। **इतरथा**। अव्ययपदमिदम्। ४८३ सूत्रेण इतरथा इत्यर्थे **इहरा** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **निः-सामान्यैः**। निर्गतं सामान्यं येभ्यस्तैः। निर्-सामान्य+भिस्। इत्यत्र वाक्यापेक्षया **समासे**ऽन्त्यत्वात् १३ सू० रेफ-लोपे, ९३ सू० इकारस्य ईकारे, ३४९ सू० यकार-लोपे, ३६० सू० नकार-द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९६ सू० भिसः हिँ इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **नीसामन्नेहिँ** इति सिद्धम्। **पक्षे**। यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावस्तत्र **इतरथा** इत्य-व्ययस्य १७७ सू० तकारलोपे, १८७ सू० थकारस्य हकारे **इग्ररहा** इति भवति।

४८४—झगित्यर्थे, सम्प्रत्यर्थे च ४८४ सू० **एक्कसरिअं** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **एक्कसरिअं** इत्यस्य झटिति अथवा साम्प्रतमित्यर्थः।

४८५—मुधार्थे ४८५ सू० **मोरउल्ला** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **मोरउल्ला** व्यर्थमित्यर्थः।

४८६—अर्धमीषद् वा विकसितम्। ४८६ सू० अर्धार्थे, ईषदर्थे च **दर** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **विकसितम्**। विकसित+सि। १७७ सू० ककारस्य तकारस्य च लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **विअसिअं** इति भवति।

४८७—किं धूनासि। **किम्**। अव्ययपदमिदम्। ४८७ सू० प्रश्नार्थे **किणो** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **धूनासि**। धूञ् कम्पने। धू+सिव्। ७३० सू० धूधातोः स्थाने धुव इत्यादेशे, ६२९ सू० सिवः स्थाने सि इत्यादेशे **धुवसि** इति सिद्धम्।

४८८—न पुनः अक्षिणो। **न** इत्यव्ययपदमिदं संस्कृततुल्यमेव प्राकृते प्रयुज्यते। **पुनर्**। अव्यय-पदमिदम्। १७७ सू० पकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ११ सू० रेफलोपे, ६५ सू० आदेर-कारस्य आकारे **उणा** इति सिद्धम्। **अक्षिणो=अच्छीइं** इत्यस्य प्रक्रिया ३३ सूत्रेऽवलोकनीया। "**न**

उणा अच्छीइं" । इत्यत्र पादपूर्त्यर्थे ४८८ सू० 'इ' इत्यव्ययस्य प्रयोगे "**न उणा इ अच्छीइं**" इति भवति । **अनुकूलम्** । अनुकूल+अम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अणुकूलं** इति भवति । **वक्तुम्** । वच् व्यक्तायां वाचि । वच्+तुमुन् (तुम्) । ८८२ सू० वच्-धातोः वोत् इत्यादेशे, २३ सू० मकारानुस्वारे **वोत्तुं** इति भवति । प्रस्तुतसूत्रेण पादपूर्त्यर्थे **जे** इत्यव्ययस्य प्रयोगे "**अणुकूलं वोत्तुं जे**" इति भवति । **गृह्णाति** । ग्रह् उपादाने । ग्रह्+तिव् । ८८० सू० ग्रह्-धातोः गेण्ह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **गेण्हइ** इति सिद्धम् । **कलमगोपी** । कलमानां= धान्य-विशेषाणां गोपी-रक्षिका । कलम--गोपी+सि । २३१ सू० पकारस्य वकारे, सेर्लोपे **कलमगोवी** इति सिद्धम् । अत्र प्रस्तुतसूत्रेण 'र' इत्यव्ययपदस्य प्रयोगं विधाय—"**गेण्हइ र कलमगोवी**" **एवं** पाद-पूर्तिः कृता । **अहो, हंहो** । अहो, हंहो, हेहो इत्यादयः समस्ता अव्ययशब्दाः संस्कृतसममेव प्राकृत-भाषायामपि प्रयुज्यन्ते । यथा—**१—अहो**=आश्चर्ये, शोके, स्पृहायां, सम्बोधने च । **२—हंहो**=**दर्पे, दम्भे,** प्रश्ने च, **३—हे**=सम्बोधने, आह्वाने, असूयायाञ्च, **४—हाहा**=दुःखार्त्तलोकवचने, चीत्कारे च, **५—नाम**=अन्यबोधाय कृते पदार्थानां संज्ञायाम्, पादपूरके पदे, संभावनायाञ्च, **६—अहह**= सम्बोधने, आश्चर्ये, खेदे, प्रकर्षे वा, **७—ही**=कन्दर्पातिशयद्योतने, एवकारार्थे वा, **८—सि**=पाद-पूरके पदे, **९—अयि**=सम्बोधने, **१०—अहाह**=खेदे, आश्चर्ये, क्लेषे, प्रकर्षे वा, **११—अरिरिहो**= पादपूरणे । इत्येतानि अव्ययपदानि संस्कृतभाषातुल्यमेव प्राकृते ज्ञेयानि ।

४८९—नियतार्थवृत्तयः । नियताश्चामी अर्थाः, नियतार्थाः, तेषु वृत्तिः-वर्तनं येषां ते नियतार्थवृत्तयः । प्यादयोऽव्ययाः नियतार्थवृत्तयः प्राकृत-भाषायां प्रयुज्यन्ते । यथा—**पि** । अव्ययपदमिदम् । एवमेव **वि** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतभाषायां **पि,** वि इत्यव्ययौ यथा अप्यर्थे नियतौ एवमेव प्राकृत-भाषायामप्येतौ अप्यर्थे नियतौ ज्ञेयौ । अतएव एतादृशा अव्ययाः नियतार्थवृत्तयः कथ्यन्ते ।

इत्याचार्य—श्री-हेमचन्द्र-सूरिविरचितायां सिद्धहेम—चन्द्राभिधान-स्वोपज्ञ-शब्दानुशासन-वृत्तौ अष्टमस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः=पूर्णतां गतः । एतेषां समस्तपदानां व्याख्या प्रथम-पादान्ते कृता वर्तते, तत्र खलु प्रथम—पादस्य समाप्तिः संसूचिता अत्र च द्वितीय-पादस्य । इदमेवान्तरमन्यत्सर्वं समानमेव ज्ञेयम् । द्वितीयपादान्ते आचार्य—श्री हेमचन्द्राः हैमशब्दानुशासनस्य प्रेरकस्य श्री सिद्धराज-जयसिंहदेव—नरेशस्य प्रशस्ति-व्याजेन क्षमावीरत्वं प्रतिपादयन्ति । मूले पठितस्य प्रशस्ति-रूप-श्लोकस्यायं भावः—हे भुवनैकवीर ! एकश्चासौ वीरः, एकवीरः, भुवने-ससारे एकवीरः, भुवनैकवीरः, श्री सिद्धराज-जयसिंहदेव-नरेशः, तत्सम्बोधनम्, संसारे विख्यातशूरवीर ! इत्यर्थः । भवद्भुजस्य-भवतां बाहोः, कीदृशस्य भुजस्य ? अवामस्य-वामेतरस्य, दक्षिणस्य, पुनः कीदृशस्य ? द्विषत्पुर-क्षोद-विनोदहेतोः, द्विषदां-रिपूणां पुराणि-नगराणि, तेषां क्षोदः=धूलिसात्-करण, तत्र यो विनोदः-विलासः, स एव हेतुः प्रयोजन यस्य स द्विषत्पुर-क्षोद—विनोदहेतुः, तस्य भुजस्येति भावः। अयं विशेषः=वैलक्षण्यं यद् भवात्-भवमुत्पत्तिमारभ्य परं-शत्रुं कामम्-अत्यर्थं न-नहि, अपाकरोति-दूरीकरोति, शत्रुमपि मूलोच्छेदेन न नाशयति, औदार्य्येण, दयालुत्वेन चेत्यर्थः । अयं भावः-रुधिरेण रक्तं वस्त्रं यथा रुधिरेण प्रक्षालयितुं न शक्यम् । एवमेव वैरेण वैरमप्यपाकर्तुं न शक्यम् । सत्यमेतदवबुध्य सिद्धराजेन महीपालेनाङ्गीकृतः क्षमा-प्रधानो जैन-सिद्धान्तः। अमुं सिद्धान्तमवलम्ब्यैव **स** शत्रून् पराजित्यापि तानक्षमत् । प्रत्युत तैः सह मैत्रीं संस्थाप्य विरोधमत्यजत् । आचार्य-श्री-हेमचन्द्रेण सिद्धराजस्य भूपतेः प्रशस्तौ इयमेव सन्नीतिः समर्थिताऽस्ति। यद् द्विषदुन्मूलनकरणशक्तिमन्तोऽपि ये न वैरिणः समूलमुत्सादयन्ति किन्तु तैः साकं सख्यं विधाय तान् निज-राज्यासने उपवेशयन्ति, ते एव

शक्तिशालिनः, ते एव क्षमाशीलाः मन्तव्याः। न त्वसत्यां शक्त्यां ये क्षमन्ते त इति।

***कंचित् कंचित्तापं शनकैः शनकैर्विवर्धयन्मनसः।**
जातो द्वितीय-यामस्तदिव विरामो द्वितीयस्य॥१॥

बालमनोरमा-समाख्यायां प्राकृत-व्याकरण—व्याख्यारूपायां संस्कृत-टीकायाम्—

❁ सम्पूर्णः द्वितीयः पादः ❁

★ अथ अव्यय-प्रकरण ★

व्याकरण शास्त्र का वह शब्द जिस का सब लिङ्गों और सब विभक्तियों एवं सब वचनों में समान रूप से प्रयोग होता है उसे अव्यय कहते हैं। सुबन्त पद दो प्रकार के होते हैं। एक विकारी और दूसरे अविकारी। जिन पदों में सुप् प्रत्यय की उत्पत्ति होने पर विकार होता है वे विकारी और जिन में सुप् प्रत्यय आकर लोप को प्राप्त हो जाता है, कोई विकार नहीं होने पाता, वे पद अविकारी कहलाते हैं। अविकारी पदों में लिङ्ग, संख्या और कारक के कारण कोई विकार—अन्तर नहीं पड़ता तथा लिङ्ग-बोधक संख्या एवं कारकबोधक प्रत्ययों का लोप भी हो जाता है। इन अविकारी शब्दों को ही अव्यय कहा जाता है। स्वर, अन्तर् और प्रातर् आदि शब्दों के रूप में तथा च, वा, ह, अ, ह आदि निपातों के रूप में जैसे संस्कृत भाषा में अनेकानेक अव्ययपद देखने में आते हैं वैसे ही प्राकृत-भाषा में भी अव्ययपदों की उपलब्धि होती है। प्राकृत-भाषा में संस्कृत भाषा की भांति जो जो अव्यय-संज्ञक शब्द पाए जाते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में उन्हीं के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जाएगा।

४४६—यह **अधिकार सूत्र** है। इस सूत्र से आगे जिन-शब्दों का निरूपण किया जायगा, इस द्वितीय पाद की समाप्ति तक उन सब की अव्यय-संज्ञा जाननी चाहिए। भाव यह है कि इस पाद के अन्त तक प्राकृत-साहित्य में उपलब्ध अव्ययों का निरूपण किया जायगा।

४४७—'**तं**' यह अव्ययपद है, और यह वाक्य के **उपन्यास** (उपक्रम-आरंभ) में प्रयुक्त होता है। इस का अपना कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं होता। इसीलिए इसे वाक्यालंकारार्थक (वाक्य की शोभा का नैमित्तिक) स्वीकार किया जाता है। प्राकृत भाषा की अपनी यह पद्धति रही है कि वहां वाक्य के आरंभ में यह अव्ययपद प्रयुक्त होता है। जैसे—**त्रिदश-बन्दि-मोक्षम्=तं तिअस-बन्दिमोक्खं** (देवताओं के कैदी की मुक्ति को), यहां वाक्य के आरंभ में '**तं**' इस अव्यय पद का प्रयोग किया गया है।

४४८—'**आम**' यह अव्ययपद **अभ्युपगम** (स्वीकार) इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—**आम बहला वनाली**=आम बहला वणोली (हां, यह सघन वनपंक्ति है) यहां स्वीकृति-सचक आम इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४४६—'**णवि**' यह अव्ययपद '**विपरीतता**' इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—**वैपरीत्यं हा वने**=णवि हा वणे (खेद है, वन में आगए, अर्थात् जहाँ पहुंचना चाहिए था, वहां न पहुंच कर वन में पहुंच गए।) यहां विपरीता अर्थ के बोधक 'णवि' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४५०—'**पुणरुत्त**' यह अव्ययपद "—**कृतकार्य को पुनः करना**" इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—**अयि सुप्यते पांसुलि ! निस्सहैरङ्गैः पुनरपि**=अइ सुप्पइ पंसुलि ! णीसहेहिं अङ्गेहिँ पुणरुत्तं

*यथा सूर्यगगनमध्यवर्तित्वात् कंचित् कंचित् मनसस्तापमुष्णत्वजनितखेदं विवर्धयन् द्वितीयो यामो भवति, तस्येव **द्वितीयपादस्य विरामः-अन्तोऽपि सञ्जातः।**

(हे कुलटे ! असहनीय (जिन को देख कर कभी मन पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता) अङ्गों से फिर भी सोती है ?) यहां पर कृत कार्य को पुनः करना इस **अर्थ में पुणरुत्तं** इस अव्यय पद का प्रयोग किया गया है। भाव यह है कि असहनीय अंगों से सोरही किसी कुलटा नारी को समझा गया था कि कामोत्तेजक पद्धति से तुझे नहीं सोना चाहिए परन्तु वह नहीं मानो, और जैसे पहले सोती थी, उसी तरह से फिर सोने लग रही थी, इसी लिए किसी ने उसे भर्त्सना करते हुए कहा है।

४५१—**'हन्दि'** यह अव्ययपद विषाद, विकल्प, पश्चात्ताप, निश्चय और सत्य इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। जैसे —

हन्दि चरणे नतः स न मानितः हन्दि भविष्यति इदानीम् ।
हन्दि नाभूद् भणनशीला, हन्दि सा स्विद्यते तव कार्यं ॥१॥

अर्थात्—यहां पर **'हन्दि'** इस अव्ययपद के सूत्रोक्त चारों अर्थ उपलब्ध हो रहे हैं। जैसे—नायिका की सखी उसके नायक से कह रही है कि नायक ने चरणों में नमस्कार किया, तथापि नायिका ने उस का सन्मान नहीं किया, इस बात का मुझे विषाद है, दुःख है। परन्तु नायक के वियोग में नायिका अब जीवित होगी या नहीं ? यह सन्देह है, यह संशय है। इस तरह मेरा मन विकल्पना करता है। नायिका—सखी की बात सुन कर नायक बोला कि नायिका वाचाल भी नहीं थी, तथापि मैंने उसे क्यों रुष्ट कर दिया ? इस बात का मुझे भी **पश्चात्ताप** है। नायक के मन को शान्त करती हुई नायिका-सखी बोली कि भले ही आपने मेरी सखी को रुष्ट कर दिया है, तथापि तुम्हारी कार्य-सिद्धि के लिए मेरी सखी कोई कसर नहीं छोड़ेगी। यह सवा सोलह सत्य है। श्लोक के अन्त में 'हन्दि' यह अव्ययपद **'सत्यम्'** इस अर्थ का बोधक है।

४५२—**हन्द और हन्दि,** ये दोनों अव्यय पद **'गृहाण'** (ग्रहण करो)" इस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—**गृहाण प्रलोकस्व इदम्**=हन्द पलोएसु इमं **अथवा**—हन्दि पलोएसु इमं (यह ग्रहण करो, और देखो) यहां ग्रहण करो, इस अर्थ में **हन्द हन्दि** इन अव्ययपदों का प्रयोग किया गया है।

४५३—**मिव, पिव, विव, व्व, व और विअ** ये अव्ययसंज्ञकपद **इव** (तरह), इस अर्थ में विकल्प से प्रयुक्त होते हैं। जैसे—१—**कुमुदम् इव**=कुमुअं मिव (चन्द्रविकाशी कमल की तरह), २—**चन्दनमिव**=चन्दणं पिव (चन्दन की तरह), ३—**हंसः इव**=हंसो विव (हंस के समान), ४—**सागरः इव**=साअरो व्व (सागर के तुल्य), ५—**क्षीरोदः इव**=खीरोओ व्व (क्षीर-सागर की भाँति), ६—**शेषस्य निर्मोकः इव**=सेसस्स व निम्मोओ (शेषनाग की कंचुली के समान), ७—**कमलमिव**=कमलं विअ (कमल की तरह) यहां इवार्थक मिव आदि अव्ययों का विकल्प से प्रयोग किया गया है। जहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, वहां पर इव का इव ही रह जाता है। जैसे—१—**नीलोत्पल-माला इव**=नीलुप्पल-माला इव (नीलोत्पल नामक कमलों की माला के तुल्य) यहां पर इव को मिव आदि कोई आदेश नहीं किया गया।

४५४—**लक्ष्य-लक्षण** भाव में **जेण** और **तेण** इन अव्ययपदों का प्रयोग होता है। शब्द की वह शक्ति जिस से उस का अर्थ लक्षित=प्रकट हो, उसे लक्षण कहते हैं, शब्दशक्ति से अवगत तत्त्व लक्ष्य कहलाता है। भाव यह है कि किसी एक वस्तु को देखकर या अवगत करके उस से सम्बन्धित अन्य वस्तु की कल्पना करना, इस अर्थ में **जेण** और **तेण** इन अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे—१—**भ्रमरुतं येन कमलवनम्**=भमर-रुअं जेण कमलवणं (भ्रमरों का शब्द हो रहा है, इससे पता चलता है कि यहां कमलों का वन है), २—**भ्रमररुतं तेन कमलवनम्**=भमर-रुअं तेण कमलवणं

(भ्रमर-ध्वनि है, अतः यहां पर कमलवन अवश्य है) यहां पर भ्रमरों के गुञ्जारव से कमलवन का बोध प्राप्त किया गया है। अतः जेण और तेण इन अव्ययों का प्रयोग किया गया है।

४५५—**णइ, चेअ, चिअ** और **च्च** ये अव्ययपद अवधारण (निश्चय) इस अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे—१—**गत्या एव**=गईए णइ (गति से ही), २—**यद् एव मुकुलनं लोचनयोः**=जं चेअ मउलणं लोअणाणं (आंखों की जो अर्ध खिलावट ही), ३—**अनुबद्धं तदेव कामिनीनाम्**=अणुबद्धं तं चिअ कामिणीणं (स्त्रियों के निमित्त ही यह बन्धन है) 'चिअ' इस अव्ययपद के चकार को ३७० सूत्र से द्वित्व भी हो जाता है। जैसे—**ते एव धन्याः**=ते च्चिअ धन्ना (वे ही धन्य हैं), २—**ते एव सुपुरुषाः**=ते च्चेअ सुपुरिसा (वे ही अच्छे पुरुष हैं) यहां **चिअ** और **चेअ** के चकार को द्वित्व किया गया है। **च्च के उदाहरण जैसे—१—स एव च रूपेण**=स च्च य रूवेण (और रूप से ही वह), २—**स एव शीलेन**=स च्च सीलेण (शील से ही वह) यहां पर इन वाक्यों में एवार्थक '**णइ**' इत्यादि अव्यय-पदों का प्रयोग किया गया है।

४५६—'**बले**' यह अव्ययपद निर्धारण (दृढतापूर्वक कथन करना) और निश्चय (संशय का अभाव) इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। **निर्धारण का उदाहरण** जैसे—**बले पुरुषः धनञ्जयः क्षत्रियाणां**=बले पुरिसो धणंजओ खत्तिआणं (वस्तुतः क्षत्रियों में मनुष्य धनञ्जय=अर्जुन ही है।) **निश्चय का उदाहरण** जैसे—**सिंह एवायम्**=बले सीहो (यह शेर ही है), यहां पर निर्धारण और निश्चय अर्थ का बोधक बले यह अव्यय पद है।

४५७—**किर, इर** और **हिर** ये अव्यय **किल** (संभावना) इस अर्थ में विकल्प से प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे—**कल्यं किल खरहृदय**!=कल्लं किर खरहिअओ! [यह गाथा का एक चरण है अर्थात् यह संभावना है कि वह पाषाणहृदय कल (लौट आएगा)], २—**तस्य किल**=तस्स इर (संभावना है कि उसका), ३—**प्रियवयस्यः किल**=पिअवयंसो हिर (संभावना है कि वह प्रिय मित्र है) जहां पर '**किल**' के स्थान में कोई आदेश नहीं होता, वहां पर-**एवं किल तेन स्वप्नके भणिता**=एवं किल तेण सिविणए भणिआ (यह संभावना है कि उसके द्वारा ऐसे स्वप्न में कही गई है) ऐसे **एवं** ही रह जाता है। यहां पर किलार्थक किर आदि अव्ययों का प्रयोग नहीं हो सका।

४५८—**केवल** (सिर्फ) इस अर्थ में '**णवर**' इस अव्ययपद का प्रयोग किया जाता है। जैसे—**केवलम् प्रियाणि एव भवन्ति**=णवर पिआइं चिअ णिव्वडन्ति (केवल प्रिय (वस्तुएं) ही अलग होती हैं) यहां केवलार्थक **णवर** इस अव्यय का प्रयोग किया गया है। '**णवर**' के स्थान में '**णवरं**' ऐसा पाठान्तर भी मिलता है। इस तरह **णवर** और **णवरं** ये दोनों रूप प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

४५९—'**णवरि**' यह अव्ययपद अनन्तर इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—**अनन्तरं च तस्य रघुपतिना**=णवरि अ से रहुवइणा (और इस के अनन्तर रघुपति राम ने) यहां पर अनन्तरार्थक '**णवरि**' इस अव्यय का प्रयोग किया गया है। कई एक आचार्य '**णवर केवले**' तथा '**आनन्तर्ये णवरि**' इन दो सूत्रों के स्थान पर "**केवलानन्तर्यार्थयोर्णवर-णवरि**" यह एक सूत्र ही स्वीकार करते हैं, उनके मत में णवर और णवरि ये दोनों अव्यय केवल और आनन्तर्य इन दोनों अर्थों के बोधक माने जाते हैं।

४६०—"**अलाहि**" यह अव्ययपद **निवारण** (रोकना) इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—**अलाहि किं वाचितेन लेखेन**?=अलाहि किं वाइएण लेहेण? (मत-पढो, पठित लेख से क्या होने वाला है?) यहां निवारणार्थक अलाहि यह अव्यय प्रयुक्त किया गया है।

४६१—**अण** और **णाइं** ये दोनों अव्ययपद नञ् (नहीं) इस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

जैसे—१—**अचिन्तितम् अजानन्ती**=अणचिन्तिअममुणन्ती (अचिन्तित (जिस का विचार नहीं किया गया) बात को न जानती हुई), २—**न करोमि रोषम्**=णाइं करेमि रोसं (मैं रोष-क्रोध नहीं करता हूं) यहां **अण** और **णाइं** इन नञर्थक अव्ययों का प्रयोग किया गया है।

४६२—'**मा**' (मत) इस अर्थ में '**माइं**' इस अव्यय पद का प्रयोग होता है। **मा कार्षीद् रोषम्** =माइं काहीअ रोसं (उस ने क्रोध नहीं किया) यहां पर 'मा' अर्थ में 'माइं' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४६३—'**हद्धी**' यह अव्ययपद **निर्वेद** (खेद) इस अर्थ में विकल्प से प्रयुक्त किया जाता है। अथवा '**हद्धी**' यह अव्यय पद संस्कृत भाषा के **हा धिक्** इन दो अव्ययों के स्थान में आदेश किया गया प्रतीत होता है। जैसे—**हाधिक्, हाधिक्**=हद्धी हद्धी (खेद है, खेद है)। जहां पर 'हाधिक्' के स्थान में 'हद्धी' इस इस अव्यय का प्रयोग नहीं हो सका वहां पर **हाधिक्** शब्द के स्थान में देश्यभाषा के '**धाह**' इस शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—**हा धाह धाह**। 'धाह' शब्द की जो पुनरुक्ति है, इस का कारण संभ्रम है। सम्भ्रम का अर्थ है—**जल्दबाजी, भय, डर** आदि। सिद्धहेमशब्दानुशासन के ७।४।७२। सूत्र द्वारा भय आदिके कारण बोलने वाले की जल्दबाजी को व्यक्त करने के लिए पद या वाक्य का अनेक वार प्रयोग हो जाता है।

४६४—**भय** (डर), वारण (रोकना) और विषाद (खेद) इन अर्थों में '**वेव्व**' इस अव्ययपद का प्रयोग किया जाता है। जैसे—

वेव्वे इति भये वेव्वे वेति वारणे, खेदे च वेव्वे वेति।
उल्लापयित्र्या अपि तव वेव्वे इति मृगाक्षि ! किं ज्ञेयम् ? ॥१॥

भाव यह है कि एक बार किसी वाचाल नारी ने 'वेव्वे' इस शब्द का प्रयोग किया तो उस से किसी ने पूछा कि हे मृगाक्षि ! हिरण के समान सुन्दर नेत्रों वाली सुन्दरि! जल्पनशीला (सदा बोलने का स्वभाव रखने वाली) तू ने 'वेव्वे' यह पद क्या भय इस अर्थ में कहा है ? निवारण या खेद—विषाद इस अर्थ में प्रयुक्त किया है ? तुम्हारे 'वेव्वे' इस पद से क्या समझना चाहिए ?

किमुल्लापयन्त्या उत खिद्यन्त्या किन्तु भीतया।
उद्वदित्र्या वेव्वे इति तया भणितं, न विस्मरामः ॥१॥

अर्थात्—उल्लाप (आक्षेपयुक्त भाषण, तार स्वर से पुकारना या बुलाना) करती हुई अथवा खेदखिन्न होती हुई किन्तु भीत-दशा को प्राप्त तथा उच्च स्वर से बोलने का स्वभाव रखने वाली उस नायिका ने वेव्वे इस पद का जो उच्चारण किया है, इसे कभी हम भूल नहीं सकेंगे।

उक्त श्लोकों में '**वेव्वे**' इस अव्ययपद का अनेकों बार प्रयोग दिखाई दे रहा है, और इस के **भय, वारण** (निवारण) तथा **विषाद** इन सभी अर्थों को ध्वनित किया गया है।

४६५—**वेव्व** और **वेव्वे** ये दोनों अव्ययपद आमंत्रण (सम्बोधन) इस अर्थ में प्रयुक्त करने चाहिएं। जैसे—**१—हे गोले !**=**वेव्व गोले** ! (हे सखि), २—**हे मुरन्दले ! वहसि पानीयम्**=वेव्वे मुरन्दले ! वहसि पाणिअं (हे मुरन्दले ! (नामविशेष) तू पानीय (जल अथवा पीने योग्य वस्तु) पहुंचा रही है) यहां आमंत्रणार्थ वेव्व और वेव्वे इन अव्ययों का प्रयोग किया गया है।

४६६—**मामि, हला, हले** ये अव्ययपद सखी के आमंत्रण में विकल्प से प्रयुक्त करने चाहिएं। जैसे—१—**सखि ! सदृशाक्षराणाम् अपि**=मामि ! सरिसक्खराण वि (हे सखि ! समान अक्षर वाले नामों का भी), २—**प्रणमत मानस्य हे सखि**=पणवह माणस्य हला ! (हेसखि ! (अपने) मान के (निमित्त) नमस्कार करो), ३—**हे सखि ! हताशस्य**=हले ! हयासस्स (हे सखि ! हताश (निराश)

की यह दशा होती है) यहां सखी के आमंत्रण में **मामि, हला, हले** इन तीन अव्ययों का विकल्प से प्रयोग किया गया है। जहां इन का प्रयोग नहीं होता, वहां पर—**हे सखि ! ईदशी एव गतिः**= सहि ! एरिसि च्चिअ गई। (हे सखि ! ऐसी ही गति-परिणाम, भाग्य या कर्मफल है) इस तरह यहां पर सखी के आमंत्रण में '**मामि**' आदि अव्ययों का प्रयोग नहीं हो सका।

४६७—**सन्मुख करना,** तथा **सखी के आमंत्रण** में '**दे**' इस अव्यय पद का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—१—**दे प्रसीद तावत् सुन्दरि !**=दे पसिअ ताव सुन्दरि ! (सामने आओ, हे सुन्दरि ! प्रसन्न हो जाओ), २—**हे सखि ! आप्रसीद, निवर्तस्व**=दे ! आपसिअ, निअत्तसु (हे सखि ! प्रसन्न हो जाओ, और लौट जाओ) यहां पर '**दे**' यह अव्यय पद संमुखीकरण और सखी के आमंत्रण में प्रयुक्त किया गया है।

४६८—**दान, पृच्छा** और **निवारण** इन अर्थों में '**हुं**' इस अव्यय का प्रयोग किया जाता है। **दानार्थक 'हुं' का उदाहरण—१—दानं गृहाण स्वयमेव**=हुं गेण्ह अप्पणो च्चिअ (आप स्वयं दान ग्रहण करें) **पृच्छार्थक 'हुं' का उदाहरण—२—हुं कथय सद्भावम्**=हुं साहसु सब्भावं (पूछो, और सद्भाव-अभिप्राय कहो), **निवारणार्थक हुं अव्यय पद का उदाहरण**—हुं **निर्लज्ज ! समपसर**=हुं निल्लज्ज ! समोसर (हे निर्लज्ज ! दूर हट, निकल जा)। यहां पर दान आदि अर्थों में क्रमशः '**हुं**' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४६९—**निश्चय, वितर्क, संभावना** और **विस्मय** इन अर्थों में हु और खु इन अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। **निश्चयार्थक अव्ययों के उदाहरण** जैसे—१=**त्वमपि खलु अच्छिन्नश्रीः**=तं पि हु अच्छिन्नसिरी (निश्चय ही तू अच्छिन्नश्री (जिसकी शोभा या लक्ष्मी नष्ट नहीं हुई) है), २—**त्वं खलु श्रियाः रहस्यम्**=तं खु सिरीए रहस्सं (निश्चय ही तू लक्ष्मी का रहस्य है, गुप्तभेद है), वितर्क शब्द ऊह-विचार अथवा संशय-सन्देह का बोधक है। **ऊहार्थक अव्यय के उदाहरण—१—न हु केवलं संगृहीता**=न हु णवरं संगहिआ (वह केवल संगृहीत ही नहीं है, या उसने केवल उस का संग्रह ही नहीं कर रक्खा), २—**एतां खु हसति**=एअं खु हसइ (क्या वह इसको हंसती है), **संशय का उदाहरण—जलधरः खु धूमपटलः खु**=जलहरो खु धूववडलो खु ? (यह जलधर—मेघ है या धूम का पटल (समूह, लावलश्कर, छप्पर) है), **संभावना का उदाहरण—१—तरितुं न हु कवेलमिमाम्**=तरीउं ण हु णवर इमं (इस (नदी) को केवल तैर कर (पार उतर जाना) संभव नहीं है), २—**एतां खु हसति**=एअं खु हसइ (यह इसको हंसता है, यह सभव है) **विस्मय का उदाहरण—१—क ≍ खलु एषः सहस्रशिराः ?** =को खु एसो सहस्ससिरो (आश्चर्य है, यह हजार सिर वाला कौन है ?) यहां निश्चयादि अर्थों में '**हु**' और '**खु**' इन अव्ययों का प्रयोग किया गया है। वृत्तिकार फरमाते है कि **बहुलाधिकार** के कारण हु इस अव्ययपद का अनुस्वार से आगे कहीं प्रयोग नहीं करना चाहिए।

४७०—**गर्हा** (भर्त्सना) **आक्षेप, विस्मय** (आश्चर्य) और **सूचन** (खबर देना, सावधान करना) इन अर्थों में 'ऊ' इस अव्ययपद का प्रयोग करना चाहिए। गर्हा का उदाहरण—**अरे निर्लज्ज !**=ऊ णिल्लज्ज ! (अरे बेशरम) यहां किसी की गर्हा—भर्त्सना की गई है। अतः ऊ अव्यय का प्रयोग किया गया है। **आक्षेप** शब्द के सामान्य तौर पर कटूक्ति, ताना आदि अर्थ किए जाते हैं, किन्तु प्रस्तुत में इस शब्द का एक विशेष अर्थ को लेकर प्रयोग किया गया है। प्रक्रान्त=प्रारब्ध (आरंभ किए गए) वाक्य के विपरीत अर्थ की आशंका होने से उस के अर्थ का परिवर्तन करना (बदल देना) **आक्षेप** कहलाता है। जैसे—**ऊ किं मया भणितम्**=ऊ किं मए भणिअ ? (ओह ! क्या मैंने ऐसा कहा था ? भाव यह है

ऐसा नहीं कहा) विस्मय का उदाहरण—**ऊ कथं ज्ञाता अहम्**? =ऊ कह मुणिआ अहयं ? (आश्चर्य है कि मुझे कैसे पहचान लिया ?) **सूचन का उदाहरण—ऊ केन न विज्ञातम्**=ऊ केण न विण्णायं ? (यह किसने नहीं जाना अर्थात् इस वृत्तान्त से सब संसूचित कर दिए गए हैं) यहां पर गर्हा आदि आदि अर्थों में ऊ इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४७१—'**थू**' यह अव्ययपद **कुत्सा** (घृणा) इस अर्थ में प्रयुक्त करना चाहिए। जैसे—**थू निर्लज्जो लोकः**=थू निल्लज्जो लोओ (यह लोक-संसार लज्जारहित है, अर्थात् घृणास्पद है) यहां कुत्सार्थक 'थू' इस अव्यय का प्रयोग किया गया है।

४७२—'**रे**' यह अव्यय **संभाषण** (भावों की अभिव्यक्ति), इस अर्थ में तथा '**अरे**' यह अव्यय **रतिकलह** (काम-क्रीडा से जनित क्लेष) इस अर्थ में प्रयुक्त करना चाहिए। **संभाषणार्थक रे का उदाहरण—१—रे हृदय ! अल्पसरित्**=रे हिअय ! मडहसरिआ (अरे हृदय ! यह स्वल्प जल वाली नदी है) यहां वक्ता ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है इसे उदाहरण से समझिए। एक याचक किसी कंजूस व्यक्ति के पास याचना कर रहा था, कंजूस धनी ने उसे टका सा जबाव देदिया। उस समय उस याचक ने कहा कि रे हृदय ! यहां क्या मिलेगा ? इस हृदय की नदी में तो उदारता का पानी न होने के बराबर है। यह किसी श्लोक का एक चरण है। समस्त श्लोक तथा इसका अर्थ संस्कृत-टीका में देख लेना चाहिए। **रतिकलहार्थक अरे का उदाहरण—अरे मया समं मा कुरु उपहासम्**= अरे मए समं मा करेसु उवहास (अरे ! मेरे साथ उपहास मत करो,) यह वाक्य काम-क्रीडा-जन्य कलह में प्रयुक्त किया गया है, अतः यहां पर **अरे** इस अव्ययपद का प्रयोग कर रखा है।

४७३—**हरे** यह अव्ययपद **क्षेप**, **संभाषण** और **रतिकलह** इन तीन अर्थों में प्रयुक्त करना चाहिए। **क्षेप का उदाहरण१—अरे निर्लज्ज** !=हरे णिल्लज्ज ! (अरे बेशरम !) यहां क्षेप-निन्दा संसूचित की है। **संभाषण का उदाहरण—अरे पुरुषाः** !=हरे पुरिसा ! (अयि पुरुषो !) सम्भाषण करते समय लोगों को सम्बोधित करते हुए वक्ता का यह कथन है। **रतिकलह का उदाहरण—अरे बहुवल्लभ** !=हरे बहुवल्लह ! (अरे बहुत स्त्रियों के वल्लभ !, प्रिय !) यह वाक्य कामक्रीडा-जन्य क्लेष में प्रयुक्त किया गया है।

४७४—'**ओ**' यह अव्ययपद **सूचना**, और **पश्चात्ताप** इन दो अर्थों में प्रयुक्त करना चाहिए। **सूचना का उदाहरण-ओ अविनय-तृप्तिमति** !=ओ अविणय-तत्तिल्ले ! (सूचना करता हूं कि तुम्हारी मति-बुद्धि अविनय से तृप्त रहने वाली है अर्थात् तुम्हारे मस्तिष्क में विनय नहीं है) **पश्चात्ताप का उदाहरण—ओ न मया छाया एतावत्याम्**=ओ न मए छाया इत्तिआए (अरे इतना समय होने पर भी मैंने छाया (चमक) नहीं देखी) यहां पश्चात्ताप संसूचित किया गया है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि 'ओ' यह अव्ययपद विकल्पार्थक भी होता है, क्या उस का प्रस्तुत सूत्र से कोई सम्बन्ध है ? उत्तर में निवेदन है कि १७२ सूत्र द्वारा '**उत**' इस विकल्पार्थक निपात के स्थान में पर-वर्ती स्वर-सहित व्यञ्जन के साथ [अर्थात् उत इस निपात के स्थान में] ओ यह आदेश हो कर जो 'ओ' यह पद निष्पन्न होता है, उस का इस सूत्र में पठित ओ के साथ कोई सम्बंध नहीं है। जैसे—**उत विरचयामि नभस्तले**=ओ विरएमि नहयले (अथवा मैं आकाश-मण्डल में बनाता हूं) यहां पर '**उत**' इस निपात को १७२ सूत्र से ओकार किया गया है।

४७५—**सूचना, दुःख, संभाषण, अपराध, विस्मय, आनन्द, आदर, भय, खेद, विषाद** और **पश्चात्ताप** इन अर्थों में **अव्वो** इस अव्ययपद का प्रयोग होता है। सूचना का उदाहरण—**अव्वो**

कि मैंने **दुष्कार-कारक** !=अव्वो दुक्करयारय ! (मैं यह सूचित करता हूं; कि हे दुष्कर कार्य को करने वाले!) यहां अव्वो यह अव्यय सूचना का बोधक है। **दुःख का उदाहरण—अव्वो दलन्ति हृदयम्**=अव्वो दलंति हिययं (दुःख है कि वे हृदय का दलन करते हैं, उसको तोड़ते हैं) यहां पर अव्वो पद से दुःख व्यक्त किया गया है। **संभाषण का उदाहरण-अव्वो किमिदं किमिदम्**=अव्वो किमिणं किमिणं (अरे यह क्या है, यह क्या है ? अर्थात् भाषण में जीवादि तत्त्वों का स्वरूप बतलाते हुए वक्ता की यह उक्ति है) **अपराध और विस्मय का उदाहरण—**

अव्वो हरन्ति हृदयं, तथापि न द्वेष्याः भवन्ति युवतीनाम् ।
अव्वो किमपि रहस्यं जानन्ति धूर्ताः जनाभ्यधिकाः ॥१॥

अर्थात्-धूर्त लोग युवतियों के हृदयों का हरण कर लेते हैं, तो भी वे उन युवतियों के द्वेष्य नहीं होते, युवतियां उन से द्वेष नहीं करतीं। **अव्वो** यह अव्ययपद अपराध-सूचक है। जनसाधारण से बुद्धि की अधिकता रखने वाले ये कामी पुरुष कुछ न कुछ रहस्य-गुप्तभेद अवश्य जानते हैं, यह आश्चर्य की बात है। यहां दूसरा **अव्वो** अव्ययपद विस्मय-सूचक है। **आनन्द, आदर और भय के उदाहरण—**

अव्वो सुप्रभातमिदम्, अव्वो अद्यास्माकं सफलं जीवितम् ।
अव्वो अतीते त्वयि, केवलं यदि सा न खेदयिष्यति ॥१॥

अर्थात्-यह सुहाना प्रभात है। प्रथम-चरण का अव्वो यह अव्यय **आनन्द** का बोधक है।—आज हमारा जीवन सफल हो गया है। द्वितीय चरण का '**अव्वो**' यह पद आदर को प्रकट करता है। आपके चले जाने पर क्या वह खेदखिन्न नहीं होगी ? अवश्य होगी, ऐसा मुझे भय है। तृतीय चरण का '**अव्वो**' यह पद भय का परिचायक है।

खेद का उदाहरण—अव्वो न यामि क्षेत्रम्=अव्वो न जामि छेत्तं (खेद है कि मैं खेत की ओर नहीं जाता हूं) यहां का '**अव्वो**' यह अव्ययपद खेद का संसूचक है। **विषाद** का उदाहरण—

अव्वो नाशयन्ति धृतिं, पुलकं वर्धयन्ति, ददति रणरणकम् ।
इदानीं तस्यैव गुणाः ते एव अव्वो कथं नु एतद् ॥१॥

अर्थात्—गुण तो वही हैं, किन्तु इस समय उस के गुण ही उसकी धृति—धैर्य का नाश कर रहे हैं,पुलक-रोमाञ्च का सम्वर्धन कर रहे हैं। और रणरणक—वासनाजनित वेदना उत्पन्न कर रहे हैं। महान विषाद है, यह सब कैसे हो गया ? यहां के **अव्वो** ये अव्ययपद विषादार्थक समझने चाहिएं। **पश्चात्ताप का उदाहरण—अव्वो तथा तेन कृताऽहं, यथा कस्मै कथयामि** ?=अव्वो तह तेण कया अहयं, जह कस्स साहेमि ? (उसने मुझे ऐसा बना दिया कि मैं किसके आगे कहूं ?) इस वाक्य में प्रयुक्त '**अव्वो**' यह अव्ययपद विषाद को अभिव्यक्त कर रहा है।

४७६—'संभावना' इस अर्थ में '**अइ**' इस अव्ययपद का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—**अयि देवर ! किं न पश्यसि** ?=अइ दिअर ! किं न पेच्छसि ! (मुझे ऐसी संभावना है कि हे देवर ! तुम्हें दिखाई नहीं देता,) यहां संभावनार्थक '**अइ**' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४७७—निश्चय, विकल्प, अनुकम्प्य और **संभावना** इन अर्थों में **वणे** इस अव्ययपद का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—**१—निश्चयं ददामि**=वणे देमि (निश्चय ही मैं देता हूं) यह **निश्चय** का उदाहरण है। **२—भवति न वा भवति**=होइ वणे न होइ (ऐसा भी हो सकता है और नहीं भी) यहां पर **विकल्प** को ध्वनित किया गया है। **३—दासोऽनुकम्प्यो न त्यज्यते**=दासो वणे न मुच्चइ (दास सदा अनुकम्पा का सर्वथा पात्र होता है, इसीलिए इसे छोडा नहीं जा रहा) यहां **अनुकम्प्य अर्थ**

अभिव्यञ्जित कर रखा है। ४-**नास्ति वरणे यन्न ददाति विधिपरिणामः**=नत्थि वणे जं न देइ विहिपरिणामो (ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो विधि- भाग्य का परिणाम—फल न हो, अर्थात् **कर्म-फल** से ही प्रत्येक वस्तु की संभावना की जा सकती है) यहां **वणे** यह अव्ययपद **संभावना** का संसूचक है।

४७८—'**मणे**' इस अव्ययपद को **विमर्श** (विचार करना) इस अर्थ में प्रयुक्त करना चाहिए। जैसे—**किंस्वित् सूर्यः**=मणे सूरो (क्या यह सूर्य है ? भाव यह है कि क्या सूर्य-सम्बन्धी विचार चल रहा है) **किंस्वित्** यह अव्ययपद—**है, या, अथवा** इन अर्थों का बोधक है। इस के स्थान में 'मणे' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४७९—'**अम्मो**' इस अव्ययपद का **आश्चर्य** इस अर्थ में प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे—**आश्चर्यमेतत् कथं पार्यते**=अम्मो कह पारिज्जइ (यह कैसे पार किया जा सकता है, बड़ा आश्चर्य है) यहां आश्चर्य अर्थ में '**अम्मो**' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४८०—'**स्वयम्**' इस अर्थ में '**अप्पणो**' इस अव्ययपद का विकल्प से प्रयोग होता है। जैसे—**विशदं विकसन्ति स्वयं कमलसरांसि**=विसयं विअसन्ति अप्पणो कमलसरा (कमलों के सरोवर स्वयं (अपने आप) ही उज्ज्वलरूप से विकसित रहते हैं) यहां '**स्वयं**' इस अर्थ में **अप्पणो** इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है। जहां '**अप्पणो**'' इस का प्रयोग नहीं होता वहां पर—**स्वयमेव जानासि करणीयम्**=सयं चेअ मुणसि करणिज्जं (तुम तो स्वयं ही अपने कर्त्तव्य-कार्य को जानते हो) ऐसा रूप होता है। यहां '**स्वयं**' के स्थान में '**अप्पणो**' का प्रयोग नहीं हो सका।

४८१—**प्रत्येक** (हर एक) इस अर्थ में '**पाडिक्क**', तथा '**पाडिएक्क**' इन अव्ययपदों का **विकल्प** से प्रयोग करना चाहिए। जैसे—**प्रत्येकम्**=पाडिक्कं, पाडिएक्कं, जहां प्रस्तुत सूत्र की प्राप्ति नहीं हुई वहां **पत्तेअं** (हर एक) यह रूप बनता है।

४८२—"**पश्य** (देखो)" इस अर्थ में 'उअ' इस अव्ययपद का विकल्प से प्रयोग करना चाहिए। जैसे—

पश्य निश्चल-निष्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका।
निर्मल-मरकत-भाजन-प्रतिष्ठिता शंखशुक्तिरिव ॥१॥

अर्थात्-देखो, शान्त और अचंचल बलाका (बगुली) बिसिनी-कमलसमूह के पत्तों पर इस प्रकार शोभा पा रही है कि मानों निर्मल (मल रहित) मरकत (पन्ने) से खचित भाजन (बरतन) पर शंख रूप शुक्ति (सिप्पी) को प्रतिष्ठित कर दिया गया है। यहां '**पश्य**' इस अर्थ में '**उअ**' इस अव्ययपद का विकल्प से प्रयोग किया गया है। जहां पर **उअ** इस अव्यय का प्रयोग नहीं किया जाता वहां-**पश्य** के स्थान में ८५२ सूत्र से '**पुलअ**' आदि १५ आदेश हो जाते हैं।

४८३—**इतरथा** (अन्य प्रकार से) इस अर्थ में '**इहरा**' इस अव्यय पद की प्राप्ति विकल्प से होती है। जैसे—**इतरथा निःसामान्यैः**=इहरा नीसामन्नेहिँ (असाधारण लोगों ने अन्य प्रकार से) जहां पर **इहरा** इस अव्यय पद का प्रयोग नहीं होता, वहां पर **इतरथा**=इअरहा (अन्य प्रकार से) यह रूप बनता है।

४८४—'**झगिति** (झट)' तथा '**सम्प्रति** (अब)' इन अर्थों में '**एक्कसरिअं**' इस अव्ययपद का प्रयोग होता है। जैसे—**झगिति अथवा सम्प्रति**=एक्कसरिअं (झट अथवा अब) यहां "**एक्कसरिअं**' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४८५—'**मुधा** (व्यर्थ)' इस अर्थ में '**मोरउल्ला**' इस अव्ययपद का प्रयोग होता है। जैसे—**मुधा**=मोरउल्ला (व्यर्थ में) यहां '**मोरउल्ला**' इस अव्यय का प्रयोग किया गया है।

४८६—**'अर्ध** (आधा)' तथा **ईषद्** (स्वल्प) इस अर्थ में **'दर'** इस अव्ययपद का प्रयोग होता है। जैसे—**अर्धेन, ईषद् वा विकसितम्**=दर-विअसिअं (आधा या स्वल्प खिला हुआ) यहां अर्धार्थक तथा ईषदर्थक **'दर'** इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४८७—**'प्रश्न** (सवाल)' इस अर्थ में **'किणो'** इस अव्ययपद का प्रयोग करना चाहिए। जैसे— **किं धूनासि** ?=किणो धुवसि ? (तू क्यों काम्पता है ?) यहां पर **'किम्'** इस प्रश्नार्थक **शब्द के** स्थान में 'किणो' इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

४८८—**इ, जे, र** ये अव्ययपद पाद-पूर्ति के अर्थ में प्रयुक्त करने चाहिएं। जैसे—**१—न पुनर् अक्षीणि**=न उणा इ अच्छीइं (फिर आंखें नहीं) यहां पर 'इ' यह अव्यय पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है। २—**अनुकूलं वक्तुं जे**=अणुकूलं वोत्तुं जे (अनुकूल बोलने के लिए) यह श्लोक का एक पाद है। यहां पर **'जे'** यह अव्ययपद पाद-पूर्ति के लिए ग्रहण किया गया है। ३—**गृह्णाति कलमगोपी**= गेण्हइ र कलमगोवी (कलमगोपी—धान्य आदि द्रव्यों की रक्षिका नारी ग्रहण करती है) यहां पाद को पूर्ण करने के लिए **'र'** इस अव्ययपद का प्रयोग किया गया है।

वृत्तिकार फरमाते हैं कि **१—अहो** (आश्चर्य, शोक, खेद, प्रशंसा, स्पर्द्धा, ईर्ष्या, सन्तोष, थकावट, सम्बोधन, तिरस्कार), **२—हंहो** (तिरस्कार, अहंकार), **३—हे** (अरे, दर्प, ईर्ष्या), **४—हाहा** (पीड़ा, दुःख, आश्चर्य), **५—नाम** (किसी वस्तु या व्यक्ति का निर्देश करने वाला शब्द, संज्ञा), **६—अहह** (खेदव्यञ्जक सम्बोधन, विस्मय), **७-ही**=(आश्चर्य, थकावट, शोक), **८—सि** (पादपूरक शब्द), **९—अपि** (किसी को प्यार से बोलते समय सम्बोधित करने का शब्द, ओह), **१०—अहाह** (सम्बोधन, आश्चर्य, क्लेष, प्रकर्ष), **११—अरिहिहो** (पादपूरक पद) इत्यादि अव्ययपद संस्कृत भाषा के समान ही प्राकृत-भाषा में प्रयुक्त किए जाते हैं।

४८९—**पि** आदि नियत अर्थ वाले अव्ययपदों का प्राकृत भाषा में प्रयोग करना चाहिए। पि, वि इन अव्ययपदों का संस्कृत भाषा में अपि (भी), यह जो अर्थ नियत=निश्चित है, वही अर्थ प्राकृत भाषा में ग्रहण किया जाता है। इसीलिए ये नियतार्थ कहे जाते हैं।

इस तरह आचार्य श्री हेमचन्द्र जी महाराज द्वारा अपनी उपज्ञा (स्वयंप्राप्त बोध) से विरचित हैमशब्दानुशासन की 'सिद्ध-हेमचन्द्र' नामक वृत्ति-व्याख्या में अष्टमाध्याय का द्वितीय पाद सम्पूर्ण होता है। आचार्य श्री हेमचन्द्र अपने परमभक्त महाराजा सिद्धराज के अहिंसा—प्रधान मानस का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि विश्व में अद्वितीय वीर सिद्धराज ! शत्रुओं के नगरों के विनाश से जनित विनोद की कारणभूत आपकी दाहिनी भुजा की यह अनुपम विलक्षणता है कि वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके भी उनका मूलोच्छेद नहीं करती। भाव यह है कि महाराज सिद्धराज शत्रुओं का दमन तो करते थे, किन्तु उन का बीजनाश करना उन को इष्ट नहीं था। वे जानते थे कि शत्रुता से कभी शत्रुता विनष्ट नहीं होती। शत्रुता के नाश का सर्वोत्तम उपाय भगवती क्षमा की आराधना है, शत्रु के जीवन-सुधार की मङ्गलमयी भावना है।

गुरुवर आतमाराम की, किरपा हुई महान।
टीका द्वितीय पाद की, पूर्ण हुई मुनिज्ञान॥

❀ द्वितीय पाद सम्पूर्ण ❀

❀ अथ तृतीयः पादः ❀

★ अथ स्यादि-विधिः [क] ★

४९०—**वीप्स्यात् स्यादेर्वीप्स्ये स्वरे मो वा** । ८ । ३ । १ । वीप्सार्थात्पदात् परस्य स्यादेः स्थाने स्वरादौ वीप्सार्थे पदे परे मो वा भवति । एकमेकम् । एक्कमेक्कं । एक्कमेक्केण । अङ्गे अङ्गे । अङ्गमङ्गम्मि । पक्षे । एक्केक्कमित्यादि ।

४९१—**अतः सेर्डोः** । ८ । ३ । २ । अकारान्तान्नाम्नः परस्य स्यादेः सेः स्थाने डो भवति । वच्छो ।

४९२—**वैतत्तदः** । ८ । ३ । ३ । एतत्तदोऽकारात्परस्य स्यादेः सेर्डो वा भवति । एसो एस । सो णरो । स णरो ।

४९३—**जस्-शसोर्लुक्** । ८ । ३ । ४ । अकारान्तन्नाम्नः परयोः स्यादिसम्बधिनोर्जस्-शसोर्लुग् भवति । वच्छा एए । वच्छे पेच्छ ।

४९४—**अमोऽस्य** । ८ । ३ । ५ । अतः परस्यामोऽकारस्य लुग् वा भवति । वच्छं पेच्छ ।

४९५—**टा-आमोर्णः** । ८ । ३ । ६ । अतः परस्य टा इत्येतस्य, षष्ठी बहुवचनस्य च आमो णो भवति । वच्छेण । वच्छाण ।

४९६—**भिसो हि हिँ हिं** । ८ । ३ । ७ । अतः परस्य भिसः स्थाने केवलः, सानुनासिकः, सानुस्वारश्च हिर्भवति । वच्छेहि, वच्छेहिँ, वच्छेहिं कया छाही ।

४९७—**ङसेः त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो-लुकः** । ८ । ३ । ८ । अतः परस्य ङसेः त्तो दो दु हि हिन्तो लुक् इत्येते षडादेशा भवन्ति । वच्छत्तो, वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो वच्छा । दकारकरणं भाषान्तरार्थम् ।

४९८—**भ्यसस् त्तो दो दु हि हिन्तो सुन्तो** । ८ । ३ । ९ । अतः परस्य भ्यसः स्थाने त्तो दो दु हि हिन्तो सुन्तो इत्यादेशा भवन्ति । वृक्षेभ्यः । वच्छत्तो, वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छेहि, वच्छाहिन्तो, वच्छेहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छेसुन्तो ।

४९९—**ङसः स्सः** । ८ । ३ । १० । अतः परस्य ङसः संयुक्तः सो भवति । पियस्स । पेम्मस्स । उपकुम्भं शैत्यम् । उवकुम्भस्स सीअलत्तणं ।

५००—**डे म्मि ङेः** । ८ । ३ । ११ । अतः परस्य ङेर्डित् एकारः संयुक्तो मिश्च भवति । वच्छे वच्छम्मि । देवम् । देवम्मि । तम् । तम्मि । अत्र द्वितीयातृतीययोः सप्तमी (३—१३५) इत्यमो ङिः ।

५०१—**जस्-शस्-ङसि-त्तो-दो-द्वामि दीर्घः । ८ । ३ । १२ ।** एषु अतो दीर्घो भवति, जसि शसि च । वच्छा । ङसि-वच्छाओ । वच्छाउ । वच्छाहि । वच्छाहिन्तो । वच्छा । त्तो-दो-दु-षु । वृक्षेभ्यः । वच्छत्तो । ह्रस्वः संयोगे (८-१-८४) इति ह्रस्वः । वच्छाओ वच्छाउ । आमि वच्छाण । ङसिनैव सिद्धे त्तो-दो-दु-ग्रहणं भ्यसि एत्वबाधनार्थम् ।

५०२—**भ्यसि वा । ८ । ३ । १३ ।** भ्यसादेशे परे अतो दीर्घो वा भवति । वच्छाहिन्तो, वच्छेहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छेसुन्तो, वच्छाहि, वच्छेहि ।

५०३—**टाण-शस्येत् । ८ । ३ । १४ ।** टादेशे णे, शसि च परे अस्य एकारो भवति । टाण । वच्छेण । णेति किम् ? अप्पणा । अप्पणिआ । अप्पणइआ । शस् । वच्छे पेच्छ ।

५०४—**भिस्भ्यस्सुपि । ८ । ३ । १५ ।** एषु अत एर्भवति । भिस् । वच्छेहि, वच्छेहिँ, वच्छेहिं । भ्यस् । वच्छेहि, वच्छेहिन्तो, वच्छेसुन्तो । सुप् । वच्छेसु ।

५०५—**इदुतो दीर्घः । ८ । ३ । १६ ।** इकारस्य उकारस्य च भिस्-भ्यस्सुप्सु परेषु दीर्घो भवति । भिस् । गिरीहिं, बुद्धीहिं, दहीहिं, तरूहिं, धेणूहिं, महूहिं कयं । भ्यस् । गिरीओ बुद्धीओ, दहीओ, तरूओ, धेणूओ, महूओ आगओ । एवं गिरीहन्तो, गिरीसुन्तो आगओ, इत्याद्यपि । सुप् । गिरीसु, बुद्धीसु, दहीसु, तरूसु, धेणूसु, महूसु ठिअं । क्वचिन्न भवति । दिअ-भूमिसु दाण-जलोल्लिआइं । इदुत इति किम् ? वच्छेहिं, वच्छेसुन्तो, वच्छेसु । भिस्भ्यस्सुपीत्येव । गिरिं, तरुं पेच्छ ।

५०६—**चतुरो वा । ८ । ३ । १७ ।** चतुर उदन्तस्य भिस्भ्यस्सुप्सु परेषु दीर्घो वा भवति । चऊहि, चउहि । चऊओ चउओ । चऊसु चउसु ।

५०७—**लुप्ते शसि । ८ । ३ । १८ ।** इदुतोः शसि लुप्ते दीर्घो भवति । गिरी, बुद्धी, तरू, धेणू पेच्छ । लुप्त इति किम् ? गिरिणो, तरुणो पेच्छ । इदुत इत्येव । वच्छे पेच्छ । जस्-शस् [३. १२] इत्यादिना शसि दीर्घस्य लक्ष्यानुरोधार्थो योगः । लुप्त इति तु णवि प्रतिप्रसवार्थ-शंकानिवृत्त्यर्थम् ।

५०८—**अक्लीबे सौ । ८ । ३ । १९ ।** इदुतोऽक्लीबे-नपुंसकादन्यत्र सौ दीर्घो भवति । गिरी, बुद्धी, तरू, धेणू । अक्लीब इति किम् ? दहिं, महुं । साविति किम् ? गिरिं, बुद्धिं, तरुं, धेणुं । केचित्तु दीर्घत्वं विकल्प्य तदभावपक्षे सेर्मादेशमपीच्छन्ति । अग्गिं, निहिं, वाउं, विहुं ।

५०९—**पुंसि जसो डउ डओ वा । ८ । ३ । २० ।** इदुत इतीह पञ्चम्यन्तं सम्बध्यते । इदुतः परस्य जसः पुंसि अउ अओ इत्यादेशौ डितौ वा भवतः । अग्गउ, अग्गओ, वायउ, वायओ चिट्ठन्ति । पक्षे । अग्गिणो, वाउणो । शेषे अदन्तवद्भावाद् अग्गी, वाऊ । पुंसि इति

किम् ? बुद्धीओ, धेणूओ, दहीइं, महूइं। जस इति किम् ? अग्गी, अग्गिणो, वाऊ, वाउणो पेच्छइ। इदुत इत्येव। वच्छा।

५१०—वोतो डवो। ८। ३। २१। उदन्तात्परस्य जसः पुंसि डित् अवो इत्यादेशो वा भवति। साहवो। पक्षे। साहओ, साहउ, साहू, साहुणो। उत इति किम् ? वच्छा। पुंसीत्येव। धेणू। महूइं। जस इत्येव। साहू, साहुणो पेच्छ।

५११—जस्-शसोर्णो वा। ८। ३। २२। इदुतः परयोर्जस्-शसोः पुंसि णो इत्यादेशो वा भवति। गिरिणो, तरुणो रेहन्ति पेच्छ वा। पक्षे। गिरी, तरू। पुंसीत्येव। दहीइं, महूइं। जस्-शसोरिति किम् ? गिरिं, तरुं। इदुत इत्येव। वच्छा, वच्छे। जस्-शसोरिति द्वित्वमिदुत इत्यनेन यथासंख्याभावार्थम्। एवमुत्तरसूत्रेऽपि।

५१२—ङसि-ङसोः पुं-क्लीबे वा। ८। ३। २३। पुंसि क्लीबे च वर्तमानादिदुतः परयोर्ङसि-ङसोर्णो वा भवति। गिरिणो, तरुणो, दहिणो, महुणो आगओ विआरो वा। पक्षे। ङसेः। गिरीओ गिरीउ गिरीहिन्तो, तरूओ तरूउ तरूहिन्तो। हिलुकौ निषेत्स्येते। ङसः। गिरिस्स, तरुस्स। ङसिङसोरिति किम् ? गिरिणा, तरुणा कयं। पुंक्लीब इति किम् ? बुद्धीअ, धेणूअ लद्धं समिद्धी वा। इदुत इत्येव। कमलाओ, कमलस्स।

५१३—टो णा। ८। ३। २४। पुंक्लीबे वर्तमानादिदुतः परस्य टा इत्यस्य णा भवति। गिरिणा, गामणिणा, खलपुणा, तरुणा, दहिणा, महुणा। टो इति किम् ? गिरी, तरू, दहिं, महुं। पुंक्लीब इत्येव। बुद्धीअ, धेणूअ कयं। इदुत इत्येव। कमलेण।

५१४—क्लीबे स्वरान्म् सेः। ८। ३। २५। क्लीबे वर्तमानात् स्वरान्तान्नाम्नः सेः स्थाने म् भवति। वणं, पेम्मं, दहिं, महुं। दहि, महु इति तु सिद्धापेक्षया। केचिदनुनासिकमपीच्छन्ति। दहिँ, महुँ। क्लीब इति किम् ? बालो, बाला। स्वरादिति इदुतो निवृत्त्यर्थम्।

५१५—जस्-शस इँ-इं-णयः सप्राग्दीर्घाः। ८। ३। २६। क्लीबे वर्तमानान्नाम्नः परयोर्जस्शसोः स्थाने सानुनासिक-सानुस्वाराविकारौ णिश्चादेशा भवन्ति सप्राग्दीर्घाः। एषु सत्सु पूर्वस्वरस्य दीर्घत्वं विधीयते इत्यर्थः। इँ। जाइँ वयणाइँ अम्हे। इं। उम्मीलन्ति पङ्कयाइं चिट्ठन्ति पेच्छ वा। दहीइं हुन्ति जेम वा। महूइं मुञ्च वा। णि। फुल्लन्ति पङ्कयाणि गेण्ह वा। हुन्ति दहीणि जेम वा। एवं महूणि। क्लीब इत्येव। वच्छा, वच्छे। जस्-शस इति किम् ? सुहं।

५१६—स्त्रियामुदोतौ वा। ८। ३। २७। स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परयोर्जस्-शसोः स्थाने प्रत्येकम् उत् ओत् इत्येतौ सप्राग्दीर्घौ वा भवतः। वचनभेदो यथासंख्यनि-

वृत्त्यर्थः । मालाउ मालाओ । बुद्धीउ बुद्धीओ । सहीउ सहीओ । धेणूउ धेणूओ । वहूउ वहूओ । पक्षे । माला, बुद्धी, सही, धेणू, वहू । स्त्रियामिति किम् ? वच्छा । जस्-शस इत्येव । मालाए कयं ।

५१७—ईतः सेश्चा वा । ८ । ३ । २८ । स्त्रियां वर्तमानादीकारान्तात् सेर्जस्-शसोश्च स्थाने आकारो वा भवति । एसा हसन्तीआ । गोरीआ चिट्ठन्ति पेच्छ वा । पक्षे हसन्ती । गोरीओ ।

५१८—टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः । ८ । ३ । २९ । स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परेषां टा-ङस्-ङीनां स्थाने प्रत्येकम् अत् आत् इत् एत् इत्येते चत्वार आदेशाः सप्राग्दीर्घाः भवन्ति । ङसेः पुनरेते सप्रग्दीर्घा वा भवन्ति । मुद्धाअ मुद्धाइ मुद्धाए कयं मुहं ठिअं वा । कप्रत्यये तु मुद्धिआअ मुद्धिआइ मुद्धिआए । कमलिआअ कमलिआइ कोमलिआए । बुद्धीअ बुद्धीआ बुद्धीइ बुद्धीए कयं विहवो ठिअं वा । सहीअ सहीआ, सहीइ, सहीए कयं वयणं ठिअं वा । धेणूअ धेणूआ धेणूइ धेणूए कयं दुद्धं ठिअं वा । वहूअ वहूआ वहूइ वहूए कयं भवणं ठिअं वा । ङसेस्तु वा । मुद्धाअ मुद्धाइ मुद्धाए । बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए । सहीअ, सहीआ, सहीइ, सहीए । धेणूअ, धेणूआ, धेणुइ, धेणूए । वहूअ, वहूआ, वहूइ, वहूए आगओ । पक्षे । मुद्धाओ, मुद्धाउ, मुद्धाहिन्तो । रईओ, रईउ, रईहिन्तो । धेणूओ, धेणूउ, धेणूहिन्तो इत्यादि । शेषेऽदन्तवत् (३. १२४) अतिदेशात् जस्-शस्-ङसि-त्तो-दो-द्वामि दीर्घः (३. १२) इति दीर्घत्वं पक्षेऽपि भवति । स्त्रियामित्येव । वच्छेण । वच्छस्स । वच्छम्मि । वच्छाओ । टादीनामिति किम् ? मुद्धा । बुद्धी । सही । धेणू । वहू ।

५१९—नात आत् । ८ । ३ । ३० । स्त्रियां वर्तमानादादन्तान्नाम्नः परेषां टाङस्-ङिङसीनामादादेशो न भवति । मालाअ मालाइ मालाए कयं सुहं ठिअं आगओ वा ।

५२०—प्रत्यये ङीर्न वा । ८ । ३ । ३१ । अणादिसूत्रेण (हे० २।४।२०) प्रत्यय-निमित्तो यो ङीरुक्तः स स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नो वा भवति । साहणी । कुरुचरी । पक्षे । आत् (हे० २-४-१८) इत्याप् । साहणा । कुरुचरा ।

५२१—अजातेः पुंसः । ८ । ३ । ३२ । अजातिवाचिनः पुल्लिङ्गाद् स्त्रियां वर्तमानात् ङीर्वा भवति । नीली नीला । काली काला । हसमाणी हसमाणा । सुप्पणही सुप्पणहा । इमीए इमाए । इमीणं इमाणं । एईए एआए । एईणं एआणं । अजातेरिति किम् ? करिणी । अया । एलया । अप्राप्ते विभाषेयम् । तेन गोरी, कुमारी इत्यादौ संस्कृतवन्नित्यमेव ङीः ।

५२२—किं-यत्तदोऽस्यमामि । ८ । ३ । ३३ । सि-अम्-आम्-वर्जिते स्यादौ परे एभ्यः स्त्रियां ङीर्वा भवति । कीओ काओ । कीए काए । कीसु कासु । एवं । जीओ जाओ । तीओ ताओ । इत्यादि । अस्यमामीदि किम् ? का । जा । सा । कं । जं । तं । काण । जाण । ताण ।

५२३—छाया हरिद्रयोः । ८ । ३ । ३४ । अनयोराप्प्रसंगे नाम्नः स्त्रियां ङीर्वा भवति । छाही छाया । हलद्दी हलद्दा ।

५२४—स्वस्रादेर्डा । ८ । ३ । ३५ । स्वस्रादेः स्त्रियां वर्तमानात् डा-प्रत्ययो भवति । ससा । नणन्दा । दुहिआ । दुहिआहिं । दुहिआसु । दुहिआ-सुओ । गउआ ।

५२५—ह्रस्वोऽमि । ८ । ३ । ३६ । स्त्रीलिङ्गस्य नाम्नोऽमि परे ह्रस्वो भवति । मालं । नइं । वहुं । हसमाणिं । हसमाणं पेच्छ । अमिति किम् ? माला । सही । वहू ।

५२६—नामन्त्र्यात्सौ मः । ८ । ३ । ३७ । आमन्त्र्यार्थात्परे सौ सति क्लीबे स्वरान्म् सेः (३. २५) इति यो म् उक्तः स न भवति । हे तण ! । हे दहि ! । हे महु ! ।

५२७—डो दीर्घो वा । ८ । ३ । ३८ । आमन्त्र्यार्थात्परे सौ सति अतः सेर्डो (३. २) इति यो नित्यं डोः प्राप्तः, यश्च अक्लीबे सौ (३. १९) इति इदुतोरकारान्तस्य चाप्राप्तो दीर्घः स वा भवति । हे देव !, हे देवो ! । हे खमा-समण !, हे खमा-समणो ! । हे अज्ज !, हे अज्जो ! । दीर्घः । हे हरी !। हे हरि !। हे गुरू ! । हे गुरु ! । जाइ-विसुद्धेण पहू !। हे प्रभो ! इत्यर्थः । एवं दोण्णि पहू ! जिअ-लोए । पक्षे । हे पहु ! । एषु प्राप्ते विकल्पः । इह त्वप्राप्ते हे गोअमा !, हे गोअम ! । हे कासवा !, हे कासव ! । रे रे चप्फलया ! । रे रे निग्घिणया ! ।

५२८—ऋतोऽद्वा । ८ । ३ । ३९ । ऋकारान्तस्यामन्त्रणे सौ परे अकारान्तादेशो वा भवति । हे पितः ! । हे पिअ ! । हे दातः !, हे दाय ! । पक्षे । हे पिअरं ! । हे दायार ! ।

५२९—नाम्न्यरं वा । ८ । ३ । ४० । ऋदन्तस्यामन्त्रणे सौ परे नाम्नि-संज्ञायां विषये 'अरं' इति अन्तादेशो वा भवति । हे पितः ! । हे पिअरं ! । पक्षे । हे पिअ ! । नाम्नीति किम् । हे कर्तः ! । हे कत्तार ! ।

५३०—वाप ए । ८ । ३ । ४१ । आमन्त्रणे सौ परे आप एत्वं वा भवति । हे माले !। हे महिले ! । अज्जिए ! । पज्जिए ! । पक्ष हे माला ! इत्यादि । आप इति किम् ? हे पिउच्छा !। हे माउच्छा ! । बहुलाधिकारात् क्वचिदोत्वमपि । अम्मो ! भणामि भणिए ।

५३१—ईदूतोर्ह्रस्वः । ८ । ३ । ४२ । आमन्त्रणे सौ परे ईदूदन्तयोर्ह्रस्वो भवति । हे नइ !। हे गामणि ! । हे समणि !। हे वहु !। हे खलपु !।

५३२—क्विपः । ८ । ३ । ४३ । क्विबन्तस्येदूदन्तस्य ह्रस्वो भवति । गामणिणा । खलपुणा । गामणिणो । खलपुणो ।

५३३—ऋतामुदस्यमौसु वा । ८ । ३ । ४४ । सि-अम्-औ-वर्जिते स्यादौ प्रत्यये परे ऋदन्तानामुदन्तादेशो वा भवति । जस् । भत्तू भत्तुणो भत्तउ भत्तओ । पक्षे । भत्तारा । शस् । भत्तू भत्तुणो । पक्षे । भत्तारे । टा । भत्तुणा । पक्षे भत्तारेण । भिस् । भत्तूहिं । पक्षे । भत्तारेहिं । ङसि । भत्तुणो । भत्तूओ । भत्तूउ । भत्तूहि । भत्तूहिन्तो । पक्षे । भत्ताराओ । भत्ताराहि । भत्ताराहिन्तो । भत्तारा । ङस् । भत्तुणो । भत्तुस्स । पक्षे भत्तारस्स । सुप् । भत्तूसु । पक्षे भत्तारेसु । बहुवचनस्य व्याप्त्यर्थत्वात् यथादर्शन नाम्न्यपि उद् वा भवति । जस्-शस्-ङसि-ङस्सु—पिउणो । जामाउणो । भाउणो । टायाम् । पिउणा । भिसि । पिऊहिं । सुपि । पिऊसु । पक्षे । पिअरा इत्यादि । अस्यमौस्विति किम् ? सि । पिआ । अम् । पिअरं । औ । पिअरा ।

५३४—आरः स्यादौ । ८ । ३ । ४५ । स्यादौ परे ऋत आर इत्यादेशो भवति । भत्तारो । भत्तारा । भत्तारं । भत्तारे । भत्तारेण । भत्तारेहिं । एवं ङस्यादिषूदाहार्यम् । लुप्तस्याद्यपेक्षया । भत्तार-विहिअं ।

★ अथ तृतीयपादः ★

❀ अथ बालमनोरमा–टीका ❀

परहितङ्कुरता-प्रवणात्मना, परमपावनतीर्थमिदं महत् ।
पुनरुपाक्रमि येन तदर्हते, भवतु वीरजिनाय नमो नमः ॥१॥
विधिविधान-निपातनपूर्वकं सपदि साधयतः पदमव्ययम् ।
अथ तृतीयपदस्तु विरच्यते विवृतिका किल बालमनोरमा* ॥२॥

★ अथ स्यादिविधिः [क] ★

सि, औ, जस् आदिप्रत्ययानां विधिः-विधानं स्यादिविधिः । अस्मिन् प्रकरणे स्यादि-प्रत्ययानां स्थाने यान्यादेशादि-कार्याणि जायन्ते तानि निरुपयति सूत्रकारः ।

४६०—वीप्सार्थात्पदात्परस्य । साकल्येन व्याप्तुमिच्छा वीप्सा । तदर्थात् पदात्परस्य स्यादेः स्थाने

---

*परहितकारितायां प्रवणः-तत्पर आत्मा यस्य, तेन परम-पावनं महत् तीर्थं पुनरुपाक्रमि=उपक्रान्तम्, आरब्धं, तस्मै अर्हते वीरजिनाय नमो नमः, सातिशयो नमस्कारो भवतु ॥१॥ आदेशादिविधीनां विधानं निपातनं च पूर्वं प्रधानं यस्मिन् तदव्ययपदानां साधनं सपदि-शीघ्रं कुर्वतस्तृतीयपदस्य अथ-अनन्तरं द्वितीयपादान्तरं बालमनोरमा-टीका विरच्यते ॥२॥

स्वरादौ-स्वर आदिर्यस्य स स्वरादिस्तस्मिन्, वीप्सार्थे –वीप्सा अर्थो यस्य तद् वीप्सार्थम्, तस्मिन्, पदे परे विकल्पेन मकारो भवति। यथा—❀**एकमेकम्**। एक+सि, एक+सि। ४९० सू० प्रथम-सि-प्रत्ययस्य विकल्पेन मकारे, एक+म्,एक+सि, इति स्थिते, ३७० सू० उभयत्रापि ककारस्य द्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **एक्कमेक्कं** इति सिद्धम्। **एकेन, एकेन**। एक+टा, एक+टा। प्रस्तुत—सूत्रेण प्रथम-टा-प्रत्ययस्य विकल्पेन मकारे, एकमेक+टा, इति जाते, उभयत्रापि ककारद्वित्वे, ४९५ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे, **एक्कमेक्केण** इति सिद्धम्। **अङ्गे अङ्गे**। **अङ्ग**+ङि, अङ्ग+ङि। प्रस्तुतसूत्रेण प्रथम-ङिप्रत्ययस्य विकल्पेन मकारे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **अङ्गमङ्गम्मि** इति सिद्धम्। **पक्षे**। यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावस्तत्र यादृशं रूपं भवति तत्प्रतिपादयति वृत्तिकारः। यथा—एक+सि, एक+सि। ७।४।८१। सू० *प्रथम-सिप्रत्ययस्य लोपे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, एकेक+सि इति जाते, उभयत्रापि ककार-द्वित्वे, पूर्ववदेव **एक्केक्कं** इति भवति। एवमेव अन्यान्यपि रूपाणि साधनीयानि।

४६१—**वृक्षः**। वृक्ष+सि। १२६ ऋकारस्य अकारे, २८८ सू० क्षस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वच्छो** इति सिद्धम्। **वत्सः** इतिच्छायायान्तु २९२ सू० त्सस्य छकारे, पूर्ववदेव **वच्छो** इति भवति।

४६२—**एषः**। एतद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य स्थाने सकारे, ११ सू० दकारलोपे, ४९२ सू० विकल्पेन सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **एसो**, आदेशाभावे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **एस** इति भवति। **सः**। तद्+सि। तकारस्य सकारे, दकारलोपे, विकल्पेन सेर्डोः, पूर्ववदेव **सो** आदेशाभावे, सेर्लोपे—**स** इति भवति। **नरः**=णरो, प्रक्रिया २२९ सूत्रे ज्ञेया।

४६३—**वृक्षाः एते**। वृक्षाः। वृक्ष+जस्=वच्छ+जस्। इत्यत्र ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकार-दीर्घे **वच्छा** इति भवति। **एते**। एतद्+जस्। १७७ सू० तकार-लोपे, ५४७ सू० जसः डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **एए** इति सिद्धम्। **वृक्षान् पश्य**। वृक्षान्। वृक्ष+शस्=वच्छ+शस्। प्रस्तुतसूत्रेण शसो लुकि, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **वच्छे** इति सिद्धम्। **पश्य**=पेच्छ, इत्यस्य प्रक्रिया २३ सूत्रे ज्ञेया।

४६४—**वृक्षं पश्य**। **वृक्षम्**। वृक्ष+अम्=वच्छ+अम्। ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **वच्छं** इति सिद्धम्। **पश्य**=पेच्छ, इत्यस्य प्रक्रिया २३ सूत्रे द्रष्टव्या।

४६५—**वृक्षेण**। वृक्ष+टा=वच्छ+टा। ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **वच्छेण** इति सिद्धम्। **वृक्षाणाम्**। वृक्ष+आम्=वच्छ+आम्। प्रस्तुतसूत्रेण आमः ण इत्यादेशे, ५०१ सू० अकारस्य दीर्घे **वच्छाण** इति सिद्धम्।

४६६—**वृक्षैः**। वृक्ष+भिस्=वच्छ+भिस्। ४९६ सू० भिसः हि, हिँ, हिं इत्यादेशेषु, ५०४ अकारस्य एकारे **वच्छेहि, वच्छेहिँ, वच्छेहिं** इति सिद्धम्। **कृता**=कया, इत्यस्य प्रक्रिया ४७५ सूत्रे

❀**एक्कमेक्कं** इत्यस्य पदस्य **एकमेकम्** इति संस्कृतरूपं समीचीनं प्रतीयते न तु **एकैकमिति**। यतोहि एकैकमिति समस्तपदं वर्तते, तत्र समासत्वात् वीप्सार्थकपूर्वपदात् परस्य स्यादेरभावोऽस्ति, यदा स्यादीन्येव न सन्ति, तर्हि कथं तेषां स्थाने मकारः स्यादिति विचारणीयम्।

*प्लुप्चादावेकस्य स्यादेः। ७।४।८१। एकस्य वीप्सायां द्व्युक्तस्यादेः पिल्लुप् स्यात्। एकैकस्याः। हैम-शब्दानुशासने।

ज्ञेया। **छाया**=छाही, प्रक्रिया २४९ सूत्रे ज्ञेया।

४९७—वृक्षात्। वृक्ष+ङसि=वच्छ+ङसि। ४९७ सू० ङसेः स्थाने **त्तो, दो**, दु, हि, हिन्तो, लुक् इत्यादेशाः, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **वच्छात्तो**, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **वच्छत्तो, वच्छादो, वच्छादु**, १७७ सू० दकारलोपे **वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो, वच्छा** इति भवति। **दकार-करणं भाषान्तरार्थम्**। दो, दु इत्यादेशयोः दकारस्य १७७ सूत्रेण लोपस्तु भवत्येव, तदादेशद्वये दकारोच्चारणं किमर्थमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारः। अत्र दकारोच्चारणं भाषान्तरार्थम्=अन्यभाषार्थम्, यथा प्राकृते दकारलोपो जायते तथा शौरसेन्यां न भवति, तदर्थमेव दकारग्रहणं कृतमिति बोध्यम्।

४९८—वृक्षेभ्यः। वृक्ष+भ्यस्=वच्छ+भ्यस्। ४९८ सू० भ्यसः त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो, सुन्तो इत्यादेशेषु जातेषु, ५०२ सू० विकल्पेन अकार-दीर्घे वच्छात्तो, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **वच्छत्तो** वच्छादो वच्छादु, इत्यत्र १७७ सू० दकार-लोपे **वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो वच्छासुन्तो** दीर्घाभावे ५०४ सू० अकारस्य एकारे **वच्छेहि वच्छेहिन्तो वच्छेसुन्तो** इति सिद्धम्।

४९९—प्रियस्य। प्रिय+ङस्। ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **पियस्स** इति भवति। **प्रेम्नः**। प्रेमन्+ङस्। रेफलोपे, ३६९ सू० मकारद्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **पेम्मस्स** इति सिद्धम्। **उपकुम्भम्**। ६२३ सू० द्वितीयाविभक्तेः स्थाने षष्ठी-विभक्तिर्जाता, ततः उपकुम्भ+ङस् इति जाते, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ङसः स्स इत्यादेशे **उवकुम्भस्स** इति सिद्धम्। **शीतलत्वम्**। शीतलत्व+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, ४२५ सू० त्वप्रत्ययस्य त्तण इत्यादेशे, ५१४ सू० सेर्म-कारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सीअलत्तणं** इति सिद्धम्।

५००—वृक्षे। वृक्ष+ङि=वच्छ+ङि। ५०० सू० ङेः डे (ए), म्मि इत्यादेशौ, डिति परे-ऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वच्छे, वच्छम्मि** इति सिद्धम्। **देवम्**। देव+अम्। ६२४ सू० द्वितीया-विभक्तिः सप्तमी जाता, ततः ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **देवम्मि** इति सिद्धम्। **तम्**। तद्+अम्। इत्यत्र ११ सू० दकार-लोपे, द्वितीयायाः सप्तम्यां जातायां पूर्ववदेव **तम्मि** इति सिद्धम्। **अत्र द्वितीयातृतीययोः सप्तमी**। अत्र ६२४ सू० द्वितीया-स्थाने सप्तमीविभक्तिर्विधीयते ततः अम्-प्रत्ययस्य ङि-प्रत्ययो जातः।

५०१—जसि शसि च। जस्-शस्-प्रत्यययोरुदाहरणं प्रतिपाद्यते। यथा—**वृक्षाः**। **वृक्षान्**। वृक्ष+जस्=वच्छ+जस्, वृक्ष+शस्=वच्छ+शस्। ४९३ सू० जस्—शसो लोपे, ५०१ सू० अकार-दीर्घे **वच्छा, वच्छा** इति सिद्धम्। **ङसि**। ङसि—प्रत्ययस्योदाहरणं प्रतिपादयति वृत्तिकारो यथा—**वृक्षात्**। वृक्ष+ङसि=वच्छ+ङसि। ४९७ सू० ङसेः स्थाने दो, दु, हि, हिन्तो, लुक् इत्यादेशेषु जातेषु, ५०१ सू० पूर्वाकार-दीर्घे, १७७ सू० दकार-लोपे—**वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो वच्छा** इति सिद्धम्। **त्तो-दो-दुषु**। त्तो इत्यादीनामुदाहरणानि, यथा—**वृक्षेभ्यः**। वृक्ष+भ्यस्=वच्छ+भ्यस्। ४९८ सू० भ्यसः त्तो, दो, दु इत्यादेशेषु जातेषु, ५०१ सू० अकारस्य दीर्घे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, दकार-लोपे **वच्छत्तो वच्छाओ वच्छाउ** इति सिद्धम्। **वृक्षाणाम्**। वृक्ष+आम्=वच्छ+आम्। ४९५ सू० आमः णादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारदीर्घे **वच्छाण** इति सिद्धम्। **ङसिनैव सिद्धे त्तो-दो-दु-ग्रहणम्**। ४९७ सूत्रेण त्तो, दो, दु इत्येते त्रयेऽपि ङसेरादेशा भवन्ति, फलतो ङसि-ग्रहणेनैवेतेषां ग्रहणं सिद्धम्, तर्हि किमर्थमेषां प्रस्तुतसूत्रे पृथग्-ग्रहणमित्याशंका। उत्तरयति वृत्तिकारः। ङसि-प्रत्ययेनैव त्तो, दो, दु इत्यादेशानां ग्रहणं भवतीति सत्यं परन्तु भ्यसि परे एत्त्वबाधनार्थमेषां ग्रहणं कृतम्। ५०४ सूत्रेण भ्यसि परेऽका-

रस्य एकारो भवति। ४९८ सू० भ्यसः स्थाने ये त्तो, दो, दु इत्यादेशाः भवन्ति, स्थानिवत्त्वेन तेषु परेषु ५०४ सू० अकारस्य एकारः स्यादेव, एकारोऽयं माभूदित्येतदर्थमेव त्तो, दो, दु इत्येषां पृथग्ग्रहणं कृतम्। पृथग्ग्रहणमेवैतद् ज्ञापयति यदेषु परेषु अकारस्य दीर्घ एव भवति, नतु ५०४ सू० एकारोऽपि। अतएव **वच्छत्तो** इत्यादिषु दीर्घ एव संजायते, नत्वेकारोऽपि।

५०२—वृक्षेभ्यः। वृक्ष्+भ्यस्=वच्छ+भ्यस्। ४९८ सू० भ्यसः हिन्तो, सुन्तो, हि इत्यादेशेषु जातेषु, ५०२ सू० विकल्पेनाकारस्य दीर्घे **वच्छाहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छाहि**, दीर्घाभावे ५०४ सू० अकारस्य एकारे **वच्छेहिन्तो वच्छेसुन्तो वच्छेहि** एतानि रूपाणि भवन्ति।

५०३—टाण। टा-प्रत्ययसम्बन्धी णादेश इत्यर्थः। **वृक्षेण**। वृक्ष+टा=वच्छ+टा। ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य णादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **वच्छेण** इति सिद्धम्। **णेति किम्**?। टा-प्रत्ययस्य विभिन्नसूत्रैः ण, णा, णिआ, णइआ इत्यादेशाः भवन्ति, परन्तु यत्र टा-प्रत्यय-सम्बन्धी ण इत्यादेशो भविष्यति तत्रैव प्रस्ततुसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यत्र। यथा—**आत्मना**। आत्मन्+टा। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३२२ सू० त्मस्य पकारे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ११ सू० नकारलोपे, ५४५ सू० राजवत्त्वात्, ५४० सू० टा-प्रत्ययस्य स्थाने णा, तथा—५४६ स० टास्थाने णिआ, णइआ इत्यादेशेषु जातेषु, **अप्पणा अप्पणिआ अप्पणइआ** इति सिद्धम्। अत्र टादेशस्तु विद्यते, परन्तु णकाराभावेन प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **शस्**। शस्-प्रत्ययस्योदाहरणं निरूपयति वृतिकारः। **वृक्षान् पश्य**=वच्छे पेच्छ, प्रक्रिया ४९३ सूत्रेऽवलोकनीया।

५०४—वृक्षैः। वृक्ष+भिस्=वच्छ+भिस्। इत्यत्र ४९६ सू० भिसः हि, हिँ, हिं इत्यादेशेषु जातेषु, ५०४ स० अकारस्य एकारे **वच्छेहि वच्छेहिँ वच्छेहिं** इति सिद्धम्। **वृक्षेभ्यः**। वृक्ष+भ्यस्=वच्छ+भ्यस्। ४९८ सू० भ्यसः स्थाने हि, हिन्तो, सुन्तो इत्यादेशेषु जातेषु, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **वच्छेहि वच्छेहिन्तो वच्छेसुन्तो** इति सिद्धम्। **वृक्षेषु**। वृक्ष+सुप् (सु)=वच्छ+सु। ५०४ सू० अकारस्य एकारे **वच्छेसु** इति सिद्धम्।

५०५—गिरिभिः। गिरि+भिस्। ६१३ सू० अदन्तवत्वात्, ४९६ सू० भिसः स्थाने 'हिं' इत्यादेशे, ५०५ सू० इकारस्य दीर्घे **गिरीहिं** इति सिद्धम्। **बुद्धिभिः**। बुद्धि+भिस्=**बुद्धीहिं**। **दधिभिः**। दधि+भिस्=**दहीहिं**। **तरुभिः**। तरु+भिस्=**तरूहिं**। **धेनुभिः**। धेनु+भिस्=**धेणूहिं**। **मधुभिः**। मधु+भिस्=**महूहिं**, एतेषां शब्दानां प्रक्रिया **गिरीहिं**-वद् बोध्या, किन्तु **दहीहिं महूहिं** इत्यत्र १८७ सू० धकारस्य हकारो जातः, **धेणूहिं** इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारोऽभूद्। **कृतम्**=कयं, प्रक्रिया १२६ सूत्रे ज्ञेया। **गिरिभ्यः**। गिरि+भ्यस्। ४९८ सू० भ्यसः स्थाने दो इत्यादेशे, १७७ सू० दकार-लोपे, ५०५ सू० इकारदीर्घे **गिरीओ** इति सिद्धम्। एवमेव—**बुद्धिभ्यः**। बुद्धि+भ्यस्=**बुद्धीओ**। **दधिभ्यः**। दधि+भ्यस्। धकारस्य हकारे **दहीओ**। **तरुभ्यः**। तरु+भ्यस्=**तरूओ**। **धेनुभ्यः**। धेनु+भ्यस्, नकारस्य णकारे **धेणूओ**। **मधुभ्यः**। मधु+भ्यस्। धकारस्य हकारे **महूओ** इत्येते प्रयोगाः साध्याः। **आगतः**-आगओ प्रक्रिया २६८ सूत्रे ज्ञेया। एवमेव **गिरिभ्यः**। गिरि+भ्यस्। ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात्, ४९८ सू० भ्यसः स्थाने हिन्तो सुन्तो इत्यादेशयोः, ५०५ सू० इकारदीर्घे **गिरीहिन्तो गिरीसुन्तो** इति सिद्धम्। **गिरिषु**। गिरि+सुप (सु)। ५०५ सू० इकारदीर्घे **गिरीसु** इति सिद्धम्। एवमेव—**बुद्धिषु**। बुद्धि+सुप्=**बुद्धीसु**। **दधिषु**। दधि+सुप्। धकारस्य हकारे **दहीसु**। **तरुषु**। तरु+सु=**तरूसु**। **धेनुषु**। धेनु+सु। नकारस्य णकारे **धेणूसु**। **मधुषु**। मधु+सु, धकारस्य हकारे **महूसु** इत्येते प्रयोगाः

संसाधनीयाः । **स्थितम्** । ष्ठा (स्था) गतिनिवृत्तौ । स्था+क्त=त । ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, ९०९ सू० आकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **ठिअं** इति सिद्धम् । **क्वचिन्न भवति** । बहुलाधिकारात् क्वचित्—कस्मिंश्चित् स्थले प्रस्तुतसूत्रेण इकारस्य दीर्घो न भवति । यथा—**द्विजभूमिषु** । द्विजानां हस्तिनां भूमिषु । द्विजभूमि+सु । ३५० सू० वकार-लोपे, १७७ सू० जकारस्य लोपे, बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रेण दीर्घाभावे **दिअभूमिसु** इति सिद्धम् । **दानजलार्द्रितानि** । दानं-हस्तिमद-जलं तेन आर्द्रितानि । दान—जलार्दित+जस् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ८२ सू० आर्द्रस्थस्य आकारस्य उकारे, गुण-सन्धौ, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३४८ सू० दकार-लोपे, २५४ सू० रेफस्य लकारे, ३६० सू० लकार-द्वित्वे, दाणजलोल्लित+जस् इति स्थिते, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५१५ सू० जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वदीर्घे च **दाणजलोल्लिआइं** इति सिद्धम् । **इदुत इति किम्** ? । इकारस्य उकारस्यैव दीर्घो भवतीति कथनस्य किं कारणमिति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारः । इकारोकारभिन्नस्वरस्य प्रस्तुत-सूत्रेण दीर्घो मा भूदित्येतदर्थम् "**इदुतः**" इत्यस्य ग्रहणं कृतम् । यथा—**वृक्षैः** । वृक्ष+भिस्=**वच्छेहिं** अस्य प्रक्रिया ४९६ सूत्रेऽवलोकनीया । **वृक्षेभ्यः** । वृक्ष+भ्यस्=**वच्छेसुन्तो** । अस्य प्रक्रिया ४९८ सूत्रे द्रष्टव्या । **वृक्षेषु** । वृक्ष+सुप्=**वच्छेसु** । अस्य प्रक्रिया ५०४ सूत्रे भणिता । अत्र **वृक्ष**-शब्द अकारान्तः, नतिवकारान्तः, अतोऽत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्यभावः । **भिस्भ्यस्सुपीत्येव** । यदि भिस्, भ्यस्, सुप् इत्येते प्रत्ययाः परवर्तिनो भवेयुस्तदैव प्रस्तुत-सूत्रेण इकारस्य, उकारस्य च दीर्घो भवति, नान्यथा । यथा-**गिरिं तरुं पश्य** । गिरिम् । गिरि+अम् । ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्य लोपे **गिरिं** इति सिद्धम् । **तरुम्** । तरु+अम् । **गिरिं**-वत् **तरुं** इति भवति । एतौ इकारोकान्तौ शब्दौ स्तः परं भिसादि-प्रत्ययपरत्वाभावान्नात्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृतिर्जाता । **पश्य**=पेच्छ, अस्य शब्दस्य प्रक्रिया ४९३ सूत्रे द्रष्टव्या ।

५०६—चतुर्भिः । चतुर्+भिस् । १७७ सू० तकारस्य लोपे, ११ सू० रेफलोपे, ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे, ५०६ सू० विकल्पेन उकारस्य दीर्घे **चऊहिं चउहिं** इति सिद्धम् । **चतुर्भ्यः** । चतुर्+भ्यस्=चउ+भ्यस् । ४९८ सू० भ्यसः दो इत्यादेशे, १७७ सू० दकार-लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन उकारदीर्घे **चऊओ, चउओ** इति सिद्धम् । **चतुर्षु** । चतुर्+सुप्=**चऊसु, चउसु** इति पूर्ववदव साध्यम् ।

५०७—गिरीन् । गिरि+शस् । ४९३ सू० शसो लोपे, ५०७ सू० अन्त्यस्येकारस्य दीर्घे **गिरी** इति सिद्धम् । **बुद्धीः** । बुद्धि+शस् । शस्-लोपे, इकारदीर्घे **बुद्धी** एवमेव **तरून्** । तरु+शस्=**तरू, धेनूः** । धेनु+शस्, २२८ सू० नकारस्य णकारे **धेणू** एतानि रूपाणि सिध्यन्ति । **पश्य**-पेच्छ । इत्यस्य प्रक्रिया ४९३ सूत्रेऽवलोकनीया । **लुप्त इति किम्** ? शसि-प्रत्यये लुप्ते एव इदुतोः दीर्घो भवतीति भणने को हेतुरिति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारः । शस्-प्रत्ययस्यावस्थितौ प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवत्विति नियमार्थं **'लुप्ते'** इत्युक्तं, यथा—**गिरीन्** । गिरि+शस् । ५११ सू० शसः 'णो' इत्यादेशे **गिरिणो** इति सिद्धम् । एवमेव **तरून्** । तरु+शस् । पूर्ववदेव **तरुणो** इति भवति । अत्र प्रयोगद्वये शस्-प्रत्यय-लोपाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावो जातः । **पश्य=पेच्छ** इत्यस्य साधनिका ४९३ सूत्रेऽवलोकनीया । **इदुत इत्येव** । शसि लुप्तेऽपि इदुतोरेव दीर्घो भवति, नान्यस्य स्वरस्य । यथा—**वृक्षान् पश्य**=वच्छे पेच्छ । अनयोः प्रक्रिया ४९३ सूत्रे भणिता । अत्र इकारोकाराभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः । **जस्-शस् इत्यादिना** । प्रस्तुतसूत्रे ५०५ सूत्रं साकल्येनानुवर्तितं, तेन **'लुप्ते शसि'** इत्यस्य सूत्रस्यायमर्थः समजनि—लुप्ते शसि इकारोकारान्तयोः दीर्घो भवति । अत्रेयमारेका संजायते यदस्मिन् सूत्रे शसि-ग्रहणं किमर्थम् ? ६१३

सू० अदन्तवदतिदेशो भवति, तत्तुल्यकार्यकरणं ह्यतिदेशः। अदन्तेषु **वच्छ** इत्यादिषु शब्देषु शसि परे यथा दीर्घो विधीयते तथैव **गिरि, तरु** इत्यादिषु शब्देष्वपि दीर्घं विधाय **गिरी, तरू** इत्यादीनीष्टानि रूपाणि साधनीयानि, तदा प्रस्तुतसूत्रे **शसि** इत्यस्य ग्रहणस्य को लाभः? उत्तरयति वृत्तिकारो यत् ५०१ सूत्रे **जस्-शस् इत्यादिना शसि दीर्घस्य लक्ष्यानुरोधार्थो योगः**। ५०१ सूत्रेण शसि परे दीर्घस्य यो योगः—नियमो विधीयते, स लक्ष्यानुरोधार्थः, लक्ष्यस्य-प्रयोगस्य, अनुरोधः-अनुसरणमेव अर्थः-प्रयोजनं यस्य, स लक्ष्यानुरोधार्थः, यत्र दीर्घमपेक्षितं भवेत्तत्र ५०१ सूत्रेण दीर्घः करणीयः, परन्तु ५०७ सूत्रं प्रतिपादयति, यत् शसो लोपे सति इकारोकारान्तानां शब्दानां दीर्घो भवत्येव। अयं भावः-यत्र शस्-प्रत्ययस्य लोपो भवेत्तत्र नियमितरूपेण इदुतो दीर्घत्वं जायते। **लुप्ते इति तु णवि *प्रतिप्रसवार्थ-शङ्कानिवृत्त्यर्थम्**। ५०७ सूत्रे 'लुप्ते' इत्यस्य पदस्य ग्रहणाभावे का हानिरिति प्रश्नः। समादधति वृत्तिकाराः। 'णो' इत्यस्मिन् पदे परे सति-प्रतिप्रसवार्थस्य शंकायाः निवृत्त्यर्थं **लुप्ते** इत्यस्य पदस्य ग्रहणं कृतम्। प्रतिप्रसवार्थो नाम, प्राप्तस्य यो निषेधः, तन्निषेधस्य निषेधेन पूर्वप्राप्तस्य पुनः प्राप्तिः। यथा—**गिरिणो, तरुणो**, इत्यादिषु इकारोकारान्तेषु स्थलेषु ६१३ सूत्रेण अदन्तवदतिदेशेन (अदन्तवत् कार्यकरणेन) ५०१ सूत्रेण दीर्घत्वं प्राप्तं, परन्त्वेतद्दीर्घत्वं ६१४ सूत्रेण निषिध्यते, ५०७ सूत्रे "**लुप्ते**" इत्येतत्-पदेऽगृहीते सति ६१४ सूत्रेण विहित-निषेधस्य निषेधः स्यात्, तेन दीर्घत्वं स्यादेव, ७।४।१०९। सूत्रेण स्थानिवत्त्वात् शसः स्थाने विहितो—**णो** इत्यादेशोऽपि शस्-प्रत्यय एव मन्यते। अतः दीर्घ-निषेधार्थं **लुप्ते** इति-पद-ग्रहणावश्यकं किल। **लुप्ते** इत्येतत्पद-ग्रहण-बलाद् यत्र शसो लोपो भवति तत्रैव इकारोकारान्तां शब्दानां दीर्घो जायते, नान्यत्र। लोपभिन्ने 'णो' इत्यादेशे परे सति दीर्घेण न भाव्यम्। अतः **लुप्ते** इति-पद-ग्रहण-बलात् **गिरिणो, तरुणो** इत्यादिषु प्रयोगेषु दीर्घो न जातः।

५०८—गिरिः। गिरि+सि। ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकार-लोपे **गिरी** इति सिद्धम्। एवमेव-**बुद्धिः**। बुद्धि+सि=**बुद्धी**। **तरुः**। तरु+सि=**तरू**, **धेनुः**। धेनु+सि। इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे **धेणू** इत्येते प्रयोगा अपि साध्याः। **अक्लीब इति किम्?** क्लीब-भिन्ने लिङ्गे=स्त्रीलिङ्गे पुल्लिङ्गे वा इदुतो दीर्घो भवति, न तु क्लीबे, इति कथनस्य किं कारणम्? क्लीबे इदुतो दीर्घो न भवेदिति हेतोः अक्लीबे इत्युक्तम्। यथा—**दधि**+सि। १८७ सू० धकारस्य हकारे, क्लीबत्वादत्र ५०८ सू० इकारस्य दीर्घाभावे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **दहिं** इति सिद्धम्। एवमेव-**मधु**। मधु+सि=**महुं** इति भवति। अत्र क्लीबत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **साविति किम्**। यदि सिप्रत्ययः परवर्ती भवेत्तदैवास्य सूत्रस्य प्रवृत्तिः, नान्यथा। यथा-**गिरिम्**। गिरि+अम्। **बुद्धिम्**। बुद्धि+अम्। **तरुम्**। तरु+अम्। **धेणुम्**। धेनु+अम्। अत्र सिप्रत्ययपरत्वाभावात् प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **गिरिं बुद्धिं तरुं** नकारस्य णकारे **धेणुं** इति भवति। **केचित्तु दीर्घत्वं विकल्प्य**। केचिद् आचार्याः ५०८ सूत्रविहितं दीर्घत्वं वैकल्पिकं स्वीकुर्वन्ति, तेषां मते सौ परे अक्लीबे इदुतोः विकल्पेन दीर्घो भवति। दीर्घाभावपक्षे ते सेर्मकारमपीच्छन्ति। यथा **अग्निः**। अग्नि+सि। **निधिः**। निधि+सि। **वायुः**। वायु+सि। **विधुः**। विधु+सि। यत्र ५०८ सूत्रेण इकारोकारस्य दीर्घो जातस्तत्र ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकार-द्वित्वे, इकारदीर्घे, सेर्लोपे, **अग्गी**, एवमेव १८७ सू० धकारस्य हकारे **निही**, १७७ सू० यकारलोपे

---

*प्रतिप्रसवः-निषिद्धस्य विशेषावस्थायां पुनर्विधानमेवार्थः प्रयोजनं यस्याः सा प्रतिप्रसवार्था, प्रतिप्रसवार्था चासौ शंका, प्रतिप्रसवार्थशंका। तस्याः निवृत्त्यर्थं निवारणार्थं प्रतिप्रसवार्थशंका-निवृत्त्यर्थम्।

वाऊ विहू एतानि रूपाणि भवन्ति, वैकल्पिकत्वाद् यत्र दीर्घाभावस्तत्र ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अग्गिं, निहिं, वाउं, विहुं** इत्येतानि रूपाणि भवन्ति।

५०६—इदुत इतीह पञ्चम्यन्तं सम्बध्यते। ५०५ सूत्रे **इदुतो** इति पदं षष्ठ्यन्तं पठितं, परन्तु प्रस्तुतसूत्रेऽस्य पञ्चम्यन्तः प्रयोगो बोध्यः। अयं भावः—अत्र इदुतः, इत्यपादानान्वित पदं ग्राह्यं, न तु सम्बन्धोपेतम्। **अग्नयः**। अग्नि+जस्। ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, ५०९ जसः अउ अओ इत्यादेशौ डितौ भवतः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **अग्गउ, अग्गओ** इति सिद्धम्। **वायवः**। वायु+जस्। ५०९ सू० विकल्पेन जसः डउ (अउ), डओ (अओ) इत्यादेशौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वायउ वायओ** इति सिद्धम्। **तिष्ठन्ति**। ष्ठा (स्था) गतिनिवृत्तौ। स्था+अन्ति। ६८७ सू० स्थाधातोः चिट्ठ इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **चिट्ठन्ति** इति सिद्धम्। **पक्षे**। आदेशाभावपक्षे इत्यर्थः। **अग्नयः**। अग्नि+जस्=अग्गि+जस्। ५११ सू० जसः स्थाने णो इत्यादेशे **अग्गिणो** इति सिद्धम्। एवमेव—**वायवः**। वायु+जस्, १७७ सू० यकारलोपे, जसः णो इत्यादेशे **वाउणो** इति सिद्धम्। **शेषे अदन्तवद्भावात्**। यत्र ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशो भवति तत्र तु ४९३ सूत्रेण जसो लुकि, ५०१ सूत्रेण इकारस्य उकारस्य च दीर्घे—**अग्गी वाऊ** इति भवति। **पुंसि इति किम्**? प्रस्तुतसूत्रेण जसः डउ, डओ इत्यादेशौ पुंस्येव भवतः, नान्यत्र। यथा—**बुद्धयः**। बुद्धि+जस्। **धेनवः**। धेनु+जस्। अत्र स्त्रीलिङ्गत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः, ५१६ सू० जसः स्थाने ओत् (ओ) इत्यादेशे, अदन्तवदतिदेशात् ५०१ सू० इकारस्य, उकारस्य च दीर्घे **बुद्धीओ** २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे **धेणूओ** इति भवति। **दधीनि**। दधि+जस्। **मधूनि**। मधु+जस्। १८७ सू० धकारस्य हकारे, पुंस्त्वाभावात् ५०९ सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावे, ५१५ सू० जसः स्थाने सानुस्वारे इकारे, पूर्वदीर्घे च **दहीइं महूइं** इति सिद्धम्। **जस इति किम्**? प्रस्तुत-सूत्रेण विहितौ डउ डओ इत्यादेशौ जस्-प्रत्ययस्य स्थाने एव भवतः, न तु शसादिप्रत्यायानां स्थानेऽपि। यथा—**अग्नीन्**। अग्नि+शस्=अग्गि+शस्। **वायून्**। वायु+शस्=वाउ+शस्। जसः परत्वाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावे, ५११ सू० शसः विकल्पेन णो इत्यादेशे **अग्गिणो वाउणो** आदेशाभावे, ४९३ सू० शसो लुकि, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ५०१ सू० इकारस्य उकारस्य च दीर्घे **अग्गी वाऊ** इति सिद्धम्। **पश्यति**। दृश् दर्शने। दृश्+तिव्। ८५२ सू० दृशेः पेच्छ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **पेच्छइ** इति सिद्धम्। **इदुत इत्येव**। इकारादुकारात् परस्यैव जसः डउ, डओ इत्यादेशौ भवतः, नान्यत्र। यथा **वृक्षाः**। वृक्ष+जस्=वच्छा। अस्य प्रक्रिया ४९३ सूत्रेऽवलोकनीया। अत्राकारान्तत्त्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

५१०—साधवः। साधु+जस्। १८७ सू० धकारस्य हकारे, ५१० सू० विकल्पेन जसः डित् अवो इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **साहवो** आदेशाभावे ५०९ सू० जसः विकल्पेन डितौ अउ, अओ इत्यादेशौ जातौ, ततः **साहउ, साहओ** यत्र एतावादेशौ न जातौ तत्र ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० उकारस्य दीर्घे **साहू** जसो लोपाभावे ५११ सू० जसः णो इत्यादेशे **साहुणो** इति सिद्धम्। **उत इति किम्**। यदि जस्प्रत्ययः उकार-परवर्ती भवेत्तदैव तस्य डवो इत्यादेशो भवति, नान्यथेति कथनस्य किं कारणम्? उत्तरयति वृत्तिकारः। उकारेतरवर्णात् परस्य जस्-प्रत्ययस्य उक्तादेशो न भवेदित्येतदर्थं सूत्रे 'उतः' इत्युक्तन्तेन **वच्छा** इत्यत्र उकारान्तत्त्वाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **वच्छा** इत्यस्य प्रक्रिया ४९३ सूत्रेऽवलोकनीया। **पुंसीत्येव**। सूत्रोक्तः डवो इत्यादेशः पुल्लिङ्गे एव भवति नान्यत्र। यथा—**धेनवः**। धेनु+जस्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, पुंस्त्वाभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावे, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू०

उकारदीर्घे **धेणू** इति सिद्धम् । **मधूनि** । मधु+जस् । इत्यत्र १८७ सू० धकारस्य हकारे, ५१५ सू० जसः सानुस्वारे इकारे, पूर्व-दीर्घे च **महूइं** इति सिद्धम् । अत्रापि पुंस्त्वाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः । **जस इत्येव** । प्रस्तुत-सूत्रोक्त आदेशो जस्-प्रत्ययस्यैव स्थाने भवति नान्यत्र । यथा—**साधून्** । साधु+शस्=साहु+शस् । अत्र जसप्रत्ययपरत्वाभावात् प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावे५११ सू० विकल्पेन शसः स्थाने णो इत्यादेशे, आदेशाभावे अदन्तवत्त्वात् शसो लुकि, उकारदीर्घे **साहू साहुणो** इति सिद्धम् । **साहुणो** इत्यत्र ६१४ सूत्रेण दीर्घस्य निषेधो जातः । **पश्य**-पेच्छ इत्यस्य साधना ४९३ सूत्रे विहिता ।

५११—गिरयः । गिरि+जस् । ५११ सू० जसः स्थाने विकल्पेन णो इत्यादेशे **गिरिणो** इति सिद्धम् । **राजन्ते** । राज् दीप्तौ । राज्+अन्ते । ७७१ सू० राजेः स्थाने रेह इत्यादेशे, ६३१ सू० 'अन्ते' इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **रेहन्ति** इति सिद्धम् । **तरवः** । तरु+जस् । जसः स्थाने णो इत्यादेशे **तरुणो** इति सिद्धम् । **पक्षे** । णो इत्यादेशाभावपक्षे अदन्तवत्त्वात् ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० इकारस्य उकारस्य च दीर्घे **गिरी तरू** इति भवति । **गिरीन्** । **तरून्** । गिरि+शस्, तरु+शस् । शसः विकल्पेन णो इत्यादेशे **गिरिणो तरुणो,** णो इत्यादेशाभावे, शसो लुकि, पूर्वदीर्घे च **गिरी तरू** इति भवति । **पश्य**—पेच्छ इत्यस्य प्रक्रिया ४९३ सूत्रेऽवलोकनीया । **पुंसीत्येव** । प्रस्तुत-सूत्रेण विहितादेशः पुंसि-पुल्लिङ्गे एव भवति, नान्यत्र । यथा—**दधीनि** । दधि+जस्=दहीइं । **मधूनि** । मधु+जस्=महूइं, शब्दयोरनयोः प्रक्रिया ५०९ सूत्रेऽवलोकनीया । अत्र पुंस्त्वाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः । **जस्-शसोरिति किम् ?** । प्रस्तुत-सूत्रविहितं कार्यं जस्-शस्-प्रत्यययोरेव जायते नत्वन्यस्य प्रत्ययस्य । यथा—**गिरिम्** । गिरि+अम् । जस्-शस्-प्रत्यययोरभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **गिरिं** इति भवति । एवमेव—**तरुम्** । तरु+अम्=**तरुं** इति भवति । **इदुत इत्येव** । इदुतः परयोरेव जस्-शस्—प्रत्यययोः स्थाने णो इत्यादेशो जायते, नान्यत्र । यथा—**वृक्षाः** । वृक्ष्+जस्=**वच्छा** । **वृक्षान्** । वृक्ष+शस्=**वच्छे** । प्रक्रिया ४९३ सूत्रे द्रष्टव्या । अत्र इदुतोरभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः । **जस्-शसोरिति द्वित्वम्** । ५०५ सूत्रतोऽनुवर्तितम् '**इदुतः**' इति निमित्तत्वमापन्नं पदमेकवचनान्तं, परन्तु ५११ सूत्रे उपात्तं "**जस्-शसोः**" इति स्थानित्वमापन्नं पदं द्विवचनान्तम् । उक्तयोः स्थानिनिमित्तभूतयोः पदयोः वचनपार्थक्यग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारो यद् अत्र "**यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**" इति नियमो न प्रवर्तते । समसम्बन्धिः विधिः यथासंख्यं न भवतीति स्थानिनिमित्तभूतपदयोः विभिन्नवचनत्वादत्र । एवमेव उत्तरसूत्रे अग्रिसूत्रे [५१२ सूत्रे] अपि समसम्बन्धिविधिः यथासंख्यं न भवतीति समवगन्तव्यम् ।

५१२—गिरेः । गिरि+ङसि (ङस्) । ५१२ सू० ङसि-ङस्-प्रत्यययोः स्थाने 'णो' इत्यादेशे वैकल्पिके **गिरिणो** इति भवति । एवमेव—**तरोः** । तरु+ङसि (ङस्)=**तरुणो, दध्नः** । दधि+ङसि (ङस्) धकारस्य हकारे **दहिणो, मधुनः** । मधु+ङसि (ङस्) धकारस्य हकारे **महुणो** इति भवति । अत्र ६१४ सू० दीर्घस्य निषेधो जातः । **आगतः** । आगत+सि=आगओ, प्रक्रिया २०९ सूत्रे ज्ञेया । **विकारः** । विकार+सि । १७७ सू० ककारस्य स्थाने लोपादेशे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **विआरो** इति भवति । एतेषां पदानां—**गिरेः, आगतः, दध्नः विकारः** । अनया रीत्या सम्बन्धो योज्यः । **पक्षे** । यत्र ५१२ सूत्रेण 'णो' इत्यादेशो न जातस्तत्र ङसेः स्थाने ४९७ सू० "**दो 'दु' हिन्तो**" इत्यादेशा जाताः, पूर्वाकारस्य दीर्घः, १७७ सू० दकारस्य लोपे **गिरीओ गिरीउ गिरीहिन्तो** एवमेव **तरूओ तरूउ तरूहिन्तो** इति रूपाणि भवन्ति । **हिलुकौ निषेत्स्येते** । ४९७ सूत्रेण ङसेः स्थाने हि, लुक् इत्यादेशावपि भवतः, परन्तु

६१५ तथा ६१६ सूत्राभ्यां तयोः निषेधो भवति। फलतोऽत्र ङसेः हिलुकावादेशौ न संजातौ। **गिरेः। तरोः।** गिरि+ङस्, तरु+ङस्। **णो** इत्यादेशाभावे ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९९ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **गिरिस्स तरुस्स** इति भवति। **ङसिङसोरिति किम्?** प्रस्तुतसूत्रेण ङसिङसोः स्थाने णो इत्यादेशो विधीयते, परन्तु यत्र ङसिङसोरभावस्तत्र नैतस्य सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति। यथा—**गिरिणा, तरुणा**। गिरि+टा, तरु+टा। ङसिङसोरभावात् ५१२ सू० णो इत्यादेशाभावे ५१३ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने णा इत्यादेशे **गिरिणा तरुणा** इति भवति। **कृतम्**=कयं, प्रक्रिया ३८५ सूत्रे ज्ञेया। **पुंक्लीबे इति किम्** ? प्रस्तुतसूत्रेण पुंसि, क्लीबे चैव ङसिङसोः स्थाने 'णो' इत्यादेशो विधीयते, न तु स्त्रीलिङ्गेऽपि। यथा—**बुद्धेः, धेनोः**। बुद्धि+ङसि (ङस्)। धेनु+ङसि (ङस्)। पुंक्लीबत्वाभावादत्र ५१२ सू० 'णो' इत्यादेशाभावे ५१८ सू० ङसिङसोः अदादेशे पूर्वदीर्घे च **बुद्धीअ** २२८ सू० नकारस्य णकारे **धेणूअ** इति सिद्धम्। **लब्धम्**। लब्ध+सि, ३५० सू० बकारस्य लोपे, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-धकारस्य स्थाने दकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **लद्धं** इति भवति। **समृद्धिः**। समृद्धि+सि। १२८ सूत्रेण ऋकारस्य इकारे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **समिद्धी** इति भवति। **इदुत इत्येव**। इदुतः परयोरेव ङसिङसोः स्थाने णो इत्यादेशो भवति, नान्यत्र। यथा—**कमलात्**। कमल+ङसि। इदुतोऽभावादत्र ङसेः स्थाने 'णो' इत्यादेशाभावे ४९७ सू० ङसेः 'दो' इत्यादेशे, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे, १७७ सू० दकारस्य लोपे **कमलाओ** इति सिद्धम्। **कमलस्य**। कमल+ङस्। अत्रापि इदुतोऽभावात् ङसः स्थाने णो इत्यादेशाभावे, ४९९ सू० ङसः स्थाने 'स्स' इत्यादेशे **कमलस्स** इति सिद्धम्।

५१३—गिरिणा ग्रामण्या खलप्वा तरुणा दध्ना मधुना। गिरि+टा, ग्रामणी+टा, खलपू+टा, तरु+टा, दधि+टा, मधु+टा। ५१३ सू० टा-प्रत्ययस्य 'णा' इत्यादेशे **गिरिणा**। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ५३२ सू० ईकारस्य ऊकारस्य च ह्रस्वे **गामणिणा खलपुणा तरुणा** १८७ सू० धकारस्य हकारे **दहिणा, महुणा** इति भवति। **टा इति किम्** ? टाप्रत्ययस्य स्थाने णादेशो भवतीति कथनेन टा-भिन्न-प्रत्ययस्य णादेशो न भविष्यति। यथा—**गिरयः, तरवः**। गिरि+जस्, तरु+जस्। अत्र टा-प्रत्ययाभावात् णा-देशाभावे जसो लुकि, पूर्वस्वरस्य दीर्घे **गिरी, तरू** इति सिद्धम्। **दधि। मधु**। दधि+अम्, मधु+अम्। धकारस्य हकारः, टा-प्रत्ययाभावात् णादेशाभावे, अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **दहिं महुं** इति सिद्धम्। **पुंक्लीब इत्येव**। पुंसि क्लीबे चैव णादेशो भवितुं शक्नोति, न तु स्त्रीलिङ्गेऽपि, यथा—**बुद्ध्या। धेन्वा कृतम्**। बुद्धि+टा, धेनु+टा=**बुद्धीअ धेणूअ कयं**। एतेषां शब्दानां प्रक्रिया ५१२ सूत्रेऽवलोकनीया। अत्र स्त्रीलिङ्गत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **इदुत इत्येव**। इदुतः परस्यैव टा-प्रत्ययस्य णादेशो भवति, नतु अकारात् परस्यापि, यथा—**कमलेन**। कमल+टा। इदुतोरभावादत्र णादेशाभावे ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **कमलेण** इति भवति।

५१४—वनम्। वन+सि। २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **वणं** इति भवति। **प्रेम**। प्रमन्+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६९ सू० मकारद्वित्वे, ११ सू० नकारलोपे, पूर्ववदेव **पेम्मं** इति भवति। **दधि, मधु**। दधि+सि, मधु+सि। १८७ सू० धकारस्य हकारे, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **दहिं महुं** इति सिद्धम्। **दहि महु इति तु**। दहि महु एतौ शब्दौ तु दधि, मधु इति संस्कृतव्याकरण-सिद्ध-शब्दाभ्यामेव १८७ सू० धकारस्य हकारे कृते निष्पन्नौ भवतः। नात्र प्रस्तुतसूत्रस्य किमपि कार्यम्। केचिदाचार्याः अत्र सिप्रत्ययस्य स्थाने अनुनासिकमपीच्छन्ति, फलतस्तेषामाचार्याणां मते दहिँ, महुँ इति रूपेऽपि जायेते। **क्लीब इति किम्** ? प्रस्तुतसूत्रेण क्लीबे एव

सेमकारो विधीयते, न तु पुंसि, स्त्रीलिङ्गे च। यथा—**बालः**। बाल+सि। क्लीबत्वाभावादत्र प्रस्तुत-सूत्रेण सेर्मकाराभावे, ४९१ सू० सेर्डोः, इति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे **बालो** इति भवति। **बाला**। बाला+सि। स्त्रीलिङ्गत्वादत्र सेर्मकाराभावे १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **बाला** इति भवति। **स्वरादिति**। प्रस्तुत (५१४) सूत्रे "**स्वरात्**" इत्यस्य पदस्य ग्रहणेन ५०५ सूत्रे पठितस्य '**इदुतः**" इति पदस्यात्रानुवृत्तेर्निवृत्तिर्भवति।

५१५—इँ। सानुनासिकस्य इकारस्योदाहरणं प्रदीयते। यथा—**यानि**। यद्+जस्। २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ५१५ सू० जसः सानुनासिके इकारे, पूर्वदीर्घे च **जाइँ** इति सिद्धम्। **वचनानि**। वचन+जस्। १७७ सू० चकारस्य लोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, प्रस्तुतसूत्रेण जसः सानुनासिके इकारे पूर्वदीर्घे च **वयणाइँ** इति सिद्धम्। **अस्माकम्**। अस्मद्+आम्। ६०३ सू० आमा सह अस्मदः अम्हे इत्यादेशे **अम्हे** इति सिद्धम्। **इं**। सानुस्वारस्य इकारस्योदाहरणं, यथा—**उन्मीलन्ति**—उत्पूर्वकः मील्-धातुः उन्मीलने—विकासे। उद्मील्+अन्ति। ३४८ सू० दकारस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः 'न्ति' इत्यादेशे **उम्मीलन्ति** इति सिद्धम्। **पङ्कजानि**। पङ्कज+जस् (शस्)। इत्यत्र १७७ सू० जकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, ५१५ सू० जसः (शसः) सानुस्वारे इकारे पूर्वदीर्घे च **पङ्कयाइं** इति सिद्धम्। **तिष्ठन्ति**=चिट्ठन्ति, इत्यस्य प्रक्रिया ५०९ सूत्रे ज्ञेया। **पश्य**=पेच्छ, प्रक्रिया ४९३ सूत्रे ज्ञेया। **दधीनि**। दधि+जस् (शस्)। १८७ सू० धकारस्य स्थाने हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण जस्शसोः सानुस्वारे इकारे पूर्वदीर्घे च **दहीइं** इति सिद्धम्। **भवन्ति**। भू सत्तायाम्। भू+अन्ति। ७३२ सू० भुवः 'हु' इत्यादेशे, अन्तेः न्ति इत्यादेशे **हुन्ति** इति सिद्धम्। **भुंक्ष्व**। भुज् भोजने। भुज्+हि। ७८१ सू० भुजः स्थाने 'जेम' इत्यादेशे, ६६२ सू० हि-स्थाने 'सु' इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि—**जेम** इति सिद्धम्। **मधूनि**। मधु+शस्। धकारस्य हकारे, शसः सानुस्वारे इकारे, पूर्वदीर्घे च **महूइं** इति सिद्धम्। **मुञ्च**। संस्कृत-भाषा-शब्दोऽयं प्राकृतभाषायामेवमेव प्रयुज्यते। **णि**। णि इत्यादेशस्योदाहरणं, यथा—**फुल्लन्ति**। फुल्ल् विकसने। फुल्ल्+अन्ति। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, अन्तेः 'न्ति' इत्यादेशे, **फुल्लन्ति** इति सिद्धम्। **पङ्कजानि**। पङ्कज+जस्=पङ्कय+जस्। प्रस्तुतसूत्रेण जसः स्थाने 'णि' इत्यादेशे, पूर्वदीर्घे च **पङ्कयाणि** इति सिद्धम्। **गृहाण**। ग्रह् उपादाने। ग्रह्+हि। ८८० सू० ग्रहः 'गेण्ह' इत्यादेशे, हि—प्रत्ययस्य स्थाने 'सु' इत्यादेशे, सोर्लुकि **गेण्ह** इति सिद्धम्। **भवन्ति**। भू+अन्ति=**हुन्ति**। **दधीनि**। दधि+जस्, शस्। जसः शसश्च स्थाने णि इत्यादेशे पूर्वदीर्घे च **दहीणि**। **भुंक्ष्व**। भुज्+हि=**जेम**। इत्येतानि रूपाणि प्रस्तुतसूत्रे एव पूर्वं साधितानि। **मधूनि**=महूणि, इति रूपं **दहीणि**—वत् साध्यम्। **क्लीब इत्येव**। प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिः क्लीबे—नपुंसकलिङ्गे एव जायते, नान्यत्र। यथा—**वृक्षाः**, **वृक्षान्**। वृक्ष+जस्, वृक्ष+शस्=**वच्छा**, **वच्छे**। अनयोः रूपयोः साधनिका ४९३ सूत्रे द्रष्टव्या। पुल्लिङ्गत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **जस्-शस इति किम्** ?। प्रस्तुतसूत्रविहिता आदेशाः जस्-शसोरेव स्थाने भवितुं शक्नुवन्ति, नान्यत्र। यथा—**सुखम्**। सुख+सि। इत्यत्र १८७ सू० खकारस्य हकारे, जस्-शस्-प्रत्ययाभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **सुहं** इति भवति।

५१६—प्रत्येकम्। जस्-शसोः स्थाने प्रत्येकम्=एकैकस्य उत्, ओत् इत्यादेशौ भवतः। **अयं** भावः—जसः स्थानेऽपि एतौ द्वावादेशौ भवतः। तथा शस्-प्रत्ययस्य स्थानेऽपि एतावादेशौ जायेते। **वचनभेदो यथासंख्यनिवृत्त्यर्थः**। प्रस्तुतसूत्रे ५१५ सूत्रतः "**जस्-शसः**" इत्येतस्य पदस्यानुवृत्तिर्गृह्यते,

पदमिदमेकवचनान्तं वर्तते, परन्तु प्रस्तुतसूत्रे पठितं "**उदौतौ**" इत्यादेशरूपपदं द्विवचनान्तं विद्यते, स्थानि-आदेश-भूत-पदयोः मध्ये इयं वचन-गत-भिन्नता किमर्थं दृश्यते ? इति प्रश्नः। प्रश्नैतस्य समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारोऽभणत्, यदत्र "**यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**" न्यायोऽयं नाद्रियते। अयं भावः—जसः स्थाने उकारः, शसश्च स्थाने ओकारो भवतीति समसम्बन्धिविधिनिवृत्त्यर्थं वचनभेद उपन्यस्तः। **मालाः, बुद्धयः, बुद्धीः सख्यः, धेनवः, धेनूः वध्वः**। माला+जस् (शस्), बुद्धि+जस् (शस्), सखी+जस् (शस्), धेनु+जस् (शस्), वधू+जस् (शस्)। ५१६ सू० जस्शसोः स्थाने प्रत्येकं **उत् ओत्** इत्यादेशौ वैकल्पिकौ भवतः, पूर्वदीर्घे च **मालाउ मालाओ, बुद्धीउ बुद्धीओ** सखीउ सखीओ १८७ सू० खकारस्य हकारे **सहीउ सहीओ** धेनूउ धेनूओ २२८ सू० नकारस्य णकारे **धेणूउ धेणूओ** वधूउ वधूओ १८७ सू० धकारस्य हकारे **वहूउ वहूओ** इति भवति। **पक्षे**। उत् ओत् इत्यादेशयोरभावपक्षे ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९३ सू० जस्-शसोर्लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे—**माला, बुद्धी, सही, धेणू, वहू** इति भवति। **स्त्रियामिति किम्** ?। "स्त्रियाम्" इति कथनात् पुंसि क्लीबे च प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति। यथा—**वृक्षाः**। वृक्ष+जस् (शस्)=**वच्छा**। अस्य प्रक्रिया ४९३ सूत्रेऽवलोकनीया। अत्र पुल्लिङ्गत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **जस्-शस इत्येव**। प्रस्तुतसूत्रविहितावादेशौ जस्-शसोरेव स्थाने भवतः, नान्यत्र। यथा—**मालया**। माला+टा। जस्-शसोरभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। ततः ५१८ सू० टा-प्रत्ययस्य स्थाने एत् (ए) इत्यादेशे **मालाए** इति भवति। **कृतम्**=कयं अस्य प्रक्रिया ५१२ सूत्रे द्रष्टव्या।

५१७—एषा। एतद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य स्थाने सकारे, ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, सन्धौ, एसा+सि इति जाते, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **एसा** इति भवति। **हसन्ती**। हस् हासे। हस्+शतृ। इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, ५२१ सू० ङी (ई) प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, सिप्रत्यये, ५१७ सू० सिप्रत्ययस्य वैकल्पिके आकारे **हसन्तीआ**, आकारादेशाभावे पूर्ववदेव सेर्लोपे **हसन्ती** इति भवति। **गौर्यः**। गौरी+जस् (शस्)। १५९ सू० औकारस्य ओकारे, ५१७ सू० जस्शसोः विकल्पेन आकारे **गोरीआ** इति भवति। **तिष्ठन्ति**=चिट्ठन्ति, प्रक्रिया ५०९ सूत्रे ज्ञेया। **पश्य**=पेच्छ, प्रक्रिया ४९३ सूत्रे ज्ञेया। **पक्षे**। आकाराभावे ५१६ सू० जस्-शसोः ओकारे **गोरीओ** इति भवति।

५१८—प्रत्येकम्। टा-ङसि-ङस्-ङीनां चतुर्णामपि प्रत्ययानां प्रत्येकम् (एकैकस्य) अत्, आत्, इत्, एत् एते चत्वारः आदेशा भवन्ति। अयं भावः, यथा टाप्रत्ययस्य स्थाने एते चत्वार आदेशा भवन्ति, एवमेव ङसि-ङस्-ङीनामपि प्रत्येकं चत्वार आदेशा जायन्ते। **मुग्धया, मुग्धायाः, मुग्धायाम्**। मुग्धा+टा, मुग्धा+ङस्, मुग्धा+ङि। इत्यत्र ३४८ सू० गकारस्य लोपे, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, ५१८ सू० टा-ङस्-ङीनां प्रत्येकमदाद्यादेशेषु जातेषु पूर्वदीर्घे च **मुद्धा-अ *मुद्धाइ, मुद्धाए** एतानि त्रीणि रूपाणि भवन्ति। **कृतम्**=कयं,प्रक्रिया ५१६ सूत्रे ज्ञेया। **मुखम्**=मुहं,प्रक्रिया ४३५ सूत्रे ज्ञेया। **स्थितम्**=ठिअं, ५०५ सूत्रे प्रक्रियाऽस्य ज्ञेया। **कप्रत्यये तु**। मुग्धाशब्दाद् यत्र क-प्रत्ययो भवति, तत्र तु - **मुग्धिकया, मुग्धिकायाः, मुग्धिकायाम्**=मुद्धिआ-अ, मुद्धिआ-इ, मुद्धिआ-ए एतानि रूपाणि जायन्ते। अत्र १७७ सूत्रेण कप्रत्ययस्य ककारस्य लोपोऽभवत्। **कमलिकया, कमलिकायाः, कमलिकायाम्**=कमलिका+टा, कमलिका+ङस्, कमलिका+ङि=**कमलिआ-अ, कमलिआ-इ, कमलिआ-ए**। एतेषां पदानां प्रक्रिया **मुद्धिआ**-वज् ज्ञेया। **बुद्ध्या, बुद्ध्याः, बुद्ध्याम्**। बुद्धि+टा, बुद्धि+ङस्,

*५१९ सूत्रेण आकारान्तशब्देभ्यः आदादेशो निषिद्धः।

बुद्धि+ङि । प्रस्तुतसूत्रेण टा-ङस्-ङीनां प्रत्येकमदादय आदेशाः, पूर्वदीर्घश्च, ततः—**बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए** एतानि चत्वारि रूपाणि भवन्ति । **कृतम्**=कयं, ५१६ सूत्रे भणिता प्रक्रिया । **विभवः** । विभव+सि । १८७ सू० भकारस्य हकारे, ४९१ सू० सेर्डोः,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **विहवो** इति भवति । **सख्या सख्याः, सख्याः सख्याम्** । सखी+टा, सखी+ ङसि, सखी+ङस्, सखी+ङि । १८७ सू० खकारस्य हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण टा-ङसि-ङस्-ङि—प्रत्ययानां स्थाने अत्, आत्, इत्, एत् इत्यादेशाः, ततः— **सहीअ, सहीआ, सहीइ, सहीए** इति भवति । **वचनम्** । वचन+सि । १७७ सू० चकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **वयणं** इति भवति । **धेनुना, धेनोः, धेनोः, धेन्वाम्** । धेनु+टा, धेनु+ङसि, धेनु+ ङस्, धेनु+ङि । इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, पूर्ववदेव टादिप्रत्यानामदाद्यादेशेषु जातेषु पूर्वदीर्घे च—**धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए** इति भवति । **दुग्धम्=दुद्धं** । अस्य प्रक्रिया ३६० सूत्रेऽवलोकनीया । **वध्वा, वध्वाः, वध्वाम्** । वधू+टा, वधू +ङस्, वधू+ङि । १८७ सू० धकारस्य स्थाने हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण टादिप्रत्ययानां प्रत्येकमदाद्यादेशेषु **वहूअ, वहूआ, वहूइ, वहूए** इति भवति । **भवनम्** । भवन+सि । नकारस्य णकारे, सेर्मकारे, मकारानु-स्वारे **भवणं** इति भवति । **ङसेस्तु वा** । प्रस्तुत (५१८) सूत्रे—"**ङसेः पुनरेते सप्राग्दीर्घा वा भवन्ति**" इति भणितमतएव ङसि-प्रत्ययस्य स्थाने अदादय आदेशाः वैकल्पिकाः भवन्ति । यत्रैते आदेशाः न भवन्ति तत्र ६१३ सूत्रेण अदन्तवदतिदेशात् ४९७ सूत्रेण ङसेः स्थाने दो, दु, हिन्तो इत्येते आदेशाः भविष्यन्ति, ५०१ सूत्रेण दीर्घोऽपि भविष्यति । ततः १७७ सूत्रेण दकारलोपे ङसिप्रत्ययस्यैतानि रूपाणि संजायन्ते, यथा—**१—मुद्धाअ, मुद्धाइ, मुद्धाए, मुद्धाओ, मुद्धाउ, मुद्धाहिन्तो, एवमेव** । **२ - बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए, बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धीहिन्तो** । **३—सहीअ, सहीआ, सहीइ, सहीए, सहीओ, सहीउ, सहीहिन्तो** । **४—धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए, धेणूओ, धेणूउ, धेणूहिन्तो** । **५—वहूअ, वहूआ, वहूइ, वहूए, वहूओ वहूउ, वहूहिन्तो** प्रक्रिया पूर्ववदेव ज्ञेया । **आगतः**=आगओ । अस्य प्रक्रिया ५०५ सूत्रेऽवलोक-नीया । यथा **सखी**—शब्दस्य ङसिप्रत्ययस्य सप्त रूपाणि भवन्ति, तथैव सप्त रूपाणि **रति**-शब्दस्यापि बोधव्यानि । यथा--**रत्याः** । रति+ङसि । १७७ सू० तकारस्य लोपे,पूर्ववदेव अदन्तवदतिदेशात्,५०१ सू० इकारदीर्घे जाते **रईअ रईआ रईइ रईए रईओ रईउ रईहिन्तो** एतानि रूपानि भवन्ति । **स्त्रियामित्येव** । प्रस्तुत-सूत्रेण टादिप्रत्ययानां स्थाने येऽदादय आदेशाः भवन्ति ते स्त्रीलिङ्गे एव भवन्ति, नान्यत्र । यथा—**वृक्षेण, वृक्षात्, वृक्षस्य, वृक्षे** । वृक्ष+टा, वृक्ष+ ङसि, वृक्ष+ङस्, वृक्ष+ङि=**वच्छेण, वच्छाओ, वच्छस्स, वच्छम्मि** । स्त्रीलिङ्गत्वाभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्यभावः । **टादीनामिति किम्** ? । प्रस्तुत-सूत्रेण येऽदाद्यादेशाः निर्दिष्टास्ते टादिप्रत्ययानां स्थाने एव जायन्ते, नान्यत्र । यथा —**मुग्धाः, बुद्धयः बुद्धीः, सख्यः, वध्वः, धेनवः धेनूः,** । मुग्धा+जस् (शस्), बुद्धि+जस् (शस्), सखी+जस् (शस्), धेनु+ जस् (शस्), वधू+जस् (शस्) । अत्र टादिप्रत्ययानामभावात् ५१८ सूत्रेण विहिता अदादयः आदेशा न जाताः, किन्तु ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९३ सू० जस्-शसोर्लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरय दीर्घे **मुद्धा, बुद्धी, सही, धेणू, वहू** एते प्रयोगाः पूर्ववदेव निष्पन्नाः भवन्ति ।

५१९—मालया, मालायाः, मालायाः, मालायाम् । माला+टा, माला+ङसि, माला+ङस, माला+ङि । इत्यत्र ५१८ सूत्रेण प्राप्तेषु अदाद्यादेशेषु मध्ये ५१९ सूत्रेण आत् इत्यादेशो निषिद्धः, शेषाः अत्, इत्, एत् इत्यादेशत्रयाः **संजाताः** । ततः—**मालाअ, मालाइ, मालाए** एतानि त्रीणि रूपाणि भवन्ति । **कृतम्**—कयं आदिपदैरत्र **विभक्तीनां पार्थक्यं** दर्शितम् । यथा – **मालया कृतम्** इति तृतीयाविभक्तेः-

निर्देशः। **मालायाः आगतः इति** पञ्चमीविभक्तिः। **मालायाः सुखम्** इति षष्ठीविभक्तिः। **मालायां स्थितम्** इति सप्तमी। **कयं** ३८५ सूत्रे, **सुहं** ५१५ सूत्रे, **ठिअं** ५०५ सूत्रे, **आगओ** १७७ सूत्रे साधितमेव।

५२० - साधनी। साध्-धातुः संसिद्धौ। साध्+अनट् (अन)=साधन, इत्यत्र २।४।२०। सूत्रेण प्राप्तः ङी-प्रत्ययः ५२० सू० वैकल्पिको भवति। ततः साधन+ङी (ई) इति स्थिते, १८७ सू० धकारस्य हकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १० सू० नकाराकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये जाते, सिप्रत्यये, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **साहणी** इति सिद्धम्। **कुरुचरी**। कुरुषु चरतीति कुरुचरः। कुरुचर+अण्=कुरुचर, इत्यत्र उक्तसूत्रेण प्राप्तः ङीप्रत्ययः प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिको जातः, पूर्ववदेव कुरुचरी+सि, इति स्थिते, सेर्लोपे, **कुरुचरी** इति सिद्धम्। **पक्षे**। ङीप्रत्ययाभावपक्षे।२।४।१८। सूत्रेण आप्-(आ)—प्रत्यये, सन्धौ, सेर्लोपे **साहणा कुरुचरा** इति भवति।

५२१—अजातिवाचिनः। ये शब्दाः जातिवाचकाः न भवन्ति ते अजातिवाचिनो भण्यन्ते। जातिशब्दस्य कोऽर्थः? एतदप्यवगन्तव्यम्। सिद्धान्तकौमुद्यां जातेरिदं लक्षणमुक्तम्—

आकृतिग्रहणा जातिः, लिङ्गानां च न सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या, गोत्रं च चरणैः सह॥१॥

सिद्धान्तकौमुद्याः बालमनोरमा-व्याख्यायामुक्तश्लोकस्यायमाशयोऽभिव्यक्तः—आकृतिः-अवयवसंनिवेश-विशेषः [अवयवानां नानाविधरचनेति भावः] गृह्यतेऽनेनेति ग्रहणं व्यञ्जकम्-प्रकाशकम्। आकृतिग्रहणं यस्याः सा आकृतिग्रहणा जातिः। यथा—**तटी**। जलसमीपप्रदेश आकृतिविशेषविशिष्टः तटः, अस्तटत्वम्, आकृतिव्यङ्ग्यत्वाज्जातिः, फलतः तटः जातिवाचक-शब्दोऽवगन्तव्यः। **लिङ्गानां च न सर्वभाक्, सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या**। असर्वलिङ्गत्वे सत्येकस्यां व्यक्तौ कथनाद् व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिः। यथा वृषली (शूद्री)। वृषलत्वं ह्यसर्वलिङ्गम्, नपुंसकत्वाभावात्। एकस्यां व्यक्तौ वृषलत्वे उपदिष्टे सति तदपत्य-सहोदरादिषु तदुपपदेशं विनापि तस्य (वृषलत्वस्य) सुग्रहत्वात् सकृदाख्यातनिर्ग्राह्यं चेति। **गोत्रं च चरणैः सह**। गोत्रम्—अपत्यं बोध्यम्, चरणः—वेदशाखाध्येता। अपत्यप्रत्ययान्तः शाखाध्येतृवाची च शब्दो जातिकार्यं लभते-प्राप्नोतीत्यर्थः। यथा—उपगोरपत्यं स्त्री **औपगवी**। **कठी**—कठेन प्रोक्तमधीयानेत्यर्थः। कठशब्दस्य चरणत्वात्-शाखाध्तृयेत्वात् जातिवाचकत्वम्। जातिवाचित्वादेवास्माद् ङीष्-प्रत्ययो जातः। अजातिवाचकशब्दानामुदाहरणानि। यथा—**नीलः**। अजातिवाचकत्वादत्र नीलशब्दे ५२१ सू० स्त्रीत्वविवक्षायां वैकल्पिकः ङीप्रत्ययः, १० सू० अकारलोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, सेर्लोपे—**नीली** ङीप्रत्ययाभावे आप्-प्रत्यये, पूर्ववदेव **नीला** इति भवति। **शूर्पणखा**। शूर्प इव नखाः यस्याः सा शूर्पणखा। शूर्पणख+सि। इत्यत्र २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वं, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, सुप्पणख+सि इति जातः, ततः १८७ सू० खकारस्य हकारः, स्त्रीत्वविवक्षायां विकल्पेन ङीप्रत्ययः, पूर्ववदेव सेर्लोपे **सुप्पणही** आप्-प्रत्यये **सुप्पणहा** इति सिद्धम्। **अनेन, अस्याः, अस्याः, अस्याम्**। इदम्+टा, इदम्+ङसि, इदम्+ङस्, इदम्+ङि। ५६१ सू० इदमः 'इम' इत्यादेशः, विकल्पेन ङी-प्रत्ययः, ङी-प्रत्ययाभावे आप्-(आ)—प्रत्ययः, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये इमी+टा, इमी+ङसि, इमी+ङस्, इमी+ङि, इमा+टा, इमा+ङसि, इमा+ङस्, इमा+ङि इति जाते। ५१८ सू० टादि—विभक्तीनां स्थाने एत् (ए) इत्यादेशे, ततः टाप्रत्ययस्य-**इमीए, इमाए**। ङसिप्रत्ययस्य—**इमीए इमाए**। ङस्प्रत्ययस्य—**इमीए इमाए**। ङिप्रत्ययस्य **इमीए इमाए** इति रूपाणि सिद्धानि। **आसाम्**। इदम्+आम्=इमी+आम्, इमा+आम्। इत्यत्र ४९५ सू० आमः स्थाने 'ण' इत्यादेशः, २७ सू०

णकारस्य अन्तेऽनुस्वारागमे **इमीणं इमाणं** इति सिद्धम् । **एतया, एतस्याः, एतस्याः, एतस्याम्** । एतद् +टा, एतद्+ङसि, एतद्+ङस्, एतद्+ङि इत्यत्र १७७ सू० तकारस्य लोपे, ११ सू० दकारस्य लोपः, स्त्रीत्वविवक्षायां विकल्पेन ङी-प्रत्यये, ङी-प्रत्ययाभावे तु आप्प्रत्यये, स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, टादि-प्रत्ययाः, ५१८ सू० टा-दिप्रत्ययानां एत् इत्यादेशे **एईए एआए** इति भवति । **एतासाम्** । एतद्+आम्=एती+आम्, एता+आम । तकारस्य लोपे, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९५ सू० आमः ण इत्यादेशः, २७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे **एईणं एआणं** इति सिद्धम् । **अजातेरिति किम् ?**। **अजातेः** इतिपाठात् निम्नोक्तानां जातिवाचिनां शब्दानां ङी-प्रत्ययो विकल्पेन न जातः । तथाहि—**करिणी** । करिणी+सि । जातिवाचकत्वात् २२१ सू० विकल्पेन ङी-प्रत्ययो न जातः, सेर्लोपे **करिणी** इति सिद्धम् । **अजा** । जातिवाचकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ आप्-(आ)-प्रत्ययः, सिप्रत्ययः, १।१।३७ सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **अजा** इति सिद्धम् । **एलका** । एलका+सि । १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, सेर्लोपे **एलया** इति सिद्धम् । **अप्राप्ते विभाषेयम्** । नीलादिशब्देषु ङीप्रत्ययस्य अप्राप्तिरासीत् किन्तु प्रस्तुतसूत्रेणात्र अप्राप्तोऽपि ङीप्रत्ययो विकल्पेन विहितः । यत्र ङीप्रत्ययस्य प्राप्तिर्भवत्येव तत्र त्वसौ संस्कृतभाषा-तुल्यं नित्यमेव जायते । अतएव गौर-कुमार-शब्दाभ्यां नित्यो ङी-प्रत्ययो जातः । यथा—**गौरी** । गौरी+सि । **कुमारी** । कुमारी+सि । सेर्लोपे **गोरी कुमारी** इति भवति ।

५२२—काः । किम्+जस् (शस्) ५६० सू० किमः स्थाने 'क' इत्यादेशः, ५२२ सू० विकल्पेन ङी-प्रत्ययः, १० सू० स्वरस्य लोपः, अज्झीने परेण संयोज्ये-की+जस् (शस्)इति स्थिते, ५१६ सू० जस्-शसोः ओकारे **कीओ** यत्र ङीप्रत्ययो न जातस्तत्र आप्-प्रत्यये, सन्धौ **काओ** इति भवति । **कया, कस्याः, कस्याः, कस्याम्** । किमः कः इत्यादेशः, ङी-प्रत्यये, तदभावे आप्-प्रत्यये की+टा, की+ङसि, की+ङस् । की+ङि । का+टा, का+ङसि, का+ङस्, का+ङि इति जाते, ततः ५१८ सू० टाङसिङस्ङीनां एत् (ए) इत्यादेशे **कीए काए** इति सिद्धम् । **कासु** । किम्+सुप्=की+सु, का+सु=**कीसु, कासु** इति भवति । **याः** । यद्+जस् (शस्) २४५ सू० यकारस्य जकारः, ११ सू० दकारस्य लोपः, प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन ङी-प्रत्यये, तदभावे आप्-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, जस्-शसोः ओकारे **जीओ जाओ** इति भवति । **ताः** । तद्+जस् (शस्) । ११ सू० दकारलोपे, वैकल्पिके ङीप्रत्यये, तदभावे तु आप्-प्रत्यये, पूर्ववदेव **तीओ ताओ** इति भवति । **अस्यमामीति किम् ?** । सि-अम्-आम्-वर्जिते स्यादौ प्रत्यये परे एव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा । यथा—**का** । किम् +सि । ५६० सू० किमः क इत्यादेशे, सिप्रत्ययस्य सत्त्वात् प्रस्तुतसूत्राप्रवृत्तौ, आप्-प्रत्यये, सन्धौ, सेर्लोपे **का** इति भवति । **या** । यद्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, पूर्ववदेव **जा** इति भवति । **सा** । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **सा** इति भवति । **काम्** । किम्+अम्= क+अम् । अम्-प्रत्ययस्य परत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ आप्-प्रत्यये, सन्धौ, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कं** इति भवति । **याम्** । यद्+अम् । यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, पूर्ववदेव **जं** इति भवति । **ताम्** । तद+अम । पूर्ववदेव **तं** इति साध्यम् । **केषाम्** । किम्+आम्=क+आम् । प्रस्तुतसूत्रस्य अप्रवृत्तौ आप्-प्रत्यये, सन्धौ ४९५ सू० आमो णादेशे **काण** इति भवति । **येषाम्** । यद्+आम् । पूर्ववदेव—**जाण** तथा **तेषाम्** । तद्+आम् । पूर्ववदेव **ताण** इति भवति ।

५२३—छाया । छाया+सि । २४९ सू० यकारस्य विकल्पेन हकारे, ५२३ सू० आप्-प्रसंगे विकल्पेन ङी-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, यत्र ङी-प्रत्ययाभावस्तत्र हकारोऽपि

न जातः, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे—**छाही** ङीप्रत्ययाभावे **छाया** इति सिद्धम् । **हरिद्रा** । हरिद्रा+सि । ८८ सू० इकारस्य अकारे, २५४ सू० रेफस्य लकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० दकारस्य द्वित्वे, आप्-प्रसंगे विकल्पेन ङी-प्रत्यये, पूर्ववदेव—**हलद्दी हलद्दा** इति भवति ।

५२४—स्वसा, ननान्दा, दुहिता । स्वसृ+सि, ननान्दृ+सि, दुहितृ+सि । ३५० सू० दकारस्य लोपे, २२८ सू० द्वितीयनकारस्य णकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे १७७ सू० तकारलोपे, ५२४ सू० डा-(आ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, ।१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **ससा, नणन्दा, दुहिआ** इति जातम् । **दुहितृभिः, दुहितृषु** । दुहितृ+भिस्, दुहितृ+सुप् । तकारलोपे, डा-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे दुहिआ+भिस्, दुहिआ+सु इति जाते, ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे **दुहिआहिं दुहिआसु** इति भवति । **दुहितृसुतः** । दुहितृसुत+सि । पूर्ववदेव दुहिआसुत+सि इति जाते तकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **दुहिआसुओ** इति सिद्धम् । **गोकः** । गोक+सि । १५८ सू० ओकारस्य 'अउ' इत्यादेशे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ५२४ सू० डाप्रत्यये, डिति परे अन्त्य-स्वरादेः लोपे, सेर्लोपे **गउआ** इति सिद्धम् ।

५२५ - मालां,नदीं, वधूम् । माला+अम्, नदी+अम्, वधू+अम् । १७७ सू० दकारलोपे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ५२५ सू० अमि परे ह्रस्वे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **मालं, नइं, वहुं** इति भवति । **हसन्तीम्** । हस् हासे । हस्+शतृ । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६७० सू० शतुः माण इत्यादेशः, ५२१ सू० विकल्पेन ङी-(ई)-प्रत्यये, ङीप्रत्ययभावे—आप्-(आ)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, अम्-प्रत्यये, हसमाणी+अम्, हसमाणा +अम् इति स्थिते, अमि परे ह्रस्वे, अमोऽकारस्य लोपे, मकारानुस्वारे **हसमाणिं हसमाणं** इति सिद्धम् । **पश्य**=पेच्छ, प्रक्रिया ४९४ सूत्रे ज्ञेया । **अमीति किम्** । अमि-प्रत्यये परे सत्येव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भ-वति, नान्यथा । यथा—**मालाः, सख्यः, वध्वः** । माला+जस् (शस्), सखी+जस् (शस्), वधू+जस् (शस्) । १८७ सू० खकारस्य धकारस्य च हकारे, अम्प्रत्ययाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य अप्रवृत्तौ, ४९३ सू० जस्शसोः लुकि **माला सही वहू** इति भवति ।

५२६—हे तृण !, हे दधि !, हे मधु ! । **हे तृण**+सि, हे दधि+सि, हे मधु+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ५१४ सू० सेर्मकारप्राप्तौ, ५२६ सू० तन्निषेधे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **हे तिण !, हे दहि !, हे महु !** इति भवति ।

५२७—हे देव ! । हे देव+सि । इत्यत्र ४९१ सूत्रस्य प्राप्तौ,५२७ सू० विकल्पेन तन्निषेधे, सेर्लोपे **हे देव !**, निषेधाभावे ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हे देवो** इति भवति । **हे क्षमाश्रमण !** । क्षमाप्रधानः, क्षमायुक्तो वा श्रमणः क्षमाश्रमणः । तत्सम्बोधनम् । हे क्षमाश्रमण+सि । २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारः, ३५० सू० रेफस्य लोपः, २६० सूत्रेण शकारस्य सकारः, पूर्ववदेव—**हे खमासमण !, हे खमासमणो !** इति सिद्धम् । **हे आर्य !** । हे आर्य+सि । ८४ सू० संयोगे परे-ह्रस्वे, २९५ सू० र्यस्य स्थाने जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, पूर्ववदेव **हे अज्ज !, हे अज्जो** ! इति भवति । **दीर्घः** । दीर्घस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारो यथा—**हे हरे!** । हे हरि+सि । ५०८ सू० इकारस्य दीर्घप्राप्तौ,प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके तन्निषेधे, सेर्लोपे **हे हरि** !, यत्र इकारदीर्घप्राप्तिस्तत्र तु **हे हरी** ! इति भवति । **हे गुरो !** । हे गुरु+सि । पूर्ववदेव यत्र उकारदीर्घप्राप्तिर्निषिद्धा तत्र **हे गुरु** !, यत्र उकारस्य दीर्घः [ऊकारः] जातस्तत्र **हे गुरू** ! इति भवति । **जातिविशुद्धेन** । जातिविशुद्ध+टा । १७७ सू० तकारस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य स्थाने

सकार:, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य स्थाने ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य स्थाने एकारे जाते—**जाइविसुद्धेण** इति सिद्धम् । **हे प्रभो !** । हे प्रभु+सि । इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, पूर्ववदेव यत्र उकारदीर्घप्राप्तिर्निषिद्धा तत्र **हे पहु !**, यत्र उकारदीर्घो जातस्तत्र **हे पहू !** इति भवति । **द्वौ जितलोकान्** । **द्वौ** । द्वि+औ । ६१९ सू० द्विवचनस्य स्थाने बहुवचनम्, ६०९ सू० जस्-सहितद्वि-शब्दस्य स्थाने 'दोण्णि' इत्यादेशे **दोण्णि** इति भवति । **जितलोकान्** । जितलोक+शस् । १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे, ४९३ सू० शसो लुकि, ५०३ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **जिअलोए** इति भवति । **एषु प्राप्ते विकल्पः** । देव-प्रभृतीषु उपरितनेषु प्रयोगेषु ४९१ सूत्रेण सेः स्थाने यो नित्यं 'डो' इत्यादेशः प्राप्तः, तथा हरि-गुरु-प्रभृतीषु शब्देषु ५०८ सूत्रेण यो दीर्घः प्राप्तः सः प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन विधीयते । **इहत्वप्राप्ते ?** । **हे गौतम !** इत्यत्र ५०८ सूत्रेण अप्राप्तोऽपि ह्रस्वस्य दीर्घः विकल्प्यते । यथा—**हे गौतम !**। गौतम+सि । १५९ सू० औकारस्य ओकार:, १७७ सू० तकारस्य लोप:, ५०८ सू० अप्राप्तोऽपि दीर्घः, बहुलाधिकारात् ५२७ सू० विकल्पेन भवति, सेर्लोपे—**हे गोअमा ! हे गोअम !** इति निष्पद्यते । **हे कश्यप !** । हे कश्यप+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोप:, ४३ सूत्रेण ह्रस्वस्य आदिस्वरस्य दीर्घः, २६० स० शकारस्य सकार:, ३६३ सू० द्वित्वनिषेधे, २३१ सू० पकारस्य स्थाने वकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ह्रस्वस्य विकल्पेन दीर्घे, सेर्लोपे च **हेकासवा!, हेकासव!**। इति सिद्धम् । **२—रे रे मिथ्याभाषिन्!**। प्राकृते **मिथ्याभाषिन्** इत्यर्थे **चप्फलय**-शब्दः प्रयुज्यते । प्रस्तुतसूत्रेण ह्रस्वस्य विकल्पेन दीर्घे, सेर्लोपे **रे रे चप्फलया !**, **रे रे चप्फलय !** इति सिद्धम् । **रे रे निर्घृणक!**। निर्गता घृणा-अनुकम्पा यस्मात् सः निर्घृणः, निर्घृण एव निर्घृणकः । तत्सम्बोधनम् । निर्घृणक+सि । १२८ सू० ऋकारस्य स्थाने इकार:, ३५० सू० रेफस्य लोप:, ३६० सू० घकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वघकारस्य स्थाने गकार:, १७७ सू० ककारस्य लोप:, १८० सू० यकारश्रुतौ, प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन दीर्घे, सेर्लोपे **रे रे निग्घिणया!**, **रे रे निग्घिणय !** इति सिद्धम् ।

५२८—हे पितः । हे पितृ+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५२८ सू० ऋकारस्य विकल्पेन अकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **हे पिअ !** इति भवति । **हे दातः** । हे दातृ+सि । पूर्ववदेव हे दाअ+सि इति जाते, १८० सू० यकारश्रुतौ, सेर्लोपे हे **दाय !** इति भवति । **पक्षे** । प्रस्तुत-सूत्रप्रवृत्त्यभावपक्षे तु ५२९ सू० ऋकारस्य **अरं** इत्यादेशे, सेर्लोपे—**हे पअरं !**, ५३४ सू० ऋकारस्य आर इत्यादेशे, पूर्ववदेव हे **दायार !** इति भवति ।

५२९—हे पितः ! । हे पितृ+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५२९ सू० ऋकारस्य स्थाने अरं इत्यादेशे, सेर्लोपे हे **पिअरं!** इति भवति । अरं इत्यादेशाभावपक्षे **हे पिअ !** इति भवति । प्रक्रिया ५२८ सूत्रे ज्ञेया । **नाम्नि इति किम् ?** । संज्ञावाचक-शब्दानामेव अरं इत्यन्तादेशो भवति, नान्यत्र । यथा—**हे कर्तः!** । कर्तृ+सि । ३५० सू० रेफस्य लोप:, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, अत्र कर्तृ-शब्दः न संज्ञावाचकः, अतः 'अरं' इत्यादेशोभावे, ५३४ सू० ऋकारस्य 'आर' इत्यादेशे, सेर्लोपे **हे कत्तार !** इति भवति ।

५३०—हे माले ! हे महिले । माला+सि, महिला+सि । ५३० सू० अन्त्याकारस्य विकल्पेन एकार:, सेर्लोपे **हे माले !**, **हे महिले !** इति सिद्धम् । **हे आर्यिके ! हे प्रार्यिके** । आर्यिका+सि, प्रार्यिका+सि । ३५० सू० रेफलोपे, २९५ सू० र्यस्य स्थाने जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ५३० सू० आकारस्य विकल्पेन एकारे, सेर्लोपे **हे अज्जिए ! हे पज्जिए !** इति सिद्धम् । **पक्षे** । यत्र आकारस्यैकारो न जातस्तत्र तु **हे माला !** इत्यादयः प्रयोगाः सिद्ध्यन्ति । **आप इति किम् ?** यत्र आप्प्रत्ययस्यैव आकारो भवेत्तत्रैव तस्य एकारो भवति नान्यथा । यथा—

हे पितृष्वसः !=हे पिउच्छा ! । **हे मातृष्वसः** !=**हे माउच्छा** ! । शब्दयोरनयोः प्रक्रिया ४१३ सूत्रे ज्ञेया । अत्र आकारान्तत्त्वेऽपि आप्-प्रत्ययाभावात् प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्यभावः । **बहुलाधिकारात् क्वचिदोत्वमपि** । बहुलाधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले आप ओकारोऽपि भवति । यथा-**हे अम्बा** !। अम्बा+सि । ३५० सू० बकारस्य लोपः, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, बहुलाधिकारात् आकारस्य ओकारे, सेर्लोपे **हे अम्मो** ! इति सिद्धम् । **भणामि** । भण्-धातुः भणने । भण्+मिव् । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमः, ६३० सू० मिवः स्थाने 'मि' इत्यादेशे, ६४३ सू० अकारस्य दीर्घे **भणामि** इति सिद्धम् । **भणिते** । भणित+ङि । १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०० सू० ङेः स्थाने डे (ए) इत्यादेशो, ङिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **भणिते** इति सिद्धम् ।

५३१—हे नदि !, हे ग्रामणि ! । हे नदी+सि, हे ग्रामणी+सि । इत्यत्र १७७ सू० दकारस्य लोपः, ३५० रेफस्य लोपः, ५३१ सू० ईकारस्य इकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **हे नइ** !, **हे गामणि** ! इति सिद्धम् । **हे श्रमणि** ! । श्रमणी+सि । रेफस्य लोपः, २६० सू० शकारस्य सकारः, ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे **हे समणि** ! इति सिद्धम् । **हे वधु** ! । वधू+सि । १८७ सू० धकारस्य हकारः, ऊकारस्य उकारे, सेर्लोपे **हे वहु** ! इति सिद्धम् । **हे खलपु** ! । खलान् पुनातीति तत्सम्बोधनम् । खलपू+सि । ऊकारस्य ह्रस्वे, सेर्लोपे **हे खलपु** ! इति सिद्धम् ।

५३२—ग्रामण्या, खलप्वा । ग्रामणी+टा, खलपू+टा । ३५० सू० रेफस्य लोपः, ५३२ सू० ईकारस्य ऊकारस्य च ह्रस्वे, ५१३ स० टा-प्रत्ययस्य 'णा' इत्यादेशे **गामणिणा, खलपुणा** इति सिद्धम् । **ग्रामण्यः** । **खलप्वः** । ग्रामणी+ङसि (ङस्), खलपू+ङसि । (ङस्) पूर्ववदेव रेफलोपे, ईकारस्य ऊकारस्य च ह्रस्वे, ५१२ स० ङसिङसोः 'णो' इत्यादेशे **गामणिणो, खलपुणो** इति सिद्धम् ।

५३३—भर्तारः । भर्तृ+जस् । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ५३३ सू० ऋकारस्य वैकल्पिके उकारे, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात्, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **भत्तू** ५११ सू० जसः णो इत्यादेशे **भत्तुणो** इति भवति । अत्र ६१४ सूत्रेण दीर्घनिषेधोऽभवद् । यत्र ५०९ सू० जसः डउ (अउ) डओ (अओ) इत्यादेशौ जातौ तत्र डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **भत्तउ भत्तओ,** यत्र ऋकारस्य उकार एव न जातस्तत्र ५३४ सू० ऋकारस्य आर इत्यादेशे, ४९३ सू० जसो लुकि, पूर्वस्वरदीर्घे **भत्तारा** इति भवति । **भर्तॄन्** । भर्तृ+शस्=भत्तु+शस् । ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९३ सू० शसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे **भत्तू** यत्र ५११ सू० शसः स्थाने णो इत्यादेशो जातस्तत्र **भत्तुणो** उकाराभावे पूर्ववदेव भत्तार+शस् इति जाते, ५०३ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, शसि लोपे **भत्तारे** इति भवति । **भर्त्रा** । भर्तृ+टा=भत्तु+टा । इत्यत्र ५१३ सू० टास्थाने णा इत्यादेशे **भत्तुणा** उकाराभावे पूर्ववदेव भत्तार+टा इति जाते, ४९५ सू० टास्थाने ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **भत्तारेण** इति भवति । **भर्तृभिः** । भर्तृ+भिस्=भत्तु+भिस् । ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे, ५०५ सू० उकारस्य दीर्घे **भत्तूहिं** उकाराभावे पूर्ववदेव, भत्तार+हिं इति जाते, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **भत्तारेहिं** इति भवति । **भर्तुः** । भर्तृ+ङसि=भत्तु+ङसि । ५१२ सू० ङसेः स्थाने णो इत्यादेशे, ५०१ सूत्रेण दीर्घप्राप्तौ, ६१४ सू० दीर्घनिषेधे **भत्तुणो** यत्र ४९७ सू० ङसेः दो दु हि हिन्तो इत्यादेशा जातास्तत्र १७७ सू० दकारस्य लोपे, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे **भत्तूओ भत्तूउ भत्तूहि भत्तूहिन्तो** उकाराभावे, ऋकारस्य आर इत्यादेशे, ५०१ सू० अकारदीर्घे **भत्ताराओ भत्ताराउ भत्ताराहि भत्ताराहिन्तो** ४९७ सू० ङसेः लुगादेशे **भत्तारा** इति भवति । **भर्तुः** । भर्तृ+ङस्=भत्तु+ङस । इत्यत्र ५१२ सू० ङसः णो

इत्यादेशे वैकल्पिके--**भत्तुणो**, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **भत्तुस्स**, उकाराभावे, ऋकारस्य आर इत्यादेशे **भत्तारस्स** इति भवति। **भत्तृषु**। भर्तृ+सुप्=भत्त्+सु। इत्यत्र ५०५ सू० उकारदीर्घे **भत्तूसु**, उकाराभावे ऋकारस्य स्थाने आर इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **भत्तारेसु** इति भवति। **बहुवचनस्य व्याप्त्यर्थत्वात्**। प्रस्तुतसूत्रे '**ऋताम्**' इति बहुवचनान्तं पदं विहाय '**ऋतः**' इत्येकवचनान्तपदाश्रयणादेवासीत् कार्यसिद्धिः, तर्हि किमर्थं बहुवचनान्तपदं पठितमिति प्रश्नः। उत्तरयति वृत्तिकारः। **बहुवचनं व्याप्त्यर्थकम्**। व्याप्तिर्नाम व्यापकत्वम्। यथाहि—वृक्षं वृक्षं सिञ्चति इत्यत्र सेचनकर्ता न केवलमेकं वृक्षं सिञ्चति अपितु अमुकप्रदेश-स्थान् सर्वानेव वृक्षान् सिञ्चति, एवमेवात्रापि असंज्ञावाचकानां भर्तृ-दातृ-कर्तृ-आदिशब्दानामेव न उदादेशविधिरिष्टः प्रत्युत संज्ञावाचकानां पितृ-मातृआदीनामपि उदन्तादेशः विकल्पेन स्यादित्येतदर्थमेव सूत्रकृता एकवचनमनङ्गीकृत्य बहुवचनमुररीकृतमिति। ततः संज्ञावाचकानां पितृ-जामातृ-प्रभृति-शब्दानामृकारस्य विकल्पेन उदादेशो जायते। तथाहि—**पितरः, पितॄन्, पितुः, पितुः**। पितृ+जस्, पितृ+शस्, पितृ+ङसि, पितृ+ङस्। इत्यत्र १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५३३ सू० ऋकारस्य उकारः, ५११ सू० जस्शसोः, तथा ५१२ सू० ङसेः ङसश्च उभयत्रापि 'णो' इत्यादेशे **पिउणो** इति भवति। **जामातरः, जामातॄन्, जमातुः, जामातुः**। जामातृ+जस्, जामातृ+शस्, जामातृ+ङसि, जामातृ+ङस्। तकारस्य लोपे, ऋकारस्य उकारादेशे, जस्शसोः, ङसिङसोश्च 'णो' इत्यादेशे **जामाउणो** इति भवति। **भ्रातरः, भ्रातॄन्, भ्रातुः, भ्रातुः**। भ्रातृ+जस्, भ्रातृ+शस्, भ्रातृ+ङसि, भ्रातृ+ङस्। इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपः, पूर्ववदेव **भाउणो** इति इति भवति। **पित्रा**। पितृ+टा=पिउ+टा। इत्यत्र ५१३ सू० टा-प्रत्ययस्य 'णा' इत्यादशे **पिउणा** इति भवति। **पितृभिः**। पितृ+भिस्=पिउ+भिस्। इत्यत्र ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९६ सू० भिसः 'हि' इत्यादेशः, ५०५ सू० उकारस्य ऊकारे **पिऊहि** इति सिद्धम्। **पितृषु**। पितृ+सुप्=पिउसु। उकारस्य ऊकारे जाते **पिऊसु** इति सिद्धम्। **पक्षे**। यत्र प्रस्तुतसूत्रेण उदन्तादेशो न जातस्तत्र यद्भवति तन्निदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**पितरः**। **पितॄन्**। पितृ+जस् (शस्) इत्यत्र १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपः, प्रस्तुतसूत्रेण उकारादेशाभावे ५३६ सू० ऋकारस्य 'अर' इत्यादेशः, ४९३ सू० जस्शसोः लुक्, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **पिअरा** इति सिद्धम्। **अस्वमौस्विति किम्?** सि, अम् औ वर्जिते-रहिते स्यादिप्रत्यये परे एव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा। अतएव निम्नोक्तेषु स्यमौ-प्रत्यय-परेषु प्रयोगेषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्नाभूद्। यथा—**पिता**। पितृ+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५३७ सू० ऋकारस्य आकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **पिआ** इति सिद्धम्। **पितरम्**। पितृ+अम्। १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५३६ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **पिअरं** इति सिद्धम्। **पितरौ**। पितृ+औ। १७७ सू० तकारस्य लोपः, ६११ सू० द्विवचनस्य बहुवचने कृते, ५३६ सू० ऋकारस्य 'अर' इत्यादेशे, ४९३ सू० शसोः लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **पिअरा** इति सिद्धम्।

५३४—भर्ता। भर्तृ+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपः, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वं, ५३४ सूत्रेण ऋकारस्य 'आर' इत्यादेशः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **भत्तारो** इति सिद्धम्। २—**भर्तारः**। भर्तृ+जस्=भत्तार+जस्। ४९३ सू० जसो लुक्, ५०१ स० पूर्वाकारस्य दीर्घे **भत्तारा** इति सिद्धम्। **भर्तारम्**। भर्तृ+अम्=भत्तार+अम्। ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **भत्तारं** इति सिद्धम्। **भर्तॄन्**। भर्तृ+शस्=भत्तार+शस्।

४९३ सू० शसो लुक्, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **भत्तारे** इति सिद्धम् । **भर्त्रा** । भर्तृ+टा=भत्तार+टा। ४९५ सू० 'टा' इत्यस्य 'ण' इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **भत्तारेण** इति सिद्धम् । **भर्तृभिः** । भर्तृ+भिस्=भत्तार+भिस् । ४९६ सू० भिसः 'हिं' इत्यादशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे जाते **भत्तारेहिं** इति सिद्धम् । **एवं ङस्यादिषूदाहार्यम्** । वृत्तिकारेण यथा सि-जस्-अम्-शस्-टा-भिसां प्रत्ययानामुदाहरणान्युक्तानि, तथैव ङसि-प्रत्ययादीनामपि उदाहरणानि स्वयमेवोदाहार्याणीति भावः । **लुप्तस्याद्यपेक्षया** । समासदशायां लुप्तां विभक्तिं निमित्तीकृत्य "**प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्**" इति परिभाषाबलेन प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते । यथा—**भर्तृविहितम्** । भर्त्रा विहितं भर्तृविहितम् । भर्तृविहित+सि । ३५० सू० रेफलोपे, तकार-द्वित्वे समासनियमेन लुप्तविभक्तेरपेक्षया ५३४ सू० ऋकारस्य आर इत्यादेशे, १७७ तकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **भत्तार-विहिअं** इति भवति ।

★ अथ तृतीय पाद ★

※ आत्मगुण-प्रकाशिका हिन्दी-टीका ※

अजर, अमर, मर्दित-मदन, वीतराग भगवान । करुणासागर केवली, *शंकर दयानिधान ॥१॥
विश्ववन्द्य प्रभु वीर हैं, जग के तारणहार । शुद्ध हृदय से मैं जपूँ, होवे नय्या पार ॥२॥
क्षमा, दया, तप, तेज के, सुखमय पुण्य-निधान । गुरुवर आतमाराम जी, मंगलमय गुणखान ॥३॥
गुरुचरणों का ध्यान कर, मन में रख श्रद्धान । पाद तीसरा लिख रहा, हिन्दी में मुनि ज्ञान ॥४॥

★ अथ स्यादि प्रत्ययों को होने वाली विधि [क] ★

सिद्धान्तकौमुदी आदि व्याकरण-शास्त्रों में जैसे सु औ जस् आदि सुबन्त प्रत्यय माने जाते हैं, इसी भांति सिद्ध-हेमशब्दानुशासन नामक व्याकरण-शास्त्र में भी सि औ जस् आदि स्यादि प्रत्यय स्वीकार किए गए हैं । प्रस्तुत प्रकरण में स्यादि प्रत्ययों के स्थान में होने वाली आदेशादि विधियों—कार्यों का निर्देश किया जा रहा है ।

४६०—वीप्सार्थक पद से परे यदि सि आदि प्रत्यय पड़े हों तो उनके स्थान में विकल्प से मकार होता है, स्वरादि (जिस के आदि में स्वर हो) वीप्सार्थक पद के आगे रहने पर । कार्य का नैरन्तर्य सूचित करने के लिए शब्द की आवृत्ति अर्थात् पुनरुक्ति वीप्सा कहलाती है । जैसे—१—**एकम्-एकम्**=एक्कमेक्कं (हर एक को), २—**एकेन-एकेन**=एक्कमेक्केण (प्रत्येक ने), ३—**अङ्ग-अङ्ग**=अङ्गमङ्गम्मि (प्रत्येक अङ्ग में) यहां पर एक आदि शब्दों का दो बार उच्चारण किया गया है। अतः ये वीप्सार्थक पद होने से इनके प्रथम शब्द से आगे पड़े सि आदि प्रत्ययों के स्थान में विकल्प से मकारादेश किया गया है । जहां पर मकारादेश नहीं हुआ, वहां पर **एकम्-एकम्**=एक्केक्कं, **एकेन-एकेन**=एक्केक्केण, अङ्ग-अङ्ग=**अङ्गाङ्गम्मि** ये रूप बनते हैं ।

४६१—अकारान्त नाम (प्रातिपदिक) से परे विद्यमान स्यादि प्रत्ययों के 'सि' प्रत्यय के स्थान में डो (ओ) यह आदेश होता है। जैसे—**वृक्षः**=वच्छो (वृक्ष), यहां 'सि' के स्थान में डो (ओ) यह आदेश किया गया है ।

४६२—एतद् और तद् शब्द के अकार से परे स्यादि प्रत्ययों के 'सि' के स्थान में विकल्प से

*शम् यह अव्ययपद प्रसन्नता, समृद्धि, कुशलता आदि अर्थों का बोधक है, शम् के प्रदाता को शङ्कर कहते हैं ।

'डो' यह आदेश होता है। जैसे—१—**एषः**=एसो, एस (यह), २—**सः नरः**=सो णरो, स णरो (वह मनुष्य) यहां पर 'सि' के स्थान में 'डो' यह आदेश विकल्प से किया गया है।

४९३—अकारान्त नाम (प्रातिपदिक) से परे स्यादि प्रत्ययों से सम्बन्धित जस् और शस् इन प्रत्ययों का लोप होता है। जैसे—१—**वृक्षाः एते**=वच्छा एए (ये वृक्ष हैं), २—**वृक्षान् पश्य**=वच्छे पेच्छ (वृक्षों को देख) यहां पर जस् और शस् प्रत्यय का लोप किया गया है।

४९४—अकारान्त प्रातिपादिक से परे विद्यमान अम्-प्रत्यय के अकार का लोप होता है। जैसे—**वृक्षं पश्य**=वच्छं पश्य (वृक्ष को देख) यहां अम्-प्रत्यय के अकार का लोप किया गया है।

४९५—अकारान्त शब्द से परे तृतीया विभक्ति के एक वचन 'टा' तथा षष्ठी विभक्ति के बहुवचन आम्, इस प्रत्यय के स्थान में 'ण' यह आदेश होता है। जैसे—१—**वृक्षेण**=वच्छेण (वृक्ष के द्वारा), २—**वृक्षाणाम्**=वच्छाण (वृक्षों को) यहां 'टा' तथा 'आम्' इन प्रत्ययों के स्थान में 'ण' यह आदेश किया गया है।

४९६—अकारान्त शब्द से परे '**भिस्**' प्रत्यय के स्थान में केवल **हि**, अनुनासिक-युक्त हि तथा अनुस्वार-सहित 'हि' का आदेश होता है। जैसे—**वृक्षैः कृता छाया**=वच्छेहि, वच्छेहिँ, वच्छेहिं कया छाही (वृक्षों के द्वारा की हुई छाया) यहां पर भिस् के स्थान में 'हि' आदि तीन आदेश किए गए हैं।

४९७—अकारान्त शब्दों से परे यदि '**ङसि**' प्रत्यय पड़ा हो तो उसके स्थान में—त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो और लुक् ये ६ आदेश होते हैं। जैसे—**वृक्षात्**=१—वच्छत्तो, २—वच्छाओ, ३—वच्छाउ, ४—वच्छाहि, ५—वच्छाहिन्तो, ६—वच्छा (वृक्ष से) यहां ङसि प्रत्यय के स्थान में क्रमशः त्तो आदि ये पांच आदेश किए गए हैं। तथा एक स्थान पर उसका लोप भी कर दिया गया है। इस तरह अकारान्त शब्द के पंचम्यन्त एक वचन में छह रूप बन जाते हैं। यहां पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में पठित **दो** और **दु** इन आदेशों के स्थान पर "**ओ**" और 'उ' ये आदेश पढ़ने चाहिएं थे। क्योंकि 'दो' और 'दु' के दकार का तो १७७ सूत्र से लोप हो जाने पर ओकार और उकार ही शेष रहता है, फिर आकार और उकार को दकार-विशिष्ट बनाने का क्या उद्देश्य है? उत्तर में निवेदन है कि दकारविशिष्ट ये आदेश केवल प्राकृत भाषा के लिए ही नहीं हैं, इन का उपयोग भाषान्तर-दूसरी भाषा के लिए किया जायगा। शौरसेनी आदि भाषाओं में दकार का लोप नहीं होता, इसलिए दकारविशिष्ट आदेश सार्थक ही समझने चाहिएं।

४९८—अकारान्त शब्दों से परे यदि भ्यस् प्रत्यय तो हो उसके स्थान में भी १—त्तो, २—दो, ३—दु, ४—हि, ५—हिन्तो और ६—सुन्तो ये ६ आदेश होते हैं। जैसे—**वृक्षेभ्यः**=वच्छत्तो, वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छेहि, वच्छाहिन्तो, वच्छेहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छेसुन्तो (वृक्षों से) यहां भ्यस् के स्थान में त्तो आदि ये ६ आदेश किए गए हैं।

४९९—अकारान्त शब्द से परे ङस् प्रत्यय के स्थान में संयुक्त सकार (स्स) होता है। जैसे—१—**प्रियस्य**=पियस्स (प्रिय का), २—**प्रेमणः**=**पेमस्स** (प्रेम का), ३—**उपकुम्भं शैत्यम्**=उवकुम्भस्स सीअलत्तणं (उपकुम्भ=समीप का शैत्य) यहां पर ङस् के स्थान में 'स्स' यह आदेश किया गया है।

५००—**अकारान्त** शब्द से परे ङि-प्रत्यय के स्थान में डित् (जिस में डकार इत् हो) एकार और संयुक्त मि (म्मि) यह दो आदेश होते हैं। जैसे—**१—वृक्षे**=वच्छे, वच्छम्मि (वृक्ष में), २—**देवम्**=देवम्मि (देव को), **३—तम्**=तम्मि (उस को) यहां ६२४ सूत्र से द्वितीया विभक्ति के स्थान

में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होने से सप्तम्यन्त रूप दिखलाया गया है।

५०१—जस्, शस्, ङसि, त्तो, दो, दु और आम् इन प्रत्ययों के परे रहने पर अकार को दीर्घ हो जाता है। जैसे—१—**वृक्षाः**, **वृक्षान्**=वच्छा (अनेकों वृक्ष, या अनेक वृक्षों को), २—**वृक्षात्**= वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो, वच्छा (वृक्षो से), ३—**वृक्षेभ्यः**=वच्छत्तो, वच्छाओ, वच्छाउ (वृक्षों के लिए), ४—**वृक्षाणाम्**=वच्छाण (वृक्षों का) यहां पर क्रमशः जस्, शस्, ङसि, त्तो, दो, दु और आम् इन प्रत्ययों के परे रहने पर अकार को दीर्घ किया गया है। **वच्छत्तो** यहां पर ८४ सूत्र से आकार को अकार हो गया। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि प्रस्तुत सूत्र में 'ङसि' यह प्रत्यय करना ही पर्याप्त था। त्तो, दो और दु इन तीन आदेशों को ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि ४९७ सूत्र से त्तो आदि ये तीनों आदेश ङसि प्रत्यय के स्थान में होते ही हैं, आदेश को स्थानि-वत् मानकर कार्य सम्पन्न हो सकता था। ऐसी दशा में प्रस्तुत सूत्र में त्तो, दो और दु इनका ग्रहण करना अनावश्यक प्रतीत होता है? उत्तर में निवेदन है कि जैसे ४९७ सूत्र से ङसि के स्थान में त्तो, दो, दु ये तीनों आदेश होते हैं, वैसे ४९८ सूत्र द्वारा ये तीनों आदेश भ्यस् के स्थान में भी होते हैं। जब ये आदेश भ्यस्-स्थानी होते हैं तब ५०४ सूत्र से इनके परे रहने पर अकार को एकारादेश किया जा सकता है। इस एकारादेश को बाधित करने के लिए त्तो, दो, दु का ग्रहण किया गया है। भाव यह है कि अकारान्त शब्द से परे यदि त्तो, दो, दु ये आदेश पड़े हों तो अकार को दीर्घ ही होता है, एकार नहीं, यह नियम बनाने के लिए सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में त्तो, दो, दु इनका आश्रयण किया है।

५०२—भ्यस् प्रत्यय के स्थान में होने वाले आदेश के परे रहने पर अकार को विकल्प से दीर्घ होता है। जैसे—**वृक्षेभ्यः**=वच्छाहिन्तो, वच्छेहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छेसुन्तो, वच्छाहि, वच्छेहि (वृक्षों के लिए या वृक्षों से) यहां पर भ्यसादेश (भ्यस् सम्बन्धी आदेश) के परे रहने से अकार को वैकल्पिक दीर्घ आकार किया गया है।

५०३—टा-प्रत्यय के स्थान में होने वाले 'ण' इस आदेश के तथा शस् प्रत्यय के परे रहने पर अकार को एकार होता है। जैसे—१—**वृक्षेण**=वच्छेण (वृक्ष से) यहां णादेश (आदेशभूत ण) के आगे रहने से अकार को एकार किया गया है। सूत्र में '**णादेश**' परे रहने पर अकार को जो एकार करने का विधान किया गया है, इसके कारण ही **आत्मना**=अप्पणा, अप्पणिआ, अप्पणइआ (आत्मा से) यहां पर णा, णिआ और णइआ इन टा-सम्बन्धी आदेशों के परे होने पर भी अकार को एकार नहीं हो सका। यदि "टा प्रत्यय के स्थान में होने वाले 'ण' इस आदेश" का विधान न करते तो 'णा' आदि उक्त आदेशों के परवर्ती होने पर भी अकार को एकार हो जाता। जो कि इष्ट नहीं था। २—**वृक्षान् प्रेक्ष्य**=वच्छे पेच्छ (वृक्षों को देख कर) यहां पर शस्-प्रत्यय के परे होने पर अकार को एकार किया गया है।

५०४—भिस्, भ्यस् और सुप् इन प्रत्ययों के परे रहने पर अकार को एकार होता है—जैसे—१—**वृक्षैः**=वच्छेहि, वच्छेहिँ, वच्छेहिं (वृक्षों से), २—**वृक्षेभ्यः**=वच्छेहि, वच्छेहिन्तो, वच्छेसुन्तो (वृक्षों के लिए, या वृक्षों से), ३—**वृक्षेषु**=वच्छेसु (वृक्षों पर) यहां पर भिस् आदि प्रत्ययों के परे रहने पर अकार को एकार किया गया है।

५०५—यदि भिस्, भ्यस् और सुप् ये प्रत्यय आगे पड़े हों तो शब्दों के इकार और उकार को दीर्घ होता है। **भिस् के उदाहरण**—जैसे—१—**गिरिभिः**=गिरीहिं (पहाड़ों से), २—**बुद्धिभिः**=बुद्धीहिं

(बुद्धियों के द्वारा), ३—**दधिभिः**=दहीहिं=(दहियों द्वारा), ४—**तरुभ्यः**=तरूहिं (वृक्षों द्वारा), ५—**धेनुभिः**=धेणूहिं (गौओं द्वारा), ६—**मधुभिः कृतम्**=महूहिं कयं (मधुओं द्वारा किया गया) **कयं** इस पद को '**गिरीहिं**' आदि सभी पदों के साथ जोड़ लेना चाहिए। **भ्यस् के उदाहरण**—जैसे—१—**गिरिभ्यः**=गिरीओ (पहाड़ों के लिए, या पहाड़ों से), २ - **बुद्धिभ्यः** = बुद्धीओ (बुद्धियों के लिए, या बुद्धियों से), ३ - **दधिभ्यः**=दहीओ (दहियों के लिए, या दहियों से), ४ - **तरुभ्यः**=तरूओ (वृक्षों के लिए या वृक्षों से), ५ - **धेनुभ्यः**=धेणूओ (गौयों के लिए या गौयों से), ६—**मधुभ्यः आगतः**=महूओ आगओ (मधुओं के लिए आगया या मधुओं से आगया) **आगओ** यह पद **गिरीओ** आदि सभी पदों से भी सम्बन्धित है। जहां ६१३ सूत्र द्वारा अदन्ताधिकार प्रतिपादित कार्य इकारान्तादि शब्दों को होने से, ४९८ सूत्र द्वारा भ्यस् के स्थान में हिन्तो और सुन्तो ये आदेश हो जाते हैं वहां पर **गिरीहिन्तो** और **गिरीसुन्तो आगओ** आदि रूप निष्पन्न होते हैं। **सुप् के उदाहरण** जैसे—१—**गिरिषु**=गिरीसु (पहाड़ों पर), २—**बुद्धिषु**=बुद्धीसु (बुद्धियों में), ३—**दधिषु**=दहीसु (दधिओं में), ४—**तरुषु**=तरूसु (वृक्षों पर), ५—**धेनुषु**=धेणूसु (गौओं में), ६—**मधुषु**=महूसु (मधुओं में) **स्थितम्**=ठिअं (स्थित है)। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर इकार को दीर्घ नहीं होता। जैसे—**द्विजभूमिषु दानजलार्द्रितानि**=दिअभूमिसु दाणजलोल्लिआइं (द्विजभूमिओं अर्थात् हाथियों के निवासस्थानों में हाथियों के मद-जल ने स्थान आर्द्रित (गीले) कर दिए हैं) यहां पर सुप् के परे रहने पर भी इकार को दीर्घ ईकार नहीं हो सका। सूत्रकार ने जो '**इदुतः**' यह पद दिया है, इस कारण—**वृक्षैः**=वच्छेहिं, **वृक्षेभ्यः**=वच्छेसुन्तो, तथा **वृक्षेषु**=वच्छेसु यहां पर भिस्, भ्यस् और सुप् इन प्रत्ययों के परे रहने पर भी अकारान्त शब्द के अकार को दीर्घ नहीं हो सका। ध्यान रहे कि प्रस्तुत सूत्र से इकार और उकार को जो दीर्घ होता है, वह भिस्, भ्यस् और सुप् इन प्रत्ययों के आगे रहने पर ही होता है, यदि ये प्रत्यय आगे न हों तो इस सूत्र से दीर्घ नहीं होता। जैसे—**गिरिं, तरुं पश्य**=गिरिं तरुं पेच्छ (पहाड़ को, वृक्ष को देखो), यहां इकार और उकार को दीर्घ नहीं हो सका।

५०६—**उदन्त** [उकार है अन्त में जिस के] **चतुर्** शब्द के उकार को भिस्, भ्यस् और सुप् इन प्रत्ययों के परे रहने पर विकल्प से दीर्घ होता है। जैसे—१—**चतुर्भिः**=चऊहि, चउहि [चारों ने], २—**चतुर्भ्यः**=चऊओ, चउओ [चारों से], ३ - **चतुर्षु**=चऊसु चउसु [चारों में] यहां पर उकार को विकल्प से दीर्घ किया गया है।

५०७—यदि शस् प्रत्यय का लोप हो तो इकार और उकार को दीर्घ हो जाता है। जैसे—१ - **गिरीन्**=गिरी [पर्वतों को], २—**बुद्धीः**=बुद्धी [बुद्धियों को], ३—**तरून्**=तरू [वृक्षों को], ४—**धेनूः पश्य**=धेणू पेच्छ [गौयों को देखो] यहां शस् प्रत्यय का लोप होने पर इकार और उकार को दीर्घ किया गया है। सूत्रकार ने '**लुप्ते**' यह जो पद दिया है, इस का अर्थ है—जिस का लोप हो गया है, ऐसे शस् के परे होने पर। यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि इस पद का ग्रहण न करते तो क्या हानि थी? उत्तर में निवेदन है कि यदि इस पद का ग्रहण न होता तो—**गिरीन्**=गिरिणो [पहाडों को], २—**तरून् पश्य**=तरुणो पेच्छ [वृक्षों को देखो] यहां पर भी इकार, उकार को दीर्घ हो जाता, जो कि अनिष्ट था। ध्यान रहे, शस् प्रत्यय का लोप होने पर केवल इकार और उकार को ही दीर्घ होता है, किसी दूसरे स्वर को नहीं। जैसे—**वृक्षान् पश्य**=वच्छे पेच्छ [वृक्षों को देखो] यहां अकारान्त वृक्ष शब्द है, शस्-लोप होने पर भी इस के अकार को प्रस्तुत सूत्र से दीर्घ नहीं हो

सका। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि ६१३ सूत्र द्वारा **अदन्तवद् अतिदेश** [उस के समान कार्य] होने से शस्-प्रत्यय के परे रहने पर भी ५०१ सूत्र से इकार और उकार को दीर्घ ईकार और ऊकार हो ही सकता है फिर ५०७ सूत्र बनाने की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि ५०१ सूत्र नित्यरूप से दीर्घ का विधान नहीं करता, इस का **योग-नियम** लक्ष्य-प्रयोग के अनुरोध-अनुसरण के अर्थ-निमित्त है। भाव यह है कि ५०१ सूत्र से होने वाला दीर्घ अनित्य है, सब स्थानों पर होने वाला नहीं है। यह प्रयोग का अनुसरण करता है। जिस प्रयोग में दीर्घ अपेक्षित हो, वहां पर इस [५०१] सूत्र से दीर्घ कर लेना चाहिए, जहां पर अनावश्यक हो, वहां पर नहीं करना चाहिए। परन्तु ५०७ सूत्र नित्यरूप से दीर्घ का विधान करता है, इस का कहना है कि जहां पर शस प्रत्यय लुप्त हो वहां पर इकार और उकार को दीर्घ अवश्य करना होता है।

एक और प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि प्रस्तुत सूत्र में '**लुप्ते**' इस पद का ग्रहण न हो तो क्या हानि है ? उत्तर में निवेदन है कि '**णो**' इस पद के परे रहने पर **प्रतिप्रसवार्थ** की शंका की निवृत्ति के लिए '**लुप्ते**' इस पद का ग्रहण किया गया है। **प्रतिप्रसवार्थ** का अर्थ होता है—प्राप्त के निषेध का निषेध होने पर पूर्व-प्राप्त की पुनः प्राप्ति। इसे उदाहरण से समझिए। गिरि+शस्, यहां पर ५११ सूत्र से शस् के स्थान में '**णो**' यह आदेश करने पर '**गिरिणो**' यह रूप बनता है। इस में ६१३ सूत्र द्वारा अदन्त-वद् कार्य करने का विधान होने से ५०१ सूत्र द्वारा [स्थानि-वद्-भाव से णो को शस् मान कर] इकार को दीर्घ की प्राप्ति भी होती है, किन्तु ६१४ सूत्र द्वारा इस का निषेध कर दिया जाता है। प्रस्तुत सूत्र में यदि '**लुप्ते**' इस पद का ग्रहण नहीं करते तो यह ५०७ सूत्र इकार को दीर्घ करने का पुनः विधान करता है। इस तरह पहले ५०१ सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति, ६१४ सूत्र द्वारा इस का निषेध, पुनः ५०७ सूत्र से दीर्घ-निषेध का निषेध हो कर पूर्व-प्राप्त इकारदीर्घ की प्राप्ति हो जाती है। भाव यह है कि प्राप्त इकारदीर्घ के निषेध का निषेध होने पर पुनः पूर्वप्राप्त इकार-दीर्घ की प्राप्ति रूप प्रतिप्रसवार्थ की शंका की निवृत्ति के लिए सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में '**लुप्ते**' इस पद का संनियोजन किया है जो कि पूर्णतया तर्कसंगत है। फलतः '**णो**' इस पद के आगे रहने से इकार को दीर्घ नहीं हो सका।

५०८—यदि नपुंसक लिङ्ग से भिन्न (पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग से सम्बन्धित) सि-प्रत्यय परे हो तो उसके इकार और उकार को दीर्घ होता है। जैसे—१—**गिरिः**=गिरी [पर्वत], २—**बुद्धिः**=बुद्धी [अक्ल], ३—**तरुः**=तरू [वृक्ष], ४-**धेनुः**=धेणू [गौ], यहां पर सिप्रत्यय परे होने पर इकार और उकार को दीर्घ किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में पठित **अक्लीबे** [नपुंसक-लिङ्ग से भिन्न] इस पद के कारण—१—**दधि**=दहिं [दही], २-**मधु**=महुं [शहद], नपुंसक-लिङ्गी इन शब्दों को सिप्रत्यय परे रहने पर भी दीर्घ नहीं हो सका। सूत्र-पठित "**सौ**" [सि प्रत्यय परे रहने पर] इस पद के कारण १—**गिरिम्**=गिरिं [पहाड को], २—**बुद्धिम्**=बुद्धिं [बुद्धि को], ३—**तरुम्**=तरुं [वृक्ष को], ४—**धेनुम्**=धेणुं [गौ को] इन पदों के अम् प्रत्यय परे रहने के कारण इकार और उकार को दीर्घ नहीं हो सका। कई एक आचार्य प्रस्तुत [५०८] सूत्र के **दीर्घ**—विधान को वैकल्पिक मानते हैं। उन का कहना है कि सि-प्रत्यय परे रहने पर इकार तथा उकार को विकल्प से दीर्घ होता है, जहां दीर्घ नहीं होता वहां पर '**सि**' प्रत्यय के स्थान में मकार का आदेश भी हो जाता है। जैसे—१—**अग्निः**=अग्गी, अग्गिं [आग], २—**निधिः**=निही, निहिं [खजाना], ३—**वायुः**=वाऊ वाउं [पवन],

४—**विधुः**=विहू, विहुं, [चन्द्र] यहां पर एक स्थान पर सि-प्रत्यय के आगे रहने पर इकार और उकार को दीर्घ तथा एक स्थान में **'सि'** प्रत्यय को मकार किया गया है।

५०९—५०५ वें सूत्र में से यहां पर **'इदुतः'** इस पद की अनुवृत्ति आती है। वहां पर यह पद षष्ठ्यन्त है, परन्तु प्रस्तुत में इस का पञ्चम्यन्त से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। फलतः प्रस्तुत सूत्र का अर्थ होगा= **पुल्लिङ्ग में, इकार और उकार से परे यदि जस् प्रत्यय हो तो** उस के **स्थान में डित् (जिस का डकार इत् है) अउ और अओ, ये दो आदेश** विकल्प से **होते हैं**। जैसे—**अग्नयः**=अग्गउ, अग्गओ [अग्नियां], २—**वायवः तिष्ठन्ति**=वायउ, वायओ चिट्ठन्ति [हवाएं बन्द हैं] जहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई वहां पर- **अग्गिणो, वाउणो**, जहां ६१३ सूत्र द्वारा अदन्तवद्-भाव हो जायेगा वहां पर—**अग्गी, वाऊ** ये रूप बनते हैं। प्रस्तुत सूत्र में पठित **'पुंसि** [पुल्लिङ्ग में] इस पद के कारण **१—बुद्धयः**=बुद्धीओ, २—**धेनवः**=धेणूओ, ३—**दधीनि**=दहीइं, ४—**मधूनि**=महूइं, इन स्त्रीलिङ्गी तथा नपुंसकलिङ्गी शब्दों में जस् प्रत्यय के स्थान में डउ [अउ], तथा डओ [अओ] ये दोनों आदेश नहीं हो सके। प्रस्तुत सूत्र में पठित **जसः** [जस् प्रत्यय को], इस पद से - १—**अग्गीन्**=अग्गी, अग्गिणो [अग्नियों को], २—**वायून् पश्यति**=वाऊ, वाउणो पेच्छइ [हवाओं को देखता है], यहां शस् प्रत्यय होने से उस के स्थान में डउ तथा डओ ये आदेश नहीं किए गए। ध्यान रहे कि प्रस्तुत सूत्र में पठित दोनों आदेश जस् प्रत्यय के स्थान में तभी होते हैं, यदि वह जस् प्रत्यय इकार और उकार से आगे पड़ा हुआ हो, अन्यथा नहीं। जैसे **वृक्षाः**=वच्छा [बहुत वृक्ष]यहां वृक्ष शब्द अकारान्त है, इकारान्त तथा उकारान्त नहीं है, अतः यहां जस् के स्थान में उक्त आदेश नहीं हो सके।

५१०—**उदन्त**[उकारान्त]शब्द से आगे यदि जस् प्रत्यय पड़ा हो तो पुल्लिङ्ग में उसे विकल्प से डित् [जिस में डकार इत् है] 'अवो' यह आदेश होता है। जैसे—**साधवः**=साहवो [अनेक साधु] जहां पर प्रस्तुत सूत्र से 'डवो' यह आदेश नहीं हो सका, वहां पर—**साहओ, साहउ, साहू, साहुणो** ये रूप बनते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में **'उतः'** इस पद का ग्रहण क्यों किया गया है? उत्तर में निवेदन है कि **वृक्षाः**=वच्छा [बहुत वृक्ष] आदि अकारान्तादि शब्दों के जस् प्रत्यय को **'डवो'** यह आदेश न हो, इस विचार से सूत्रकार ने **'उतः'** इस पद का यहां ग्रहण किया है। **'डवो'** यह आदेश पुल्लिङ्ग में ही हो सकता है, स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग में नहीं। जैसे—१—**धेनवः**=धेणू, २—**मधूनि**=महूइं। यहां पर स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग शब्दों के जस्-प्रत्यय को **'डवो'** यह आदेश नहीं किया गया। इस के अतिरिक्त, यह भी समझ लेना चाहिए कि प्रस्तुत सूत्र से विहित **'डवो'** यह आदेश जस्-प्रत्यय के स्थान में ही होता है, शस् आदि किसी अन्य प्रत्यय को यह आदेश नहीं हो पाता। जैसे—**साधून् पश्य**=साहू, साहुणो पेच्छ [साधुओं को देखो] यहां पर शस्-प्रत्यय था, फलतः उसे 'डवो' यह आदेश नहीं हो सका।

५११—इकार और उकार से परे जो जस् और शस् ये दो प्रत्यय रहते हैं, इनको पुल्लिङ्ग में **'णो'** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**गिरयः, तरवः राजन्ते**=गिरिणो तरुणो रेहन्ति [पर्वत अथवा तरु सुशोभित हो रहे हैं], २—**गिरीन् तरून् पश्य**=गिरिणो, तरुणो पेच्छ [पर्वतों अथवा वृक्षों को देखो] जहां **'णो'** यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर-**गिरी, तरू** ये रूप बन जाते हैं। प्रस्तुत-सूत्रोक्त **'णो'** यह आदेश पुल्लिङ्ग में ही होता है अन्यत्र नहीं। जैसे—१—**दधीनि**=दहीइं, २—**मधूनि** महूइं, यहां पर नपुंसकलिङ्ग होने के कारण **'णो'** यह आदेश नहीं हो सका। प्रश्न उपस्थित होता

है कि प्रस्तुत सूत्र में '**जस्-शसोः**' इस पद को ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है ? उत्तर में निवेदन है कि १ –**गिरिम्**=गिरिं, २—**तरुम्**=तरुं, यहां पर जस् और शस् प्रत्यय का अभाव होने से ही **अम्** को '**णो**' यह आदेश नहीं हो सका। वृत्तिकार के '**इकार और उकार को ही दीर्घ होता है**' ऐसा कहने से ही १ –**वृक्षाः**=वच्छा, २—**वृक्षान्**=वच्छे, यहां पर अकार को दीर्घ नहीं किया गया। इस के अतिरिक्त, यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि प्रस्तुत [५११] सूत्र में **जस्-शसोः** यह द्विवचनान्त पद है, और ५०५ सूत्र से अनुवृत्ति रूप में ग्रहण किया हुआ '**इदुतः**' यह निमित्तरूप पद एकवचनान्त है, इस वचन-भेद के कारण प्रस्तुत में "***यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**" यह परिभाषा नहीं लगती। भाव यह है कि यहां पर '**जस्-शसोः**' का द्विवचन तथा '**इदुतः**' का एक वचन यथासंख्य [संख्या के अनुसार] होने वाले कार्य के अभाव को संसूचित करने के लिए अपनाया गया है। इसी तरह उत्तर=अगले सूत्र में भी जहां स्थानी और आदेश सम संख्या वाले न हों, इस परिभाषा का उपयोग कर लेना चाहिए।

५१२—पुल्लिङ्ग तथा नपुंसक-लिङ्ग में विद्यमान इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे यदि ङसि और ङस् ये दो प्रत्यय पड़े हों तो इनके स्थान में विकल्प से '**णो**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**गिरेः**, **तरोः आगतः**=गिरिणो, तरुणो आगओ [वह पर्वत या वृक्ष से आ गया है], २—**गिरेः तरोः**, **विकारः**=गिरिणो, तरुणो विआरो [पर्वत-पहाड़ और वृक्ष का विकार है], ३—**दध्नः**, **मधुनः**, **आगतः**=दहिणो, महुणो आगओ [यह दधि-दही अथवा मधु-शहद से आया हुआ है=प्राप्त हुआ है], ४—**दध्नः**, मधुनः **विकारः**=दहिणो, महुणो विआरो [यह पदार्थ दही और शहद का विकार है] यहां पर ङसि और ङस् इन प्रत्ययों के स्थान में '**णो**' यह आदेश किया गया है। जहां पर ङसि प्रत्यय के स्थान में '**णो**' यह आदेश नहीं किया गया, वहां पर इकारान्त शब्द के १—**गिरीओ**, २—**गिरीउ**, ३—**गिरीहिन्तो**, उकारान्त शब्द के १—**तरूओ**, २—**तरूउ**, ३—**तरूहिन्तो**, ये रूप बन जाते हैं। ६१३ सूत्र द्वारा अदन्त-वद् अतिदेश होने से ४९७ सूत्र से ङसि प्रत्यय के स्थान में होने वाले '**हि**' इस आदेश का ६१६ सूत्र द्वारा तथा लुक् इस आदेश का ६१५ सूत्र द्वारा निषेध किया जाने वाला है। ङस् प्रत्यय के स्थान में जहां प्रस्तुत सूत्र द्वारा '**णो**' यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर १—**गिरेः**=गिरिस्स (पर्वत का), २–**तरोः**=तरुस्स [वृक्ष का] ये रूप बनते हैं। प्रस्तुत सूत्र [५१२] में पठित '**ङसि-ङसोः**' इस पद के कारण १–**गिरिणा**, **तरुणा कृतम्**=गिरिणा, तरुणा कयं [पहाड़ अथवा वृक्ष से किया हुआ] यहां पर तृतीया विभक्ति के एक वचन टा-प्रत्यय के स्थान में '**णो**' यह आदेश नहीं हो सका। प्रश्न उपस्थित होता है कि '**पुंक्लीबे**' यह पद ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है ? उत्तर में निवेदन है कि स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे ङसि और ङस् प्रत्ययों के स्थान में होने वाले '**णो**' इस आदेश के निषेधार्थ उक्त पद का ग्रहण किया गया है। जैसे–१–**बुद्धेः धेन्वः लब्धम्**=बुद्धीअ, धेणूअ लद्धं [बुद्धि-अक्ल तथा गौ से प्राप्त हुआ], २–**बुद्धेः**, **धेन्वः समृद्धिः**=बुद्धीअ, धेणूअ समिद्धी [बुद्धि या गाय का ऐश्वर्य है], यहां पर स्त्रीलिङ्गी इकार तथा उकार से परे पड़े ङसि और ङस् प्रत्यय के स्थान में '**णो**' यह आदेश नहीं किया गया। इस के अतिरिक्त, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे पड़े ही ङसि और ङस् प्रत्यय के स्थान में '**णो**' यह

* सम सम्बन्धी विधि यथासंख्य होती है। यदि उद्देश्य तथा प्रतिनिर्देश्य [स्थानी और आदेश] की संख्या समान हो तो वहां पर आदेश क्रम से-प्रथम को प्रथम, और द्वितीय को द्वितीय, इस प्रकार से होते हैं। लघुसिद्धान्त-कौमुदी।

आदेश किया जाता है। इसी कारण १—**कमलायाः**=कमलाओ [लक्ष्मी से], २—**कमलस्य**=कमलस्स [कमल, जल, तांबे, सारस पक्षी का] यहां पर अवर्णान्त शब्द से आए ङसि और ङस् इन प्रत्ययों के स्थान में '**णो**' यह आदेश नहीं हो सका।

५१३—पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान इकारान्त और उकारान्त शब्द से परे आए 'टा' इस प्रत्यय के स्थान में '**णा**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**गिरिणा**=गिरिणा [पर्वत से], २—**ग्रामण्या**=गामणिणा [ग्राम के स्वामी से, नाई से या कामी पुरुष से], ३—**खलप्वा**=खलपुणा [झाड़ू देने वाले पुरुष से], ४—**तरुणा**=तरुणा (वृक्ष से), ५—**दध्ना**=दहिणा [दही से], ६—**मधुना**=महुणा [मधु से] यहां पर टा-प्रत्यय के स्थान में '**णा**' यह आदेश किया गया है। सूत्रकार ने जो **टो** [टा के स्थान में] यह पद दिया है, इस का प्रयोजन टा-प्रत्यय से भिन्न प्रत्ययों के स्थान में '**णा**' इस आदेश की निवृत्ति ही है। जैसे—१—**गिरयः**=गिरी [पर्वत], २—**तरवः**=तरू [वृक्ष] ३—**दधि**=दहिं, [दही को], ४—**मधु**=महुं [शहद को] यहां पर जस् तथा अम् प्रत्यय के होने से '**णा**' यह आदेश नहीं हो सका। यदि पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग शब्द को छोड़ कर स्त्रीलिङ्ग का कोई शब्द होगा तो उस से आगे आने वाले टा-प्रत्यय के स्थान में भी 'णा' यह आदेश नहीं होता। जैसे—**बुद्ध्या धेनुना कृतम्**=बुद्धीअ, धेणूअ कयं [बुद्धि-अक्ल से, धेनु से किया हुआ], यहां बुद्धि और धेनु शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं अतः इन के टा-प्रत्यय के स्थान में णादेश नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त—यह णादेश इकारान्त और उकारान्त शब्दों से ही होता है, अन्यत्र नहीं। जैसे—**कमलेन**=कमलेण [कमल से] यहां कमल शब्द अकारान्त है, इसलिए टा के स्थान में '**णा**' यह आदेश नहीं किया गया।

५१४—नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान स्वरान्त नाम-प्रातिपदिक से आगे यदि 'सि' प्रत्यय पड़ा हो तो उस के स्थान में '**म्**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**वनम्**=वणं [जंगल], २—**प्रेम**=पेम्मं [अनुराग], ३—**दधि**=दहिं [दही], ४—**मधु**=महुं [शहद] यहां पर सि को मकारादेश किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि **दहि** और **महु** इन शब्दों में '**सि**' प्रत्यय को मकारादेश क्यों नहीं किया गया? उत्तर में निवेदन है कि ये शब्द सिद्धापेक्षा से हैं अर्थात् संस्कृत भाषा में सिद्ध विभक्त्यन्त **दधि** और **मधु** इन शब्दों से बनाए गए हैं। कई **एक आचार्य** सि-प्रत्यय के स्थान में मकारादेश के साथ-साथ अनुनासिक यह आदेश भी स्वीकार करते हैं। उनके मत में-**दधि** शब्द के-**दहिँ**, **दहिं**, तथा **मधु** शब्द के **महुँ**, **महुं**, इस तरह दो-दो रूप बन जाते हैं। प्रस्तुत-सूत्र में पठित—**क्लीबे**, [नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान] इस पद के कारण—१—**बालः**=बालो [बालक], २—**बाला**=बाला [बालिका], यहां पुल्लिङ्ग बाल तथा स्त्रीलिङ्ग बाला शब्द के सि-प्रत्यय को मकारादेश नहीं हो सका। इस के अलावा, सूत्रकार ने सूत्र में जो '**स्वरात्**' यह पद पढ़ा है, इस के कारण '**५०५**' सूत्र से आ रही '**इदुतः**' इस पद की अनुवृत्ति की निवृत्ति हो जाती है। भाव यह है कि नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान शब्द स्वरान्त होना चाहिए, फिर भले ही वह अवर्णान्त हो, इवर्णान्त हो या उवर्णान्त।

५१५—नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान नाम-प्रातिपदिक से परे यदि जस् और शस् ये प्रत्यय हों तो इनके स्थान में सानुनासिक [अनुनासिक सहित] तथा सानुस्वार [अनुस्वार-सहित] इकार और णि ये आदेश होते हैं तथा इन आदेशों के परे रहने पर पूर्वस्वर को दीर्घ हो जाता है। जैसे—**सानुनासिक इकार [इँ] का उदाहरण—५—यानि वचनानि अस्माकम्**=जाइँ वयणाइँ अम्हे [हमारे जो वचन हैं, अथवा हमारे जिन वचनों को], **सानुस्वार इकार [इं] के उदाहरण**, जैसे—१—**उन्मीलन्ति**

पङ्कजानि=उम्मीलन्ति पङ्कयाइं [पङ्कज=कमल खिलते हैं], **१—पङ्कजानि तिष्ठन्ति**=पंङ्कयाइं चिट्ठन्ति [कमल विद्यमान हैं], **२—पङ्कजानि पश्य**=पङ्कयाइं पेच्छ [कमलों को देखो], **३—दधीनि मधूनि भवन्ति भुंक्ष्व वा**=दहीइं हुन्ति, जेम वा [दधि यहां पर बहुत विद्यमान हैं अथवा दही खाइए], ४—**मधूनि मुञ्च**=महूइं मुञ्च [शहद को छोडो] इन पदों के साथ '**वा**' यह अव्ययपद **अथवा** इस **अर्थ** का बोधक है। **णि के उदाहरण—१—फुल्लन्ति पङ्कजानि गृहाण वा**=फुल्लन्ति पङ्कयाणि गेण्ह वा [कमल खिलते हैं अथवा तुम इन को ग्रहण करो], **२—भवन्ति दधीनि भुंक्ष्व वा**=हुन्ति दहीणि जेम वा [दही बहुत विद्यमान हैं, अथवा दधि खाइए] **एवं**=इसी प्रकार=**मधूनि**=महूणि [मधु (शहद) शब्द का बहुवचन] इस शब्द की भी सिद्धि होती है। यहां पर जस् और शस् इन प्रत्ययों के स्थान में सानुनासिक और सानुस्वार इकार, एवं णि ये आदेश किए गए हैं, और पूर्व-स्वर दीर्घ बनाया गया है। सानुनासिक इकार आदि आदेश नपुंसकलिङ्ग में ही वर्तमान शब्द के जस्-शस् प्रत्ययों को होते **हैं**, अन्य लिङ्ग वाले शब्दों के जस्-शस् को ये आदेश नहीं होते। **जैसे—१—वृक्षाः**=वच्छा [प्रथमा-विभक्ति का बहुवचन], २—**वृक्षान्**=वच्छे [द्वितीया विभक्ति का बहुवचन] यहां वृक्ष शब्द पुल्लिङ्ग है, अतः इस के जस् **और** शस् इन प्रत्ययों को सानुनासिक इकारादि आदेश नहीं हो सके। इसके अलावा, यह भी समझ लेना चाहिए कि ये आदेश जस् और शस् इन प्रत्ययों के स्थान में ही होते हैं, सि आदि अन्य प्रत्ययों को नहीं। **जैसे—सुखम्**=सुहं [आनन्द] यहां सुख शब्द नपुंसकलिङ्गी होने पर भी प्रथमाविभक्ति का एकवचनान्त है, अतः इस के सि प्रत्यय को इँ आदि यह आदेश नहीं हो सके।

५१६—स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान नाम-शब्द से परे यदि जस् और शस् ये दो प्रत्यय हों तो प्रत्येक के स्थान में उत् और ओत् ये दो दो आदेश विकल्प से होते हैं और पूर्वस्वर को दीर्घ होता है। प्रस्तुत सूत्र में ५१५ सूत्र से '**जस्-शसः**' इस पद की अनुवृत्ति आती है। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि **जस्-शसः** यह स्थानी पद एकवचनान्त दिखाई दे रहा है, और '**उदोतौ**' यह आदेश-पद द्विवचनान्त है, ऐसा क्यों? आदेश-पद की भाँति स्थानिपद भी द्विवचनान्त होना चाहिए था? उत्तर में निवेदन है कि यह वचन-गत भेद *"**यथासंख्यनुदेशः समानाम्**' इस परिभाषा की निवृत्ति के लिए है। अर्थात् यहां पर यह परिभाषा नहीं लगती है। सूत्र के उदाहरण इस प्रकार हैं। **जैसे—१—मालाः**=मालाउ, मालाओ [माला], २—**बुद्धयः, बुद्धीः**=बुद्धीउ, बुद्धीओ [बुद्धि], **३—सख्यः**,=सहीउ, सहीओ [सहेली], ४—**धेनवः, धेनूः**=धेणूउ, धेणूओ [गौ], ५—**वध्वः=वहूउ, वहूओ,** [पत्नी] माला आदि सभी शब्द प्रथमा तथा द्वितीया **विभक्ति के बहुवचनान्त** हैं। विभक्तिगत अर्थकल्पना स्वयं कर लेनी चाहिए। यहां पर जस् और शस् इन प्रत्ययों के स्थान में उकार और ओकार कर के पूर्वस्वर को दीर्घ किया गया है। जहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई वहां पर क्रमशः=**माला, बुद्धी, सही, धेणू** और **वहू** ये रूप बनते हैं। प्रस्तुत सूत्र में '**स्त्रियाम्**' इस पद के उल्लेख से-**वृक्षाः, वृक्षान्**=वच्छा, यहां पर पुल्लिङ्ग शब्द होने से जस्-शस् के स्थान में उकार और ओकार ये आदेश नहीं हो सके। भाव यह है कि स्त्रीलिङ्ग-भिन्न शब्दों से '**उ**' और '**ओ**' इन आदेशों के निषेधार्थ '**स्त्रियाम्**' इस पद का उल्लेख किया गया है। इस के अलावा, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये आदेश जस् और शस् के स्थान में ही होते हैं, अन्यत्र नहीं। इसीलिए-**मालया कृतम्**=मालाए कयं [माला द्वारा किया हुआ] यहां '**टा**' के स्थान में ये आदेश नहीं हो सके।

***देखो पृष्ठ ३६० की टिप्पणी।**

५१७—स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ईकारान्त शब्द से परे यदि जस् और शस् ये दो प्रत्यय पड़े हों तो इन के स्थान में विकल्प से आकार होता है। **जस्-प्रत्यय के उदाहरण**, **जैसे—१—एषा हसन्ती**= एसा हसन्तीआ (यह हंसती हुई), जहां आकारादेश नहीं हुआ, वहां पर **हसन्ती**, ऐसा रूप बनता है। २—**गौर्य्यः तिष्ठन्ति**=गोरीआ चिट्ठन्ति (सुन्दरियां विद्यमान हैं) जहां पर आकारेदेश नहीं हो सका, वहां पर **गोरीओ** यह रूप बन जाता है। **शस्-प्रत्यय का उदाहरण, जैसे—१—गौरीः पश्य**= गोरीओ पेच्छ (गौरवर्ण की नारिओं को देखो) यहां पर जस्-शस् इन प्रत्ययों के स्थान में विकल्प से आकार किया गया है।

५१८— स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान शब्द से परे यदि टा, ङस् और ङि ये प्रत्यय हों तो प्रत्येक के स्थान में **अत्** (**अ**), **आत्** (**आ**), **इत्** (**इ**) और **एत्** (**ए**) ये चार आदेश होते हैं। तथा **पूर्वस्वर दीर्घ** हो जाता है। किन्तु ङसि प्रत्यय के स्थान में अकारादि ये चारों आदेश विकल्प से होते हैं, और पूर्वस्वर भी विकल्प से दीर्घ होता है। **टा-प्रत्यय का उदाहरण**, जैसे—**१—मुग्धया कृतम्**=मुद्धाअ, मुद्धाइ, मुद्धाए कयं (मुग्धा=सम्मोहित नारी से किया हुआ) **ङस् प्रत्यय का उदाहरण**, जैसे—**१—मुग्धायाः मुखम्**= मुद्धाअ, मुद्धाइ, मुद्धाए मुहं (मुग्धा का मुख) **ङि-प्रत्यय का उदाहरण**, जैसे—**मुग्धायाम् स्थितम्** = मुद्धाअ, मुद्धाइ, मुद्धाए ठिअं (मुग्धा स्त्री में स्थित-ठहरा हुआ) यदि ४३५ सूत्र से क-प्रत्यय कर लिया जाए तो— टा, ङस् तथा ङि इन प्रत्ययों के – **मुद्धिआ-अ, मुद्धिआ-इ, मुद्धिआ-ए**, ये रूप बन जाते हैं। २—**कमलिकया, कमलिकायाः, कमलिकायाम्**=कमलिआ-अ कमलिआ-इ, कमलिआ-ए (कमला-लक्ष्मी ने, लक्ष्मी का, लक्ष्मी में), **३—बुद्ध्या कृतम्, बुद्ध्याः विभवः, बुद्ध्याम् स्थितम्**=बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए कयं विहवो, ठिअं वा (बुद्धि ने किया, बुद्धि का ऐश्वर्य अथवा बुद्धि में रहा हुआ), **४—सख्या कृतम्, सख्याः वदनम्, सख्याम्**=सहीअ, सहीआ, सहीइ, सहीए, कयं वयणं ठिअं वा (सखी-सहेली ने किया, सखी का मुख, अथवा सखी में रहा हुआ), **५—धेन्वा कृतम्, धेन्वाः दुग्धम्, धेन्वाम् स्थितम्**= धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए कयं, दुद्धं ठिअं वा (गौ ने किया, धेनु का दूध, धेनु में रहा हुआ), ६— **वध्वा कृतम्, वध्वाः भवनम्, वध्वाम् स्थितम्**=वहूअ, वहूआ, वहूइ, वहूए कयं, भवण, ठिअं वा (पत्नी-अर्द्धाङ्गिनी ने किया, पत्नी का भवन-मकान, अथवा पत्नी में रहा हुआ) यहां पर क्रमशः टा, ङस् और ङि इन प्रत्ययों के स्थान में अ, आ, इ और ए ये चार आदेश करके पूर्वस्वर को दीर्घ किया गया है। **ङसि-प्रत्यय के उदाहरण**, जैसे—**१—मुग्धायाः**=मुद्धाअ, मुद्धाइ, मुद्धाए, जहां पर प्रस्तुत सूत्र से अकारादि आदेश नहीं हो पाए वहां पर, **मुद्धाओ, मुद्धाउ, मुद्धाहिन्तो** (मुग्धा नारी से) २—**बुद्ध्याः**= बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए (**दूसरे पक्ष में**) बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धीहिन्तो (बुद्धि से) ३—**सख्याः**= सहीअ, सहीआ, सहीइ, सहीए (**दूसरे पक्ष में**) सहीओ, सहीउ, सहीहिन्तो (सखी से) ४—**धेन्वः** =धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए (**दूसरे पक्ष में**) धेणूओ, धेणूउ, धेणूहिन्तो (धेनु से), ५—**वध्वः आगतः**=वहूअ, वहूआ, वहूइ, वहूए, (**दूसरे पक्ष में**) वहूओ, वहूउ, वहूहिन्तो आगओ (पत्नी से आया हुआ), ६—**रत्यः**=रईअ, रईआ, रईइ, रईए (**दूसरे पक्ष में**) रईओ, रईउ, रईहिन्तो (रति—कामदेव की स्त्री, आनन्द या सम्भोग से) यहां पर प्रस्तुत [५१८] सूत्र से ङसि प्रत्यय परे होने से अकारादि आदेश विकल्प से किए गए हैं। जहां ये आदेश नहीं हुए वहां पर ४९७ सूत्र से ङसि के स्थान में दो, दु आदि आदेश किए गए हैं। तथा इन प्रयोगों में भी ६१३ सूत्र से अदन्तवद् अतिदेश होने के कारण ५०१ सूत्र से पूर्वस्वर को दीर्घ किया गया है। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि मूल में **मुद्धाआ**,

मुद्धिआ-आ तथा **कमलिआ-आ,** इन प्रयोगों का उल्लेख क्यों नहीं किया गया? क्या कारण है ? उत्तर में निवेदन है कि ५१९ सूत्र से आकारान्त शब्दों से 'आ' इस आदेश का निषेध किया जाने वाला है। प्रस्तुत सूत्र द्वारा अकारादि जो आदेश किए जाते हैं, ये सब स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं, पुल्लिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग में ये आदेश नहीं हो पाते। जैसे—१—**वृक्षेण**=वच्छेण (वृक्ष से), २—**वृक्षाद्**= वच्छाओ (वृक्ष से), ३—**वृक्षस्य**=वच्छस्स (वृक्ष का) ४-**वृक्षे**=वच्छम्मि (वृक्ष पर), यहां पुल्लिङ्ग वृक्ष शब्द से टा आदि प्रत्ययों के स्थान में अ आदि आदेश नहीं हो सके। इस के अलावा, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये आदेश भी टा, ङसि, ङस् और ङि इन प्रत्ययों के स्थान में ही होते हैं, अन्य किसी प्रत्यय को नहीं। जैसे—१—**मुग्धा**=मुद्धा, २—**बुद्धिः**=बुद्धी, ३—**सखी**=सही, ४—**धेनुः** =धेणू, ५—**वधूः**=वहू। यहां पर प्रथमाविभक्ति का प्रत्यय होने से अत् आदि आदेश नहीं हो सके।

५१९—स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान आकारान्त शब्दों से परे टा, ङसि, ङस् और ङि इन प्रत्ययों के स्थान में ५१८ सूत्रोक्त अ, **इ, ए** ये तीन आदेश होते हैं, किन्तु **आत्** यह आदेश नहीं होता। जैसे— **मालया कृतम्, मालायाः आगतः, मालायाः सुखम्, मालायां स्थितम्**=मालाअ, मालाइ, मालाए कयं, आगओ, सुहं, ठिअं वा [माला ने किया, माला से आया, माला-सम्बन्धी सुख अथवा माला में रहा हुआ] यहां 'आ' इस आदेश को छोड़ कर शेष अकारादि तीन आदेश किए गए हैं। ङसि प्रत्यय में पहले की भांति विकल्प रहता है। जहां पर अ आदि तीन आदेश नहीं हुए वहां पर—**मालाओ, मालाउ, मालाहिन्तो,** ये रूप बनते हैं।

५२०—सिद्धहेमशब्दानुशासन के "**अणादिसूत्रेण** ।२।४।२०।" इस सूत्र से '**अण**' आदि प्रत्ययनिमित्तक जो 'ङी' यह प्रत्यय होता है, वह प्रत्यय प्राकृतभाषा में **स्त्रीलिङ्ग** में विद्यमान शब्द को विकल्प से होता है। जैसे—**१—साधनी**=साहणी, जहां पर ङीप्रत्यय नहीं हुआ, वहां पर २।४।१८। सूत्र से आप्-प्रत्यय होने पर **साहणा** [साधन, उपाय, सैन्य, लश्कर], **२—कुरुचरी**=कुरुचरी, कुरुचरा (कुरुदेश में विचरण करने वाली) यह रूप बनता है। यहां पर विकल्प से ङी यह प्रत्यय किया गया है।

५२१—अजातिवाचक (जो जातिवाचक नहीं है) पुल्लिङ्ग शब्द यदि स्त्रीलिङ्ग में आए तो प्राकृत-भाषा में उस से ङी-प्रत्यय विकल्प से होता है। भावों का परिचय प्राप्त करने के लिए संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है। संज्ञा शब्द के विशेष अर्थ को प्रकट करने का एक साधन माना गया है। अर्थ-भेद के कारण संज्ञा-भेद का होना स्वाभाविक ही होता है। संज्ञाएं तीन प्रकार की होती हैं—जैसे—**१—जातिवाचक**, २—**व्यक्तिवाचक** और ३=**भाववाचक**। जहां कोई एक नाम लेने से किसी जाति का बोध होता हो उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे—गाय, बैल, मनुष्य, पुरुष, नारी आदि। जहां एक नाम लेने से केवल एक ही व्यक्ति या वस्तु का बोध प्राप्त होता हो वह व्यक्तिवाचक संज्ञा है। जैसे—**भगवान राम, महावीर, गौतम, जम्बू, आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज** आदि। जहां किसी पदार्थ के धर्म, भाव और गुण आदि का परिचय प्राप्त हो वह भाववाचक संज्ञा कहलाती है। जैसे, मिठास, बचपन, खटास, भारीपन आदि। जो जातिवाचक संज्ञा न हो उसे अजातिवाचक संज्ञा कहा गया है। सूत्रकार कहते हैं कि अजातिवाचक पुल्लिङ्ग शब्दों को स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङी-प्रत्यय होता है। जैसे—**१—नीलः**=नीली, नीला (नीलवर्ण वाली, नीललेश्या), २—**कालः**=काली काला (कृष्ण वर्ण), ३—**हसन्**=हसमाणी, हसमाणा (हंसती हुई), ४—**शूर्पणखा**= सुप्पणही, सुप्पणहा (रावण की बहिन) ४—**अनया**=एईए, एआए (इस स्त्री ने) ५—**आसाम्**=

इमीणं, इमाणं (इन स्त्रियों का), ६—**एतया**=एईए, एआए (इस स्त्री ने), ७—**एतासाम्**=एईणं, एआणं (इन बालिकाओं का) यहां पर अजातिवाचक पुल्लिङ्ग शब्द को स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में विकल्प से ङी-प्रत्यय किया गया है। यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार ने "**अजातेः**" इस पद को किस प्रयोजन से ग्रहण किया है? **उत्तर** में निवेदन है कि **करी** (हाथी), **अज** (बकरा), और **एलक** (मेढा) आदि जो जातिवाचक शब्द हैं, इन को विकल्प से '**ङी**' यह प्रत्यय न हो, इस उद्देश्य से सूत्रकार ने '**अजातेः**' इस पद का उल्लेख किया है। संस्कृत-भाषा में जब उक्त शब्द स्त्रीलिङ्गी बनते हैं, तब इन का १—**करिणी,** (हथिनी), २—**अजा** (बकरी), तथा ३—**एलका** (मेढी) ये रूप बन जाते हैं। यही रूप प्राकृतभाषा में आने पर-**करिणी, अया, एलया,** ऐसा रूप धारण कर लेते हैं। 'प्रस्तुत' सूत्र में पिछले ५२० सूत्र से '**वा**' इस पद की जो अनुवृत्ति आती है, यह पद विभाषा-विकल्प का संसूचक है, नीलादि शब्दों में ङीप्रत्यय की प्राप्ति नहीं थी, तथापि यहां पर प्रस्तुत सूत्र ने उस का वैकल्पिक विधान किया है। इसी लिए १—**गौरी**=गोरी, *(गौर वर्ण वाली नारी)*, २—**कुमारी**=कुमारी (अविवाहित लड़की) आदि शब्दों में संस्कृत भाषा के समान नित्य ही 'ङी' प्रत्यय होता है।

५२२—**सि, अम्** और **आम्** इन प्रत्ययों को छोड़ कर यदि कोई अन्य स्यादि (सि आदि) प्रत्यय परे पड़ा हो तो **किम्, यद्** और **तद्** इन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङी-प्रत्यय विकल्प से होता है। जैसे—१—**काः** ?=कीओ काओ ? (कौन हैं ?) २—**कया**=कीए काए (किस ने), ३—**कासु**=कीसु कासु (किन में) इसी प्रकार १—**याः**=जीओ जाओ (जो हैं), २—**ताः**=तीओ, ताओ, (वे हैं) इत्यादि शब्दों में वैकल्पिक ङी-प्रत्यय किया गया है। सूत्र में पठित—'**अस्यमामि**' इस पद का अर्थ है—सि, अम् और आम् इन प्रत्ययों को छोड़ कर। सूत्र-पठित इस पद के कारण ही १=**का**—**का** (कौन है), २—**या**=जा (जो), ३—**सा**=सा (वह), ४—**काम्**=कं (किस को), ५—**याम्**=जं (जिस को), ६—**ताम्**=तं (उस को) ७—**कासाम्**=काण (किन को), ८—**यासाम्**=जाण (जिन को), ९—**तासाम्**=ताण (उन को) यहां पर ङी-प्रत्यय नहीं हो सका। ये सब सि, अम् और आम् इन प्रत्ययों के उदाहरण समझने चाहिएं।

५२३—**आप्-प्रत्यय** का प्रसंग होने पर **छाया** और **हरिद्रा** इन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङी-प्रत्यय होता है। जैसे—१—**छाया**=छाही, छाया (परछाई), २—**हरिद्रा**=हलद्दी, हलद्दा (हलदी) यहां पर वैकल्पिक ङी-प्रत्यय किया गया है।

५२४—**स्त्रीलिङ्ग** में वर्तमान **स्वसृ** आदि शब्दों से डा (आ) प्रत्यय होता है। जैसे—१—**स्वसा**=ससा (बहिन), २—**ननान्दा**=नणन्दा (ननद), ३—**दुहिता**=दुहिआ (लड़की), ४—**दुहितृभिः**=दुहिआहिं (लड़कियों ने), ५—**दुहितृषु**=दुहिआसु (लड़कियों में), ६—**दुहितृसुतः**=दुहिआसुओ (पुत्री का पुत्र, दोहता), ७—**गोकः**=गउआ (सांड, बैल, नौ की संख्या, चन्द्रमा) यहां पर स्वसृ आदि शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में डा-प्रत्यय किया गया है।

५२५—**स्त्रीलिङ्ग** में वर्तमान शब्द को **अम्** प्रत्यय परे रहने पर ह्रस्व हो जाता है। जैसे—१—**मालाम्**=मालं (माला को), २—**नदीम्**=नइं (नदी को), ३—**वधूम्**=वहुं (पत्नी-अर्द्धाङ्गिनी को), ४—**हसन्तीं पश्य**=हसमाणिं, हसमाणं पेच्छ (हंसती हुई को देखो), यहां अम् प्रत्यय परे रहने के कारण दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि '**अम्**' परे रहने पर ही

ह्रस्व होता है, यह कहने का क्या प्रयोजन है ? उत्तर में निवेदन है कि—**१=माला**=माला, २—**सखीः**—सही, ३—**वधूः**=वहू, इन प्रयोगों में सि-प्रत्यय परे रहने पर भी कहीं 'दीर्घ स्वर ह्रस्व न बन जाए, इस उद्देश्य से "**अम् परे रहने पर**" ऐसा कहा गया है।

५२६—**आमन्त्र्य (सम्बोधन)** इस अर्थ वाले शब्द से परे यदि 'सि' प्रत्यय हो तो ५१४ सूत्र से 'सि' प्रत्यय के स्थान में जो मकार होता है, वह नहीं हो पाता। जैसे—१—**हे तृण** !=हे तण ! (हे तृण !), २—**हे दधि** ! =हे दहि ! (हे दही !), ३—**हे मधु** !=हे महु ! (हे शहद !), यहां **सम्बोधन** में 'सि' को '**म्**' यह आदेश नहीं हो सका।

५२७—**आमन्त्र्य** (सम्बोधन) इस अर्थ-वाले शब्द से परे यदि सि-प्रत्यय पड़ा हो तो उसे, ४९१ सूत्र से उस के स्थान में नित्य होने वाला 'डो' यह आदेश तथा ५०८ सूत्र से नपुंसकलिङ्ग को छोड़कर इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों के इकार और उकार को सिप्रत्यय परे रहते होने वाला दीर्घ ये दोनों कार्य विकल्प से होते हैं। **ओकार के उदाहरण**, जैसे—१—**हे देव** !=हे देव !, हे देवो ! (देव का सम्बोधन), २—**हे क्षमाश्रमण** !=हे खमासमण !, हे खमासमणो ! (हे मुने !), ३—**हे आर्य** !=हे अज्ज ! हे अज्जो ! (हे श्रेष्ठ पुरुष !), **दीर्घ के उदाहरण**, जैसे—१—**हे हरे** !=हे हरी ! हे हरि ! (हरि का सम्बोधन), २—**हे गुरो** !=हे गुरू !, हे गुरु ! (गुरु का सम्बोधन), ३—**जातिविशुद्धेन हे प्रभो** !=जाइविसुद्धेण हे पहू ! (हे भगवन् ! जाति से विशुद्ध ने), ४—**द्वौ जितलोकान्**=दोण्णि पहू ! जितलोए (हे प्रभो ! लोक जीतने वाले दो व्यक्तियों को), जहां उकार को दीर्घ नहीं हुआ, वहां "**हे पहु** !" यह रूप बनता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि **देव** आदि शब्दों में ४९१ सूत्र से सि-प्रत्यय के स्थान में **डो** यह आदेश प्राप्त था, तथा हरि आदि शब्दों में ५०८ सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति थी। किन्तु प्रस्तुत सूत्र से इन प्राप्त कार्यों में विकल्प का निर्देश कर दिया गया है। ध्यान रहे कि कुछ ऐसे प्रयोग भी हैं, जहां दीर्घ की प्राप्ति नहीं थी वहां अप्राप्त दशा में भी प्रस्तुत सूत्र द्वारा विकल्प से दीर्घ कर दिया जाता है। जैसे—१—**हे गौतम** !=हे गोअमा !, हे गोअम ! (हे गौतम !), २—**हे कश्यप** !=हे कासवा !, हे कासव ! (अयि नाई), ३—**रे रे मिथ्याभाषिन्**!=रे रे चप्फलया ! रे रे चप्फलय! (अयि झूठ बोलने वाले !), ४—**रे रे निर्घृणक** !=रे रे निग्घिणया ! रे रे निग्घणय! (हे निष्ठुर ! अर्थात् हे दयाहीन!), यहां किसी सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति नहीं थी, परन्तु प्रस्तुतसूत्र से वैकल्पिक दीर्घ हो गया।

५२८—**आमंत्रण** में ऋकारान्त शब्द को सि-प्रत्यय परे रहने पर अकारान्तादेश होता है। जैसे—१—**हे पितः** !=हे पिअ ! (पिता का सम्बोधन), २—**हे दातः** !=हे दाय ! (दाता का सम्बोधन), जहां अन्त में अकारादेश नहीं हुआ, वहां पर—**हे पिअरं ! हे दायार** !, ऐसे रूप बनते हैं।

५२९—यदि **आमंत्रण** का सि-प्रत्यय परे पड़ा हो तो ऋकारान्त शब्दों को संज्ञा के विषय में '**अरं**' यह अन्तादेश (अन्त में होने वाला आदेश) विकल्प से होता है। जैसे—**हे-पितः** !=हे पिअरं ! **जहां** अरं यह आदेश नहीं हुआ वहां पर **हे पिअ** ! यह रूप बनता है। सूत्र में पठित **नाम्नि** (संज्ञा का विषय होने पर), इस पद का उद्देश्य भी समझ लेना आवश्यक है। **हे कर्तः** !=हे कत्तार ! (यह कर्तृ शब्द का सम्बोधन है) यह संज्ञावाचक शब्द नहीं है, तथापि ऐसे असंज्ञावाचक शब्द को '**अरं**' यह अन्तादेश न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने '**नाम्नि**' इस पद का उल्लेख किया है।

५३०—**आमन्त्रण-सम्बन्धी** सि-प्रत्यय परे रहने पर आप् प्रत्यय के आ को विकल्प से एकार होता है। जैसे—१—**हे माले** !=हे माले !। जहां 'आ' को एकारादेश नहीं हुआ वहां पर—**हे माला** !

(माला का सम्बोधन) यह रूप बनता है। २—**हे महिले!**=हे महिले! हे महिला! (महिला का सम्बोधन) ३—**हे आर्यिके !**=हे अज्जिए ! (आर्यिका-साध्वी का सम्बोधन), ४—**हे प्रार्यिके !**=हे पज्जिए ! (प्रार्यिका-माता की दादी का सम्बोधन) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से आप्-प्रत्यय के आकार को विकल्प से एकार किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में '**आप**' इस पद को ग्रहण करने का क्या उद्देश्य है ? उत्तर में निवेदन है कि जो आकार आबन्त नहीं है, उस के एकारादेश के निषेधार्थ '**आप**' इस पद का ग्रहण किया गया है। जैसे—१—**हे पितृष्वसः !**=हे पिउच्छा ! (हे बुआ !), २—**हे मातृ-ष्वसः !**=हे माउच्छा ! (हे मौसी !) यहां पर आकार आप्-प्रत्यय का न होने से एकार का रूप नहीं ले सका। **बहुलाधिकार से** कहीं पर आप्-प्रत्यय के आकार को ओकार भी हो जाता है। जैसे—**हे अम्बे ! भणामि भणिते** = हे अम्मो ! भणामि भणिए (हे मातः ! कहने पर बोलता हूं) यहां आकार को ओकार किया गया है।

५३१—**आमन्त्रण-सम्बन्धी** सि-प्रत्यय के परे होने पर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों के दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं। जैसे—१—**हे नदि !**=हे नइ ! (नदी का सम्बोधन है), २—**हे ग्रामणि !**=हे गामणि ! (ग्रामणी-ग्राम के मुखिया का सम्बोधन), ३—**हे श्रमणि !** हे समणि ! (हे साध्वि !) ४—**हे वधु !**=हे वहु ! (पत्नी का सम्बोधन), ५—**हे खलपु !**=हे खलपु ! (हे दुष्टों को पवित्र करने वाले !) यहां पर आमंत्रण में ईकार और ऊकार को ह्रस्व किया गया है।

५३२—**क्विप् प्रत्ययान्त** ईकारान्त तथा ऊकारन्त शब्दों के दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं। जैसे—१—**ग्रामण्या**=गामणिणा (ग्राम के मुखिया ने), २—**खलप्वा**=खलपुणा (पतित-पावन ने), ३—**ग्रामण्यः**=गामणिणो (पंचमी विभक्ति का एक वचन), ४—**खलप्वः**=खलपुणो (पंचमी का एक वचन) यहां ईकार तथा ऊकार को इकार तथा उकार किया गया है।

५३३—**सि, अम् और औ** इन प्रत्ययों को छोड़ कर शेष **स्यादि** प्रत्ययों के परे रहने पर ऋकारान्त शब्दों को उदन्तादेश विकल्प से होता है। **जस् प्रत्यय का उदाहरण**—जैसे—१—**भर्तारः**=भत्तू, भत्तुणो, भत्तउ, भत्तओ, जहां प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, वहां पर **भत्तारा** (अनेक रक्षक) यह रूप बनता है। **शस् प्रत्यय का उदाहरण** जैसे—**भर्तॄन्**=भत्तू, भत्तुणो, जहां पर यह सूत्र नहीं लगा, वहां पर **भत्तारे** (रक्षकों को), यह रूप बनता है। **टा-प्रत्यय का उदाहरण** जैसे—**भर्त्रा**=भत्तुणा, अथवा भत्तारेण (रक्षक ने), **भिस्-प्रत्यय का उदाहरण** जैसे—**भर्तृभिः**=भत्तूहिं अथवा भत्तारेहिं (रक्षकों ने), **ङसि का उदाहरण जैसे—भर्तुः**=भत्तुणो, भत्तूओ, भत्तूउ, भत्तूहि, भत्तूहिन्तो **अथवा** भत्ताराओ, भत्ताराहि, भत्ताराहिन्तो, भत्तारा (रक्षक से), **ङस्-प्रत्यय का उदाहरण** जैसे—भर्तुः =भत्तुणो, भत्तुस्स, **अथवा** भत्तारस्स (रक्षक का) **सुप्-प्रत्यय का उदाहरण**—भर्तृषु=भत्तूसु **अथवा** भत्तारेसु (रक्षकों में) यहां पर विकल्प से उदन्तादेश किया गया है। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि सूत्रकार ने '**ऋताम्**' यह जो बहुवचनान्त पद दिया है, इस की क्या आवश्यकता थी ? यहां तो '**ऋतः**' यह एक-वचनान्त पद ही कार्य सम्पन्न कर सकता था ? यह अक्षर-गौरव क्यों किया गया ? उत्तर में निवेदन है कि बहुवचन यहां व्याप्त्यर्थक है। **व्याप्ति का अर्थ** होता है—व्यापकता। भाव यह है कि यह सूत्र केवल भर्तृ, दातृ आदि असंज्ञावाचक शब्दों को ही उदन्तादेश नहीं करता बल्कि पितृ, मातृ आदि संज्ञावाचक तथा भर्तृ और दातृ आदि असंज्ञावाचक [जो संज्ञावाचक नहीं हैं], सभी ऋकारान्त शब्दों को उदन्तादेश करता है। इस लिए यथादर्शन—प्रयोग के अनुसार नाम-

संज्ञा में भी विकल्प से उकारादेश हो जाता है। जैसे—१—**पितरः**, **पितॄन्**, **पितुः**, **पितुः**=पिउणो। २—**जामातरः**, **जामातॄन्** **जामातुः** **जामातुः**=जामाउणो, ३—**भ्रातरः**, **भ्रातॄन्**, **भ्रातुः** **भ्रातुः**=भाउणो। यहां पर जस्, शस्, ङसि और ङस् इन प्रत्ययों के परे रहने पर ऋकार को उदन्तादेश किया गया है। जहां उदन्तादेश नहीं हुआ, वहां पर **पिअरा** इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं। **टा-प्रत्यय का उदाहरण**—जैसे—**पित्रा**=पिउणा, **भिस् प्रत्यय का उदाहरण**—**पितृभिः**=पिऊहिं। **सुप्प्रत्यय का उदाहरण**—**पितृषु** =पिऊसु। यहां संज्ञावाचक पितृ शब्द के ऋकार को उदन्तादेश हो गया। प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्र में पठित **अस्यमौसु** इस पद द्वारा सि, अम् और औ इन प्रत्ययों के निषेध करने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि यदि यह निषेध न करते तो-**पिता**=पिआ, यहां सिप्रत्यय, **पितरम्**= पिअरं, यहां अम्-प्रत्यय तथा-**पितरौ**=पिअरा, यहां औ प्रत्यय के परे रहने पर भी ऋकार को उदन्तादेश हो जाता जो कि इष्ट नहीं था।

५३४—यदि '**सि**' **आदि** प्रत्यय आगे पड़े हों तो ऋकार को '**आर**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**भर्ता**=भत्तारो (प्रथमा विभक्ति का एक वचन), २—**भर्तारः**=भत्तारा (प्रथमा का बहुवचन), ३—**भर्तारम्**=भत्तारं (द्वितीया का एक वचन), ४—**भर्तॄन्**=भत्तारे (द्वितीया का बहुवचन), ५—**भर्त्रा**=भत्तारेण (तृतीया का एक वचन), ६—**भर्तृभिः**=भत्तारेहिं (तृतीया का बहुवचन), यहां पर ऋकार को 'आर' यह आदेश किया गया है। इसी प्रकार ङसि आदि प्रत्ययों के उदाहरणों की कल्पना भी कर लेनी चाहिए। वृत्तिकार फरमाते हैं कि समास में स्यादि प्रत्ययों का लोप होने पर भी आदि-अपेक्षा से अर्थात् प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्यय-निमित्तक कार्य होता है। इस दृष्टि से ऋकार के स्थान में 'आर' यह आदेश किया जाता है। जैसे—**भर्तृ-विहितम्**—भत्तार-विहिअं (स्वामी का किया हुआ) यहां समास दशा में भी ऋ को '**आर**' यह आदेश किया गया है।

★ अथ स्यादिविधिः [ख] ★

५३५—आ अरा मातुः ।८।३।४६। मातृसम्बन्धिन ऋतः स्यादौ परे आ अरा इत्यादेशौ भवतः। माआ माअरा। माआउ माआओ माअराउ माअराओ। माअं माअरं इत्यादि। बाहुलकाज्जनन्यर्थस्य आ देवतार्थस्य तु अरा इत्यादेशः। माआए कुच्छीए। नमो माअराए। मातुरिद् वा [१. १३५] इतीत्वे माईए इति भवति। ऋतामुद [३, ४४] इत्यादिना उत्त्वे तु-माऊए समन्निअं वन्दे इति। स्यादावित्येव। माइदेवो। माइ-गणो।

५३६—नाम्न्यरः । ८ । ३ । ४७। ऋदन्तस्य नाम्नि-संज्ञायां स्यादौ परे अर इत्यन्तादेशो भवति। पिअरा। पिअरं! पिअरे। पिअरेण। पिअरेहिं। जामायरा। जामायरं। जामायरे। जामायरेण। जामायरेहिं। भायरा। भायरं। भायरे। भायरेण। भायरेहिं।

५३७—आ सौ न वा । ८ । ३ । ४८। ऋदन्तस्य सौ परे अकारो वा भवति। पिआ। जामाया। भाया। कत्ता। पक्षे। पिअरो। जामायरो। भायरो। कत्तारो।

५३८—राज्ञः । ८ । ३ । ४९। राज्ञो नलोपेऽन्त्यस्य आत्वं वा भवति सौ परे। राया। हे राया!। पक्षे। आणादेशे। रायाणो। हे राया!, हे रायं! इति तु शौरसेन्याम्। एवं हे अप्पं!, हे अप्प!

५३९—जस्-शस्-ङसि-ङसां णो । ८ । ३ । ५० । राजन्-शब्दात्परेषामेषां णो इत्यादेशो वा भवति । जस् । रायाणो चिट्ठन्ति । पक्षे । राया । शस् । रायाणो पेच्छ । पक्षे । राया । राए । ङसि । राइणो रण्णो आगओ । पक्षे । रायाओ, रायाउ, रायाहि, रायाहिन्तो, राया । ङस् । राइणो रण्णो धणं । पक्षे । रायस्स ।

५४०—टो णा । ८ । ३ । ५१ । राजन्-शब्दात्परस्य टा इत्यस्य णा इत्यादेशो वा भवति । राइणा । रण्णा । पक्षे । राएण कयं ।

५४१—इर्जस्य णो-णा-ङौ । ८ । ३ । ५२ । राजन्-शब्दसम्बन्धिनो जकारस्य स्थाने णो-णा-ङिषु परेषु इकारो वा भवति । राइणो चिट्ठन्ति पेच्छ, आगओ धणं वा । राइणा कयं । राइम्मि । पक्षे । रायाणो । रण्णो । रायणा । राएण । रायम्मि ।

५४२—इणममामा । ८ । ३ । ५३ । राजन्-शब्दसम्बन्धिनो जकारस्य अमाम्भ्यां सहितस्य स्थाने इणम् इत्यादेशो वा भवति । राइणं पेच्छ । राइणं धणं । पक्षे । रायं । राईणं ।

५४३—ईद्भिस्भ्यसाम्सुपि । ८ । ३ । ५४ । राजन्-शब्दसम्बन्धिनो जकारस्य भिसादिषु परतो वा ईकारो भवति । भिस् । राईहि । भ्यस् । राईहिन्तो राईसुन्तो । आम् । राईणं । सुप् राईसु । पक्षे । रायाणेहि । इत्यादि ।

५४४—आजस्य टा-ङसि-ङस्सु सणाणोष्वण् । ८ । ३ । ५५ । राजन्-शब्दसम्बन्धिन आज इत्यवयवस्य टा-ङसि-ङस्सु, णा णो इत्यादेशापन्नेषु परेषु अण् वा भवति । रण्णा राइणा कयं । रण्णो राइणो आगओ धणं वा । टा-ङसि-ङस्स्विति किम् ? रायाणो चिट्ठन्ति पेच्छ वा । सणाणोष्विति किम् ? राएण । रायाओ । रायस्स ।

५४५—पुंस्यन आणो राजवच्च । ८ । ३ । ५६ । पुल्लिङ्गे वर्तमानस्यान्नन्तस्य स्थाने आण इत्यादेशो वा भवति । पक्षे यथादर्शनं राजवत्कार्यं भवति । आणादेशे च अतः सेर्डोः [३, २] इत्यादयः प्रवर्तन्ते । पक्षे तु राज्ञः [३. ४९], जस्-शस्-ङसि-ङसां णो [३. ५०], टो णा [३. २४], इणममामा [३. ५३] इति प्रवर्तन्ते । अप्पाणो । अप्पाणा । अप्पाणं । अप्पाणे । अप्पाणेण । अप्पाणेहि । अप्पाणाओ । अप्पाणासुन्तो । अप्पाणस्स । अप्पाणाण । अप्पाणम्मि । अप्पाणेसु । अप्पाण-कयं । पक्षे । राजवत् । अप्पा । अप्पो । हे अप्पा ! । हे अप्प ! । अप्पाणो चिट्ठन्ति । अप्पाणो पेच्छ । अप्पणा । अप्पेहिं । अप्पाणो । अप्पाओ । अप्पाउ । अप्पाहि । अप्पाहिन्तो । अप्पा । अप्पासुन्तो । अप्पणो धणं । अप्पाणं । अप्पे । अप्पेसु । रायाणो । रायाणा । रायाणं । रायाणे । रायाणेण । रायाणेहिं । रायाणाहिन्तो । रायाणस्स । रायाणाणं । रायाणम्मि । रायाणेसु । पक्षे । राया इत्यादि । एवं जुवाणो । जुवाण-जणो । जुआ । बम्हाणो बम्हा । अद्धाणो अद्धा । उक्षन् । उच्छाणो उच्छा ।

गावाणो गावा। पूसाणो पूसा। तक्खाणो तक्खा। मुद्धाणो मुद्धा। श्वन्। साणो। सा। सुकर्मणः पश्य। सुकम्माणे पेच्छ। निएइ कह सो सुकम्माणे ? पश्यति कथं स सुकर्मणः ? इत्यर्थः। पुंसीति किम् ? शर्म सम्मं।

५४६—आत्मनष्टो णिआ णइआ। ८। ३। ५७। आत्मनः परस्याष्टायाः स्थाने णिआ णइआ इत्यादेशौ वा भवतः। अप्पणिआ पाउसे उवगयम्मि। अप्पणिआ य विअड्ढि खाणिआ। अप्पणइआ। पक्षे। अप्पाणेण।

५४७—अतः सर्वादेर्डेर्जसः। ८। ३। ५८। सर्वादेरदन्तात्परस्य जसः डित् ए इत्यादेशो भवति। सव्वे। अन्ने। जे। ते। के। एक्के। कयरे। इयरे। एए। अत इति किम् ? सव्वाओ रिद्धीओ। जसः इति किम् ? सव्वस्स।

५४८—ङेः स्सिं-म्मि-त्थाः। ८। ३। ५९। सर्वादेरकारात्परस्य ङेः स्थाने स्सिं म्मि त्थ एते आदेशा भवन्ति। सव्वस्सिं, सव्वम्मि, सव्वत्थ। अन्नस्सिं, अन्नम्मि, अन्नत्थ। एवं सर्वत्र। अत इत्येव। अमुम्मि।

५४९—न वानिदमेतदो हिं। ८। ३। ६०। इदम्-एतद्-वर्जितात्सर्वादेरदन्तात्परस्य ङेर्हिमादेशो वा भवति। सव्वहिं। अन्नहिं। कहिं। जहिं। तहिं। बहुलाधिकारात् किंयत्तद्भ्यः स्त्रियामपि। काहिं। जाहिं। ताहिं। बाहुलकादेव किंयत्तदोऽस्यमामि [३. ३३] इति ङीर्नास्ति। पक्षे। सव्वस्सि सव्वम्मि सव्वत्थ इत्यादि। स्त्रियान्तु पक्षे। काए। कीए। जाए। जीए। ताए। तीए। इदमेतद्वर्जनं किम् ? इमस्सिं। एअस्सिं।

५५०—आमो डेसिं। ८। ३। ६१। सर्वादेरकारान्तात्परस्यामो डेसिमित्यादेशो वा भवति। सव्वेसिं। अन्नेसिं। अवरेसिं। इमेसिं। एएसिं। जेसिं। तेसिं। केसिं। पक्षे। सव्वाण। अन्नाण। अवराण। इमाण। एआण। जाण। ताण। काण। बाहुलकात् स्त्रियामपि। सर्वासाम्। सव्वेसिं। एवम् अन्नेसिं। तेसिं।

५५१—किंतद्भ्यां डासः। ८। ३। ६२। किंतद्भ्यां परस्यामः स्थाने डास इत्यादेशो वा भवति। कास। तास। पक्षे। केसिं। तेसिं।

५५२—किंयत्तद्भ्यो ङसः। ८। ३। ६३। एभ्यः परस्य ङसः स्थाने डास इत्यादेशो वा भवति। ङसः स्सः [३. १०] इत्यस्यापवादः। पक्षे सोऽपि भवति। कास कस्स। जास जस्स। तास तस्स। बहुलाधिकारात् किंतद्भ्यामाकारान्ताभ्यामपि डासादेशो वा। कस्या धनम्। कास धणं। तस्या धनम्। तास धणं। पक्षे। काए। ताए।

५५३—ईद्भ्यः स्सा से। ८। ३। ६४। किमादिभ्यः ईदन्तेभ्यः परस्य ङसः स्थाने स्सा से इत्यादेशौ वा भवतः। टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः [३. २९] इत्यस्यापवादः।

पक्षे अदादयोऽपि। किस्सा कीसे कीअ कीआ कीइ कीए। जिस्सा जीसे जीअ जीआ जीइ जीए। तिस्सा तीसे तीअ तीआ तीइ तीए।

५५४—ङेर्डाहे डाला इआ काले। ८। ३। ६५। कियत्तद्भ्यः कालेऽभिधेये ङेः स्थाने आहे आला इति डितौ इआ इति च आदेशा वा भवन्ति। हिं-स्सिं-म्मि-त्थानामपवादः। पक्षे तेऽपि भवन्ति। काहे काला कइआ। जाहे जाला जइआ। ताहे ताला तइआ। ताला जाअन्ति गुणा, जाला ते सहिअएहिँ घेप्पन्ति। पक्षे। कहिं कस्सिं कम्मि कत्थ।

५५५—ङसेर्म्हा। ८। ३। ६६। कियत्तद्भ्यः परस्य ङसेः स्थाने म्हा इत्यादेशो वा भवति। कम्हा। जम्हा। तम्हा। पक्षे। काओ। जाओ। ताओ।

५५६—तदो डोः। ८। ३। ६७। तदः परस्य ङसेर्डो इत्यादेशो वा भवति। तो तम्हा।

५५७—किमो डिणो-डीसौ। ८। ३। ६८। किमः परस्य ङसेर्डिणो डीस इत्यादेशौ वा भवतः। किणो कीस कम्हा।

५५८—इदमेतत्किं-यत्तद्भ्यष्टो डिणा। ८। ३। ६९। एभ्यः सर्वादिभ्योऽकारान्तेभ्यः परस्याष्टायाः स्थाने डित् इणा इत्यादेशो वा भवति। इमिणा इमेण। एदिणा एदेण। किणा केण। जिणा जेण। तिणा तेण।

५५९—तदो णः स्यादौ क्वचित्। ८। ३। ७०। तदः स्थाने स्यादौ परे ण आदेशो भवति क्वचित् लक्ष्यानुसारेण। णं पेच्छ। तं पश्येत्यर्थः। सोअइ अ णं रहुवई। तमित्यर्थः। स्त्रियामपि-हत्थुन्नामिअ-मुही णं तिअडा। तां त्रिजटेत्यर्थः। णेण भणिअं। तेन भणितमित्यर्थः। तो णेण कर-यल-ट्ठिआ। तेनेत्यर्थः। भणिअं च णाए। तयेत्यर्थः। णेहिं कयं। तैः कृतमित्यर्थः। णाहिं कयं। ताभिः कृतमित्यर्थः।

५६०—किमः कस्त्र-तसोश्च। ८। ३। ७१। किमः को भवति स्यादौ त्रतसोश्च परयोः। को। के। कं। के। केण। त्र। कत्थ। तस्। कओ कत्तो कदो।

५६१—इदम इमः। ८। ३। ७२। इदमः स्यादौ परे इम आदेशो भवति। इमो। इमे। इमं। इमे। इमेण। स्त्रियामपि। इमा।

५६२—पुं-स्त्रियोर्न वायमिमिआ सौ। ८। ३। ७३। इदमशब्दस्य सौ परे अयमिति पुल्लिङ्गे, इमिआ इति स्त्रीलिङ्गे आदेशौ वा भवतः। अहवायं कय-कज्जो। इमिआ वाणिअ-धूआ। पक्षे। इमो। इमा।

५६३—स्सिं-स्सयोरत्। ८। ३। ७४। इदमः स्सिं स्स इत्येतयोः परयोरद् वा भवति। अस्सिं अस्स। पक्षे इमादेशोऽपि। इमस्सिं इमस्स। बहुलाधिकारादन्यत्रापि भवति। एहि। एसु। आहि। एभिः, एषु, आभिरित्यर्थः।

५६४—**ङेर्मेन हः** । ८ । ३ । ७५ । इदमः कृतेमादेशात् परस्य ङेः स्थाने मेन सह ह आदेशो वा भवति । इह । पक्षे । इमस्सि इमम्मि ।

५६५—**न त्थः** । ८ । ३ । ७६ । इदमः परस्य ङेः स्सिं-म्मि-त्थाः [३. ५९] इति प्राप्तः त्थो न भवति । इह, इमस्सिं, इमम्मि ।

५६६—**णोऽम्-शस्टा-भिसि** । ८ । ३ । ७७ । इदमः स्थाने अम्शस्टाभिस्सु परेषु ण आदेशो वा भवति । णं पेच्छ । णे पेच्छ । णेण णेहि कयं । पक्षे । इमं । इमे । इमेण । इमेहि ।

५६७—**अमेणम्** । ८ । ३ । ७८ । इदमोऽमा सहितस्य स्थाने इणम् इत्यादेशो वा भवति । इणं पेच्छ । पक्षे । इमं ।

५६८—**क्लीबे स्यमेदमिणमो च** । ८ । ३ । ७९ । नपुंसकलिङ्गे वर्तमानस्येदमः स्यम्भ्यां सहितस्य इदम्, इणमो, इणम् च नित्यमादेशा भवन्ति । इदं इणमो इणं धणं चिट्ठइ पेच्छ वा ।

५६९—**किमः किं** । ८ । ३ । ८० । किमः क्लीबे वर्तमानस्य स्यम्भ्यां सह किं भवति । किं कुलं तुह ? किं किं ते पडिहाइ ?

५७०—**वेदं-तदेतदो ङसाम्भ्यां से-सिमौ** । ८ । ३ । ८१ । इदम् तद् एतद् इत्येतेषां स्थाने ङस् आम् इत्येताभ्यां सह यथासंख्यं से सिम् इत्यादेशौ वा भवतः । इदम् । से सीलं । से गुणा । अस्य शीलं गुणा वेत्यर्थः । सिं उच्छाहो । एषाम् उत्साह इत्यर्थः । तद् । से सीलं । तस्य तस्या वेत्यर्थः । सिं गुणा । तेषां तासां वेत्यर्थः । एतद् । से अहिअं । एतस्याहितमित्यर्थः । सिं गुणा । सिं सीलं । एतेषां गुणाः, शीलं वेत्यर्थः । पक्षे । इमस्स । इमेसिं । इमाण । तस्स । तेसिं । ताण । एअस्स । एएसिं । एआण । इदंतदोरमपि सेआदेशं कश्चिदिच्छति ।

५७१—**वैतदो ङसेस्तो त्ताहे** । ८ । ३ । ८२ । एतदः परस्य ङसेः स्थाने त्तो त्ताहे इत्येतावादेशौ वा भवतः । एत्तो, एत्ताहे । पक्षे एआओ एआउ एआहि एआहिन्तो एआ ।

५७२—**त्थे च तस्य लुक्** । ८ । ३ । ८३ । एतदस्त्थे परे चकारात् त्ताहे त्तो इत्येतयोश्च परयोस्तस्य लुग् भवति । एत्थ एत्तो एत्ताहे ।

५७३—**एरदीतौ म्मौ वा** । ८ । ३ । ८४ । एतद एकारस्य ङ्यादेशे म्मौ परे अदीतौ वा भवतः । अयम्मि ईयम्मि । पक्षे । एअम्मि ।

५७४—**वैसेणमिणमो सिना** । ८ । ३ । ८५ । एतदः सिना सह एस इणम् इणमो इत्यादेशा वा भवन्ति । सव्वस्स वि एस गई । सव्वाण वि पत्थिवाण एस मही । एस सहाओ च्चिअ ससहरस्स । एस सिरं । इणं । इणमो । पक्षे । एअं । एसा । एसो ।

५७५—**तदश्च तः सोऽक्लीबे** । ८ । ३ । ८६ । तद एतदश्च तकारस्य सौ परे **अक्लीबे** सो भवति । सो पुरिसो । सा महिला । एसो पिओ । एसा मुद्धा । सावित्येव । ते एए धन्ना । ताओ एआओ महिलाओ । अक्लीब इति किम् ? तं एअं वणं ।

५७६—**वादसो दस्य होनोदाम्** । ८ । ३ । ८७ । अदसो दकारस्य सौ परे ह आदेशो वा भवति तस्मिंश्च कृते अतः सेर्डोः [३. २] इत्योत्वं, शेषं संस्कृतवत् [४. ४४८] इत्यतिदेशात्, आत् [हे० २-४-१८] इत्याप्, क्लीबे स्वरान्म् सेः [३—२५] इति मश्च न भवति । अह पुरिसो । अह महिला । अह वणं । अह मोहो पर-गुण-लहुअयाइ । अह णे हिअएण हसइ मारुय-तणओ । असावस्मान् हसतीत्यर्थः । अह कमल-मुही । पक्षे । उत्तरेण मुरादेशः । अमू पुरिसो । अमू महिला । अमुं वणं ।

५७७—**मुः स्यादौ** । ८ । ३ । ८८ । अदसो दस्य स्यादौ परे मुरादेशो भवति । अमू पुरिसो । अमुणो पुरिसा । अमुं वणं । अमूइं वणाइं । अमूणि वणाणि । अमू माला । अमूउ अमूओ मालाओ । अमुणा । अमूहिं । ङसि-अमूओ अमूउ अमूहिन्तो । भ्यस् । अमूहिन्तो, अमूसुन्तो । ङस् । अमुणो । अमुस्स । आम् । अमूण । ङि । अमुम्मि । सुप् । अमूसु ।

५७८—**म्मावयेऔ वा** । ८ । ३ । ८९ । अदसोऽन्त्यव्यञ्जनलुकि दकारान्तस्य स्थाने ङ्यादेशे म्मौ परतः अय, इअ इत्यादेशौ वा भवतः । अयम्मि । इअम्मि । पक्षे । अमुम्मि ।

★ अथ स्यादिविधिः [ख] ★

स्यादिविधेः क-विभागः पूर्वं निरूपितः, साम्प्रतं ख-विभागो निरूप्यते :—

५३५—माता । मातृ+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५३५ सू० ऋकारस्य आ, अरा इत्यादेशौ, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **माआ माअरा** इति भवति । **मातरः** । मातृ+जस्=माआ+जस्, माअरा+जस् । ५१६ सू० जसः उकारे ओकारे च **माआउ माआओ माअराउ माअराओ** इति भवति । **मातरम्** । मातृ+अम् । पूर्ववदेव माआ+अम्, माअरा+अम् । ५२५ सू० अमि परे ह्रस्वे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **माअं माअरं** इति भवति । **बाहुलकाज्जनन्यर्थस्य** । बहुलाधिकाराद् यत्र मातृ-शब्दः जनन्यर्थको भवति तत्र तु आ इत्यादेशो भवति, यत्रायं शब्दः देवतार्थकस्तत्र ऋकारस्य अरा इत्यादेशो भवति । जनन्यर्थकस्य मातृशब्दस्योदाहरणं प्रदीयते यथा—**मातुः** । मातृ+ङस् । तकारस्य लोपे, ५३५ सू० ऋकारस्य स्थाने आ इत्यादेशे, ५१८ सू० ङसः एकारे **माआए** इति भवति । **कुक्षौ** । कुक्षि+ङि । २८८ सू० क्षस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ५१८ सू० ङेः एकारे पूर्वदीर्घे च **कुच्छीए** इति भवति । **देवतार्थकस्य मातृशब्दस्योदाहरणं** यथा-**नमः** । अव्ययपदमिदम् । ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **नमो** इति भवति । **मातृभ्यः** । मातृ+भ्यस् । तकारलोपे, ६२० सू० चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी-विभक्तौ, ऋकारस्य अरा इत्यादेशे, ४९५ सू० आमः ण इत्यादेशे **माअराण** १३५ सू० ऋकारस्य इकारे, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **माईण** इति भवति । ५३३ सू० यत्र ऋकारस्य उकारस्तत्र तु **मात्रा** । मातृ+टा । तकारलोपे, ऋकारस्य उकारे, ५१८ सू० टा-प्रत्ययस्य एकारे पूर्वदीर्घे च **माऊए**

इति भवति। **समन्विताम्**। समन्विता+अम्। ३५० सू० वकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **समन्निअं** इति भवति। **वन्दे**। क्रियापदमिदं संस्कृतसममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **स्यादावित्येव**। स्यादौ प्रत्यये परे सत्येव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते, नान्यथा। यथा—**मातृदेवः, मातृगणः**। अत्र *सिद्धावस्थायां स्यादि-प्रत्ययस्य अभावात् प्रस्तुतस्य ५३५ सूत्रस्य अप्रवृत्तिर्जाता ततः १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **माईदेवो, माईगणो** इति भवति।

५३६—पितरः। पितृ+जस्। १७७ सू० तकारलोपे, ५३६ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **पिअरा** इति भवति। **पितरम्**। पितृ+अम्=पिअर+अम्। ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पिअरं** इति भवति। **पितृन्**। पितृ+शस्=पिअर+शस्। ४९३ सू० शसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **पिअरा** इति भवति। **पित्रा**। पितृ+टा=पिअर+टा। ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य स्थाने ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **पिअरेण** इति भवति। **पितृभिः**। पितृ+भिस्=पिअर+भिस्। ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **पिअरेहिं** इति भवति। **जामातरः**। जामातृ+जस्=**जामायरा**। **जामातरम्**। जामातृ+अम्=**जामायरं**। **जामातृन्**। जामातृ+शस्=**जामायरे**। **जामात्रा**। जामातृ+टा=**जामायरेण**। **जामातृभिः**। जामातृ+भिस्=**जामायरेहिं**। एषु प्रयोगेषु १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकार-श्रुतिः, अन्या प्रक्रिया पितृ-शब्दतुल्या ज्ञेया। **भ्रातरः**। भ्रातृ+जस्=**भायरा**। **भ्रातरम्**। भ्रातृ+अम्=**भायरं**। **भ्रातृन्**। भ्रातृ+शस्=**भायरे**। **भ्रात्रा**। भ्रातृ+टा=**भायरेण**। **भ्रातृभिः**। भ्रातृ+भिस्=**भायरेहिं**। अत्र ३५० सू० रेफस्य लोपः, १७७ सू० तकारस्य लोपो जातः, शेषा प्रक्रिया पितृ-शब्दतुल्या बोध्या।

५३७—पिता। पितृ+सि। १७७ सूत्रेण तकारस्य लोपः, ५३७ सू० ऋकारस्य वैकल्पिके आकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **पिआ** इति भवति। **जामाता**। जामातृ+सि। तकारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, सेर्लोपे **जामाया** इति भवति। **भ्राता**। भ्रातृ+सि=**भाया, जमाया**-वद् बोध्यम्। **कर्ता**। कर्तृ+सि। ३५० सूत्रेण रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ५३७ सू० ऋकारस्य वैकल्पिके आकारे, सेर्लोपे **कत्ता** इति भवति। **पक्षे**। यत्र आकारादेशो न जातस्तत्र ५३६ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशो भवति। यथा—**पिता**। पितृ+सि। १७७ सू० तकार-लोपे, ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्यस्वरादेर्लोपे **पिअरो** इति भवति। एवमेव **जामाता**। जामातृ+सि। तकार-लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, पूर्ववदेव **जामायरो** इति भवति। **भ्राता**। भ्रातृ+सि=**भायरो** इति जामायरो-वत् साध्यम्। **कर्ता**। कर्तृ+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सूत्रेण तकारस्य द्वित्वे, ५३४ सूत्रेण ऋकारस्य आरादेशे, पूर्ववदेव **कत्तारो** इति भवति।

५३८—राजा। राजन्+सि। १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ११ सू० नकारलोपे, ५३८ सू० अन्त्याकारस्य वैकल्पिके आकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **राया** इति भवति। **हे राजन्!**। पूर्ववदेव रायावत् **हे राया!** इति भवति। **पक्षे**। यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता तत्र ५४५ सू० अन् इत्यस्य आण इत्यादेशे रायाण+सि, इति पूर्ववदेव

*प्रकृति-प्रत्यय-विभाग-निर्देश-पूर्विका दशा साध्यमानावस्था भवति, तथा प्रकृति-प्रत्यय-विभागरहिता या प्रक्रिया सा सिद्धावस्था भण्यते। प्रस्तुत-प्रयोगे सिद्धावस्थाया एव ग्रहणमिष्टं नतु साध्यमानावस्थायाः।

जाते, ४९१ सू० सेर्डो:, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **रायाणो** इति भवति। **हे राजन्** !। पूर्ववदेव **हे राया**! इति भवति। अत्र आणादेशो नेष्टः। **हे रायं** ! इति तु शौरसेनीभाषायां निष्पद्यते। यथा—**हे राजन्** !। पूर्ववदेव हे रायन्+सि इति जाते, ९३५ सू० नकारस्य वैकल्पिके मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, सेर्लोपे **हे रायं** ! इति सिद्धम्। **हे आत्मन्** !। आत्मन्+सि। ३२२ सू० त्मस्य पकारे, ३६० सू० पकारद्वित्त्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, नकारस्य वैकल्पिके मकारे, पूर्ववदेव **हे अप्पं** ! इति भवति, नकारस्य मकाराभावे, ११ सू० नकारलोपे **हेअप्प** ! इति जायते।

५३६—राजानः। राजन्+जस्। १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ११ सू० नकारलोपे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे, ५३९ सू० जसः वैकल्पिके णो इत्यादेशे **रायाणो** आदेशाभावे ४९३ सू० जसो लुकि **राया** इति भवति। **तिष्ठन्ति**=चिट्ठन्ति,प्रक्रिया ५०९ सूत्रे ज्ञेया। **राज्ञः**। राजन्+शस्। पूर्ववदेव **रायाणो** यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता तत्र पूर्ववदेव रायन्+शस् इति जाते, ११ सू० नलोपे, पूर्वाकारदीर्घे **राया**+शस् इत्यत्र ५०३ सू० पूर्वाकारस्य बाहुल्येन एकारे **राये**+शस् इत्यत्र १७७ सू० यकारलोपे, ४९३ सू० शसो लोपे **राए** इति भवति। **पश्य** = पेच्छ इत्यस्य प्रक्रिया ४९४ सूत्रेऽवलोकनीया। **राज्ञः**। राजन्+ङसि। प्रस्तुतसूत्रेण ङसेः वैकल्पिके णो इत्यादेशे ५४१ सू० जकारस्य वैकल्पिके इकारे, ११ सू० नकारलोपे, **राइणो** ५४४ सू० आज इत्यस्य अण् इत्यादेशे र्+अण्+न्+णो इति जाते,**अज्झीने** परेण संयोज्ये, ११ सू० नकारलोपे **रण्णो** णो इत्यादेशाभावे रायन्+ङसि इति स्थिते, नकारस्य लोपे, ४९७ सू० ङसेः दो, दु, हि, हिन्तो, लुक इत्यादेशाः, स्थानिवत्त्वात् ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे, १७७ सू० दकारलोपे **रायाओ रायाउ रायाहि रायाहिन्तो राया** इति भवति। **आगतः**=आगओ, प्रक्रिया २०९ सूत्र ज्ञेया। **राज्ञः**। राजन्+ङस्। जकारस्य वैकल्पिके इकारे, नकारलोपे, ङसः वैकल्पिके णो इत्यादेशे **राइणो**, इकारादेशाभावे आज इत्यवयवस्य अण् इत्यादेशे, पूर्ववदेव **रण्णो** णो इत्यादेशाभावे रायन्+ङस् इति स्थिते, नकारलोपे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **रायस्स** इति भवति। **धनम्**। धन+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **धणं** इति भवति।

५४०—राज्ञा। राजन्+टा। ५४० सू० टाप्रत्ययस्य वैकल्पिके णा इत्यादेशे ५४१ सू० जकारस्य वैकल्पिके इकारे, ११ सू० नकारलोपे, **राइणा,** इकारादेशाभावे ५४४ सू० आज इत्यस्य अण इत्यादेशे, ५३९ सूत्रोक्त-रण्णो-वद् **रण्णा,** णा इत्यादेशाभावे, १७७ सू० जकारलोपे, नकारलोपे, ४९५ सू० टाप्रत्ययस्य ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **राएण** इति भवति। **कृतम्**=कयं, इत्यस्य ५१३ सूत्रेऽवलोकनीया प्रक्रिया।

५४१—**राजानः, राज्ञः, राज्ञः, राज्ञः**। राजन्+जस्, राजन्+शस्, राजन्+ङसि, राजन्+ङस्। ५३९ सू० जस्-शस्-ङसि-ङसां वैकल्पिके णो इत्यादेशे, ५४१ सू० जकारस्य वैकल्पिके इकारे, ११ सू० नकारलोपे, ५०१ सू० इकारदीर्घप्राप्तिः, ६१४ सू० तन्निषेधे **राइणो** इति भवति। **चिट्ठन्ति** इति क्रियापदं प्रथमाविभक्तिसूचकम्, **पेच्छ** इति द्वितीयाविभक्तिसूचकम्, **आगओ** इति पञ्चमीविभक्तिसूचकं, **धणं** इति षष्ठीविभक्तिसूचकं बोध्यम्। प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **राज्ञा**। राजन्+टा=**राइणा**। **कृतम्**= कयं, प्रक्रिया ५४० सूत्रे ज्ञेया। **राज्ञि**। राजन्+ङि। जकारस्य वैकल्पिके इकारे, नकारस्य लोपे, ५०० सू० ङेः म्मि इत्यादेशे **राइम्मि** इति भवति। **पक्षे**। यत्र इकारादेशो न जातस्तत्र-**राजानः**। राजन्+जस्=**रायाणो**। प्रक्रिया ५३९ सूत्रे द्रष्टव्या। **राज्ञः**। राजन्+शस्। ५३९ सू० शसः णो इत्यादेशे, ११ सू नकारस्य लोपे, ५४४ सू० आज इत्यस्य अण् इत्यादेशे **रण्णो** इति भवति। **राज्ञा**।

राजन्+टा। जकारलोपे, यकारश्रुतौ, नकारलोपे, ५४० सू० टास्थाने वैकल्पिके 'णा' इत्यादेशे **रायणा** णादेशाभावे **राएण** इति भवति। प्रक्रिया ५४० सूत्रेऽवलोकनीया। **राज्ञि**। राजन्+ङि। जकारलोपे, यकारश्रुतौ, न-लोपे, ङि-प्रत्ययस्य म्मि इत्यादेशे **रायम्मि** इति भवति।

५४२—राजानम्। राजन्+अम्। ५४२ सू० अम्-सहितस्य सस्वर-जकारस्य विकल्पेन 'इणं' इत्यादेशे, ११ सू० नकारलोपे **राइणं** इति भवति। **पेच्छ धणं** अनयोः प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **राज्ञाम्**। राजन्+आम्। प्रस्तुतसूत्रेण आम्-सहित-सस्वर-जकारस्य वैकल्पिके 'इणं' इत्यादेशे, नलोपे **राइणं** इति भवति। **पक्षे**। यत्र इणमादेशो न जातस्तत्र राजन्+अम्। इत्यत्र जकारलोपे, यकारश्रुतौ, नलोपे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **रायं** इति भवति। राजन्+आम् इत्यत्र ५४३ सू० जकारस्य ईकारे, ११ सू० नकारलोपे, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९५ सू० आमः णादेशे, २७ सू० णकारस्यान्तेऽनुस्वारागमे **राईणं** इति भवति।

५४३—राजभिः। राजन्+भिस्। ५४३ सू० सस्वर-जकारस्य वैकल्पिके ईकारे, ११ सू० नकारलोपे, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९६ सू० भिसः हि इत्यादेशे **राईहि** इति भवति। **राजभ्यः**। राजन्+भ्यस्=राई+भ्यस्। अदन्तवत्वात् ४९८ सू० भ्यसः स्थाने हि, हिन्तो, सुन्तो इत्यादेशाः, ततः **राईहि राईहिन्तो राईसुन्तो** इति भवति। **राज्ञाम्**। राजन्+आम्=**राईणं**। अस्य प्रक्रिया ५४२ सूत्रे द्रष्टव्या। **राजसु**। राजन्+सुप्=सु। जकारस्य वैकल्पिके ईकारे, नकारलोपे **राईसु** इति सिद्धम्। **पक्षे**। ईकारादेशाभावपक्षे। राजन्+भिस् इत्यत्र १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ५४५ सू० अन् इत्यस्य आणादेशे, ४९६ सू० भिसः 'हि' इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **रायाणेहि** इति भवति।

५४४—राज्ञा। राजन्+टा। ५४० सू० टाप्रत्ययस्य विकल्पेन णा इत्यादेशे, ५४४ सू० आज इत्यस्य वैकल्पिके अणादेशे, ११ सू० नकारलोपे **रण्णा**। यत्र अण् इत्यादेशो न जातस्तत्र **राइणा** इति भवति। **कृतम्**=कयं। प्रक्रिया ५४० सूत्रे ज्ञेया। **राज्ञः**। राजन्+ङसि (ङस्)=पूर्ववदेव **रण्णो**। अणादेशाभावे **राइणो** इति भवति। **आगतः**=आगओ, **धनम्**=धणं प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **टा-ङसि-ङस्स्विति किम्** ? प्रस्तुत-सूत्रस्य टादिप्रत्ययेषु परेष्वेव प्रवृत्तिर्जायते, नान्यथा। यथा—**राजानः**। राजन्+जस्, शस्। टादि-प्रत्ययाभावात् प्रस्तुत-सूत्रस्याप्रवृत्तौ **रायाणो** इति भवति। **तिष्ठन्ति**=चिट्ठन्ति, **प्रेक्ष्य**=पेच्छ। एतेषां पदानां प्रक्रिया ५३९ सूत्रेऽवलोकनीया। **स-णाणोष्विति किम्** ? टा-ङसि-ङस्सु, णा णो इत्यादेशापन्नेषु च परेष्वेव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा। यथा—**राज्ञा**। राजन्+टा=**राएण**। प्रक्रिया ५४० सूत्रे ज्ञेया। **राज्ञः**। राजन्+ङसि=**रायाओ**, इत्यस्य शब्दस्य तथा—**राज्ञः**। राजन्+ङस्=**रायस्स**। अनयोः द्वयोः शब्दयोः प्रक्रिया ५३९ सूत्रेऽवलोकनीया। णाद्यादेशाभावादत्र प्रस्तुतसूत्र-प्रवृत्त्यभावः।

५४५—पक्षे। यत्र प्रस्तुतसूत्रेण आणादेशो न भवति तत्र यथादर्शनं—प्रयोगानुसारं राजशब्द-तुल्यं कार्यं करणीयम्। **आत्मा**। आत्मन्+सि। ३२२ सू० त्मस्य स्थाने पकारे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य वैकल्पिके आण इत्यादेशे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अप्पाणो** इति भवति। **आत्मानः**। आत्मन्+जस्=अप्पाण+जस्। इत्यत्र ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **अप्पाणा** इति सिद्धम्। **आत्मानम्**। आत्मन्+अम्=अप्पाण+अम्। इत्यत्र ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपः, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अप्पाणं** इति सिद्धम्। **आत्मनः**। आत्मन्+शस्=अप्पाण+शस्। ४९३ सू० शसो लुक्, ५०३ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **अप्पाणे** इति सिद्धम्। **आत्मना**। आत्मन्+टा=अप्पाण+टा। ४९५ सू० टा-स्थाने 'ण' इत्यादेशे, अकारस्य एकारे

अप्पाणेण इति सिद्धम् । **आत्मभिः** । आत्मन्+भिस्=अप्पाण+भिस् । ४९६ सू० भिसः 'हिं' इत्यादेशः, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **अप्पाणेहिं** इति सिद्धम् । **आत्मनः** । आत्मन्+ङसि=अप्पाण+ङसि । ४९७ सू० ङसेः स्थाने 'दो' इत्यादेशः, १७७ सू० दकारस्य लोपः, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **अप्पाणाओ** इति सिद्धम् । **आत्मभ्यः** । आत्मन्+भ्यस्=अप्पाण+भ्यस् । ४९८ सू० भ्यसः स्थाने सुन्तो इत्यादेशे, ५०२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **अप्पाणासुन्तो** इति सिद्धम् । **आत्मनः** । आत्मन्+ङस्=अप्पाण+ङस् । ४९९ सू० ङसः 'स्स' इत्यादेशे **अप्पाणस्स** इति सिद्धम् । **आत्मनाम्** । आत्मन्+आम्=अप्पाण+आम् । ४९५ सू० आमः स्थाने 'ण' इत्यादेशः, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **अप्पाणाण** इति सिद्धम् । **आत्मनि** । आत्मन्+ङि=अप्पाण+ङि । ५०० सू० ङेः स्थाने 'म्मि' इत्यादेशे **अप्पाणम्मि** इति सिद्धम् । **आत्मसु** । आत्मन्+सुप्=अप्पाण+सु । ५०४ सू० अकारस्य एकारे **अप्पाणेसु** इति सिद्धम् । **आत्मकृतम्** । आत्मना कृतम् । आत्मकृतम् । आत्मन्-कृत+सि=अप्पाणकृत+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **अप्पाणकयं** इति सिद्धम् । **पक्षे** । यत्र ५४५ सू० 'आण' इत्यादेशो न जातस्तत्र तु राजवत् सर्वे प्रयोगाः साध्याः । यथा—**आत्मा** । आत्मन्+सि । संयुक्तस्य पकारे, पकारस्य द्वित्वे, संयोगे परे ह्रस्वे, नकारस्य लोपे, ५३८ सू० अन्त्याकारस्य स्थाने वैकल्पिके आकारे, सेर्लोपे **अप्पा** आकाराभावे ४९१ सू० सेर्डोः, डितिपरेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अप्पो** इति भवति । **हे आत्मन्** ! । पूर्ववदेव **हे अप्पा** ! । आकारादेशाभावे **हे अप्प** ! इति पूर्ववदेव ज्ञेयम् । **आत्मानः** । आत्मन्+जस्=अप्प+जस् । ५३९ सू० जसः णो इत्यादेशे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **अप्पाणो** इति सिद्धम् । एवमेव **आत्मनः** । आत्मन्+शस्=**अप्पाणो** इति साध्यम् । **तिष्ठन्ति**=चिट्ठन्ति, **प्रेक्ष्य**=पेच्छ । प्रक्रिया ५३९ सूत्रेऽवलोकनीया । **आत्मना** । आत्मन्+टा=अप्प+टा । ५४० सू० टास्थाने णा इत्यादेशे **अप्पणा** इति भवति । **आत्मभिः** । आत्मन्+भिस्=अप्प+भिस् । ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **अप्पेहिं** इति भवति । **आत्मनः** । आत्मन्+ङसि=अप्प+ङसि । ५३९ सू० ङसेः वैकल्पिके णो इत्यादेशे, ५०१ सू० अकारस्य आकारे **अप्पाणो**, णो इत्यादेशाभावे ४९७ सू० ङसेः दो, दु, हि, हिन्तो, लुक् इत्यादेशाः, १७७ सू० दकारलोपे **अप्पाओ, अप्पाउ, अप्पाहि, अप्पाहिन्तो, अप्पा** इति भवति । **आत्मभ्यः** । आत्मन्+भ्यस्=अप्प+भ्यस् । ४९८ सू० भ्यसः सुन्तो इत्यादेशे, ५०२ सू० पूर्वाकारदीर्घे **अप्पासुन्तो** इति भवति । **आत्मनः** । आत्मन्+ङस्=अप्प+ङस् । ५३९ सू० ङसः स्थाने णो इत्यादेशे **अप्पणो** इति भवति । **धनम्**=धणं, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **आत्मनाम्** । आत्मन्+आम्=अप्प+आम् । ४९५ सू० आमः स्थाने ण इत्यादेशे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे, २७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे **अप्पाणं** इति भवति । **आत्मनि** । आत्मन्+ङि=अप्प+ङि । ५००सू० ङेः स्थाने डे [ए] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अप्पे** इति भवति । **आत्मसु** । आत्मन्+सु=अप्प+सु । ५०४ सू० अकारस्य एकारे **अप्पेसु** इति भवति । **राजा** । राजन्+सि । १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, ५४५ सू० अन् इत्यस्य आण इत्यादेशे, ४९१ सूत्रेण सिप्रत्ययस्य डो इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **रायाणो** इति भवति । **राजानः** । राजन्+जस्=रायाण+जस् । ४९३ सू० जसो लुक्, पूर्वाकारस्य दीर्घे **रायाणा** इति भवति । **राजानम्** । राजन्+अम्=रायाण+अम् । ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **रायाणं** इति भवति । **राज्ञः** । राजन्+शस्=रायाण+शस् । शसो लुक्, अकारस्य एकारे **रायाणे** । **राज्ञा** । राजन्+टा=रायाण+टा । टा-प्रत्ययस्य 'ण' इत्यादेशे, अकारस्य एकारे **रायाणेण** । **राजभिः** । राजन् +भिस्=रायाण+भिस् । भिसः 'हिं' इत्यादेशे,

अकारस्य एकारे **रायाणेहिं** । **राजभ्यः** राजन्+भ्यस्=रायाण+भ्यस् । भ्यसः 'हिन्तो' इत्यादेशे, अकारस्य दीर्घे **रायाणाहिन्तो** । **राज्ञः** । राजन्+ङस्=रायाण+ङस् । ङसः 'स्स' इत्यादेशे **रायाणस्स** इति भवति । **राज्ञाम्** । राजन्+आम्=रायाण+आम् । आमः णकारे, पूर्वाकारस्य दीर्घे, अन्तेऽनुस्वारागमे **रायाणाणं** । **राज्ञि** । राजन्+ङि=रायाण+ङि । ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **रायाणम्मि** । **राजसु** । राजन्+सु=रायाण+सु । अकारस्य एकारे **रायाणेसु** इति सिद्धम् । **पक्षे** । यत्र ५४५ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता तत्र राजन्+सि=**राया** इत्यादीनि रूपाणि भवन्ति । प्रक्रिया ५३८ सूत्रेऽवलोकनीया । **युवा** । युवन्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य विकल्पेन आण इत्यादेशे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जुवाणो** इति भवति । **युवजनः** । युवा चासौ जनः । युवजन+सि=जुवाण-जन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जुवाणजणो**, आणादेशाभावे-युवन्+सि । इत्यत्र यकारस्य जकारे, १७७ सू० वकारलोपे, ११ सू० नकारलोपे, ५३८ सू० अकारस्य आकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **जुआ** इति भवति । **ब्रह्मा** । ब्रह्मन्+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३४५ सू० ह्मस्य स्थाने म्ह इत्यादेशे, अन् इत्यस्य वैकल्पिके आणादेशे, पूर्ववदेव **बम्हाणो** आणादेशभावे बम्हन्+सि इति स्थिते, ११ सू० नकारलोपे, ५३८ सू० अकारस्य आकारे, सेर्लोपे **बम्हा** इति भवति । **अध्वा** । अध्वन्+सि । ३५० सू० वकारलोपे, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य वैकल्पिके आणादेशे, पूर्ववदेव **अद्धाणो** आणादेशाभावे—अद्धन्+सि, इत्यत्र ११ सू० नकारलोपे, ५३८ सू० पूर्वाकारदीर्घे **अद्धा** इति भवति । **उक्षा** । उक्षन्+सि । २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, अन् इत्यस्य वैकल्पिके आणादेशे, पूर्ववदेव **उच्छाणो** आणादेशाभावे उच्छन्+सि पूर्ववदेव **उच्छा** इति भवति । **ग्रावा** । ग्रावन्+सि । ३५० सू० रेफलोपे, अन् इत्यस्य विकल्पेन आणादेशे, पूर्ववदेव **गावाणो** आदेशाभावे गावन्+सि=**गावा** इति भवति । **पूषा** । पूषन्+सि । इत्यत्र २६० सू० षकारस्य सकारे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य विकल्पेन आणादेशे, पूर्ववदेव **पूसाणो** आदेशाभावे-पूसन्+सि=**पूसा** इति भवति । **तक्षा** । तक्षन्+सि । २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, विकल्पेन आणादेशे, पूर्ववदेव **तक्खाणो** आदेशाभावे-तक्खन्+सि=**तक्खा** इति भवति । **मूर्धा** । मूर्धन्+सि । ३५० सू० रेफलोपे, धकार-द्वित्वे, पूर्वधकारस्य दकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५४५ सू० विकल्पेन आणादेशे, पूर्ववदेव **मुद्धाणो** आदेशाभावे मुद्धन्+सि=**मुद्धा** इति भवति । **श्वा** । श्वन्+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० वकारलोपे, अन् इत्यस्य वैकल्पिके आणादेश, पूर्ववदेव **साणो** आदेशाभावे सन्+सि=**सा** इति भवति । **सुकर्मणः** । सुकर्मन्+शस् । रेफलोपे, ३६० सू० मकार-द्वित्वे, ५४५ सू० विकल्पेन आणादेशे, ४९३ सू० शसो लुकि, ५०३ सू० पूर्वाकारस्य एकारे **सुकम्माणे** इति भवति । **पश्य**=पेच्छ । प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **पश्यति** । दृश् दर्शने । दृश्+तिव् । ८५२ सू० दृशः स्थाने निअ इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **निएइ** इति भवति । **कथम्**=कह, इत्यस्य प्रक्रिया २९ सूत्रे ज्ञेया । **सः**=सो, इत्यस्य प्रक्रिया ९७ सूत्रे ज्ञेया । **सुकर्माणः** । सुकर्मन्+शस्=**सुकम्माणे** पदमिदम् उपरि साधितमेव । **पुंसीति किम्** । प्रस्तुतसूत्रेण पुल्लिङ्गे वर्तमानस्यैव अन्नन्तस्य आणादेशो भवति, नान्यत्र । यथा—**शर्म** । शर्मन्+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकार-द्वित्वे, क्लीबत्वादत्र आणादेशाभावे, ११ सू० नकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सम्मं** इति भवति ।

५४६—आत्मना। आत्मन्+टा। ३२२ सू० त्मस्य स्थाने पकारे, ३६० सू० पकार-द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५४६ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन णिआ, णइआ इत्यादेशौ, ततः—**अप्पणिआ, अप्पणइआ** इति भवति। **प्रावृषि**। प्रावृष्+ङि। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, १३१ सू० ऋकारस्य उकारे, १७७ सू० वकारलोपे, १९ सू० षकारस्य सकारे, ५०० सू० ङेः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पाउसे** इति भवति। **उपगतायाम्**। उपगता+ङि। २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **उवगयम्मि** इति भवति। **आत्मना**। आत्मन्+टा। पूर्ववदेव **अप्पणिआ** 'णइआ' इत्यादेशे **अप्पणइआ** इति भवति। **च**। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० चकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ **य** इति भवति। **वितर्दिः**। वितर्दि+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपे, ३०७ सू० र्दस्य डकारे, ३६० सू० डकारस्य द्वित्वे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **विअड्डी** इति भवति। **खानिता**। खानिता+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, तकारलोपे, सेर्लोपे **खाणिआ** इति भवति। **पक्षे**। आदेशाभावपक्ष इत्यर्थः। **आत्मना**। आत्मन्+टा=अप्पन्+टा=**अप्पाणेण**। प्रक्रिया ५४५ सूत्रेऽवलोकनीया।

५४७—सर्वे। सर्व+जस्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, ५४७ सू० जसः डित् एकारे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सव्वे** इति भवति। **अन्ये**। अन्यत्+जस्। ३४९ सू० यकारलोपे, नकारद्वित्वे, ११ सू० तकार-लोपे, पूर्ववदेव **अन्ने** इति भवति। **ये**। यद्+जस्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, पूर्ववदेव **जे** इति भवति। **ते**। तद्+जस्। ११ सू० दकारलोपे, पूर्ववदेव **ते** इति भवति। **के**। किम्+जस्। ५६० सू० किमः कः इत्यादेशे, पूर्ववदेव **के** इति भवति। **एके**। एक+जस्। ३७० सू० ककारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **एक्के** इति भवति। **कतरे**। कतर+जस्। १७७ सू० तकार-लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, पूर्ववदेव **कयरे** इति भवति। **इतरे**। इतर+जस्। १७७ सू० तकारलोपे, यकारश्रुतौ, पूर्ववदेव **इयरे** इति भवति। **एते**। एतद्+जस्। तकारलोपे, पूर्ववदेव **एते** इति भवति। **अत इति किम् ?** प्रस्तुतसूत्रेण अकारात्परस्यैव जसः स्थाने आदेशो भवति, नान्यथा। यथा—**सर्वाः**। सर्वा+जस्। रेफलोपे, वकार-द्वित्वे आकारान्तत्वात् प्रस्तुत-सूत्रस्य अप्रवृत्तौ ५१६ सू० जसः ओत् (ओ) इत्यादेशे **सव्वाओ** इति भवति। **ऋद्धि**-शब्दः इकारान्तोऽतोऽत्रापि प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। यथा—**ऋद्धयः**। ऋद्धि+जस्। १४० सू० ऋकारस्य स्थाने रि इत्यादेशे, जसः ओत् (ओ) इत्यादेशे, पूर्वदीर्घे च—**रिद्धीओ** इति भवति। **जस इति किम्** ? प्रस्तुतसूत्रेण जस्-प्रत्ययस्यैवादेशो विधीयते, नान्यत्र। यथा—**सर्वस्य**। सर्व+ङस्। रेफलोपे, वकारद्वित्वे, जस्-प्रत्ययस्याभावात् प्रस्तुत-सूत्रस्याप्रवृत्तौ ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **सव्वस्स** इति भवति।

५४८—सर्वस्मिन्। सर्व+ङि=सव्व+ङि। ५४८ सू० ङिप्रत्ययस्य स्सिं, म्मिं, त्थ इत्यादेशाः, ततः—**सव्वस्सिं सव्वम्मि सव्वत्थ** इति भवति। **अन्यस्मिन्**। अन्यत्+ङि=अन्न+ङि। ङि-प्रत्ययस्य स्सिं, म्मि, त्थ इत्यादेशा, ततः **अन्नस्सिं अन्नम्मि अन्नत्थ** इति भवति। **अतः इति किम् ?** प्रस्तुतसूत्रेण अकारात्परस्यैव आदेशाः विधीयन्ते, नान्यत्र। यथा—**अमुष्मिन्**। अदस+ङि। ५७७ सू० दकारस्य मु इत्यादेशे, अकारात्परत्वाभावे प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, ११ सू० सकारलोपे, ५०० सूत्रेण ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **अमुम्मि** इति भवति।

५४९—सर्वस्मिन्। सर्व+ङि। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ५४९ सू०

ङेः वैकल्पिके हिं इत्यादेशे **सव्वहिं** इति भवति। **अन्यस्मिन्**। अन्यत्+ङि=अन्न+ङि। ङेः वैकल्पिके 'हिं' इत्यादेशे **अन्नहिं** इति भवति। **कस्मिन्**। किम्+ङि=क+ङि। पूर्ववदेव—**कहिं** इति भवति। एवमेव—**यस्मिन्**। यद्+ङि=ज+ङि, पूर्ववदेव **जहिं** इति भवति। **तस्मिन्**। तद्+ङि=त+ङि, पूर्ववदेव **तहिं** इति भवति। **बहुलाधिकारात्**। प्रस्तुतसूत्रेण सर्वादेरदन्तात् पुल्लिङ्गशब्दादेव ङेर्हिमादेशो भवति, स्त्रीलिंगे क्लीबे च प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जायते परन्तु **बहुलाधिकारात्** किम्, यत्, तद् एभ्यः स्त्रियामपि ङेः स्थाने हिं इत्यादेशो भवति। यथा—**कस्यां, यस्यां, तस्याम्**। किम्+ङि, यद्+ङि, तद्+ङि। क+ङि। ज+ङि। त+ङि। अत्र ५२२ सूत्रेण ङीप्रत्ययस्य प्राप्तिवर्तते, परन्तु यत्र बाहुल्येन किम्, यद्, तद् एतेषां शब्दानां स्त्रियां ङिप्रत्ययस्य हिमादेशो भवति तत्र बहुलाधिकारादेव ५२२ सूत्रेण ङीप्रत्ययोऽपि न जायते। ततः २।४।१८। सू० आप्-(आ)-प्रत्यये, सन्धौ, ५४९ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे **काहिं, जाहिं, ताहिं** इति भवति। **पक्षे**। आदेशाभावपक्षे **सव्वस्सि सव्वम्मि सव्वत्थ** इत्यादीनि रूपाणि भवन्ति। प्रक्रिया ५४८ सूत्रेऽवलोकनीया। **स्त्रियान्तु पक्षे**। स्त्रीलिङ्गे यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्नाभूत्तत्रेति भावः। यथा—किम्+ङि=क+ङि। यद्+ङि=ज+ङि, तद्+ङि=त+ङि। इत्यत्र विकल्पेन ङी-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये। ततः की+ङि, जी+ङि, ती+ङि इति जाते, ५१८ सू० ङेः 'ए' इत्यादेशे **कीए, जीए तीए** ङीप्रत्ययाभावे आप्-(आ)-प्रत्यये **काए जाए ताए** इति भवति। **इदमेतद्वर्जनं किम्**? इदम्, एतद् इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां परस्य ङिप्रत्ययस्य हिमादेशो न भवतीति कथनस्य किं कारणम्? प्रश्नैतस्य समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारो भणति यदत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जायते। यथा—**अस्मिन्**। इदम्+ङि। इदमेतदो वर्जितत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ५६१ सू० इदमः स्थाने 'इम' इत्यादेशे, ५४८ सू० ङेः स्थाने स्सि इत्यादेशे **इमस्सि** इति भवति। **एतस्मिन्**। एतद्+ङि। १७७ सू० तकारलोपे, ११ सू० दकारलोपे, पूर्ववदेव **एअस्सि** इति भवति। अत्रापि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

५५०—सर्वेषाम्। सर्व+आम्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, ५५० सू० आमः स्थाने वैकल्पिके डेसिं (एसिं) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सव्वेसिं** इति भवति। **अन्येषाम्**। अन्यत्+आम्। ३४९ सू० यकारलोपे, नकारस्य द्वित्वे, ११ सू० तकारलोपे, पूर्ववदेव **अन्नेसिं** इति भवति। **अपरेषाम्**। अपर+आम्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, पूर्ववदेव **अवरेसिं** इति भवति। **एषाम्**। इदम्+आम्। ५६१ सू० इदमः स्थाने इम इत्यादेशे, पूर्ववदेव **इमेसिं** इति भवति। **एतेषाम्**। एतद्+आम्। १७७ सू० तकारलोपे, ११ सू० दकारस्यलोपे, पूर्ववदेव **एएसिं** इति भवति। **येषाम्**। यद्+आम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, पूर्ववदेव **जेसिं** इति भवति। **तेषाम्**। तद्+आम्। आमः वैकल्पिके डेसिमादेशे, पूर्ववदेव **तेसिं** इति भवति। **केषाम्**। किम्+आम्। ५६० सू० किमः क इत्यादेशे **तेसिंवत् केसिं** इति साध्यम्। **पक्षे**। डेसिमादेशाभावपक्ष इत्यर्थः। **सर्वेषाम्**। सर्व+आम=सव्व+आम्। ४९५ सू० आमः णकारे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **सव्वाण** इति भवति। एवमेव—**अन्येषाम्**=अन्नाण, **अपरेषाम्**=अवराण, **एषाम्**=इमाण, **एतेषाम्**=एआण, **येषाम्**=जाण, **तेषाम्**=ताण, **केषाम्**—काण इति भवति। **बाहुलकात्**। बहुलाधिकारात् स्त्रीलिङ्गेऽपि आम्प्रत्ययस्य स्थाने डेसिमादेशो भवति। यथा · **सर्वासाम्**। सर्वा+ङि=सव्वा+ङि। प्रस्तुतसूत्रेण ङेः डेसिमादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सव्वेसिं** इति सिद्धम्। एवमेव—**अन्यासाम्**=अन्नेसिं, **तासाम्**=तेसिं इति भवति।

५५१—केषाम्। किम्+आम्=क+आम्। ५५१ सू० आमः वैकल्पिके डास (आस) इत्या-

देशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—**कास** इति भवति। **तेषाम्**। तद्+आम्=त+आम्=**तास** इति पूर्ववदेव भवति। **पक्षे**। डासादेशाभावपक्षे ५५० सू० आमः डेसिमादेशे, पूर्ववदेव **केसिं तेसिं** इति भवति।

५५२—ङसः स्सः, इत्यस्यापवादः। ४९९ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशो भवति, परं प्रस्तुतसूत्रेण तस्य स्थाने डासादेशो विधीयतेऽतः सूत्रमिदमपवादसूत्रं ज्ञेयम्। अपवादः—बाधक इत्यर्थः। प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ४९९ सूत्रस्यापि प्रवृत्तिर्भवति। यथा- **कस्य**। किम्+ङस्=क+ङस्। ५५२ सू० ङसः स्थाने वैकल्पिके डास (आस) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कास** डासादेशाभावे ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **कस्स** इति भवति। **यस्य**। यद्+ङस्=ज+ङस्। डासादेशे—**जास** डासादेशाभावे—**जस्स** इति भवति। **तस्य**। तद्+ङस्=त+ङस। इत्यत्र डासादेशे**तास**, डासादेशाभावे—**तस्स** इति भवति। **बहुलाधिकारात्**। बाहुल्येन आकारान्ताभ्यां किम्-तद्-शब्दाभ्यामपि प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने डासादेशो भवति। यथा—**कस्याः धनम्**। **कस्याः**। किम+ङस्। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)—प्रत्यये, सन्धौ का+ङस् इति जाते। प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने डासादेशे, पूर्ववदेव **कास** इति भवति। **धनम्**—धणं। प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **तस्याः धनम्**। **तस्याः**। तद्+ङस् ११ सू० दकारलोपे, आप्-प्रत्यये, सन्धौ—ता+ङस् इति जाते, पूर्ववदेव **तास** इति भवति। **पक्षे**। डासादेशाभावे **काए, ताए** इति भवति। प्रक्रिया ५४९ सूत्रे द्रष्टव्या।

५५३—टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा। ५१८ सूत्रेण ङस्प्रत्ययस्य स्थाने अत्, आत्, इत्, एत् इत्येते आदेशा भवन्ति, परन्तु प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने वैकल्पिकौ स्सा, से इत्यादेशौ विहितौ। अतः सूत्रमिदं ५१८ सूत्रस्यापवादसूत्रं बोध्यम्। प्रस्तुतसूत्रविहितादेशाभावपक्षे तु अदादयोऽप्यादेशा भविष्यन्ति। यथा—**कस्याः**। किम्+ङस्=क+ङस्। ५२२ सू० ङी (ई) प्रत्यये, १० सू० स्वरे परे स्वरलोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये की+ङस् इति जाते, ५५३ सू० ङसः स्थाने स्सा, से इत्यादेशौ, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **किस्सा कीसे** आदेशाभावपक्षे ५१८ सू० ङसः स्थाने अद, आद्, इत्, एत् इत्यादेशाः, ततः—**कीअ, कीआ, कीइ, कीए** इति भवति। **यस्याः**। यद्+ङस् = ज+ङस्। ङीप्रत्यये जी+ङस् इति जाते, ङसः स्सा, से इत्यादेशौ, संयोगे परे ह्रस्वे **जिस्सा जीसे** आदेशाभावपक्षे पूर्ववदेव अदादिष्वादेशेषु जातेषु **जीअ, जीआ, जीइ, जीए** इति भवति। **तस्याः**। तद+ङस्=त+ङस्=ती+ङस्। पूर्ववदेव **तिस्से तीसे** आदेशाभावपक्षे **तीअ, तीआ, तीइ, तीए** इति भवति।

५५४—हिं-स्सिं-म्मि-त्थानामपवादः। ५४८ सूत्रेण ङेः स्थाने स्सिमादय आदेशा भवन्ति, परन्तु प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन डाहे इत्यादयस्त्रय आदेशा विधीयन्तेऽतः सूत्रमिदं तस्यापवादसूत्रं बोध्यम्। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्यभावे ५४८ सूत्रस्यापि प्रवृत्तिर्जायते। यथा—**कस्मिन्**। किम्+ङि=क+ङि। ५५४ सू० ङेः स्थाने वैकल्पिकेषु डाहे (आहे), डाला (आला) इआ इत्येतेष्वादेशेषु जातेषु, डिति परेऽन्त्यस्वरालोपे **काहे, काला, कइआ** इति भवति। **यस्मिन्**। यद्+ङि=ज+ङि। पूर्ववदेव ङिप्रत्ययस्य उक्तादेशेषु जातेषु **जाहे, जाला जइआ**। एवमेव **तस्मिन्**। तद्+ङि=त+ङि=**ताहे, ताले, तइया** इति सिद्धम्। **तस्मिन् जायन्ते गुणाः, यस्मिन् ते सहृदयैः गृह्यन्ते**। अयं भावः—तस्मिन्नेव नरे गुणाः जायन्ते-सफला भवन्ति, यस्मिन् सहृदयैः-रसिकैः, विदग्धैः गृह्यन्ते=स्वीक्रियन्ते। **तस्मिन्**। तद्+ङि, पूर्ववदेव **ताला** इति भवति। **जायन्ते**। जनि प्रादुर्भावे। जनि+अन्ते। इत्यत्र ८०७ सू० जनेः जा इत्यादेशे, ६३१ सू० 'अन्ते' इत्यस्य न्ति इत्यादेशे, ९११ स० अकारागमे **जाअन्ति** इति भवति। **गुणाः**। गुण+जस्। इत्यत्र ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **गुणा** इति सिद्धम्। **यस्मिन्**। पूर्ववदेव **जाला** इति साध्यम्।

ते । ५४७ सूत्रे साधितमिदं रूपम् । **सहृदयैः** । सहृदय+भिस् । इत्यत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपः, ४९६ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, ५०४ सू० पूर्वाकारस्य एकारे **सहिअएहिं** इति सिद्धम् । **गृह्यन्ति** । ग्रह् उपादाने । ग्रह्+अन्ति । इत्यत्र ९२७ सू० ग्रहेः स्थाने घेप्प इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः 'न्ति' इत्यादेशे, **घेप्पन्ति** इति सिद्धम् । **पक्षे** । यत्र सूत्रोक्ता आदेशा न जातास्तत्र ५४८ सू० ङेः स्थाने स्सिं, 'म्मि, त्थ इत्यादेशा भवन्ति । ततः **कस्सिं, कम्मि, कत्थ,** ५४९ सू० ङेः स्थाने 'हिं'इत्यादेशे तु **कहिं** इति भवति ।

५५५—कस्मात् । किम्+ङसि=क+ङसि । ५५५ सू० ङसेः स्थाने वैकल्पिके 'म्हा' इत्यादेशे **कम्हा** इति भवति । एवमेव—**तस्मात्** । तद्+ङसि=त+ङसि=**तम्हा, यस्मात्** । यद्+ङसि=ज+ङसि=**जम्हा** इति भवति । **पक्षे** म्हादेशाभावे—४९७ सू० ङसेः स्थाने दो (ओ) इत्यादेशे—**काओ, जाओ, ताओ** इति भवति ।

५५६—तस्मात् । तद्+ङसि । ११ सू० दकारलोपे, ५५६ सू० ङसेः वैकल्पिके डो (ओ) इत्यादशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तो** आदेशाभावपक्षे **तम्हा** इति भवति । प्रक्रिया ५५५ सूत्रे द्रष्टव्या ।

५५७—कस्मात् । किम्+ङसि । ५६० सू० किमः कः इत्यादेशे, ५५७ सू० ङसेः वैकल्पिकौ डिणो (इणो), डीस (ईस) इत्यादेशौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **किणो कीस** आदेशाभावपक्षे **कम्हा** इति भवति । ५५५ सूत्रे प्रक्रिया द्रष्टव्या ।

५५८ –अनेन । इदम्+टा । ५६१ सू० इदमः इम इत्यादेशे, ५५८ सू० टाप्रत्ययस्य वैकल्पिके डिणा (इणा) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **इमिणा** आदेशाभावपक्षे—४९५ सू० टा-स्थाने णकारादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **इमेण** इति भवति । **एतेन** । एतद्+टा । शौरसेनीभाषायाम् ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ११ सू० दकारलोपे, टा-प्रत्ययस्य विकल्पेन इणादेशे, पूर्ववदेव **एदिणा** आदेशाभावे—**इमेणवत् एदेण** इति ज्ञेयम् । **केन** । किम्+टा=क+टा । वैकल्पिके डिणादेशे **किण** आदेशाभावपक्षे पूर्ववदेव **केण** इति साध्यम् । **येन** । यद्+टा=ज+टा । टा-प्रत्ययस्य वैकल्पिके डिणादेशे **जिणा** आदेशाभावपक्षे **जेण** एवमेव **तेन** । तद्+टा=त+टा । वैकल्पिके डिणादेशे **तिणा** आदेशाभावपक्षे पूर्ववदेव **तेण** इति साधनीयम् ।

५५९—क्वचित् लक्ष्यानुसारेण । प्रस्तुतसूत्रविहितः 'ण' इत्यादेशो न सार्वत्रिको ज्ञेयः, प्रयोगमनुसृत्य कस्मिंश्चित् स्थाने एतस्य उपयोगो भवति । यथा – **तम्** । तद्+अम् । ५५९ सू० तदः स्थाने 'ण' इत्यादेशे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **णं** इति सिद्धम् । **पश्य**=पेच्छ प्रक्रिया ५३९ सूत्रे द्रष्टव्या । **शोचति च तं रघुपतिः** । **शोचति** । शुच् शोके । शुच्+तिव् । ९०९ सू० उकारस्य ओकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **सोअइ** इति सिद्धम् । **च** । अव्ययपदमिदम् । १७७ सू० चकारस्य लोपे **अ** इति सिद्धम् । **तम्** । पूर्ववदेव **णं** इति साध्यम् । **रघुपतिः** । रघुपति+सि । १८७ सू० घकारस्य हकारः, २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घः, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **रहुवई** इति जातम् । **स्त्रियामपि** । लक्ष्यानुसारेण स्त्रीलिङ्गेऽपि णादेशो भवति । यथा—**हस्तोन्नामितमुखी तां त्रिजटा** । **हस्तोन्नामितमुखी** । हस्तेन हस्ते वा उन्नामितमुत्थापितं मुखं यया यस्याः वा सा । हस्तोन्नामितमुखी+सि । ३१६ सू० स्तस्य स्थाने थकारः, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८७

सू० खकारस्य हकारः, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू सकारलोपे **हत्थुन्नामिश्रमुही** इति भवति। **ताम्**। तद्+अम्। प्रस्तुतसूत्रेण स्त्रियामपि तदः ण इत्यादेशे, आप्-(आ)-प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ णा+अम् इति जाते, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **णं** इति भवति। **त्रिजटा**। त्रिजटा+सि। ३५० सू० रेफलोपे,१७७ सू० जकारलोपे,१९५ सू० टकारस्य डकारे, सेर्लोपे **तिअडा** इति भवति। **तेन भणितम्**। तेन। तद्+टा। तदः स्थाने 'ण' इत्यादेशे, ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **णेण** इति सिद्धम्। **भणितम्**=भणिअं, प्रक्रिया ४६४ सूत्रे ज्ञेया। **तस्मात् तेन करतलस्थिता**। **तस्मात्**। तद्+ङसि='**तो**' अस्य प्रक्रिया ५५६ सूत्रे अवलोकनीया। **तेन**। तद्+टा। **णेण** इत्यस्य प्रक्रिया अस्मिन्नेव सूत्रे द्रष्टव्या। **करतलस्थिता**। करयोः-हस्तयोः तलं करतलं तत्र स्थिता। करतलस्थिता+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपः, १८० सू० यकारश्रुतौ, [ष्ठा (स्था) गतिनिवृत्तौ। स्था+क्त (त)] ६८७ सू० स्थाधातोः 'ठा' इत्यादेशे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ९०९ सू० अकारस्य इकारे, स्त्रीत्वविवक्षायाम् आप्-प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ ट्ठिता+सि इति जाते तकारस्य लोप, सेर्लोपे **करयलट्ठिआ** इति सिद्धम्। **भणितम्**। पूर्वदेव **भणिअ** इति साध्यम्। **च**। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। **तया**। तद्+टा। तदः ण इत्यादेशे, स्त्रीत्वाद् आप्-(अ)-प्रत्यये, सन्धौ णा+टा इति जाते, ५१८ सू० टा-स्थाने एकारे **णाए** इति भवति। **तैः**। तद् +भिस्=णा+भिस्। ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **णेहिं** इति भवति। स्त्रीलिङ्गे तु आप्-(आ)-प्रत्यये णा+भिस् इति जाते, पूर्ववदेव **णाहिं** इति भवति। **कृतम्**=कयं, प्रक्रिया ५१३ सूत्रे ज्ञेया।

५६०—कः। किम्+सि। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **को** इति भवति। **के**। किम्+जस्=क+जस्। ५४७ सू० जसः स्थाने डित्-एकारे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **के** इति जातम्। **कम्**। किम्+अम्=क+अम्। ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कं** इति सिद्धम्। **कान्**। किम्+शस्=क+शस्। ४९३ सू० शसो लुकि, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **के** इति सिद्धम्। **केन**। किम्+टा=क+टा। ४९५ सू० टा-प्रत्ययस्य णादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **केण** इति भवति। **कुत्र**। कस्मिन्निति कुत्र। किम्+त्रप्। प्रस्तुत-सूत्रेण किमः क इत्यादेशे, ४३२ सू० त्रपः स्थाने त्थ इत्यादेशे **कत्थ** इति भवति। **कुतः**। कस्मादिति कुतः। किम्+तस्=क+तस। ४३१ सू० तसः विकल्पेन त्तो, दो इत्यादेशौ, ततः **कत्तो कदो** आदेशा-भावे १७७ सू० तकारलोपे, संस्कृतव्याकरण-नियमेन सकारस्य विसर्गे, ३७ सू० विसर्गस्य स्थाने डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कओ** इति भवति।

५६१—अयम्। इदम्+सि। ५६१ सू० इदमः स्थाने इम इत्यादेशे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **इमो** इति भवति। **इमे**। इदम्+जस्=इम+जस्। इत्यत्र ५४७ सू० जसः स्थाने डिद्-एकारे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **इमे** इति भवति। **इमम्**। इदम्+अम्=इम+अम्। ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **इमं** इति भवति। **इमान्**। इदम्+शस्=इम+शस्। ४९३ सू० शसो लुकि, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **इमे** इति भवति। **अनेन**। इदम्+टा=इम+टा। इत्यत्र ४९५ सू० टास्थाने णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **इमेण** इति भवति। **स्त्रियामपि**। स्त्रीलिङ्गेऽपि इमादेशो भवति। यथा—**इयम्**। इदम्+सि=इम+सि। स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **इमा** इति भवति।

५६२—अथवा। अव्ययपदमिदम्। १८७ सू० थकारस्य हकारे **अहवा** इति भवति। **अयम्**। इदम्+सि। ५६२ सू० इदमः स्थाने वैकल्पिके अयं इत्यादेशे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **अयं** इति भवति। **कृतकार्यः**। कृतं कार्यं येन सः। कृतकार्य+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कयकज्जो** इति भवति। **इयम्**। इदम्+सि। स्त्रीलिङ्गे प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके इदमः इमिआ इत्यादेशे, सेर्लोपे **इमिआ** इति भवति। **वाणिजदुहिता**। वाणिजस्य-व्यापारिणः दुहिता। वाणिजदुहिता+सि। १७७ सू० जकारलोपे, ३९७ सू० दुहितृशब्दस्य धूआ इत्यादेशे, सेर्लोपे **वाणिअधूआ** इति भवति। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्यभावपक्ष इत्यर्थः। **अयम्**—इमो, **इयम्**=इमा, अनयोः शब्दयोः प्रक्रिया ५६१ सूत्रे तथा ५६२ सूत्रे ज्ञेया। अत्र इदमः स्थाने **अयम्, इमिआ** इत्यादेशौ न जातौ।

५६३—अस्मिन्। इदम्+ङि। ५४८ सू० ङेः स्थाने स्सिं इत्यादेशे वैकल्पिके, ५६३ सू० इदमः वैकल्पिके अकारे **अस्सि** अकारादेशाभावे ५६१ सू० इमः इम इत्यादेशे **इमस्सि** इति भवति। **अस्य**। इदम्+ङस्। इदमः स्थाने इम इत्यादेशे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे, स्थानिवत्त्वात् प्रस्तुतसूत्रेण इमस्य विकल्पेन अ इत्यादेशे **अस्स** आदेशाभावपक्षे **इमस्स** इति भवति। **बहुलाधिकारादन्यत्रापि**। बहुलस्य अधिकाराद् यत्र स्सि स्स इत्येतौ परौ न भवेतां तत्रापि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते। यथा— **एभिः**। इदम्+भिस्। प्रस्तुतसूत्रेण इदमः अकारादेशे, ४९६ सू० भिसः हि इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **एहि**। एवमेव **एसु**। इदम्+सुप् (सु)। इदमः अकारादेशे, अकारस्य एकारे **एसु**। **आभिः**। इदम्+भिस्। इदमः अकारादेशे, स्त्रीत्वाद् आप् (आ) प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ, आ+भिस्, इति जाते, ६१२ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९६ सू० भिसः हि इत्यादेशे **आहि** इति भवति।

५६४—अस्मिन्। इदम्+ङि। ५६१ सू० इदमः स्थाने इम इत्यादेशे, ५६४ सू० विकल्पेन मकारेण सहितस्य ङिप्रत्ययस्य 'ह' इत्यादेशे **इह** आदेशाभावे ५४८ सू० ङेः स्थाने स्सिं, म्मि इत्यादेशौ, ततः **इमस्सि इमम्मि** इति भवति।

५६५—अस्मिन्। इदम्+ङि=**इह इमस्सि इमम्मि** प्रक्रिया ५६४ सूत्रे बोध्या। अत्र ५४८ सूत्रेण ङिप्रत्ययस्य स्थाने प्राप्त त्थ इत्यादेशः ५६५ सूत्रेण निषिद्धः।

५६६—इमाम्। इदम्+अम्। ५६६ सू० इदमः वैकल्पिके णादेशे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **णं** इति भवति। **पश्य**=पेच्छ। प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **इमान्**। इदम्+शस्= ण+शस्। ४९३ सू० शसो लुकि, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **णे**, एवमेव **अनेन**। इदम्+टा=ण+टा। ४९५ सू० टा-स्थाने णादेशे, अकारस्य एकारे **णेण, एभिः**। इदम्+भिस्=ण+भिस्, ४९६ सू० भिसः हि इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **णेहि** इति भवति। **कृतम्**=कयं। प्रक्रिया ५४१ सूत्रे ज्ञेया। **पक्षे**। णादेशाभावे। **इमं इमे इमेण** इति भवति। प्रक्रिया ५६१ सूत्रेऽवलोकनीया। **इमेहि** इत्यत्र तु इदमः स्थाने ५६१ सू० इम इत्यादेशे, ४९६ सू० भिसः हि इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे कृते रूपसिद्धिर्भवति।

५६७—इमम्। इदम्+अम्। ५६७ सू० विकल्पेन अमा सहितस्य इदमः इणं इत्यादेशे **इणं** आदेशाभावे **इमं** इति भवति। प्रक्रिया ५६१ सूत्रे ज्ञेया। **पश्य**—पेच्छ। प्रक्रिया ५३९ सूत्रेऽवलोकनीया।

५६८—इदम्। इदम्+सि, इदम्+अम्। ५६८ सू० स्यम्-प्रत्ययाभ्यां सहितस्य इदमः इदम्,

इणमो, इणम् इत्यादेशाः, २३ सू० मकारानुस्वारे **इदं इणमो, इणं** इति भवति । **धनम्=धणं, तिष्ठति**=चिट्ठइ, **पश्य**=पेच्छ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। ५३९ सूत्रे **चिट्ठन्ति** इति बहुवचनान्तं पदं पठितं, परन्तु प्रस्तुत-सूत्रे एकवचनान्तमत एव ६२८ सूत्रेणात्र तिवः इचादेशो जातः । **इदं धनं तिष्ठति,** इति प्रथमाविभक्तिनिर्देशकं वाक्यम्, **इदं धनं पश्य,** इति द्वितीयाविभक्तिसंसूचकं वाक्यम्।

५६९—किं कुलं तव ?। किम् । किम्+सि । ५६९ सू० सिना सह किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति भवति । **कुलम्** । कुल+सि । ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कुलं** इति भवति। **तव**। युष्मद्+ङस्=तुह, इत्यस्य प्रक्रिया ५८८ सूत्रे ज्ञेया । **किं किं ते प्रतिभाति ? । किम्** । किम्+ अम् । प्रस्तुत-सूत्रेण अमा सहितस्य किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति भवति । **किं** इत्यस्य द्विवार-ग्रहणं वीप्सा-सूचनार्थम् । **ते** । युष्मद्+ङस् । ५८८ सू० ङसा सह युष्मदः स्थाने ते इत्यादेशे **ते** इति भवति । **प्रतिभाति** । प्रतिभा रोचने । प्रतिभा+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **पडिहाइ** इति भवति ।

५७०—अस्य शीलम् । अस्य । इदम्+ङस् । ५७० सू ० ङसा सह वैकल्पिके इदमः से इत्या-देशे **से** इति भवति । **शीलम्** । शील+सि । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सीलं** इति भवति । **अस्य गुणाः** । **अस्य** पूर्ववदेव **से** इति साध्यम् । **गुणाः** । गुण+ जस् । ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **गुणा** इति भवति । **एषाम्** । इदम्+**आम्** । प्रस्तुतसूत्रेण आमा सह इदमः **सिं** इत्यादेशे **सिं** इति भवति । **उत्साहः**=उच्छाहो, प्रक्रिया २९२ सूत्रे ज्ञेया । **तस्य शीलम्** । **तस्य** । तद्+ङस् । प्रस्तुतसूत्रेण ङसा सह तदः विकल्पेन से इत्यादेशे **से** इति भवति । **शीलम्**=सीलं, पूर्ववदेव साध्यम् । **तेषाम्, तासाम् गुणाः** । तद्+आम् । आमा सह तदः वि-कल्पेन सिं इत्यादेशे **सिं** इति भवति । **गुणाः**=गुणा, पूर्ववदेव साध्यम् । **एतस्य** । एतद्+ङस् । इत्यत्र ङसा सह एतदः विकल्पेन से इत्यादेशे **से** इति भवति । **अहितम्** । अहित+सि । १७७ सू० तकारलोपे, सेर्मकारे, मकारानुस्वारे **अहिअं** इति भवति । **एतेषां गुणाः** । **एतेषाम्** । एतद्+आम् । इत्यत्र आमा सह एतदः विकल्पेन सिं इत्यादेशे **सिं** इति भवति । **एतेषां शीलम्** । एतेषाम्=**सिं**, शीलम्=**सीलं** इत्यनयोः पदयोः प्रक्रिया पूर्ववदेवावगन्तव्या । **पक्षे**। से, सिं इत्यादेशाभावे—**इमस्स, इमेसिं** इत्यादीनि रूपाणि भवन्ति । साधनिका त्वित्थम्-**अस्य** । **इदम्**+ङस् । ५६१ सू० इदम इम इत्यादेशे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **इमस्स** इति भवति । **एषाम्** । इदम्+आम्=इम+आम् । ५५० सू० आमो विकल्पेन डेसिं (एसिं) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **इमेसिं** डेसिमादेशाभावे ४९५ सू० आमः णादेशे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **इमाण** इति भवति । **तस्य** । तद्+ङस् । ११ सू० दकारलोपे, ४९९ सू० ङसः स्सा-देशे **तस्स, तेषाम्** । तद्+आम् । आमः वैकल्पिके डेसिमादेशे, पूर्ववदेव **तेसिं**, डेसिमादेशाभावे, दकार-लोपे, पूर्ववदेव **ताण** । **एतस्य** । एतद्+ङस् । १७७ सू० तकारलोपे, ११ सू० दकारलोपे, ङसः स्सादेशे **एअस्स, एतेषाम्** । एतद्+आम्=एअ+आम् । वैकल्पिके डेसिमादेशे—**एएसिं** डेसिमादेशाभावे— एअ+आम्, इत्यत्र आमो णादेशे, पूर्वाकारदीर्घे **एआण** इति भवति । **इदंतदोरमपि से-आदेशम्** । कश्चिद् वैयाकरणः अम्-प्रत्ययेन सहापि इदम्, तद् इत्येतयोः शब्दयोः **से** इत्यादेशं स्वीकरोतीति भावः ।

५७१—एतस्मात् । एतद्+ङसि । ५७१ सू० ङसेः स्थाने त्तो त्ताहे इत्यादेशौ वैकल्पिकौ, ५७२ सू० सस्वरतकार-लोपे, ११ सू० दकारलोपः, ततः—**एत्तो एत्ताहे** एतावादेशाभावे १७७ सू० तकारस्य लोपे, ११ सू० दकार लोपे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे, ४९७ स० ङसेः स्थाने दो, दु, हि, हिन्तो,

लुक् इत्यादेशाः, १७७ सू० दकारलोपे **एआओ, एआउ, एआहि, एआहिन्तो, एआ** इति भवति।

५७२—एतस्मिन्। एतद्+ङि। इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे, ५४८ सू० ङिप्रत्ययस्य त्थ इत्यादेशे, ५७२ सू० सस्वर-तकारलोपे **एत्थ** इति भवति। **एतस्मात्**। एतद्+ङसि=**एत्तो, एत्ताहे** इत्यनयोः शब्दयोः प्रक्रिया ५७१ सूत्रे ज्ञेया।

५७३—एतस्मिन्। एतद्+ङि। इत्यत्र ५७३ सू० एकारस्य विकल्पेन अ, ई इत्यादेशौ, १७७ सू० तकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, ११ सू० दकार-लोपे, ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **अयम्मि, ईयम्मि** आदेशाभावे एत+म्मि, इति स्थिते, १७७ सू० तकारलोपे **एअम्मि** इति भवति।

५७४—सर्वस्य=सव्वस्स, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **अपि**=वि, प्रक्रिया ६ सूत्रे ज्ञेया। **एषः**। एतद्+सि। ५७४ सू० सिना सह एतदः एस इत्यादेशे **एस** इति भवति। **गतिः**=गई, प्रक्रिया ४६६ सूत्रे ज्ञेया। **सर्वेषाम्**। सर्व+आम्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, ४९५ सू० आमः स्थाने णकारे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **सव्वाण** इति भवति। **पार्थिवानाम्**। पार्थिव+आम्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, रेफस्य लोपे, थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, सव्वाणवदेव **पत्थिवाण** इति साध्यम्। **एषा**=एस, पूर्ववदेव साध्यम्। **मही**। मही+सि। इत्यत्र १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **मही** इति भवति। **एषः**। एतद्+सि=एस पूर्ववदेव साध्यम्। **स्वभावः**। स्वभाव+सि। ३५० सू० संयुक्त-वकारलोपे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १७७ सू० वकारलोपे, ४९१ सू० **सेर्डोः**, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सहाओ** इति भवति। **एव**=च्चिअ, इत्यस्य प्रक्रिया ४५५ सूत्रे ज्ञेया। **शशधरस्य**। शशधर+ङस्। २६० सू० उभयत्रापि शकारस्य सकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **ससहरस्स** इति भवति। **एतद्**। एतद्+सि=एस, पूर्ववदेव साध्यम्। **शिरः**= सिरं, प्रक्रिया ३२ सूत्रे ज्ञेया। **एतद्**। एतद्+सि। प्रस्तुतसूत्रेण सिना सह एतदः वैकल्पिकौ इणं इणमो इत्यादेशौ, ततः **इणं इणमो** आदेशाभावपक्षे एतद्+सि=**एअं**, प्रक्रिया २०९ सूत्रे ज्ञेया। स्त्रीलिङ्गे—**एषा**। एतद्+सि। आप्-प्रत्यये-**एसा** इति भवति। प्रक्रिया ३३ सूत्रे ज्ञेया। पुल्लिङ्गे—**एषः**। एतद्+सि=**एसो** इति भवति। प्रक्रिया ३८७ सूत्रे ज्ञेया।

५७५—सः। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सो** इति भवति। स्त्रीलिङ्गे तु आप्-(आ)-प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११सू० सकारलोपे **सा** इति भवति। **पुरुषः**=पुरिसो, प्रक्रिया ४२ सूत्रे ज्ञेया। **महिला**=महिला, प्रक्रिया १४६ सूत्रे ज्ञेया। **एषः**। एतद्+सि। इत्यत्र ५७५ सू० तकारस्य स्थाने सकारे, ११ सू० दकारलोपे, पूर्ववदेव **एसो** इति भवति। **प्रियः**=प्रिय+सि। ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, सेर्डोः, पूर्ववदेव **पिओ** इति भवति। **एषा**=एसा, प्रक्रिया ५७४ सूत्रे ज्ञेया। **मुग्धा**=मुद्धा, प्रक्रिया ५१८ सूत्रे ज्ञेया। **सावित्येव**। सिप्रत्यये परे सत्येव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति नान्यथा। यथा—**ते**=ते, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **एते**=एए, प्रक्रिया ४९३ सूत्रे ज्ञेया। अत्र सिप्रत्ययस्याभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **धन्याः**=धन्ना, प्रक्रिया ४५५ सूत्रे ज्ञेया। **ताः**। तद्+जस्। ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्—(आ)-प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ, ५१६ सू० जसः ओकारे **ताओ** इति भवति। **एताः**। एतद्+जस्=एता+जस्। १७७ सू० तकारस्य लोपे, जसः ओकारे **एआओ** इति भवति। **महिलाः**। महिला+जस्। जस ओकारे **महिलाओ** इति भवति। सिप्रत्ययाभावे अत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **अक्लीब इति किम्? नपुंसकलिङ्गेतरलिङ्गे** एव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा। यथा—**तद्**=तं प्रक्रिया ४१

सूत्रे ज्ञेया, **एतद्**=एग्रं, प्रक्रिया २०९ सूत्रे ज्ञेया, **वनम्** । वन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ स० मकारानुस्वारे **वणं** इति भवति । क्लीबत्वादत्र प्रस्तुतसूत्र-प्रवृत्त्यभावः ।

५७६—असौ । अदस्+सि । ५७६ सू० दकारस्य वैकल्पिके हकारे, ११ सू० सकारलोपे, ४९१ सूत्रेण प्राप्तः सेर्डोः इत्यादेशः,प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **अह** इति भवति । **पुरुषः** । पुरुष+सि=**पुरिसो** । प्रक्रिया १११ सूत्रे ज्ञेया । **असौ** । अदस्+सि=अह+सि । १११९ सू० संस्कृतवदतिदेशात् २।४।१८। सूत्रेण प्राप्तः आप्-प्रत्ययः प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः,सेर्लोपे **अह** इति भवति। **महिला** । महिला+सि=**महिला**,प्रक्रिया १४६ सूत्रे ज्ञेया । **अदः** । अदस्+सि=अह+सि । ५१४ सूत्रेण प्राप्तः सेर्मकारः प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः, सेर्लोपे **अह** भवति । **वनम्**=वणं प्रक्रिया ५७५ सूत्रे ज्ञेया । **असौ**=अह, पूर्ववदेव, साध्यम् । **मोहः** । मोह+सि । ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **मोहो** इति भवति । **परगुणलघुकायाः** । परस्य गुणाः, तेभ्यः लघुका । परगुणलघुक+ङस् । १८७ सू० घकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ, ५१८ सू० ङसः इकारे **पर-गुण-लहुअ-याइ** इति भवति । **असौ**=अह पूर्ववदेव साध्यम् । **अस्मान्**=णे, प्रक्रिया ५९७ सूत्रे ज्ञेया । **हृदयेन** । हृदय+टा । इत्यत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपे, ४९५ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने णकारे; ५०३ सू० अकारस्य एकारे **हिअएण** इति भवति । **हसति**=हसइ, इत्यस्य प्रक्रिया ४६९ सूत्रे ज्ञेया । **मारुत-तनयः** । मारुत—तनय+सि । १७७ सू० प्रथम-तकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, सेर्डोः, पूर्ववदेव **मारुयतणओ** इति भवति । **असौ**=अह, पूर्ववदेव साध्यम् । **कमलमुखी** । कमलमिव मुखं यस्याः सा । कमलमुखी+सि । इत्यत्र १८७ सू० खकारस्य हकारे, सेर्लोपे **कमलमुही** इति भवति । **पक्षे** । दकारस्य हकाराभावपक्ष इत्यर्थः । **असौ** । अदस्+सि । इत्यत्र ५७७ सू० दकारस्य मु इत्यादेशे, ११ सू० सकारलोपे, ५०८ सू० उकारस्य दीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे, **अमू** इति भवति । **पुरुषः**=पुरिसो । प्रक्रिया ५७५ सूत्रे ज्ञेया । **असौ**=अमू, पूर्ववदेव साध्यम् । **महिला**=महिला, प्रक्रिया १४६ सूत्रे ज्ञेया । **अदः** । **अदस्**+सि=अमु+सि । ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अमुं** इति भवति । **वनम्** । वणं प्रक्रिया ५७५ सूत्रे ज्ञेया ।

५७७—असौ पुरुषः=अमू पुरिसो, प्रक्रिया ५७६ सूत्रे ज्ञेया । **अमी पुरुषाः** । **अमी** । अदस्+जस् । ५७७ सू० दकारस्य स्थाने मु इत्यादेशे, ११ सू० सकारलोपे, ५११ सू० जसः णो स्थाने इत्यादेशे,६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ५०१ सूत्रेण प्राप्तदीर्घस्य ६१४ सू० निषेधे **अमुणो** इति भवति । **पुरुषाः** । पुरुष+जस् । १११ सू० रेफस्योकारस्य इकारे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दोर्घे **पुरिसा** इति भवति । **अदः वनम्**=अमुं वणं । अनयोः प्रक्रिया ५७६ सूत्रे ज्ञेया । **अमूनि वनानि** । **अमूनि** । अदस्+जस् =अमु+जस् । इत्यत्र ५१५ सू० जसः इं इत्यादेशे पूर्वस्वरदीर्घे च **अमूइं** इति भवति । **वनानि** । वन+जस् । पूर्ववदेव जस इं इत्यादेशे पूर्वाकारदीर्घे च **वणाइं** इति भवति । **असौ माला** । **असौ** । अदस्+सि= अमू । प्रक्रिया ५७६ सूत्रे बोध्या । **माला** । माला+सि । इत्यत्र १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **माला** इति भवति । **अमूः माला** । **अमूः** । अदस्+जस्=अमु+जस्, ५१६ सू० जसः स्थाने उकारे, ओकारे, पूर्वदीर्घे च **अमूउ अमूओ** इति भवति । **मालाः** । माला+जस् । जसः ओकारे—**मालाओ** इति भवति । **अमुना** । अदस्+टा=अमु+टा । इत्यत्र ५१३ सू० टास्थाने णा इत्यादेशे **अमुणा** इति भवति । **अमीभिः** । अदस्+भिस्=अमु+भिस् । ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९६ सू० भिसः स्थाने हिं

इत्यादेशे,५०५ सू० उकारस्य दीर्घे **अमूहि** इति भवति। **अमुष्मात्**। अदस+ङसि=अमु+ङसि। अदन्तवत्त्वात् ४९७ सू० ङसेः दो, दु, हिन्तो इत्यादेशाः, १७७ सू० दकारलोपे, ५०१ सू० उकारदीर्घे **अमूओ अमूउ अमूहिन्तो** इति भवति। **अमीभ्यः**। अदस्+भ्यस्=अमु+भ्यस्। इत्यत्र ४९४ सू० भ्यसः हिन्तो, सुन्तो इत्यादेशौ जातौ, ततः ५०५ सू० उकारस्य दीर्घे **अमूहिन्तो अमूसुन्तो** इति सिद्धम्। **अमुष्य**। अदस्+ङस्=अमु+ङस्। इत्यत्र ५१२ सू० ङसेः विकल्पेन 'णो' इत्यादेशे **अमुणो** णो इत्यादेशाभावे ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९९ सू० ङसः 'स्स' इत्यादेशे **अमुस्स** इति सिद्धम्। **अमीषाम्**। अदस्+आम्=अमु+आम्। इत्यत्र ४९५ स० आमः स्थाने ण इत्यादेशे, ५०१ सू० उकारस्य दीर्घे **अमूण** इति सिद्धम्। **अमुष्मिन्**। अदस्+ङि=अमु+ङि। इत्यत्र ५०० सू० ङेः स्थाने 'म्मि' इत्यादेशे **अमुम्मि** इति सिद्धम्। **अमीषु**। अदस्+सुप्=अमु+सु, इत्यत्र ५०५ सू० उकारस्य दीर्घे **अमूसु** इति भवति।

५७८—अमुष्मिन्। अदस्+ङि। ५७८ सू० विकल्पेन अद इत्यस्य अय, इअ इत्यादेशौ, ११ सू० सकारलोपे, ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **अयम्मि इअम्मि** बाहुल्येन यकारश्रुतौ **इयम्मि** इति भवति। आदेशाभावे अदस्+ङि=**अमुम्मि** इति भवति। प्रक्रिया ५७७ सूत्रे ज्ञेया।

★ अथ स्यादि प्रत्ययों को होने वाली विधि [ख] ★

स्यादि प्रत्ययों को होने वाली विधि के क-विभाग का निरूपण किया जा चुका है। अब सूत्रकार उस के ख-विभाग का निरूपण कर रहे हैं।

५३५—मातृ-शब्द सम्बन्धी ऋकार के स्थान में स्यादि प्रत्ययों के परे रहने पर **आ** और **अरा** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**१—माता**=माआ,माअरा (प्रथमा का एक वचन), **२—मातरः**=माआउ माआओ माअराउ माअराओ (प्रथमा का बहुवचन), **३—मातरम्**=माअं, माअरं (द्वितीया का एक वचन) इत्यादि प्रयोगों में ऋकार को आ और अरा ये दो आदेश किए गए हैं। **बहुलाधिकार** से जनन्यर्थक मातृ शब्द के ऋकार को आ तथा '**देवता**' इस अर्थ के बोधक मातृ शब्द के ऋकार को 'आर' यह आदेश होता है। जैसे—**१—मातुः कुक्षौ**=माआए कुच्छीए (माता के पेट में), **२—नमः मातृभ्यः**= नमो माअराण (देवी रूप माताओं को नमस्कार) जहां १३५ सूत्र से ऋकार को इकार कर दिया गया, वहां '**माईण**' यह रूप होता है। जहां ५३३ सूत्र से ऋकार को उदन्तादेश होता है, वहां मातृ शब्द की तृतीया विभक्ति के एक वचन का—**मात्रा समन्वितां वन्दे**=माऊए समन्निअं वन्दे (मैं माता के साथ समन्विता को वन्दना करता हूं) यह रूप बनता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि मातृ शब्द सम्बन्धी ऋकार के स्थान में आ, अरा ये दोनों आदेश स्यादि प्रत्ययों के आगे रहने पर ही होते हैं, अन्यत्र नहीं। जैसे—**१—मातृदेवः**=माइदेवो (मातारूप देव-ईश्वर), **२—मातृगणः**=माइगणो (माताओं का समूह) यहां देव तथा गण शब्द परे होने के कारण मातृ के ऋकार को उक्त आदेश नहीं हो सके।

५३६—ऋकारान्त शब्द यदि संज्ञावाचक हों तो उनके ऋकार को 'अर' यह अन्तादेश होता है स्यादि प्रत्ययों के परे रहने पर। जैसे—**१—पितरः**=पिअरा, (प्रथमा का बहुवचन), **२—पितरम्**= पिअरं (द्वितीया का एक वचन), **३—पितॄन्**=पिअरे (द्वितीया का बहुवचन), **४—पित्रा**=पिअरेण (तृतीया का एक वचन), **५—पितृभिः**=पिअरेहिं (तृतीया का बहुवचन), **६—जामातरः**=जामायरा (जामाता—दामाद की प्रथमा विभक्ति का बहुवचन), **७—जामातरम्**=जामायरं (दामाद को) **८—जामातॄन्**=जामाअरे (दामादों को), **९—जामात्रा**=जामायरेण (दामाद ने), **१०—जामातृभिः**= जामायरेहिं (दामादों ने), **११—भ्रातरः**=भायरा (अनेकों भाई), **१२—भ्रातरम्**=भायरं (भाई को),

१३—**भ्रातॄन्**=भायरे (भाइयों को), १४—**भ्रात्रा**=भायरेण (भाई ने), १५—**भ्रातृभिः**=भायरेहिं (भाइयों के द्वारा) यहां पर ऋकार को 'अर' यह अन्तादेश किया गया है।

५३७—यदि **सिप्रत्यय** परे हो तो ऋकार को विकल्प से आकारादेश होता है। जैसे—१—**पिता**=पिआ, २- **जामाता**=जामाया, ३—**भ्राता**=भाया, ४—**कर्ता**=कत्ता (करने वाला) जहां पर प्रस्तुत सूत्र से आकारादेश नहीं हुआ, वहां पर उक्त शब्दों के —१—**पिअरो**, २—**जामायरो**, ३—**भायरो**, ४—**कत्तारो** ये रूप बनते हैं।

५३८—**राजन्** शब्द के नकार का लोप हो जाने पर अन्त्य वर्ण को विकल्प से आकार होता है, सिप्रत्यय परे होने पर। जैसे—१—**राजा**=राया (नरेश), २—**हे राजन्**=हे राया ! (हे नृप !) जहां आकारादेश नहीं हुआ वहां पर ५४५ सूत्र से 'अन्' इस अंश के स्थान में 'आण' यह आदेश होने पर—**राजा**=रायाणो, यह रूप बनता है। शौरसेनी-भाषा में—"**हे राजन् !**" इस के **हे रायं !**, **हे राया !**, ये दो रूप बनते हैं। इसी प्रकार—**हे आत्मन् !**=हे अप्पं !, हे अप्प ! (आत्मन् शब्द का सम्बोधन) ये रूप भी शौरसेनी भाषा के ही समझने चाहियें।

५३९—**राजन्** शब्द से परे यदि जस्, शस्, ङसि और ङस् ये प्रत्यय पड़े हों तो इन के स्थान में विकल्प से '**णो**' यह आदेश होता है। **जस् प्रत्यय का उदाहरण, जैसे—राजानः तिष्ठन्ति**=रायाणो चिट्ठन्ति (राजा लोग विराजमान हैं), जहां पर 'णो' यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर—**राया** यह रूप बनता है। **शस् प्रत्यय का उदाहरण**, जैसे—**राज्ञः पश्य**=रायाणो पेच्छ (राजा लोगों को देखो) 'णो' इस आदेश के अभाव में—**राया, राए**, ये रूप होते हैं। **ङसि प्रत्यय का उदाहरण** जैसे—**राज्ञः आगतः**=राइणो, रण्णो आगओ (राजा से आया हुआ) **अथवा**—रायाओ, रायाउ, रायाहि, रायाहिन्तो, राया। **ङस् प्रत्यय का उदाहरण** जैसे—**राज्ञो धनम्**=राइणो, रण्णो धणं (राजा का धन) दूसरे पक्ष में अर्थात् जहां 'णो' यह आदेश नहीं होता वहां '**रायस्स**' यह रूप बनता है।

५४०—**राजन्** शब्द से परे पड़े टा-प्रत्यय के स्थान में 'णा' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**राज्ञा**=राइणा, रण्णा (राजा ने) जहां पर 'णा' यह आदेश नहीं हुआ वहां पर—**राज्ञा कृतम्**=राएण कयं (राजा द्वारा किया हुआ) यह रूप बनता है।

५४१—**राजन्** शब्द-सम्बन्धी जकार के स्थान में विकल्प से इकार होता है, णो, णा और ङि के परे रहने पर। जैसे—१—**राजानः तिष्ठन्ति**, २—**राज्ञः पश्य**, ३—**राज्ञः आगतः**, ४—**राज्ञो धनं वा**=राइणो चिट्ठन्ति, पेच्छ, आगओ, धणं वा (१—राजालोग विद्यमान है, २—राजालोगों को देखो, ३—राजा से आया हुआ, अथवा ४—राजा का धन) ५—**राज्ञा कृतम्**=राइणा कयं (राजा ने किया), ६- **राज्ञि**=राइम्मि (राजा पर) यहां पर विकल्प से ज़कार को इकार किया गया है। जहां इकारादेश नहीं हुआ, वहां पर –१—**राजानः**=रायाणो (प्रथमा का बहुवचन), २—**राज्ञः**=रण्णो (द्वितीया का बहुवचन), ३—**राज्ञा**=रायणा, राएण (टा-प्रत्यय का उदाहरण), ४—**राज्ञि**=रायम्मि (ङि-प्रत्यय का उदाहरण) ये रूप बनते हैं।

५४२ - **राजन्** शब्द-सम्बन्धी जकार के स्थान में **अम्** और **आम्** इन प्रत्ययों के साथ 'इणं' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे - १ – **राजानं पश्य**=राइणं पेच्छ (राजा को देखो), २—**राज्ञां धनम्**=राइणं धणं (राजा लोगों का धन) जहां पर 'इणं' यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर **राजानम्**=रायं, तथा **राज्ञाम्**=राईणं ये रूप बनते हैं।

५४३—**राजन्** शब्द सम्बन्धी जकार के स्थान में विकल्प से ईकार होता है, भिस् आदि प्रत्ययों के परे रहने पर। जैसे—१—**राजभिः**=राईहि (भिस् प्रत्यय का उदाहरण) जहां ईकारादेश नहीं हुआ, वहां पर **रायाणेहि** यह रूप बन जाता है। २—**राजभ्यः**=राईहि, राईहिन्तो, राईसुन्तो (भ्यस् प्रत्यय के उदाहरण), ३—**राज्ञाम्**=राइणं (आम् प्रत्यय का उदाहरण), ४—**राजसु**=राईसु (सुप् प्रत्यय का उदाहरण), यहां पर जकार के स्थान में ईकारादेश विकल्प से किया गया है।

५४४—**राजन्** शब्द सम्बन्धी '**आज**' इस अंश के स्थान में विकल्प से '**अण्**' यह आदेश होता है, णा और णो इन आदेशों को आपन्न-प्राप्त टा या ङसि और ङस् इन प्रत्ययों के परे रहने पर। जैसे—१—**राज्ञा कृतम्**=रण्णा राइणा कयं (राजा से किया हुआ), २—**राज्ञः आगतः, धनं वा**= रण्णो राइणो आगओ धणं वा (राजा से आया हुआ अथवा राजा का धन), यहां पर 'अण्' यह आदेश विकल्प से किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि "**टा, ङसि और ङस् इन प्रत्ययों के परे रहने पर**" यह कहने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि १—**राजानः तिष्ठन्ति, राज्ञः पश्य वा**= रायाणो चिट्ठन्ति पेच्छ वा (राजा लोग विराजमान हैं, अथवा राजाओं को देखो), यहां पर जस् और शस् के स्थान में आज इस अवयव को होने वाले 'अण्' इस आदेश के निषेधार्थ प्रस्तुत सूत्र में 'टा' आदि प्रत्ययों का ग्रहण किया गया है। इसके अतिरिक्त, सूत्रपठित "**सणाणोषु** (णा और णो इन आदेशों को प्राप्त)" इस पद के कारण—१—**राज्ञा**=राएण (टा का उदाहरण), २—**राज्ञः**=रायाओ (ङसि का उदाहरण), ३—**राज्ञः**=रायस्स (ङस् का उदाहरण), यहां पर टा आदि प्रत्यय होने पर भी 'अण्' यह आदेश नहीं हो सका, क्योंकि यहां पर आदेशभूत णा और णो का अभाव है।

५४५—**पुल्लिङ्ग** में वर्तमान (विद्यमान) अन्नन्त (जिस के अन्त में अन् है) शब्द के 'अन्' इस अंश के स्थान में '**आण**' यह आदेश विकल्प से होता है। जहां पर इस आदेश की प्राप्ति नहीं होती, वहां पर यथादर्शन (प्रयोग के अनुसार) राजन् शब्द के समान ही कार्य किया जाता है। '**आण**' यह आदेश हो जाने पर (अकारान्त हो जाने से) ४९१ आदि सूत्रों की प्रवृत्ति होती है। दूसरे पक्ष में (आण इस आदेश के अभाव में) राजन् शब्द के समान ५३८, ५३९, ५१३ तथा ५४२ इन सूत्रों द्वारा कार्य किया जाता है। जैसे—१—**आत्मा**=अप्पाणो (सि), २—**आत्मानः**=अप्पाणा (जस्), ३—**आत्मानम्** =अप्पाणं (अम्), ४—**आत्मनः**=अप्पाणे (शस्), ५—**आत्मना**=अप्पाणेण (टा), ६—**आत्मभिः**= अप्पाणेहि (भिस् प्रत्यय), ७—**आत्मनः**=अप्पाणाओ (ङसि प्रत्यय), ८—**आत्मभ्यः**=अप्पाणासुन्तो (भ्यस् प्रत्यय), ९—**आत्मनः**=अप्पाणस्स (ङस्), १०—**आत्मनाम्**=अप्पाणाण (आम्), ११—**आत्मनि** =अप्पाणम्मि (ङि), १२—**आत्मसु**=अप्पाणेसु (सुप्), १३—**आत्मकृतम्**=अप्पाण-कयं (खुद से किया हुआ) जहां पर आण यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर राजन् शब्द की तरह रूप बनेंगे। जैसे—१—**आत्मा**=अप्पा, अप्पो (सि), २—**हे आत्मन्!**=हे अप्पा!, हे अप्प! (सम्बोधन), ३—**आत्मनः तिष्ठन्ति** =अप्पाणो चिट्ठन्ति (ये स्वयं विद्यमान हैं), ४—**आत्मनः पश्य**=अप्पाणो पेच्छ (सब अपने आप को देखें), ५—**आत्मना**=अप्पणा (टा), ६—**आत्मभिः**=अप्पेहिं (भिस्), ७—**आत्मनः**=अप्पाणो (णो आदेश के अभाव में) **अप्पाओ, अप्पाउ, अप्पाहि, अप्पाहिन्तो, अप्पा** (ङसि), ८—**आत्मभ्यः**=अप्पा-सुन्तो (भ्यस्), ९—**आत्मनः धनम्**=अप्पणो धणं (स्वयं का धन), १०—**आत्मनाम्**=अप्पाणं (आम्), ११—**आत्मनि**=अप्पे (ङि), १२—**आत्मसु**=अप्पेसु (सुप्) ये सब रूप राजन् शब्द की भांति समझने चाहिएं। राजन शब्द के रूप इस प्रकार हैं। जैसे—१—**राजा**=रायाणो (सि प्रत्यय का उदाहरण),

२—**राजानः**=रायाणा (जस्), ३—**राजानम्**=रायाणं (अम्), ४—**राज्ञः**=रायाणे (शस्), ५—**राज्ञा**=रायाणेण (टा), ६—**राजभिः**=रायाणेहिं (भिस्), ७—**राजभ्यः**=रायाणाहिन्तो (भ्यस्), ८—**राज्ञः**=रायाणस्स (ङस्), ९—**राज्ञाम्**=रायाणाणं (आम्), १०—**राज्ञि**=रायाणम्मि (ङि), ११—**राजसु**=रायाणेसु (सुप्) जहां प्रस्तुत सूत्र से 'अन्' के स्थान में 'आण' यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर—**राजा**=राया (सि), इत्यादि रूप बन जाते हैं। इसी प्रकार—१—**युवा**=जुवाणो (युवक), २—**युव-जनः**=जुवाण-जणो (युवक मनुष्य), जहां पर प्रस्तुत सूत्र से 'अन्' को 'आण' यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर—**युवन्**=जुआ (सि) यह रूप बनता है। ३—**ब्रह्मा**=बम्हाणो, 'आण' इस आदेश के अभाव में **बम्हा** (ब्रह्मा, देवविशेष), ४—**अध्वा**=अद्धाणो, अद्धा (मार्ग), ५—**उक्षा**=उच्छाणो, उच्छा (बैल), ६—**ग्रावा**=गावाणो, गावा (पत्थर, चट्टान), ७—**पूषा**=पूसाणो, पूसा (सूर्य), ८—**तक्षा**=तक्खाणो, तक्खा (तरखान, बढ़ई), ९—**मूर्धा**=मुद्धाणो, मुद्धा (मस्तक), १०—**श्वा**=साणो, सा (कुत्ता), ११—**सुकर्मणः पश्य**=सुकम्माणे पेच्छ (अच्छे कर्म करने वालों को देखो), १२—**पश्यति कथं सः सुकर्मणः** ?=निएइ कह सो सुकम्माणे? (सुकर्मा व्यक्तियों को वह कैसे देखता है ?) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से अन् इस अंश को 'आण' यह आदेश किया गया है। ध्यान रहे कि 'आण' यह आदेश केवल पुल्लिङ्ग में ही होता है, स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग में नहीं। इसीलिए—**शर्म**=सम्मं (सुख) यहां नपुंसकलिङ्गी होने के कारण शर्मन् शब्दगत '**अन्**' के स्थान में 'आण' यह आदेश नहीं हो सका।

५४६—**आत्मन्** शब्द से परे टा-प्रत्यय के स्थान में **णिआ** और **णइआ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**आत्मना प्रावृषि उपगतायाम्**=अप्पणिआ पाउसे उवगयम्मि (वर्षा ऋतु के आने पर अपने द्वारा), २—**आत्मना च वितर्दिः खानिता**=अप्पणिया य विअड्डी खाणिआ (वितर्दि-वेदिका अपने द्वारा खुदवाई गई है), ३—**आत्मना**=अप्पणइआ (अपने से), जहां पर ये दोनों आदेश नहीं हुए वहां पर **अप्पाणेण** ऐसा रूप बनता है।

५४७—**अकारान्त सर्व** आदि शब्दों के अकार से परे यदि जस् प्रत्यय हो तो उसके स्थान में डित् (जिस में डकार इत् हो) 'ए' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**सर्वे**=सव्वे (सर्व शब्द का बहुवचन), २—**अन्ये**=अन्ने (अन्यद् शब्द का बहुवचन), ३—**ये**=जे (जो), ४—**ते**=ते (वे), ५—**के**=के (कौन), ६—**एके**=एक्के (कई एक), ७—**कतरे**=कयरे (कौन से), ८—**इतरे**=इयरे (इतर-अन्य), ९—**एते**=एए (ये) यहां पर जस् प्रत्यय के स्थान में 'डे' (ए) यह आदेश किया गया है। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्र में "अतः (अकार से आगे)" इस पद के पढ़ने का क्या उद्देश्य है ? उत्तर में निवेदन है कि **सर्वाः ऋद्धयः**=सव्वाओ रिद्धीओ (समस्त ऋद्धियां) आदि आकारान्त शब्दों से जस् के स्थान में 'डे' यह आदेश न हो जाए, इसलिए "**अतः**" इस पद का ग्रहण किया गया है। सर्वा शब्द अकारान्त नहीं है, अतः यहां पर '**डे**' यह आदेश नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त, प्रस्तुत सूत्र में पठित **जसः** (जस् के स्थान में होता है) इस पद के कारण—**सर्वस्य**=सव्वस्स (सब का) यह रूप बनता है। यहां ङस् प्रत्यय के स्थान में '**डे**' यह आदेश नहीं किया जा सका।

५४८—सर्व आदि शब्दों के अकार से आगे यदि ङि-प्रत्यय हो तो उस के स्थान में **स्सि, म्मि** और **त्थ** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—१—**सर्वस्मिन्**=सव्वस्सि, सव्वम्मि, सव्वत्थ (सब में), २—**अन्यस्मिन्**=अन्नस्सि, अन्नम्मि, अन्नत्थ (दूसरे में) इसी प्रकार सर्वनामों के अन्य सभी शब्दों के ङि-प्रत्यय के स्थान में भी ये तीनों आदेश कर लेने चाहिएं। ध्यान रहे कि ये तीनों आदेश अकार से परे

ही हो सकते हैं, अन्यत्र नहीं। जैसे—**अमुष्मिन्**=अमुम्मि (इस में) यहां पर अकार से परे न होने के कारण ङि प्रत्यय के स्थान में 'स्सिं' आदि ये तीन आदेश नहीं हो सके।

५४९—इदम् और **एतद्** इन शब्दों को छोड़कर शेष अकारान्त सर्व आदि शब्दों के अकार से परे यदि ङि-प्रत्यय पड़ा हो तो उसके स्थान में **'हिं'** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**१—सर्वस्मिन्**=सव्वहिं (सब में), **२—अन्यस्मिन्**=अन्नहिं (दूसरे में), **३—कस्मिन्**=कहिं (किस में), **४—यस्मिन्**=जहिं (जिस में), **५—तस्मिन्**=तहिं (उस में) यहां पर ङि-प्रत्यय के स्थान में विकल्प से **'हिं'** यह आदेश किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में सर्वादि अदन्त शब्दों से ही ङि-प्रत्यय को हिमादेश का विधान किया गया है, इससे वह स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि यह आदेश केवल पुल्लिङ्ग में ही हो सकता है आकारान्त स्त्रीलिङ्ग सर्वादि शब्दों से नहीं हो सकता, परन्तु **बहुल** के अधिकार से **स्त्रीलिङ्ग में भी किम्, यद्** और **तद्** इन शब्दों से परे ङि-प्रत्यय के स्थान में **'हिं'** यह आदेश हो जाता है, जैसे—**१—कस्याम्**=काहिं (किस स्त्री में), **२—यस्याम्**=जाहिं (जिस स्त्री पर), **३—तस्याम्**=ताहिं (उस नारी पर) यहां स्त्रीलिङ्गी किम् आदि शब्दों के ङि-प्रत्यय को **'हिं'** यह आदेश किया गया है। **बहुलाधिकार** ग्रहण करने के कारण ही कि, यद् और तद् इन शब्दों को ५२२ सूत्र से 'ङी' प्रत्यय नहीं हो पाता। भाव यह है कि ५२२ सूत्र से किम् आदि स्त्रीलिङ्ग शब्दों से वैकल्पिक ङी-प्रत्यय हो जाना चाहिए था, किन्तु बहुलाधिकार के कारण जहां स्त्रीलिङ्ग में ङिप्रत्यय को हिमादेश किया जाता है, वहां पर बहुलाधिकार से ही ५२२ सूत्र से ङीप्रत्यय भी नहीं होता। जहां पर प्रस्तुत सूत्र से **"हिं"** यह आदेश नहीं हो सका वहां पर—**सर्वस्मिन्**=सव्वस्सिं, सव्वम्मि और सव्वत्थ इत्यादि रूप बन जाते हैं। स्त्रीलिङ्गी शब्दों से जहां पर 'ङि' प्रत्यय को 'हिं' यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर—**१—कस्याम्**=काए, कीए **२—यस्याम्**=जाए जीए, **३—तस्याम्**=ताए, तीए ऐसे रूप बनते हैं। यहां पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि इदम् और एतद् इन शब्दों को क्यों छोड़ा गया? उत्तर में निवेदन है कि—**१—अस्मिन्**=इमस्सिं (इस में), **२—एतस्मिन्**=एअस्सिं (इस में) इन रूपों में 'हिं' यह आदेश न हो जाए, इसलिए सूत्रकार ने उन दोनों शब्दों का निषेध कर दिया है।

५५०—अकारान्त सर्व आदि शब्दों के अकार से परे यदि आम्-प्रत्यय पड़ा हो तो उसके स्थान में डेसिं (एसिं) यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**१—सर्वेषाम्**=सव्वेसिं (सब जनों को), **२—अन्येषाम्**=अन्नेसिं (दूसरों का), **३—अपरेषाम्**=अवरेसिं (दूसरों का), **४—एषाम्**=इमेसिं (इन का), **५—एतेषाम्**=एएसिं (इन का), **६—येषाम्**=जेसिं (जिन का), **७—तेषाम्**=तेसिं (उन का), **८—केषाम्**=केसिं (किन का) जहां यह आदेश नहीं होता, वहां पर उक्त शब्दों के—**१—सव्वाण, २—अन्नाण, ३—अवराण, ४—इमाण, ५—एआण, ६—जाण, ७—ताण, ८—काण** ये रूप बनते हैं। यहां पर विकल्प से **'डेसिं'** यह आदेश किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण स्त्रीलिङ्ग में 'आम्-प्रत्यय' के स्थान में भी 'डेसिं' यह आदेश हो जाता है। जैसे—**१—सर्वासाम्**=सव्वेसिं, इसी प्रकार **२—अन्यासाम्**=अन्नेसिं, **३—तस्याम्**=तेसिं इन रूपों की कल्पना भी कर लेनी चाहिए।

५५१—किम् और **तद्** इन शब्दों से परे यदि आम्-प्रत्यय हो तो उसके स्थान में **डास** (आस) यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**१—केषाम्**=कास (किन का), **२—तेषाम्**=तास (उन का) जहां पर यह आदेश नहीं हो सका वहां पर इन दोनों शब्दों के **केसिं** तथा **तेसिं** ये रूप बनते हैं।

५५२—किम्, यद् और **तद्** इस शब्दों से परे यदि ङस्-प्रत्यय हो तो उसके स्थान में डास

(आस) यह आदेश विकल्प से होता है। कहा जा चुका है कि ४९९ सूत्र से ङस् प्रत्यय के स्थान में 'स्स' यह आदेश होता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र उक्त सूत्र का अपवाद-सूत्र समझना चाहिए। ध्यान रहे कि जहां प्रस्तुत सूत्र से कार्य नहीं किया जायगा, वहां पर ४९९ सूत्र से ङस् के स्थान में **'स्स'** यह आदेश होगा ही। जैसे—**१—कस्य**=कास, दूसरे पक्ष में, **कस्स** (किस का), **२—यस्य**=जास, जस्स (जिस का), **३—तस्य**=तास, तस्स (उसका) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से डास तथा ४९९ सूत्र से **'स्स'** यह आदेश किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण किम्, यद् और तद् ये आकारान्त (स्त्रीलिङ्गी) शब्द हों तो इनसे भी विकल्प से ङस् के स्थान में 'डास' यह आदेश हो जाता है। जैसे—**१—कस्याः धनम् ?**=कास धणं ? (किस का धन है ?), **२—तस्याः धनम्**=तास धणं (उसका धन है) यहां पर डास आदेश विकल्प से किया गया है। जहां यह आदेश नहीं होता वहां पर—**काए** और **ताए** ये रूप बनते हैं।

५५३—**किम्** आदि शब्द यदि **ईदन्त** (ईकारान्त) हों तो इनसे परे आए ङस्-प्रत्यय के स्थान में **स्सा** और **से** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। ५१८ सूत्र से ङस् प्रत्यय के स्थान में जो **अद्**, **आद्** **इद्** और **एद्** ये चार आदेश बतलाए गए थे, प्रस्तुत सूत्र उन का अपवाद सूत्र है, अर्थात् बाधक सूत्र है, किन्तु जहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी, वहां पर उस सूत्र से ङस् प्रत्यय के स्थान में अदादि आदेश भी हो जाएंगे। जैसे—**१—कस्याः**=किस्सा, कीसे, कीअ, कीआ, कीइ, कीए (किस स्त्री का), **२—यस्याः**=जिस्सा, जीसे, जीअ, जीआ, जीइ, जीए (जिस नारी का), **३—तस्याः**=तिस्सा, तीसे, तीअ, तीआ, तीइ, तीए (उस देवी का) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से स्सा और से ये आदेश विकल्प से विहित हैं। तथा ५१८ सूत्र से अदादि चार आदेश भी किए गए हैं।

५५४—**किम्**, **यद्** और **तद्** ये शब्द यदि कालार्थक हों तो इन से आए 'ङि' प्रत्यय के स्थान में **आहे** और **आला** ये दो डित् (जिस का डकार इत् हो) तथा **'इआ'** यह, इस प्रकार तीन आदेश विकल्प से होते हैं। यह सूत्र, ङि प्रत्यय के स्थान में **'हिं'** यह आदेश करने वाले ५४९ सूत्र का तथा **स्सिं**, **म्मि** और **त्थ** ये तीन आदेश करने वाले ५४८ सूत्र का अपवाद सूत्र है। भाव यह है कि उक्त दोनों सूत्रों से प्राप्त आदेशों को बाध कर प्रस्तुत सूत्र ने ङि के स्थान में **डाहे** (आहे) आदि तीन आदेशों का विकल्प से विधान किया है। जहां इस सूत्र की प्राप्ति नहीं होती है, वहां पर **हिं** और **स्सिं** आदि सभी आदेश हो ही जाते हैं। जैसे—**कस्मिन्**=काहे, काला, कइआ (किस में) जहां प्रस्तुत सूत्र ने कार्य नहीं किया, वहां पर—**कहिं**, **कस्सिं**, **कम्मि** और **कत्थ** ये रूप बनते हैं, **२—यस्मिन्**=जाहे, जाला, जइआ (जिस में), **३—तस्मिन्**=ताहे, ताला, तइआ (उसमें), **४—तस्मिन् जायन्ते गुणाः, यस्मिन् ते सहृदयैः गृह्यन्ते**=ताला जाअन्ति गुणा, जाला ते सहिअएहिँ घेप्पन्ति (उस समय गुण वास्तविक गुण होते हैं, जिस समय वे सहृदय पुरुषों द्वारा ग्रहण=स्वीकार किए जाते हैं) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से ङि-प्रत्यय के स्थान में डाहे आदि तीन आदेश विकल्प से किए गए हैं।

५५५—**किम्**, **यद्** और **तद्** इन शब्दों से परे यदि ङसि-प्रत्यय हो तो उस के स्थान में **'म्हा'** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**१—कस्मात्**=कम्हा (किस से), **२—यस्माद्**=जम्हा (जिस से), **३—तस्माद्**=तम्हा (उस से) जहां पर प्रस्तुत सूत्र ने कार्य नहीं किया, वहां पर उक्त शब्दों के—**काओ, जाओ और ताओ** ये रूप बनते हैं।

५५६—**तद्** शब्द से परे यदि ङसि-प्रत्यय हो तो उसके स्थान में **'डो** (ओ)' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**तस्मात्**=तो, तम्हा (उस में) यहां 'डो' यह आदेश विकल्प से किया गया है।

५५७—**किम्** शब्द से परे यदि ङसि-प्रत्यय हो तो उसके स्थान में **डिणो** (इणो) और **डीस** (ईस) ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**कस्मात्**=किणो, कीस, कम्हा (किस से) यहां डिणो आदि आदेश विकल्प से किए गए हैं।

५५८—**इदम्, एतद्, किम्, यद्** और **तद्** इन अकारान्त सर्वनाम शब्दों से परे यदि टा-प्रत्यय हो तो उसके स्थान में **डित्** (जिस में डकार इत् हो) **इणा** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**अनेन**=इमिणा, इमेण (इस ने), २—**एतेन**=एदिणा, एदेण (इस ने) ३—**केन**—किणा, केण (किस ने), ४—**येन**=जिणा, जेण (जिस ने), ५—**तेन**=तिणा, तेण (उस ने) यहां पर टा-प्रत्यय को विकल्प से 'डिणा' यह आदेश किया गया है।

५५९—**तद्** शब्द के स्थान में स्यादि विभक्तियों के परे रहने पर '**ण**' यह आदेश होता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि यह आदेश सार्वत्रिक (सब स्थानों पर होने वाला) नहीं होता किन्तु **लक्ष्य**=प्रयोग के अनुसार कहीं-कहीं पर किया जाता है। जैसे—१—**तं पश्य**=णं पेच्छ (उस को देख), २—**शोचति च तं रघुपतिः**=सोअइ अ णं रहुवई (रघुपति-राम उसकी चिन्ता करते हैं) वृत्तिकार फरमाते हैं कि '**ण**' यह आदेश स्त्रीलिङ्ग में भी किया जाता है। जैसे—**हस्तोन्नामितमुखी तां त्रिजटा**=हत्थुन्नामिअमुही णं तिअडा (हाथ में मुख उठाए हुए त्रिजटा, उसको), ३—**तेन भणितम्**=णेण भणिअं (उसने कहा), ४—**तस्मात् तेन कर-तल-स्थिता**=तो णेण कर-यल-ट्ठिआ (इसलिए उस ने हथेली पर रखी हुई), ५—**भणितं च तया**=भणिअं च णाए (और उसने कहा), ६—**तैः कृतम्**=णेहिं कयं (उन्होंने किया), ७—**ताभिः कृतम्**=णाहिं कयं (उन लड़कियों ने किया), यहां पर तद्-शब्द के स्थान में **ण** यह आदेश किया गया है।

५६०—यदि सि आदि प्रत्यय, त्र तथा तस् ये दोनों प्रत्यय आगे पड़े हों तो **किम्** शब्द के स्थान में **क** यह आदेश होता है। जैसे—१—**कः**=को (कौन), २—**के**=के (कौन हैं), ३—**कम्**=कं (किस को), ४—**कान्**=के (किन को), ५—**केन**=केण (किसने), ६—**कुत्र**=कत्थ (कहाँ पर ?), ७—**कुतः ?**=कओ, कत्तो, कदो ? (कहाँ से ?) यहां पर 'किम्' के स्थान में 'क' यह आदेश किया गया है।

५६१—यदि **सि** आदि प्रत्यय परे पड़े हों तो **इदम्** शब्द के स्थान में '**इम**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**अयम्**=इमो (यह), २—**इमे**=इमे (ये), ३—**इमम्**=इमं (इस को), ४—**इमान्**=इमे (इन को), ५—**अनेन**=इमेण (इस ने) यहां पर इदम् शब्द को **इम** यह आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि स्त्रीलिङ्ग में भी इदम् शब्द को इम यह आदेश हो जाता है। जैसे—**इयम्**=इमा (यह) यहां पर स्त्रीलिङ्ग में भी **इदम्** को '**इम**' यह आदेश किया गया है।

५६२—यदि **सिप्रत्यय** परे हो तो **इदम्** शब्द को पुल्लिङ्ग में **अयं** यह आदेश तथा स्त्रीलिङ्ग में '**इमिआ**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**अथवा अयं कृत-कार्यः**=अहवायं कय-कज्जो (अथवा यह कृतकार्य है अर्थात् इस ने कार्य सम्पूर्ण कर लिया है), २—**इयं वाणिजदुहिता**=इमिआ वाणिअ-धूआ (यह व्यापारी की पुत्री है) जहां पर प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ, वहां पर—**इमो, इमा** ये रूप बनते हैं।

५६३—यदि '**स्सि**' और '**स्स**' ये आदेश आगे पड़े हों तो **इदम् शब्द** के स्थान में विकल्प से **अद्** (**अ**) यह आदेश होता है। जैसे—१—**अस्मिन्**=अस्सि (इस में), २—**अस्य**=अस्स (इस की), जहां प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ, वहां पर ५६१ सूत्र से इदम् शब्द को '**इम**' यह आदेश हो जाने पर—

इमस्सि और **इमस्स** ये रूप बनते हैं। यदि '**स्सि**' और '**स्स**' ये दोनों आदेश आगे न पड़े हों, तब भी **बहुलाधिकार** के कारण इदम् शब्द को '**अद्**' यह आदेश हो जाता है। जैसे—**१—एभिः**=एहि (इन्होंने), २—**एषु**=एसु (इन पर), **३—आभिः**=आहि (इन्हों ने) यहां पर भी इदम् शब्द के स्थान में अद् यह आदेश किया गया है।

५६४—**इदम्** शब्द के आदेशभूत **इम** से परे यदि ङि-प्रत्यय पड़ा हो तो मकार सहित उसको 'ह' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**अस्मिन्**=इह, जहां पर प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य नहीं किया, वहां पर **इमस्सि, इमम्मि** (इस में) ये रूप बनते हैं।

५६५—**इदम्** शब्द से परे यदि ङि-प्रत्यय पड़ा हो तो उसको ५४८ सूत्र से प्राप्त होने वाला '**त्थ**' यह आदेश नहीं होता। जैसे—**अस्मिन्**—इह, इमस्सि, इमम्मि (इस में) यहां पर 'ङि' प्रत्यय के स्थान में '**त्थ**' यह आदेश नहीं किया गया।

५६६—**इदम्** शब्द से परे यदि अम्, शस्, टा और भिस् ये प्रत्यय पड़े हों तो उन को '**ण**' यह आदेश होता है। जैसे—**१—इमं पश्य**=णं पेच्छ (इस को देखो), २—**इमान् पश्य**=णे पेच्छ (इन को देखो), ३—**अनेन**, ४—**एभिः कृतम्**=णेण, णेहि कयं (इसने या इन्होंने किया) जहां पर 'ण' यह आदेश नहीं हो सका, वहां पर क्रमशः १—**इमं**, २—**इमे**, ३—**इमेण** और ४—**इमेहि** ये रूप बनते हैं।

५६७—**इदम्** शब्द से आगे यदि अम्-प्रत्यय हो तो अम्-प्रत्यय के साथ उसे '**इणं**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**१—इमं पश्य**=इणं पेच्छ (इस को देखो) जहां पर इणं यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर—**इमं** यह रूप बनता है।

५६८—**नपुंसकलिङ्ग** में वर्तमान (विद्यमान) इदम् शब्द के स्थान में सि और अम् इन प्रत्ययों के साथ **इदं, इणमो, इणं** ये नित्य आदेश होते हैं। जैसे—१—**इदं धनं तिष्ठति**, २—**इदं धनं पश्य वा**=इदं, इणमो, इणं धणं चिट्ठइ, पेच्छ वा (यह धन है अथवा इस धन को देखो) यहां पर इदम् शब्द को '**इदम्**' आदि तीन आदेश किए गए हैं।

५६९—**नपुंसकलिङ्ग** में वर्तमान किम् शब्द के स्थान में सि और अम् इन प्रत्ययों के साथ **किं** यह आदेश होता है। जैसे—१—**किं कुलं तव** ?=किं कुलं तुह ? (तेरा कुल क्या है ?), २—**किं किं ते प्रतिभाति** ?=किं किं ते पडिहाइ ? (तुझे क्या क्या अच्छा लगता है ?) यहां पर **किम्** शब्द को सि और अम् प्रत्यय के साथ **किं** यह आदेश किया गया है।

५७०—**इदम्, तद् और एतद्** इन शब्दों के स्थान में ङस् और आम् इन प्रत्ययों के साथ *यथासंख्य=क्रमशः से और **सिं** ये आदेश विकल्प से होते हैं। **इदम् शब्द के उदाहरण**, जैसे—१—**अस्य शीलम्**=से सीलं (इस का स्वभाव),२—**अस्य गुणाः**=से गुणा (इस के गुण),३—**एषामुत्साहः**=सिं उच्छाहो (इन का उत्साह), **तद् शब्द के उदाहरण**—१—**तस्य(तस्याः वा) शीलम्**=से सीलं (उस का या उस लड़की का स्वभाव), **तेषां तासां वा गुणाः**=सिं गुणा (उन लड़कों या लड़कियों के गुण), **एतद् शब्द के उदाहरण**, जैसे—१—**एतस्य अहितम्**=से अहिअं (उस का अहित-नुकसान), २—**एतेषां गुणाः**=सिं गुणा (इन के गुण), ३—**एतेषां शीलम्**=सिं सीलं (इन का स्वभाव) जहां पर प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ, वहां पर—१—**अस्य**=इमस्स, २—**एषाम्**=इमेसिं, इमाण, ३—**तस्य**—तस्स,

*यथासंख्य का अर्थ है—ङस्-सहित इदम् आदि शब्दों के स्थान में 'से' तथा आम्-सहित इदम् आदि शब्दों को 'सिं' यह आदेश होता है।

४—**तेषाम्**=तेसिं ताण, ५—**एतस्य**=एअस्स, ६—**एतेषाम्**=एएसिं एआण, ये रूप बनते हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि कोई आचार्य "**इदम्** और **तद्** इन शब्दों के स्थान में अम् प्रत्यय के साथ भी '**से**' यह आदेश होता है।" ऐसा स्वीकार करता है।

५७१—**एतद्** शब्द से परे यदि **ङसि**-प्रत्यय हो तो उसके स्थान में **त्तो** और **त्ताहे** ये **दो** आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**एतस्मात्**=एत्तो एत्ताहे जहां पर प्रस्तुत सूत्र ने कार्य नहीं किया, वहां पर—**एआओ, एआउ, एआहि, एआहिन्तो, एआ** (इस से) ये रूप बनते हैं।

५७२—**एतद्** शब्द से परे यदि '**त्थ**' पड़ा हो तथा सूत्रोक्त चकार से संसूचित **त्तो** और **त्ताहे** ये दोनों आदेश आगे पड़े हों तो तकार का लोप हो जाता है। जैसे—**एतस्मिन्**=एत्थ, एत्तो, एत्ताहे (इस में) यहां तकार का लोप किया गया है।

५७३—**एतद्** शब्द के एकार से परे यदि ङि-प्रत्यय का आदेशभूत '**म्मि**' पड़ा हो तो उसके स्थान में **अद्** (अ) और **ईद्** (ई) ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**एतस्मिन्**=अयम्मि, ईयम्मि जहां ये आदेश नहीं हुए वहां पर **एअम्मि** (इस में) यह रूप बनता है।

५७४—**एतद्** शब्द के स्थान में सिप्रत्यय के साथ **एस, इणं** और **इणमो** ये आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**सर्वस्यापि एषा गतिः**=सव्वस्स वि एस गई (सभी व्यक्तियों का यह हाल होता है), २—**सर्वेषामपि पार्थिवानामेषा मही**=सव्वाण वि पत्थिवाण एस मही (सभी राजाओं की यह पृथ्वी है), ३—**एष स्वभाव एव शशधरस्य**=एस सहाओ च्चिअ ससहरस्स (चन्द्रमा का यह स्वाभाव ही है), ४—**एतद् शिरः**=एस इणं इणमो सिरं (यह सर है) जहां पर 'एस' आदि आदेश नहीं हुए वहां पर नपुंसक-लिङ्ग में एतद्=**एअं**, स्त्रीलिङ्ग में—**एसा** पुल्लिङ्ग में **एसो** (यह) यह रूप बनता है।

५७५—**अक्लीब** (नपुंसकलिङ्ग को छोड़ कर पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग) में **तद्** और **एतद्** शब्द से परे यदि सिप्रत्यय हो तो उस के तकार को **सकार** हो जाता है। जैसे—१—**सः पुरुषः**=सो पुरिसो (वह पुरुष है), २—**सा महिला**=सा महिला (वह नारी है), ३—**एष प्रियः**=एसो पिओ (यह प्रीतम है), ४—**एषा मुग्धा**=एसा मुद्धा (यह मुग्धा-मोहयुक्त स्त्री है) यहां पर तकार को सकार किया गया है। ध्यान रहे कि यह सकारादेश सिप्रत्यय परे होने पर ही होता है, अन्यत्र नहीं। जैसे—१—**ते एते धन्याः**=ते एए धन्ना (वे ये धन्य हैं), २—**ताः महिलाः एताः**=ताओ एआओ महिलाओ (वे ये स्त्रियां हैं) यहां पर सि-प्रत्यय नहीं था, फलतः प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य नहीं किया। यहाँ पर प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि सूत्रकार ने "**अक्लीबे** (नपुंसकलिङ्ग को छोड़ कर)" यह पद क्यों पढ़ा? इसका क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि—**तद् एतद् वनम्**=तं एअं वणं (वह यह वन है) ऐसे नपुंसकलिङ्गी तद् और एतद् शब्दों के तकार को कहीं सकारादेश न हो जाए, इस उद्देश्य से "**अक्लीबे**" इस पद का उल्लेख किया गया है।

५७६—यदि सिप्रत्यय परे पड़ा हो तो **अदस्** शब्द के अकार को विकल्प से '**ह**' यह आदेश हो जाता है। हकारादेश हो जाने पर ४९१ सूत्र से सिप्रत्यय के स्थान में "**डो (ओ)**" यह **आदेश**, १११९ सूत्र द्वारा संस्कृत-वद् अतिदेश (उस के समान कार्य करने) से, **सिद्धहेम-शब्दानुशासन** के २।४।१८। सूत्र से **आप्-(आ)-प्रत्यय**, तथा नपुंसकलिङ्ग में ५१४ सूत्र से होने वाला सि-प्रत्यय के स्थान में **मकारादेश** नहीं होता है। भाव यह है कि अदस् शब्द के दकार को जब हकारादेश हो जाता है, तदनन्तर सिप्रत्यय को **डो** आदि **आदेशकार्य** नहीं हो पाते हैं। जैसे—१—**असौ पुरुषः**=अह पुरिसो (वह आदमी

है), २—**असौ महिला**=अह महिला (वह नारी है), ३—**अदः वनम्**=अह वणं (यह वन है), ४—**असौ मोहः पर-गुण-लघुकायाः**=अह मोहो पर-गुण-लहुअयाइ (दूसरों के गुणों से लघुक-नगण्य बनी नारी का वह मोह है), ५—**असौ अस्मान् हृदयेन हसति मारुततनयः**=अह ऐ हिअएण हसइ मारुय-तणओ (वह पवन-पुत्र हम्हें हृदय से हंसता है), ६—**असौ कमलमुखी**=अह कमलमुही (वह कमल के समान मुख वाली) यहां पर अदस् शब्द के दकार को विकल्प से हकारादेश किया गया है। जहां पर इस सूत्र से हकारादेश नहीं हुआ, वहां पर **उत्तर (अगले)** ५७७ सूत्र से दकार को '**मु**' यह आदेश हो जाने पर—**अमू पुरिसो, अमू महिला, अमुं वणं** ये रूप बन जाते हैं।

५७७—यदि **सि** आदि प्रत्यय परे हों तो **अदस्** शब्द सम्बन्धी दकार के स्थान में '**मु**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**असौ पुरुषः**=अमू पुरिसो (वह पुरुष),२—**अमी पुरुषाः**=अमुणो पुरिसा (वे पुरुष हैं), ३—**अदः वनम्**=अमुं वणं (यह वन है), ४—**अमूनि वनानि**=अमूइं वणाइं, अमूणि वणाणि (वे वन हैं), ५—**असौ माला**=अमू माला (वह एक माला है), ६—**अमूः माला**=अमूउ, अमूओ मालाओ (वे अनेक मालाएं हैं), ७—**अमुना**=अमुणा (उसने), ८—**अमीभिः**=अमूहिं (उन्होंने), **ङसि प्रत्यय के उदाहरण**—९—**अमुष्मात्**=अमूओ, अमूउ, अमूहिन्तो (उस से), **भ्यस् प्रत्यय के उदाहरण**—१०—**अमीभ्यः**=अमूहिन्तो अमूसुन्तो (इन से), **ङस् प्रत्यय के उदाहरण—११—अमुष्य**=अमुणो, अमुस्स (इस का), **आम् प्रत्यय का उदाहरण—१२—अमीषाम्**=अमूण (इन का), **ङिप्रत्यय का उदाहरण—१३—अमुष्मिन्**=अमुम्मि (इस में), **सुप् प्रत्यय का उदाहरण—१४—अमीषु**=अमूसु (इन में) यहां पर अदस् शब्द के दकार को 'मु' यह आदेश किया गया है।

५७८—**अदस्** शब्द के अन्त्य व्यञ्जन का लोप हो जाने पर शेष सस्वर-दकारान्त (जिस के अन्त में स्वरसहित दकार है) अद इस अंश के स्थान में **अय** और **इअ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं, '**म्मि**' आदेशभूत ङि-प्रत्यय के परे रहने पर। जैसे—१—**अमुष्मिन्**=अयम्मि, इअम्मि, यकारश्रुति होने पर इयम्मि (इस में) जहां प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य नहीं किया, वहां पर **अमुम्मि** यह रूप बनता है।

★ अथ स्यादि-विधिः [ग] ★

५७९—युष्मदस्तं तुं तुवं तुह तुमं सिना। ८। ३। ९०। युष्मदः सिना सह तं तुं तुवं तुह तुमं इत्येते पञ्चादेशा भवन्ति। तं तुं तुवं तुह तुमं दिट्ठो।

५८०—भे तुब्भे तुज्झ तुम्ह तुय्हे उय्हे जसा। ८। ३। ९१। युष्मदो जसा सह भे तुब्भे तुज्झ तुम्ह तुय्हे उय्हे इत्येते षडादेशा भवन्ति। भे तुब्भे तुज्झ तुम्ह तुय्हे उय्हे चिट्ठह। ब्भो म्ह-ज्झौ वा (३. १०४) इति वचनात् तुम्हे तुज्झे। एवं चाष्टरूपाणि।

५८१—तं तुं तुमं तुवं तुह तुमे तुए अमा। ८। ३। ९२। युष्मदोऽमा सह एते सप्तादेशा भवन्ति। तं तुं तुमं तुवं तुह तुमे तुए वन्दामि।

५८२—वो तुज्झ तुब्भे तुय्हे उय्हे भे शसा। ८। ३। ९३। युष्मदः शसा सह एते षडादेशा भवन्ति। वो तुज्झ तुब्भे। ब्भो म्हज्झौ वेति वचनात् तुम्हे तुज्झे तुय्हे उय्हे भे पेच्छामि।

५८३—भे दि दे ते तइ तए तुमं तुमइ तुमए तुमे तुमाइ टा । ८ । ३ । ९४ । युष्मदष्टा इत्यनेन सह एते एकादशादेशा भवन्ति । भे दि दे ते तइ तए तुमं तुमइ तुमए तुमे तुमाइ जम्पिग्रं ।

५८४—भे तुब्भेहिं उज्झेहिं उम्हेहिं तुय्हेहिं उय्हेहिं भिसा । ८ । ३ । ९५ । युष्मदो भिसा सह एते षडादेशा भवन्ति । भे तुब्भेहिं । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्हेहिं तुज्झेहिं उज्झेहिं उम्हेहिं तुय्हेहिं उय्हेहिं भुत्तं । एवं चाष्टरूपाणि ।

५८५—तइ-तुव-तुम-तुह-तुब्भा ङसौ । ८ । ३ । ९६ । युष्मदो ङसौ पञ्चम्येकवचने परत एते पञ्चादेशा भवन्ति । ङसेस्तु त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो-लुको यथाप्राप्तमेव । तइत्तो तुवत्तो तुमत्तो तुहत्तो तुब्भत्तो । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्हत्तो तुज्झत्तो । एवं दो-दु-हिन्तो-लुक्ष्वप्युदाहार्यम् । तत्तो इति तु त्वत्त इत्यस्य वलोपे सति ।

५८६—तुय्ह तुब्भ तहिन्तो ङसिना । ८ । ३ । ९७ । युष्मदो ङसिना सहितस्य एते त्रय आदेशा भवन्ति । तुय्ह तुब्भ तहिन्तो आगओ । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्ह तुज्झ । एवं च पंच रूपाणि ।

५८७—तुब्भ-तुय्होय्होम्हा भ्यसि । ८ । ३ । ९८ । युष्मदो भ्यसि परतः एते चत्वार आदेशा भवन्ति । भ्यसस्तु यथा—प्राप्तमेव । तुब्भत्तो तुय्हत्तो उय्हत्तो उम्हत्तो । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्हत्तो तुज्झत्तो । एवं दो-दु-हि-हिन्तो-सुन्तोष्वप्युदाहार्यम् ।

५८८—तइ-तु-ते-तुम्हं-तुह-तुहं-तुव-तुम-तुमे-तुमो-तुमाइ-दि-दे-इ-ए-तुब्भोब्भोय्हा ङसा। ८ । ३ । ९९ । युष्मदो ङसा षष्ठ्येकवचनेन सहितस्य एते अष्टादशादेशा भवन्ति । तइ, तु, ते, तुम्हं, तुह, तुहं, तुव, तुम, तुमे, तुमो, तुमाइ, दि, दे, इ, ए, तुब्भ, उब्भ, उय्ह धणं । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्ह तुज्झ उम्ह उज्झ । एवं च द्वाविंशती रूपाणि ।

५८९—तु वो भे तुब्भ तुब्भं तुब्भाण तुवाण तुमाण तुहाण उम्हाण आमा । ८ । ३ । । १०० । युष्मद आमा सहितस्य एते आदेशा भवन्ति । तु वो भे तुब्भ तुब्भं तुब्भाण तुवाण तुमाण तुहाण उम्हाण । क्त्वा-स्यादेर्णस्वोर्वा [१. २७] इत्यनुस्वारे-तुब्भाणं तुवाणं तुमाणं तुहाणं उम्हाणं । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्ह तुज्झ तुम्हं तुज्झं तुम्हाण तुम्हाणं तुज्झाण तुज्झाणं धणं । एवं च त्रयोविंशती रूपाणि ।

५९०—तुमे तुमए तुमाइ तइ तए ङिना । ८ । ३ । १०१ । युष्मदो ङिना सप्तम्येकवचनेन सहितस्य एते पंचादेशा भवन्ति । तुमे तुमए तुमाइ तइ तए ठिग्रं ।

५९१—तु-तुव-तुम-तुह-तुब्भा ङौ । ८ । ३ । १०२ । युष्मदो ङौ परतः एते पञ्चा-

देशा भवन्ति । ङेस्तु यथाप्राप्तमेव । तुम्मि तुवम्मि तुमम्मि तुहम्मि तुब्भम्मि । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्हम्मि तुज्झम्मि इत्यादि ।

५९२—सुपि । ८ । ३ । १०३ । युष्मदः सुपि परतः तु-तुव-तुम-तुह-तुब्भा भवन्ति । तुसु तुवेसु तुमेसु तुहेसु तुब्भेसु । ब्भो म्ह-ज्झौ वेति वचनात् तुम्हेसु तुज्झेसु । केचित्तु सुप्येत्व-विकल्पमिच्छन्ति । तन्मते-तुवसु तुमसु तुहसु तुब्भसु तुम्हसु तुज्झसु । तुब्भस्यात्वमपीच्छत्य-न्यः । तुब्भासु तुम्हासु तुज्झासु ।

५९३—ब्भो म्हज्झौ वा । ८ । ३ । १०४ । युष्मदादेशेषु यो द्विरुक्तो भस्तस्य म्ह ज्झ इत्येतावादेशौ वा भवतः । पक्षे । स एवास्ते । तथैव चोदाहृतम् ।

५९४—अस्मदो म्मि अम्मि अम्हि हं अहं अहयं सिना । ८ । ३ । १०५ । अस्मदः सिना सह एते षडादेशा भवन्ति । अज्ज म्मि हासिआ मामि तेण । उन्नम न अम्मि कुविआ । अम्हि करेमि । जेण हं विद्धा । किं पम्हुट्ठम्मि अहं । अहयं कय-प्पणामो ।

५९५—अम्ह अम्हे अम्हो मो वयं भे जसा । ८ । ३ । १०६ । अस्मदो जसा सह एते षडादेशा भवन्ति । अम्ह अम्हे अम्हो मो वयं भे भणामो ।

५९६—णे णं मि अम्मि अम्ह मम्ह मं ममं मिमं अहं अमा । ८ । ३ । १०७ । अस्मदोऽमा सह एते दशादेशा भवन्ति । णे णं मि अम्मि अम्ह मम्ह मं ममं मिमं अहं पेच्छ ।

५९७—अम्हे अम्हो अम्ह णे शसा । ८ । ३ । १०८ । अस्मदः शसा सह एते चत्वार आदेशा भवन्ति । अम्हे अम्हो अम्ह णे पेच्छ ।

५९८—मि मे ममं ममए ममाइ मइ मए मयाइ णे टा । ८ । ३ । १०९ । अस्मदष्टा सह एते नवादेशा भवन्ति । मि मे ममं ममए ममाइ मइ मए मयाइ णे कयं ।

५९९—अम्हेहि अम्हाहि अम्ह अम्हे णे भिसा । ८ । ३ । ११० । अस्मदो भिसा सह एते पञ्चादेशा भवन्ति । अम्हेहि अम्हाहि अम्ह अम्हे णे कयं ।

६००—मइ-मम-मह-मज्झा ङसौ । ८ । ३ । १११ । अस्मदो ङसौ पञ्चम्येकवचने परत एते चत्वार आदेशा भवन्ति । ङसेस्तु यथाप्राप्तमेव । मइत्तो ममत्तो महत्तो मज्झत्तो आगओ । मत्तो इति तु मत्त इत्यस्य । एवं दो-दु-हि-हिन्तो-लुक्ष्वप्युदाहार्यम् ।

६०१—ममाम्हौ भ्यसि । ८ । ३ । ११२ । अस्मदो भ्यसि परतो मम अम्ह इत्यादेशौ भवतः । भ्यसस्तु यथाप्राप्तम् । ममत्तो अम्हत्तो ममाहिन्तो अम्हाहिन्तो ममासुन्तो अम्हासुन्तो ममेसुन्तो अम्हेसुन्तो ।

६०२—मे मइ मम मह महं मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं ङसा । ८ । ३ । ११३ । अस्मदो

ङसा षष्ठ्येकवचनेन सहितस्य एते नवादेशा भवन्ति। मे मइ मम मह महं मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं धणं।

६०३—**णे णो मज्झ अम्ह अम्हं अम्हे अम्हो अम्हाण ममाण महाण मज्झाण आमा** ।८।३।११४। अस्मद आमा सहितस्य एते एकादशादेशा भवन्ति। णे णो मज्झ अम्ह अम्हं अम्हे अम्हो अम्हाण ममाण महाण मज्झाण धणं। क्त्वा-स्यादेर्ण-स्वोर्वा [१. २७] इत्यनुस्वारे। अम्हाणं ममाणं महाणं मज्झाणं। एवं च पंचदशरूपाणि।

६०४—**मि मइ ममाइ मए मे ङिना**।८।३।११५। **अस्मदो** ङिना सहितस्य एते पञ्चादेशा भवन्ति। मि मइ ममाइ मए मे ठिअं।

६०५—**अम्ह-मम-मह-मज्झा ङौ**।८।३।११६। अस्मदो ङौ परतः एते चत्वार आदेशा भवन्ति। ङेस्तु यथाप्राप्तम्। अम्हम्मि ममम्मि महम्मि मज्झम्मि ठिअं।

६०६—**सुपि**।८।३।११७। अस्मदः सुपि परे अम्हादयः चत्वार आदेशा भवन्ति। अम्हेसु ममेसु महेसु मज्झेसु। एत्वविकल्पमते तु। अम्हसु ममसु महसु मज्झसु। अम्हस्यात्वमपीच्छत्यन्यः। अम्हासु।

६०७—**त्रेस्ती तृतीयादौ**।८।३।११८। त्रेः स्थाने ती इत्यादेशो भवति तृतीयादौ। तीहिं कयं। तीहिन्तो आगओ। तिण्हं धणं। तीसु ठिअं।

६०८—**द्वेर्दो वे**।८।३।११९। द्विशब्दस्य तृतीयादौ दो वे इत्यादेशौ भवतः। दोहि वेहि कयं। दोहिन्तो वेहिन्तो आगओ। दोण्हं वेण्हं धणं। दोसु वेसु ठिअं।

६०९—**दुवे दोण्णि वेण्णि च जस्-शसा**।८।३।१२०। जस्-शस्भ्यां सहितस्य द्वेः स्थाने दुवे दोण्णि वेण्णि इत्येते, दो वे इत्येतौ च आदेशा भवन्ति। दुवे दोण्णि वेण्णि दो वे ठिआ पेच्छ वा। ह्रस्वः संयोगे [१. ८४] इति ह्रस्वत्वे दुण्णि विण्णि।

६१०—**त्रेस्तिण्णिः**।८।३।१२१। जस्-शस्भ्यां सहितस्य त्रेः स्थाने तिण्णि इत्यादेशो भवति। तिण्णि ठिआ पेच्छ वा।

६११—**चतुरश्चत्तारो चउरो चत्तारि**।८।३।१२२। चतुर्शब्दस्य जस्शस्भ्यां सह चत्तारो चउरो चत्तारि इत्येते आदेशा भवन्ति। चत्तारो चउरो चत्तारि चिट्ठन्ति पेच्छ वा।

६१२—**संख्याया आमो ण्ह ण्हं**।८।३।१२३। संख्याशब्दात्परस्यामो ण्ह ण्हं इत्यादेशौ भवतः। दोण्ह। तिण्ह। चउण्ह। पञ्चण्ह। छण्ह। सत्तण्ह। अट्ठण्ह। एवं दोण्हं। तिण्हं। चउण्हं। पञ्चण्हं। छण्हं। सत्तण्हं। अट्ठण्हं। नवण्हं। दसण्हं। पण्णरसण्हं दिवसाणं। अट्ठारसण्हं समण-साहस्सीणं। कतीनाम्। कइण्हं। बहुलाधिकाराद् विंशत्यादेर्न भवति।

६१३—शेषेऽदन्तवत् । ८ । ३ ।१२४ । उपयुक्तादन्यः शेषस्तत्र स्यादिविधिरदन्तवदतिदिश्यते । येष्वाकाराद्यन्तेषु पूर्वं कार्याणि नोक्तानि तेषु जस्-शसोर्लुक् [३. ४] इत्यादीनि अदन्ताधिकारविहितानि कार्याणि भवन्तीत्यर्थः । तत्र जस्-शसोर्लुक् इत्येतत्कार्यातिदेशः । माला गिरी गुरू सही वहू रेहन्ति पेच्छ वा । अमोऽस्य [३. ५] इत्येतत्कार्यातिदेशः । गिरिं गुरुं सहिं वहुं गामणिं खलपुं पेच्छ । टा-आमोर्णः [३. ६] इत्येतत्कार्यातिदेशः । हाहाण कयं । मालाण गिरीण गुरूण सहीण वहूण धणं । टायास्तु । टो णा [३. २४], टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः [३. २९] इति विधिरुक्तः । भिसो हि हिँ हिं [३. ७] इत्येतत्कार्यातिदेशः । मालाहि गिरीहि गुरूहि सहीहि वहूहि कयं । एवं सानुनासिकानुस्वारयोरपि । ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो-लुकः [३. ८] इत्येतत्कार्यातिदेशः । मालाओ मालाउ मालाहिन्तो । बुद्धीओ बुद्धीउ बुद्धीहिन्तो । धेणूओ धेणूउ धेणूहिन्तो आगओ । हिलुकौ तु प्रतिषेत्स्येते । [३. १२७, १२६],भ्यसस् त्तो दो दु हि हिन्तो सुन्तो [३. ९] इत्येतत्कार्यातिदेशः । मालाहिन्तो मालासुन्तो । हिस्तु निषेत्स्यते [३. १२७] एवं गिरीहिन्तो इत्यादि । ङसः स्सः [३. १०] इत्येतत्कार्यातिदेशः । गिरिस्स गुरुस्स दहिस्स महुस्स । स्त्रियां तु टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः । [३.२९]इत्याद्युक्तम् । ङेः म्मि ङेः [३.११] इत्येतत्कार्यातिदेशः । गिरिम्मि । गुरुम्मि । दहिम्मि । महुम्मि । ङेस्तु निषेत्स्यते [३.१२८] स्त्रियां तु टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः[३.२९]इत्याद्युक्तम् । जस्-शस्-ङसि-त्तो-दो-द्वामि दीर्घः [३.१२] इत्येतत्कार्यातिदेशः । गिरी गुरू चिट्ठन्ति । गिरीओ गुरूओ आगओ । गिरीण गुरूण धणं । भ्यसि वा [३. १३] इत्येतत्कार्यातिदेशो न प्रवर्तते । इदुतो दीर्घः [३. १६] इति नित्यं विधानात् । टाण-शस्येत् [३.१४], भिस्भ्यस्सुपि [३.१५] इत्येतत्कार्यातिदेशस्तु निषेत्स्यते [३. १२९]

६१४—न दीर्घो णो । ८ । ३ । १२५ । इदुदन्तयोरर्थाज्जस्-शस्-ङस्यादेशे णो इत्यस्मिन् परतो दीर्घो न भवति । अग्गिणो । वाउणो । णो इति किम् ? अग्गी । अग्गीओ ।

६१५—ङसेर्लुक् । ८ । ३ । १२६ । आकारान्तादिभ्योऽदन्तवत्प्राप्तो ङसेर्लुग् न भवति । मालत्तो । मालाओ । मालाउ । मालाहिन्तो आगओ । एवं अग्गीओ । वाऊओ । इत्यादि ।

६१६—भ्यसश्च हिः ।८।३।१२७। आकारान्तादिभ्योऽदन्तवत्प्राप्तो भ्यसो ङसेश्च हिर्न भवति । मालाहिन्तो । मालासुन्तो । एवं अग्गीहिन्तो । इत्यादि । मालाओ । मालाउ । मालाहिन्तो । एवं अग्गीओ । इत्यादि ।

६१७—ङेर्ङेः । ८ । ३ । १२८ । आकारान्तादिभ्योऽदन्तवत्प्राप्तो ङेर्डे न भवति । अग्गिम्मि । वाउम्मि । दहिम्मि । महुम्मि ।

६१८—एत् । ८ । ३ । १२९ । आकारान्तादीनामर्थात् टा-शस्-भिस्भ्यस्-सुप्सु परतोऽदन्तवद् एत्वं न भवति । हाहाए कयं । मालाओ पेच्छ । मालाहि कयं । मालाहिन्तो मालासुन्तो आगओ । मालासु ठिअं । एव अग्गिणो । वाउणो इत्यादि ।

★ अथ स्यादि-विधिः [ग] ★

स्यादिविधेः ख-विभागः पूर्वं निरूपितः, साम्प्रतं ग-विभागो निरूप्यते :—

५७९—त्वम् । युष्मद्+सि । ५७९ सू० युष्मदः सिना सह तं, तुं, तुवं, तुह, तुमं इत्यादेशाः, ततः—**तं, तुं, तुवं, तुह, तुमं** इति सिद्धम् । **दृष्टः** । दृष्ट+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारः, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारः, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वं, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारः, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेः लोपे **दिट्ठो** इति सिद्धम् ।

५८०—यूयम् । युष्मद्+जस् । ५८० सू० युष्मदः जसा सह भे, तुब्भे, तुज्झ, तुम्ह, तुय्हे, उय्हे इत्यादेशाः, ततः—**भे, तुब्भे, तुज्झ, तुम्ह, तुय्हे, उय्हे** इति सिद्धम् । **तिष्ठत** । ष्ठा (स्था) गति-निवृत्तौ । स्था+त । इत्यत्र ६८७ सू० स्थाधातोः चिट्ठ इत्यादेशे, ६६५ सू० 'त' इत्यस्य 'ह' इत्यादेशे **चिट्ठह** इति सिद्धम् । **ब्भो म्ह-ज्झौ वा ।** ५९३ सूत्रेण ब्भ इत्यस्य विकल्पेन म्ह, ज्झ इत्यादेशौ भवतस्तेन **तुब्भे** इत्यत्र ब्भ इत्यस्य म्ह, ज्झ इत्यादेशौ वैकल्पिकौ जातौ, तेन **तुम्हे, तुज्झे** इमेऽपि रूपे भवतः ।

५८१— त्वाम् । युष्मद्+अम् । ५८१ सू० युष्मदः स्थाने अमा सह तं, तुं, तुमं, तुवं, तुह, तुमे, तुए इत्यादेशाः, ततः—**तं, तुं, तुमं, तुवं, तुह, तुमे, तुए** इति सिद्धम् । **वन्दामि** । वदि अभिवादनस्तुत्योः । वद्+मिव् । संस्कृतनियमेन वन्द्+मिव् इति जाते, ९१० सू० धातोरन्ते अकारागमः, ६३० सू० मिवः स्थाने 'मि' इत्यादेशे, ६४३ सू० अकारस्य आकारे **वन्दामि** इति सिद्धम् ।

५८२—युष्मान् । युष्मद्+शस् । ५८२ सू० युष्मदः शसा सह वो, तुज्झ, तुब्भे, तुय्हे, उय्हे, भे इत्यादेशाः, ततः—**वो, तुज्झ, तुब्भे, तुय्हे, उय्हे, भे** इति भवति । **तुब्भे** इत्यत्र ५९३ सू० 'ब्भ' इत्यस्य म्ह, ज्झ इत्यादेशौ विकल्पेन भवतः, ततः—**तुब्भे, तुम्हे, तुज्झे** इति भवति । **पश्यामि** । दृश् दर्शने । दृश्+मिव् । ८५२ सू० दृशेः स्थाने पेच्छ इत्यादेशे, ६३० सू० मिवः 'मि' इत्यादेशे, ६४३ सू० अकारस्य दीर्घे **पेच्छामि** इति सिद्धम् ।

५८३—त्वया कथितम् । युष्मद्+टा । ५८३ सू० युष्मदः टा इत्यनेन सह भे, दि, दे, ते, तइ, तए, तुमं, तुमइ, तुमए, तुमे, तुमाइ इत्यादेशाः, ततः—**भे, दि, दे, ते, तइ, तए, तुमं, तुमइ, तुमए, तुमे, तुमाइ** इति सिद्धम् । **कथितम्** । कथ् कथने । कथ्+क्त (त) । ६७३ सू० कथेः जम्प इत्यादेशः, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **जम्पिअं** इति सिद्धम् ।

५८४—युष्माभिः । युष्मद्+भिस् । ५८४ सू० भिसा सह युष्मदः स्थाने भे, तुब्भेहिं, उज्झेहिं, उम्हेहिं, तुय्हेहिं, उय्हेहिं इत्यादेशाः, ततः—**भे, तुब्भेहिं, उज्झेहिं, उम्हेहिं, तुय्हेहिं, उय्हेहिं** इति भवति । **तुब्भेहिं** इत्यत्र ५९३ सू० ब्भ इत्यस्य वैकल्पिकौ म्ह, ज्झ इत्यादेशौ जातौ, ततः—**तुम्हेहिं, तुज्झेहिं** इत्यपि रूपे भवतः । **भुक्तम्**=भुत्तं । प्रक्रिया ३४८ सूत्रे ज्ञेया ।

५८५—ङसेस्तु त्तो-दो-दु-हीति । ४९७ सूत्रेण ङसि-प्रत्ययस्य दो, दु, हि, हिन्तो, लुक् एते आदेशाः यथाप्राप्ताः भविष्यन्त्येवेति संसूचितं वृत्तिकारेण । **त्वत्** । युष्मद्+ङसि । ५८५ सू० युष्मदः तइ, तुव,

तुम, तुह, तुब्भ इत्यादेशाः, ४९७ सू० ङसेः स्थाने त्तो इत्यादेशे **तइत्तो, तुवत्तो, तुमत्तो, तुहत्तो, तुब्भत्तो,** इति भवति। **तुब्भत्तो** इत्यत्र तु पूर्ववदेव ५९३ सूत्रेण **तुम्हत्तो, तुज्झत्तो** इत्यपि रूपे भवतः। एवं **दो-दु-हि-हिन्तो-लुक्ष्वप्युदाहार्यम्**। ४९७ सू० ङसेः स्थाने दो इत्यादय आदेशा अपि भवन्ति, तेषामादेशानां रूपाण्यपि कल्पनीयानीति संसूचितं वृत्तिकारेण। **तत्तो इति तु**। तत्तो इति रूपं तु **त्वत्तः** इत्यस्मात् शब्दात् ३५० सू० वकारलोपे, ३७ सू० विसर्गस्य स्थाने डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे सति भवतीति प्रतिपादितं वृत्तिकारेण।

५८६—त्वत्। युष्मद्+ङसि। इत्यत्र ५८६ सू० युष्मदः ङसिना सह तुय्ह, तुब्भ, तहिन्तो इत्यादेशाः, ५९३ सू० ब्भ इत्यस्य विकल्पेन म्ह, ज्झ इत्यादेशौ, ततः—**तुय्ह, तुब्भ, तुम्ह, तुज्झ, तहिन्तो** इति सिद्धम्। **आगतः**=आगओ। प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया।

५८७—युष्मत्। युष्मद्+भ्यस्। ५८७ सू० युष्मदः भ्यसि परे तुब्भ, तुय्ह, उय्ह, उम्ह इत्यादेशाः, पूर्ववदेव ब्भ इत्यस्य विकल्पेन म्ह, ज्झ इत्यादेशौ, ततः ४९८ सू० भ्यसः स्थाने 'त्तो' इत्यादेशे **तुब्भत्तो, तुम्हत्तो, तुज्झत्तो, तुय्हत्तो, उय्हत्तो, उम्हत्तो** इति सिद्धम्।

५८८—तव। युष्मद्+ङस्। ५८८ सू० युष्मदः ङसा सह तइ, तु, ते, तुम्हं, तुह, तुहं, तुव, तुम, तुमे, तुमो, तुमाइ, दि, दे, इ, ए, तुब्भ, उब्भ, उय्ह इत्यादेशाः, पूर्ववदेव ब्भ इत्यस्य विकल्पेन म्ह, ज्झ इत्यादेशौ, ततः— **तइ, तु, ते, तुम्हं, तुह, तुहं, तुव, तुम, तुमे, तुमो, तुमाइ, दि, दे, इ, ए, तुब्भ, तुम्ह, तुज्झ, उब्भ, उम्ह, उज्झ, उय्ह** इति सिद्धम्। **धनम्**=धणं। इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया।

५८९—युष्माकम्। युष्मद्+आम्। ५८९ सू० युष्मदः आमा सह तु, वो, भे, तुब्भ, तुब्भं, तुब्भाण, तुवाण, तुमाण, तुहाण, उम्हाण इत्यादेशाः, पूर्ववदेव ब्भ इत्यस्य विकल्पेन म्ह-ज्झ इत्यादेशौ, ततः—**तु, वो, भे, तुब्भ, तुम्ह, तुज्झ, तुब्भं, तुम्हं, तुज्झं** २७ सू० विकल्पेन णकारस्य अन्तेऽनुस्वारागमे **तुब्भाण, तुम्हाण, तुज्झाण, तुब्भाणं, तुम्हाणं, तुज्झाणं, तुवाण, तुवाणं, तुमाण, तुमाणं, तुहाण, तुहाणं, उम्हाण, उम्हाणं** इति सिद्धम्। **धनम्**=धणं। इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ५३९ सूत्रे बोध्या।

५९०—त्वयि। युष्मद्+ङि। ५९० सू० ङिना सह युष्मदः तुमे, तुमए, तुमाइ, तइ, तए इत्यादेशाः, ततः—**तुमे, तुमए, तुमाइ, तइ, तए** इति भवति। **स्थितम्**=ठिअं, प्रक्रिया ५०५ सूत्रे ज्ञेया।

५९१—त्वयि। युष्मद्+ङि। ५९१ सू० युष्मदः स्थाने तु, तुव, तुम, तुह, तुब्भ इत्यादेशाः, ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **तुम्मि, तुवम्मि, तुमम्मि, तुहम्मि, तुब्भम्मि** ब्भ इत्यस्य पूर्ववदेव म्ह, ज्झ, इत्यादेशयोः जातयोः **तुम्हम्मि, तुज्झम्मि** इति भवति।

५९२—युष्मासु। युष्मद्+सुप्। ५९२ सू० युष्मदः तु, तुव, तुम, तुह, तुब्भ इत्यादेशाः, ब्भ इत्यस्य पूर्ववदेव विकल्पेन म्ह, ज्झ इत्यादेशौ, ततः **तुसु** इत्यत्र ५०५ सूत्रे **क्वचिन्न भवतीत्युल्लेखाद्** दीर्घो न जातः, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **तुवेसु, तुमेसु, तहेसु, तुब्भेसु, तुम्हेसु, तुज्झेसु** इति भवति। **केचित्तु सुप्येत्वविकल्पमिच्छन्ति**। केचिदाचार्याः ५०४ सूत्रे विहितमकारस्य एकारादेशं वैकल्पिकं स्वीकुर्वन्ति, तेषां मते **तुवसु, तुमसु, तुहसु, तुब्भसु, तुम्हसु, तुज्झसु** इत्यपि रूपाणि जायन्ते। **तुब्भस्यात्वमपीच्छत्यन्यः**। कश्चिद् वैयाकरणः तुब्भस्य स्थाने तुब्भा इत्याकारवन्तमादेशं स्वीकरोति, तन्मते **तुब्भासु, तुम्हासु तुज्झासु** इत्येतानि रूपाणि भवन्ति।

५९३—युष्मदादेशेषु यो ब्भ इत्यादेशस्तस्य ५९३ सूत्रेण **म्ह, ज्झ** इत्यादेशौ वैकल्पिको भवतः। यथा—**तुब्भासु**। इत्यत्र ब्भादेशो वर्ततेऽतोऽत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तौ—**तुम्हासु, तुज्झासु** इति रूपेऽपि

भवतः। **पक्षे**। आदेशाभावपक्षे **तुब्भासु** एवमेव रूपं प्रयोक्तव्यम्।

५६४—अद्य। अव्ययपदमिदम्। **अज्ज** इत्यस्य प्रक्रिया ३३ सूत्रे ज्ञेया। **अहम्**=अस्मद्+सि। ५९४ सू० सिना सह अस्मदः स्थाने म्मि इत्यादेशे **म्मि** इति भवति। **हासिता**। हासिता+सि। इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **हासिआ** इति भवति। **सखि**!। सखी+सि=**मामि**, प्रक्रिया ४६६ सूत्रे ज्ञेया। **तेन**=तेण, इत्यस्य प्रक्रिया ४५७ सूत्रे ज्ञेया। **उन्नम नाहं कुपिता**। **उन्नम**। उदुपसर्गपूर्वस्य नम्-धातोः लोट्-लकारस्य मध्यमपुरुषस्य एकवचनमिदम्। संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। **उन्नम**-उत्तिष्ठत इत्यर्थः। **न**। इत्यव्ययपदं संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। **अहम्**। अस्मद्+सि। ५९४ सू० अस्मदः सिना सह 'अम्मि' इत्यादेशे **अम्मि** इति सिद्धम्। **कुपिता**। कुपिता+सि। इत्यत्र २३१ सू० पकारस्य वकारः, १७७ सू० तकारस्य लोपः, सेर्लोपे **कुविआ** इति सिद्धम्। **अहं करोमि**। **अहम्**। अस्मद्+सि। प्रस्तुतसूत्रेण अस्मदः स्थाने सिना सह अम्हि इत्यादेशे **अम्हि** इति सिद्धम्। **करोमि**। डुकृञ् (कृ) करणे। कृ+मिव्। इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य स्थाने अर इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६३० सू० मिवः मि इत्यादेशे **करेमि** इति सिद्धम्। **येन अहं विद्धा**। **येन**। यद्+टा। २४५ सू० यकारस्य जकारः, ११ सू० दकारस्य लोपः, ४९५ सू० टास्थाने णादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **जेण** इति सिद्धम्। **अहम्**। अस्मद्+सि। अस्मदः सिना सह 'हं' इत्यादेशे **हं** इति सिद्धम्। **विद्धा**—व्यथिता इत्यर्थः। अयं शब्दः संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। **किम्**। किम्+सि। इत्यत्र ५६९ सू० सिना सह किं इत्यादेशे **किं** इति भवति। **प्रमृष्टे**। प्रमृष्ट+ङि। इत्यत्र ९२९ सू० प्रमृष्टस्य पम्हुट्ठ इत्यादेशे, ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **पम्हुट्ठम्मि** इति सिद्धम्। **अहम्**। अस्मद्+सि। प्रस्तुतसूत्रेण सिना सह अस्मदः अहं इत्यादेशे **अहं** इति सिद्धम्। **अहम्**। अस्मद्+सि। प्रस्तुतसूत्रेण सिना सह अस्मदः अहयं इत्यादेशे **अहयं** इति भवति। **कृतप्रणामः**। कृतः प्रणामो येन सः। कृतप्रणाम+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कयप्पणामो** इति भवति।

५६५—वयम्। अस्मद्+जस्। ५९५ सू० जसा सह अस्मदः अम्ह, अम्हे, अम्हो, मो, वयं, भे इत्यादेशाः, ततः—**अम्ह, अम्हे, अम्हो, मो, वयं, भे** इति भवति। **भणामः**। भण् धातुः भणने। भण् मस्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३३ सू० मसः स्थाने मो इत्यादेशे, ६४४ सू० अकारस्य आकारे **भणामो** इति भवति।

५६६—माम्। अस्मद्+अम्। ५९६ सू० अस्मदः स्थाने अमा सह णे णं मि अम्मि अम्ह मम्ह मं ममं मिमं अहं इत्यादेशाः, ततः **णे णं मि अम्मि अम्ह मम्ह मं ममं मिमं अहं** इति सिद्धम्। **पश्य**=पेच्छ। प्रक्रिया ५३९ सूत्रेऽवलोकनीया।

५६७—अस्मान्। अस्मद्+शस्। ५९७ सू० शसा सह अस्मदः स्थाने अम्हे अम्हो अम्ह णे इत्यादेशाः, ततः **अम्हे अम्हो अम्ह णे** इति भवति। **पश्य**=पेच्छ प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया।

५६८—मया। अस्मद्+टा। ५९८ सू० अस्मदः टा-प्रत्ययेन सह मि मे ममं ममए ममाइ मइ मए मयाइ णे इत्यादेशाः, ततः **मि मे ममं ममए ममाइ मइ मए मयाइ णे** इति सिद्धम्। **कृतम्**=कयं। इत्यस्य प्रक्रिया ५४० सूत्रे ज्ञेया।

५६९—अस्माभिः। अस्मद्+भिस्। ५९९ सू० भिसा सह अस्मदः स्थाने अम्हेहि अम्हाहि अम्ह अम्हे णे इत्यादेशाः, ततः **अम्हेहि अम्हाहि अम्ह अम्हे णे** इति भवति। **कृतम्**=कयं इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ५४० सूत्रे ज्ञेया।

६००—मत्। अस्मद्+ङसि। ६०० सू० अस्मदः स्थाने ङसौ परे मइ मम मह मज्झ इत्यादेशाः, ४९७ सू० ङसेः 'त्तो' इत्यादेशे **मइत्तो ममत्तो महत्तो मज्झत्तो** इति भवति। **आगतः**=आगओ। प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **मत्तो इति तु**। मत्तो इति रूपं तु **मत्तः** इत्यस्मात् संस्कृत-शब्दात् निष्पन्नो भवति। अत्र ३७ सूत्रेण विसर्गस्य स्थाने डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे सति **मत्तो** इति रूपं जायते।

६०१—अस्मभ्यम्। अस्मद्+भ्यस्। ६०१ सू० अस्मदः स्थाने मम अम्ह इत्यादेशौ, ४९८ सू० भ्यसः त्तो हिन्तो सुन्तो इत्यादेशाः, ५०२ सू० वैकल्पिकेऽकारस्य आकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **ममत्तो अम्हत्तो ममाहिन्तो अम्हाहिन्तो ममासुन्तो अम्हासुन्तो** दीर्घाभावे ५०४ सू० अकारस्य एकारे **ममेहिन्तो अम्हेहिन्तो ममेसुन्तो अम्हेसुन्तो** इति भवति।

६०२—मम। अस्मद्+ङस्। ६०२ सू० ङसा सह अस्मदः स्थाने मे मइ मम मह महं मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं इत्यादेशाः, ततः **मे मइ मम मह महं मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं** इति भवति। **धनम्**=**धणं**, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया।

६०३—अस्माकम्। अस्मद्+आम्। ६०३ सू० आमा सह अस्मदः स्थाने णे णो मज्झ अम्ह अम्हं अम्हे अम्हो अम्हाण ममाण महाण मज्झाण इत्यादेशाः, २७ सू० णकारस्य वैकल्पिके अनुस्वारागमे **णे णो मज्झ अम्ह अम्हं अम्हे अम्हो अम्हाणं अम्हाण ममाणं ममाण महाणं महाण मज्झाणं मज्झाण** इति भवति। **धनम्**=धणं। प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया।

६०४—मयि। अस्मद्+ङि। ६०४ सू० ङिना सह अस्मदः स्थाने मि, मइ, ममाइ, मए, मे इत्यादेशाः, ततः **मि मइ, ममाइ, मए, मे** इति सिद्धम्। **स्थितम्**=ठिअं। प्रक्रिया ५०५ सूत्रे ज्ञेया।

६०५—मयि। अस्मद्+ङि। ६०५ सू० अस्मदः अम्ह मम मह मज्झ इत्यादेशाः, ५०० सू० ङेः 'म्मि' इत्यादेशे **अहम्मि ममम्मि महम्मि मज्झम्मि** इति सिद्धम्। **स्थितम्**=ठिअं। इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ५०५ सूत्रे बोध्या।

६०६—अस्मासु। अस्मद्+सुप् (सु)। इत्यत्र ६०६ सू० अस्मदः अम्ह, मम, मह, मज्झ इत्यादेशाः, ५०४ सू० अन्त्याकारस्य एकारे **अम्हेसु, ममेसु, महेसु, मज्झेसु** इति सिद्धम्। **एत्वविकल्पमते तु**। इत्यत्र ५०४ सूत्रस्य नित्या प्रवृतिर्भवति परन्तु केषाञ्चिदाचार्याणां मते वैकल्पिका प्रवृत्तिर्जायते, अतस्तेषां मते ५०४ सूत्रस्याप्रवृत्तौ—**अम्हसु ममसु महसु मज्झसु** एतान्यपि रूपाणि भवन्ति। **अम्हस्यात्वमीच्छत्यन्यः**। कश्चिदाचार्यः अम्हस्यान्त्याकारस्य स्थाने आत्वमिच्छति, तन्मते **अम्हासु** इति रूपं भवति।

६०७—त्रिभिः। त्रि+भिस्। इत्यत्र ६०७ सू० त्रिशब्दस्य स्थाने ती इत्यादेशे, ६१३ सू० अदन्तवत्वात् ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे **तीहिं** इति भवति। **कृतम्**=कयं, इत्यस्य प्रक्रिया ५४० सूत्रे ज्ञेया। **त्रिभ्यः**। त्रि+भ्यस्=ती+भ्यस्। ४९८ सू० भ्यसो हिन्तो इत्यादेशे **तीहिन्तो** इति भवति। **आगतः**=आगओ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **त्रयाणाम्**। त्रि+आम्=ती+आम्। ६१२ सू० आमः स्थाने ण्हं इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **तिण्हं** इति भवति। **धनम्**=धणं, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **त्रिषु**। त्रि+सुप्। पूर्ववदेव **तीसु** इति भवति। **स्थितम्**=ठिअं, प्रक्रिया ५०५ सूत्रे ज्ञेया।

६०८—द्वाभ्याम्। द्वि+भ्याम्। ६०८ सू० द्विशब्दस्य स्थाने दो वे इत्यादेशौ, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९६ सू० भिसः हिं स्थाने इत्यादेशे **दोहिं वेहिं** इति

सिद्धम्। **द्वाभ्याम्**। द्वि+भ्याम्=दो+भ्याम्, वे+भ्याम्। द्विवचनस्य बहुवचने, ४९८ सू० भ्यसः हिन्तो इत्यादेशे **दोहिन्तो वेहिन्तो** इति भवति। **द्वयोः**। द्वि+ओस्—दो+ओस्, वे+ओस्। द्विवचनस्य बहुवचने, ६१२ सू० आमः स्थाने ण्हं इत्यादेशे **दोण्हं वेण्हं** इति भवति। **द्वयोः**। द्वि+ओस्=दो+ओस्। द्विवचनस्य बहुवचने **दोसु वेसु** इति सिद्धम्। **कृतम्**=कयं, प्रक्रिया ३८५ सूत्रे ज्ञेया। **आगतः**=आगओ, **धनम्**=धणं, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **स्थितम्**=ठिअं, प्रक्रिया ५०५ सूत्रेऽवलोकनीया।

६०९—**द्वौ द्वौ**। द्वि+औ, द्वि+औ। इत्यत्र ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६०९ सू० जस्-शसा सह द्विशब्दस्य दुवे दोण्णि इत्यादेशौ, ततः **दोण्णि वेण्णि** ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **दुण्णि, विण्णि** इति भवति। **स्थितौ**। ष्ठा (स्था)+क्त (त)+औ। ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, ९०९ सू० आकारस्य इकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, द्विवचनस्य बहुवचने, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **ठिआ** इति भवति। **पश्य**=पेच्छ, इत्यस्य प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया।

६१०—**त्रयः, त्रीन्**। त्रि+जस्, त्रि+शस्। ६१० सू० जस्-शसभ्यां सह त्रेः स्थाने तिण्णि इत्यादेशे **तिण्णि** इति भवति। **स्थिताः**। स्थित+जस्। ६०९ सूत्र-तुल्यमेव ठिअ+जस् इति जाते, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० अकार-दीर्घे **ठिआ** इति भवति। **पश्य**—पेच्छ प्रक्रिया ६०९ सूत्रे ज्ञेया।

६११—**चत्वारः, चतुरः**। चतुर्+जस्, चतुर्+शस्। ६११ चतुर्—शब्दस्य जसा शसा च सह चत्तारो, चउरो, चत्तारि इत्यादेशाः, ततः **चत्तारो, चउरो, चत्तारि** इति भवति। **तिष्ठन्ति**=चिट्ठन्ति, **पश्य**—पेच्छ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया।

६१२—**द्वयोः**। द्वि+ओस्। ६०८ सू० द्विशब्दस्य दो इत्यादेशे, ६१९ सू० द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने कृते, ६१२ सू० आमः ण्ह, ण्हं इत्यादेशौ, ततः **दोण्ह, दोण्हं** इति भवति। **त्रयाणाम्**। त्रि+आम्। ६०७ सू० त्रिशब्दस्य ती इत्यादेशे, आमः ण्ह, ण्हं इत्यादेशौ, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **तिण्ह, तिण्हं** इति भवति। **चतुर्णाम्**। चतुर्+आम्। १७७ सू० तकारलोपे, ११ सू० रेफलोपे, पूर्ववदेव **चउण्ह, चउण्हं** इति भवति। **पञ्चानाम्**। पञ्चन्+आम्। ११ सू० नकारलोपे, पूर्ववदेव **पञ्चण्ह, पञ्चण्हं** इति भवति। **षण्णाम्**। षट्+आम्। २६५ सू० षकारस्य छकारे, ११ सू० टकारलोपे, पूर्ववदेव **छण्ह, छण्हं** इति भवति। **सप्तानाम्**। सप्तन+आम्। ३४८ सू० पकारलोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **सत्तण्ह, सत्तण्हं** इति भवति। **अष्टानाम्**। अष्टन्+आम्। ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, नकारलोपे, पूर्ववदेव **अट्ठण्ह, अट्ठण्हं** इति भवति। **नवानाम्**। नवन्+आम्। नकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **नवण्ह, नवण्हं** इति भवति। **दशानाम्**। दशन्+आम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, नकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **दसण्ह, दसण्हं** इति भवति। **पञ्चदशानां**। पञ्चदश+आम्। ३१४ सू० ञ्चस्य णकारे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, २१९ सू० दकारस्य रेफे, शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **पण्णरसण्हं** इति भवति। **दिवसानाम्**। दिवस+आम्। ४९५ सू० आमः स्थाने णकारे, ५०१ सू० अकारस्य आकारे, २७ सू० अनुस्वारागमे **दिवसाणं** इति भवति। **अष्टादशानाम्**। अष्टादश+आम्। ष्टस्य ठकारे, ठकारस्य द्वित्वे, पूर्वठकारस्य टकारे, दकारस्य रेफे, शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **अट्ठारसण्हं** इति भवति। **श्रमणसाहस्रीणाम्**। श्रमणानां साहस्री, तासाम्। श्रमणसाहस्री+आम्। ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, रेफस्य लोपे, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वे, ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९५ सू० आमः णकारे, २७ सू० अनुस्वारागमे **समणसाहस्सीणं** इति भवति। **कतीनाम्**। कति+आम्। १७७ सू० तकारलोपे, पूर्वदेव **कइण्हं** इति भवति। **बहुलाधिकारात्**। बहुलस्य अधिकाराद् विंशति-प्रभृति-शब्देभ्यः आम्-प्रत्ययस्य ण्ह, ण्हं इत्यादेशौ न भवतः।

६१३—तत्तुल्यकार्यकरणमतिदेशः। ६१३ सूत्रेण अदन्तवदतिदेशः क्रियते। यानि यानि कार्याणि अदन्तशब्दात् क्रियन्ते तान्येव सर्वाणि कार्याण्यादन्तादिशब्देभ्योऽपि करणीयानीति भावः। ४९३ सूत्रतः प्रारभ्य ५०४ सूत्रपर्यन्तानि यानि कार्याणि तानि अकारान्तशब्देभ्य एव कर्तुं प्रभवन्ति न तु आकारान्तादिशब्देभ्योऽपि, परन्तु ६१३ सूत्रेण अदन्तवदतिदेशकरणात् आकारान्त-मालादिशब्देषु ४९३ सूत्रेण अप्राप्तोऽपि जस्—शसोर्लोपः क्रियते। एवमेव टादिविभक्तिष्वपि बोध्यम्। यथा—**मालाः**। **माला**+जस्, माला+शस्। ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९३ सू० जस्-शसोर्लुकि **माला** इति भवति। **गिरयः**। गिरि+जस्, गिरि+शस्। अदन्तवदतिदेशात् जस्-शसोर्लुकि, ५०१ सू० इकारदीर्घे **गिरी** इति भवति। **गुरवः, गुरून्**। गुरु+जस्, गुरु+शस्। पूर्ववदेव **गुरू** इति ज्ञेयम्। **सख्यः, सखीः**। सखी+जस्, सखी+शस्। १८७ सू० खकारस्य हकारे, पूर्ववदेव **सही** इति रूपं साध्यम्। **वध्वः, वधूः**। वधू+जस्, वधू+शस्। १८७ सू० धकारस्य हकारे, पूर्ववदेव **वहू** इति साधनीयम्। **राजन्ते**। राजृ दीप्तौ। राजन्+अन्ते। ७७१ सू० राज्धातोः रेह इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्ते इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **रेहन्ति** इति भवति। **पश्य**= पेच्छ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **गिरिम्**। गिरि+अम्। अदन्तवदतिदेशात् ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **गिरिं** इति भवति। एवमेव **गुरुम्**। गुरु+अम्=**गुरुं**। **सखीम्**। सखी+अम्। खकारस्य हकारे, ५२५ सू० ईकारस्य इकारे, पूर्ववदेव **सहिं** इति भवति। **वधूम्**। वधू+अम्। धकारस्य हकारे, ५२५ सू० ऊकारस्य उकारे, पूर्ववदेव **वहुं** इति भवति। **ग्रामण्यम्**। ग्रामं नयतीति ग्रामणीः, तम्। ग्रामणी+अम्। ३५० सू० रेफलोपे, ५२५ सू० ईकारस्य इकारे, पूर्ववदेव **गामणिं**। **खलप्वम्**। खलपू+अम्। ५२५ सू० ऊकारस्य उकारे,पूर्ववदेव **खलपुं** इति भवति। **पश्य**=पेच्छ,प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **हाहा**। हाहा+टा। अदन्तवदतिदेशात् ४९५ सू० टास्थाने णकारे **हाहाण** इति भवति। **कृतम्**=कयं,प्रक्रिया ३८५ सूत्रे ज्ञेया। **मालानाम्, गिरीणाम्,गुरूणाम्,सखीनाम्,वधूनाम्**। माला+आम्। गिरि+आम्, गुरु+आम्, सखी+आम्, वधू+आम्। १८७ सू० खकारस्य धकारस्य च हकारे, अदन्तवदतिदेशात् ४९५ सू० आमः णादेशे, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे—**मालाण,गिरीण,गुरूण,सहीण, वहूण** इति भवति। **धनम्**=धणं, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **मालाभिः, गिरिभिः, गुरुभिः, सखीभिः, वधूभिः**। माला+भिस्, गिरि+भिस्, गुरु+भिस्, सखी+भिस्, वधू+भिस्। १८७ सू० खकारस्य च धकारस्य हकारे, अदन्तवदतिदेशात् ४९६ सू० भिसः हि इत्यादेशे,५०५ सू० इकारस्य उकारस्य च दीर्घे **मालाहि, गिरीहि, गुरूहि, सहीहि, वहूहि** इति भवति। **एवं सानुनासिकानुस्वारयोरपि**। ४९६ सूत्रेण यथा भिसः स्थाने हि इत्यादेशो जायते तथैव सानुनासिकः 'हिँ', सानुस्वारः 'हिं' चेत्यादेशावपि भवतः। **मालायाः, बुद्धेः, धेनोः**। माला+ङसि, बुद्धि+ङसि, धेनु+ङसि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, अदन्तवदतिदेशात् ४९७ सू० ङसेः स्थाने दो दु हिन्तो इत्यादेशाः,१७७ सू० दकारलोपे, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे—**मालाओ, मालाउ, मालाहिन्तो, बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धीहिन्तो, धेणूओ, धेणूउ, धेणूहिन्तो** इति भवति। **आगतः**= आगओ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। **हिलुकौ तु प्रतिषेत्स्येते**। ६१५ सूत्रेण ङसेः हिं इत्यादेशः, ६१६ सूत्रेण च ङसेः लुगादेशः निषेत्स्यते। **मालाभ्यः, गिरिभ्यः**। माला+भ्यस्, गिरि+भ्यस्। अदन्तवदतिदेशात् ४९८ सू० भ्यसः हिन्तो सुन्तो इत्यादेशौ, ५०१ सू० पूर्वस्वर-दीर्घे—**मालाहिन्तो, मालासुन्तो, गिरीहिन्तो,गिरीसुन्तो** इति भवति। **हिस्तु निषेत्स्यते**। ४९८ सूत्रेण भ्यसः हि इत्यादेशोऽपि भवति, परन्तु ६१६ सूत्रेणासौ निषिद्ध्यते। **गिरेः, गुरोः, दध्नः, मधुनः**। गिरि+ङस्, गुरु+ङस्, दधि+ङस्, मधु+ङस्। अदन्तवदतिदेशात् ४९९ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **गिरिस्स,गुरुस्स** धकारस्य हकारे—**दहिस्स,**

महुस्स । **स्त्रियां तु टा-ङस्-ङेः** । टा-ङस्-ङि —प्रत्ययानां स्थाने स्त्रीलिङ्गे येऽदादय आदेशा भवन्ति, ते ५१८ सूत्रे भणिताः सन्तीति संसूचितं वृत्तिकारेण । **गिरौ, गुरौ, दध्नि, मधुनि** । गिरि+ङि, गुरु+ङि, दधि+ङि, मधु+ङि । अदन्तवदतिदेशात् ५०० सू० ङेः स्थाने म्मि इत्यादेशे **गिरिम्मि, गुरुम्मि** धकारस्य हकारे कृते **दहिम्मि महुम्मि** इति भवति । **डेस्तु निषेत्स्यते** । ५०० सूत्रेण ङिप्रत्ययस्य स्थाने 'डे' इत्यादेशोऽपि भवति परं ६१७ सूत्रेणासौ निषिद्धो भवतीति संसूचितं वृत्तिकारेण । **गिरयः, गुरवः, गिरीन्, गुरून्** । गिरि+जस्, शस्, गुरु+जस्, शस् । अदन्तवत्त्वात् ४९३ सू० जस्-शसोर्लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे **गिरी, गुरू** इति भवति । **तिष्ठन्ति**—चिट्ठन्ति, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **गिरेः, गुरोः** । गिरि+ङसि, गुरु+ङसि । अदन्तवत्त्वात् ४९७ सू० ङसेः दो इत्यादेशे, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे, १७७ सू० दकारलोपे **गिरीओ गुरूओ** इति भवति । **आगतः**=आगओ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **गिरीणाम्, गुरूणाम्** । गिरि+आम्, गुरु+आम् । अदन्तवत्त्वात् ४९५ सू० आमः स्थाने णकारे, पूर्वस्वरदीर्घे **गिरीण, गुरूण** इति भवति । **धनम्**=धणं, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **भ्यसि वा** । ५०२ सूत्रस्य कार्यातिदेशो न भवति यतोहि भ्यस् - प्रत्यये परे सति ५०५ सूत्रेण इकारस्य उकारस्य च दीर्घो नित्यरूपेण जायते एव । ५०३ सूत्रस्य, ५०४ सूत्रस्य चापि कार्यातिदेशो न भवति, ६१८ सूत्रेण तयोर्निषेधविधानादिति भावः ।

६१४—अग्नयः, अग्नीन्, अग्नेः । अग्नि+जस्, अग्नि+शस्, अग्नि+ङसि । ३५० सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्त्वे, ५११ सूत्रेण जस्-शसोः, तथा ५१२ सूत्रेण ङसेः स्थाने णो इत्यादेशे, ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घ-प्राप्ते, ६१४ सू० तन्निषेधे **अग्गिणो** इति भवति । **वायवः, वायून्, वायोः** । वायु+जस्, वायु+शस्, वायु+ङसि । १७७ सू० यकारलोपे, पूर्ववदेव जस्-शसोः, ङसेश्च णो इत्यादेशे दीर्घनिषेधे च **वाउणो** इति भवति । **णो इति किम्** ? । **णो** इत्यादेशे **परे** सत्येव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति नान्यथा । यथा—**अग्नयः, अग्नीन्** । अग्नि+जस्, अग्नि+शस्= अग्गि+जस्, अग्गि+शस् । ४९३ सू० जस्-शसोः लुकि, अदन्तवदतिदेशात् ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **अग्गी** इति जातम् । 'णो' इत्यादेशाभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावो ज्ञेयः । **अग्नेः** । अग्नि+ङसि= अग्गि+ङसि । ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ५०१ सू० पूर्वस्वर-दीर्घे, ४९७ सू० ङसेः स्थाने दो इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **अग्गीओ** इति भवति । अत्रापि णो इत्यादेशाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

६१५—मालायाः । माला+ङसि । इत्यत्र ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९७ सू० ङसेः त्तो दो दु हिन्तो इत्यादेशाः, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **मालत्तो** १७७ सू० दकारस्य लोपे—**मालाओ मालाउ मालाहिन्तो** अत्र ४९७ सूत्रेण ङसेः प्राप्तः लुगादेशः ६१५ सूत्रेण निषिद्धः । **आगतः**=आगओ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **अग्नेः**=अग्नि+ङसि=अग्गि+ङसि । अदन्तवदतिदेशात् पूर्ववदेव ङसेः दो (ओ) इत्यादेशे, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे **अग्गीओ** इति भवति । एवमेव—**वायोः** । वायु+ङसि । इत्यत्र १७७ सू० यकारस्य लोपे, ङसेः दो (ओ) इत्यादेशे, पूर्वस्वरदीर्घे **वाऊओ** इति भवति । उभयत्रापि ४९७ सूत्रेण ङसेः प्राप्तः लुगादेशः ६१५ सूत्रेण निषिद्धः ।

६१६—मालाभ्यः । माला+भ्यस् । ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९८ सू० भ्यसः स्थाने हिन्तो सुन्तो इत्यादेशौ, ततः **मालाहिन्तो मालासुन्तो** इति भवति । अत्र ४९८ सू० भ्यसः स्थाने प्राप्तः हि इत्यादेशः ६१६ सूत्रेण निषिद्धः । **अग्निभ्यः** । अग्नि+भ्यस् । ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्त्वे, अदन्तवत्त्वात् पूर्ववदेव भ्यसः हिन्तो इत्यादेशे, ५०५ सू० पूर्वस्वरदीर्घे **अग्गीहिन्तो** इति भवति ।

अत्रापि पूर्ववदेव भ्यसः स्थाने प्राप्तः हि इत्यादेशः निषिद्धः । **मालायाः** । माला+ङसि । अदन्तवत्त्वात् ४९७ सू० ङसेः दो दु हिन्तो इत्यादेशाः, १७७ सू० दकारस्य लोपे **मालाओ मालाउ मालाहिन्तो** इति भवति । अत्र ४९७ सूत्रेण ङसेः स्थाने प्राप्तः हि इत्यादेशः प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः । **अग्नेः** । अग्नि+ङसि=अग्गि+ङसि । अदन्तवत्त्वात् ४९७ सू० ङसेः दो (ओ) इत्यादेशे, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **अग्गीओ** इति भवति । अत्रापि ङसेः स्थाने प्राप्तः हि इत्यादेशः प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः ।

६१७—**अग्नौ** । अग्नि+ङि=अग्गि+ङि । इत्यत्र अदन्तवदतिदेशात् ५०० सू० ङेः म्मि इत्यादेशे **अग्गिम्मि** इति भवति । अत्र ५०० सू० ङेः स्थाने डे इत्यादेशोऽपि भवति परन्तु ६१७ सूत्रेणासौ निषिद्धः । **वायौ** । वायु+ङि । इत्यत्र १७७ सू० यकारलोपे, अदन्तवदतिदेशात् पूर्ववदेव ङेः म्मि इत्यादेशे **वाउम्मि** इति भवति । अत्रापि पूर्ववदेव डे इत्यादेशो निषिद्धः । **दधिन** । दधि+ङि । १८७ सू० धकारस्य हकारे, पूर्ववदेव **दहिम्मि** एवमेव **मधुनि**=मधु+ङि, धकारस्य हकारे **महुम्मि** इति भवति । उभयत्रापि ५०० सूत्रेण ङेः स्थाने प्राप्तः डे इत्यादेशः प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः ।

६१८—**हाहा** । हाहा+टा । ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९५ सू० टास्थाने णकारे **हाहाण** इति भवति । अत्र ५०३ सू० आकारस्य एकारप्राप्तिरासीत् किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण सा निषिद्धा । **कृतम्**=कयं, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **मालाः** । माला+शस् । अदन्तवदतिदेशात् ५१६ सू० शसः ओकारे **मालाओ** इति भवति । अत्रापि पूर्ववदेव आकारस्य प्राप्त एकारः प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः । **पश्य**=पेच्छ, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **मालाभिः** । माला+भिस् । अदन्तवदतिदेशात् ४९६ सू० भिसः हि इत्यादेशे **मालाहि** इति भवति । अत्र ५०४ सूत्रेण प्राप्त आकारस्य एकारः प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धः । **कृतम्**=कयं, प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया । **मालाभ्यः** । माला+भ्यस् । इत्यत्र अदन्तवदतिदेशात् ४९८ सू० भ्यसः हिन्तो सुन्तो इत्यादेशौ, अत्र ५०४ सू० एकारप्राप्तिः परं प्रस्तुतसूत्रेण सा निषिद्धा, ततः—**मालाहिन्तो मालासुन्तो** इति भवति । **आगतः**—आगओ, इत्यस्य प्रक्रिया ५३९ सूत्रे बोध्या । **मालासु** । माला+सुप् (सु)= **मालासु** । अत्र ५०४ सू० आकारस्य एकारप्राप्तिरासीत् परं प्रस्तुतसूत्रेण सा निषिद्धा । **स्थितम्**=ठिअं, प्रक्रिया ५९० सूत्रे बोध्या । **अग्नीन्** । अग्नि+शस्=अग्गि+शस् । ५११ सू० शसः स्थाने णो इत्यादेशे **अग्गिणो** इति भवति । अत्र अदन्तवदतिदेशात् ५०३ सूत्रेण इकारस्य या एकार-प्राप्तिरासीत् सा प्रस्तुतसूत्रेण निषिद्धा । **वायून्** । वायु+शस् । १७७ सू० यकारलोपे, शसः स्थाने णो इत्यादेशे **वाउणो** इति जातम् । अत्रापि पूर्ववदेव उकारस्य एकारो न जातः । तथा अदन्तवदतिदेशात् ५०१ सूत्रेण दीर्घप्राप्तिरपि ६१४ सूत्रेण निषिद्धा ।

★ अथ स्यादि प्रत्ययों को होने वाली विधि [ग] ★

स्यादि प्रत्ययों के ख-विभाग का पहले निरूपण किया जा चुका है, अब सूत्रकार उस के ग-विभाग का निरूपण कर रहे हैं—

५७९—**सि-प्रत्यय** के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में **तं, तु**ं **तुवं, तुह** और **तुमं** ये पाच आदेश होते हैं। जैसे—**त्वम् दृष्टः**=तं, तु', तुवं, तुह, तुमं दिट्ठो (तुझे देखा है) यहां पर सिप्रत्यय के साथ युष्मद् शब्द के स्थान में तं आदि पांच आदेश किए गए हैं।

५८०—**जस् प्रत्यय** के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में—**भे, तुब्भे, तुज्झ, तुम्ह, तुय्हे** और **उय्हे** ये ६ आदेश होते हैं। जैसे—**यूयम् तिष्ठत**=भे, तुब्भे, तुज्झ, तुम्ह, तुय्हे, उय्हे चिट्ठह (तुम विराज रहे हो) यहां पर युष्मद् शब्द की प्रथमा विभक्ति के बहुवचनान्त रूप बताए गए हैं। **५९३ सूत्र से ब्भ**

इस संयुक्त वर्ण के स्थान में **म्ह** और **ज्झ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। अतः—'**तुब्भे**' के साथ **तुम्हे** और **तुज्झे** ये दो रूप और बन जाने से युष्मद् शब्द की प्रथमाविभक्ति के ८ रूप बन जाते हैं।

५८१—युष्मद् शब्द के स्थान में **अम्-प्रत्यय** के साथ **तं, तु॑, तुमं, तुवं,** तुह, **तुमे** और **तुए** ये सात आदेश होते हैं। जैसे—**त्वां वन्दामि**=तं, तु॑, तुमं, तुवं, तुह, तुमे, तुए वन्दामि। (तुझे वन्दना करता हूं), ये युष्मद् शब्द की द्वितीया-विभक्ति के एकवचनान्त रूप दिखलाए गए हैं।

५८२—युष्मद् शब्द के स्थान में शस्-प्रत्यय के साथ **वो, तुज्झ, तुब्भे, तुय्हे, उय्हे** और **भे** ये ६ आदेश होते हैं। जैसे—**युष्मान् पश्यामि**=वो, तुज्झ, तुब्भे, **५९३ सूत्र से 'ब्भ' के स्थान में म्ह और ज्झ ये आदेश होने पर** तुम्हे, तुज्झे, तुय्हे, उय्हे, भे पेच्छामि (तुम को देखता हूं) ये युष्मद् शब्द की द्वितीया विभक्ति के बहुवचनान्त रूप होते हैं।

५८३—टा-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में—**भे, दि, दे, ते, तइ,** तए, **तुमं, तुमइ, तुमए, तुमे** और **तुमाइ** ये ११ आदेश होते हैं। जैसे—**त्वया जल्पितम्**=भे, दि, दे, ते, तइ, तए, तुमं, तुमइ, तुमए, तुमे, तुमाइ जम्पिअं (तू ने कहा)ये युष्मद् शब्द की तृतीया-विभक्ति के एक-वचनान्त रूप होते हैं।

५८४—**भिस्**-प्रत्यय के साथ युष्मद् शब्द के स्थान में **भे, तुब्भेहिं, उज्झेहिं, उम्हेहिं, तुय्हेहिं** और **उय्हेहिं** ये ६ आदेश होते हैं। जैसे—**युष्माभिः भुक्तम्**=भे, तुब्भेहिं (**५९३ सूत्र से ब्भ इस संयुक्त वर्ण के स्थान में म्ह, ज्झ ये दो आदेश होने पर**) तुम्हेहिं, तुज्झेहिं, उज्झेहिं, उम्हेहिं, तुय्हेहिं उय्हेहिं भुत्तं (तुम ने भोजन किया) ये युष्मद् शब्द की तृतीया विभक्ति के एकवचनान्त रूप हैं।

५८५—यदि पञ्चमी विभक्ति का एक वचन ङसि-प्रत्यय आगे पड़ा हो तो **युष्मद्** शब्द के स्थान में—**तइ, तुव, तुम, तुह** और **तुब्भ** ये पांच आदेश होते हैं। ६१३ सूत्र से अदन्तवद् अतिदेश होने से ४९७ सूत्र द्वारा ङसि प्रत्यय के स्थान में-**त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो** और **लुक्** ये ६ आदेश पूर्व की भाँति होते ही हैं। जैसे—**त्वत्**=तइत्तो, तुवत्तो, तुमत्तो, तुहत्तो, तुब्भत्तो, **५९३—सूत्रोक्त कार्य होने से** तुम्हत्तो, तुज्झत्तो (तुम से) इसी प्रकार दो, दु, हि, हिन्तो और लुक् इन आदेशों में भी रूपों की कल्पना कर लेनी चाहिए। भाव यह है कि प्रस्तुत सूत्र से युष्मद् शब्द की पंचमी विभक्ति के एक वचन में युष्मद् शब्द को होने वाले पांच तथा ब्भ के स्थान में होने वाले म्ह और ज्झ ये दो आदेश जोड़ लेने से ये सब सात आदेश होते हैं और उसके ङसि प्रत्यय के स्थान में ४९७ सूत्र द्वारा त्तो आदि ६ आदेश करने का विधान है। इस तरह सात को ६ से गुणा करने पर ४२ रूप बन जाते हैं। जैसे—**१—तइत्तो, २—तईओ, ३—तईउ, ४—तईहि, ५—तईहिन्तो, ६—तई, ७-तुवत्तो, ८—तुवाओ, ९—तुवाउ, १०—तुवाहि, ११—तुवाहिन्तो, १२—तुवा, १३—तुमत्तो, १४—तुमाओ, १५—तुमाउ, १६—तुमाहि, १७—तुमाहिन्तो, १८—तुमा, १९—तुहत्तो,** २०—**तुहाओ,** २१—**तुहाउ,** २२—**तुहाहि,** २३—**तुहान्तो,** २४—**तुहा,** २५—**तुब्भत्तो,** २६—**तुब्भाओ,** २७—**तुब्भाउ,** २८—**तुब्भाहि,** २९—**तुब्भाहितो,** ३०—**तुब्भा, इसी** प्रकार ब्भ के स्थान में होने वाले **म्ह** और **ज्झ** इन आदेशों के रूपों की कल्पना भी कर लेनी चाहिए। वृत्तिकार फरमाते है कि '**तत्तो**' यह रूप तो **त्वत्तः** (तुझ से) इस शब्द के वकार का लोप कर देने के अनन्तर निष्पन्न हो जाता है।

५८६—ङसि-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में—**१—तुय्ह,२—तुब्भ** और **३—तहिन्तो,** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—**त्वद् आगतः**=तुम्ह, तुब्भ, तहिन्तो आगओ (तुझ से आया हुआ) ५९३ सूत्रोक्त कार्य के होने से—**तुम्ह** और **तुज्झ** ये दो रूप और बन जाते हैं।

५८७—यदि भ्यस् प्रत्यय परे पड़ा हो तो **युष्मद्** शब्द के स्थान **में—१—तुब्भ**, २—**तुय्ह**, ३—**उय्ह और ४—उम्ह** ये चार आदेश होते हैं। भ्यस् प्रत्यय के स्थान में ४९८ सूत्र से होने वाले **त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो** और **सुन्तो** ये आदेश पूर्व की भाँति होते ही हैं। जैसे—**युष्मत्**=तुब्भत्तो, तुय्हत्तो, उय्हत्तो, उम्हत्तो, इसी प्रकार **दो, दु, हि, हिन्तो** और **सुन्तो** इन आदेशों के उदाहरणों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए। ५९३ सूत्र से '**ब्भ**' के स्थान में म्ह और '**ज्झ**' ये दो आदेश हो जाने पर-**तम्हत्तो** और **तुज्झत्तो** (तुम से) ये रूप भी बन जाते हैं।

५८८—षष्ठी विभक्ति के एकवचन ङस् प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में—**तइ, त, ते, तुम्हं, तुह, तुहं, तुव, तुम, तुमे, तुमो, तुमाइ, दि, दे, इ, ए, तुब्भ, उब्भ** और **उय्ह** ये १८ आदेश होते हैं। जैसे—**तव धनम्**=तइ, तु, ते, तुम्हं, तुह, तुहं, तुव, तुम, तुमे, तुमो, तुमाइ, दि, दे, इ, ए, तुब्भ, उब्भ, उय्ह धणं (तेरा धन है) ये छठी विभक्ति के एकवचनान्त रूप होते हैं। जब ५९३ सूत्र से '**ब्भ**' इस संयुक्त वर्ण के स्थान में '**म्ह**' तथा '**ज्झ**' ये दो आदेश हो जाते हैं, तब इसके—**तुम्ह, तुज्झ, उम्ह, उज्झ** ये चार रूप और बन जाते हैं। पूर्व के १८ रूप और चार ये, इन सब को मिला कर २२ रूप हो जाते हैं।

५८९—आम्-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में—**तु, वो, भे, तुब्भ, तुब्भं, तुब्भाण, तुवाण, तुमाण, तुहाण, उम्हाण** ये १० आदेश होते है। जैसे—**युष्माकं धनम्**=तु, वो, भे,तुब्भ, तुब्भं, तुब्भाण, तुवाण, तुमाण, तुहाण, उम्हाण, **२७ सूत्र से णकार के अन्त में अनुस्वार का आगम कर लेने पर**—तुब्भाणं, तुवाणं, तुमाणं, तुहाणं, उम्हाणं **तथा ५९३ सूत्र से ब्भ इस संयुक्त वर्ण के स्थान पर** 'म्ह' और 'ज्झ' ये दो आदेश कर देने पर तुम्ह, तुज्झ, तुम्हं, तुज्झं, तुम्हाणं, तुम्हाण, तुज्झाणं, तुज्झाण धणं (तुम सब का धन है), इस तरह सब को मिला कर युष्मद् शब्द की छठी विभक्ति के बहुवचनान्त २३ रूप होते हैं।

५९०—सप्तमी विभक्ति के एक वचन ङि-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के साथ—**तुमे, तुमए, तुमाइ, तइ** और **तए** ये पांच आदेश होते हैं। जैसे—**त्वयि स्थितम्**=तुमे, तुमए, तुमाइ, तइ, तए ठिअं (तुझ में रहा हुआ) ये युष्मद् शब्द की सप्तमी विभक्ति के एकवचनान्त रूप होते हैं।

५९१—यदि ङि-प्रत्यय परे पड़ा हो तो **युष्मद्** शब्द के स्थान में **तु, तुव, तुम,तुह** और **तुब्भ** ये पांच आदेश होते हैं। ५०० सूत्र से ङि-प्रत्यय के स्थान में होने वाले कार्य पहले की भांति होते ही हैं। जैसे—**त्वयि**=तुम्मि, तुवम्मि, तुमम्मि, तुहम्मि, तुब्भम्मि, **५९३ सूत्र द्वारा उक्त कार्य होने पर** तुम्हम्मि, तुज्झम्मि (तुझ में) ये रूप बन जाते हैं।

५९२—यदि सुप्-प्रत्यय परे पड़ा हो तो **युष्मद्** शब्द के स्थान में **तु, तुव, तुम, तुह** और **तुब्भ** ये पांच आदेश होते हैं। जैसे—**युष्मासु**=तुसु, तुवेसु, तुमेसु, तुहेसु, तुब्भेसु, **५९३ सूत्र से 'ब्भ' के स्थान में म्ह और ज्झ ये दो आदेश हो जाने पर**—तुम्हेसु और तुज्झेसु (तुम सब में) ये रूप बनते हैं। कई एक आचार्य सुप्-प्रत्यय के परे रहने पर अकार को एकारादेश विकल्प से मानते हैं। उन के मत में—**तुवसु, तुमसु, तुहसु, तुब्भसु, तुम्हसु, तुज्झसु** ये रूप भी बन जाते हैं। दूसरे आचार्य **तुब्भ** के अकार को आकारादेश स्वीकार करते हैं। उन के मत में—**तुब्भासु, तुम्हासु, तुज्झासु** ये भी रूप होते हैं।

५९३—**युष्मद्** शब्द के स्थान में होने वाले आदेशों में जो द्विरुक्त **भकार** है, उस के स्थान में **म्ह** और **ज्झ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। वैकल्पिक होने से जहां ये आदेश नहीं होते, वहां पर वे ही आदेश रहते हैं। इन के उदाहरण पीछे यथास्थान दिए जा चुके हैं।

५९४—सि-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में-**म्मि, अम्मि, अम्हि, हं, अहं** और **अहयं** ये ६ आदेश होते हैं। जैसे—**१—अद्याहं हासिता सखि** ! तेन=अज्ज म्मि हासिआ मामि ! तेण (हे सखि ! आज उसने मुझे हंसाया है), २—**उन्नम नाहं कुपिता**=उन्नम न अम्मि कुविआ (तुम उठो, मैं रुष्ट नहीं हूं), ३—**अहं करोमि**=अम्हि करेमि (मैं करता हूं), ४—**येन अहं विद्धा**=जेण हं विद्धा (जिस से मैं व्यथित हूं), ५—**किं प्रमृष्टे अहम्**=किं पम्हुट्ठम्मि अहं (पोंछ देने से अर्थात् साफ करने पर मैं क्या), ६—**अहं कृत-प्रणामः**=अहयं कय-प्पणामो (मैं कृतप्रणाम हूं) यहां पर सि-प्रत्यय के साथ अस्मद् शब्द के स्थान में 'म्मि' आदि आदेश किए गए हैं।

५९५—जस्-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में-**अम्ह, अम्हे, अम्हो, मो, वयं** और **भे** ये ६ आदेश होते हैं। जैसे—**वयं भणामः**=अम्ह, अम्हे, अम्हो, मो, वयं, भे भणामो (हम सब बोलते हैं) ये अस्मद् शब्द की प्रथमा-विभक्ति के बहुवचनान्त रूप होते हैं।

५९६—अम्-प्रत्यय के साथ अस्मद् शब्द के स्थान में—**णे, णं, मि, अम्मि, अम्ह, मम्ह, मं, ममं, मिमं** और **अहं** ये दस आदेश होते हैं। जैसे—**माम् पश्य**=णे, णं, मि, अम्मि, अम्ह, मम्ह, मं, ममं, मिमं, अहं पेच्छ (मुझ को देखो) ये अस्मद् शब्द की द्वितीया-विभक्ति के एक-वचनान्त-रूप होते हैं।

५९७—शस् प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में **अम्हे, अम्हो, अम्ह** और **णे** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—**अस्मान् पश्य**=अम्हे, अम्हो, अम्ह, णे पेच्छ (हम को देखो) ये अस्मद् शब्द की द्वितीया-विभक्ति के बहुवचनान्त रूप हैं।

५९८—टा-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में **मि, मे, ममं, ममए, ममाइ, मइ, मए, मयाइ** और **णे**, ये ९ आदेश होते हैं। जैसे—**मया कृतम्**=मि, मे, ममं, ममए, ममाइ, मइ, मए, मयाइ, णे कयं (मैंने किया) ये अस्मद् शब्द की तृतीया विभक्ति के एक-वचनान्त रूप होते हैं।

५९९—भिस्-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में—**अम्हेहि, अम्हाहि, अम्ह, अम्हे** और **णे** ये पांच आदेश होते हैं। जैसे—**अस्माभिः कृतम्**=अम्हेहि, अम्हाहि, अम्ह, अम्हे, णे कयं (हम ने किया) ये रूप अस्मद् शब्द की तृतीया विभक्ति के एक-वचन के होते हैं।

६००—पञ्चमी विभक्ति के एक-वचन (ङसि-प्रत्यय) के परे रहने पर **अस्मद्** शब्द के स्थान में-**मइ, मम, मह** और **मज्झ**, ये चार आदेश होते हैं। ङसि-प्रत्यय के स्थान में **त्तो** और **दो** आदि जो आदेश होते हैं, वे पहले की भांति ही कर लेने चाहिएं। जैसे—**मत् आगतः**=मइत्तो, ममत्तो, महत्तो, मज्झत्तो आगओ (मुझ से आया हुआ) इसी प्रकार ङसि-प्रत्यय के स्थान में होने वाले **दो, दु, हि, हिन्तो** और **लुक्** इन आदेशों के उदाहरण भी समझ लेने चाहिएं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि '**मत्तो**' यह रूप तो '**मत्तः**' इस शब्द से बन जाता है।

६०१—यदि भ्यस् प्रत्यय परे हो तो **अस्मद्** शब्द के स्थान में **मम** और **अम्ह** ये दो आदेश होते हैं। भ्यस् के स्थान में जो कार्य होता है, वह पहले की भांति हो ही जाएगा। जैसे—**अस्मत्**=ममत्तो, अम्हत्तो, ममाहिन्तो, अम्हाहिन्तो, ममासुन्तो, अम्हासुन्तो, ममेहिन्तो, अम्हेहिन्तो, ममेसुन्तो, अम्हेसुन्तो (हम से) ये सब रूप अस्मद् शब्द की पंचमी विभक्ति के बहुवचन के होते हैं।

६०२—छठी विभक्ति के एक वचन ङस्-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में—**मे, मइ, मम, मह, महं, मज्झ, मज्झं, अम्ह** और अम्हं ये नौ आदेश होते हैं। जैसे—**मम धनम्**=मे, मइ, मम, मह, महं, मज्झ, मज्झं, अम्ह, अम्हं धणं (मेरा धन) ये अस्मद् शब्द की षष्ठी विभक्ति के एकवचनान्त रूप होते हैं।

६०३—आम्-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में—**णे, णो, मज्झ, अम्ह, अम्हं, अम्हे, अम्हो, अम्हाण, ममाण, महाण** और **मज्झाण** ये ११ आदेश होते हैं। जैसे—**अस्माकं धनम्**=णे, णो, मज्झ, अम्ह, अम्हं, अम्हे, अम्हो, अम्हाण, ममाण, महाण, मज्झाण धणं (हमारा धन है) जहां २६ सूत्र से 'ण' के अन्त में अनुस्वार का आगम हो गया, वहां पर **अम्हाणं, ममाणं, महाणं** और **मज्झाणं** ये रूप भी बनते हैं। इस तरह छठी विभक्ति के बहुवचन में १५ रूप बन जाते हैं।

६०४—ङि-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में—**मि, मइ, ममाइ, मए** और **मे** ये पांच आदेश होते हैं। जैसे—**मयि स्थितम्**=मि, मइ, ममाइ, मए, मे ठिअं (मुझ में रहा हुआ) यहां ङि-प्रत्यय-सहित अस्मद् शब्द के स्थान में 'मि' आदि ये पांच आदेश किये गए हैं।

६०५—यदि ङि-प्रत्यय आगे पड़ा हो तो **अस्मद्** शब्द के स्थान में **अम्ह, मम, मह** और **मज्झ** ये चार आदेश होते हैं। तथा ङि-प्रत्यय के स्थान में होने वाले आदेश भी पिछले सूत्रों से हो जाते हैं। **जैसे—मयि स्थितम्**=अम्हम्मि, ममम्मि, महम्मि, मज्झम्मि ठिअं (मुझ में रहा हुआ) यहां पर ङि-प्रत्यय के आगे रहने पर अस्मद् शब्द के स्थान में अम्ह आदि चार आदेश किये गए हैं।

६०६—यदि सुप्-प्रत्यय परे पड़ा हो तो **अस्मद्** शब्द के स्थान में—**अम्ह, मम, मह** और **मज्झ** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—**अस्मासु**=अम्हेसु, ममेसु, महेसु, मज्झेसु (हम में) यहाँ पर सुप्-प्रत्यय परे रहने पर अस्मद् शब्द के स्थान में 'अम्ह' आदि आदेश किये गए हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि ५०४ सूत्र से अकार के स्थान में जो एकार किया जाता है, वह वैकल्पिक होता है। उनके मत में जहां अकार को एकार नहीं किया जाता, वहां पर **अम्हसु, ममसु, महसु** तथा **मज्झसु** ये रूप बनते हैं। कोई आचार्य **अम्हसु**' के अन्त्य अकार को आकारादेश मानते हैं, आकारादेश करने पर—**अम्हासु** ऐसा रूप सिद्ध होता है।

६०७—यदि तृतीया आदि विभक्तियों के प्रत्यय आगे पड़े हों तो त्रिशब्द के स्थान **'ती'** यह आदेश होता है। जैसे—१—**त्रिभिः कृतम्**=तीहिं कयं (तीन व्यक्तियों ने किया), २—**त्रिभ्यः आगतः**=तीहिन्तो आगओ (तीन व्यक्तियों से आया हुआ), ३—**त्रयाणां धनम्**=तिण्हं धणं (तीन व्यक्तियों का धन है), ४—**त्रिषु स्थितम्**=तीसु ठिअं (तीन व्यक्तियों में रहा हुआ) यहां पर **'त्रि'** शब्द को 'ती' यह आदेश किया गया है।

६०८—यदि तृतीया आदि विभक्तियां आगे पड़ी हों तो द्विशब्द के स्थान में **दो, वे** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**द्वाभ्याम् कृतम्**=दोहि वेहि कयं (दो व्यक्तियों ने किया), २—**द्वाभ्याम् आगतः**=दोहिन्तो, वेहिन्तो आगओ (दो व्यक्तियों से आया हुआ), ३—**द्वयोः धनम्**=दोण्हं, वेण्हं धणं (दो व्यक्तियों का धन है), ४—**द्वयोः स्थितम्**=दोसु वेसु ठियं (दो व्यक्तियों में रहा हुआ) यहां पर द्वि शब्द को दो और वे ये दो आदेश किये गए हैं।

६०९—जस् और शस् इन प्रत्ययों के साथ द्वि शब्द के स्थान में **दुवे, दोण्णि, वेण्णि, दो** और **वे** ये पांच आदेश होते हैं। जैसे—**द्वौ स्थितौ, द्वौ पश्य वा**=दुवे, दोण्णि, वेण्णि, दो, वे ठिआ, पेच्छ वा (दो व्यक्ति विराजमान हैं, अथवा दो व्यक्तियों को देखो) यहां पर द्वि शब्द को दुवे आदि पांच आदेश किये गए हैं। जहां पर संयोग परे होने के कारण ८४ सूत्र से ओकार को उकार कर दिया गया, वहां पर—**दुण्णि, विण्णि** ये रूप बन जाते हैं।

६१०—जस् और शस् इन प्रत्ययों के साथ त्रिशब्द के स्थान में **'तिण्णि'** यह आदेश होता है।

जैसे—**त्रयः स्थिताः, त्रीन् पश्य वा**=तिण्णि ठिआ, तिण्णि पेच्छ वा (तीन विराजमान हैं, अथवा तीन को देखो) यहां पर त्रिशब्द को 'तिण्णि' यह आदेश किया गया है।

६११—जस् और शस् इन प्रत्ययों के साथ चतुर् शब्द के स्थान में—**१—चत्तारो, २—चउरो** और **३—चत्तारि** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—**चत्वारः तिष्ठन्ति, चतुरः पश्य वा**=चत्तारो, चउरो, चत्तारि चिट्ठन्ति, पेच्छ वा (चार व्यक्ति विराजमान हैं, अथवा चार व्यक्तियों को देखो) यहां चतुर् शब्द को चत्तारो आदि तीन आदेश किये गए हैं।

६१२—संख्यावाचक शब्द से परे यदि **आम्** प्रत्यय पड़ा हो तो उसे **'ण्ह'** और **'ण्हं'** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**१—द्वयोः**=दोण्ह (दो व्यक्तियों का), **२—त्रयाणाम्**=तिण्ह(तीन व्यक्तियों का), **३—चतुर्णाम्**=चउण्ह (चार व्यक्तियों का), **४—पञ्चानाम्**=पञ्चण्ह (पांच व्यक्तियों का), **५—षण्णाम्**=छण्ह (छह व्यक्तियों का), **६—सप्तानाम्**=सत्तण्ह (सात व्यक्तियों का), **७—अष्टानाम्**=अट्ठण्ह (आठ व्यक्तियों का), जहां पर आम्-प्रत्यय को'ण्हं' यह आदेश किया जाता है, वहां पर **दोण्हं, तिण्हं, चउण्हं, पञ्चण्हं, छण्हं, सत्तण्हं, अट्ठण्हं** ये रूप बनते हैं, **८—नवानाम्**=नवण्हं (नव का), **१०—दशानाम्**=दसण्हं (दस का), **११—पञ्चदशानां दिवसानां**=पण्णरसण्हं दिवसाणं (१५ दिनों का), **१२—अष्टादशानां श्रमणसाहस्रीणाम्**=अट्ठारसण्हं समण-साहस्सीणं(१८ हजार साधुओं का), **१३—कतीनाम्**=कइण्हं (कितनों का) यहां पर संख्यावाचक शब्दों के आम्-प्रत्यय को 'ण्ह' और 'ण्हं' ये दो आदेश किये गए हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि **बहुलाधिकार** के कारण **विंशति** आदि शब्दों के आम्-प्रत्यय को **'ण्ह'** आदि आदेश नहीं होते।

६१३—जो **उपयोग**—व्यवहार में आ जाए वह **उपयुक्त** होता है और जिसका उपयोग न किया जाता हो या जिस के सम्बन्ध में कुछ न कहा गया हो वह **शेष** कहलाता है। भाव यह है कि पीछे के सूत्रों में **आकारान्त, इकारान्त** तथा **उकारान्त** आदि शब्दों को लेकर स्यादि-प्रत्ययों से सम्बन्धित जिन-जिन कार्यों का निर्देश नहीं किया गया है, वे सब कार्य **शेष** शब्द से संसूचित किए गए हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि वे सब शेष कार्य **अदन्तवद्** जानने चाहिएं। अर्थात् अकारान्त शब्दों को लेकर स्यादि-प्रत्ययों से सम्बन्धित जिन-जिन विधियों=कार्यों का निर्देश पीछे किया गया है उन-उन की भांति आकारान्तादि शब्दों से आए स्यादि प्रत्ययों को भी कार्य कर लेने चाहिएं। अकारान्त शब्दों की तरह आकारान्त आदि शब्दों के स्थान में कार्य करने को ही—**"अदन्तवद् अतिदेश"** कहते हैं। ४९३ सूत्र अकार से परे आए जस् और शस् प्रत्यय का लोप करता है। यही लोप-कार्य प्रस्तुत सूत्र द्वारा आकारान्तादि शब्दों से भी हो जाता है। जैसे—**१—मालाः**=माला, **२—गिरयः**=गिरी, **३—गुरवः**=गुरू, **४—सख्यः**=सही, **५—वध्वः राजन्ते, पश्य वा**=वहू रेहन्ति पेच्छ वा (माला, पहाड़, गुरुमहाराज, सखी और वधू-पत्नी, ये सब शोभा पा रहे हैं, या इन को देखो) यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा अदन्तवद् अतिदेश (अकारान्त शब्दों के तुल्य कार्य) होने से ४९३ सूत्र द्वारा जस् और शस् इन प्रत्ययों का लोप किया गया है। ४९४ सूत्र का **कार्यातिदेश** जैसे—**१—गिरिम्**=गिरिं, **२—गुरुम्**=गुरुं, **३—सखीम्**=सहिं, **४—वधूम्**=वहुं, **५—ग्रामण्यम्**=गामणिं, **६—खलप्वं पश्य**=खलपुं पेच्छ (पहाड़, गुरु, सखी, वधू, ग्राम के मुखिया तथा दुष्टों को पवित्र करने वाले को देखो) यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा अदन्तवद् अतिदेश होने से ४९४ सूत्र के द्वारा अम्-प्रत्यय के अकार का लोप किया गया है। ४९५ सूत्र का **कार्यातिदेश** जैसे—**१—हाहा कृतम्**=हाहाण कयं (हाहा—गन्धर्व जाति के देव ने किया), **२—मालानाम्**=मालाण,

३—गिरीणाम्=गिरीण, **४—गुरूणाम्**=गुरूण, **५—सखीनाम्**=सहीण, **६—वधूनाम् धनम्**=वहूण धणं (माला और गुरु आदि का धन), यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा अदन्तवद् अतिदेश होने से ४९५ सूत्र से अम् तथा आम् प्रत्यय के स्थान में 'ण' यह आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि ५१३ सूत्र से टा-प्रत्यय के स्थान में 'णा' तथा ५१८ सूत्र में टा के स्थान में **अत्, आत्, इत् और एत्** इन चार आदेशों की विधि (कार्य) पीछे यथास्थान कही जा चुकी है। भाव यह है कि प्रस्तुत [६१३] सूत्र आकारान्तादि शब्दों में अदन्तवद् कार्य का अवश्य निर्देश करता है, किन्तु इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों को जो कार्य कहे गये हैं, उनके साथ इस सूत्र का कोई सम्बन्ध नहीं है। ४९६ सूत्र का **कार्यातिदेश** जैसे—**१—मालाभिः**=मालाहि, **२—गिरिभिः**=गिरीहि, **३—गुरुभिः**=गुरूहि, **४—सखीभिः**=सहीहि, **५—वधूभिः कृतम्**=वहूहि कयं (माला और गिरि आदि ने किया) यहां प्रस्तुत सूत्र द्वारा **अदन्तवद् अतिदेश** होने से ४९६ सूत्र से भिस् के स्थान में **हि** यह आदेश किया गया है। इसी सूत्र से भिस् के स्थान में होने वाले **सानुनासिक** (अनुनासिक सहित) तथा **सानुस्वार** (अनुस्वार सहित) हि के उदाहरण भी कल्पित कर लेने चाहिएं। ४९७ सूत्र का **कार्यातिदेश** ऐसा होता है। जैसे—**१—मालायाः**=मालाओ, मालाउ, मालाहिन्तो, **२—बुद्धेः**=बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धीहिन्तो, **३—धेनोः**=धेणूओ, धेणूउ, धेणूहिन्तो आगओ(माला आदि से आया हुआ)यहां पर प्रस्तुत सूत्र से अदन्तवद् अतिदेश होने के कारण **४९७** सूत्र ङसि प्रत्यय के स्थान में **दो दु हिन्तो** ये आदेश किए गए हैं। इसी सूत्र से ङसि प्रत्यय के स्थान में होने वाले **हि** इस आदेश का ६१६ सूत्र से, तथा **लुक्** इस आदेश का ६१५ सूत्र से आगे निषेध किया जाने वाला है। **४९८** सूत्र का **कार्यातिदेश** जैसे—**१—मालाभ्यः**=मालाहिन्तो, मालासुन्तो इसी प्रकार=**गिरिभ्यः**=गिरीहिन्तो आदि रूप बनते हैं। यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा अदन्तवद् **अतिदेश** का विधान होने से ४९८ सूत्र द्वारा भ्यस् प्रत्यय के स्थान में **हिन्तो** और **सुन्तो** ये दो आदेश किए गए हैं। इसी सूत्र से भ्यस् प्रत्यय के स्थान में प्राप्त होने वाले **हि** इस आदेश का तो ६१६ सूत्र से निषेध किया जाने वाला है। ४९९ सूत्र का **कार्यातिदेश जैसे—१—गिरेः**=गिरिस्स, **२—गुरोः**=गुरुस्स, **३—दध्नः**=दहिस्स, **४—मधुनः**=महुस्स (गिरि आदि का), यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा अदन्तवद् अतिदेश का विधान होने से ४९९ सूत्र से ङस्-प्रत्यय के स्थान में '**स्स**' यह आदेश किया गया है। स्त्रीलिङ्ग में तो ५१८ सूत्र से ङस् के स्थान में होने वाले अद् और आद् आदि आदेशों का निर्देश पीछे कर दिया गया है। ५०० सूत्र का **कार्यातिदेश** जैसे—**१—गिरौ**=गिरिम्मि, **२—गुरौ**=गुरुम्मि, **३—दध्नि**=दहिम्मि, **४—मधुनि**=महुम्मि (गिरि आदि में), यहां पर प्रस्तुत सूत्र से **अदन्तवद्** अतिदेश का विधान होने के कारण ५०० सूत्र से ङि-प्रत्यय के स्थान में **म्मि** यह आदेश किया गया है। इसी सूत्र से ङि-प्रत्यय के स्थान में **डे** यह आदेश भी प्राप्त होता है किन्तु ६१७ सूत्र से उस आदेश का निषेध किया जाने वाला है। स्त्रीलिङ्ग में तो ५१८ सूत्र से ङि-प्रत्यय के स्थान में होने वाले **अत्,आत्, इत्** और **एत्** इन चार आदेशों का वर्णन पीछे कर दिया गया है। ५०१ सूत्र का **कार्यातिदेश जैसे—१—गिरयः, गुरवः तिष्ठन्ति**= गिरी, गुरू चिट्ठन्ति (पहाड़, गुरुमहाराज विद्यमान हैं), **२—गिरीन्, गुरून्**=गिरी, गुरू, (गिरियों को, गुरुओं को), **३—गिरेः गुरोः आगतः**=गिरीओ, गुरूओ आगओ (पहाड़ से, गुरु महाराज से आया हुआ), **४—गिरीणाम् गुरूणाम् धनम्**=गिरीण, गुरूण धणं (पहाड़ों की, या गुरुमहाराज की सम्पत्ति), यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा **अदन्तवद् अतिदेश** का विधान होने से ५०१ सूत्र से जस्, शस्, ङसि और आम् इन प्रत्ययों के परे रहने पर इकार और उकार को दीर्घ किया गया है। ५०२ सूत्र

का **कार्यातिदेश** नहीं होता है। क्योंकि भ्यस् प्रत्यय परे रहने ५०५ सूत्र इकार और उकार को नित्य रूप से दीर्घ का विधान करता है। इसके अतिरिक्त, ५०३ तथा ५०४ सूत्र का **कार्यातिदेश** भी नहीं होता, क्योंकि इसका निषेध ६१८ सूत्र से किया जा रहा है।

६१४—यदि जस्, शस् और ङसि प्रत्यय का आदेशभूत **'णो'** आगे पडा हो तो इकारान्त और उकारान्त शब्दों के इकार और उकार को दीर्घ नहीं होता है। जैसे—**१—अग्नयः, अग्नीन्,, अग्नेः**= अग्गिणो (अग्नियां, अग्नियों को, अग्नि का), **२—वायवः, वायून्, वायोः** =वाउणो (हवाएं, हवाओं को, हवा का) यहां 'णो' यह आदेश परे होने पर इकार और उकार को दीर्घ नहीं हो सका। प्रश्न हो सकता है, कि सूत्रकारने **'णो'** यह पद क्यों पढ़ा ? उत्तर में निवेदन है कि **१—अग्नयः**=अग्गी, **२—अग्नेः**= अग्गीओ, यहां पर **'णो'** इस आदेश के अभाव में भी दीर्घ का निषेध न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने 'णो' इस पद का ग्रहण किया है।

६१५—आकारान्तादि शब्दों से, ६१३ सूत्र द्वारा **अदन्तवद्** अतिदेश होने के कारण, ङसि-प्रत्यय के स्थान में ४९७ सूत्र से होने वाला **लुगादेश** नहीं होता। जैसे—**१—मालायाः आगतः**= मालत्तो, मालाओ, मालाउ, मालाहिन्तो आगओ (माला से आया हुआ), **२—अग्नेः**=अग्गीओ (अग्नि से), **३—वायोः**=वाऊओ (वायु से) यहां पर **'ङसि'** को लुगादेश नहीं हो सका।

६१६—आकारान्तादि शब्दों से, ६१३ सूत्र द्वारा **अदन्तवद्** अतिदेश होने के कारण ४९८ सूत्र से भ्यस्-प्रत्यय के स्थान में तथा ४९७ सूत्र से ङसि-प्रत्यय के स्थान में होने वाला **'हि'** यह आदेश नहीं होता। जैसे—**१—मालाभ्यः**=मालाहिन्तो, मालासुन्तो (मालाओं से), **२—अग्निभ्यः**= अग्गीहिन्तो, अग्गीसुन्तो (अग्नियों से), **३—मालायाः**=मालाओ, मालाउ, मालाहिन्तो, (माला से) **४—अग्नेः**=अग्गीओ (अग्नि से) यहां पर ङसि तथा भ्यस् के स्थान में **'हि'** यह आदेश नहीं हो सका।

६१७—आकारान्तादि शब्दों से, ६१३ सूत्रोक्त विधान के कारण ५०० सूत्र से ङि-प्रत्यय के स्थान में होने वाला **'डे'** यह आदेश नहीं होता। जैसे—**१—अग्नौ**=अग्गिम्मि, **२—वायौ**=वाउम्मि, **३—दध्नि**=दहिम्मि, **४—मधुनि**=महुम्मि। यहां पर ङि के स्थान में **डे** (ए), यह आदेश नहीं हो सका।

६१८—आकारान्तादि शब्दों से, ६१३ सूत्रोक्त विधान के द्वारा **टादेश ण** तथा शस्प्रत्यय परे रहने पर ५०३ सूत्र से, तथा भिस्, भ्यस् और सुप् प्रत्यय परे रहने पर ५०४ सूत्रसे होने वाला, अकार के स्थान में **एकारादेश** नहीं होता। जैसे—**१—हाहा कृतम्**=हाहाण कयं (गन्धर्व से किया हुआ), **२—मालाः पश्य**=मालाओ पेच्छ (मालाओं को देखो), **३—मालाभिः कृतम्**=मालाहि कयं (मालाओं के द्वारा किया हुआ), **४—मालाभ्यः आगतः**=मालाहिन्तो, मालासुन्तो आगओ (यह मालाओं से आया हुआ है), **५—मालासु स्थितम्**=मालासु ठिअं (यह मालाओं में रहा हुआ है) इसी प्रकार=**अग्नीन्**= अग्गिणो, **वायून्**=वाउणो, आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं। यहां पर टा, शस्, भिस्, भ्यस् और सुप् इन प्रत्ययों के परे रहने पर भी अकार को एकार नहीं किया जा सका।

★ अथ कारक-विधिः ★

६१९—द्विवचनस्य बहुवचनम् । ८ । ३ । १३० । सर्वासां विभक्तीनां स्यादीनां त्यादीनां च द्विवचनस्य स्थाने बहुवचनं भवति। दोण्णि कुणन्ति। दुवे कुणन्ति। दोहिं। दोहिन्तो। दोसुन्तो। दोसु। हत्था। पाया। थणया। नयणा।

६२०—चतुर्थ्याः षष्ठी । ८ । ३ । १३१ । चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी भवति । मुणिस्स । मुणीण देइ । नमो देवस्स । देवाण ।

६२१—तादर्थ्य-ङेर्वा । ८ । ३ । १३२ । तादर्थ्यविहितस्य ङेश्चतुर्थ्येकवचनस्य स्थाने षष्ठो वा भवति । देवस्स देवाय । देवार्थमित्यर्थः । ङेरिति किम् ? देवाण ।

६२२—वधाड्डाइश्च वा । ८ । ३ । १३३ । वधशब्दात्परस्य तादर्थ्यङेर्डित् आइः षष्ठी च वा भवति । वहाइ वहस्स वहाय । वधार्थमित्यर्थः ।

६२३—क्वचिद् द्वितीयादेः । ८ । ३ । १३४ । द्वितीयादीनां विभक्तीनां स्थाने षष्ठी भवति क्वचित् । सीमाधरस्स वन्दे । तिस्सा मुहस्स भरिमो । अत्र द्वितीयायाः षष्ठी । धणस्स लद्धो । धनेन लब्ध इत्यर्थः । चिरस्स मुक्का । चिरेण मुक्तेत्यर्थः । तेसिमेअमणाइण्णं । तैरेदनाचरितम् । अत्र तृतीयायाः । चोरस्स बीहइ । चोराद् बिभेतीत्यर्थः । इअराइं जाण लहुअक्खराइं पायन्तिमिल्लसहिआण । पादान्तेन सहितेभ्यः इतराणीति । अत्र पञ्चम्याः । पिट्ठीए केस-भारो । अत्र सप्तम्याः ।

६२४—द्वितीया-तृतीययोः सप्तमी । ८ । ३ । १३५ । द्वितीया-तृतीययोः स्थाने क्वचित् सप्तमी भवति । गामे वसामि । नयरे न जामि । अत्र द्वितीयायाः । मइ वेविरीए मलिआइं । तिसु तेसु अलंकिया पुहवी । अत्र तृतीयायाः ।

६२५—पञ्चम्यास्तृतीया च । ८ । ३ । १३६ । पञ्चम्याः स्थाने क्वचित् तृतीया-सप्तम्यौ भवतः । चोरेण बीहइ । चोराद् बिभेतीत्यर्थः । अन्तेउरे रमिउमागओ राया । अन्तःपुराद् रन्त्वागत इत्यर्थः ।

६२६—सप्तम्या द्वितीया । ८ । ३ । १३७ । सप्तम्याः स्थाने क्वचिद् द्वितीया भवति । विज्जुज्जोयं भरइ रत्तिं । आर्षे तृतीयाऽपि दृश्यते । तेणं कालेणं । तेणं समएणं । तस्मिन् काले, तस्मिन् समये इत्यर्थः । प्रथमाया अपि द्वितीया दृश्यते । चउवीसं पि जिणवरा । चतुर्विंशतिरपि जिनवरा इत्यर्थः ।

★ अथ कारक-विधिः ★

कारक-प्रकरणे विभक्ति-सम्बन्धि-चिन्तनमुपन्यस्तम् । यथा—संस्कृतभाषाया मध्ये विभक्ति-विषयकं विस्तृतं विवेचनं दृश्यते तथा प्राकृत-भाषायामपि वर्तते न वा ? केन शब्देन सह कस्याः विभक्तेः प्रयोगो भवति ? इत्यादीनां प्रश्नानामत्र प्रतिवचनं ददात्याचार्यः ।

६१८—**द्वौ** । द्वि+औ । इत्यत्र ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६०९ सू० जसा सह द्विशब्दस्य स्थाने दुवे दोण्णि इत्यादेशौ, ततः **दुवे दोण्णि** इति भवति । **कुरुतः** । डुकृञ् करणे । कृ+तस् । द्विवचनस्य बहुवचने, ७३६ सू० कृधातोः कुण इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **कुणन्ति** इति भवति ।

द्वाभ्याम्। द्वि+भ्याम्। द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने, ६०९ सू० द्विशब्दस्य दो इत्यादेशे, ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे **दोहिं** इति भवति। **द्वयोः**। द्वि+ओस्=दो+भ्यस्। इत्यत्र अदन्तवदतिदेशात् ४९८ सू० भ्यसः हिन्तो सुन्तो इत्यादेशौ, ततः **दोहिन्तो दोसुन्तो** इति भवति। **द्वयोः**। द्वि+ओस्=दो+सुप् (सु)=**दोसु**, प्रक्रिया ६०८ सूत्रे द्रष्टव्या। **हस्तौ, पादौ, स्तनौ, नयनौ**। हस्त+औ, पाद+औ, स्तन+औ, नयन+औ। इत्यत्र ३१६ सू० स्तस्य स्थाने थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० दकारस्य ककारस्य च लोपे, १८० स० यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे हत्थ+औ, पाय+औ, थणय+औ, नयण+औ इति जाते, द्विवचनस्य बहुवचने, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे—**हत्था, पाया, थणया, नयणा** इति भवति।

६२०—**मुनये**। मुनि+ङे। इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६२० सू० ङे-प्रत्ययस्य ङस्-प्रत्यये जाते, अदन्तवदतिदेशात् ४९९ सू० ङसः 'स्स' इत्यादेशे **मुणिस्स** इति भवति। **मुनीभ्यः**। मुनि+भ्यस्=मुणि+आम्। अदन्तवदतिदेशात् ४९५ सू० आमः स्थाने णादेशे, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे **मुणीण** इति भवति। **ददाति**। दा+तिव्=देइ। प्रक्रिया ४७७ सूत्रे ज्ञेया। **नमो देवाय**। **नमः**—नमो। इत्यस्य प्रक्रिया ५३५ सूत्रे ज्ञेया। **देवाय**। देव+ङे। प्रस्तुतसूत्रेण चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठीविभक्तिर्जाता, ततः देव+ङस् इति स्थिते, ङसः स्स इत्यादेशे **देवस्स** इति भवति! **देवेभ्यः**। देव+भ्यस्=देव+आम्, पूर्ववदेव ४९५ सू० आमः स्थाने णादेशे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **देवाण** इति साध्यम्।

६२१—**देवाय**। देव+ङे। इत्यत्र ६२१ सू० तादर्थ्ये (तस्मै इदं तदर्थं तस्य भावः, तादर्थ्यम्, तस्मिन्) विहितस्य ङे-प्रत्ययस्य विकल्पेन षष्ठीविभक्तिर्भवति, ततः ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **देवस्स** षष्ठीविभक्त्यभावे **देवाय** इति भवति। प्रक्रिया संस्कृतसममेव बोध्या। **ङेरिति किम्**?। प्रस्तुत-सूत्रेण तादर्थ्यविहितस्य चतुर्थ्येकवचनस्यैव स्थाने षष्ठी विहिता न तु तादर्थ्यविहितस्य चतुर्थीबहु-वचनस्यापि। यथा—**देवेभ्यः**=देवाण, इत्यस्य प्रक्रिया ६२० सूत्रे ज्ञेया। अत्र चतुर्थी-विभक्ति-बहुवचनं विद्यतेऽतः प्रस्तुतसूत्रस्य वैकल्पिका प्रवृत्तिर्न जाता, प्रत्युत ६२० सूत्रेण नित्या प्रवृत्तिर्विहिता।

६२२—**वधाय**। वध+ङे। १८७ सू० धकारस्य हकारे, ६२२ सू० ङेप्रत्ययस्य डाइ (आइ) इत्यादेशः, षष्ठीविभक्तिश्च विकल्पेन जायते, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वहाइ** यत्र षष्ठीविभक्तिर्जाता तत्र वह+ङस् इति स्थिते, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **वहस्स** यत्र षष्ठीविभक्तिरपि न जाता तत्र **वधाय** इति संस्कृतशब्दादेव धकारस्य हकारं विधाय **वहाय** इति रूपं निष्पद्यते।

६२३—**सीमाधरम्**। सीमां धरतीति तम्। सीमाधर+अम्। ६२३ सू० द्वितीयायाः स्थाने षष्ठीविभक्तौ, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **सीमाधरस्स** इति भवति। **वन्दे**। क्रियापदमिदं संस्कृतसम-मेव प्राकृते प्रयुज्यते। **तस्याः**=तिस्सा, इत्यस्य प्रक्रिया ५५३ सूत्रे ज्ञेया। **मुखम्**। मुख+अम्। १८७ सू० खकारस्य हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण द्वितीयाविभक्तेः षष्ठीविभक्तौ, ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **मुहस्स** इति सिद्धम्। **बिभृमः**। डुभृञ् (भृ) धारणे। भृ+मस्। ९०५ सू० ऋवर्णस्य स्थाने अर इत्यादेशे, ६३३ सू० मसः मो इत्यादेशे, ६४४ सू० अकारस्य इकारे **भरिमो**, अथवा **स्मरामः**। स्मृ+मस्। ७४५ सू० स्मृ-धातोः स्थाने भर इत्यादेशे, ६४४ सू० अकारस्य इकारे, पूर्ववदेव **भरिमो** इति भवति। **धनेन**। धन+टा। २२८ सू० नकारस्य णकारे, प्रस्तुतसूत्रेण तृतीयास्थाने षष्ठी-विभक्तौ, ङसः स्स इत्यादेशे **धणस्स** इति जातम्। **लब्धः**। लब्ध+सि। ३४८ सू० बकारस्य लोपे, ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-

घकारस्य दकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **लद्धो** इति सिद्धम्। **चिरेण**। चिर+टा। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण तृतीयास्थाने षष्ठीविभक्तौ, ङसः स्स इत्यादेशे **चिरस्स** इति भवति। **मुक्ता**। मुक्ता +सि। इत्यत्र २७३ सू० क्तस्य ककारे, ३६० सू० ककार-द्वित्त्वे १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **मुक्का** इति भवति। **तैः**=तेर्सि, इत्यस्य प्रक्रिया ५५० सूत्रे ज्ञेया। **एतद्**=एग्रं, इत्यस्य प्रक्रिया ५७४ सूत्रे ज्ञेया। **अनाचीर्णम्**। न-कुत्सितमाचीर्णम्-ग्राचरितम्। अनाचीर्ण+सि। इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० चकारलोपे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्त्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अणाइण्णं** इति भवति। **चोरात्**। चोर+ङसि। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण पञ्चम्याः स्थाने षष्ठीविभक्तौ, ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **चोरस्स** इति भवति। **बिभेति**। ञिभी भये। भी+तिव्। ७२४ सू० भीधातोः स्थाने बीह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **बीहइ** इति भवति। **इतराणि**। इतर+जस्। १७७ स० जकारलोपे, ५१५ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे पूर्वदीर्घे च **इअराइं** इति भवति। **येषाम्**=जाण, इत्यस्य प्रक्रिया ५५० सूत्रे ज्ञेया। **लघ्वक्षराणि**। लघूनि च तान्यक्षराणि। लघुअक्षर+जस्। इत्यत्र १८७ सू० घकारस्य हकारे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, पूर्ववदेव **लहुअक्ख-राइं** इति भवति। **पादान्त-सहितेभ्यः**। पादस्य अन्तं तेन सहितेभ्यः। पादान्त—सहित+भ्यस्। इत्यत्र १७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ४६ सू० प्रथम-तकारस्याकारस्य इकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, बाहुल्येन तकारस्य सस्वर-मकारागमे, ४३५ सू० स्वार्थे डिल्ल (इल्ल) प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे—पायन्तिमिल्लसहित+भ्यस् इति जाते, १७७ सू० तकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण पञ्च-म्याः स्थाने षष्ठीविभक्तौ, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे, ४९५ सू० आमः णकारे **पायन्तिमिल्लसहि-आण** इति भवति। **पृष्ठे**। पृष्ठ+ङि। इत्यत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्त्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ३५ सू० पृष्ठशब्दस्य स्त्रीत्वे जाते, ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण सप्तम्याः स्थाने षष्ठीविभक्तौ; ५१८ सू० ङसः स्थाने एकारे **पिट्ठीए** इति भवति। **केशभारः**। केशभार+सि। इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **केसभारो** इति भवति।

६२४—ग्रामम्। ग्राम्+अम्। ६२४ सू० द्वितीयास्थाने सप्तमीविभक्तौ जातायाम्, ३५० सू० रेफलोपे, ५०० सू० ङेः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **गामे** इति भवति। **वसामि**। वस् निवासे। वस्+मिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,६४३ सू० अकारस्य आकारे,६३० सू० मिवः मि इत्यादेशे **वसामि** इति भवति। **नगरम्**। नगर+अम्। प्रस्तुतसूत्रेण द्वितीयास्थाने सप्तमीविभक्तौ, १७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, **गामेवत् नयरे** इति साध्यम्। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृत-सममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **यामि**=जामि, प्रक्रिया ४७५ सूत्रे ज्ञेया। **वेपित्र्या**। वेपनशीला इति वेपित्री तया। वेपित्री+टा। वेपृ कम्पने। वेप्+तृन्+टा। २३१ सू० पकारस्य वकारे, ४१६ सू० तृन्-प्रत्य-यस्य इर इत्यादेशे, ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे वेविरी+टा इति जाते, प्रस्तुत-सूत्रेण तृतीयास्थाने सप्तमीविभक्तौ, ५१८ सू० ङेः स्थाने ए इत्यादेशे **वेविरीए** इति भवति। **मलि-तानि**। मलित+जस्। १७७ सू० तकारलोपे, ५१५ सू० जसः इं इत्यादेशे पूर्वदीर्घे च **मलिआइं** इति भवति। **त्रिभिः**। त्रि+भिस्। ३५० सू० रेफलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण तृतीयास्थाने सप्तमी-विभक्तौ **तिसु** इति भवति। **तैः**। तद्+भिस्। ११ सू० दकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण भिसः सुप् (सु) इत्यादेशे, ५०४ सू० अ-

कारस्य एकारे **तेसु** इति भवति। **अलंकृता**। अलंकृता+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **अलंकिआ** इति भवति। **पृथिवी**=पुहवी, प्रक्रिया २१६ सूत्रे ज्ञेया।

६२५—**चोराद्**। चोर+ङसि। ६२५ सू० पञ्चम्याः तृतीयाविभक्तौ, ४९५ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **चोरेण** इति भवति। **बिभेति**=बीहइ, प्रक्रिया ६२३ सूत्रे ज्ञेया। **अन्तर्-पुराद्**। अन्तर्-पुर+ङसि। इत्यत्र ६० सू० तकारस्याकारस्य एकारे, ११ सू० रेफस्य लोपे, १७७ स० पकारलोपे अन्तेउर+ङसि इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण पञ्चम्याः स्थाने सप्तमीविभक्तौ, ५०० सू० ङेः डित्-एकारे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अन्तेउरे** इति भवति। **रन्त्वा**। रमु क्रीडायाम्। रम् क्त्वा। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ४१७ सू० क्त्वः तुम् इत्यादेशे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे **रमिउम्** इति भवति। **आगतः**=आगओ, इत्यस्य प्रक्रिया ५३९ सूत्रे ज्ञेया। रमिउम्+आगओ, इत्यत्र अज्झीने परेण संयोज्ये **रमिउमागओ** इति भवति। **राजा**। राजन्+सि=राया, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ५३८ सूत्रे ज्ञेया।

६२६—**विद्युदुद्योते**। विद्युतः उद्योतस्तस्मिन्। विद्युत्—उद्योत+ङि। २९५ सू० उभयत्रापि द्यस्य जकारे, ३६० स० उभयत्रापि जकारद्वित्वे, ११ सू० तकारलोपे, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे विज्जुज्जोत+ङि इति जाते, १७७ सू० तकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, ६२६ सू० सप्तम्याः द्वितीयाविभक्तौ, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **विज्जुज्जोयं** इति भवति। **स्मरति**। स्मृ चिन्तायाम्। स्मृ+तिव। इत्यत्र ७४५ सू० स्मृधातोः स्थाने भर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **भरइ** इति भवति। **रात्रिम्**। रात्रि+अम्। इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, अमोऽकारलोपे, मकारानुस्वारे **रत्तिं** इति भवति। **आर्षे तृतीयाऽपि दृश्यते**। प्रस्तुतसूत्रेण सप्तम्याः स्थाने द्वितीया विधीयते, परन्त्वार्ष-प्राकृते सप्तम्याः तृतीयाऽपि भवति। यथा—**तस्मिन्**। तद्+ङि। ११ सू० दकारलोपे, आर्षत्वात् सप्तम्याः स्थाने तृतीयाविभक्तौ, ४९५ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे, २७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे **तेणं** इति भवति। **काले**। काल+ङि। **तेणं**-वत् **कालेणं** इति भवति। **समये**। समय+ङि। इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण सप्तम्याः स्थाने तृतीयाविभक्तौ, १७७ सू० यकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **समएणं** इति भवति। **प्रथमाया अपि द्वितीया दृश्यते**। आर्षप्राकृते प्रथमाविभक्तेः स्थाने द्वितीया विभक्तिरपि दृश्यते। यथा—**चतुर्विंशतिः**। चतुर्भिरधिका विंशतिः। चतुर्विंशति+सि। १७७ सू० तकारलोपे, ३५० सू० रेफलोपे, २८ सू० अनुस्वारलोपे, ९२ सू० तिशब्देन सह इकारस्य ईकारे चउवीस+सि इति स्थिते, आर्षत्वात् प्रथमास्थाने द्वितीयाविभक्तौ, स्त्रीत्वादाप्-प्रत्यये, दीर्घ-सन्धौ, चउवीसा+अम् इति स्थिते, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **चउवीसं** इति भवति। **अपि**=पि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया। **जिनवराः**। जिनवर+जस्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **जिणवरा** इति भवति।

❀ अथ कारक से सम्बन्धित विधि ❀

कारक शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु से अक् प्रत्यय लगा कर बनाया जाता है, इसका शाब्दिक अर्थ होता है-**जो क्रिया के साथ सम्बन्ध स्थापित रक्खे**, अर्थात् जिस के द्वारा वाक्य में संज्ञा या सर्वनाम का क्रिया से ठीक-ठीक सम्बन्ध ज्ञात हो सके। इस तथ्य को एक उदाहरण

से समझिए। जैसे—"**हे नृप! राम ने प्रजा की रक्षा के लिए, रथ में बैठे हुए रावण को बाण से मार दिया और रावण का रथ पृथ्वी पर गिर गया।**" इस वाक्य में—**१—राम ने, २—रावण का, ३—बाण से, ४—रक्षा के लिए, ५—रथ से, ६—प्रजा की, ७—रथ में तथा पृथ्वी पर, ८—हे नृप!** "इन संज्ञाओं के साथ **१—ने, २—को, ३—से, ४—के लिए, ५—से, ६—को, ७—पर, ८—हे,** ये आठ चिन्ह जुड़े हुए हैं, **जिन से इन संज्ञाओं का 'मार दिया**, तथा **गिर गया,** इन क्रियाओं के साथ सम्बन्ध प्रकट होता है। वे चिन्ह जो संज्ञाओं के साथ लग कर कारकों को प्रकट करते हैं, वे **विभक्तियां कहलाती हैं**। हिन्दी भाषा, संस्कृत भाषा और प्राकृत भाषा में **आठ विभक्तियां** होती हैं। **सात मूल और एक सम्बोधन** की, इस तरह विभक्तियां आठ मानी जाती हैं। प्रत्येक विभक्ति के **तीन-तीन वचन** (एक वचन, द्विवचन और बहुवचन) होते हैं, किन्तु **प्राकृत-भाषा में द्विवचन नहीं होता,** तथा **चतुर्थीविभक्ति में केवल एक वचन ही** पाया जाता है। **प्रस्तुत प्रकरण में कारक से सम्बन्धित इन सभी बातों पर प्रकाश डाला** जायगा।

६१९—सि आदि तथा ति आदि सभी विभक्तियों के **द्विवचन** के स्थान में **बहुवचन** हो जाता है। भाव यह है कि प्राकृत भाषा में एक वचन और बहुवचन ही होते हैं,द्विवचन नहीं होता। जैसे—**१—द्वौ कुरुतः**=दोण्णि कुणन्ति, दुवे कुणन्ति (दो करते हैं), **२—द्वाभ्याम्**=दोहिं (दो व्यक्तियों ने), **३—द्वाभ्याम्**=दोहिन्तो, दोसुन्तो (दो व्यक्तियों से), **४—द्वयोः**=दोसु (दो व्यक्तियों पर), **५—हस्तौ**=हत्था (दो हाथ), **६—पादौ**=पाया (दो पांव), **७—स्तनौ**=थणया (दो पयोधर=स्तन), **८—नयने**=नयणा (दो नयन) यहां द्विवचन के स्थान में बहुवचन किया गया है।

६२०—**चतुर्थी** विभक्ति के स्थान में **छठी विभक्ति** हो जाती है। जैसे—**१—मुनये, मुनिभ्यः ददाति**=मुणिस्स, मुणीण देइ (वह मुनि के लिए, अथवा मुनियों के लिए देता है), **२—नमो देवाय देवेभ्यः**=नमो देवस्स, देवाण (देव या देवों को नमस्कार हो) यहां **चतुर्थी** विभक्ति के स्थान में **षष्ठी** विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

६२१—**तादर्थ्य** (उसके लिए) अर्थ में विहित **चतुर्थी** विभक्ति के एक वचन **ङे-प्रत्यय** के स्थान में **षष्ठी विभक्ति** विकल्प से होती है। जैसे—"**देवार्थम्** (देव के लिए)" इस अर्थ में देव शब्द से ङे-प्रत्यय करके **देवाय** यह रूप बनाया जाता है। प्रस्तुत सूत्र से यहां पर विकल्प से **षष्ठी विभक्ति** का विधान होने से **देवस्स और देवाय** ये दो रूप बन जाते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्र में '**ङे**' इस पद का उच्चारण किस लिए किया गया है? उत्तर में निवेदन है कि **देवानाम्**=देवाण इत्यादि षष्ठ्यन्त शब्दों में षष्ठी विभक्ति के विकल्प का निषेध करने के लिए '**ङे**' इस पद का उल्लेख किया यगा है। यहां पर '**ङे' प्रत्यय** नहीं है, अतः प्रस्तूत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

६२२—वध शब्द से परे **तादर्थ्य** अर्थ में विहित **ङे**-प्रत्यय के स्थान में "**डाइ** (आइ)" और **षष्ठी** विभक्ति का आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**वधार्थम्** (वध=हनन के लिए) इस अर्थ में वध शब्द **से परे ङे-प्रत्यय** करके **वधाय** यह रूप बनाया जाता है, किन्तु प्राकृत भाषा में '**ङे-प्रत्यय**' के स्थान **डित्**

आइ और **षष्ठी विभक्ति** का वैकल्पिक आदेश हो जाने के कारण **वहाइ, वहस्स,** जहां पर प्रस्तुत सूत्र ने कार्य नहीं किया वहां पर **वहाय** यह रूप बनता है, अर्थात् चतुर्थी विभक्ति ही रह जाती है।

६२३—कहीं पर (प्रयोग के अनुसार) **द्वितीया** विभक्ति और **तृतीया** आदि विभक्तियों के स्थान में **षष्ठी विभक्ति** हो जाती है। जैसे—**१—सीमाधरं वन्दे**=सीमाधरस्स वन्दे (मैं सीमा-मर्यादा धारण करने वाले को वन्दना करता हूं), **२—तस्याः मुखं बिभृमः**=तिस्सा मुहस्स भरिमो (हम उस नारी के मुख को धारण करते हैं), यहां पर **द्वितोया** के स्थान **षष्ठी** विभक्ति प्रयुक्त की गई है। **३—धनेन लब्धः**=धणस्स लद्धो(यह व्यक्ति धन के द्वारा प्राप्त किया हुआ है), **४—चिरेण मुक्ता**=चिरस्स मुक्का (यह लड़की बहुत देर से मुक्त हुई), **५—तैरेतद् अनाचीर्णम्**=तेसिमेअमणाइण्णं (उन का यह निन्दित आचरण है), यहां **तृतीया** विभक्ति के स्थान में **षष्ठी** विभक्ति प्रयुक्त की गई है, **६—चोराद् बिभेति** =चोरस्स बीहइ (वह चोर से डरता है),**७—इतराणि येषां लघ्वक्षराणि पादान्तसहितेभ्यः**=इअराइं, जाण लहुअक्खराइं पायन्तिमिल्लसहिआण (जिन के इतर-भिन्न लघु-अक्षर पादान्त सहित सूत्रों से) यहां **पञ्चमी** के स्थान में **षष्ठी** विभक्ति प्रयुक्त की गई है।, **८—पृष्ठे केशभारः**=पिट्ठीए केसभारो (पीठ पर केशों का भार है), यहां पर **सप्तमी** के स्थान में **षष्ठी** विभक्ति प्रयुक्त की गई है।

६२४—कहीं पर प्रयोग के अनुसार **द्वितीया** विभक्ति और **तृतीया** विभक्ति के स्थान में **सप्तमी** विभक्ति होती है। जैसे—**ग्रामं वसामि**=ग्रामे वसामि (मैं गाँव में रहता हूं), **२—नगरं न यामि** =नयरे न जामि (मैं नगर में नहीं जाता हूं) **यहां द्वितीया** विभक्ति के स्थान में **सप्तमी** विभक्ति की गई है। **३—मया वेपित्र्या मलितानि**=मइ वेविरीए मलिआइं (कांपती हुई मैंने मलित-मलयुक्त कर दिए हैं), **४—त्रिभिः तैः अलंकृता पृथिवी**=तिसु तेसु अलंकिआ पुहवी (उन्होंने तीन साधनों से पृथ्वी अलंकृत कर दी), यहां **तृतीया** विभक्ति के स्थान में **सप्तमी विभक्ति** की गई है।

३२५—कहीं पर प्रयोग के अनुसार **पञ्चमी** विभक्ति के स्थान में **तृतीया** और **सप्तमी** विभक्ति प्रयुक्त होती है। जैसे —**१—चोराद् बिभेति**=चोरेण बीहइ (वह चोर से डरता है); **२—अन्तःपुराद् रन्त्वा आगतो राजा**=अन्तेउरे रमिउमागओ रायां (अन्तः-पुर में रमण करके राजा आ गया है) यहां पर **पञ्चमी** के स्थान में **तृतीया और सप्तमी** विभक्ति की गई है।

६२६—कहीं पर प्रयोग के अनुसार **सप्तमी** के स्थान में **द्वितीया** विभक्ति होती है। जैसे—**१—विद्युदुद्योते स्मरति रात्रिं**=विज्जुज्जोयं भरइ रत्तिं (बिजली का प्रकाश होने पर वह रात्रि को याद करता है), **आर्षप्राकृत में सप्तमी** के स्थान में **तृतीया** विभक्ति भी देखने में आती है। जैसे—**१—तस्मिन् काले**=तेणं कालेणं (उस काल में), **२—तस्मिन् समये**=तेणं समएणं (उस समय में) कहीं पर **प्रथमा** के स्थान में **द्वितीया** विभक्ति भी देखी जाती है। जैसे—**चतुर्विंशतिरपि जिनवराः**= चउसं पि जिणवरा (२४ जिनवर भी) यहां पर **प्रथमा** के स्थान में **दूसरी** विभक्ति की गई है।

★ अथ क्यङ्-क्यङ्षोर्विधिः ★

६२७—क्यङोर्यलुक् । ८ । ३ । १३८ । **क्यङन्तस्य क्यङ्षन्तस्य** वा सम्बन्धिनो **यस्य** लुग् भवति। गरुआइ गरुआअइ। अगुरुर्गुरुर्भवति **गुरुरिवाचरति** वेत्यर्थः। **क्यङ्ष्**। **दमदमाइ दमदमाअइ। लोहिआइ लोहिआअइ।**

★ अथ क्यङ्-क्यङ्षोर्विधिः ★

वृत्तिकारेण क्यङन्तस्य क्यङ्षन्तस्य च शब्दस्य विधिविधानं प्रदर्श्यते। यथा—

६२७—गुरुरेव गुरुकः, गुरुक इवाचरतीति **गुरुकायते**। गुरुक+क्यङ्(य)+ते। इत्यत्र १०९ सू० प्रथमोकारस्य अकारे, १७७ सू० ककारलोपे, गरुअ+य+ते इति जाते, ९०९ सू० अकारस्य आकारे, ६२७ सू० विकल्पेन सस्वर-यकारलोपे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **गरुआइ** सस्वर-यकारलोपाभावे, १७७ सू० यकारलोपे **गरुआअइ** इति भवति। **क्यङ्ष्**। क्यङ्षन्तस्य यकारस्य यत्र लोपो जायते तदुदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। **दमदमायते**। दमदमशब्दं करोतीति। संस्कृतनियमेन दमदमाय+ते इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके सस्वर-यकारस्य लोपे, ते इत्यस्य इचादेशे **दमदमाइ** सस्वर-यकारलोपाभावे—१७७ सू० यकारस्य लोपे **दमदमाअइ** इति भवति। **लोहितायते**। अलोहितो लोहितो भवतीति। संस्कृतनियमेन लोहिताय+ते इति जाते, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **लोहिआइ** सस्वर-यकारस्य लोपाभावे, पूर्ववदेव **लोहिआअइ** इति भवति।

★ अथ क्यङ् और क्यङ्ष् को होने वाली विधि ★

६२७—**क्यङन्त** (जिस के अन्त में क्यङ् प्रत्यय है) और **क्यङ्षन्त** (जिस के अन्त में क्यङ्ष् प्रत्यय है) नामधातु से सम्बन्धित सस्वर-यकार का विकल्प से लोप होता है। जैसे—**क्यङ् का उदाहरण—१—गुरु एव गुरुकः, गुरुक इव आचरतीति गुरुकायते**=गरुआइ गरुआअइ (वह व्यक्ति गुरु की भांति आचरण करता है), १—**क्यङ्ष् का उदाहरण—२—दमदमायते**=दमदमाइ दमदमाअइ (वह दम दम शब्द करता है), ३—**लोहितायते**=लोहिआइ, लोहिआअइ (अलोहित अर्थात् जो लाल न हो वह लोहित-लाल होता है) यहां विकल्प से सस्वर-यकार का लोप किया गया है।

★ अथ त्यादि-विधिः ★

६२८—**त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ**।। ८। ३। १३९। त्यादीनां विभक्तीनां परस्मैपदानामात्मनेपदानां च सम्बन्धिनः प्रथमत्रयस्य यदाद्यं वचनं तस्य स्थाने इच् एच् इत्येतावादेशौ भवतः। हसइ हसए। वेवइ वेवए। चकारौ इचेचः (४, ३१८) इत्यत्र विशेषणार्थौ।

६२९—**द्वितीयस्य सि से**। ८। ३। १४०। त्यादीनां परस्मैपदानामात्मनेपदानां च द्वितीयस्य त्रयस्य सम्बन्धिनः आद्यवचनस्य स्थाने सि से इत्येतावादेशौ भवतः। हससि हससे। वेवसि वेवसे।

६३०—**तृतीयस्य मिः**। ८। ३। १४१। त्यादीनां परस्मैपदानामात्मनेपदानां च तृतीयस्य त्रयस्याद्यस्य वचनस्य स्थाने मिरादेशो भवति। हसामि। वेवामि। बहुलाधिकारात् मिवेः स्थानीयस्य मेरिकारलोपश्च। बहु-जाणय! रूसिउं सक्कं। शक्नोमीत्यर्थः। न मरं। न म्रिये इत्यर्थः।

६३१—**बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे**। ८। ३। १४२। त्यादीनां परस्मैपदात्मनेपदानामाद्यत्रयसम्बन्धिनो बहुषु वर्तमानस्य वचनस्य स्थाने न्ति न्ते इरे इत्यादेशा भवन्ति। हसन्ति। वेवन्ति। हसिज्जन्ति। रमिज्जन्ति। गज्जन्ते खे मेहा। बोहन्ते रक्खसाणं च। उप्पज्जन्ते कइ-हिअय-सायरे कव्व-रयणाइं। दोण्णि वि न पहुप्पिरे बाहू। न प्रभवत इत्यर्थः। विच्छुहिरे।

विक्षुभ्यन्तीत्यर्थः। क्वचिद् इरे एकत्वेऽपि। सूसइरे गाम-चिक्खल्लो। शुष्यतीत्यर्थः।

६३२—**मध्यमस्येत्था-हचौ**। ८। ३। १४३। त्यादीनां परस्मैपदात्मनेपदानां मध्यमस्य त्रयस्य बहुषु वर्तमानस्य स्थाने इत्था हच् इत्येतावादेशौ भवतः। हसित्था हसह। वेवित्था वेवह। बाहुलकादित्थान्यत्राऽपि। यद्यत्ते रोचते। जं जं ते रोइत्था। हच् इति चकारः इह-हचोर्हस्य (४. २६८) इति विशेषणार्थः।

६३३—**तृतीयस्य मो-मु-माः**। ८। ३। १४४। त्यादीनां परस्मैपदात्मनेपदानां तृतीयस्य त्रयस्य सम्बन्धिनो बहुषु वर्तमानस्य वचनस्य स्थाने मो मु म इत्येते आदेशा भवन्ति। हसामो हसामु हसाम। तुवरामो तुवरामु तुवराम।

६३४—**अत एवैच् से**। ८। ३। १४५। त्यादेः स्थाने यौ एच् से इत्येतावादेशावुक्तौ तावकारान्तादेव भवतो नान्यस्मात्। हसए। हससे। तुवरए। तुवरसे। करए। करसे। अत इति किम्? ठाइ। ठासि। वसुआइ। वसुआसि। होइ। होसि। एवकारोऽकारान्ताद् एच् से एव भवत, इति विपरीतावधारण-निषेधार्थः। तेनाकारान्ताद् इच् सि इत्येतावपि सिद्धौ। हसइ। हससि। वेवइ। वेवसि।

६३५—**सिनास्तेः सिः**। ८। ३। १४६। सिना द्वितीय-त्रिकादेशेन सह अस्तेः सिरादेशो भवति। निट्ठुरो जं सि। सिनेति किम्? से आदेशे सति अत्थि तुमं।

६३६—**मि-मो-मैर्म्हि-म्हो-म्हा वा**। ८। ३। १४७। अस्तेर्धातोः स्थाने मि मो म इत्यादेशैः सह यथासंख्यं म्हि म्हो म्ह इत्यादेशा वा भवन्ति। एस म्हि। एषोऽस्मीत्यर्थः। गय म्हो। गय म्ह। मुकारस्याग्रहणादप्रयोग एव तस्येत्यवसीयते। पक्षे अत्थि अहं। अत्थि अम्हे। अत्थि अम्हो। ननु च सिद्धावस्थायां पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः (२. ७४) इत्यनेन म्हादेशे म्हो इति सिध्यति। सत्यम्। किन्तु विभक्ति-विधौ प्रायः साध्यमानावस्थाङ्गीक्रियते अन्यथा वच्छेण वच्छेसु सव्वे जे ते के इत्याद्यर्थं सूत्राण्यनारम्भणीयानि स्युः।

६३७—**अत्थिस्त्यादिना**। ८। ३। १४८। अस्तेः स्थाने त्यादिभिः सह अत्थि इत्यादेशो भवति। अत्थि सो। अत्थि ते। अत्थि तुमं। अत्थि तुम्हे। अत्थि अहं। अत्थि अम्हे।

६३८—**णेरदेदावावे**। ८। ३। १४९। णेः स्थाने अत् एत् आव आवे एते चत्वार आदेशा भवन्ति। दरिसइ। कारेइ करावइ करावेइ। हासेइ हसावइ हसावेइ। उवसामेइ उवसमावइ उवसमावेइ। बहुलाधिकारात् क्वचिदेन्नास्ति। जाणावेइ। क्वचिद् आवे नास्ति। पाएइ। भावेइ।

६३९—**गुर्वादेरविर्वा**। ८। ३। १५०। गुर्वादेर्णेः स्थाने अवि इत्यादेशो वा भवति।

शोषितम् । सोसविअं सोसिअं । तोषितम् । तोसविअं तोसिअं ।

६४०—**भ्रमेराडो वा** । ८ । ३ । १५१ । भ्रमेः परस्य णेराड आदेशो वा भवति । भमाडइ भमाडेइ । पक्षे । भामेइ भमावइ भमावेइ ।

६४१—**लुगावी क्त-भाव-कर्मसु** । ८ । ३ । १५२ । णेः स्थाने लुक् आवि इत्यादेशौ भवतः, क्ते भावकर्मविहिते च प्रत्यये परतः । कारिअं कराविअं । हासिअं हसाविअं । खामिअं खमाविअं । भावकर्मणोः । कारीअइ करावीअइ कारिज्जइ कराविज्जइ । हासीअइ हसावीअइ हासिज्जइ हसाविज्जइ ।

६४२—**अदेल्लुक्यादेरत आः** । ८ । ३ । १५३ । णेरदेल्लोपेषु कृतेषु आदेरकारस्य आ भवति । अति । पाडइ । मारइ । एति । कारेइ । खामेइ । लुकि । कारिअं । खामिअं । कारीअइ । खामीअइ । कारिज्जइ । खामिज्जइ । अदेल्लुकीति किम् ? कराविअं । करावीअइ कराविज्जइ । आदेरिति किम् ? संगामेइ । इह व्यवहितस्य मा भूत् । कारिअं । इह अन्त्यस्य मा भूत् । अत इति किम् ? दूसेइ । केचित्तु आवे-आव्यादेशयोरप्यादेरत आत्वमिच्छन्ति । कारावेइ । हासाविओ जणो सामलीए ।

६४३—**मौ वा** । ८ । ३ । १५४ । अत आ इति वर्तते । अदन्ताद्धातोर्मौ परे अत आत्वं वा भवति । हसामि हसमि । जाणामि जाणमि । लिहामि लिहमि । अत इत्येव । होमि ।

६४४—**इच्च मो-मु-मे वा** । ८ । ३ । १५५ । अकारान्ताद्धातोः परेषु मो-मु-मेषु अत इत्वं चकाराद् आत्वं च वा भवतः । भणिमो भणामो, भणिमु भणामु, भणिम भणाम । पक्षे । भणमो भणमु भणम । वर्तमाना-पञ्चमी-शतृषु वा । (३. १५८) इत्येत्वे तु भणेमो भणेमु भणेम । अत इत्येव । ठामो । होमो ।

६४५—**क्ते** । ८ । ३ । १५६ । क्ते परतोऽत इत्वं भवति । हसिअं । पढिअं । नविअं । हासिअं । पाढिअं । गयं, नयमित्यादि तु सिद्धावस्थापेक्षणात् । अत इत्येव । झायं । लुअं । हूअं ।

६४६—**एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु** । ८ । ३ । १५७ । क्त्वा-तुम्-तव्येषु भविष्यत्कालविहिते च प्रत्यये परतोऽत एकारश्चकारादिकारश्च भवति । क्त्वा । हसेऊण हसिऊण । तुम् । हसेउं हसिउं । तव्य । हसेअव्वं हसिअव्वं । भविष्यत् । हसेहिइ हसिहिइ । अत इत्येव । काऊण ।

६४७—**वर्तमाना-पञ्चमी-शतृषु वा** । ८ । ३ । १५८ । वर्तमाना-पञ्चमी-शतृषु परत अकारस्य स्थाने एकारो वा भवति । वर्तमाना । हसेइ हसइ । हसेम हसिम, हसेमु हसिमु । पञ्चमी । हसेउ हसउ । सुणेउ सुणउ । शतृ । हसेन्तो हसन्तो । क्वचिन्न भवति । जयइ । क्वचिदात्वमपि सुणाउ ।

६४८—**ज्जा-ज्जे** । ८ । ३ । १५९ । ज्जा ज्ज इत्यादेशयोः परयोरकारस्य एकारो भवति । हसेज्जा हसेज्ज । अत इत्येव । होज्जा होज्ज ।

६४९—**ईअ-इज्जौ क्यस्य** ।८।३।१६०। चि-जि-प्रभृतीनां भावकर्मविधिं वक्ष्यामः । येषां तु न वक्ष्यते तेषां संस्कृतातिदेशात्प्राप्तस्य क्यस्य स्थाने ईअ इज्ज इत्येतावादेशौ भवतः । हसीअइ । हसिज्जइ । हसीअन्तो । हसिज्जन्तो । हसीअमाणो । हसिज्जमाणो । पढीअइ । पढिज्जइ । होईअइ । होइज्जइ । बहुलाधिकारात् क्वचित् क्योऽपि विकल्पेन भवति । मए नवेज्ज । मए नविज्जेज्ज । तेण लहेज्ज । तेण लहिज्जेज्ज । तेण अच्छेज्ज । तेण अच्छिज्जेज्ज । तेण अच्छीअइ ।

६५०—**दृशि-वचेर्डीस-डुच्चं** । ८ । ३ । १६१ । दृशेर्वचेश्च परस्य क्यस्य स्थाने यथासंख्यं डीस डुच्च इत्यादेशौ भवतः । ईअ-इज्जापवादः । दीसइ । वुच्चइ ।

६५१—**सी ही हीअ भूतार्थस्य** । ८ । ३ । १६२ । भूतेऽर्थे विहितोऽद्यतन्यादिः प्रत्ययो भूतार्थः, तस्य स्थाने सी ही हीअ इत्यादेशा भवन्ति । उत्तरत्र व्यञ्जनादीअ-विधानात् स्वरान्तादेवाऽयं विधिः । कासी काही काहीअ । अकार्षीत् अकरोत् चकार वेत्यर्थः । एवं ठासी ठाही ठाहीअ । आर्षे । देविन्दो इणमब्बवी इत्यादौ सिद्धावस्थाश्रयणात् ह्यस्तन्याः प्रयोगः ।

६५२—**व्यञ्जनादीअः** । ८ । ३ । १६३ । व्यञ्जनान्ताद्धातोः परस्य भूतार्थस्याद्यतन्यादि-प्रत्ययस्य ईअ इत्यादेशो भवति । हुवीअ । अभूत् । अभवत् । बभूवेत्यर्थः । एवं अच्छीअ । आसिष्ट । आस्त । आसांचक्रे वा । गेण्हीअ । अग्रहीत् । अगृह्णात् । जग्राह वा ।

६५३—**तेनास्तेरास्यहेसी** ।८।३।१६४। अस्तेर्धातोस्तेन भूतार्थेन प्रत्ययेन सह आसि अहेसि इत्यादेशौ भवतः । आसि सो तुमं अहं वा । जे आसि । ये आसन्नित्यर्थः । एवं अहेसि ।

६५४—**ज्जात्सप्तम्या इर्वा** । ८ । ३ । १६५ । सप्तम्यादेशात् ज्जात्पर इर्वा प्रयोक्तव्यः । भवेत् । होज्जइ । होज्ज ।

६५५—**भविष्यति हिरादिः** । ८ । ३ । १६६ । भविष्यदर्थे विहिते प्रत्यये परे तस्यैवादिर्हिः प्रयोक्तव्यः । होहिइ । भविष्यति भविता वेत्यर्थः । एवं होहिन्ति । होहिसि । होहित्था । हसिहिइ । काहिइ ।

६५६—**मि-मो-मु-मे स्सा हा न वा** ।८।३।१६७। भविष्यत्यर्थे मि-मो-मु-मेषु तृतीयत्रिकादेशेषु परेषु तेषामेवादी* स्सा हा इत्येतौ वा प्रयोक्तव्यौ । हेरपवादौ । पक्षे हिरपि । होस्सामि होहामि । होस्सामो होहामो, होस्सामु होहामु, होस्साम होहाम । पक्षे । होहिमि । होहिमु

*आदिभूतावित्यर्थः ।

होहिम । क्वचित्तु हा न भवति । हसिस्सामो हसिहिमो ।

६५७—**मो-मु-मानां हिस्सा हित्था** । ८ । ३ । १६८ । धातोः परौ भविष्यति काले मो-मु-मानां स्थाने हिस्सा हित्था इत्येतौ वा प्रयोक्तव्यौ । होहिस्सा होहित्था । हसिहिस्सा हसिहित्था । पक्षे । होस्सामो होहामो होहिमो ।

६५८—**मेः स्सं** । ८ । ३ । १६९ । धातोः परो भविष्यति काले म्यादेशस्य स्थाने स्सं वा प्रयोक्तव्यः । होस्सं । हसिस्सं । कित्तइस्सं । पक्षे । होहिमि । होस्सामि । होहामि । कित्तइहिमि ।

६५९—**कृ-दो हं** । ८ । ३ । १७० । करोतेर्ददातेश्च परो भविष्यति विहितस्य म्यादेशस्य स्थाने हं वा प्रयोक्तव्यः । काहं । दाहं । करिष्यामि, दास्यामीत्यर्थः । पक्षे । काहिमि । दाहिमि । इत्यादि ।

६६०—**श्रु-गमि-रुदि-विदि-दृशि-मुचि-वचि-छिदि-भिदि-भुजां सोच्छं गच्छं रोच्छं वेच्छं दच्छं मोच्छं वोच्छं छेच्छं भेच्छं भोच्छं** । ८ । ३ । १७१ । श्र्वादीनां धातूनां भविष्यद्-विहित-म्यन्तानां स्थान सोच्छमित्यादयो निपात्यन्ते । सोच्छं । श्रोष्यामि । गच्छं । गमिष्यामि ।संगच्छं । संगंस्ये । रोच्छं । रोदिष्यामि । विद ज्ञाने । वेच्छं । वेदिष्यामि । दच्छं । द्रक्ष्यामि । मोच्छं । मोक्ष्यामि । वोच्छं । वक्ष्यामि । छेच्छं । छेत्स्यामि । भेच्छं । भेत्स्यामि । भोच्छं । भोक्ष्ये ।

६६१—**सोच्छादय इजादिषु हिलुक् च वा** । ८ । ३ । १७२ । श्र्वादीनां स्थाने इजादिषु भविष्यदादेशेषु यथासंख्यं सोच्छादयो भवन्ति । ते एवादेशा अन्त्य-स्वराद्यवयववर्जा इत्यर्थः । हिलुक् च वा भवति । सोच्छिइ । पक्षे । सोच्छिहिइ । एवं सोच्छिन्ति सोच्छिहिन्ति । सोच्छिसि सोच्छिहिसि । सोच्छित्था सोच्छिहित्था । सोच्छिह सोच्छिहिह । सोच्छिमि सोच्छिहिमि सोच्छिस्सामि सोच्छिहामि सोच्छिस्सं सोच्छं । सोच्छिमो सोच्छिहिमो सोच्छिस्सामो सोच्छिहामो । सोच्छिहिस्सा सोच्छिहित्था । एवं मु-मयोरपि । गच्छिइ गच्छिहिइ । गच्छिन्ति गच्छिहिन्ति । गच्छिसि गच्छिहिसि । गच्छित्था गच्छिहित्था गच्छिह गच्छिहिह । गच्छिमि गच्छिहिमि गच्छिस्सामि गच्छिहामि गच्छिस्सं गच्छं । गच्छिमो गच्छिहिमो गच्छिस्सामो गच्छिहामो गच्छिहिस्सा गच्छिहित्था । एवं मु-मयोरपि । एवं रुदादीनामप्युदाहार्यम् ।

६६२—**दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिंस्त्रयाणाम्** । ८ । ३ । १७३ । विध्यादिष्वर्थेषूत्पन्नानामेकत्वेऽर्थे वर्तमानानां त्रयाणामपि त्रिकाणां स्थाने यथासंख्यं दु सु मु इत्येते आदेशा भवन्ति । हसउ सा । हससु तुमं । हसामु अहं । पेच्छउ । पेच्छसु । पेच्छामु । दकारोच्चारणं *भाषान्तरार्थम् ।

*पैशाचीभाषार्थमित्यर्थः ।

६६३—**सोर्हिर्वा** । ८ । ३ । १७४ । पूर्वसूत्रविहितस्य सोः स्थाने हिरादेशो वा भवति । देहि देसु ।

६६४—**अत इज्जस्विज्जहीज्जे-लुको वा** । ८ । ३ । १७५ । अकारात्परस्य सोः इज्जसु इज्जहि इज्जे इत्येते लुक् च आदेशा वा भवन्ति । हसेज्जसु हसेज्जहि हसेज्जे हस । पक्षे । हससु । अत किम् ? होसु । ठाहि ।

६६५—**बहुषु न्तु ह मो** । ८ । ३ । १७६ । विध्यादिषूत्पन्नानां बहुष्वर्थेषु वर्तमानानां त्रयाणां त्रिकाणां स्थाने यथासंख्यं न्तु ह मो इत्येते आदेशा भवन्ति । न्तु । हसन्तु । हसन्तु, हसेयुर्वा । ह । हसह । हसत हसेत वा । मो । हसामो । हसाम हसेम वा । एवं तुवरन्तु । तुवरह । तुवरामो ।

६६६—**वर्तमाना-भविष्यन्त्योश्च ज्ज ज्जा वा** । ८ । ३ । १७७ । वर्तमानाया भविष्यन्त्याश्च विध्यादिषु च विहितस्य प्रत्ययस्य स्थाने ज्ज ज्जा इत्येतावादेशौ वा भवतः । पक्षे यथाप्राप्तम् । वर्तमाना । हसेज्ज हसेज्जा । पढेज्ज पढेज्जा । सुणेज्ज । सुणेज्जा । पक्षे हसइ । पढइ । सुणइ । भविष्यन्ती । पढेज्ज पढेज्जा । पक्षे पढिहिइ । विध्यादिषु । हसेज्ज हसिज्जा । हसतु हसेद्वा इत्यर्थः । पक्षे । हसउ । एवं सर्वत्र । यथा तृतीयत्रये । अइवाएज्जा अइवायावेज्जा । न समणुजाणामि । न समणुजाणेज्जा वा । अन्ये त्वन्यासामपीच्छन्ति । होज्ज । भवति भवेत् भवतु अभवत् अभूत् बभूव भूयात् भविता भविष्यति अभविष्यद्वा इत्यर्थः ।

६६७—**मध्ये च स्वरान्ताद्वा** । ८ । ३ । १७८ । स्वरान्ताद्धातोः प्रकृति-प्रत्ययोर्मध्ये चकारात् प्रत्ययानां च स्थाने ज्ज ज्जा इत्येतौ वा भवतः । वर्तमाना-भविष्यन्त्योर्विध्यादिषु च । वर्तमाना । होज्जइ होज्जाइ होज्ज होज्जा । पक्षे । होइ । एवं होज्जसि होज्जासि होज्ज होज्जा । पक्षे होसि । इत्यादि । भविष्यन्ती । होज्जहिइ होज्जाहिइ होज्ज होज्जा । पक्षे । होहिइ । एवं होज्जहिसि होज्जाहिसि होज्ज होज्जा (पक्षे) होहिसि । होज्जहिमि होज्जाहिमि होज्जास्सामि होज्जहामि, होज्जस्सं होज्ज होज्जा । इत्यादि । विध्यादिषु । होज्जउ होज्जाउ होज्ज होज्जा । भवतु भवेद्वा इत्यर्थः । पक्षे । होउ । स्वरान्तादिति किम् ? हसेज्ज हसेज्जा । तुवरेज्ज तुवरेज्जा ।

६६८—**क्रियातिपत्तेः** । ८ । ३ । १७९ । क्रियातिपत्तेः स्थाने ज्ज-ज्जावादेशौ भवतः । होज्ज होज्जा । अभविष्यदित्यर्थः । जइ होज्ज वण्णणिज्जो ।

६६९—**न्त-माणौ** ।८।३।१८०। क्रियापत्तेः स्थाने न्तमाणौ आदेशौ भवतः । होन्तो । होमाणो । अभविष्यदित्यर्थः ।

हरिणट्ठाणे हरिणङ्क ! जइ सि हरिणाहिवं निवेसन्तो ।

न सहन्तो च्चिअ तो राहुपरिहवं से जिअन्तस्स ॥१॥

६७०—**शत्रानशः** । ८ । ३ । १८१ । शतृ, आनश् इत्येतयोः प्रत्येकं न्त माण इत्येतावादेशौ भवतः । शतृ । हसन्तो हसमाणो । आनश् । वेवन्तो वेवमाणो ।

६७१—**ई च स्त्रियाम्** । ८ । ३ । १८२ । स्त्रियां वर्तमानयोः शत्रानशोः स्थाने ई चकारात् न्तमाणौ च भवन्ति । हसई हसन्ती हसमाणी । वेवई वेवन्ती वेवमाणी ।

इत्याचार्य-श्री-हेमचन्द्र-विरचितायां सिद्धहेमचन्द्राभिधान-स्वोपज्ञ-शब्दानुशासनवृत्तौ अष्टमस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ।

ऊर्ध्वं स्वर्गनिकेतनादपि तले पाताल-मूलादपि ।
त्वत् कीर्तिर्भ्रमति क्षितीश्वरमणे ! पारे पयोधेरपि ॥
तेनास्याः प्रमदा-स्वभाव-सुलभैरुच्चावचैश्चापलै—
स्ते वाचंयम-वृत्तयोऽपि मुनयो मौन-व्रतं त्याजिताः ॥१॥

❁ समाप्तस्तृतीयपादः ❁

★ अथ त्यादि-विधिः ★

तिव् (ति) आदिर्येषान्ते त्यादयः, तेषां विधिः-कार्यम् त्यादिविधिः, प्राकृत-भाषायां तिवादि-प्रत्ययानां स्थाने यानि-यानि आदेशादिकार्याणि संभवन्ति, तानि निरूपयत्याचार्यः ।

६२८—**हसति** । हस् हासे । हस्+तिव् । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः इच् (इ), एच् (ए) इत्यादेशौ, ततः **हसइ हसए** इति भवति । **वेपते** । वेपृ कम्पने । वेप्+ते । २३१ सू० पकारस्य वकारे, अकारागमे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इच्, एच् इत्यादेशौ, ततः **वेवइ, वेवए** इति भवति । **चकारौ इचेचः** । प्रस्तुतसूत्रेण ति, ते इत्यनयोः इच्, एच् इत्यादेशौ विहितौ, अत्र ककारस्य लोपो भवति । यदा चकारलोपो भवत्येव तदा चकारोच्चारणं किमर्थम् ? प्रश्नैतस्य समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारोऽभणत् यच्चकारोच्चारणं न व्यर्थं ज्ञेयम्, यतः पैशाचीभाषायां ९८९ सूत्रेण इचेचोः स्थाने ति इत्यादेशो विधीयतेऽतः चकारौ विशेषरूपेण अर्थौ-सप्रोजनौ ज्ञातव्यौ ।

६२९—**हससि** । हस्+सिव् । इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२९ सू० सिवः सि से इत्यादेशौ, ततः **हससि, हससे** इति भवति । **वेपसे**। वेप्+से । २३१ सू० पकारस्य वकारे, धातोरन्तेऽकारागमे, ६२९ सू० से इत्यस्य सि, से इत्यादेशौ, ततः **वेवसि, वेवसे** इति भवति ।

६३०—**हसामि** । हस् हासे । हस्+मिव् । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३० सू० मिवः मि इत्यादेशे, ६४३ सू० अकारस्य आकारे **हसामि** इति भवति । **वेपे** । वेप्+ए । २३१ सू० पकारस्य वकारे, अकारागमे, ६३० सू० ए इत्यस्य मि इत्यादेशे, अकारस्य आकारे **वेवामि** इति भवति । **बहुलाधिकारात् मिवेः स्थानीयस्य** । बहुलस्याधिकाराद् मिव्-प्रत्ययस्य इकारस्य लोपो भवति । यथा—**बहुज्ञायक !**। बहूनां ज्ञायकः, तत्सम्बोधनम् । बहुज्ञायक+सि । ज्ञा अवबोधने । ज्ञा+ण्वुल्-अक । ६७८ सू० ज्ञाधातोः जाण इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, बहुजाणक+सि इति जाते, १७७ सू० ककार-लोपे, १८० सू० यका-

रस्य श्रुतौ, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **बहुजाणय!** इति भवति। **रोषितुम्।** रुष् रोषे। रुष+तुम्। ९०७ सू० उकारस्य ऊकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **रूसिउं** इति भवति। **शक्नोमि।** शक्लृ शक्तौ। शक्+मिव्। २६० सू० शकारस्य सकारे, ९०१ सू० ककारद्वित्वे, ९१०सू० धातोरन्तेऽकारागमे,प्रस्तुत-सूत्रेण मिवः मि इत्यादेशे,बाहुल्येन म्यादेशस्य इकारलोपे,२३ सू० मकारानुस्वारे **सक्कं** इति भवति। **न।** अव्ययपदमिदं संस्कृत-सममेव प्राकृते प्रयुज्यते। **म्रिये।** मृ मरणे। मृ+ए। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण ए इत्यस्य मि इत्यादेशे, पूर्ववदेव **मरं** इति भवति।

६३१—हसन्ति। हस् हासे। हस्+अन्ति=हस+अन्ति। ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **हसन्ति** इति सिद्धम्। **वेपन्ते।** वेपृ कम्पने। वेप्+अन्ते=वेव+अन्ते। प्रस्तुतसूत्रेण अन्ते इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **वेवन्ति** इति सिद्धम्। **हसन्ति।** हस्+अन्ति=हस+न्ति। बहुलाधिकारात् ६६७ सू० स्वरान्ताद्धातोः प्रकृति—प्रत्ययोर्मध्ये ज्ज इत्यस्य विकरणे(हस+ज्ज+न्ति),६४८ सू० अकारस्य एकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **हसिज्जन्ति** इति सिद्धम्। **रमन्ते।** रमु क्रीडायाम्। रम्+अन्ते। धातोरन्तेऽकारागमे, प्रस्तुत-सूत्रेण अन्ते इत्यस्य न्ति इत्यादेशे, बहुलाधिकारात् ज्ज इत्यस्य विकरणे, पूर्ववदेव—**रमिज्जन्ति** इति सिद्धम्। **गर्जन्ति।** गर्ज् गर्जने। गर्ज्+अन्ति। इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, धातोरन्तेऽकारागमे, अन्ति इत्यस्य न्ते इत्यादेशे **गज्जन्ते** इति सिद्धम्। **खे।** ख+ङि। ५०० सू० ङेः डित् ए इत्यादेशे, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **खे** इति सिद्धम्। **मेघाः।** मेघ+जस्। १८७ सू० घकारस्य हकारे, ४९३ सू० जसो लुकि ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **मेहा** इति सिद्धम्। **बिभ्यति।** ञिभी भये। भी+अन्ति। ७२४ सू० भी-धातोः 'बीह' इत्यादेशे, अन्तेः न्ते इत्यादेशे **बीहन्ते** इति सिद्धम्। **राक्षसानाम्।** राक्षस+आम्। २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,४९५ सू० आमः स्थाने 'ण' इत्यादेशे,५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे,२७ सू० अन्तेऽनुस्वारागमे **रक्खसाणं** इति जातम्। **उत्पद्यन्ते कवि-हृदय-सागरे काव्य-रत्नानि। उत्पद्यन्ते।** उत्पूर्वकः पद्-धातुः उत्पत्तौ। उत्पद्+अन्ते। संस्कृतनियमेन उत्पद्य+अन्ते इति जाते,३४८ सू० तकारस्य लोपे,३६० सू० पकारस्य द्वित्वे,२९५ सू० द्यस्य जकारे, जकारस्य द्वित्वे (उप्पज्ज+अन्ते),प्रस्तुत-सूत्रेण अन्ते इत्यस्य न्ते इत्यादेशे **उप्पज्जन्ते** इति सिद्धम्। **कविहृदयसागरे।** हृदयमेव सागरः हृदयसागरः, कवीनां हृदयसागरः कविहृदयसागरः, तस्मिन्। कविहृदयसागर+ङि। १७७ सू० वकारस्य, दकारस्य, गकारस्य च लोपे, १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ५०० सू० ङेः डे इत्यादेशे,डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **कइहिअयसायरे** इति जातम्। **काव्यरत्नानि।** काव्यानि एव रत्नानि। काव्यरत्न+जस्। ३४९ सू० यकारस्य लोपे,३६० सू० वकारस्य द्वित्वे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३७२ सू० संयुक्तस्य अन्त्यव्ञ्जनात् पूर्वे अकारे,१७७ सू० तकारस्य लोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१५ सू० जसः इं इत्यादेशे पूर्वदीर्घे च **कव्व-रयणाइं** इति सिद्धम्। **द्वौ।** द्वि+औ=दोण्णि, प्रक्रिया ६१९ सूत्रे ज्ञेया। **अपि**—वि, **न**=न, इत्यनयोः पदयोः प्रक्रिया ६ सूत्रे ज्ञेया। **प्रभवतः।** प्रभू+तस्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ७३४ सू० भूधातोः 'हुप्प' इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण अन्ति इत्यस्य इरे इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य स्वरे परे लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **पहुप्पिरे** इति भवति। **बाहू।** बाहु+औ, द्विवचनस्य बहुवचने, ६१३ सू० अदन्तवत्त्वात् ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० उकारस्य दीर्घे **बाहू** इति सिद्धम्। **विक्षुभ्यन्ति।** विक्षुभ् विक्षोभे। विक्षुभ्+अन्ति। २७४ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकार-

द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ग्रन्तेः इरे इत्यादेशे, पूर्ववदेव **विच्छुहिरे** इति भवति। **क्वचिद् इरे एकत्वेऽपि**। प्रस्तुतसूत्रेण बहुवचनस्य 'इरे' इत्यादेशो विहितः, परन्तु बहुलाधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले एकवचनस्यापि 'इरे' इत्यादेशो जायते। यथा—**शुष्यति**। शुष् शोषणे। ९०७ सू० उकारदीर्घे, २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, धातोरन्तेऽकारागमे, बाहुल्येन तिवः इरे इत्यादेशे **सूसइरे** इति भवति। **ग्रामकर्दमः**। ग्रामस्य कर्दमः। ग्रामकर्दम+सि। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, प्राकृत-भाषायां कर्दमार्थकः चिक्खिल्ल-शब्दः प्रयुज्यते, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **गामचिक्खिल्लो** इति भवति।

६३२—**हसथ**। हस् हासे। हस्+थ। इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३२ सू० थ इत्यस्य इत्था, हच् (ह) इत्यादेशौ, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, ग्रज्झीने परेण संयोज्ये **हसित्था हसह** इति भवति। **वेपध्वे**। वेप्+ध्वे। २३१ सू० पकारस्य वकारे,धातोरन्तेऽकारागमे,प्रस्तुतसूत्रेण ध्वे इत्यस्य इत्था ह इत्यादेशौ, पूर्ववदेव **वेवित्था वेवह** इति भवति। **बाहुलकादित्थान्यत्राऽपि**। इत्था इत्यादेशः मध्यमपुरुषस्य बहुवचनस्यैव स्थाने विधीयते परन्तु बहुलस्य ग्रधिकारादत्र प्रथमपुरुषस्यैकवचनस्यापि स्थाने संजायते। यथा—**यद्**। यद्+सि=जं, प्रक्रिया २४ सूत्रे ज्ञेया। **तुभ्यम्**। युष्मद्+ङे। ६२० सू० चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी-विभक्तौ, ५८८ सू० ङसा सह युष्मदः ते इत्यादेशे **ते** इति भवति। **रोचते**। रुच् ग्रभिप्रीतौ। रुच्+ते। ९०९ सू० उकारस्य ग्रोकारे, धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० चकारलोपे, बाहुल्येन ते इत्यस्य इत्था इत्यादेशे, पूर्ववदेव **रोइत्था** इति भवति। **हच् इति चकारः**। हचादेशे चकारस्य लोपो जायते, ततः हकार एवावशिष्टो भवति ग्रतोऽत्र चकारोच्चारणं व्यर्थमेवेत्याशंकायाः समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारोऽगदद् यत् ६३२ सूत्रविहितहचो हकारस्य ९३९ सूत्रेण विकल्पेन धकारो विधीयते, चकार-ग्रहणाभावे तु "**इहहचोर्हस्य**" इत्यस्य ९३९ सूत्रस्य रचनैव न शक्या, ग्रतः ९३९ सूत्रस्य निर्माणार्थं हकारेण सह चकारग्रहणं परमावश्यकं बोध्यम्।

६३३—**हसामः**। हस् हासे। हस्+मस्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३३ सू० मसः मो, मु, म इत्यादेशाः, ६४४ सू० ग्रकारस्य वैकल्पिके दीर्घे **हसामो हसामु हसाम** इति भवति। **त्वरामहे**। त्वर् शीघ्रगतौ। त्वर्+महे। ८४१ सू० त्वर्-धातोः स्थाने तुवर इत्यादेशे, पूर्ववदेव **तुवरामो तुवरामु तुवराम** इति भवति।

६३४—६२८ सूत्रेण प्रथमपुरुषस्यैकवचनस्य स्थाने य इचादेशः, तथा ६२९ सूत्रेण मध्यमपुरुषस्यैकवचनस्य स्थाने यः से इत्यादेशो भवति सोऽकारान्तशब्दादेव जायते, नान्यस्मादित्येतत् ६३४ सूत्रेण विधीयते। तस्मादग्रिमेषु प्रयोगेष्वकारान्तशब्दादेव एच् से इत्यादेशौ भवतः। यथा—**हसति**=हसइ, **हससि**=हससे, प्रक्रिया ६२८ तथा ६२९ सूत्रेऽवलोकनीया। **त्वरते**। त्वर् शीघ्रगतौ। त्वर्+ते। ८४१ स० त्वर्धातोः स्थाने तुवर इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य ए इत्यादेशे **तुवरए** इति भवति। **त्वरसे**। त्वर्+से=तुवर+से। ६२९ सू० से इत्यस्य स्थाने से इत्यादेशे **तुवरसे** इति भवति। **करोति**। कृ+तिव्। इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य स्थाने ग्रर इत्यादेशे,६२८ सू० तिवः स्थाने एचादेशे **करए** इति भवति। **करोषि**। कृ+सिव्=कर+सि। ६२९ सू० सिवः स्थाने से इत्यादेशे **करसे** इति भवति। ग्रत्र ग्रकारान्तशब्दादेव एच् से इत्यादेशौ जातौ। **ग्रत इति किम्**? ग्रकारान्तादेव एच् से इत्यादेशौ भवतः नान्यस्मादिति कथनस्य किं कारणम्? उत्तरयति वृत्तिकारो यद् **ग्रतः** इति कथनेनैव ग्राकारान्तात् स्थाधातोः एच्, से इत्यादेशौ न जातौ, ग्रन्यथा **ठाए** इति रूपमभवत्, इष्टरूपं तु **ठाइ**, इत्यस्य प्रक्रिया १९९ सूत्रे द्रष्टव्या। **तिष्ठसि**। स्था+सिव्(सि)। इत्यत्र ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, ६२९ सू०

सिवः सि इत्यादेशे **ठासि** इति भवति । **उद्वाति** । उत्पूर्वकः वाधातुः ऊर्ध्वगतौ । उद्वा+तिव् । ६८२ सू० उद्वा इत्यस्य स्थाने वसुआ इत्यादेशे,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **वसुआइ** इति भवति । **उद्वासि** । उद्वा+सिव्=वसुआ+सि, पूर्ववदेव **वसुआसि** इति भवति । **भवति** । भू सत्तायाम् । भू+तिव् (ति) । इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, पूर्ववदेव **होइ** इति भवति । **भवसि** । भू+सिव्=हो+सिव्, पूर्ववदेव **होसि** इति सिद्धम् । एषु प्रयोगेषु अकारान्तत्वाभावाद् एच् से इत्यादेशौ न जातौ । **एवकारोऽकारान्ताद्** । ६३४ सूत्रे यद् "**एव**" इतिपदं पठितं तस्य "**अतः**" इत्यनेन पदेन सह सम्बन्धो ज्ञेयः । **एच्, से** इतिपदद्वयेन सहैतस्य नास्ति सम्बन्धः । अयं भावः—अकारान्तादेव धातोः एच् से इत्यादेशौ भवतः, नतु अकारान्तभिन्नेभ्य आकारान्तादिधातुभ्योऽपि । यदि एवपदस्य एच् से इति पदद्वयेन सह सम्बन्धो भवेत्तर्हि सूत्रस्यार्थो भविष्यति—"अकारान्तधातुभ्यः एच् से इत्येतौ द्वावेवादेशौ भवतः न तु इच् सि इत्येतावपि ।" तथा सति अकारान्त-हसादि-धातुभ्यः **हसइ हससि** इत्यादयाः प्रयोगा न सिध्येयुः । अतएव—"अकारान्ताद् एच् से इत्यादेशावेव भवतः"—इति विपरीतावधारण-निषेधाय एवपदस्य"**अतः**" इति पदेन सह सम्बन्धः करणीयः । विपरीतस्य अवधारणं=निश्चयनं विपरीतावधारणं, तस्य निषेधः, तस्मै अयमिति विपरोतावधारणनिषेधार्थः । **हसति**=हसइ, प्रक्रिया ६२८ सूत्रे ज्ञेया, **हससि**—हससि, प्रक्रिया ६२९ सूत्रे ज्ञेया । एवमेव—**वेपते**—वेवइ, **वेपसे**—वेवसि[प्रक्रिया ६२८ तथा ६२९ सूत्रे च ज्ञेया]एतद् रूपद्वयमपि बोध्यम् । अत्र प्रस्तुतसूत्रेण अकारान्तधातोः इच्, सि इत्यादेशौ संजातौ । तथा २३१ सू० पकारस्य वकारो जातः ।

६३५—निष्ठुरः=निट्ठु रो, प्रक्रिया २५४ सूत्रे ज्ञेया । **यद्**—जं, प्रक्रिया २४ सूत्रे बोध्या । **असि** । अस् भुवि । अस्+सिव् (सि) । ६२९ सू० सिवः सि इत्यादेशे,६३५ सू० सिना सह अस्धातोः सि इत्यादेशे **सि** इति सिद्धम् । **सिनेति किम्** ? प्रस्तुतसूत्रेण सि-प्रत्ययेनैव सह सि इत्यादेशो विधीयते, नान्यत्र, अतः यत्र ६२९ सू० सिवः से इत्यादेशो जातस्तत्र तु प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ६३७ सू० से इत्यादेशेन सह अस्धातोः अत्थि इत्यादेशे **अत्थि** इति भवति । **त्वम्**=तुमं, प्रक्रिया ५७९ सूत्रे ज्ञेया ।

६३६—एषः=एस,प्रक्रिया ३१ सूत्रे ज्ञेया । **अस्मि** । अस् भुवि । अस्+मिव् । इत्यत्र ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे, ६३६ सू० मि इत्यनेन सह अस्धातोः म्हि इत्यादेशे **म्हि** इति भवति । **गताः** । गत+जस् । इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरदीर्घे **गया** इति सिद्धम् । **स्मः** । अस्+मस् । ६३३ सू० मसः मो म इत्यादेशौ, प्रस्तुतसूत्रेण मो इत्यनेन सह अस्-धातोः म्हो तथा म इत्यनेन सह अस्धातोः म्ह इत्यादेशे **म्हो म्ह** इति रूपे भवतः । **गया+म्हो**, इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **गयम्हो** इति भवति । **मुकारस्याग्रहणादप्रयोग एव तस्येति** । ६३० सूत्रे मि इत्यादेशस्य तथा ६३३ सूत्रे मो, मु, म इत्यादेशानां परिग्रहणं वर्तते, परन्तु प्रस्तुते ६३६ सूत्रे उपरितनेषु चतुर्ष्वादेशेषु मध्ये मु इत्यादेशो न गृहीतः, किमत्र कारणमित्यस्य प्रश्नस्य समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारोऽभणत् यद् मु इत्यस्य ग्रहणाभावादेतदवसीयते-निश्चीयते यद् ६३६ सूत्रविषये मुकारस्य प्रयोग एव न भवति । अयं भावः—अस्धातोः उत्तमपुरुषस्य बहुवचनस्य स्थाने मु इत्यादेश एव न भवति । केवलं मो, म इत्यादेशावेव भवतः । **पक्षे** । यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता तत्र—**अस्मि**। अस्+मिव्(मि), ६३७ सू० मिवा सह अस्धातोः अत्थि इत्यादेशे **अत्थि** इति भवति । **अहम्**=अहं, प्रक्रिया ५९४ सूत्रे ज्ञेया । **स्मः** । अस्+मस् । ६३७ सू० मसा सह अस्धातोः अत्थि इत्यादेशे **अत्थि** इति भवति । **वयम्**=अम्हे, अम्हो, प्रक्रिया ५९५ सूत्रे ज्ञेया । **ननु च सिद्धावस्थायाम्** । स्मः इत्यत्र ३४५ सूत्रेण स्मस्य म्ह इत्यादेशे, ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **म्हो** इति प्रयोगः सुसा-

घ्योऽस्ति, तर्हि ६३६ सूत्रस्य निर्माणं किमर्थमित्याशंकायाः समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारः प्राह—***विभक्तिविधौ** प्रायः=बाहुल्येन साध्यमानावस्था—प्रकृति-प्रत्ययादि-निर्देशपूर्विका दशाङ्गीक्रियते, **यद्येवं न** स्वीक्रियेत तदा **वच्छेण वच्छेसु सव्वे जे ते के** इत्यादिप्रयोगार्थं ४९५, ५०४ तथा ५४७ इत्यादि-सूत्राणां नासीदावश्यकता, यतः संस्कृतनियमसिद्धेषु **वृक्षेण, वृक्षेषु, सर्वे, ये, ते, के** इत्येतेषु प्रयोगेषूक्तसूत्राण्यनालम्ब्यैव **वच्छेण** इत्यादीनि रूपाणि साधितुं शक्यान्यासन्। अतएवोच्यते यद् विभक्तिविधौ साध्यमानावस्थैवाङ्गीक्रियते, न तु सिद्धावस्था। **वच्छेण, वच्छेसु** इत्यनयोः पदयोः प्रक्रिया ४९५ तथा ५०४ सूत्रे ज्ञेया। **सव्वे, जे, ते, के** एतेषां पदानां प्रक्रिया ५४७ सूत्रे द्रष्टव्या।

६३७—**अस्ति**=अत्थि, इत्यस्य प्रक्रिया ३१६ सूत्रे ज्ञेया। **सः**—सो, इत्यस्य प्रक्रिया ५७५ सूत्रे बोध्या। **सन्ति**। अस्+अन्ति। इत्यत्र ६३७ सू० अन्ति इत्यनेन सह अस्धातोः अत्थि इत्यादेशे **अत्थि** इति भवति। **ते**=ते प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **असि त्वम्**=अत्थि तुमं, अनयोः प्रक्रिया ६३५ सूत्रे बोध्या। **स्थ**। अस्+थ। प्रस्तुतसूत्रेण थेन सह अस्धातोः स्थाने अत्थि इत्यादेशे **अत्थि** इति भवति। **यूयम्**=तुम्हे, प्रक्रिया ५८० सूत्रे ज्ञेया। **अस्मि अहम्**=अत्थि अहं, अनयोः पदयोः प्रक्रिया ६३६ सूत्रे ज्ञेया। **स्मो वयम्**=अत्थि अम्हे, प्रक्रिया ६३६ सूत्रे ज्ञेया।

६३८—**दर्शयति**। दृश् दर्शने। दृश्+णिग्+तिव्। इत्यत्र ९०६ सू० ऋकारस्य अरि इत्यादेशे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **दरिसइ** इति भवति। **कारयति**। कृ+णिग्+तिव्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण णिग एकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, पूर्ववदेव **कारेइ** प्रस्तुतसूत्रेण णिग आव इत्यादेशे तु कर+आव+इ इति जाते, स्वरस्य लोपे **करावइ** प्रस्तुतसूत्रेण णिग आवे इत्यादेशे कृते पूर्ववदेव **करावेइ** इति भवति। **हासयति**। हस् हासे। हस्+णिग्+तिव्। प्रस्तुतसूत्रेण णिग एकारे, पूर्वाकारदीर्घे, पूर्ववदेव **हासेइ** णिगः आव इत्यादेशे **हसावइ** णिग आवे इत्यादेशे **हसावेइ** इति भवति। **उपशामयति**। उपशमु उपशमे। उपशम्+णिग्+तिव्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, प्रस्तुतसूत्रेण णिग एकारे, पूर्ववदेव **उवसामेइ** णिगः आव इत्यादेशे **उवसमावइ**, णिगः स्थाने आवे इत्यादेशे **उवसमावेइ** इति भवति। **बहुलाधिकारात्**। बहुलस्य अधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले प्रस्तुत-सूत्रेण णिगः स्थाने एत् इत्यादेशो न जायते। यथा—**ज्ञापयति**। ज्ञा-धातुः अवबोधने। ज्ञा+णिग्+तिव्। ६७८ सू० ज्ञाधातोः जाण इत्यादेशे, प्रस्तुत-सूत्रेण णिग आवे इत्यादेशे जाण+आवे+तिव् इति जाते, १० सू० णकारस्याकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **जाणावेइ** इति भवति। **अत्र बाहुल्येन** णिग एत् इत्यादेशो न जातः। **क्वचिद् आवे नास्ति**। बहुलाधिकारात् क्वचित् प्रस्तुतसूत्रेण णिग आवे इत्यादेशो न भवति। यथा—**पाययति**। पा-धातुः पाने। पा+णिग्+तिव्। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण णिग एत् (ए) इत्यादेशे, पूर्ववदेव **पाएइ** इति भवति। अत्र बाहुल्येन णिगः आवे इत्यादेशो न जातः। **भावयति**। भू सत्तायाम्। भू+णिग्+तिव्। ९०४ सू० ऊकारस्य अव इत्यादेशे, णिग एत् इत्यादेशे, ६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे, पूर्ववदेव **भावेइ** इति भवति। अत्रापि बाहुल्येन णिग आवे इत्यादेशो न जातः।

६३९—**शोषितम्**। शुष् शोषणे। शुष्+णिग्+क्त (त)। ९०९ सू० उकारस्य ओकारे, २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, ६३९ सू० विकल्पेन णिगः स्थाने अवि इत्यादेशे, १७७ सू० तका-

*विभक्ति-सम्बन्धी विधिः विभक्ति-विधिः। सु, औ, जस् इत्यादिविभक्तीनां निमित्तेन यत्कार्यं क्रियते तद् विभक्तिविधिरित्युच्यते।

रलोपे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सोसविअं** आदेशाभावे ६४१ सू० णिगः लोपे, पूर्ववदेव सोस्+अ+सि इति जाते, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, पूर्ववदेव **सोसिअं** इति भवति। **तोषितम्**। तुष् तोषे। तुष्+णिग्+क्त (त)। उकारस्य ओकारे, षकारस्य सकारे, णिगः विकल्पेन अवि इत्यादेशे, तकारलोपे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **तोसविअं** आदेशाभावे णिगः लोपे, धातोरन्तेऽकारागमे, पूर्ववदेव **तोसिअं** इति भवति।

६४०—**भ्रामयति**। भ्रमु भ्रमणे। भ्रम्+णिग्+तिव्। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ६४० सू० विकल्पेन णिग आड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **भमाडइ** ६४७ सू० अकारस्य एकारे **भमाडेइ**, आदेशाभावे पूर्ववदेव भम्+णिग्+इ इति जाते, ६३८ सू० णिग ए आव आवे इत्यादेशाः, ६४२ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **भामेइ** भम्+आव+इ, इत्यत्र तु अज्झीने परेण संयोज्ये **भमावइ** एवमेव आवे इत्यादेशे **भमावेइ** इति भवति।

६४१—**कारितम्**। डुकृञ्-कृ करणे। कृ+णिग्+क्त(त)। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४१ सू० णिगो लुक्, आवि इत्यादेशौ, कर+त इति जाते, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सूत्रेण मकारानुस्वारे **कारिअं** णिग आवि इत्यादेशे कर+आवि+अं, इत्यत्र १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **करावियं** इति भवति। **हासितम्**। हस् हासे। हस्+णिग्+क्त (त)। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, प्रस्तुतसूत्रेण णिगः लुक्, आवि इत्यादेशौ, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये,१७७ सू० तकारलोपे, पूर्ववदेव **हासिअं** णिगः स्थाने आवि इत्यादेशे,पूर्ववदेव हस्+आवि+अं =**हसाविअं** इति भवति। **क्षामितम्**। क्षमु क्षान्तौ=शान्तौ। क्षम्+णिग्+क्त (त)+सि। इत्यत्र २७४ सू० क्षस्य खकारे,प्रस्तुतसूत्रेण णिगः लुक्,आवि इत्यादेशौ,६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे,९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **खामिअं** णिग आवि इत्यादेशे तु खम्+आवि+अं इत्यत्र अज्झीने परेण संयोज्ये सति **खमाविअं** इति भवति। **भावकर्मणोः**। भावकर्मविहितस्य प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। **कार्यते**। कृ+णिग्+क्य (य)। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण णिगः लुक्, आवि इत्यादेशौ, ६४९ सू० क्यस्य ईअ इत्यादेशे, ६४२ सू० पूर्वाकारदीर्घे कार+ईअ इति जाते, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, तिव्-प्रत्यये, ६२८ सू० तिव इचादेशे **कारीअइ** णिग आवि इत्यादेशे कर+आवि+ईअ+इ इति पूर्ववदेव जाते, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, स्वरस्य लोपे **करावीअइ** ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, णिगो लोपे, पूर्ववदेव कार+इज्ज+इ इति जाते, स्वरस्य लोपे **कारिज्जइ** णिग आवि इत्यादेशे कर+आवि+इज्ज+इ इति स्थिते, स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **कराविज्जइ** इति भवति। **हास्यते**। हस् हासे। हस्+णिग्+क्य+ते। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, णिगः लुक्, आवि इत्यादेशौ, आदेरकारस्य दीर्घे, क्यस्य ईअ, इज्ज इत्यादेशौ, स्वरस्य लोपे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे, पूर्ववदेव **हासीअइ** णिग आवि इत्यादेशे **हसावीअइ** क्यस्य इज्जादेशे **हासिज्जइ हसाविज्जइ** इति भवति।

६४२—**अति**। णिगः स्थाने अदादेशस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**पातयति**। पत् पतने। पत्+णिग्+तिव्। ८९० सू० तकारस्य डकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पाडइ** इति भवति। **मारयति**। मृ+णिग्+तिव्। इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, णिगः अकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, पूर्ववदेव **मारइ** इति भवति।

एति। एदादेशस्योदाहरणं प्रदर्श्यते। यथा—**कारयति**। कृ+णिग्+तिव्। ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिग एकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, स्वरस्य लोपे, पूर्ववदेव **कारेइ** इति भवति। **क्षामयति**। क्षम्+णिग्+तिव्। २७४ सू० क्षस्य खकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, णिग एकारे, पूर्ववदेव **खामेइ** इति भवति। **लुकि**। णिगः स्थाने लुगादेशस्योदाहरणं निदर्श्यते। यथा—**कारितम्**=कारिअं, **क्षामितम्**=खामिअं, **कार्यते**=कारीअइ, कारिज्जइ प्रक्रिया ६४१ सूत्रे ज्ञेया। **क्षाम्यते**। क्षम्+णिग्+क्य+तिव्। २७४ सू० क्षस्य खकारे, ६४१ सू० णिगो लुकि, प्रस्तुतसूत्रेण पूर्वाकारस्य दीर्घे, ६४९ सू० क्यस्य ईअ, इज्ज इत्यादेशौ,पूर्ववदेव **खामीअइ** क्यस्य इज्जादेशे **खामिज्जइ** इति भवति। **अदेल्लुकीति किम् ?** णिगः स्थाने अत्, एत्,लुक् इत्यादेशेषु जातेष्वेव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते, नान्यथा। यथा— **कारितम्**=कराविअं, **कार्यते**=करावीअइ, कराविज्जइ, प्रक्रिया ६४१ सूत्रे ज्ञेया। अत्र प्रस्तुतसूत्रेण आदेरकारस्य दीर्घो न जातः। **आदेरिति किम् ?** णेरदेल्लोपेषु कृतेषु आदेरकारस्यैव आकारो जायते, नान्यत्र। आदिभूतोऽयमकारः स्वतंत्रोऽनुस्वारशून्योऽनादिभूतश्च भवितव्यः। यथा—**संग्रामयति** संग्रामं करोतीति। संग्राम्+णिग्+तिव्। ३५० सू० रेफलोपे,३६३ सू० गकारस्य द्वित्व-निषेधे, ६३८ सू० णिग एकारे; तिव इचादेशे संगाम्+ए+इ इत्यत्र आदेरकारस्यानुस्वारेण व्यवहितत्वेन-व्यवधानयुक्तत्वेन प्रस्तुतसूत्रेण दीर्घत्वं न जातं,ततः अज्झीने परेण संयोज्ये **संगामेइ** इति भवति। **कारितम्**=कारिअं, प्रक्रिया ६४१ सूत्रे ज्ञेया। प्रस्तुतसूत्रे **आदेः** इत्युल्लेखात् प्रस्तुतसूत्रेण यथा ककारस्य आदेरकारस्य आकारो जातस्तथा अन्त्यस्य रेफस्थाकारस्य आकारो नाभूद्। **अत इति किम्?** प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्यैव आकारो जायते। आदिभूतेष्विकारादिवर्णेषु नास्य सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति। यथा—**दूषयति**। दुष्+णिग्+तिव्। ९०७ सू० उकारस्य स्थाने ऊकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे,९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३८ सू० णिग एकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **दूसेइ** इति भवति। इत्यत्र आदेरकाराभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **केचित्तु**। केचिद् वैयाकरणास्तु आवे, आवि इत्यनयोः णेरादेशयोः परयोरपि आदेरकारस्याकारो भवति, इत्येवं मन्यन्ते। यथा—**कारयति**। कृ+णिग्+तिव्। इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिग आवे इत्यादेशे, तिव इचादेशे कर+आवे+इ, इत्यत्र अन्यवैयाकरणानां मते आदेरकारस्य आकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **कारावेइ** इति भवति। **हासितः**। हस्+णिग्+क्त (त)+सि। ६४१ सू० णिग आवि इत्यादेशे, अन्यवैयाकरणमते आदेरकारस्य आकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, हासाविअ+सि इति जाते, ४९१ सूत्रेण सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हासाविओ** इति भवति। **जनः**। जन+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जणो** इति भवति। **श्यामलया**। श्यामली+टा। २६० सू० शकारस्य सकारे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ५१८ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने एत् (ए) इत्यादेशे **सामलीए** इति सिद्धम्।

६४३—अत आ इति वर्तते। ६४२ सूत्रतोऽस्मिन् सूत्रे **अत आ** इत्यनयोः पदयोरनुवृत्तिरायाति। **हसामि**। हस् हासे। हस्+मिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे;६४३ सू०अकारस्य वैकल्पिके आकारे, ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे **हसामि हसमि** इति भवति। **जानामि**। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा+मिव्। ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण इत्यादेशे,अकारस्य वैकल्पिके आकारे,पूर्ववदेव **जाणामि, जाणमि** इति भवति। **लिखामि**। लिख् लिखने। लिख्+मिव्। १८७ सू० खकारस्य हकारे **लिहामि, लिहमि** इति हसामितुल्यमेव बोध्यम्। **अत इत्येव**। प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्यैव आकारो विधीयते, नान्यत्र। यथा—**भवामि**। भू+मिव्। ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, मिवः मि इत्यादेशे **होमि** इति

भवति। अत्र अकारान्तत्वाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता।

६४४—**भणामः**। भण्+मस्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३३ सू० मसः स्थाने मो मु म इत्यादेशाः,६४४ सू० अकारस्य स्थाने इकारे आकारे च वैकल्पिके—**भणिमो, भणिमु, भणिम, भणामो, भणामु, भणाम** ६४७ सू० अकारस्य एकारे **भणेमो, भणेमु, भणेम** इति भवति। **अत इत्येव**। प्रस्तुत-सूत्रेण अकारस्यैव इकाराकारादेशौ भवतः, नान्यत्र। यथा—**तिष्ठामः**। ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ। स्था+मस्। ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, मसः स्थाने मो इत्यादेशे **ठामो** इति भवति। **भवामः**। भू+मस्। ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, पूर्ववदेव **होमो** इति भवति। अकारान्तत्वाभावादत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावो बोध्यः।

६४५—**हसितम्**। हस्+क्त(त)+सि। इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,६४५ सू० अकार-स्य स्थाने इकारे,१७७ सू० तकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे,२३ सू० मकारानुस्वारे **हसिअं** इति भवति। **पठितम्**। पठ् पठने। इत्यत्र १९९ सू० ठकारस्य ढकारे, पूर्ववदेव **पढिअं** इति भवति। **नमितम्**। नम् नमने। नम्+क्त+सि। इत्यत्र ८९७ सू० मकारस्य वकारे, पूर्ववदेव **नविअं** इति सिद्धम्। **हासितम्**= हासिअं,इत्यस्य प्रक्रिया ६४१ सूत्रे ज्ञेया। **पाठितम्**। पठ् पठने। पठ्+णिग्+क्त(त)+सि। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,६४१ सू० णिगः लुक् इत्यादेशे,६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे,ठकारस्य ढकारे,प्रस्तुत-सूत्रेण अकारस्य इकारे, तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **पाढिअं** इति भवति। **गयं नयमित्यादि**। गयं नयं इत्या-दयः शब्दास्तु **गतम्, नतम्** इत्यादि-संस्कृतसिद्धशब्दैरेव संसाधनीयाः। यथा—**गतम्**=गयं प्रक्रिया ९७ **सूत्रे ज्ञेया**। **नतम्**। नत+सि। इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ५१४ सू० सेर्म-कारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **नयं** इति भवति। **अत इत्येव**। क्त-प्रत्यये परे सति अकारस्यैव इकारो भवति; नान्यत्र। यथा—**ध्यातम्**। ध्यै चिन्तायाम्। ध्यै+क्त (त)+सि। इत्यत्र ६७७ सू० ध्यैधातोः झा इत्यादेशे, आकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, तकार-लोपे, यकारस्य श्रुतौ, पूर्ववदेव **झायं** इति सिद्धम्। **लूनम्**। लुञ् छेदने। लु+क्त। अत्रापि आकारान्तत्वाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, ९२९ सू० क्त-प्रत्ययेन सह लुञ्-धातोः लुअ इत्यादेशे, सिप्रत्यये, सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे **लुअं** इति भवति। **भूतम्**। भू सत्तायाम्। भू+क्त (त)+सि। इत्यत्र ७३५ सू० भूधातोः स्थाने हू इत्यादेशे, ऊकारान्त-त्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ पूर्ववदेव **हूअं** इति भवति।

६४६—**क्त्वा**। क्त्वाप्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**हसित्वा**। हस्+क्त्वा। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ४१७ सू० क्त्वास्थाने तूण (ऊण) इत्यादेशे, ६४६ सू० अकारस्य एकारे इकारे च **हसेऊण हसिऊण** इति भवति। **तुम्**। तुम्-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण। यथा—**हसित्वा**। हस्+क्त्वा=हस+क्त्वा। ४१७ सू० क्त्वास्थाने तुम् इत्यादेशे, पूर्ववदेव हसेतुम्, हसितुम् इति जाते, १७७ सू० तकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **हसेउं हसिउं** इति भवति। **तव्य**। तव्य-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण। यथा—**हसितव्यम्**। हस्+तव्य=हसे+तव्य, हसि+तव्य। सि-प्रत्यये,तकारलोपे,३४९ सू० यकारलोपे,३६० सू० वकारद्वित्वे,५१४ सू० सेर्मकारे,२३ सू० मकारा-नुस्वारे **हसेअव्वं हसिअव्वं** इति भवति। **भविष्यत्**। भविष्यत्कालीन-प्रत्ययस्योदाहरणं निरूपयति वृत्तिकारः। यथा—**हसिष्यति**। हस्+तिव्=हस+तिव्। इत्यत्र ६५५ सू० भविष्यदर्थक-प्रत्ययस्यादौ हि इति प्रयुक्ते, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य एकारे इकारे च, ६२८ सू० तिव इचादेशे **हसेहिइ हसिहिइ** इति भवति। **अत इत्येव**। अकारस्यैव एकारेकारादेशौ भवतः,नान्यत्र। यथा—**कृत्वा**=काऊण, प्रक्रिया २७ सूत्रे ज्ञेया। आकारान्तत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

६४७—**हसति**। हस्+तिव्-ति। इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४७ सू० अकारस्य वैकल्पिके एकारे, ६२८ तिव इचादेशे **हसेइ हसइ** इति भवति। **हसामः**। हस्+मस्=हस+मस्। ६३३ सू० मसः स्थाने म इत्यादेशे, पूर्ववदेव **हसेम** एकाराभावे ६४४ सू० अकारस्य इकारे **हसिम** ६३३ सू० मसः मु इत्यादेशे **हसेमु हसिमु** इति भवति। **हसतु**। हस्+तुव्=हस+तुव्। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य वैकल्पिके एकारे, ६६२ सू० तुवः स्थाने दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारस्य लोपे **हसेउ हसउ** इति भवति। **शृणोतु**। श्रु श्रवणे। श्रु+तुव्। ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे,९१२ सू० णकारागमे, अकारस्य वैकल्पिके एकारे, तुवः दु इत्यादेशे,पूर्ववदेव **सुणेउ सुणउ** इति भवति। **हसन्**। हस्+शतृ+हस+शतृ। ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य वैकल्पिके एकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हसेन्तो हसन्तो** इति भवति। **क्वचिन्न भवति**। बहुलाधिकारात् क्वचित् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति। यथा—**जयति**। जिधातुः जये। जि+तिव्। संस्कृतनियमेन जय+तिव् इति जाते, बाहुल्येन अकारस्य एकाराभावे, पूर्ववदेव **जयइ** इति भवति। **क्वचिदात्वमपि**। बहुलाधिकारात् क्वचिद् अकारस्य आकारोऽपि भवति। यथा—**शृणोतु**=सुण+उ इत्यत्र बहुलाधिकाराद् अकारस्य आकारे **सुणाउ** इति भवति।

६४८—**हसति**। हस्+तिव्। इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६६६ सू० तिवः स्थाने वैकल्पिकौ ज्जा,ज्ज इत्यादेशौ,६४८ सू० अकारस्य एकारे **हसेज्जा हसेज्ज** इति भवति। प्रयोगस्य दर्शनादत्र ८४ सूत्रेण ह्रस्वो न जातः। **अत इत्येव**। प्रस्तुत-सूत्रेण अकारस्यैव एकारो जायते,नान्यत्र। यथा—**भवति**। भू+तिव्। इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, तिवः स्थाने ज्जा ज्ज इत्यादेशौ, ओकारान्तत्वादत्र प्रस्तुत-सूत्रस्याप्रवृत्तौ **होज्जा होज्ज** इति भवति।

६४९—**संस्कृतातिदेशात्**। तत्तुल्यकार्यकरणमतिदेशः। संस्कृतभाषातुल्यकार्य-करणादित्यर्थः। **हस्यते**। हस्+क्य+ते। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने ईअ, इज्ज इत्यादेशौ, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **हसीअइ हसिज्जइ** इति भवति। **हस्यत्**। हस् हासे। हस्+क्य+शतृ=हसीअ+शतृ, हसिज्ज+शतृ। ६७० सू० शतुः न्त, माण इत्यादेशौ, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हसीअन्तो हसिज्जन्तो हसीअमाणो हसिज्जमाणो** इति भवति। **पठ्यते**। पठ्+क्य+ते=**पढीअइ पढिज्जइ**। प्रक्रिया हसीअइ-हसिज्जइ-तुल्या ज्ञेया। अत्र १९९ सू०ठकारस्य ढकारो जातः। इत्येवात्रान्तरं बोध्यम्। **भूयते**। भू+क्य+ते। ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे,पूर्ववदेव **होईअइ होइज्जइ** इति साध्यम्। **बहुलाधिकारात्**। कस्मिंश्चित् स्थले क्यप्रत्ययोऽपि विकल्पेन जायते। यथा—**मया**=मए,प्रक्रिया ५९८ सूत्रे ज्ञेया। **नम्यते**। नम्+ते। ८९७ सू० मकारस्य वकारे,धातोरन्तेऽकारागमे,६६६ सू० ते इत्यस्य विकल्पेन ज्ज इत्यादेशे, ६४८ सू० अकारस्य एकारे **नवेज्ज** इति भवति। अत्र क्यप्रत्ययस्याभावो विद्यते, क्यप्रत्यये कृते तु नव+क्य+ज्ज,इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण क्यस्य इज्ज इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे,पूर्ववदेव नविज्ज+ज्ज इति जाते, ६४८ सू० अकारस्य एकारे **नविज्जेज्ज** इति भवति। **तेन**=तेण, प्रक्रिया ५५८ सूत्रे ज्ञेया। **लभ्यते**। लभ् लाभे। लभ्+ते। १८७ सू० भकारस्य हकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, पूर्ववदेव **लहेज्ज** क्यप्रत्ययस्य सद्भावे पूर्ववदेव **लहिज्जेज्ज** इति भवति। **आस्यते**। आस् उपवेशने। आस्+ते। ८८६ सू० सकारस्य छकारे, बाहुल्येन ३६० सू० छकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, पूर्ववदेव **अच्छेज्ज** क्यप्रत्यये कृते, क्यस्य इज्जादेशे

अच्छिज्जेज्ज क्यस्य ईअ इत्यादेशे **अच्छीअइ** इति भवति। प्रक्रिया **हसीअइ**—तुल्या ज्ञेया।

६५०—ईअ-इज्जापवादः। ६४९ सूत्रेण क्यस्य स्थाने ईअ, इज्ज इत्यादेशौ भवतः, प्रस्तुतसूत्रं तयोरपवादसूत्रं बोध्यम्। **दृश्यते**। दृश् दर्शने। दृश्+क्य+ते। ६५० सू० क्यस्य स्थाने डीस (ईस) इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेः लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये सति, ६२८ सू० तिव इचादेशे **दीसइ** इति सिद्धम्। **उच्यते**। वच् व्यक्तायां वाचि। वच्+क्य+ते। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण क्यस्य स्थाने डुच्च(उच्च) इत्यादेशे, पूर्ववदेव **वुच्चइ** इति भवति।

६५१—अद्यतन्यादिः प्रत्ययो भूतार्थः। पाणिनीयव्याकरणे प्रसिद्धस्य लुङ्लकारस्य स्थाने हैम-शब्दानुशासने अद्यतनी इति संज्ञा समाश्रिता वर्तते। आदिशब्दात् **ह्यस्तनी** (लङ्), **परोक्षा** (लिट्) इत्यनयोः ग्रहणमभीष्टं वृत्तिकारस्य। **उत्तरत्र व्यञ्जनादीअ**। उत्तरस्मिन् ६५२ सूत्रे व्यञ्जनान्ताद् धातोः ईअ-प्रत्ययो विहितः, अतः प्रस्तुतसूत्रेण स्वरान्ताद्धातोः विहितस्य प्रत्ययस्य सी, ही,हीअ इत्यादेशाः भविष्यन्ति। अयं भावः—व्यञ्जनान्ताद्धातोः **ईअ** इत्यादेशो भवति, स्वरान्ताद्धातोः **सी ही हीअ** इत्याद्यादेशा भवन्ति। **अकार्षीत्,अकरोत्,चकार**। डुकृञ्-धातुः करणे। कृ+दि,कृ+दिव्, कृ+णव्। ८८५ सू० ऋकारस्य आकारे, ६५१ सू० भूतार्थक-प्रत्ययानां सी, ही, हीअ इत्यादेशाः, ततः—**कासी, काही,काहीअ** इति रूपाणि भवन्ति।* लुङ्-लङ्-लिट्-लकाराणां समस्तपुरुषवचनेषु एतान्येव रूपाणि ज्ञेयानि। **अस्थात्, अतिष्ठत्, तस्थौ**। ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ। स्था+दि, स्था+दिव्, स्था+णव्। ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे,पूर्ववदेव **ठासी ठाही ठाहीअ** इति भवति। **आर्षे**। ऋषीणामिदमार्षम्। आर्षप्राकृते प्रस्तुतसूत्रविहिता आदेशा न भवन्ति। यथा—**देवेन्द्रः इदमब्रवीत्**। देवेन्द्र+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **देविन्दो** इति भवति। **इदम्**=इणमो,इत्यस्य प्रक्रिया ५६८ सूत्रे ज्ञेया। **अब्रवीत्**। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि=अब्रवीत् इति संस्कृत-सिद्धशब्दादेव रेफस्य लोपे, ३६० सू० बकारस्य द्वित्त्वे, ११ सू० तकारलोपे **अब्बवी** इति भवति। अत्र आर्षत्वादेव प्रस्तुतसूत्रेण ह्यस्तन्याः=लङ्लकारस्य भूतार्थक-प्रत्ययस्य स्थाने सी इत्यादेशो न जातः।

६५२—अभूत, अभवत, बभूव। भू सत्तायाम्। भू+दि, भू+दिव्, भू+णव्। इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः हुव इत्यादेशे, ६५२ सू० भूतार्थकप्रत्ययानां स्थाने ईअ इत्यादेशे जाते,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **हुवीअ** इति भवति। **आसिष्ट, आस्त, आसांचक्रे**। आस् उपवेशने। आस्+दि, आस्+दिव्, आस्+णव्। ८८६ सू० सकारस्य छकारे, बाहुल्येन ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे,३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,पूर्ववदेव **अच्छीअ** इति भवति। **अग्रहीत्, अगृह्णात्, जग्राह**। ग्रह् उपादाने। ग्रह्+दि, ग्रह्+दिव्, ग्रह्+णव्। ८८० सू० ग्रह्-धातोः स्थाने गेण्ह इत्या-देशे, पूर्ववदेव **गेण्हीअ** इति भवति।

६५३—सः=सो, इत्यस्य प्रक्रिया ५७५ सूत्रे ज्ञेया। **आसीत्**। अस् भुवि। अस्+दि। इत्यत्र ६५३ सू० असधातोः भूतार्थकप्रत्ययेन सह आसि अहेसि इत्यादेशौ, ततः **आसि अहेसि** इति भवति। **त्वम्**=तुमं,प्रक्रिया ५७९ सूत्रे ज्ञेया। **आसीः**। अस्+सिव्। पूर्ववदेव **आसि** इति सिद्धम्। **अहम्**=अहं, प्रक्रिया ५९४ सूत्रे ज्ञेया। एवमेव **आसम्**=अस्+मिव=आसि इति रूपं बोध्यम्। **ये**-जे, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **आसन्**। अस्+अन्। पूर्ववदेव **आसि** इति भवति।

---

*हैमशब्दानुशासने लुङ्लकारस्य प्रथमपुरुषस्यैकवचनस्य स्थाने दिप्रत्ययः, लङ्लकारस्य प्रथमपुरुषस्यैकवचनस्य स्थाने दिव्प्रत्ययः, लिट्-लकारस्य च प्रथमपुरुषस्यैकवचनस्य स्थाने णव्प्रत्ययो विधीयते।

६५४—भवेत् । भू सत्तायाम् । भू+यात् । ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ६६६ सू० यातः स्थाने ज्ज इत्यादेशे, ६५४ सू० ज्जात् परे इकारस्य विकल्पेन प्रयोगे—**होज्जइ होज्ज** इति भवति ।

६५५—भविष्यति, भविता । भू+स्यति, भू+ता । इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ६२८ सू० स्यति तथा ता इत्यनयोः स्थाने इचादेशे,६५५ सू० भविष्यदर्थक-प्रत्ययस्यादौ हि इत्यस्य प्रयोगे **होहिइ** इति भवति । **भविष्यन्ति** । भू+स्यन्ति=हो+स्यन्ति । इत्यत्र ६३१ सू० स्यन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे, पूर्ववदेव **होहिन्ति** इति भवति । **भविष्यसि** । भू+स्यसि । इत्यत्र ६२९ सू० स्यसेः स्थाने सि इत्यादेशे, पूर्ववदेव **होहिसि** इति भवति । **भविष्यथ** । भू+स्यथ=हो+स्यथ । ६३२ सू० स्यथस्य इत्थादेशे, प्रत्ययस्यादौ हि इत्यस्य प्रयोगे हो+हि+इत्था इति जाते, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे **होहित्था** इति भवति । **हसिष्यति** । हस्+स्यति । इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, हि इत्यस्य प्रयोगे, ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इचादेशे **हसिहिइ** इति भवति । **करिष्यति**=काहिइ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ५ सूत्रे ज्ञेया ।

६५६—हेरपवादौ । ६५५ सूत्रेण भविष्यदर्थकप्रत्ययादौ हि इत्यस्य प्रयोगो भवति, परन्त्वनेन ६५६ सूत्रेण स्सा हा इत्यनयोः प्रयोगौ विधीयेते । अतः स्सा हा इत्येतौ हेरपवादौ ज्ञेयौ । **भविष्यामि** । भू+स्यामि । ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६३० सू० स्यामेः स्थाने मि इत्यादेशे, ६५६ सू० स्सा, हा इत्येतौ विकल्पेन प्रयुक्तौ, ततः **होस्सामि होहामि** इति भवति । स्साहाभावे—**होहिमि** इति भवति । अत्र ६५५ सू० हि इत्यस्य प्रयोगो जातः । **भविष्यामः** । भू+स्यामस्=हो+स्यामस् । ६३३ सू० स्यामसः मो मु म इत्यादेशाः, प्रस्तुतसूत्रेण स्सा हा इत्येतयोः विकल्पेन प्रयोगे **होस्सामो, होस्सामु, होस्साम, होहामो होहामु होहाम** प्रयोगाभावे ६५४ सू० हि इत्यस्य प्रयोगे **होहिमो होहिमु होहिम** इति भवति । **क्वचित्तु हा न भवति** । बहुलाधिकारादत्र क्वचिद् हा इत्यस्य प्रयोगो न जायते । यथा—**हसिष्यामः** । हस्+स्यामस् । इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६३३ सू० स्यामसः मो इत्यादेशे, प्रस्तुत-सूत्रेण स्सा इत्यस्य वैकल्पिके प्रयोगे **हसिस्सामो** स्साप्रयोगाभावे ६५५ सू० हि इत्यस्य प्रयोगे **हसिहिमो** इति भवति । अत्र बाहुल्येन हा इत्यस्य प्रयोगो न जातः ।

६५७—भविष्यामः । भू सत्तायाम् । भू+स्यामस् । इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६३३ सू० स्यामसः मो, मु, म इत्यादेशाः, ६५७ सू० मो-मु-मानां स्थाने वैकल्पिकौ हिस्सा हित्था इत्यादेशौ,ततः—**होहिस्सा, होहित्था** इति भवति । **हसिष्यामः** । हस् हासे । हस्+स्यामस् । ९१० सू० अकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे,पूर्ववदेव **हसिहिस्सा, हसिहित्था** इति भवति । **पक्षे** । आदेशाभावे—**होस्सामो होहामो** [प्रक्रिया ६५६ सूत्रे ज्ञेया] ६५५ सूत्रेण हि-प्रयोगे **होहिमो** इति भवति ।

६५८—भविष्यामि । भू+स्यामि । इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ६३० सू० स्यामेः स्थाने मि इत्यादेशे, ६५८ सू० मिस्थाने वैकल्पिके स्सं इत्यादेशे **होस्सं** आदेशाभावे ६५६ सू० स्सा हा इत्यनयोः विकल्पेन प्रयोगे **होस्सामि, होहामि** प्रयोगाभावे ६५५ सू० हि इत्यस्य प्रयोगे **होहिमि** इति भवति । प्रक्रिया ६५६ सूत्रे ज्ञेया । **हसिष्यामि** । हस्+स्यामि । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, स्यामेः मि इत्यादेशे, मिस्थाने वैकल्पिके स्सं इत्यादेशे **हसिस्सं** आदेशाभावे हसि+मि इति पूर्ववदेव जाते, स्सा, हा इत्येतयोः प्रयोगयोः **हसिस्सामि, हसिहामि** इति भवति । **कीर्तयिष्यामि** । कृत् संकीर्त्तने । कृत्+णिग्+स्यामि । संस्कृतनियमेन कीर्त्+णिग् (इ)+स्यामि इति जाते, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,

स्यामेः स्थाने मि इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण मिस्थाने स्सं इत्यादेशे **कित्तइस्सं** आदेशाभावे, पूर्ववदेव कित्तइ +मि इति जाते, हि इत्यस्य **प्रयोगे कित्तइहिमि** इति भवति।

६५६—**करिष्यामि**। डुकृञ् करणे। कृ+स्यामि। ८८५ सू० ऋकारस्य अकारे, ६३० सू० स्यामेः स्थाने मि इत्यादेशे, ६५९ सू० मि इत्यस्य विकल्पेन हं इत्यादेशे **काहं** आदेशाभावे ६५५ सू० हि इत्यस्य प्रयोगे **काहिमि** इति भवति। **दास्यामि**। डुदाञ्-धातुः दाने। दा+स्यामि=**दाहं** हि इत्यस्य प्रयोगे तु **दाहिमि** इति भवति।

६६०—**श्रोष्यामि**। श्रु-धातुः श्रवणे। श्रु+स्यामि। ६६० सू० स्यामि-प्रत्ययेन सह श्रुधातोः स्थाने **सोच्छं** इति निपात्यते। **गमिष्यामि**। गम्लृ गमने। गम्+स्यामि। प्रस्तुतसूत्रेण गच्छं इति निपातिते **गच्छं** इति भवति। एवमेव—**संगंस्ये**। संगम्+ए=**संगच्छं, रोदिष्यामि**। रुदि रोदने। रुद्+स्यामि=**रोच्छं, वेदिष्यामि**। विद् ज्ञाने। विद्+स्यामि=**वेच्छं, द्रक्ष्यामि**। दृशि दर्शने। दृश्+स्यामि =**दच्छं, मोक्ष्यामि**। मुच्लृ मोक्षे। मुच्+स्यामि=**मोच्छं, वक्ष्यामि**। वच् व्यक्तायां वाचि। वच्+स्यामि=**वोच्छं, छेत्स्यामि**। छिदि छेदने। छिद्+स्यामि=**छेच्छं, भेत्स्यामि**। भिदि छेदने। भिद्+स्यामि=**भेच्छं, भक्ष्ये**। भुज् भोजने। भुज्+स्यामि=**भोच्छं** इत्येतानि रूपाणि साध्यानि।

६६१—**अन्त्यस्वराद्यवयववर्जाः**। अन्ते भवः अन्त्यः=अन्तिमः, अन्त्यश्चासौ स्वरः अन्त्यस्वरः, स आदिर्यस्य स अन्त्यस्वरादिः, अन्त्यस्वरादिश्चासौ अवयवः, अन्त्यस्वराद्यवयवः, तस्य वर्ज-वर्जनं येषु तेऽन्त्यस्वराद्यवयववर्जाः, अकारानुस्वार-रहिता इत्यर्थः। अयं भावः—६६० सूत्रे ये सोच्छं इत्याद्यादेशा भणितास्ते इच् आद्यादेशेषु परेषु ६६१ सू० अन्त्यस्वरहीनाः, अनुस्वारवर्जिताश्च विधीयन्ते। यथा—**श्रोष्यति**। श्रु श्रवणे। श्रु+स्यति। ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इचादेशे,६५५ सू० हि इत्यस्य प्रयोगे, ६६१ सू० विकल्पेन श्रुधातोः सोच्छ् इत्यादेशे हिलुकि च, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे **सोच्छिइ पक्षे**-हिलुकोऽभावे **सोच्छिहिइ** इति भवति। **श्रोष्यन्ति**। श्रु+स्यन्ति। ६३१ सू० स्यन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे, पूर्ववदेव **सोच्छिन्ति** हिलुगभावे **सोच्छिहिन्ति** इति भवति। **श्रोष्यसि**। श्रु+स्यसि। ६२९ सू० स्यसेः सि इत्यादेशे, पूर्ववदेव **सोच्छिसि सोच्छिहिसि** इति भवति। **श्रोष्यथ**। श्रु+स्यथ। ६३२ सू० स्यथस्य इत्था,ह इत्यादेशौ, पूर्ववदेव सोच्छि+इत्था,१० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **सोच्छित्था** सोच्छिहि+इत्था इत्यत्र स्वरस्य लोपे **सोच्छिहित्था सोच्छिह सोच्छिहिह** इति भवति। **श्रोष्यामि**। श्रु+स्यामि। ६३० सू० स्यामेः स्थाने मि इत्यादेशे, पूर्ववदेव **सोच्छिमि सोच्छिहिमि** यत्र ६५५ सूत्रेण हि इत्यस्य प्रयोगस्य अभावस्तत्र ६५६ सू० स्सा हा इत्यनयोः वैकल्पिके प्रयोगे **सोच्छिस्सामि सोच्छिहामि** एतत्प्रयोगाभावे ६५८ सू० म्यादेशस्य स्थाने विकल्पेन स्सं इत्यादेशे **सोच्छिस्सं** स्समादेशाभावे **सोच्छं** इति भवति। अस्य प्रक्रिया ६६० सूत्रे ज्ञेया। **श्रोष्यामः**। श्रु+स्यामस्। इत्यत्र ६३३ सू० स्यामसः, मो, मु, म इत्यादेशाः, पूर्ववदेव **सोच्छिमो, सोच्छिहिमो, सोच्छिमु सोच्छिहिमु, सोच्छिम सोच्छिहिम** हि इत्यस्य प्रयोगाभावे, प्रत्ययस्यादौ विकल्पेन स्सा हा इत्यनयोः प्रयोगे **सोच्छिस्सामो सोच्छिहामो सोच्छिस्सामु सोच्छिहामु सोच्छिस्साम सोच्छिहाम** यत्र ६५७ सू० मो, मु, म इत्येतेषामादेशानां हिस्सा हित्था इत्यादेशौ भवतः तत्र **सोच्छिहिस्सा सोच्छिहित्था** इति भवति। **गमिष्यति**। गम्लृ गतौ। गम्+स्यति। ६२८ सू० स्यतेः इचादेशे, हिप्रयोगे, प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन गम्-धातोः गच्छ् इत्यादेशे, हिलुकि च,पूर्ववदेव **गच्छिइ** हिलुकोऽभावे **गच्छिहिइ** इति भवति। **गमिष्यन्ति**। गम्+स्यन्ति। पूर्ववदेव **गच्छिन्ति गच्छिहिन्ति** इति भवति। **गमिष्यसि**। गम्+स्यसि=

गच्छिससि गच्छिहिसि । **गमिष्यथ** । गम्+स्यथ=**गच्छित्था गिच्छहित्था गच्छिह गच्छिहिह** । **गमिष्यामि** । गम्+स्यामि=**गच्छिमि, गच्छिहिमि, गच्छिस्सामि, गच्छिहामि, गच्छिस्सं, गच्छं** । **गमिष्यामः** । गम्+स्यामस्=**गच्छिमो, गच्छिहिमो, गच्छिमु, गच्छिहिमु, गच्छिम, गच्छिहिम, गच्छिस्सामो, गच्छिहामो, गच्छिस्सामु, गच्छिहामु, गच्छिस्साम, गच्छिहाम, गच्छिहिस्सा, गच्छिहित्था** इति पूर्ववदेव साध्यम् । एवमेव रुदादिधातूनामपि रूपाणि उदाहार्याणि=उदाहर्तव्यानि ।

६६२—**हसतु** । हस् हासे । हस्+तुव् । इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६६२ सू० तुवः स्थाने दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **हसउ** इति भवति । **सा** । तद्+सि=सा, प्रक्रिया ५७५ सूत्रे ज्ञेया । **हस** । हस्+हि=हस+हि । प्रस्तुतसूत्रेण हि इत्यस्य स्थाने सु इत्यादेशे **हससु** इति सिद्धम् । **त्वम्**=तुमं, प्रक्रिया ५७९ सूत्रे ज्ञेया । **हसानि** । हस्+आनिव्=हस+आनिव् । प्रस्तुत-सूत्रेण आनिवः मु इत्यादेशे, ६४४ सू० अकारस्य आकारे **हसामु** इति भवति । **अहम्**—अहं, प्रक्रिया ५९४ सूत्रे ज्ञेया । **पश्यतु** । दृश्+तुव् । ८५२ सू० दृशः स्थाने पेच्छ इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण तुवः दु (उ) इत्यादेशे **पेच्छउ** इति भवति । **पश्य** । दृश्+हि । प्रस्तुतसूत्रेण हि इत्यस्य सु इत्यादेशे, पूर्ववदेव **पेच्छसु, पश्यानि** । दृश्य्+आनिव् । आनिवः मु इत्यादेशे, पूर्ववदेव **पेच्छामु** इति भवति । **दकारोच्चारणम्** । **दु** इत्यादेशे दकारोच्चारणं भाषान्तरार्थम् । अन्या भाषा भाषान्तरं, तदर्थं भाषान्तरार्थम् । अयं भावः—९७८ सूत्रेण पैशाच्यां दकारस्य तकारो जायते । अतोऽत्र दकारग्रहणं सर्वथा सार्थकमेव बोध्यम् ।

६६३—**देहि** । डुदाञ्-दा दाने । दा+हि । ९०९ सू० आकारस्य एकारे,६६२ सू० हि इत्यस्य स्थाने सु इत्यादेशे, ६६३ सू० सोः स्थाने विकल्पेन हि इत्यादेशे **देहि, देसु** इति भवति ।

६६४-**हस** । हस्+हि । इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६६२ सू० हेः सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोः स्थाने इज्जसु, इज्जहि, इज्जे, लुक् इत्यादेशाः, गुणसन्धौ **हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे, हस** आदेशाभावे **हससु** इति भवति । **अत किम्** ? अकारात्परस्यैव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति,नान्यथा । यथा—**भव** । भू सत्तायाम् । भू+हि । ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे,हेः स्थाने सु इत्यादेशे,ओकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ **होसु** इति भवति । **तिष्ठ** । ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ । स्था+हि । ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, हेः स्थाने सु इत्यादेशे, आकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ६६३ सू० सोः स्थाने हि इत्यादेशे **ठाहि** इति भवति ।

६६५—**हसन्तु, हसेयुः** । हस्+अन्तु,हस्+युस् । इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६६५ सू० अन्तु, युस् इत्येतयोः प्रत्यययोः क्रमशः न्तु इत्यादेशे **हसन्तु** इति भवति । **हसत,हसेत** । हस्+त, हस्+यात्=हस+त,हस+यात् । प्रस्तुतसूत्रेण त,यात् इत्यनयोः प्रत्यययोः ह इत्यादेशे **हसह** इति भवति । **हसाम, हसेम** । हस् (हस)+आमव्, हस् (हस)+याम । प्रस्तुतसूत्रेण आमव्, याम इत्यनयोः प्रत्यययोः मो इत्यादेशे, ६४४ सू० अकारस्य स्थाने आकारे **हसामो** इति भवति । **त्वरन्ताम्, त्वरेरन्** । त्वर् शीघ्रगतौ । त्वर+अन्ताम्, त्वर्+ईरन् । ८४१ सू० त्वर्धातोः तुवर इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण अन्ताम्, ईरन् इत्येतयोः न्तु इत्यादेशे **तुवरन्तु** इति भवति । **त्वरध्वम्, त्वरेध्वम्** । त्वर्+ध्वम्, त्वर्+ईध्वम् । त्वर्धातोः तुवरादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण ध्वम्, ईध्वम् इत्येतयोः प्रत्यययोः हकारे, **तुवरह** इति भवति । **त्वरमहे, त्वरामहै** । त्वर्+आहमैव्,त्वर्+ईमहि, पूर्ववदेव प्रस्तुतसूत्रेण आहमैव्, ईमहि इत्यनयोः प्रत्यययोः स्थाने मो इत्यादेशे, ६४४ सू० अकारस्य दीर्घे **तुवरामो** इति भवति ।

६६६-**वर्तमानायाः** । सिद्धहेमशब्दानुशासने, पाणिनीयव्याकरणे च तिङ्-विभक्तीनां नामानि विभिन्नानि सन्ति । यथा—सिद्धहेमशब्दानुशासने—१—वर्तमाना, २—सप्तमी, ३—पञ्चमी,

४—ह्यस्तनी, ५—अद्यतनी, ६—परोक्षा, ७—आशीः, ८—श्वस्तनी, ९—भविष्यन्ती, १०—क्रियातिपत्तिः, एताः संज्ञाः वर्तन्ते परन्तु पाणिनीयव्याकरणे एतासां स्थानेऽन्याः संज्ञाः समुपलभ्यन्ते। यथा—१—लट्, २—विधिलिङ्, ३—लोट्, ४—लङ्, ५—लुङ्, ६—लिट्, ७—आशीर्लिङ्, ८—लुट्, ९—लृट्, १०—लृङ्। प्रस्तुतसूत्रेण वर्तमानायाः,भविष्यन्त्याः,विध्यादिषु च विहितस्य प्रत्ययस्य स्थाने ज्ज, ज्जा इत्यादेशौ विकल्पेन भवतः। **वर्तमाना**। वर्तमानाविभक्तेरुदाहरणं प्रदर्श्यते, यथा—**हसति**। हस्+तिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,६६६ सू० तिवः स्थाने विकल्पेन ज्ज,ज्जा इत्यादेशौ,६४८ सू० अकारस्य एकारे **हसेज्ज, हसेज्जा** आदेशाभावे—**हसइ** प्रक्रिया ६२८ सूत्रे द्रष्टव्या। **पठति**। पठ्+तिव्। १९९ सू० ठकारस्य स्थाने ढकारे,पूर्ववदेव **पढेज्ज,पढेज्जा** आदेशाभावपक्षे—**पढइ** इति भवति। **शृणोति**। श्रु+तिव्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे,९१२ सू० णकारागमे, पूर्ववदेव **सुणेज्ज, सुणेज्जा** आदेशाभावपक्षे—**सुणइ** इति पूर्ववदेव साध्यम्। **भविष्यन्ती**। भविष्यन्तीविभक्तेरुदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**पठिष्यति**। पठ्+स्यति=पढ+स्यति। प्रस्तुतसूत्रेण स्यतेः विकल्पेन ज्जा, ज्जा इत्यादेशौ, ६४८ सू० अकारस्य एकारे **पढेज्ज, पढेज्जा** आदेशाभावपक्षे—पढ+स्यति, इति पूर्ववदेव जाते,६४६ सू० **अकारस्य** इकारे,६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हिप्रयोगे,६२८ सू० स्यतेः इचादेशे **पढिहिइ** इति भवति। **विध्यादिषु**। विध्यादिष्वर्थेषु विहितस्य विभक्तेरुदाहरणं प्रदीयते। यथा—**हसतु, हसेत्**। हस्+तुव्, हस्+यात्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, प्रस्तुतसूत्रेण तुवः यातश्च स्थाने ज्ज,ज्जा इत्यादेशौ,६४८ सू० अकारस्य एकारे **हसेज्ज,हसेज्जा** ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **हसिज्जा** आदेशाभावपक्षे—६६२ सू० उक्तप्रत्यययोः दु (उ) इत्यादेशे **हसउ** इति भवति। **अतिपातयेत्**। अतिपत् अतिपातने। अतिपत्+णिग्+यात्। १७७ सू० तकारलोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ११ सू० तकारलोपे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६४२ सू० अकारस्य दीर्घे अइवाए+यात्, प्रस्तुतसूत्रेण यातः ज्जा इत्यादेशे **अइवाएज्जा** ६३८ सू० णिग आवे इत्यादेशे, पूर्ववदेव अइव+आवे+ज्ज इति जाते, ६४२ सूत्रे प्रदर्शितमतान्तरेण धातोरादेरकारस्य आकारे (अइवा+आवे+ज्जा) बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ **अइवायावेज्जा** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। **समनुजानामि**। समनुज्ञा अनुमोदने। समनुज्ञा+मिव्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६७८ सू० ज्ञाधातोः जाण इत्यादेशे, ६३० सू० मिवः मि इत्यादेशे, ६४३ **सू०** अकारस्य दीर्घे जाते **समणुजाणामि** प्रस्तुतसूत्रेण मिवः स्थाने ज्जा इत्यादेशे,६४८ सू० अकारस्य एकारे **च समणुजाणेज्जा** इति भवति। **अन्ये त्वन्यासामपीच्छन्ति**। अन्ये आचार्यास्तु अन्यासामपि विभक्तीनां स्थाने प्रस्तुतसूत्रविहितावादेशौ वाञ्छन्ति। तेन सर्वास्वेव विभक्तिषु एतावादेशौ भवतः। यथा—**भवति, भवेत्, भवतु, अभवत्**, **अभूत्, बभूव, भूयात्, भविता, भविष्यति, अभविष्यत्**। भू+तिव्, भू+यात्, भू+तुव्, भू+दिव्, भू+दि, भू+णव्, भू+क्यात्, भू+ता, भू+स्यति, भू+स्यत्। इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण सर्वेषां तिवादिप्रत्ययानां स्थाने विकल्पेन प्रत्येकं ज्ज ज्जा इत्यादेशौ, ततः **होज्ज, होज्जा** इति भवति। एवं सर्वासु विभक्तिष्वपि **होज्ज होज्जा** इति द्वे रूपे बोध्ये।

६६७—**भवति**। भू+तिव्। इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण प्रकृति-प्रत्यययोर्मध्ये ज्ज ज्जा इत्येतौ विकरणौ विकल्पेन भवतः, ततः ६२८ सू० तिवः इचादेशे—**होज्जइ होज्जाइ** विकरणाभावे ६६६ सू० तिव्-प्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन ज्ज ज्जा इत्यादेशौ, ततः—**होज्ज होज्जा** आदेशाभावे **होइ** इति भवति। **भवसि**। भू+सिव्=हो+सिव्। ६२९ सू० सिवः सि इत्यादेशे,प्रस्तुतसूत्रेण

ज्ज ज्जा इति विकरणौ जातौ,ततः—**होज्जसि होज्जासि** विकरणाभावे ६६६ सू० सिवः विकल्पेन ज्ज ज्जा इत्यादेशौ, ततः—**होज्ज होज्जा** आदेशाभावे **होसि** इति भवति। **भविष्यति**। भू+स्यति=हो+स्यति। ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इचादेशे,६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हि-प्रयोगे,प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन ज्ज ज्जा इति विकरणौ, ततः—**होज्जहिइ होज्जाहिइ** विकरणाभावे स्यतेः विकल्पेन ज्ज ज्जा इत्यादेशौ **होज्ज होज्जा** आदेशाभावे हो+हि+स्यति इति जाते,पूर्ववदेव स्यतेः इचादेशे **होहिइ** इति भवति। **भविष्यसि**। भू+स्यसि=हो+स्यसि। इत्यत्र ६२९ सू० स्यसेः सि इत्यादेशे, पूर्ववदेव **होज्जहिसि होज्जाहिसि** विकरणाभावे स्यसेः ज्ज ज्जा इत्यादेशौ, ततः **होज्ज होज्जा** ज्जज्जादेशाभावे हिप्रयोगे **होहिसि** इति भवति। **भविष्यामि**। भू+स्यामि=हो+स्यामि,हि इत्यस्य प्रयोगे,६३० सू० स्यामेः मि इत्यादेशे,पूर्ववदेव **होज्जहिमि होज्जाहिमि** ६५६ सू० प्रत्ययस्यादौ स्सा हा इत्यनयोः विकल्पेन प्रयोगे—**होज्जस्सामि होज्जहामि**, ६५८ सू० म्यादेशस्य विकल्पेन स्सं इत्यादेशे **होज्जस्सं** विकरणाभावे ६६६ सू० म्यादेशस्य विकल्पेन ज्ज ज्जा इत्यादेशे **होज्ज होज्जा** ज्जज्जादेशाभावे हि-प्रयोगे **होहिमि** इति भवति। **भवतु, भवेत्**। भू+तुव्, भू+यात्=हो+तुव्, हो+यात्। ६६२ सू० तुवः यातश्च दु (उ) इत्यादेशे; पूर्ववदेव **होज्जउ होज्जाउ** विकरणाभावे ६६६ सू० विकल्पेन तुवः यातश्च स्थाने ज्ज ज्जा इत्यादेशौ,ततः **होज्ज होज्जा** आदेशाभावे **होउ** इति भवति। **स्वरान्तादिति किम्** ?स्वरान्ताद् धातोरेव ज्ज ज्जा इत्येतौ विकरणौ भवतः, नान्यथा। यथा—**हसतु, हसेत्**। हस् हासे। हस्+तुव्, हस्+यात्। सकारान्तधातुत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,६६६ सू० तुवः यातश्च स्थाने ज्ज ज्जा इत्यादेशौ,६४८ सू० अकारस्य एकारे **हसेज्ज, हसेज्जा** इति भवति। **त्वरताम्, त्वरेत**। त्वर् शीघ्रगतौ। त्वर्+ताम्, त्वर्+ईत। रेफान्तत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, ८४१ सू० त्वर्-धातोः स्थाने तुवर इत्यादेशे, पूर्ववदेव **तुवरेज्ज तुवरेज्जा** इति भवति।

६६८—**क्रियातिपत्तेः**। क्रियातिपत्ति-शब्दः लृङ्लकार-पर्यायवाचको बोध्यः। **अभविष्यत्**। भू+स्यत्। इत्यत्र ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे,६६८ सू० स्यतः स्थाने ज्ज ज्जा इत्यादेशौ,ततः—**होज्ज, होज्जा** इति भवति। **यदि**=जइ, प्रक्रिया ४० सूत्रे ज्ञेया। **वर्णनीयः**। वर्णनीय+सि। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, २४८ सू० यकारस्य द्विरुक्ते जकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वण्णणिज्जो** इति सिद्धम्।

६६९—**अभविष्यत्**। भू+स्यत्=हो+स्यत्। ६६९ सू० लृङः स्थाने न्त, माण इत्यादेशौ, ततः सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **होन्तो होमाणो** इति भवति। नात्र संदेहः कर्तव्य यत्तिङादेशान्तानां (तिङः स्थाने ये आदेशास्तदन्तानाम्) प्रातिपदिकत्वं न भवति, यतः तिङादेशान्तानामपि प्रातिपदिकसाधकं प्रमाणमुपलभ्यते। यथा—हैमशब्दानुशासनस्य ५-२-२ सूत्रेण *परोक्षा (लिट)-विषये धातोः परौ क्वसुकानौ **प्रत्ययौ** विधीयेते। एतत्प्रत्ययान्ता **शुश्रुवान्, सेदिवान्** इत्यादयः शब्दाः शब्दशक्तिस्वाभाव्यात् कृदन्ताधिकारविहितत्वाच्च प्रातिपदिकसंज्ञां लभन्ते। एवमेव **होन्त-होमाण** प्रभृतयस्तिङादेशान्ता अपि शब्दा प्रातिपदिकसंज्ञाभाजो भवन्ति। अयं भावः—यथा ६७० सूत्रेण शतृआनश्-प्रत्यययोः स्थाने प्रत्येकं विहितौ न्त-माणादेशौ स्थानिवत्वात् कृत्प्रत्ययावेव भवतस्तथैव ६६९ सूत्रविहितौ न्त-माणादेशावपि वर्णसाम्यात्, शब्दशक्तिस्वाभाव्यात्, कृदन्ताधिकारविहितत्वाद्वा

*तत्र क्वसुकानौ तद्वत् ।५।२।२। परोक्षामात्रविषये धातोः परौ क्वसुकानौ स्यातां तौ च परोक्षे एव। शुश्रुवान्। सेदिवान्। पेचिवान्। पेचानः।

प्रातिपदिकौ भवतः। तेनैव तत्र स्यादिप्रत्ययाः भवितुं शक्नुवन्त्येवेति।

हरिणस्थाने हरिणाङ्क! यदि (त्वं) हरिणाधिपं न्यवेक्ष्यः।
न असहिष्यथाः एव तस्मात् (तदा) राहुपरिभवमस्य जयतः ॥१॥'

हे हरिणाङ्क! हरिणस्य-मृगस्य **अङ्कः**-चिन्हं यस्य स हरिणाङ्कः,तत्सम्बोधनम्। हे निशाकर! यदि त्वं हरिणस्य स्थाने हरिणाधिपं-हरिणानां वन्यजीवानामधिपः-स्वामी सिंहः, तं न्यवेक्ष्यः—अस्थापयिष्यः, तस्मात्—तदा त्वमस्य सिंहस्य जयतः-जयशीलस्य विद्यमानतायाम्, राहुपरिभवम्-राहोः परिभवम्-तिरस्कारं नैव असहिष्यथाः-सहनं न अकरिष्यथाः। राहुरिति राहुनामधेयो जगत्प्रसिद्धो ग्रहः। चन्द्रं प्रति कस्यचिदुक्तिरियम्। असौ भणति-हे चन्द्र! भीरुस्वभावेन हरिणेन सह त्वदीया या संगतिः,तयैव त्वदीयैतादृशी दुर्दशा जाता। यदि हरिणसान्निध्यं परित्यज्य त्वं सिंहसान्निध्यमकरिष्यस्तदा तवोपरि राहुर्न कदापि आक्रमणमकरिष्यत्। **हरिणस्थाने**। हरिस्थान+ङि। इत्यत्र ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे,३६० सू० ठकारद्वित्वे ३६१ सू० पूर्वंठकारस्य टकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५०० सू० ङेः स्थाने डित्-एकारे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हरिट्ठाणे** इति भवति। **हरिणाङ्क**!। हरिणाङ्क+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **हरिणङ्क**! इति भवति। **यदि**—जइ,प्रक्रिया ४० सूत्रे ज्ञेया। बाहुल्येन **सि** इत्यव्ययपदं ४८८ सूत्रेण पादपूर्त्यर्थे प्रयुज्यते। **हरिणाधिपम्**। हरिणाधिप+अम्। १८७ सू० धकारस्य हकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **हरिणाहिवं** इति भवति। **न्यवेक्ष्यः**। निविश् निवेशे-स्थापने। निविश्+स्यस्। ९०९ सू० द्वितीयस्येकारस्य एकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६६९ सू० स्यसः न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे अन्त्यस्वरादेर्लोपे **निवेसन्तो** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते। **असहिष्यथाः**। सह् सहने। सह+स्यस्। धातोरन्तेऽकारागमे, स्यसः न्त इत्यादेशे, पूर्ववदेव **सहन्तो** इति भवति। **एव**=च्चिअ, प्रक्रिया ४५५ सूत्रे ज्ञेया। **तस्मात्**। तद्+ङसि। ५५६ सू० ङसेः डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तो** इति भवति। **राहुपरिभवम्**। राहुपरिभव+अम्। १८७ सू० भकारस्य हकारे, पूर्ववदेव **राहुपरिहवं** इति भवति। **अस्य**=से, प्रक्रिया ५७० सूत्रे ज्ञेया। **जयतः**। जि जये। जि+शतृ। ९१० सू० अकारागमे, प्रयोगदर्शनाद् यण्-सन्ध्यभावे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **जिअन्तस्स** इति भवति।

६७०—**हसन्**। हस्+शतृ। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६७० सू० शतुः न्त माण इत्यादेशौ, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हसन्तो, हसमाणो** इति भवति। शतृ-आनश् इत्येतौ कृत्प्रत्ययौ, अतः न्त माण इत्यादेशावपि स्थानिवत्वात् कृत्प्रत्ययौ एव स्तः। पाणिनीयमतानुसारेण—**कृत्तद्धित-समासाश्च***।१।२।४६। इत्यनेन सूत्रेण कृदन्ताः शब्दाः प्रातिपादिकाः भवन्ति। अनेनैव कारणेन **हसन्तो** इत्यादयः कृदन्ताः प्रयोगाः स्यादिप्रत्ययैः निष्पन्नाः भवन्ति। **वेपमानः**। वेपृ कम्पने। वेप्+आनश्। धातोरन्तेऽकारागमे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, प्रस्तुतसूत्रेण आनशः स्थाने न्त, माण इत्यादेशौ, पूर्ववदेव **वेवन्तो वेवमाणो** इति भवति।

६७१—**हसन्ती**। हस्+शतृ=हस+शतृ। ६७१ सू० शतुः स्थाने ई, न्त, माण इत्यादेशाः, सिप्रत्यये १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **हसई** हसन्त,हसमाण इत्यत्र ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, सेर्लोपे—**हसन्ती हसमाणी**

*कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा (प्रातिपादिकाः) स्युः।

इति भवति। **वेपमाना**। वेपृ कम्पने। वेप्+आनश्=वेप+आनश्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, आनशः स्थाने ई, न्त, माण इत्यादेशाः, पूर्ववदेव—**वेवई, वेवन्तो, वेवमाणी** इति भवति।

इत्याचार्य-श्री-हेमचन्द्र-विरचितायां वृत्तौ तृतीयपादः सम्पूर्णः। पदानामेतेषां व्याख्या प्रथमपादान्ते कृता वर्तते। तत्र प्रथमपादस्य समाप्तिः सूचिता, अत्र च तृतीयपादस्य, अन्यत्सर्वं समानमेव बोध्यम्। **ऊर्ध्वं स्वर्गनिकेतनादपि**। वृत्तिकारः हैमशब्दानुशासन-रचना-प्रेरकं सिद्धराजं भूपतिं विशिनष्टि-क्षितीश्वरमणे !, क्षितिषु-पृथिवीषु ये ईश्वराः-भूपाः क्षितीश्वराः, तेषां मणिरिव प्रधानः क्षितीश्वरमणिः, तत्सम्बोधनम्। नृपश्रेष्ठ ! इत्यर्थः। स्वर्गनिकेतनात्-स्वर्गस्य निकेतनं-सदनं, तस्मात्-स्वर्गगृहादपि ऊर्ध्वम्-उच्चमत्युच्चमित्यर्थः। पातालमूलाद्-भूम्याः निम्नतरभागादपि तले-नीचैः, अत्यधो इत्यर्थः, पयोधेः—जलधेरपि पारे-अपरभागे त्वत्कीर्तिः-त्वदीयं यशः भ्रमति-प्रसरति, तेन-अतः अस्याः कीर्तेः चापलैः-चाञ्चल्यैः, कीदृशैः चापलैः ? प्रमदास्वभावसुलभैः=ललना-मानस-सुप्राप्यैः, प्रमदानां ये स्वभावाः, तेषु सुलभाः-सुष्ठुप्राप्यास्तैः, पुनः कीदृशैः चापलैः ? उच्चावचैः-नानाविधैः, मुनयो-मननशीलाः साधकाः, कीदृशाः मुनयः ? वाचंयमाः—वाचं यच्छन्ति-नियन्त्रयन्तीति वाचंयमाः-वाणीविवेककुशलाः, मौनिनो वेत्यर्थः। अपि इत्याश्चर्ये, मौन-व्रतं-मौनप्रणं त्याजिताः। अयं भावः—निन्दाप्रशंसोपरमाः, आत्मचिन्तनरताः मुनिजनाः मौनिनः एव भवन्ति परन्तु सिद्धराजभूपतेः कीर्तिरीयती प्रवृद्धा प्रसृता च दृश्यते यत्तस्य कीर्तिकरणे मुनिजनैरपि निजकं मौनव्रतं परित्यक्तम्, तेऽपि सिद्धराजस्य गुणगौरवं वर्णयन्तीति हार्दम्।

***सम्यक्तयाऽव्यय-पदाधिगमाय टीका।**
दृब्धा तृतीयचरणस्य मनोरमेयम्॥
सर्वस्य साऽव्ययपदाधिगमाय मह्यम्।
धर्माप्तयेऽस्तु विनयं च विवर्धनाय॥१॥

❀ समाप्तः तृतीयपादः ❀

★ अथ त्यादि प्रत्ययों को होने वाली विधि ★

पाणिनीय व्याकरण में तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस् तथा त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इड्, वहि, महिङ् ये १८ प्रत्यय तिङन्त कहलाते हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ्, इन दस लकारों में इन्हीं का प्रयोग किया जाता है। किन्तु हैमशब्दानुशासन में इस से बिल्कुल भिन्न पद्धति उपलब्ध होती है। वहां पर लकारों के स्थान पर १—**वर्तमाना**, २—**सप्तमी**, ३—**पंचमी**, ४—**ह्यस्तनी**, ५—**अद्यतनी**, ६—**परोक्षा**, ७—**आशीः**, ८—**श्वस्तनी**, ९—**भविष्यन्ती** और १०—**क्रियातिपत्ति** इन शब्दों का प्रयोग मिलता है। किस लकार के स्थान में किस शब्द का प्रयोग किया जाता है ? यह आगे बताया जा रहा है। **हैमशब्दानुशासन** में वर्तमाना के–तिव्, तस्, अन्ति, सिव्,

*अव्यय-पदानां सम्यक्तया-समीचीनतयाऽधिगमाय-अवबोधाय तृतीयचरणस्येयं बालमनोरमा-टीका दृब्धा-रचिता। सा सर्वस्य-सर्वजनस्य आगम-बुभुत्सूनामव्ययपदानामवबोधाय, मह्यं तु धर्माप्तये—धर्मप्राप्तये, विनयवृद्ध्यर्थमपि भूयात्। अत्र वसन्त-तिलकाच्छन्दः।

थस्, थ, मिव्, वस्, मस्,ते, आते, अन्ते, से, आथे, ध्वे, ए, वहे,महे, ये प्रत्यय माने गए हैं। इसी तरह सप्तमी आदि के भी यहां स्वतन्त्र प्रत्यय स्वीकार किए गए हैं। प्रस्तुत प्रकरण में तिव्, आदि प्रत्ययों के स्थान में होने वाले कार्यों का निर्देश किया जा रहा है। तिव् आदि प्रत्यय प्राकृत-भाषा में क्या रूप धारण करते हैं ? इस सम्बन्ध में यहां प्रकाश डाला जायगा।

६२८—*तिव् आदि विभक्तियों के **परस्मैपद** तथा **आत्मनेपद** से सम्बन्धित प्रथम-त्रय (प्रथमा विभक्ति के एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन) का जो आद्य वचन है, उसके स्थान में इच् (इ) और एच् (ए) ये दो आदेश होते हैं, जैसे—**१—हसति**=हसइ, हसए (वह हंसता है), **२ वेपते**=वेवइ, वेवए (वह काम्पता है) यहां पर **तिव् और ते** के स्थान में **इच्** और **एच्** ये दो आदेश किए गए हैं। प्रश्न हो सकता है कि **इच् और एच्** के चकार का तो लोप हो ही जाता है, फिर इस के उच्चारण की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि ९८९ सूत्र द्वारा **पैशाचीभाषा** में **इच् और एच्** के स्थान में **'ति'** यह आदेश होता है, अतः ये दोनों चकार व्यर्थ नहीं हैं, इसीलिए वृत्तिकार कहते हैं कि दोनों चकार ९८९ सूत्र में **विशेषणार्थक** हैं—विशेष प्रयोजन को लिए हुए हैं।

६२९—**परस्मैपदीय** तथा **आत्मनेपदीय** तिव् आदि विभक्तियों के द्वितीय-त्रिक-सबन्धी आद्य-वचन के स्थान में **सि** और **से** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**१—हससि**=हससि, हससे (तू हंसता है), **२—वेपसे**=वेवसि, वेवसे (तू कांपता है) यहां पर मध्यमपुरुष के एकवचन के स्थान में **सि** और **से** ये दो आदेश किए गए हैं।

६३०—**परस्मैपदीय** तथा **आत्मनेपदीय तिव् आदि** विभक्तियों के तृतीय त्रिक (उत्तमपुरुष) के आद्यवचन (एक वचन) के स्थान में **'मि'** यह आदेश किया जाता है। जैसे—**१—हसामि**=हसामि (मैं हंसता हूं), **२—वेपे**=वेवामि (मै कांपता हूं)। **बहुलाधिकार** के कारण २ सूत्र से **'मिव्'** प्रत्यय के स्थान में होने वाले **'मि'** इस आदेश के इकार का लोप भी हो जाता है। जैसे—**१—बहुज्ञायक ! रोषितुं शक्नोमि**=बहुजाणय ! रूसिउं सक्कं (हे बहुज्ञायक ! अर्थात्—बहुत जानने वाले ! मैं रोष कर सकता हूं), **२—न म्रिये**=न मरं (मैं मरता नहीं हूं) यहां आदेशभूत **'मि'** इस आदेश के इकार का लोप किया गया है।

६३१—**परस्मैपदीय** तथा **आत्मनेपदीय** तिव् आदि विभक्तियों के आद्यत्रिक सम्बन्धी बहुसंख्या-वाचक वचन (बहुवचन) के स्थान में **न्ति, न्ते** और **इरे** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—**१—हसन्ति**=हसन्ति (हंसते हैं), **२—वेपन्ते**=वेवन्ति (काम्पते हैं), **३—हसन्ति**=हसिज्जन्ति (हंसते हैं), **४—रमन्ते**=रमिज्जन्ति (क्रीडा करते हैं), **५—गर्जन्ति खे मेघाः**=गज्जन्ते खे मेहा (आकाश में बादल गरजते हैं), **६—बिभ्यति राक्षसाणाञ्च**=बीहन्ते रक्खसाणं च (और वे राक्षसों से डरते हैं), **७—उत्पद्यन्ते कविहृदय-सागरे काव्यरत्नानि**=उप्पज्जन्ते कइ-हिअय-सायरे कव्वरयणाइं (कवियों के

---

*संस्कृत भाषा में **परस्मैपद और आत्मनेपद** ये दो पद माने जाते हैं। **परस्मैपद** का अर्थ है-वह पद जिसका फ़ल दूसरों के लिए हो। वह पद जिस का फ़ल अपने लिए हो, उसे **आत्मनेपद** कहते हैं। भाव यह है कि जिस क्रिया का फल दूसरों के लिए हो वह **परस्मैपद** और जिस क्रिया का फल केवल अपने लिए ही हो वह **आत्मनेपद** कहलाती है। जैसे—**कृषकः वपति**—किसान बोता है। यहां बोने की क्रिया का फल दूसरे के लिए पाया जाता है, किसान के लिए नहीं, इसलिए यह परस्मैपदीय क्रिया समझनी चाहिए। किन्तु **आत्मनेपद** में ऐसा नहीं होता। यहां पर क्रिया का फल केवल अपने लिए होता है।

हृदय-सागर में काव्यरूपी रत्न पैदा होते हैं), ८—**द्वौ अपि न प्रभवतः बाहू**=दोण्णि वि न पहुप्पिरे बाहू (दोनों ही भुजाएं काफी नहीं हैं), ९—**विक्षुभ्यन्ति**=विच्छुहिरे (वे विक्षुब्ध होते हैं), यहां पर प्रथम पुरुष के बहुवचन को '**न्ति**' आदि तीन आदेश किए गए हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि **बहुलाधिकार** से कहीं-कहीं पर प्रथम पुरुष के एकवचन को भी 'इरे' यह आदेश हो जाता है। जैसे—**शुष्यति ग्रामकर्दमः**=सूसइरे गाम-चिक्खल्लो (गांव का कीचड सूखता है) यहां पर एकवचन के स्थान में भी **इरे** यह आदेश हो गया है।

६३२—**परस्मैपदीय** तथा **आत्मनेपदीय** तिव् आदि विभक्तियों के मध्यम-त्रिक (मध्यमपुरुष) के बहुसंख्यावाचक वचन (बहुवचन) के स्थान में **इत्था** और **हच्** (ह) ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**हसथ**=हसित्था, हसह (तुम सब हंसते हो), २—**वेपध्वे**=वेवित्था, वेवह (तुम सब कांपते हो) यहां मध्यमपुरुष के बहुवचन के स्थान में उक्त दोनों आदेश किए गए हैं। **बहुलाधिकार** के कारण '**इत्था**' यह आदेश अन्यत्र (मध्यमपुरुष के बहुवचन के बिना, दूसरे स्थान पर) भी हो जाता है। जैसे—**यद् यद् ते रोचते**=जं जं ते रोइत्था (जो जो तुझे अच्छा लगता है) यहां प्रथमपुरुष के एकवचन के स्थान में भी '**इत्था**' यह आदेश हो गया है। ध्यान रहे कि '**हच्**' इस आदेश का चकार व्यर्थ नहीं है, क्योंकि यह ९३९ सूत्र में **विशेषणार्थक** है, अर्थात् विशिष्ट अर्थ-प्रयोजन को लिए हुए है। वहां पर ६३२ सूत्र से विहित हच् के हकार को धकार बनाया जाने वाला है, अतः यदि '**हच्**' न कहते तो—'**इह-हचोर्हस्य**' इस ९३९ वें सूत्र की रचना ही नहीं हो सकती थी।

६३३—**परस्मैपदीय** तथा **आत्मनेपदीय** त्यादि विभक्तियों के तृतीयत्रिक (उत्तमपुरुष) सम्बन्धी बहु-संख्यावाचक वचन (बहुवचन) के स्थान में **मो, मु** और **म** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—१—**हसामः**=हसामो, हसामु, हसाम (हम हंसते हैं), २—**त्वरामहे**=तुवरामो, तुवरामु तुवराम (हम सब शीघ्रता करते हैं) यहां उत्तम पुरुष के बहुवचन के स्थान में **मो** आदि ये तीन आदेश किए गए हैं।

६३४—त्यादि प्रत्ययों के स्थान मे जो **एच्** और **से** ये दो आदेश कहे गए हैं, वे अकारान्त धातुओं से ही होते हैं, अन्यत्र नहीं। जैसे—१—**हसति**=हसए (वह हंसता है), २—**हससि**=हससे (तू हंसता है), ३—**त्वरते**=तुवरए, (वह जल्दी करता है), ४—**त्वरसे**=तुवरसे (तू जल्दी करता है), ५—**करोति**=करए (वह करता है), ६—**करोषि**=करसे (तू करता है) यहां पर अकारान्त धातुओं से परे रहने पर ही तिव् के स्थान **से एच्** और **सिव्** के स्थान में **से** यह आदेश किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार ने '**अतः** (अकारान्त से परे हो)" ऐसा क्यों कहा? उत्तर में निवेदन है कि १—**तिष्ठति**=ठाइ (वह ठहरता है), २—**तिष्ठसि**=ठासि (तू ठहरता है), ३—**उद्वाति**=वसुआइ (वह ऊपर को जाता है), ४—**उद्वासि**=वसुआसि (तू ऊपर को जाता है), ५—**भवति**=होइ (वह होता है), ६—**भवसि**=होसि (तू होता है) आदि आकारान्त तथा ओकारान्त धातुओं से परे पड़े तिव् तथा सिव् के स्थान में **एच्** और **से** इन आदेशों का निषेध करने के लिए सूत्रकार ने '**अतः**' इस पद का उल्लेख किया है। इस के अतिरिक्त, यह भी समझ लेना चाहिए कि प्रस्तुत सूत्र में जो '**एव**' यह पद पढा है, इस का सम्बन्ध '**अतः**' इस पद के साथ ही है, **एच्** और **से** के साथ नहीं है। यदि इन पदों के साथ **एव** का सम्बन्ध जोडा जायगा तो सूत्र का अर्थ होगा—**अकारान्त धातुओं से एच् और से ये दो ही आदेश होते हैं, अन्य नहीं**। ऐसा अर्थ इष्ट नहीं है, क्योंकि ऐसा अर्थ करने पर—अकारान्त धातुओं से इच् और सि, ये आदेश नहीं हो सकेंगे। इसलिए '**एव**' इस पद को '**अतः**' इस पद से ही सम्बन्धित समझना

चाहिए। इसी लिए वृत्तिकार फरमाते हैं कि '**एव**' यह पद **अकारान्त** धातुओं से **एच् और से ये दो आदेश ही** होते हैं, इस विपरीत-शास्त्रविरुद्ध, अवधारण-निश्चय या बोध का निषेध करने के लिए जानना चाहिए। इस तरह अकारान्त धातु से **इच्** और **सि** ये दोनों आदेश भी सिद्ध हो सकेंगे। जैसे—१—**हसति**=हसइ (वह हंसता है), २—**हससि**=हससि (तू हंसता है), ३—**वेपते**=वेवइ (वह कांपता है), ४—**वेपसे**=वेवसि (तू कांपता है) यहां पर तिव् के स्थान में **इच्** और सिव् के स्थान में '**सि**' यह आदेश हो गया।

६३५—द्वितीय त्रिक (मध्यमपुरुष) के आदेश-भूत '**सि**' के साथ अस्-धातु के स्थान में '**सि**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**निष्ठुरः यद् असि**=निट्ठुरो जं सि (तू निष्ठुर=कठोर जो है), यहां पर सि के साथ अस्धातु को सि यह आदेश किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में '**सिना** (सि के साथ)' यह पद पढने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि जहां सिव्-प्रत्यय के स्थान में ६२९ सूत्र '**से**' यह आदेश होता है, वहां पर उस के साथ कहीं अस् धातु को '**सि**' यह आदेश न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने '**सिना**' इस पद का उल्लेख किया है। दूसरी बात, **सिव्** के स्थान में '**से**' यह आदेश हो जाने पर तो अस्धातु का **असि त्वम्**=अत्थि तुमं (तू है) यह रूप बनता है।

६३६—**मि, मो** और **म** इन आदेशों के साथ **अस्** धातु के स्थान में यथासंख्य (संख्या-गणना के अनुसार) **म्हि, म्हो** और **म्ह** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। अर्थात् आदेशभूत **मि** के साथ अस् धातु को **म्हि**, अस्धातु सहित **मो** को **म्हो** और अस्-धातु के साथ **म** को **म्ह** यह आदेश होता है। जैसे—१—**एषोऽस्मि**=एस म्हि (मैं यह हूं), २—**गताः स्मः**=गय म्हो, गय म्ह (हम गए हैं), यहां पर **मि** आदि आदेशों के साथ अस् धातु के स्थान में'**म्हि**'आदि तीन आदेश किए गए हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि **मिव्** प्रत्यय के स्थान में ६३० सूत्र से '**मि**' यह आदेश होता है, तथा ६३३ सूत्र से मस् के स्थान में-**मो, मु, म**, ये तीन आदेश होते हैं। इस तरह उत्तमपुरुष के एकवचन तथा बहुवचन के स्थान में होने वाले आदेशों की संख्या चार हो जाती है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने मि, मो, म इन तीनों का ग्रहण किया है, चौथा 'मु' यह आदेश क्यों छोड़ दिया गया है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए वृत्तिकार फरमाते हैं कि सूत्रकार ने '**मु**' का जो ग्रहण नहीं किया, इस से ऐसा निश्चय होता है कि अस्धातु से 'मस्' के स्थान में 'मु' यह आदेश होता ही नहीं है। जहां पर प्रस्तुत सूत्र से '**म्हि**' आदि आदेश नहीं होने पाए वहां पर—१—**अस्मि अहम्**=अत्थि अहं (मैं हूं), २—**स्मो वयम्**=अत्थि अम्हे अम्हो (हम हैं) ऐसे रूप बनते हैं। यहां अस् धातु को'म्हि' आदि आदेश नहीं हो सके। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि संस्कृत-भाषा के नियमों से निष्पन्न-'**स्मः**' इस पद का ३४५ सूत्र से '**म्ह**' यह आदेश कर लेने पर तथा ३७ सूत्र से विसर्ग को '**डो** (ओ)' यह आदेश करने से'**म्हो**' यह रूप सिद्ध हो जाता है, तो फिर प्रस्तुत सूत्र द्वारा इस प्रयोग को सिद्ध करने की क्या आवश्यकता थी? उत्तर में निवेदन है कि '**म्हो**' यह पद उक्त सूत्रों द्वारा सिद्ध हो सकता है। इस में सन्देह वाली कोई बात नहीं है, किन्तु विभक्तिविधि (सुप् आदि प्रत्ययों के निमित्त से जो कार्य किया जाता है) में प्रायः साध्यमान (जिस मे प्रकृति और प्रत्यय का अलग-अलग निर्देश किया जाए) अवस्था ही अङ्गीकार की जाती है। विभक्तिविधि में सिद्धावस्था (जिस में प्रकृति और प्रत्यय का निर्देश न हो) का आश्रयण नहीं होता। क्योंकि यदि सिद्धावस्था ही सर्वत्र आदरास्पद होती तो **वच्छेण, वच्छेसु, सव्वे, जे, के, ते** आदि प्रयोग संस्कृत-भाषा द्वारा सिद्ध-**वृक्षेण, वृक्षेषु, सर्वे, ये, के, ते** आदि शब्दों से ही निष्पन्न हो सकते थे, फिर

इन प्रयोगों को निष्पन्न करने वाले अन्य सूत्रों को बनाने की क्या आवश्यकता थी ? अतः प्रयोग-साधक सूत्रों को रचना होने से यह भली-भाँति प्रमाणित हो जाता है कि विभक्तिविधि में सिद्धावस्था का आश्रयण नहीं होता, यहां तो साध्यमान अवस्था ही अङ्गीकार की जाती है। इसलिए प्रस्तुत सूत्र में **'म्हो'** इस प्रयोग का जो निर्देश किया गया है, वह सर्वथा उपयुक्त एवं शास्त्रसम्मत है।

६३७—तिव् आदि प्रत्ययों के साथ असधातु के स्थान में **'अत्थि'** यह आदेश होता है। जैसे—१—**अस्ति सः**=अत्थि सो (वह एक है), २—**सन्ति ते**=अत्थि ते (वे सब हैं), ३—**असि त्वम्**=अत्थि तुमं (तू है),४—**स्थ यूयम्**=अत्थि तुम्हे (तुम सब हैं),५—**अस्मि अहम्**=अत्थि अहं (मैं एक हूं), ६—**स्मो वयम्**=अत्थि अम्हे (हम सब हैं),यहां पर त्यादि प्रत्ययों के साथ असधातु के स्थान में **अत्थि** यह आदेश किया गया है।

६३८—णि (णिग्) के स्थान में **अत्** (अ), **एत्** (ए), **आव** और **आवे** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—१—**दर्शयति**=दरिसइ (दिखलाता है), २—**कारयति**=कारेइ करावइ, करावेइ (करवाता है), ३—**हासयति**=हासेइ, हसावइ, हसावेइ (हंसाता है), ४—**उपशामयति**=उवसामेइ, उवसमावइ उवसमावेइ (उपशान्त कराता है) यहां पर णिग् के स्थान में अत् आदि चार आदेश किए गए हैं। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं-कहीं पर णिग् के स्थान में **एत्** यह आदेश नहीं भी होता। जैसे—**ज्ञापयति**= जाणावेइ (ज्ञान कराता है), **बहुलाधिकार से** कहीं पर **णिग्** के स्थान में **'आवे'** यह आदेश भी नहीं होता। जैसे—१—**पाययति**=पाएइ (पिलाता है), २—**भावयति**=भावेइ (वह चिन्तन करता है), यहां पर **बहुलाधिकार** से णिग् के स्थान में आवे यह आदेश भी नहीं हो सका।

६३९—धातु के आदि में यदि गुरु (दो मात्रा वाला) वर्ण हो तो णिग् के स्थान में अवि यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**शोषितम्**=सोसविअं सोसिअं (जिस का शोषण किया गया हो, सुखाया हुआ), २—**तोषितम्**=तोसविअं, तोसिअं, (सन्तुष्ट कराया हुआ) यहां पर णिग् के स्थान में विकल्प से 'अवि' यह आदेश किया गया है।

६४०—**भ्रम्** धातु से आगे यदि णिग् प्रत्यय हो तो उस के स्थान में **'आड'** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**भ्रामयति**=भमाडइ, भमाडेइ जहां **'आड'** यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर-**भामेइ, भमावइ, भमावेइ**, (वह भ्रमण कराता है) ये रूप बनते हैं।

६४१—यदि क्त तथा भावकर्म में विहित प्रत्यय आगे पडा हो तो णिग् के स्थान में लुक् और आवि ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**कारितम्**=कारिअं, कराविअं (कराया हुआ), २—**हासितम्**= हासिअं, हसाविअं (हंसाया हुआ), ३—**क्षामितम्**=खामिअं, खमाविअं (खमाया हुआ) यहां पर क्त-प्रत्यय के आगे रहने पर णिग् के स्थान में लुक् और आवि ये दो आदेश किए गए हैं। भावकर्म में विहित प्रत्यय के उदाहरण—१—**कार्यते**=कारीअइ, करावीअइ कारिज्जइ, कराविज्जइ (उस से करवाया जाता है), २—**हास्यते**=हासीअइ, हसावीअइ, हासिज्जइ, हसाविज्जइ (उस से हंसाया जाता है) यहां पर भावकर्म में विहित प्रत्यय परे रहने के कारण णिग् के स्थान में लुक् और आवि ये दो आदेश किए गए हैं। **संस्कृतभाषा** में तीन **वाच्य** होते हैं—१—**कर्तृवाच्य**, २—**कर्मवाच्य** और ३—**भाववाच्य**। **सकर्मक** धातुओं के रूप **कर्मवाच्य** में और **कर्तृवाच्य** में होते हैं। तथा **अकर्मकधातुओं** के रूप **कर्तृवाच्य** में और **कर्मवाच्य** में पाए जाते हैं। १—**कर्तृवाच्य** में कर्ता मुख्य होता है और क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया होती है। जैसे—**श्रावकः शास्त्रं**

पठति=श्रावक शास्त्र पढ़ता है। **शिष्यः गुरुं नमति**=शिष्य गुरु को नमस्कार करता है। २—**कर्मवाच्य** में कर्म मुख्य होता है, और कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा तथा क्रिया कर्म के अनुसार होती है। जैसे—**मया पुस्तकं पठ्यते**=मुझ से पुस्तक पढ़ी जाती है। ३—**भाववाच्य में** कर्ता में तृतीया होती है, कर्म होता ही नहीं, और क्रिया में प्रथम पुरुष का एक वचन ही होता है। जैसे—**मनुष्यैः म्रियते**=मनुष्यों से मरा जाता है। प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार फरमाते हैं कि **भावकर्म** (भाववाच्य और कर्मवाच्य) में विहित (किया गया) प्रत्यय आगे पड़ा हो तो णिग् के स्थान में लुक्-लोप और आवि ये दो आदेश होते हैं। ऊपर की पंक्तियों में **कार्यते** आदि पदों द्वारा उदाहरण दिए जा चुके हैं।

६४२—णिग् के स्थान में **अ, ए और लोप** करने पर आदि के अकार को आकार होता है। **अकार के उदाहरण—१—पातयति**=पाडइ (वह गिराता है), **२—मारयति**=मारइ (वह मारता है), **एकार के उदाहरण—१—कारयति**=कारेइ (वह कराता है), २—**क्षामयति**=खामेइ (वह क्षमा कराता है) **लुक् के उदाहरण—१—कारितम्**=कारिअं (कराया हुआ), २—**क्षामितम्**=खामिअं (खमाया हुआ), ३—**कार्यते**=कारीअइ कारिज्जइ (उस से कराया जाता है), ४—**क्षाम्यते**=खामीअइ खामिज्जइ (उस से क्षमा कराया जाता है) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से आदि के अकार को आकार किया गया है। यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में "**अदेल्लुकि** (अ, ए और लुक के परे रहने पर)" इस पद के ग्रहण करने का क्या उद्देश्य है? उत्तर में निवेदन है कि—**१—कारितम्**=कराविअं (कराया हुआ), २—**कार्यते**=करावीअइ कराविज्जइ (उस से कराया जाता है), आदि प्रयोगों में आदि के अकार को कहीं आकारादेश न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने "**अदेल्लुकि**" इस पद का ग्रहण किया है। इन प्रयोगों में णिग् के स्थान में होने वाले अत् आदि आदेशों का अभाव है, अतः यहां प्रस्तुत सूत्र की प्राप्ति नहीं हुई। पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में '**आदेः** (आदि के), इस पद को ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि—**१—संग्रामयति**=संगामेइ (वह संग्राम करता है) यहां पर णिग् के स्थान में विहित एकारादेश तो पड़ा है किन्तु इस के आदि अकार को प्रस्तुत सूत्र से दीर्घ नहीं हो सका, क्योंकि यहां पर अकार अनुस्वारविशिष्ट है। यहां आदिभूत अकार कहने का अभिप्राय भी इतना ही है कि वह अनुस्वार-युक्त (अनुस्वार के व्यभिधान वाला) न होकर स्वतंत्र होना चाहिए। २—**कारितम्**=कारिअं (कराया हुआ), यदि आदि पद न कहते तो यहां (कर+अं) पर अन्त्य (रेफस्थ) अकार को भी आकार हो जाता, अतः आदि पद का संयोजन किया गया है, आदि पद देने से आदिभूत अकार (ककारगत अकार) को ही दीर्घ किया गया है। ध्यान रहे कि सूत्रकार ने अकार को ही आकार बनाने का जो विधान किया है, इस का कारण यह है कि **दूषयति**=दूसेइ (वह दूषित कराता है) यहां पर आदि स्वर ऊकार को आकारादेश न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने "**अकार को ही आकार होता है**" ऐसा विधान किया है। इस के अतिरिक्त, कई एक आचार्य—णिग् के स्थान में होने वाले आवे और आवि इन आदेशों के परे रहने पर भी आदि के अकार को आकारादेश चाहते हैं। जैसे—**१—कारयति**=कारावेइ (वह कराता है), २—**हासितः जनः श्यामलया**=हासाविओ जणो सामलीए (श्यामा नामक नारी से वह पुरुष हंसाया गया है) यहां पर आवे और आवि इन आदेशों के परे रहने भी आदि के अकार को आकारादेश हो गया है।

६४३-इस सूत्र में पिछले ६४२ सूत्र से '**अतः**' और '**आ**' इन दो पदों की अनुवृत्ति का ग्रहण किया गया है। फलतः इस सूत्र का अर्थ होता है—अदन्त धातु से परे यदि 'मि' यह आदेश पड़ा हो

तो धातु के अकार को विकल्प से आकार होता है। जैसे—१—**हसामि**=हसामि, हसमि (मैं हंसता हूं), २—**जानामि**=जाणामि जाणमि (मैं जानता हूं), ३—**लिखामि**=लिहामि, लिहमि (मैं लिखता हूं) यहां अकार को विकल्प से आकारादेश किया गया है। ध्यान रहे कि यहां पर अकार को ही आकारादेश हो सकता है किसी अन्य स्वर को नहीं। जैसे—**भवामि**=होमि (मैं होता हूं), यहां पर अकार का अभाव होने से प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

६४४—यदि **मो, मु** और **म** ये आदेशभूत प्रत्यय आगे पड़े हों तो अकारान्त धातु के अकार को इकार और सूत्रोक्त चकार के कारण विकल्प से आकार होता है। जैसे—१—**भणामः**=भणिमो, भणामो, भणिमु, भणामु, **भणिम**, भणाम (हम सब बोलते हैं) जहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई वहां पर-**भणमो भणमु**,और **भणम** ये रूप बनते हैं। तथा जहां पर ६४७ सूत्र से अकार को एकार हो गया, वहां पर-**भणेमो, भणेमु** और **भणेम**, ये रूप होते हैं। ध्यान रहे कि इकार और आकार का यह आदेश केवल अकार के स्थान में ही होता है, किसी अन्य स्वर को नहीं। जैसे—१—**तिष्ठामः**= ठामो (हम सब ठहरते हैं), २—**भवामः**=होमो (हम सब होते हैं) यहां आकार तथा ओकार को आकारादेश नहीं किया जा सका।

६४५—यदि **क्त** प्रत्यय परे हो तो अकार को इकार हो जाता है। जैसे—१—**हसितम्**=हसिअं (हंसा हुआ), २—**पठितम्**=पढिअं (पढा हुआ), ३—**नमितम्**=नविअं (झुका हुआ) ४—**हासितम्**= हासिअं (हंसाया हुआ), ५—**पाठितम्**=पाढिअं (पढ़ाया हुआ) यहां पर क्त प्रत्यय आगे होने के कारण अकार को इकार किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि **गयं** और **नयं** आदि शब्द तो **गतम्** (गया हुआ), तथा **नतम्** (झुका हुआ) इन शब्दों की सिद्धावस्था की अपेक्षा से ही समझने चाहियें। अर्थात् संस्कृत भाषा के नियमों से सिद्ध-निष्पन्न **गतम्** और **नतम्** इन शब्दों से ही बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी समझ लेना चाहिए कि यह इकारादेश अकार के ही स्थान में होता है, अन्यत्र नहीं। जैसे—१—**ध्यातम्**=झायं (ध्याया हुआ), २—**लूनम्**=लुअं (कतरा हुआ), ३—**भूतम्**=हूअं (गुज़रा हुआ) यहां पर अकार नहीं था, अतः यहां प्रस्तुत सूत्र से इकारादेश नहीं हो सका।

६४६—यदि **क्त्वा, तुम्, तव्य** तथा **भविष्यत्काल में विहित प्रत्यय** हों तो उन के परे रहने पर अकार को एकार तथा सूत्रोक्त चकार के कारण इकार ये दो आदेश होते हैं। **क्त्वा का उदाहरण— हसित्वा**=हसेऊण, हसिऊण (हंस कर), **तुम् का उदाहरण—हसितुम्**=हसेउं, हसिउं (हंसने के लिए) **तव्य का उदाहरण—हसितव्यम्**=हसेअव्वं,हसिअव्वं (हंसना चाहिए),**भविष्यत्कालीन प्रत्यय का उदाहरण—हसिष्यति**=हसेहिइ, हसिहिइ (वह हंसेगा)यहां पर क्त्वा आदि प्रत्ययों के परे रहने के कारण अकार को एकार तथा इकार किया गया है। ध्यान रहे कि सूत्रोक्त ये आदेश अकार के स्थान में ही होते हैं, अन्यत्र नहीं। जैसे—**कृत्वा**=काऊण (करके) यहां पर अकार का अभाव था,फलतः प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य नहीं किया। **भविष्यत्काल** क्रिया का वह काल है, जिस में क्रिया का आगे होना पाया जाए। जैसे—**स गमिष्यति**=वह जायगा तथा **स पठिष्यति**=वह पढ़ेगा। इन वाक्यों में **गमन** (जाना) तथा **पठन** (पढ़ना) इन क्रियाओं का वर्तमान काल में अभाव है किन्तु आगे होना पाया जाता है। अतः ये भविष्यत्काल की क्रियाएं कहलाती हैं। भविष्यत्काल-बोधक लकार को पाणिनीय व्याकरण में लृट् तथा हैमशब्दानुशासन में **भविष्यन्ती** इस नाम से व्यवहृत किया जाता है।

६४७—**वर्तमाना** (लट् लकार) **पञ्चमी** (लोट् लकार) तथा **शतृ** [अत्] प्रत्यय के परे रहने पर

अकार के स्थान में विकल्प से एकारादेश होता है। **वर्तमाना का उदाहरण—१—हसति**=हसेइ, हसइ (वह हंसता है), २—**हसामः**=हसेम हसिम,हसेमु,हसिमु (हम सब हंसते हैं)। **पञ्चमी के उदाहरण—१—हसतु**=हसेउ, हसउ (वह हंसे), २—**शृणोतु**=सुणेउ, सुणउ (वह सुने) **शतृ का उदाहरण—१—हसन्**=हसेन्तो, हसन्तो (वह हंसता हुआ) यहां पर विकल्प से अकार के स्थान में एकार किया गया है। **बहुलाधिकार के** कारण कहीं-कहीं पर २ सूत्र से प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं भी होता। जैसे—**जयति**=जयइ (वह विजय प्राप्त करता है) यहां पर अकार को एकार नहीं किया जा सका। **बहुलाधिकार** से कहीं पर अकार को आकार भी हो जाता है। जैसे—**शृणोतु**=सुणाउ (वह सुने) यहां पर अकार को आकार किया गया है। **वर्तमाना** को पाणिनीय व्याकरण में **लट्** लकार कहा जाता है। लट् वर्तमानकालिक होता है। **वर्तमान काल** क्रिया के उस काल को कहते हैं,जिसमें क्रिया का प्रारम्भ होना तो पाया जाता है. परन्तु समाप्त होना नहीं। जैसे—**स गच्छति**=वह जाता है। इस वाक्य में गमन क्रिया का प्रारंभ मिलता है, किन्तु समाप्त होना नहीं। अतः यह वर्तमान-काल का प्रयोग है। **पञ्चमी** शब्द लोट् लकार का बोधक है। **लोट् विधि** आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। विधि आदि शब्दों का अर्थ ६५४ सूत्र की व्याख्या में दिया जा रहा है। **शतृ** वर्तमानकालिक तथा भविष्यत्कालिक कृदन्त प्रत्यय है। किसी क्रिया को करता हुआ या उसको करने वाले का अनुवाद संस्कृतभाषा में वर्तमानकालिक तथा भविष्यत्कालवाचक शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्दों से किया जाता है। जैसे—**१—विदेशं गच्छन् श्रावकः पितरौ प्राणमत्** (विदेश जाते हुए श्रावक ने माता पिता को प्रणाम किया), **शानच्—१—अहं दयमानो गच्छामि** (मैं दया करता हुआ जाता हूं), **२—मन्दिरं गमिष्यन् बालकः पठति** (मन्दिर को जाता हुआ बालक पढ़ता है), **३—युद्धक्षेत्रे खलु योत्स्यमानाः सैनिकाः गच्छन्ति** (लड़ाई के मैदान में लड़ते हुए सैनिक जाते हैं)।

६४८—यदि **ज्जा** और **ज्ज** ये आदेश आगे पड़े हों तो अकार को एकार हो जाता है। जैसे—**हसति**=हसेज्जा, हसेज्ज (वह हंसता है) यहां अकार को एकार किया गया है। ध्यान रहे कि **ज्जा** और **ज्ज** इन दोनों के परे रहने पर अकार को ही एकार हो सकता है, अन्यत्र नहीं। जैसे—**भवति**=होज्जा, होज्ज (होता है) यहां अकार न होने से प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

६४६—वृत्तिकार फरमाते हैं कि चि और जि आदि धातुओं की भावकर्म-सम्बन्धी विधि का वर्णन आगे चतुर्थ पाद में किया जायगा, जिन धातुओं की भावकर्म-विधि का वर्णन नहीं होगा, उन धातुओं से परे संस्कृतातिदेश से प्राप्त अर्थात् संस्कृत-भाषा में होने वाले 'क्य' इस प्रत्यय के स्थान पर ईअ और इज्ज ये दो आदेश हो जाते हैं। जैसे—**१—हस्यते**=हसीअइ, हसिज्जइ (उस से हंसा जाता है), २—**हस्यत्**=हसीअन्तो, हसिज्जन्तो,हसीअमाणो,हसिज्जमाणो (वह हंसा जाता हुआ),**३—पठ्यते**=पढीअइ, पढिज्जइ (उस से पढ़ा जाता है), ४—**भूयते**=होईअइ, होइज्जइ (उस से हुआ जाता है) यहां पर संस्कृतातिदेश से (संस्कृत-भाषा के तुल्य कार्य करने से) प्राप्त हुए क्य के स्थान में ईअ और इज्ज ये दो आदेश किए गए हैं। **बहुलाधिकार** के कारण भावकर्म में होने वाला क्य-प्रत्यय भी कहीं पर विकल्प से होता है। जैसे—**१—मया नम्यते**=मए नवेज्ज, जहां पर क्य प्रत्यय हो गया, वहां पर **मए नविज्जेज्ज** (मुझ से नमस्कार किया जाता है), यह रूप बनता है। २—**तेन लभ्यते**=तेण लहेज्ज, तेण लहेजेज्ज (उस से प्राप्त किया जाता है), ३—**तेन आस्यते**=तेण अच्छेज्ज, तेण अच्छिज्जेज्ज, तेण अच्छीअइ (उस से बैठा जाता है) यहां पर **बहुलाधिकार** के कारण क्य-प्रत्यय भी विकल्प से किया गया है।

६५० – **दृश्** और **वच्** धातु से परे यदि क्य-प्रत्यय पड़ा हो तो उसके स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार) **डीस** (ईस) और **डुच्च** (उच्च) ये दो आदेश होते हैं। पिछले ६४९ सूत्र से क्य के स्थान में ईअ और इज्ज ये दो आदेश प्राप्त होते हैं, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने उनका निषेध कर दिया, अतः यह सूत्र ६४९ सूत्र का अपवाद-सूत्र माना जाता है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं। जैसे—१—**दृश्यते**=दीसइ (उस से देखा जाता है), २—**उच्यते**=वुच्चइ (उससे कहा जाता है), यहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा दृश् धातु से आगे पड़े क्य प्रत्यय के स्थान में डीस और वच् धातु से आगे पड़े क्य प्रत्यय के स्थान में डुच्च यह आदेश किया गया है।

६५१—**भूतकाल** के अर्थ में विहित (किये गये) **अद्यतनी** (लुङ्) आदि प्रत्यय भूतार्थ प्रत्यय कहलाते हैं। भूतार्थबोधक प्रत्ययों के स्थान में सी, ही, हीअ ये आदेश होते हैं। ध्यान रहे कि उत्तर= अग्रिम ६५२ सूत्र से व्यञ्जनान्त धातुओं से भूतकालार्थ में 'ईअ' प्रत्यय का विधान होने से प्रस्तुत सूत्र से की जाने वाली विधि स्वरान्त धातुओं से ही होती है, ऐसा जानना चाहिए। जैसे—१—**अकार्षीत्** (लुङ्), **अकरोत्** (लङ्), **चकार** (लिट्)=कासी, काही, काहीअ (मैंने किया था), २—**अस्थात्, अतिष्ठत्, तस्थौ**=ठासी, ठाही, ठाहीअ (मैं ठहरा था) यहां पर भूतकाल-बोधक प्रत्ययों के स्थान में सी, ही, हीअ ये आदेश किए गए हैं। जितने भी स्वरान्त धातु हैं, उनके भूतकालबोधक जितने भी प्रत्यय हैं उनके स्थान में उक्त तीनों आदेश होते हैं। पाणिनीयव्याकरण में तो भूत काल के बोधक लुङ्, लङ् और लृट् ये तीन लकार माने माने गए हैं। **लिट् परोक्षभूत, लङ् अनद्यतनभूत** तथा **लुङ् सामान्यभूत** कहलाता है। **परोक्षभूत का अर्थ है**—वह बात जो आंखों के सामने न की हो, एक प्रकार से ऐतिहासिक हो, जैसे—**महावीरो बभूव** (महावीर हुए)। **अनद्यतनभूत** (जो बात आज से पहले की हो) में लङ्-लकार प्रयुक्त होता है। अतः व्याकरण की दृष्टि से—**अहमद्य पुस्तकमपठम्** (मैंने आज पुस्तक पढ़ी) यह प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि पुस्तक का पठन आज किया गया है, अद्यतन भूत में लङ् का प्रयोग करना व्याकरण से निषिद्ध है। यहां तो सामान्यभूत लुङ् का प्रयोग होना चाहिए, क्योंकि सामान्यभूत में लुङ् का प्रयोग होता है। केवल ऐतिहासिक बात को तथा अनद्यतनभूत (जो आज का न हो) को छोड़कर सर्वत्र लुङ् लकार चलता है। अतः "**अहमद्य पुस्तकमपाठिषम्**" यह प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध माना गया है। समय की बात है कि भूतकाल बोधक उक्त तीनों लकारों में जो अन्तर बतलाया जाता है, यह अन्तर आज व्यवहार में दिखाई नहीं देता। आज तो लङ् और लुङ् का बिना किसी भेद के प्रयोग किया जा रहा है। सत्य तो यह है कि अधिकतया आज लङ् का सामान्यभूत में ही प्रायः प्रयोग होता है।

जैसे पाणिनीय व्याकरण में भूतकाल-बोधक तीन लकार माने गए हैं, वैसे हैमशब्दानुशासन में भी भूतकाल के संसूचक तीन लकार होते हैं, किन्तु वहां इन की जगह **अद्यतनी** (लुङ्), **ह्यस्तनी** (लङ्), और **परोक्षा** लिट्) इन संज्ञाओं का प्रयोग होता है। जैसे संस्कृत भाषा में एक लकार के तीन पुरुष होते हैं, वैसे प्राकृतभाषा में भी होते हैं, किन्तु प्राकृतभाषा में **भूतकाल** के तीनों पुरुषों तथा सभी वचनों में केवल तीन रूप ही होते हैं। जैसे—**अकार्षीत् के कासी, काही** और **काहीअ** ये तीन रूप हैं। इसी तरह कृ-धातु के भूतकाल-बोधक प्रत्येक प्रत्यय के तीन रूप ही बनते हैं। कृधातु की तरह अन्य धातुओं के भूतकाल-बोधक प्रत्ययों की स्थिति भी यही समझनी चाहिए। जैसे—**अस्थात्** (लुङ्), **अतिष्ठत्** (लङ्) **तस्थौ** (लिट्)=ठासी, ठाही, ठाहीअ (मैं ठहरा था) यहां पर स्थाधातु के लुङ्, लङ् और लिट् इन तीनों लकारों में सभी पुरुषों के प्रत्येक वचन में ये तीन रूप बनते हैं। **आर्षप्राकृत** में

देवेन्द्र इदमब्रवीत्=देविन्दो इणमब्बवी (देवराज ने यह कहा), इस वाक्य में सिद्धावस्था (**अब्रवीत्**) के आश्रयण से "**अब्बवी**" यह **ह्यस्तनी** (लङ्) का प्रयोग है। भाव यह है **अब्रवीत्** इस भूतकालिक प्रयोग में भी प्रस्तुत सूत्र (६५१) से सी, ही, हीअ, ये प्रत्यय होने चाहिएं थे, किन्तु वृत्तिकार फरमाते हैं कि यह आर्ष प्रयोग है तथा संस्कृत-निष्पन्न शब्द से इसको प्राकृत का रूप दिया गया है, इस लिए यहाँ पर उक्त आदेशों की प्रवृत्ति नहीं हो सकी, अन्यथा उक्त आदेशों का आश्रयण अवश्य किया जाता।

६५२—व्यञ्जनान्त (जिसके अन्त में व्यञ्जन हो) धातु से परे यदि भूतकाल-बोधक **अद्यतनी** (लुङ्) आदि का प्रत्यय हो तो उसके स्थान में ईअ यह आदेश होता है। जैसे—**अभूत्** (लुङ्), **अभवत्** (लङ्), **बभूव** (लिट्)=हुवीअ (वह हुआ था),२—**आसिष्ट** (लुङ्),**आस्त** (लङ्), **आसाञ्चक्रे** (लिट्)= अच्छीअ (वह बैठा था), ३—**अग्रहीत्** (लुङ्), **अगृह्णात्** (लङ्), **जग्राह** (लिट्)=गेण्हीअ (उसने ग्रहण किया था) यहां पर भूतार्थ-बोधक प्रत्यय के स्थानमें 'ईअ' यह आदेश किया गया है। व्यञ्जनान्त धातुओं के भूतकालिक लकारों के सभी पुरुषों के सभी प्रत्ययों के स्थान में 'ईअ' यह आदेश हो जाता है। इस तरह लुङ्, लङ् और लिट् का एक ही रूप बन जाता है।

६५३—**भूतार्थ** (भूतकाल) बोधक प्रत्यय के साथ अस् धातु के स्थान में 'आसि' और '**अहेसि**' ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**सः आसीत्, त्वम् आसीः, अहं वा आसम**=आसि सो, तुमं, अहं वा (वह था, तू था अथवा मैं था) **एवं**—इसी प्रकार—**आसीत्, आस्ताम्, आसन्**=अहेसी (वह था, वे दो थे, वे सब थे) यह रूप भी समझ लेना चाहिए। भाव यह है कि भूतकालिक प्रत्यय के स्थान में **आसि** और **अहेसि** ये दो आदेश हो जाते हैं। दोनों के उदाहरण ऊपर दे दिए गए हैं। ध्यान रहे कि इनका संस्कृत रूप भूत-काल-बोधक कोई भी हो सकता है।

६५४—यदि **सप्तमी** (विधिलिङ्) का आदेशभूत'ज्ज'यह अवस्थित हो तो इस से परे 'इ' यह आगम विकल्प से हो जाता है। अर्थात् ज्ज से परे 'इ' इस वर्ण का प्रयोग विकल्प से करना चाहिए। जैसे—**भवेत्**=होज्जइ, होज्ज (हो) यहां पर 'ज्ज' से आगे 'इ' इस वर्ण का विकल्प से प्रयोग किया गया है। **सप्तमी** विधिलिङ् का नाम है। प्रश्न हो सकता है कि **विधिलिङ्** किस अर्थ में प्रयुक्त होता है? उत्तर में निवेदन है कि-१—**विधि**, २—**निमंत्रण**, ३—**आमन्त्रण**, ४—**अधीष्ट**, ५—**सम्प्रश्न** और ६—**प्रार्थना** इन ६ अर्थों* में विधिलिङ् होता है। १—**विधि** का अर्थ होता है—आज्ञा देना। नौकरों, मजदूरों तथा अपने से छोटों को आदेश देना। जैसे—तुम अमुक, अमुक काम को करो+। २—**निमंत्रण** उस प्रेरणा का नाम होता है जो अपने समान के बन्धु-बांधवों आदि को दी जाती है। इस में आज्ञा का भाव इतना प्रबल नहीं रहता जितना कि विधि में रहता है×। ३—**आमंत्रण** उस प्रेरणा को कहते हैं जिस में निमंत्रण से कम बल रहता है, इस प्रेरणा से प्रेर्यमाण व्यक्ति स्वतंत्र होता है, चाहे वह कार्य करे, चाहे न करे। जैसे—**भो देवर! जन्मदिनमुपलक्ष्य क्रियमाणे प्रीतिभोजे भवान् आगच्छेद्**=हे देवर! जन्मदिन के सम्बन्ध में पार्टी होगी। आपने पधारना। ४—**अधीष्ट**—उस प्रेरणा को कहते हैं जिस में सत्कार भी हो। यह प्रायः बड़े पुरुषों से सम्बन्ध रखती है। जैसे—**श्रीमान्! भवान् मम पुत्रमध्यापयेद्**=श्रीमान् जी! आप मेरे पुत्र को पढ़ाएं। ५—**संप्रश्न** उस प्रेरणा का नाम है जिसमें परामर्श

---

*विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट-सम्प्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ्। ३। ३। १३१। लघुसिद्धान्त-कौमुदी।

+जैसे—**स ओदनं पचेत्**=वह चावल पकाए। इस आज्ञा का पालन अवश्य करना होता है।

×जैसे—**भो मित्र! श्वो जन्मदिनं वर्तते त्वमागच्छेः**=हे मित्र! कल जन्म दिन है, तुमने आना।

लेने का भाव हो। जैसे—**भो! व्याकरणं पठेयम्, उत तर्कम्** ?=भगवन्! मैं व्याकरण पढ़ूं या तर्क-शास्त्र? ६—**प्रार्थना** – उस प्रेरणा को कहते हैं—जो अपने से बड़ों से की जाती है, और उसमें मांगने का भाव रहता है। जैसे—**पुस्तकं लभेयम्**=मुझे पुस्तक दीजिए। इन विधि आदि अर्थों में सप्तमी (विधिलिङ्) और पंचमी (लोट्) का प्रयोग किया जाता है।

६५५—भविष्यत् अर्थ में विहित (भविष्यत् कालीन) प्रत्यय के परे होने पर, उस के आदि में 'हि' इस पद का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—१ - **भविष्यति** (लृट्) ***भविता** (लुट्)=होहिइ (वह होगा) इसी प्रकार—**भविष्यन्ति**=होहिन्ति (वे होंगे), ३—**भविष्यसि**=होहिसि (तू होगा), ४—**भवि-ष्यथ**=होहित्था (तुम सब होंगे), ५—**हसिष्यति**=हसिहिइ (वह हंसेगा), ६—**करिष्यति**=काहिइ (वह करेगा) यहां पर भविष्यत्-कालीन प्रत्यय से पूर्व '**हि**' इस का प्रयोग किया गया है।

६५६—भविष्यदर्थक, उत्तमपुरुष के मि, मो, मु और म इन आदेशों के परे रहने पर, इन्हीं आदेशों के आदि में स्सा और हा ये दो विकरण विकल्प से प्रयुक्त करने चाहिएं। पिछले ६५५ सूत्र से भविष्यत्कालीन प्रत्यय के आदि में'हि'इस पद का प्रयोग किया जाता है, किन्तु ये दोनों आगम उसके अपवाद स्वरूप हैं। जहां पर इन आदेशों की प्रवृत्ति नहीं होगी, वहां पर पिछले ६५५ सूत्र से 'हि' यह आगम हो ही जायेगा। जैसे—१—**भविष्यामि**=होस्सामि, होहामि (मैं हूंगा), २—**भविष्यामः**=होस्सामो, होहामो,होस्सामु,होहामु,होस्साम,होहाम (हम सब होंगे) यहां पर भविष्यत् काल के बोधक, तृतीयत्रिक (तीसरा त्रिक, उत्तम पुरुष) के स्थान में आदेशभूत मि, मो, मु और म के आदि में विकल्प से स्सा और 'हा' इनका प्रयोग किया गया है। जहां पर इन का प्रयोग नहीं हुआ, वहां पर—**भवि-ष्यामि**=होहिमि, २—**भविष्यामः**=होहिमो, होहिमु, होहिम,ये रूप बनते हैं। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर 'हा' इस का आदि-प्रयोग नहीं भी होता। जैसे—**हसिष्यामः**=हसिस्सामो,जहां पर 'हि' का आदि-प्रयोग हो गया, वहां पर **हसिहिमो** (हम हंसेंगे) यह रूप बन जाता है। भाव यह है कि यहां पर 'हा' का आदि-प्रयोग नहीं हो सका।

६५७—यदि धातु से परे भविष्यत्-कालीन प्रत्ययों के स्थान में होने वाले मो, मु और म ये आदेश पड़े हों तो इनके स्थान में विकल्प से **हिस्सा** और **हित्था** ये दो आदेश प्रयुक्त करने चाहिएं। जैसे—१—**भविष्यामः**=होहिस्सा, होहित्था (हम होंगे), २—**हसिष्यामः**=हसिहिस्सा, हसिहित्था (हम सब हंसेंगे), जहां पर यह आदेश नहीं हुए वहां पर—**होहिमा होस्सामो होहामो** ये रूप बनते हैं। यहां पर भविष्यत्-कालीन मो, मु और म इन आदेशों के स्थान में विकल्प से **हिस्सा** और **हित्था** ये दो आदेश किए गए हैं।

६५८—धातु से परे यदि भविष्यत्-कालीन म्यादेश (आदेशभूत मि) हो तो उसके स्थान में विकल्प से स्सं इसका प्रयोग करना चाहिए। जैसे—१—**भविष्यामि**=होस्सं (मैं हूंगा), २—**हसिष्या-मि**=हसिस्सं (मैं हंसूंगा), ३—**कीर्तयिष्यामि**=कित्तइस्सं (मैं कीर्तन करूंगा) यहां पर विकल्प से **स्सं** इस पद का आदेश किया गया है। जहां पर यह आदेश नहीं हो सका, वहां पर—१—**हसिष्यामि**=

*अनद्यतन भविष्यत्काल में लुट् लकार होता है। लुट् उस भविष्यत् काल की क्रिया को बतलाता है जो आज न होने वाली हो। जैसे—**श्वोऽहं भोजनं पक्तास्मि**=मैं कल भोजन पकाऊंगा। लृट् भी भविष्यत्काल में होता है, किन्तु लृट् लकार साधारणतः भविष्यमात्र की क्रियाओं को संसूचित करता है, विशेषतः उन क्रियाओं को जिन का सम्बन्ध आज से हो। जैसे—**साम्प्रतमेव गमिष्यामि**=मैं अभी जाऊंगा।

होहिमि, होस्सामि, होहामि, २—**कीर्तयिष्यामि**=कित्तइहिमि; ये रूप बनते हैं।

६५६—कृ और दा धातु से परे पड़े भविष्यत्-कालीन म्यादेश के स्थान में हं इस पद का विकल्प से प्रयोग करना चाहिए। जैसे—**१—करिष्यामि**=काहं (करूंगा),२—**दास्यामि**=दाहं (दूंगा), जहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई वहां पर—**१—करिष्यामि**=काहिमि, २—**दास्यामि**=दाहिमि, ऐसे भी रूप बनते हैं।

६६०—प्रस्तुत [६६०] सूत्र में पठित १—श्रु, २—गम्, ३—रुद्, ४—विद्, ५—दृश्, ६—मुच्, ७—वच्, ८—छिद्, ९—भिद् और १०—भुज् ये धातु जब कि भविष्यत्कालीन मि-प्रत्ययान्त हों तो इनके स्थान में क्रमशः—**१—सोच्छं**, २—**गच्छं**, ३—**रोच्छं**,४—**वेच्छं**, ५—**दच्छं**, ६—**मोच्छं**, ७—**वोच्छं**, ८—**छेच्छं**, ९—**भेच्छं** और १०—**भोच्छं** ये आदेश निपात से हो जाते हैं। **निपात का अर्थ है**—जिन पदों की रचना के नियम का कुछ पता न हो अथवा जो पद व्याकरण के नियमों से सिद्ध न हो सकें। जैसे—**१—श्रोष्यामि**=सोच्छं (मैं सुनूंगा), २—**गमिष्यामि**=गच्छं (मैं जाऊंगा), ३—**संगंस्ये**=संगच्छं (मैं स्वीकार करूंगा, मेल रक्खूंगा), ४—**रोदिष्यामि**=रोच्छं (मैं रुदन करूंगा, रोऊंगा), ५—**वेदिष्यामि**=वेच्छं (मैं जानूंगा), यहां विद् धातु ज्ञान-जानने अर्थ में है। ६—**द्रक्ष्यामि**=दच्छं (मैं देखूंगा),७—**मोक्ष्यामि**=मोच्छं (मैं छोड़ूंगा),८—**वक्ष्यामि**=वोच्छं (मैं कहूंगा), ९—**छेत्स्यामि**=छेच्छं (मैं छेदन करूंगा), १०—**भेत्स्यामि**=भेच्छं (मैं भेदन करूंगा),११—**भोक्ष्ये**=भोच्छं (मैं भोजन करूंगा) यहां पर श्रु आदि धातुओं के स्थान में सोच्छं आदि आदेश निपात से किए गए हैं।

६६१—भविष्यत्-कालीन इच् आदि आदेशों के परे होने पर ६६० सूत्रोक्त श्रु आदि धातुओं के स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार) सोच्छं आदि आदेश होते हैं। सोच्छं आदि ये आदेश अन्त्य-स्वरादि (अन्तिम स्वर आदि) अवयवों से वर्जित होने चाहिएं। अर्थात् ६६० सूत्र में पठित जो **सोच्छं** आदि आदेश हैं, इनके अन्त्यस्वर वाले अवयवों का (अकार और अनुस्वार का) परित्याग करके अवशिष्ट जो अंश हैं उनका का श्रु आदि धातुओं के स्थान में आदेश होता है। यह आदेश यथासंख्य होते हैं। इसके अतिरिक्त, यहां पर विकल्प से हि का लोप भी हो जाता है। जैसे—**१—श्रोष्यति**=सोच्छिइ, जहां पर 'हि' का लोप नहीं हुआ वहां पर **सोच्छिहिइ** (वह सुनेगा) यह रूप बनता है, इसी प्रकार—२—**श्रोष्यन्ति**=सोच्छिन्ति, सोच्छिहिन्ति (वे सब सुनेंगे), ३—**श्रोष्यसि**=सोच्छिसि, सोच्छिहिसि (तू सुनेगा), ४—**श्रोष्यथ**=सोच्छित्था, सोच्छिहित्था, सोच्छिह, सोच्छिहिह (तुम सुनोगे), ५—**श्रोष्यामि**=सोच्छिमि, सोच्छिहिमि, सोच्छिस्सामि, सोच्छिहामि, सोच्छिस्सं, सोच्छं (मैं सुनूंगा), ६—**श्रोष्यामः**=सोच्छिमो, सोच्छिहिमो, सोच्छिस्सामो, सोच्छिहामो, सोच्छिहिस्सा,सोच्छित्था (हम सुनेंगे) इसी प्रकार मु और म इन आदेशों के उदाहरणों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए। ७—**गमिष्यति**=गच्छिइ,गच्छिहि (वह जायगा), ८—**गमिष्यन्ति**=गच्छिन्ति, गच्छिहिन्ति (वे सब जाएंगे), ९—**गमिष्यसि**=गच्छिसि, गच्छिहिसि (तू जाएगा), १०—**गमिष्यथ**=गच्छित्था, गच्छिहित्था, गच्छिह, गच्छिहिह (तुम सब जाओगे), ११—**गमिष्यामि**=गच्छिमि, गच्छिहिमि, गच्छिस्सामि, गच्छिहामि, गच्छिस्सं, गच्छं (मैं जाऊंगा), १२—**गमिष्यामः**=गच्छिमो, गच्छिहिमो, गच्छिस्सामि, गच्छिस्सामो, गच्छिहामो, गच्छिहिस्सा, गच्छिहित्था (हम जाएंगे) इसी प्रकार मु और म इन आदेशों के उदाहरण भी स्वयं कोल्पित कर लेने चाहिएं। जैसे श्रु और गम् इन धातुओं का वर्णन किया गया है, इसी भांति रुद् आदि अन्य धातुओं के उदाहरणों की भी स्वयं चिन्तना कर लेनी चाहिए।

६६२—विधि (विधान) आदि अर्थों में उत्पन्न तीनों त्रिकों (प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष) के एक-एक वचन (प्रथमपुरुष के एकवचन, मध्यमपुरुष के एकवचन तथा उत्तमपुरुष के एकवचन) के स्थान में क्रमशः दु, सु और मु ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—१—**हसतु सा**=हसउ सा (वह हंसे), २—**हस त्वम्**=हससु तुमं (तू हंस), ३—**हसानि अहम्**=हसामु अहं (मैं हंसूं), ४—**पश्यतु**=पेच्छउ (वह देखे), ५—**पश्य**=पेच्छसु (तू देख), ६—**पश्यानि**=पेच्छामु (मैं देखूं) यहाँ पर विधि आदि अर्थों में आए तीनों पुरुषों के एक-एक वचन के स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार) दु, सु और मु ये आदेश किए गए हैं। भाव यह है कि प्रथमपुरुष के एकवचन को दु, मध्यम पुरुष के एक-वचन को सु और उत्तम पुरुष के एक-वचन को मु यह आदेश किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि विधि आदि अर्थों के बोधक प्रत्ययों के स्थान में जो दु आदि आदेश होते हैं, इनका ज्ञान कैसे होगा कि यह दु आदेश विध्यर्थक है या आशीर्वादार्थक ? उत्तर में निवेदन है कि यह सब कुछ तो पाठक तथा वाचक की अपनी बुद्धि पर निर्भर है। अध्यापक तथा छात्र, वक्ता तथा श्रोता का कर्तव्य बनता है कि वह प्रसंगानुसार अपनी बुद्धि से सोच ले कि यह क्रियापद विध्यर्थक है, आशीर्वादात्मक है या आज्ञाप्रदायक है ? इसके अतिरिक्त, **दु** इस आदेश में जो दकार का उच्चारण है, वह भाषान्तर (दूसरी भाषाओं) के लिए है, ६७८ सूत्र से पैशाचीभाषा में **दु** के दकार को तकार किया जाता **है**, अतः यह दकार पैशाचीभाषा में काम आ जायगा।

६६३—पूर्वसूत्र (६६२) सूत्र से विहित (कथित) सु इस आदेश के स्थान में हि यह आदेश विकल्प से होता **है**। जैसे—**देहि**=देहि, जहां पर हि यह आदेश नहीं हुआ, वहां पर **देसु** (तू दान कर) यह रूप बनता है।

६६४—अकार से आगे जो सु है, उस के स्थान में **इज्जसु, इज्जहि, इज्जे** और **लुक्** ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**हस**=हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे, हस (तू हंस) जहां पर ये आदेश नहीं हुए वहां पर **हससु** यह रूप बनता है। ध्यान रहे कि अकार से परे यदि सु हो, तभी **इज्जसु** आदि आदेश हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। जैसे—१—**भव**=होसु (तू हो), २—**तिष्ठ**=ठाहि (तू ठहर) यहाँ पर सु अकार से परे नहीं था, फलतः प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

६६५—विधि आदि अर्थों में उत्पन्न, तीनों त्रिकों (प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष) के बहु-संख्याबोधक (बहुवचनीय) प्रत्ययों के स्थान में यथासंख्य (सख्या के अनुसार) न्तु, ह **और** मो ये आदेश होते हैं। **न्तु का उदाहरण**, जैसे—**हसन्तु** (लोट्) **हसेयुः** (विधिलिङ्)=हसन्तु (वे हंसें), **ह का उदाहरण**, जैसे—**हसत, हसेत**=हसह (आप हंसें), **मो का उदाहरण**, जैसे—**हसाम, हसेम**=हसामो (हमें हंसना चाहिए)। इसी प्रकार—१—**त्वरन्ताम्, त्वरेरन्**=तुवरन्तु (वे शीघ्रता करें), २—**त्वरध्वम्, त्वरेध्वम्**=तुवरह (आप जल्दी करें), ३—**त्वरामहे, त्वरामहै**=तुवरामो (हम शीघ्रता करें) यहां पर विधि आदि अर्थों में आए तीनों पुरुषों के बहुवचन के स्थान में क्रमशः न्तु आदि आदेश किए गए **हैं**। अर्थात् प्रथम पुरुष के बहुवचन को न्तु, मध्यम पुरुष के बहुवचन को **ह** और उत्तमपुरुष के बहु-वचन को मो यह आदेश किया गया है।

६६६—**वर्तमाना** (लट्), **भविष्यन्ती** (लृट्) और **विधि** आदि अर्थों में किए गए प्रत्ययों के स्थान में '**ज्ज**' और '**ज्जा**' ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जहां पर ये आदेश प्राप्त नहीं होते वहां पर जिस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, वह तो हो ही जायगी। **वर्तमाना के उदाहरण**, जैसे—१—**हसति**=हसेज्ज, हसेज्जा (वह एक हंसता है), २—**पठति**—पढेज्ज, पढेज्जा (वह एक पढ़ता है), ३—**शृणोति**=

सुणेज्ज, सुणेज्जा (वह सुनता है) यहां वर्तमानकालिक प्रत्यय के स्थान में विकल्प से 'ज्ज' और 'ज्जा' ये दो आदेश किए गए हैं। जहां पर इन आदेशों की प्राप्ति नहीं हुई, वहां पर—१—***हसति**=हसइ, २—**पठति**=पढइ, ३—**शृणोति**=सुणइ, ये रूप बनते हैं। **भविष्यन्ती के उदाहरण—१—पठिष्यति**=पढेज्ज, पढेज्जा (वह पढ़ेगा) जहां पर प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हो सका, वहां पर—**पढिहिइ** यह रूप बनता है। **विध्यादि अर्थों में विहित प्रत्ययों के उदाहरण—हसतु, हसेत्**=हसेज्ज, हसेज्जा (वह हंसे), जहां ज्ज और ज्जा ये आदेश नहीं हो सके वहाँ पर—**हसउ** यह रूप बनता है। इसी तरह **सर्वत्र** (सब प्रयोगों में) ज्ज और ज्जा इन आदेशों की कल्पना कर लेनी चाहिए। भाव यह है कि यहां पर तो केवल एक-एक उदाहरण ही दिया गया है, किन्तु तीनों त्रिकों में ही **वर्तमाना, भविष्यन्ती** तथा **विध्यादि** अर्थों में विहित प्रत्ययों के स्थान में ज्ज, ज्जा ये आदेश कर लेने चाहिएं। इसीलिए वृत्तिकार फरमाते हैं कि जैसे तृतीय त्रिक (उत्तमपुरुष) के तीनों वचनों में ज्ज आदि आदेश होते हैं वैसे सर्वत्र (अन्य त्रिकों में भी) ये आदेश हो जाते हैं। प्रस्तुत सूत्र के अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं—१—**अतिपातयेत्**=अइवाएज्जा अइवायावेज्जा (वह उल्लंघन कराए) तथा २—**न समनुजानामि**=न समणुजाणामि, न समणुजाणिज्जा वा (मैं अनुमोदन नहीं करता हूं) यहां पर भी वर्तमाना-कालबोधक प्रत्यय के स्थान में ज्जा यह आदेश विकल्प से किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि दूसरे आचार्य तो वर्तमाना आदि विभक्तियों को छोड़कर अन्य विभक्तियों के प्रत्ययों को भी ज्ज और ज्जा इन आदेशों का विधान करते हैं। इनके मत में—**भवति, भवेत्**, भवतु, **अभवत्**, अभूत्, **बभूव, भूयात्, भविता, भविष्यति, अभविष्यत्** इन सभी विभक्तियों के प्रत्ययों के स्थान में क्रमशः ज्ज यह आदेश होकर 'होज्ज' यह रूप बन जाता है। वृत्तिकार ने **भवति, भवेत्** आदि पदों का जो उल्लेख किया है, यह पाणिनीय व्याकरणसम्मत लकारों की पद्धति से नहीं है। यह क्रम हैमशब्दानुशासन का है। आचार्य श्री हेम चन्द्र द्वारा विरचित हैमशब्दानुशासन में तथा पाणिनि ऋषि द्वारा प्रणीत पाणिनीय व्याकरण में लकारों में निम्नोक्त नामभेद हैं—

सिद्धहेमशब्दानुशासन	पाणिनीय-व्याकरण
१—**वर्तमाना**, २—**सप्तमी**, ३—**पंचमी**, ४—**ह्यस्तनी**, ५—**अद्यतनी**, ६—**परोक्षा**, ७—**आशीः**, ८—**श्वस्तनी**, ९—**भविष्यन्ती**, १०—**क्रियातिपत्ति**।	१—**लट्**, २—**विधिलिङ्**, ३—**लोट्**, ४—**लङ्**, ५—**लुङ्**, ६—**लिट्**, ७—**आशीर्लिङ्**, ८—**लुट्**, ९—**लृट्**, १०—**लृङ्**।

६६७—यदि **वर्तमाना, भविष्यन्ती** तथा **विधि** आदि विभक्तियों के प्रत्यय आगे पड़े हों तो स्वरान्त धातु के प्रकृति और प्रत्यय के मध्य में तथा सूत्रोक्त चकार के कारण उन प्रत्ययों के स्थान में ज्ज और ज्जा ये दो आगम तथा आदेश विकल्प से होते हैं। **वर्तमाना के उदाहरण**, जैसे—१—**भवति**=होज्जइ, होज्जाइ, होज्ज, होज्जा (होता है) जहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई वहां पर—**होइ** यह रूप बनता है। २—**भवसि**=होज्जसि,होज्जासि, होज्ज,होज्जा,होसि (तू होता है), **भविष्यन्ती के**

***हसति, हसतः, हसन्ति, हससि, हसथः, हसथ, हसामि, हसावः, हसामः**, ये सभी संस्कृत रूप प्रस्तुत सूत्र के आधार पर हसेज्ज हसेज्जा ये रूप धारण कर लेते हैं। इसी तरह **हसिष्यति** आदि सभी ९ रूप **हसेज्ज हसेज्जा** तथा **हसतु, हसेत्** आदि सभी ९ रूप भी **हसेज्ज हसेज्जा** इस रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी भांति अन्य धातुओं के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

उदाहरण, जैसे—१—**भविष्यति**=होज्जहिइ, होज्जाहिइ, होज्ज, होज्जा, जहां पर प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ, वहां पर **होहिइ** (वह होगा) यह रूप बन जाता है। इसी प्रकार—१—**भविष्यसि**=होज्जहिसि, होज्जाहिसि, होज्ज, होज्जा, होहिसि (तू होगा)। २—**भविष्यामि**=होज्जहिमि, होज्जाहिमि, होज्जस्सामि, होज्जहामि, होज्जस्सं, होज्ज, होज्जा, होहिमि (मैं हूंगा) ये रूप बनते हैं। **विध्यादि अर्थों में विहित प्रत्ययों के उदाहरण**, जैसे—१—**भवतु, भवेत्**=होज्जउ, होज्जाउ, होज्ज, होज्जा, जहां पर प्रस्तुत सूत्र ने कार्य नहीं किया, वहां **होउ** (हो) यह रूप बनता है। यहां प्रकृति और प्रत्यय के मध्य में कभी ज्ज और कभी ज्जा, ये आगम तथा कभी प्रत्यय के स्थान में ज्ज और ज्जा, ये आदेश विकल्प से किए गए हैं। इस के अतिरिक्त, यह भी समझ लेना चाहिए कि ये उक्त आगम तथा आदेश स्वरान्त धातुओं से ही हो सकते हैं, अन्यत्र नहीं। जैसे—**हसतु, हसेत्**=हसेज्ज, हसेज्जा, २—**त्वरताम्, त्वरेत**=तुवरेज्ज, तुवरेज्जा। हस् और त्वर्, ये धातु स्वरान्त नहीं है, व्यञ्जनान्त हैं, अतः यहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

६६८—**क्रियातिपत्ति** (लृङ्) के प्रत्ययों के स्थान पर ज्ज और ज्जा ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**अभविष्यत्**=होज्ज, होज्जा (वह हुआ होता), २—**यदि अभविष्यद् वर्णनीयः**=जइ होज्ज वण्णणिज्जो (यदि वह वर्णनीय होता) यहां पर क्रियातिपत्ति के प्रत्यय के स्थान में ज्ज और ज्जा ये दो आदेश किये गये हैं। ध्यान रहे कि **अभविष्यत्, अभविष्यताम्, अभविष्यन्, अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत, अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम**, इन सभी रूपों के होज्ज, होज्जा, ये रूप होते हैं। किस पुरुष के किस वचन का यह रूप है ? यह प्रसंगानुसार स्वयं समझ लेना चाहिए। **क्रियातिपत्ति** का अर्थ है—लृङ्। लकार दस होते हैं। पाणिनीय व्याकरण में ये लट्, लिट् आदि नामों से प्रसिद्ध हैं और हैमशब्दानुशासन में इन्हें वर्तमाना आदि शब्द दिए गए हैं। क्रियातिपत्ति सब में अन्तिम है। यह हेतु-हेतुमद्भूत (जहां एक क्रिया के होने पर दूसरी क्रिया हो) के अर्थ में प्रयुक्त होती है। जैसे—**त्वमपठिष्यः, तदावश्यं परीक्षायामुत्तीर्णोऽभविष्यः**=यदि तुम पढ़ते तो परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाते।

६६९—**क्रियातिपत्ति** (लृङ्) के स्थान में न्त और माण ये दो आदेश होते हैं। भाव यह है कि प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष के सभी वचनों को उक्त दोनों आदेश हो जाते हैं। जैसे—**अभविष्यद्**=होन्तो, होमाणो (यदि ऐसा होता)।

हरिणस्थाने हरिणाङ्क !, यदि त्वं हरिणाधिपं न्यवेक्ष्यः।
न असहिष्यथाः एव तदा राहुपरिभवमस्य जयतः ॥१॥

अर्थात्—हे हरिणाङ्क (जिसकी गोद में हरिण हो) चन्द्र! यदि तू हरिण की जगह हरिणाधिप (हरिण का अधिप-राजा)=सिंह को स्थान देता तब तू उस जयशील सिंह के कारण राहु से प्राप्त हुए परिभव-तिरस्कार को कभी सहन न करता। भाव यह है कि राहु से ग्रसित चन्द्र को देखकर कोई भावुक कवि उसे सम्बोधित करता हुआ कह रहा है कि हे चन्द्र ! तूने जिस हरिण को अपना साथी बनाया है, वह निर्बल है; साहसी नहीं है, इसी कारण राहु ने तुझे दबोचने का साहस किया है, उसके विपरीत यदि तू सिंह से मित्रता करता और उसे अपने यहाँ स्थान देता तो राहु का तेरे निकट आने का साहस ही न होता। सिंह जयशील प्राणी है, उसका राहु से पराजित होने का क्या काम ? यहां पर—**न्यवेक्ष्यः** तथा **असहिष्यथाः** ये दो क्रियातिपत्ति (लृङ्) के प्रयोग हैं। अतः इन दोनों स्थानों पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति होने से क्रमशः **निवेसन्तो** तथा **सहन्तो** ये रूप बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त, यह

बात भी समझ लेनी चाहिए कि '**न्त**' और '**माण**' ये दोनों कृत्-प्रत्यय के स्थान में होने वाले आदेश हैं। ६७० सूत्र में शतृ और आनश् इन कृत्प्रत्ययों के स्थान में इन आदेशों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है! कृदन्ताधिकार के यही दोनों आदेश सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र द्वारा क्रियातिपत्ति के स्थान में करने का विधान किया है, इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये आदेश **कृदन्त-सम्बन्धी** हैं। परिणाम-स्वरूप इन आदेशों के अनन्तर **होन्त होमाण निवेसन्त** तथा **सहन्त** इन शब्दों की हैमशब्दानुशासन के ।५।२।२। सूत्र से तथा पाणिनीय व्याकरण के—**कृत्तद्धितसमासाश्च** ।१।२।४६। सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है। तदनन्तर स्यादि प्रत्यय हो जाने पर **होन्तो** आदि रूप निष्पन्न होते हैं।

६७०—शतृ और आनश् इन दोनों में से प्रत्येक के स्थान में न्त और माण ये दो आदेश होते हैं। अर्थात् शतृ के स्थान में न्त और माण तथा आनश् के स्थान में न्त और माण ये दो-दो आदेश किए जाते हैं। **शतृ का उदाहरण, जैसे—१—हसन्**=हसन्तो हसमाणो (हंसता हुआ), **आनश् का उदाहरण, जैसे—वेपमानः**=वेवन्तो वेवमाणो (काँपता हुआ) यहाँ पर शतृ और आनश् को न्त और माण ये दो-दो आदेश किए गए हैं।

६७१—स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान (विद्यमान) शतृ और आनश् के स्थान में ई तथा सूत्रोक्त चकार के कारण न्त और माण ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—**१—हसन्ती**=हसई, हसन्ती, हसमाणी (हंसती हुई), **२—वेपमाना**=वेवई, वेवन्ती, वेवमाणी (काँपती हुई) यहाँ पर स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धी शतृ और आनश् के स्थान में '**ई**' आदि तीन आदेश किए गए हैं।

इस तरह आचार्य श्री हेमचन्द्र जी महाराज द्वारा अपनी उपज्ञा (स्वयं-प्राप्त बोध) से विरचित हैमशब्दानुशासन की "**सिद्ध-हेमचन्द्र**" नामक वृत्ति-व्याख्या में अष्टमाध्याय का तृतीय पाद सम्पूर्ण होता है।

आचार्य श्री हेमचन्द्र हैमशब्दानुशासन की रचना के प्रेरक अपने प्रिय भक्त महाराजा सिद्धराज की स्तुति के व्याज से उन की गुण-गरिमा का वर्णन करते हुए फरमाते हैं कि हे क्षितीश्वर-मणे! क्षितीश्वरों (राजाओं) में मणि के समान श्रेष्ठ नृप! तुम्हारी कीर्ति स्वर्गलोक से भी ऊपर, पाताललोक के मूल (जड़) से भी नीचे और मध्यलोक में समुद्र के दूसरे किनारे पर पहुंच गई है। कीर्ति स्त्रीलिङ्ग है, अतः इसकी नारी-स्वभाव-सुलभ, अनेकविध चंचलता ने, वाणी पर नियंत्रण रखने वाले मुनिजनों के मौन-व्रत भी भंग कर दिये हैं। भाव यह है कि आत्मचिन्तन में ही सदा निरत रहने वाले मुनि लोग समस्त व्यक्तियों की निन्दा तथा स्तुति से सदा उपराम रहा करते हैं, परन्तु महाराजा सिद्धराज की कीर्ति इतनी अधिक फैल गई है कि उसने मौनव्रत के आराधक तपस्वि-जनों को भी सिद्धराज के गुण-गान के लिए विवश कर दिया है। संसार से विरक्त सन्त जन भी सिद्धराज की प्रशंसा के गीत गाते हैं।

गुरुवर आत्माराम की, किरपा हुई महान।
भाषा तृतीय पाद की, पूर्ण हुई मुनि ज्ञान।

❀ तृतीय पाद समाप्त ❀

प्राकृत-व्याकरणस्य पादत्रयाणां

शब्दसूची

[अ]

अ (च) १, १७७, २, १७४, १८८, १९३, ३, ७०
अइ (अति) १, १६९, १७१, २, १७९, २०५, ३, १७७
अइअम्मि (अतीते) २, २०४
अइमुत्तयं (अतिमुक्तकम्) १, २६, १७८, २०८
अइमुंतयं (अतिमुक्तकम्) १, २६, १७८
अइसरिअं (ऐश्वर्यम्) १, १५१
अंसु (अश्रु) १, २६
अक्को (अर्कः) १, १७७, २, ७९, ८९
अक्खइ (आख्याति) १, १८७
अक्खराइँ (अक्षराणि) ३, १३४
अक्खराण (अक्षराणाम्) २,१९५
अगया (असुराः) २, १७४
अगणी (अग्निः) २, १०२
अगरु (अगुरु) १, १०७
अगरू (अगुरु) १, १७७
अग्गओ (अग्रतः) १, ३७
अग्गी (अग्नि) २, १०२, ३, १२५ १, २७, ३, १९, २०, १२५, १२९
अग्घइ (राजते) १, १८७
अङ्कोल्ल (अङ्कोठ) १, २००, २, १५५
अङ्गमङ्गम्मि (अङ्गे अङ्गे) ३, १, अङ्गे (अङ्गे) १, ७, अङ्गाइं (अङ्गानि) १, ९३, अङ्गेहिं (अङ्गैः) २, १७९
अङ्गणं, अंगणं (अङ्गणम्) १, ३०
अङ्गारो (अङ्गारः) १, ४७
अङ्गुअं (इङ्गुदम्) १, ८९
अच्चो (अर्चः) १, १७७
अच्छीअ (अस्) ३, १६३ अच्छेज्ज, अच्छेज्जेज्ज, अच्छीअइ ३, १६०
अच्छअरं (आश्चर्यम्) १, ५८, २, ६७
अच्छरसा (अप्सराः) १, २०
अच्छरा (अप्सराः) १, २०, २, २१
अच्छरिअं (आश्चर्यम्) १, ७, ५८, २, ६६, ६७
अच्छरिज्जं (आश्चर्यम्) १, ५८, २, ६७
अच्छरीअं (आश्चर्यम्) १, ५८, २, ६७
अच्छी (अक्षि) १, ३३, ३५, २, १७, अच्छीइं १, ३३, २, २१७
अच्छिन्न (अच्छिन्न) २, १९८
अच्छेरं (आश्चर्यम्) १, ५८, २, २१, ६६, ६७
अजिअ (अजित) १, २४
अज्ज (अद्य) १, ३३, २, २०४, ३, १०५
अज्ज (आर्य) १, ६ अज्ज, अज्जो ३, ३८
अज्जा (आज्ञा) २, ८३
अज्जा (आर्या) १, ७७
अज्जिए (आर्थे) ३, ४१
अज्जू (श्वश्रू) १, ७७
अञ्जली (अञ्जलिः) १, ३५
अञ्जिअं अंजिअं (अञ्जितम्) १, ३०
अट्, अटइ (अटति) १, १९५
अट्टमट्ट (निपातः) २, १७४
अट्ठण्ह (अष्टानाम्) ३, १२३
अट्ठारसण्हं (अष्टादशानाम्) ३, १२३
अट्ठी (अस्थि) २, ३२
अट्ठो (अर्थः) २, ३३
अडो (अवटः) १, २७१
अड्ढं (अर्धम्) २, ४१
अण (नञर्थे) २, १९०
अणङ्ग (अनङ्ग) २, १७४
अणण्णय (अनन्यक) २, १५
अण (ऋण) १, १४१
अणाइण्णं (अनाचीर्णम्) ३,१३४
अणिउँतयं (अतिमुक्तकम्) १, २६, १७८, २०८
अणिट्ठं (अनिष्टम्) २,-३४
अणुकूलं (अनुकूलम्) २, २१७
अणुसारिणो (अनुसारिणी) १, ६
अणुसारेण (अनुसारेण) २, १७४
अत्तमाणो (आवर्तमानः) १, २७१
अत्ता (आत्मा) २, ५१
अत्थ (अर्थ) १. ७ अत्थो २, ३३
अत्थक्क (अकाण्डम्) २, १७४
अत्थिओ (अर्थिकः) २, १५९
अथिरो (अस्थिरः) १, १८७
अदंसणं (अदर्शनम्) २, ९७
अद्दंसणं (अदर्शनम्) २, ९७
अद्दं (आर्द्रम्) १, ८२

अद्दो (अब्दः) २, ७९
अद्ध (अर्ध) अद्धं २, ४१
अद्धा (अध्वन्) अद्धाणो ३, ५६
अनलो (अनलः) १, २२८
अनिलो (अनिलः) १, २२८
अन्तग्गयं (अन्तर्गतम्) १, ६०
अन्तप्पाओ (अन्तःपातः) २, ७७
अन्तरप्पा (अन्तरात्मा) १, १४
अंतरं अन्तरं (अन्तरम्) १ ३० अन्तरेसु २, १७४
अन्तावेइ (अन्तर्वेदि) १, ४
अन्तेआरि (अन्तश्चारिन्) १, ६०
अन्तेउरं (अन्तःपुरम्) १, ६०, -रे ३, १३६
अन्तो (अन्तः) १, १४
अन्तोवीसंभ (अन्तर्विश्रम्भ) १, ६०
अन्धलो (अन्धः) २, १७३
अन्धो (अन्धः) २, १७३
अन्न (अन्य) ३, ५८, ६१
अन्नत्तो (अन्यतः) २, १६०
अन्नत्थ (अन्यत्र) २, १६१, ३, ५९
अन्नदो (अन्यतः) २, १६०
अन्नन्नं (अन्योन्यम्) १, १५६
अन्नह (अन्यत्र) २, १६१
अन्नहि (अन्यत्र) २, १६१
अन्नारिसो (अन्यादृशः) १, १४२
अन्नुन्नं (अन्योन्यम्) १, १५६
अप्पज्जो (आत्मज्ञः) २, ८३
अप्पणयं (आत्मीयम्) २, १५३
अप्पण्णू (आत्मज्ञः) २, ८३
अप्पमत्तो (अप्रमत्तः) १, २३१
अप्पा (आत्मा) ३, ५६, अप्पा, ३, ५१, अप्पं ३, ४९ अप्पणइआ ३, १४, ५७, अप्पणिआ ३, १४, ५७, अप्पणा, ३, १४, अप्पणो, २, १९७, २०९ अप्पाणो ३, ५६ २, ५१, अप्पाणेण ३, ५७
अप्पुल्लं (आत्मीयम्) २, १६३
अब्बवी (अब्रवीत्) पश्य-ब्रू धातुः
अमरिसो (अमर्षः) २, १०५
अमुगो (अमुकः) १, १७७
अमुणन्ती (अजानन्ती) २, १९०
अमू (अदस्) ३, ८८, ३,८७ अमुं ३, ८७ अमुम्मि ३, ५९, ८९
अम्बं (आम्रम्) १, ८४, २, ५६
अम्बिर (अम्ल) २, ५६
अम्बिल (अम्लम्) २, १०६
अम्मि (अस्मिन्) ३, १०५, १०७
अम्मो (आश्चर्ये) २, २०८, ३, ४१
अम्ह (म्ह) (अस्मद्) १, ३३, २, ९९, १४७, २०४, ३, १०६, १०७, १०८, ११०, ११३, ११४, अम्ह १, २४६, अम्हं ३, ११३, ११४, अम्हत्तो ३, ११२, अम्हम्मि ३, ११२, अम्हसु ३, ११७, अम्हाण ३, ११४, अम्हाणं ३, ११४, अम्हासु ३, ११७, अम्हासुंतो ३, ११२, अम्हाहि ३, ११०, अम्हाहिन्तो ३, ११२, अम्हि ३, १०५ अम्हे, १, ४०, ३, २६, १०६, १०८, ११०, ११४, १४७, १४८, अम्हेहि ३, ११०, अम्हेसु ३, ११७ अम्हेसुन्तो ३, ११२, अम्हो ३, १०६, १०८, ११४, १४७
अम्हारिसो (अस्मादृशः) १, १४२, २, ७४
अम्हेच्चयं (अस्मदीयम्) २, १४९
अम्हेत्थ (वयमत्र) १, ४०
अयं (अयम्) ३, ७३. अयम्मि ३, ८४, ८९
अया (अजा) ३, ३२
अयि (अयि) २, २१७
अर्प् (अर्प्-धातुः) अप्पे १, ६३ अप्पिअं १, ६३, उप्पिअ १, २६९ ओप्पेइ १, ६३ ओप्पिअं १, ६३ समप्पेत्तुन २, १६४
अरण्णं (अरण्यम्) १, ६६
अरहो (अर्हन्) २, १११
अरहन्तो (अर्हन्) २, १११
अरि (अरि) २, २१७
अरिहन्तो (अर्हन्) २, १११
अरिहा (अर्हन्) २, १०४
अरिहो (अर्हन्) २, १११
अरुण (अरुण) १, ६
अरुहन्तो (अर्हन्) २, १११
अरुहो (अर्हन्) २, १११
अरे (अरे) २, २०१
अर्ह् (धातुः) अरिहइ २, १०४
अलचपुरं (अचलपुरम्) २, ११८
अलसी (अतसी) १, २११
अलाउं (अलाबु) १, ६६
अलाऊ (अलाबु) १, ६६
अलाबू (अलाबू) १, २३७
अलाहि (निवारणे) २, १८९
अलिअं (अलीकम्) १, १०१
अलीअं (अलीकम्) १, १०१
अल्लं (आर्द्रम्) १, ८२, २, १७४
अवऊढो (उपगूढः) १, ६
अवक्खन्दो (अवस्कन्दः) २, ४
अवगूढो (अपगूढः) २, १६८

अवजसो (अपयशस्) १, २४५
अवज्जं (अवद्यम्) २, २४
अवडो (अवटः) १, २७१
अवद्दालं (अपद्वारम्) १, २५४
अवयवो (अवयवः) १, २४५
अवयासइ (श्लिष्यति) २, १७४
अवयासो (अवकाशः) १, ६, १७२
अवरण्हो (अपराह्णः) २, ७५
अवराण (अपरेषाम्) ३, ६१
अवरि (उपरि) १, १६६
अवरिं (उपरि) १, २६, १०८
अवरिल्लो (उपरितनः) २, १६६
अवरेसिं (अपरेषाम्) ३, ६१
अवसद्दो (अपशब्दः) १, १७२
अवहडं (अवहृतम्) १, २०६
अवहं (उभयम्) २, १३८
अवहोआसं (उभयबलम्, आर्षे-उभयोकालं) २, १३८
अवि (अपि) १, ४१
अविणय (अविनय) २, २०३
अव्वो (सूचनादिषु) २, २०४
अस् (धातुः) म्हि ३, १०५, १४७, सि ३, १४६, १८०, अत्थि २, ४५, ३, १४६, १४७, १४८ नत्थि २, २०६, म्हो, म्ह ३, १४७, सिआ, २, १०७, आसि ३, १६४, अहेसि ३, १६४ सन्तो १, ३७
असहेज्ज (असहाय) १, ७९
असुगो (असुकः) १, १७७
असुर (असुर) १, ७९
असोअ (अशोक) २, १६४
अस्स (अस्य) ३, ७४
अस्सं (आस्यम्), १, ८४
अंस्सि (अस्मिन्) ३, ७४
अह (अदस्) ३, ८७
अहक्खायं (यथाख्यातम्) १, २४५
अहं (अहम्) १, ४०, ३, १०७, १४७, १४८, १६४
अहयं (अहम्) २, १९९, २०४, ३, १०५
अहरुट्ठं (अधरोष्ठम्) १, ८४
अहव (अथवा) १, ६७
अहवा (अथवा) १, ६७, ३, ७३
अहह (अव्ययपदम्) २, २१७
अहाजायं (यथाजातम्) १, २४५
अहाह (अव्ययपदम्) २, २१७
अहिअं (अहितम्) ३, ८१
अहिआइ (अभियाति) १, ४४
अहिज्जो (अभिज्ञः) १, ५६, २, ८३
अहिण्णु (अभिज्ञः) १, ५६, २, ८३
अहिमज्जू (अभिमन्युः) २, २५
अहिमञ्जू (अभिमन्युः) २, २५
अहिमन्नू (अभिमन्युः) १, २४३ २, २५
अहिरीओ (अह्रीकः) २, १०४
अहिवन्नू (अभिमन्युः) १, २४३
अहो (अहो) १, ७, २, २१७

[आ]

आइरिओ (आचार्यः) १, ७३, २, १०७
आउज्जं (आतोद्यम्) १, १५६
आउण्टणं (आकुञ्चनम्) १, १७७
आऊ (आपः) २, १७४
आओ (आगतः) १, २६८
आकिई (आकृतिः) १, २०९
आगमण्णू (आगमज्ञः) १, ५६
आगमिओ (आगमिकः) १, १७७
आगारो (आकारः) १, १७७
आगरिसो (आकर्षः) १, १७७
आढत्तो (आरब्धः) २, १३८
आढिओ (आदृतः) १, १४३
आणत्तं (आज्ञप्तम्) पश्य-ज्ञा-धातुः
आणत्ती (आज्ञप्तिः) २, ९२
आणवणं (आज्ञपनम्) २, ९२
आणवेउ (आज्ञापयतु) पश्य-ज्ञा
आणा (आज्ञा) २, ८३, ९२
आणालक्खम्भो (आलानस्तम्भः) २, ९७
आणालखम्भो (आलानस्तम्भः) २, ९७, ११७
आणालो (आलानम्) २, ११७
आणिअं (आनीतम्) पश्य-नी-धातुः
आप् (धातुः) **पज्जत्तं** (पर्याप्तम्) २, २४
आफंसो (आस्पर्शः) १, ४४
आम (अभ्युपगमे) २, १७७
आमेलो (आपीडः) १, १०५, २०२, २३४
आयंसो (आदर्शः) २, १०५
आयमिओ (आगमिकः) १, १७७
आयरिओ (आचार्यः) १, ७३
आयरिसो (आदर्शः) २, १०५
आयासं (आकाशम्) १, ८४
आरण्ण (आरण्य) १, ६६
आरनालं (आरनालम्) १, २२८
आरम्भो (आरम्भः) १, ३०
आलक्खिमो (आलक्षयामः) १, ७
आलिद्धो (आश्लिष्टः) २, ४९, ९०
आली (सखी) १, ८३
आलेट्ठुअं (आश्लेष्टुम्) १, २४, २, १६४
आलेट्ठुं (आश्लेष्टुम्) २, १६४
आलोअण (आलोकन) १, ७
आवज्जं (आतोद्यम्) १, १५६
आवत्तओ (आवर्तकः) २, ३०

आवत्तणं (आवर्तनम्) २, ३०
आवत्तमाणो (आवर्तमानः) १, २७१
आवलि (आवलिः) १, ६
आवसहो (आवसथः) १, १८७
आवासयं (आवश्यकम्) १, ४३
आवेडो (आपीड़ः) १, २०२, २३४
आसं (आस्यम्) २, ९२
आसारो (आसारः) १, ७६
आसीसा (आशीः) २, १७४
आसो (अश्वः) १, ४३
आहडं (आहृतम्) १, २०६
आहिआइ (अभियाति) १, ४४
आहित्थ (निपातः) २, १७४

[इ]

इ (पादपूरणे) २, २१७
इ (तव) ३, ९९
इअ (इति) १, ४२, ९१
इअरहा (इतरथा) २, २१२
इअराइँ (इतराणि) ३, १३४, इअरे ३, ५८
इआणि (इदानीम्) १, २९
इआणिं (इदानीम्) १, २९, २, १३४
इक्क (एक) १, ८४
इक्खू (इक्षुः) २, १७
इङ्गालो (अङ्गारः) १, ४७, २५४
इङ्गिअज्जो (इङ्गितज्ञः) २, ८३
इङ्गिअण्णू (इङ्गितज्ञः) २, ८३
इङ्गुअं (इङ्गुदम्) १, ८९
इट्टा (इष्टा) २, ३४
इट्टो (इष्टः) २, ३४
इड्ढी (ऋद्धिः) १, १२८, २, ४१
इणं (इदम्) २, २०४, ३, ७८, ७९, ८५, १६२
इणमो (इदम्) ३, ७९, ८५
इत्तिअं (एतावत्) २, १५६
इत्तो (इतः) २, १६०
इत्थी (स्त्री) २, १३०
इदं (इदम्) ३, ७९
इदो (इतः) २, १६०
इध् (इन्ध्) **विज्झाइ** २, २८ **समिज्झाई** २, २८
इन्दहणू (इन्द्रधनुः) १, १८७
इन्धम् (चिह्नम्) १, १७७, २, ५०
इमं (इदम्) २, १८१, १९८, ३, ७२, ७७, ७८, इमो ३, ७२, ७३, इमा ३, ७२, ७३, इमिआ ३, ७३ इमा १, ४० इमे ३, ७२, ७७, इमिणा ३, ६९ इमेण ३, ६९, ७२, ७७ इमेहि ३, ७७ इमस्स ३, ७४, ८१ इमीए, इमाए, ३, ३२ इमाण ३, ६१, इमीणं इमाणं ३, ३२, इमेसिं ३, ६१, ८१ इमस्सि ३, ६०, ७४, ७५, ७६ इमम्मि ३, ७५, ७६
इर (किल) २, १८६
इव (इव) २, १८२
इष् (धातुः) इट्टो २, ३४
इसी (ऋषिः) १, १२८, १४१
इह (इह) १, ९, २, १६४, ३, ७५, ७६
इहं (इह) १, २४
इहय (इह) १, २४, २, १६४
इहरा (इतरथा) २, २१२

[ई]

ईअम्मि (एतस्मिन्) ३, ८४
ईसरो (ईश्वरः) १, ८४, २, ९२
ईसालू (ईर्ष्यालुः) २, १५९
ईसि (ईषत्) १, ४६, २, १२९

[उ]

उअ (उत्) १, १७२, २, १९३
उअ (पश्य) २, २११
उइन्दो (उपेन्द्रः) १, ६
उउम्बरो (उदुम्बरः) १, २७०
उऊ (ऋतुः) १, १३१, १४१, २०९
उऊहलो (उदूखलः) १, १७१
उक्कण्ठा (उत्कण्ठा) १, २५, ३०
उक्कत्तिओ (उत्कर्तितः) २, ३०
उक्करो (उत्करः) १, ५८
उक्का (उल्का) २, ७९, ८९
उक्किट्ठं (उत्कृष्टम्) १, १२८
उक्केरो (उत्करः) १, ५८
उक्खयं (उत्खातम्) १, ६७
उक्खलं (उदूखलम्) २, ९०
उक्खायं (उत्खातम्) १, ६७
उक्खित्तं (उत्क्षिप्तम्) २, १२७
उग्गमाः (उद्गमाः) १, १७१
उच्चअं (उच्चैः) १, १५४
उच्छओ (उत्सवः) २, २२
उच्छण्णो (उत्सन्नः) १, ११४
उच्छा (उक्षा) २, १७, ३, ५६
उच्छाणो (उक्षा) ३, ५६
उच्छाहो (उत्साहः) १, ११४, २, २१, ४८, ३, ८१
उच्छु (इक्षुः) १, २४७ उच्छू १, ९५, २, १७
उच्छुओ (उत्सुकः) २, २२
उच्छूढं (उत्क्षिप्तम्) २, १२७
उज्जलो (उज्ज्वलः) २, १७४
उज्जल्ल (देश्यशब्दः) २, १७४
उज्जू (ऋजुः) १, १३१, १४१, २, ९८

उज्जोअगरा (उद्योतकराः) १, १७७
उज्जोअं (उद्योतम्) ३, १३७
उज्झ (तव) ३, ९९
उट्टो (उष्ट्रः) २, ३४
उडू (उडुः) १, २०२
उण (पुनः) १, ६५, १७७
उणा (पुनः) १,६५ २, २१७
उणाइ (पुनः) १, ६५
उण्हीसं (उष्णीषम्) २, ७५
उत्तरिज्जं (उत्तरीयम्) १, २४८
उत्तरीअं (उत्तरीयम्) १, २४८
उत्तिमो (उत्तमः) १, ४६
उत्थारो (उत्साहः) २, ४८
उदू (ऋतुः) १, २०९
उद्दामो (उद्दामः) १, १७७
उद्धं (ऊर्ध्वम्) २, ५९
उप्पलं (उत्पलम्) २, ७७
उप्पाओ (उत्पातः) २, ७७
उप्पावेइ (उत्प्लावयति) ३, १०६
उप्पेहड (निपातः) २, १७४
उप्फालइ (निपातः) २, १७४
उब्भ (तव) २, ९९
उब्भन्तयं (उद्भ्रान्तकम्) २, १६४
उब्भं (ऊर्ध्वम्) २, ५९
उब्भेहिं (युष्माभिः) ३, ९५
उभयबलं (उभयबलम्) २, १३८
उभयोकालं (उभयकालम्) २, १३८
उम्बरो (उदुम्बरः) १, २७०
उम्मत्तिए! (उन्मत्तिके!) १, १६९
उम्ह (तव) ३, ९९, उम्हत्तो ३, ९८, उम्हेहिं ३, ९५
उम्हा (ऊष्मा) २, ६४ **उय्ह**(तव) ३, ९९, उम्हत्तो ३, ९८, उय्हे, ३, ९१, ९३, उम्हेहिं ३, ९५
उरो (उरः) १, ३२
उलूहलं (उदूखलम्) १, १७१
उल्लं (आर्द्रम्) १, ८२
उल्लाविरीइ (उल्लपनशीलया) २, १९३
उल्लावेन्तीए (उल्लापयन्त्या) २, १९३
उल्लिआइं (आर्द्रीकृतानि) ३, १६
उल्लिहण (उल्लिखन) १, ७
उल्लेइ (आर्द्रीकरोति) १, ८२
उवकुम्भस्स (उपकुम्भम्) ३, १०
उवज्झाआ (उपाध्यायः) १, १७३ २, २६
उवणिअं (उपनीतम्) देखो नी-धातु
उवमा (उपमा) १, २३१
उवयार (उपचार) १, १४५
उवरिं (उपरि) १, १४, १०८
उवरिल्लं (उपरितनम्) २, १६३
उववासो (उपवासः) १, १७३
उवसग्गो (उपसर्गः) १, २३१
उवहं (उभयम्) २, १३८
उवहासं (उपहासम्) २, २०१
उव्वाडिरीए (उद्विग्नया) २, १९३
उव्विग्गो (उद्विग्नः) २, ७९
उव्विन्नो (उद्विग्नः) २, ७९
उव्वीढं (उद्व्यूढम्) १, १२०
उव्वूढं (उद्व्यूढम्) १, १२०
उसभं (ऋषभम्) १, २४
उसहो (ऋषभः) १, १३१, १३३, १४१

[ऊ]

ऊ (गर्हादिषु) २, १९९
ऊआसो (उपवासः) १, १७३
ऊज्झाओ (उपाध्यायः) १, १७३
ऊसओ (उत्सवः) २, २२
ऊसवो (उत्सवः) १, ८४, ११४
ऊससिरो (उच्छ्वसन-शीलः) २, १४५
ऊसारिओ (उत्सारितः) २, २१
ऊसारो (आसारः) १, ७६
ऊसुओ (उत्सुकः) १, ११४, २, २२
ऊसुरं (निपातः) २, १७४
ऊसो (उस्रः) १, ४३

[ए]

ए (तव) ३, ९९
एअ (एतत्) १, ११ **एअं** १, २०९, २, १९८, २०४, ३, ८५, ८६, १३४, एए ३, ४, ५८, ८६, एअस्स ३, ८१, एआए ३, ३२, एईए ३, ३२, एआणं ३, ६१,८१, एआणं ३, ३२, एआण ३, ६१, ८१, एईणं ३,३२, एएसिं ३,६१, ८१, **एआ** ३, ८२, एआउ, एआ-हिंतो, एआहि ३, ८२,एआओ ३, ८२, ८६, एअम्मि ३, ८४, एअ-स्सिं ३, ६०
एआरह (एकादश) १, २१९, २६२
एआरिसो (एतादृशः) १, १४२
एओ (एकः) २, ९९, १६५
एकत्तो (एकतः) २, १६०
एकदा (एकदा) २, १६२
एकदो (एकतः) २, १६०
एकल्लो (एकः) २, १६५
एक्को (एकः) २, ९९ १६५, एक्के ३, ५८, एक्काए १, ३६
एक्कइआ (एकदा) २, १६२
एक्कमेक्कं (एककम्) ३, १ एक्क-मेक्केण ३, १
एक्कल्लो (एकः) २, १६५

एक्कसरिअं (झक्, सम्प्रति) २, २१३
एक्कसि (एकदा) २, १६२
एक्कसिअं (एकदा) २, १६२
एक्कारो (अयस्कारः) १, १६६
एक्केक्कं (एकैकम्) ३, १
एगत्तं (एकत्वम्) १, १७७
एगया (एकदा) २, १६२
एगो (एकः) १, १७७
एण्हि (इदानीम्) १, ७, २, १३४
एत्ताहे (इदानीम्) २, १३४, १८०, ३, ८२, ८३
एत्तिअं (इयत्) २, १५७
एतिअमत्तं (मेत्तं) (इयन्मात्रम्) १, ८१
एत्तिलं (इयत्) २, १५७
एत्तो (अत्र) ३, ८२, ८३
एत्थ (अत्र) १, ४०, ५७, ३, ८३
एदिणा (एतेन) ३, ६९
एद्दहं (इयत्) २, १५७
एमेअ (एवमेव) १, २७१
एरावओ (ऐरावतः) १, २०८,
एरावणो (ऐरावतः) १, १४८, २०८
एरिसी (ईदृशी) २, १९५
एरिसो (ईदृशः) १, १०५, १४२
एलया (अजा) ३, ३२
एव (एवम्) १, २९
एवं (एवम्) १, २९, २, १८६
एवमेव (एवमेव) १, २७१
एस (एषः) १, ३१, ३५, ३, ३, ८५, १४७ एसो २, ११६, १९८, ३, ३, ८५, ८६, एसा १, ३३, ३५, १५८, ३, २८, ८५, ८६, एसु ३, ७४
एहि (एभिः) ३, ७४

[ऐ]

ऐ (अयि) १, १६९

[ओ]

ओ (अव, अप, उत) १, १७२, २, २०३
ओआसो (अवकाशः) १, १७२, १७३
ओक्खलं (उदूखलम्) १, १७१
ओज्झरो (निर्झरः) १, ९८
ओज्झाओ (उपाध्यायः) १, १७३
ओमालं (अवमाल्यम्) १, ३८, २, ९२
ओमालयं (अवमाल्यम्, निर्माल्यम्) १, ३८
ओली (आली) १, ८३
ओल्लं (आर्द्रम्) १, ८३
ओसढं (औषधम्) १, २२७
ओसहं (औषधम्) १, २२७
ओहलो (उदूखलः) १, १७१

[क]

कइ (कवि) २, ४०, ३, १४२
कई (कवि) १, १२८, १८०
कइअवं (कैतवम्) १, १५१, २५०
कइआ (कदा) ३, ६५
कइण्हं (कतीनाम्) ३, १२३
कइद्धओ (कपिध्वजः) २, ९०
कइधओ (कपिध्वजः) २, ९०
कइमो (कतमः) १, ४८
कइरवं (कैरवम्) १, १५२
कइलासो (कैलासः) १, १५२
कइवाहं (कतिपयम्) १, २५०
कई (कपि) १, २३१
कउच्छेअयं (कौक्षेयकम्) १, १६२
कउरवो (कौरवः) १, १६२
कउला (कौलाः) १, १६२
कउसलं (कौशलम्) १, १६२
कउहा (ककुभ्) १, २१
कउहं (ककुद्) १, २२५
कंसं (कांस्यम्) १, २९, ७०
कंसालो (कांस्ययुक्तः) २, ९२
कंसिओ (कांस्यिकः) १, ७०
ककुधं (ककुद्) २, १७४
कङ्कोडो (कर्कोटः) १, २६
कच्छा (कक्षा) २, १७
कच्छो (कक्षः) २, १७
कज्जं (कार्यम्) १, १७७, २, २४, कज्जे २, १८०
कञ्चुओ (कञ्चुकः) १, २५, ३०, कञ्चुअं १, ७
कट्टु (कृत्वा) २, १४६ पश्य कर्
कट्ठम् (काष्ठम्) २, ३४, ९०
कडण (कदन) १, २१७
कडुएल्लं (कटुतैलम्) २, १५५
कणयं (कनकम्) १, २२८
कणवीरो (करवीरः) १, २५३
कणिआरो (कर्णिकारः) २, ९५
कणिट्ठयरो (कनिष्ठतरः) २, १७२
कणेरू (करेणुः) २, ११६
कण्टओ कंटओ (कण्टकः) १, ३०
कण्डं, कंडं (काण्डम्) १, ३०
कण्डलिया (कन्दरिका) २, ३८
कण्डुअइ (कण्डूयति) १, १२१
कण्णिआरो (कर्णिकारः) १, १६८ २, ९५
कण्णेरो (कर्णिकारः) १, १६८
कण्हो (कृष्णः) २, ७५, ११०
कत्तरी (कर्तरी) २, ३०
कत्ता (कर्त्ता) ३, ४८, कत्तार ३, ४०, कत्तारो ३, ४८
कत्तिओ (कार्तिकः) २, ३०
कथ्, कहइ (कथयति) १, १८७, कत्थइ १, १८७

कत्थ (कुत्र) २, १६१, ३, ६५, ७१
कत्थइ (क्वचित्) २, १७४
कंथा (कन्था) १, १८७
कन्दुट्ट (उत्पलम्) २, १७४
कन्दो (स्कन्दः) २, ५
कप्पतरू (कल्पतरुः) २, ८९
कप्फलं (कट्फलम्) २, ७७
कमढो (कमठः) १, १९९
कमन्धो (कबन्धः) १, २३९
कमलं (कमलम्) २, १८२ कमला, कमलाइं १, ३३, कमलाश्रो ३, २३ कमलस्स, ३, २३, कमलेण ३, २४
कमलमुही (कमलमुखी) ३, ८७
कमलवणं (कमलवनम्) २, १८३
कमलसरा (कमलसरांसि) २,२०९
कमो (क्रमः) २, १०६
कम्प्, कम्पइ (कम्पते) १, ३०, २३१
कम्भारा (कश्मीराः) २, ६०
कम्मसं (कल्मषम्) २, ७९
कम्हारा (कश्मीराः) १, १००, २. ६०, ७४
कयं (कृतम्) २, ११४
कयकज्जो (कृतकार्यः) ३, ७७
कयग्गहो (कचग्रहः) १, १७७, १८०
कयणं (कदनम्) १, २१७
कयण्णू (कृतज्ञः) १, ५६
कयन्धो (कबन्धः) १, २३९
कयप्पणामो (कृतप्रणामः) ३,१०५
कयम्बो (कदम्बः) १, २२२
कयरो (कतरः) १, २०९, कयरे ३, ५८
कयलं (कदलम्) १, १६७
कयली (कदली) १, १६७, २२०
कर्-करेमि १, २९; २, १९०; ३, १०५; करेसु २, २०१, करसे करए ३, १४५, काहं ३, १७०; काहिमि ३, १७०, काहिइ १, ५; ३, १६६; काही १, ५, कासी, काही, काहीग्र ३,१६२; २, १९१; किज्जइ १, ९७, कारेइ ३, १४९, १५३, करावइ ३, १४९, करावेइ ३, १५३, करावीग्रइ, कराविज्जइ ३, १५२, १५३, कारीग्रइ, कारिज्जइ ३, १५२, १५३, करिग्र १, २७; काऊण १, २७; २, १४६; ३, १५७; काऊणं १, २७, काउग्राणं, काउग्राण १, २७, कय ३, ७३, १०५, कयं १, १२६, २०९; २, ११४; ३, १६, २३, २४, २७, २९, ३०, ५१, ५५, ५६, ७०, ७७, १०९, ११०, ११८, ११९, १२४, १२९; कया २, २०४, ३, ७, करणिज्जं १, २४; २, २०९, करणीग्रं १, २४८, कारिग्रं ३, १५२, १५३, कराविग्रं ३, १५२, १५३, ग्रलंकिग्रा ३, १३५, पडिकरइ १, २०६
करयल (करतल) ३, ७०
कररुहं-हो (कररुहम्) १, ३४
करली (कदली) १, २२०
करसी (श्मशानम्) २, १७४
करिणी (करिणी) ३, ३२
करिसो (करीषः) १, १०१
करीसो (करीषः) १, १०१
करेणू (करेणूः) २, ११६
कलओ (कालकः) १, ६७
कलमगोवी (शालिगोपी) २, २१७
कलम्बो (कदम्बः) १, ३०, २२२
कलावो (कलापः) १, २३१
कलुणो (करुणः) १, २५४
कल्लं (कल्यम्) २, १८६
कल्हारं (कह्लारम्) २, ७६
कवट्टिओ (कदर्थितः) १, २२४, २, २९
कवड्डो (कपर्दः) २, ३६
कवालं (कपालम्) १, २३१
कविलं (कपिलम्) १, २३१
कव्व (काव्य) ३, १४२ कव्वं २, ७९
कव्वइत्तो (काव्यवान्) २, १५९
कस् (धातुः) विग्रसन्ति (विकसन्ति) २, २०९, विग्रसिअं (विकसितम्) १, ९१, २, २१५
कसण (कृष्ण) १, २३६, २, ७५, कसणो २, ११०
कसाओ (कषायः) १, २६०
कसिण (कृत्स्न) २, ७५, कसिणो २, ८९, १०४, ११०
कह (कथम्) १, २९, २, १६१, १९९, २०४, २०८, ३, ५६
कहं (कथम्) १, २९, ४१
कहमवि (कथमपि) १, ४१
कहावणो (कार्षापणः) २, ७१, ९३
कहि (कुत्र) २, १६१
कहिं (कुत्र) ३, ६०, ६५
काउँग्रो (कामुकः) १, १७८
कामिणीण (कामिनीनाम्) २, १८४
कायमणी (काचमणिः) १, १८०
कालओ (कालकः) १, ६७
काला (कदा) ३, ६५
काला (काला) ३, ३२
कालासं (कालायसम्) १, २६९
कालसं (कालायसम्) १, २६९

काली (काली) ३, ३२
कालो (कालः) १, १७७, कालेणं ३, १३७
कासइ (कस्यचित्) १, ४३
कासओ (कर्षकः) १, ४३
कासं (कांस्यम्) १, २९
कासवो (कश्यपः) १,४३, कासवा, कासव ३, ३८
कासा (कृशा) १, १२७
काहलो (कातरः) १, २१४, २५४
काहावणो (कार्षापणः) २, ७१
काहे (कदा) ३, ६५
किआ (क्रिया) २, १०४
किई (कृतिः) १, १२८
किंसुअं (किंशुकम्) १, २९, ८६
किच्चा (कृत्या) १, १२८
किच्ची (कृतिः) २, १२, ८९
किच्छं (कृच्छ्रम्) १, १२८
किडी (किरि) १, २५१
किणा (केन) ३, ६९
किणो (प्रश्ने) २, २१६
कित्तइस्सं, कित्तहिमि (कीर्तयिष्यामि) ३, ६९
कित्ती (कीर्त्तिः) २, ३०
किर (किल) १, ८८, २, १८६
किरायं (किरातम्) १, १८३
किरिआ (क्रिया) २, १०४
किल (किल) २, १८६
किलन्तं (क्लान्तम्) २, १०६
किलम्मइ (क्लाम्यति) २, १०६
किलिट्ठं (क्लिष्टम्) २, १०६
किलित्त (कलृप्त) १, १४५
किलिन्न (क्लिन्न) १, १४५, किलिन्नं २, १०५, १०६
किलेसो (क्लेशः) २, १०६
किवा (कृपा) १, १२८
किवाणं (कृपाणम्) १, १२८
किविणो (कृपणः) १, १२८
किसरं (केसरम्) १, १४६
किसरा (कृसरा) १, १२८
किसलं (किसलयम्) १, २६९
किसलयं (किसलयम्) १, २६९
किसा (कृशा) १, १२७
किसाणू (कृशानुः) १, १२८
किसिओ (कृषितः) १, १२८
किसो (कृशः) १, १२८
कीलइ (क्रीडति) १, २०२
कीस (किमर्थम्) ३, ६८
कुऊहलं (कुतूहलम्) १, ११७
कुङ्कुम (कुङ्कुम्) २, १६४
कुच्छी (कुक्षिः) १, ३५, २, १७, कुच्छीए ३, ४६
कुच्छेअयं (कौक्षेयकम्) १, १६१, २, १७
कुज्जय (कुब्जक) १, १८१
कुञ्जरो (कुञ्जरः) १, ६६
कुड्डं (कुड्यम्) २, ७८
कुड्डं (कुतूहलम्) २, १७४
कुढारो (कुठारः) १, १९९
कुणन्ति (कुर्वन्ति) १, ८, ३, १३०
कुणवं (कुणपम्) १, २३१
कुदो (कुतः) १, ३७
कुप्पासो (कूर्पासः) १, ७२
कुप्पिसो (कूर्पासः) १, ७२
कुमरो (कुमारः) १, ६७
कुमारी (कुमारी) ३, ३२
कुमारो (कुमारः) १, ६७
कुमुअं (कुमुदम्) २, १८२
कुम्पलं (कुड्मलम्) १, २६, २, ५२
कुम्भआरो (कुम्भकारः) १, ८
कुम्भारो (कुम्भकारः) १, ८
कुम्हाणो (कुश्मानः) २, ७४
कुरुचरा-चरी (कुरुचरा-चरी) ३, ३१
कुलं (कुलम्) १, ३३, ३, ८०, कुलो १, ३३
कुल्ला (कुल्या) २, ७९
कुविआ (कुपिता) ३, १०५
कुसुम (कुसुम) १, ९१, १४५
कुसुमपयरो, कुसुमप्पयरो (कुसुमप्रकरः) २, ९७
कुसो (कुशः) १, २६०
कूर (ईषत्) २, १२९
केढवो (कैटभः) १, १४८, १९६ २४०
केत्तिअं (कियत्) २, १५७
केत्तिलं (कियत्) २, १५७
केद्दहं (कियत्) २, १५७
केरो (युष्मदर्थपरे) १, २४६, २, १४७, १४८, केरं २, ९९
केरवं (कैरवम्) १, १५२
केरिसो (कीदृशः) १, १०५, १४२
केलं (कदलम्) १, १६७
केलासो (कैलासः) १,१४८, १५२
केली (कदली) १, १६७, २२०
केवट्टो (कैवर्तः) २, ३०
केसभारो (केशभारः) ३, १३४
केसरं (केसरम्) १, १४६
केसुअं (किंशुकम्) १, २९, ८६
को (कः) २, १९८, ३, ७१ **का** (का) ३, ३३, कि १, २९ **किम्** (किम्) १, २९, ४१, ४२, २, १८९, १९३, १९९, २०४, २०५, ३, ८०, १०५, के ३, ५८, ७१, १४७ काओ ३, ६६, काउ ३, ३३, कीउ ३, ३३, कं ३, ३३, ७१, केण २, १९९, ३, ६९, ७१,

केण वि १, ४१, **केणावि** १, ४१ **किणा** ३, ६९, **कस्स** २, २०४, ३, ६३, **कास** ३, ६४, **काए** ३, ३३, ६३, **किस्सा** ३, ६४, **कास** ३, ६३, **कीसे** ३, ६४, **कीअ,कीआ, कीइ** ३, ६४, **कीए** ३, ३३, ६४, **काण** ३, ३३, ६१, **केसिं** ३, ६१, ६२, **कओ** ३, ७१, **कत्तो** २, १६०, ३, ७१, **कदो** २, १६०, ३, ७१, **कम्हा** ३, ६६, ६८, **कीस** ३, ६८, **किणो** ३, ६८, **कम्मि** ३, ६५, **कस्सि** ३, ६५, **कहिं, काए, कीए, काहिं,** ३, ६०, **कासु, कीसु,** ३, ३३

कोउहलं (कुतूहलम्) २, ९९

कोउहल्लं (कुतूहलम्) १, ११७, १७१, २, ९९

कोऊहलं (कुतूहलम्) १, ११७

कोच्छेअयं (कौक्षेयकम्) १, १६१

कोञ्चो (क्रौञ्चः) १, १५९

कोट्टिमं (कुट्टिमम्) १, ११६

कोण्डं (कुण्डम्) १, २०२

कोण्ढो (कुण्ठः) १, ११६

कोत्थुहो (कौस्तुभः) १, १५९

कोन्तो (कुन्तः) १, ११६

कोप्परं (कूर्परम्) १, १२४

कोमुई (कौमुदी) १, १५९

कोसिओ (कौशिकः) १, १५९

कोसम्बी (कौशाम्बी) १, १५९

कोहण्डी (कूष्माण्डी) १, १२४, २, ७३

कोहलं (कुतूहलम्) १, १७१

कोहलिए! (कुतूहलिके!) १, १७१

कोहली (कूष्माण्डी) १, १२४

कौरवा (कौरवाः) १, १, **क्केरं** (ईयम्) २, ९९, **क्खण्डं** (खण्डम्) २, ९७

[ख]

खइओ (खचितः) १, १९३

खइरं (खादिरम्) १, ६७

खओ (क्षयः) २, ३

खग्गं (खड्गम्) १, ३४, खग्गो, १, ३४, २०२, २, ७७

खट्टा (खट्वा) १, १९५

खणो (क्षणः) १, २०

खण्डिओ (खण्डितः) १, ५३

खण्डं (खण्डम्) २, ९७

खण्णू (स्थाणु) २, ९९

खत्तिआणं (क्षत्रियाणाम्) २, १८५

खन्दो (स्कन्दः) २, ५

खन्धावारो (स्कन्धावारः) २, ४

खन्धो (स्कन्धः) २, ४

खप्परं (कर्परम्) १, १८१

खमा (क्षमा) २, १८

खमाविअं (क्षामितम्) ३, १५२

खमासमण-णो (क्षमाश्रमणः) ३, ३८

खम्भो (स्तम्भः) १, १८७, २, ८, ८९

खर (खर) २, १८६

खलपु (खलपूः) ३, ४२, ४३, खलपुं, ३, १२४, खलपुणा ३, २४, ४३, खलपुणो ३ ४३

खलिअ (स्खलित) २, ७७

खल्लीड (खल्वाट) १, ७४

खसिअं (कसितम्) १, १८१

खसिओ (खचितः) १, १९३

खाओ (ख्यातः) २, ९०

खाइरं (खादिरम्) १, ६७

खाणिआ (खनिः) ३, ५७

खाणू (स्थाणुः) २, ७, ९९

खामिअं (क्षामितम्) ३, १५२, १५३, खामिज्जइ ३, १५३, खामीअइ, खामेइ ३, १५३

खासिअं (कसितम्) १, १८१

खित्तं (क्षिप्तम्) २, १२७

खीणं (क्षीणम्) २, ३

खीरं (क्षीरम्) २, १७

खीरोओ (क्षीरोदः) २, १८२

खीलओ (कीलकः) १, १८१

खु (खलु) २, १९८

खुज्जो (कुब्जः) १, १८१

खुडिओ (खण्डितः) १, ५३

खुड्डओ (क्षुल्लकः) २, १७४

खे (आकाशे) १, १८७, ३, १४२

खेडओ (क्ष्वेटकः, स्फेटकः) २, ६

खेडिओ (स्फेटिकः) २, ६

खेड्डं (खेलम्) २, १७४

खोडओ (क्ष्वोटकः, स्फोटकः) २, ६

[ग]

गई (गतिः) २, १९५ ३, ८५, गईए २, १८४

गउआ (गवय) १, ५४, १५८, ३, ३५

गउओ (गवयः) १, ५४, १५८, २, १७४

गउडो (गौडः) १, १६२, २०२

गउरवं (गौरवम्) १, १६३

गऊरि (गौरी) १, १६३

गओ (गजः) १, १७७

गग्गरं (गद्गदम्) १, २१९

गज्जन्ति (गर्जन्ति) १, १८७, गज्जन्ते ३, १४२

गड्डहो (गर्दभः) २, ३७

गड्डा (गर्त्ता) १, ३५, २, ३५

गड्डो (गर्त्ता) १, ३५, २, ३५

गण्ठी (ग्रन्थिः) १, ३५

गद्दहो (गर्दभः) २, ३७
गन्धउडी (गन्धपुटी) १, ८
गन्धो (गन्धः) १, १७७
गब्भिणो (गर्भितः) १, २०८
गम्, गच्छइ (गच्छति) १, १८७, गच्छं ३, १७१, १७२, गओ १, २०९, गय ३, १४७, गयं १,९७, ३, १५६, अवगयं (अवोपसर्गेण सह) १, १७२, (आङ्-उपसर्गेण सह) आओ १, २६८ आगओ १, २०९, २६८, ३, १६, २३, २९, ३०, ५०, ५२, ५५, ९७, १११, ११८, ११९, १२४, १२६, १३६ (उद्-उपसर्गेण सह) उग्गयं १, १२ (उप-उपसर्गेण सह) उवगयम्मि ३, ५७, (सम्-उपसर्गेण सह) संगच्छम् ३, १७१, संगामेइ ३, १५३
गमिर (गमनशील) २, १४५
गम्भीरअं (गाम्भीर्यम्) २, १०७
गय (गत) १, ९७, ३, १५६
गयणं (गगनम्) २, १६४ गयणे १, ८ गयणयम्मि २, १६४
गया (गदा) १, १७७, १८०
गरिमा (गरिमा) १, ३५
गरिहा (गर्हा) २, १०४
गरुआअइ, गरुआइ (गुरुरिवाचरति) ३, १३८
गरुई (गुर्वी) १, १०७
गरुओ (गुरुकः) १, १०९
गरुवी (गुर्वी) २, ११३
गरुलो (गरुड़ः) १, २०२
गलोई (गुडूची) १, १०७, १२४
गव्विरो (गर्ववान्) २, १५९
गहवइ (गृहपतिः) २, १४४
गहिरं (गभीरम्) १, १०१
गहीरिअं (गाम्भीर्यम्) २, १०७
गहो (ग्रहः) २, ७९
गाई (गौः) १, १५८
गाओ (गौः) १, १५८
गाम (ग्राम) ३, १४२ गामे ३, १३५
गामणि (ग्रामणी) ३, ४२, ४३, गामणिं ३, १२४, गामणिणा ३, २४, ४३, गामणिणो ३, ४३,
गामिल्लिआ (ग्रामेयकाः) २,१६३
गारवं (गौरवम्) १, १६३
गावा (ग्रावन्) ३, ५६
गावाणो (ग्रावन्) ३, ५६
गावी गावीओ (गावः) २, १७४
गिट्ठी (गृष्टिः) १, २६
गिण्ठी (गृष्टिः) १, २६, १२८
गिद्धी (गृद्धिः) १, १२८
गिम्हो (ग्रीष्मः) २, ७४
गिरा (गीः) १, १६
गिरिं (गिरिम्) १, २३, गिरिहे ३, १६, १८, १९, २२, २३, २४, १२४
गिलाइ (ग्लायति) २, १०६
गिलाणं (ग्लानम्) २, १०६
गुज्झं (गुह्यम्) २, २६, १२४
गुञ्छं (गुच्छम्) १, २६
गुडो (गुडः) १, २०७
गुण (गुण) ३, ८७, गुणा १, ११, ३४, ३, ६५, ८१, गुणाइं १, ३४
गुत्तो (गुप्तः) २, ७७, **गुप् गोवइ** (गोपायते) १, २३१, गुत्तो २, ७७
जुगुच्छइ (जुगुप्सते) २, २१
गुप्फं (गुल्फम्) २, ९०
गुभइ (गूहते) १, २३६
गुम्फइ (गुम्फति) १, २३६
गुय्हं (गुह्यम्) २, १२४
गुरु (गुरु) १, १०९, ३, ३८, १२४
गुरुल्लावा (गुरुल्लापाः) १, ८४
गुलो (गुडः) १, २०२
गुहइ (गूहते) १, २३६
गुहा (गुहा) १, ४२
गूढोअर (गूढोदर) १, ६
गेन्दुअं (कन्दुकम्) १, ५७, १८२
गोअम-मा ! (गौतम !) ३, ३८
गोआवरी (गोदावरी) २, १७४
गोट्ठी (गोष्ठी) २, ७७
गोणो (गौः) २, १७४
गोरी (गौरी) ३, ३२, गोरीआ, गोरीओ ३, २८
गोरिहरं, गोरीहरं (गौरीगृहम्) १, ४
गोला (गोदा) २, १७४
गोले (गोदे) २, १९४
ग्गामि (गामी) २, १४
ग्रह् (धातुः), **गेण्हइ** (गृह्णाति) २, २१७, गेण्ह २, १९७, ३,२६, गेण्हीअ ३ १६३, घेत्तूण २,१४६, घेप्पन्ति १, २६१,३, ६५, घेत्तूण २, १४६, गहिअं १, १०१, गेज्झं १,७८, (सम्-उपसर्गेण सह) संगहिआ २, १९८

[घ]

घट्ठा (घृष्ठ) २, १७४, १, १२६
घट्ठो (घृष्ठः) १, १२६
घट्, घडइ (घटति) १, १९५
घडो (घटः) १, १९५
घणो (घण) १, १७२, १८७
घंटा (घण्टा) १, १९५
घयं (घृतम्) १, १२६
घरो (गृहम्) २, १४४

घरसामी (गृहस्वामी) २, १४४
घायणो (गायनः) २, १७४
घिणा (घृणा) १, १२८
घुसिणं (घुसृणम्) १, १२८
घोसइ (घोषयति) १, २६०

[च]

च (च) १, २४, ३, ७०, १४२
चइत्तं (चैत्यम्) १, १५१, २, १३
चइत्तो (चैत्यः) १, १५२
चउ (चतुर्) १, १७१, चऊओ, चउओ, चऊहि, चउहि, चऊसु, चउसु, ३, १७, चउण्ह ३, १२३
चउगुणो (चतुर्गुणः) १, १७१
चउट्ठो (चतुर्थः) २, ३३
चउत्थो (चतुर्थः) १, १७१, २, ३३, चउत्थी (चतुर्थी) १, १७१
चउद्दसी (चतुर्दशी) १, १७१
चउद्दह (चतुर्दश) १, १७१, २१९
चउरो (चत्वारः) ३, १२२
चउवीसं (चतुर्विंशतिः) ३, १३७
चउव्वारो (चतुर्वारः) १, १७१
चक्कं (चक्रम्) २, ७९
चक्काओ (चक्रवाकः) १, ८
चक्खू (चक्षुः) १, ३३, **चक्खूइं** १, ३३
चच्चरं (चत्वरम्) २, १२
चडु (चाटु) १, ६७
चत्तारो, चत्तारि (चत्वारः) ३, १२२
चन्दओ (चन्द्रः) २, १६४
चन्दणं (चन्दनम्) २, १८२
चन्दिमा (चन्द्रिका) १, १८५
चन्दो (चन्द्रः) १, ३०, २, ८९, १६५
चन्द्रो (चन्द्रः) २, ८०
चप्फलया ! (हे निष्फल !) ३, ३८
चमरो (चामरः) १, ६७
चम्मं (चर्म) १, ३२
चरण (चरण) १, २५४
चलणो (चरणः) १,२५४, चलणे २, १८०
चविडा (चपेटा) १, १४६, १९८
चविला (चपेटा) १, १९८
चवेडा (चपेटा) १. १४६
चाउण्डा (चामुण्डा) १, १७८
चाउरन्तं (चातुरन्तम्) १, ४४
चाडु (चाटु) १, ६७
चामरो (चामरः) १, ६७
चिअ (एव) २, ९९, १८४, १८७
चिइच्छइ (चिकित्सति) २, २१
चिक्खल्लो (कर्दमः) ३, १४२
चिञ्चा (चिञ्चा) २, १२९
चिट्ठन्ति (तिष्ठन्ति) ३, ५०
चिण्हं (चिह्नम्) २, ५०
चिन्तिअं (चिन्तितम्) २, १९०
चिन्ता (चिन्ता) १, ८५
चिन्धं (चिह्नम्) २, ५०
चिरस्स (चिरस्य) ३, १३४
चिलाओ (किरातः) १, १८३, २५४
चिहुरो (चिकुरः) १, १८६
ची-वन्दणं (चैत्यवन्दनम्) १, १५१
चुअइ (श्चोतते) २, ७७
चुच्छं (तुच्छम्) १, २०४
चुण्णं (चूर्णम्) २, ३४
चुण्णो (चूर्णः) १, ८४
चेअ (एव) १, ७, २, ९९, १८४, २०९
चेत्तो (चैत्रः) १, १५२
चेइअं (चैत्यम्) १, १५१, २, १०७
चोग्गुणो (चतुर्गुणः) १, १७१
चोत्थो (चतुर्थः) १, १७१
चोत्थी (चतुर्थी) १, १७१
चोद्दसी (चतुर्दशी) १, १७१
चोद्दह (चतुर्दश) १, १७१
चोरिअं (चौर्यम्) १, ३५, २, १०७
चोरिआ (चौर्यम्) १, ३५
चोरो (चोरः) १, १७७, चोरेण ३, १३६, चोरस्स ३, १३४
चोव्वारो (चतुर्वारः) १. १७७
च्च (एव) २, १८४, **च्चिअ** (एव) १, ८, २, ९९, १८४, १९५, १९७, ३, ८५, १८०
च्चेअ (एव) २, ९९, १८४

[छ]

छइअं (स्थगितम्) २, १७
छउमं (छद्म) २, ११२
छट्ठो (षष्ठः) १, २६५, २, ७७
छट्ठी (षष्ठी) १, २६५
छड्डइ (मुञ्चति) २, ३६
छणो (क्षणः) २, २०
छण्ह (षण्णाम्) ३, १२३
छत्तवण्णो (सप्तपर्णः) १, ४९
छत्तिवण्णो (सप्तपर्णः) १, ४९, २६५
छद्दी (छर्दिः) २, ३६
छन्दं (छन्दम्) १, ३३
छन्दो (छन्दः) १, ३३
छप्पओ (षट्पदः) १, २६५, २, ७७
छमा (क्षमा) २, १८, १०१
छमी (शमी) १, २६५
छम्मं (छद्म) २, ११२
छम्मुहो (षण्मुखः) १, २५, २६५
छयं (क्षतम्) २, १७
छाइल्लो (छायावान्) २, १५९

छाया (छाया) १, २४९, २,२०३, ३, ३४
छारो (क्षारः) २, १७
छाली (छागः) १, १९१
छालो (छागः) १, १९१
छावो (शावः) १, २६२
छाही (छाया) १, २४९, ३, ७, ३४
छिक्को (छुप्तः) २, १३८
छिछि (धिक् धिक्) २, १७४
छिञ्छई (पुंश्चली) २, १७४
छित्तं (क्षिप्तम्) २ २०४
छेच्छं (छिद्) ३, १७१, अच्छिन्न २, १९८
छिरा (शिरा) १, २६६
छिहा (स्पृहा) १, १२८, २, २३
छीअं (क्षुतम्) १, ११२, २, १७
छीणं (क्षीणम्) २, ३
छीरं (क्षीरम्) २, १७
छुच्छं (तुच्छम्) १, २०४
छुण्णो (क्षुण्णः) २, १७
छुत्तो (छुप्तः) २, १३८
छुरो (क्षुरः) २, १७
छुहा (क्षुधा) १, १७, २६५, २, ९७
छूढो (क्षिप्तः) २, ९२, छूढं २, १९, १२७
छेत्तं (क्षेत्रम्) २, १७

[ज]

जइ (यदि) १, ४०, २, २०४, ३, १७९, १८०
जइआ (यदा) ३, ६५
जइमा (यदि इमा) १, ४०
जइहं (यद्यहम्) १, ४०
जई (यतिः) १, १७७
जउँणा (यमुना) १, १७८
°णायडं, °णयडं (यमुनातटम्) १, ४
जओ (यतः) १, २०९
जक्खा (यक्षाः) २, ८९, ९०
जज्जो (जय्यः) २, ८९, २४
जट्टो (जर्तः) २, ३०
जडालो (जटायुक्तः) २, १५९
जडिलो (जटिलः) १, १९४
जढरं (जठरम्) १, २५४
जढलं (जठरम्) १, २५४
जणो (जनः) ३, १५३, जणा २, ११४
जणब्भहिआ (जनाभ्यधिकाः) २, २०४
जण्हू (जह्नुः) २, ७५
जत्तो (यतः) २, १६०
जत्थ (यत्र) २, १६१
जदो (यतः) २, १६०
जमो (यमः) १, २४५
जमलं (यमलम्) २, १७३
जम्पिअं (जल्पितम्) ३, ९४
जम्पिरो (जल्पनशीलः) २, १४५
जम्मणं (जन्म) २, २७४
जम्मो (जन्म) १, ११, ३२, २, ६१
जम्हा (यस्मात्) ३, ६६
जर (जरा) १, १०३
जल (जल) ३, १६, जलं १, २३, जलेण १, १५५
जलचरो (जलचरः) १, १७७
जलयरो (जलयरः) १, १७७
जलहरो (जलचरः) २, १९८
जवणिज्जं, जवणीअं (यापनीयम्) १, २४८
जसो (यशस्) १, ११, ३२, २४५
जह (यथा) १, ६७, २, २०४
जह (यत्र) २, १६१
जहणं (जघनम्) १, १८७
जहा (यथा) १, ८७
जहि (यत्र) २, १६१
जहिट्ठिलो (युधिष्ठिरः) १, ९६, १०७
जहुट्ठिलो (युधिष्ठिरः) १, ९६, १०७, २५४
जा (यावत्) १, २७२, ३, ३३
जाअन्ति (जायन्ते) ३, ६५
जाइ (जाति) ३, ३८
जाइ (याति) १, २४५
जाणं (ज्ञानम्) २, ८३
जामइल्लो (यामवान्) २, १५९
जामाउओ (जामातृकः) १, १३१
जामाउणो (जामातुः) ३, ४४
जामाया (जामाता) ३, ४४, ४७, ४८
जारिसो (यादृशः) १, १४२
जारो (जारः) १, १७७
जाला (यदा) १, २०९; ३, ६५
जाव (यावत्) १, ११, २७१
जाहि (यत्र) ३, ६०
जाहे (यदा) ३, ६५
जि, जयइ (जयति) ३, १५८, जिअ, ३, ३८, निज्जिअ २, १६४
जिणधम्मो (जनधर्मः) १, १८७
जिणवरा (जिनवराः) ३, १३७
जिण्णो (जोर्णे) १, १०२
जिण्हू (जिष्णुः) २, ७५
जित्तिअं (यावत्) २, १५६
जिब्भा (जिह्वा) २, ५७
जिम् (धातुः) जेम ३, ३६
जीअं (जीवितम्) १, २७१, २, २०४
जीआ (ज्या) २, ११५

जीव् (धातुः), जीअइ १, १०१, जिअउ १, १०१
जीविअं (जीवितम्) १, २७१
जीहा (जिह्वा) १, ९२, २, ५७
जुई (द्युतिः) २, २४
जुगुच्छइ (जुगुप्सति) २, २१
जुग्गं (युग्मम्) २, ६२, ७८
जुण्ण (जीर्ण) १, १०२
जुत्त (युक्तम्) १, ४२
जुम्मं (युग्मम्) २, ६२
जुम्ह (युष्मद्) १, २४६
जुवइअणो (युवतिजनः) १, ४
जुवा (युवा) ३, ५६
जुवाणजणो (युवजनः) ३, ५६
जुवाणो (युवा) ३, ५६
जूरिहिइ (खेदिष्यति) २, २०४ जूरन्तीए २, १९३
जूरणे (खेदे) २, १९३
जे (पादपूरणे) २, २१७
जेट्ठयरो (ज्येष्ठतरः) २, १७२
जेण (येन) १, ३६; २, १८३; ३, ६९; जिणा ३, ६९, जस्स ३, ६३, जास ३, ६३, जिस्सा जीसे, जीअ, जीआ, जीइ, जीए ३; ६४, जाओ, जम्हा ३, ६६, जहिं ३, ६०, जाहिं, जीए, जाए ३, ६० जे २, २१७; ३, ५८, १४७; जीउ, जाउ ३, ३३, जाइँ ३, २६, जाण ३, ३३, ६१, १३४, १४१, जेसिं ३, ६१
जेत्तिअं (यावत्) २, १५७
जेत्तिलं (यावत्) २, १५७
जेद्दहं (यावत्) २, १५७
जोओ (द्योतः) २, २४
जोण्हा (ज्योत्स्ना) २, ७५
जोण्हालो (ज्योत्स्नावान्) २, १५९
जोव्वणं (यौवनम्) १, १५९; २, ९८
जं (यत्) १, २४, ४२, २, १८४, २०६; ३, ३३, १४६, जंजं ३, १४३
ज्ञा (धातुः) जाणामि, जाणमि (जानामि) ३, १५४, णच्चा २, १५, जाणावेइ ३, १४९ समणुजाणामि, समणुजाणेज्जा ३, ११७, विण्णायं २, ११९

[झ]

झओ (ध्वजः) २, २७
झडिलो (जटिलः) १, १९४
झत्ति (झटिति) १, ४२
झसुरं (ताम्बूलम्) २, १७४
झायं (ध्यातम्) ३, १५६
झाणं (ध्यानम्) २, २६
झिज्जइ (क्षीयते) २, ३
झीणं (क्षीणम्) २, ३
झुणी (ध्वनिः) १, ५२

[ट]

टक्को (टक्कः) १, १९५
टगरो (तगरः) १, २०५
टसरो (त्रसरः) १, २०५
टूवरो (तूवरः) १, २०५

[ठ]

ठड्ढो (स्तब्धः) २, ३९
ठम्भो (स्तम्भः) २, ९
ठियं (स्थितम्) ३, १०१
ठीणं (स्त्यानम्) १, ७४; २, ३३

[ड]

डक्को (दष्टः) २, २, ८९
डण्डो (दण्डः) १, २१७
डट्ठो (दष्टः) १, २१७
डड्ढो (दग्धः) १, २१७
डब्भो (दर्भः) १, २१७
डम्भो (दम्भः) १, २१७
डरो (दरः) १, २१७
डसइ (दशति) १, २१८
डसणं (दशनम्) १, २१७
डहइ (दहति) १, २१८
डाहो (दाहः) १, २१७
डिम्भो (डिम्भः) १, २०२
डोला (दोला) १, २१७
डोहलो (दोहदः) १, २१७

[ण]

ण (न) २, १८०, १९८
णइ (अवधारणे) २, १८४
णई (नदी) १, २२९
णओ (नतः) २, १८०
णङ्गलं (लाङ्गलम्) १, २५६
णङ्गूलं (लाङ्गूलम्) १, २५६
णडं (नडम्) १, २०२
णडालं (ललाटम्) १, ४७, २५७, २, १२३
णं (एनम्) ३, ७०, ७७
णं (माम्) ३, १०७
णरो (नरः) १, २२९; ३, ३
णलं (नलम्) १, २०२
णलाडं (ललाटम्) २, १२३
णवर (केवलम्) २, १८७, १८८, १९८
णवरं (केवलम्) २, १९८, २०४
णवरि (आनन्तर्ये) २, १८८
णवि (वैपरीत्ये) २, १७८
णाइं (नञर्थे) २, १९०
णाए (अनया) ३, ७०
णाडी (नाडी) १, २०२
णाणं (ज्ञानम्) २, ४२, ८३
णामुक्कसिअं (कार्यम्) २, १७४
णाली (नाडी) १, २०२
णाहलो (लाहलः) १, २५६
णाहि (ताभिः) ३, ७०

णिअम्ब (नितम्ब) १, ४
णिडालं (ललाटम्) १, ४७, २५७
णिल्लज्ज (निर्लज्ज) २, २०२
णिव्वडन्ति (पृथग्भवन्ति, स्पष्टं भवन्ति) २, १८७
णीसहेहिं (निःसहैः) २, १७९
णुमज्जइ (निमज्जति) १, ९४
णुमण्णो (निमग्नः) १, ९४, १७४
णे (एतान्, एनान्, अमून्) ३, ७७, ८७, १०७, १०८, १०९, ११०, ११४
णेअं (ज्ञेयम्) २, १९३
णेड्डं (नीडम्) २, ९९
णेण (अनेन, अमुना) ३, ७०,७७
णेलच्छो (पण्डकः) २, १७४
णेहिं (तैः) ३, ७०, ७७
णो (अस्माकम्) ३, ११४
ण्हाविओ (नापितः) १, २३०

[त]

तं (तद्) १, ७, २४, ४१, २, ९९, १७६, १८४, १९८; ३, ३३, ८६ ; तेण १, ३३ ; २, १८३, १८६, २०४ ; ३, ६९, १०५, १६०, तेणं ३, १३७, तिणा ३, ६९, तीए २, १९३, तस्स ३, ६३, ८१, १८६, तास ताए ३, ६३, तिस्सा ३, ६४, १३४, तीसे, तीअ, तीआ, तीइ, तीए ३, ६४, तम्हा ३, ६६, ६७, ताओ ३, ६६, तो ३, ६७, तीउ, ताउ, ३, ३३, तं, तम्मि ३, ११, तंहि, तीए, ताए, ताहिं ३, ६०, ते १, २६९ ; २, १८४ ; ३, ५८, ६५, ८६, १४७, १४८, ताअ ३, ८६, ताण ३, ३३, ६१, ८१, तेसिं ३, ६१, ६२, ८१, १३४, तास ३, ६२, तेसु ३, १३५, तीसु ३, ११८
तइअं (तृतीयम्) १, १०१
तइआ (तदा) ३, ६५
तओ (ततः) १, २०९
तंसं (त्र्यस्रम्) १, २६, २, ९२
तक्करो (तस्करः) २, ४
तक्खा (तक्षा) ३, ५६
तक्खाणो (तक्षा) ३, ५६
तग्गुणा (तद्गुणाः) १, ११
तच्चं (तथ्यम्) २, २१
तट्ठं (त्रस्तम्) २, १३६
तडी (तटी) १, २०२
तण (तृण) ३, ३७, तणं १, १२६; ३, २५
तणुवी (तन्वी) २, ११३
तत्तिल्ले (तत्परे) २, २०३
तत्तो (ततः) २, १६०
तत्थ (तत्र) २, १६१
तत्थं (त्रस्तम्) २, १३६
तदो (ततः) २, १६०
तद्दिअस० (तद्दिवस०) २, १७४
तन्तु (तन्तु) १, २३८
तप्, तवइ (तपति) १, २३१, तविओ, तत्तो २, १०५
तं (तद्=वाक्योपन्यासे) २,१७६
तमो (तमः) १, ११, ३२
तम्बं (ताम्रम्) १, ८४; २, ५६
तम्बिर (ताम्र) २, ५६
तम्बो (ताम्रः) २, ४५
तम्बोलं (ताम्बूलम्) १, १२४
तयाणिं (तदानीम्) १, १०१
तर् (धातुः) **तरिउं** २, १९८, अवयरइ १, १७२
तरणी (तरणिः) १, ३१
तरल (तरल) १, ७
तरुं (तरुम्) ३, १८, १९, २२, २३, २४, तरू १, १७७
तलवेण्टं (तालवृन्तम्) १, ६७
तलवोण्टं (तालवृन्तम्) १, ६७
तलायं (तडागम्) १, २०३
तवो (तपः) २, ४६
तह (तत्र) २, १६१
तहा (तथा) १, ६७
तहि (तत्र) २, १६१
ता (तदा) १, २७१
ताओ (तातः) १, २०९
तामरस (तामरस) १, ६
तारिसो (तादृशः) १, १४२
तालवेण्टं (तालवृन्तम्) १, ६७, २, ३१
तालवोण्टं (तालवृन्तम्) १, ६७
ताला (तदा) ३, ६५
ताव (तावत्) १, ११, २७१; २, १९६
ताहे (तदा) ३, ६५
ति (इति) १, ४२
तिअडा (त्रिजटा) ३, ७०
तिअस (त्रिदश) २, १७६
तिअसीसो (त्रिदशेशः) १, १०
तिक्खं (तीक्ष्णम्) २, ८२
तिङ्गिच्छि (पौष्पं रजः) २, १७४
तिग्गं (तिग्मम्) २, ६२
तिण्णि (त्रीणि) ३, १२१, तिण्ह ३, १२३, तिण्हं ३, ११८, १२३, तिसु ३, १३५, तीहिं ३, ११८, तीहिंतो ३, ११८
तिण्हं (तीक्ष्णम्) २, ७५, ८२
तित्तिअं (तावत्) २, १५६
तित्तिरो (तित्तिरः) १, ९०
तित्थगरो (तीर्थंकरः) १, १७७
तित्थं (तीर्थम्) १, ८४, १०४, २, ७२, ९०

तित्थयरो (तीर्थंकरः) १, १७७, १८०
तिप्पं (तृप्तम्) १, १२८
तिम्मं (तिग्मम्) २, ६२
तिरिश्रा (तिर्यक्) २, १४३
तिरिच्छि (तिर्यक्) २, १४३
तीसा (त्रिंशत्) १, २८, ९२
तु (युष्मद्) ३, ९९, १००; ३, ९०, १०३, तुमं ३, १४६, १४८, १६४, ते १, ३३, ३, ८०, १४३, तुह, २, १८०, ३, ८०; तुहं २, १९३, तुमे २, २०४, तुम्हे ३, १४८, तुम्ह १, २४६, २, १४७, तुव ३, ९९
तुच्छं (तुच्छम्) १, २०४
तुण्हिओ (तूष्णीकः) २, ९९
तुण्हिक्को (तूष्णीकः) २, ९९
तुप्पं (घृतम्) १, २००
तुम्हारिसो (युष्मादृशः) १, १४२, २४६
तुम्हेच्चयं (यौष्माकम्) २, १४९
तूणं (तूणम्) १, १२५
तूरं (तूर्यम्) २, ६३
तूहं (तीर्थम्) १, १०४, २, ७२
तेआलीसा(त्रिचत्वारिंशत्)२,१७४
तेश्रो (तेजः) १, ३२
तेत्तिश्रं (तावत्) २, १५७, तेत्तिलं २, १५७
तेत्तीसा (त्रयस्त्रिंशत्) १, १६५
तेद्दहं (तावत्) २, १५७
तेरह (त्रयोदश) १, १६५, २६२
तेलोक्कं (त्रैलोक्यम्) १, १४८, २, ९७
तेल्ल (तैल) १, २००, तेल्लं २, ९८, १५५
तेल्लोक्कं (त्रैलोक्यम्) २, ९७
तेवण्णा (त्रिपञ्चाशत्) २, १७४
तेवीसा (त्रयोविंशतिः) १, १६५
तो (तदा, तस्मात्) ३, ७०, १८०
तोणं (तूणम्) १, १२५
तोणीरं (तूणीरम्) १, १२४
तोण्डं (तुण्डम्) १, १६६
तोसविश्रं (तोषितम्) ३, १५०
तोसिश्रं (तोषितम्) ३, १५०
त्ति (इति) १, ४२, ९१; २, १९३
त्वर् (धातुः) तुवरामो, तुवरामु, तुवराम ३, १४४, तुवरए, तुवरसे ३, १४५, तुवरामो,तुवरहं, तुवरन्तु ३, १७६, तुवरेज्ज, तुवरेज्जा ३, १७८

[थ]

थण (स्तन) १, ८४, थणय, ३, १३०
थणहरो (स्तनभरः) १, १८७
थम्भो (स्तम्भः) २, ८, ९
थवो (स्तवः) २, ४६
थाणुणो (स्थाणोः) २, ७
थिण्णं (स्त्यानम्) १, ७४; २,९९
थी (स्त्री) २, १३०
थीणं (स्त्यानम्) १, ७४, २, ३३, ९९
थुई (स्तुतिः) २, ४५
थुल्लो (स्थूलः) २, ९९
थुवओ (स्तावकः) १, ७५
थू (कुत्सायां निपातः) २, २००
थूणो (स्तेनः) १, १४७
थूणा (स्थूणा) १, १२५
थूलभद्दो (स्थूलभद्रः) १, २५५
थेणो (स्तेनः) १, १४७
थेरिश्रं (स्थैर्यम्) २, १०७
थेरो (स्थविरः) १, १६६; २, ८९
थेवं (स्तोकम्) २, १२५
थोश्रं (स्तोकम्) २, ४५, १२५
थोक्कं (स्तोकम्) २, १२५
थोणा (स्थूणा) १, १२५
थोत्तं (स्तोत्रम्) २, ४५
थोरो (स्थूलः) १, १२४, २५५; २, ९९
थोवं (स्तोकम्) २, १२५

[द]

दइच्चो (दैत्यः) १, १५१
दइन्नं (दैन्यम्) १, १५१
दइवज्जो (दैवज्ञः) २, ८३
दइवण्णू (दैवज्ञः) २, ८३
दइवं (दैवम्) १, १५३; २, ९९
दइवयं (दैवतम्) १, १५१
दइव्वं (दैवम्) १, १५३, २, ९९
दंसणं (दर्शनम्) १, २६, २,१०५
दक्खिणो (दक्षिणः) १, ४५; २, ७२
दच्छो (दक्षः) २, १७
दट्ठो (दष्टः) १, २१७
दड्ढो (दग्धः) १, २१७, २, ४०
दणुअवहो (दनुजवधः) १, २६७
दणुइन्द (दनुजेन्द्र) १, ६
दणुवहो (दनुजवधः) १, २६७
दण्ड (दण्ड) १, ७ दण्डो १, २१७
दप्पुल्लो (दर्पवान्) २, १५९
दब्भो (दर्भः) १, २१७
दमदमाश्रइ, दमदमाइ (दम-दम-शब्दं करोति) ३, १३८
दम्भो (दम्भः) १, २१७
दयालू (दयालुः) १, १७७, १८०; २, १५९
दर (दर) १, २१७, २, २१५, दरो १, २१७
दरिअ (दृप्त) २, ९६, दरिश्रो १, १४४

दरिसणं (दर्शनम्) २, १०५
दर्श् (दृश् धातुः) दच्छं ३, १७१ दीसइ ३, १६१, दिट्ठ १, ८४; दिट्ठो, ३, ९०, दिट्ठा ३, १०५, दिट्ठ १, ४२, १४८, दट्ठुं २, १४६, दरिसइ ३, १४९
दलन्ति (दलन्ति) २,२०४,दलिओ १, २१७
दलिद्दाइ (दरिद्राति) १, २५४
दलिद्दो (दरिद्रः) १, २५४
दवग्गी (दवाग्निः) १, ६७
दवो (दवः) १, १७७
दस (दश) १, २१९,२६०, २६२,
दसण्हं (दशानाम्) ३, १२३
दसण (दशन) १, १४६, दसणं १, २१७
दसबलो (दशबलः) १, २६२
दसमुहो (दशमुखः) १, २६२
दसरहो (दशरथः) १, २६२
दसारो (दशार्हः) २, ८५
दह् (धातुः) दड्ढो २,४० विअड्ढो (विदग्धः) २, ४०
दह (दश) १, २६२
दहबलो (दशबलः) १, २६२
दहमुहो (दशमुखः) १, २६२
दहरहो (दशरथः) १, २६२
दहि (दधि) ३, १६, १९, २०, २२, २३, २४, २५, २६, ३७, १२४, १२८
दहि-ईसरो (दधीश्वरः) १, ५
दहीसरो (दधीश्वरः) १, ५
दहो (ह्रदः) २, ८०, १२०
दा, देमि (ददामि) २, २०६ देइ २, २०६, ३, १३१ देहि देसु ३, १७४ दाहं,दाहिमि ३, १७० दत्तो १, ४६ दिण्णं १, ४६, २, ४३
दाघो (दाहः) १, २६४
दाडिमं (दाडिमम्) १, २०२
दाढा (दंष्ट्रा) २, १३९
दाण (दान) ३, १६
दाणवो (दानवः) १, १७७
दाणि (इदानीम्) १, २९
दाणिं (इदानीम्) १, २९,
दामं (दाम) १, ३२
दाय, दायार (दातृ) ३, ३९
दारं (द्वारम्) १, ७९, २, ७९, ११२
दालिद्दं (दारिद्र्यम्) १, २५४
दालिमं (दाडिमम्) १, २०२
दावग्गी (दावाग्निः) १, ६७
दासो (दासः) २, २०६
दाहिणो (दक्षिणः) १, ४५, २, ७२
दाहो (दाहः) १, २१७
दि (त्वया) ३, ९४
दिअ (द्विज) ३, १६, दिओ १, ९४, २, ७९
दिअर (देवर) २, २०५, दिअरो १, १४६
दिट्ठी (दृष्टिः) १,१२८, २, ३४
दिट्ठिआ (दिष्ट्या) २, १०४
दिरओ (द्विरदः) १, ९४
दिवसो (दिवसः) १, २६३, दिवसाणं ३, १२३
दिवहो (दिवसः) १, २६३
दिसा (दिश्) १, १९
दिहा (द्विधा) १, ९७
दिही (धृतिः) १, २०९, २, १३१
दीप्, दिप्पइ दिप्पइ (दीप्यते) १, २२३ पलीवेइ १, २२१, पलिविअं १, १०१, पलित्तं १, २२१
दीहरं (दीर्घम्) २, १७१
दीहाउसो (दीर्घायुः) १, २०
दीहाऊ (दीर्घायुः) १, २०
दीहो (दीर्घः) २, ९१, दीहं २, १७१
दुअल्लं (दूकूलम्) १. ११९
दुआई (द्विजातिः) १, ९४, २, ७९
दुआरं (द्वारम्) १, ७९
दुइओ (द्वतीयः) १, ९४, २०९, दुइअं १, १०१
दुउणो (द्विगुणः) १, ९४
दुऊलं (दूकूलम्) १, ११९
दुक्कडं (दुष्कृतम्) १, २०६
दुक्करं (दुष्करम्) २, ४
दुक्करयारय ! (दुष्ककारक!) २, २०४
दुक्खं (दुःखम्) २, ७२, ७७ दुक्खे, २, ७२, दुक्खा दुक्खाइं १, ३३
दुक्खिओ (दुःखितः) १, १३, दुक्खिआ २, ७२
दुगुल्लं (दुकूलम्) १, ११९
दुग्गाएवी (दुर्गादेवी) १, २७०
दुग्गावी (दुर्गादेवी) १, २७०
दुण्णि (द्वे) ३, १२०
दुमत्तो (द्विमात्रः) १, ९४
दुरवगाहं (दुरवगाहम्) १, १४
दुरुत्तरं (दुरुत्तरम्) १, १४
दुरेहो (द्विरेफः) १, ९४
दुवयण (द्विवचनम्) १, ९४
दुवारं (द्वारम्) २, ११२
दुवारिओ (दौवारिकः) १, १६०
दुवालसंगे (द्वादशाङ्गम्) १, २५४
दुविहो (द्विविधः) १, ९४
दुवे (द्वे) ३, १२०, १३०
दुसहो (दुःसहः) १, ११५
दुस्सहो (दुःसहः) १, १३, ११५
दुद्धं (दुग्धम्) २, ७७,८९,३, २९

दुहवो (दुर्भगः) १, ११५, १९२
दुहं (दुःखम्) २, ७२
दुहा (द्विधा) १, ९७
दुहाइअं (द्विधाकृतम्) १, ९७, १२६
दुहिअए (दुःखितके) २, १६४
दुहिआ (दुहिता) २, १२६, ३ ३५, दुहिआहि दुहिआसु ३, ३५
दूसेइ (दूषयति) ३, १५३
दूसहो (दुःसहः) १, १३, ११५
दूसासणो (दुःशासनः) १, ४३
दूहवो (दुर्भगः) १, ११५, १९२
दूहिओ (दुःखितः) १, १३
दे (संमुखीकरणे निपातः) २, १९६
दे (त्वया) ३, ९४
देअरो (देवरः) १, १८०
देउलं (देवकुलम्) १, २७१
देरं (द्वारम्) १, ७९; २, ११२
देव (देव) १, ७९; ३, ३८, देवो १, १७७; ३, ३८, देवस्स ३, १३१, १३२, देवाय ३, १३२, देवाण ३, १३१, १३२
देवउलं (देवकुलम्) १, २७१
देवत्थुई (देवस्तुतिः) २, ९७
देवथुई (देव-स्तुतिः) २, ९७
देवदत्तो (देवदत्तः) १, ४६
देवं (देवम्) ३, ११, देवम्मि ३, ११ देवाइं, देवा १, ३४
देवंनाग० (देवनाग०) १, २६
देवरो (देवरः) १, १४६
देविन्दो (देवेन्द्रः) ३, १६२
देव्वं (दैवम्) १, १५३
देसित्ता (देशित्वा) १, ८८
दो (द्वि) ३, ११९, १२० दोण्णि ३, ३८, १२०, १३०, १४२, दोण्हं ३, ११९, १२३, दोण्ह ३, १२३ दोसुन्तो ३, १३० दोसु ३, ११९, १३०, दोहिंतो ३, ११९, १३०, दोहि ३, ११९, दोहिं ३, १३०
दोला (दोला) १, २१७
दोवयणं (द्विवचनम्) १, ९४
दोहलो (दोहदः) २, २१७, २२१
दोहा (द्विधा) १, ९७
द्रहो (ह्रदः) २, ८०, द्रहम्मि २, ८०

[ध]

धओ (ध्वजः) २, २७
धट्ठज्जुणो (धृष्टद्युम्नः) २, ९४
धट्ठो (धृष्टः) १, १३०
धणंजओ (धनञ्जयः) १, १७७, २, १८५
धणं (धनम्) ३, ५०, ५३, ५५, ५६, ६३, ७९, ८६, ९९, १००, ११३, ११४, ११८, ११९, १२४, धणस्स ३, १३४
धणमणो (धनमान्) २, १५९
धणवन्तो (धनवान्) २, १५९
धणी (धनी) २, १५९
धणुहं (धनुः) १, २२
धणू (धनुः) १, २२
धत्ती (धात्री) २, ८१
धत्थो (ध्वस्तः) २, ७९
धन्ना (धन्याः) २, १८४, ३, ८६
धम्मिल्लं (धम्मिल्लम्) १, ८५
धम्मेल्लं (धम्मिल्लम्) १, ८५
धरिओ (धृतः) १, ३६
धरणीहर (धरणीहर) २, १६४
धा (धातुः) **निहित्तो, निहिओ** २, ९९, सद्दहिअं १, १२
धाई (धात्री) २, ८१
धारा (धारा) १, १४५
धारी (धात्री) २, ८१
धाह (धिक्) २, १९२
धिई (धृतिः) १, १२८; २, १३१
धिज्जं (धैर्यम्) २, ६४
धिट्ठो (धृष्टः) १, १३०
धिरत्थु (धिगस्तु) २, १७४
धीरं (धैर्यम्) १, १५५; २, ६४
धीरिअं (धैर्यम्) २, १०७
धुत्तिमा (धूर्तत्वम्) १, ३५
धुत्तो (धूर्तः) १, १७७; २, ३० धुत्ता २, २०४
धुरा (धूः) १, १६
धू (धातुः) **धुवसि** (धुनासि) २, २१६
धूआ (दुहिता) २, १२६; ३, ७३
धूमवडलो (धूमपटलः) २, १९८
धेणु (धेनु) ३, १६, १८, १९, २०, २१, २३, २४, २७, २९, १२४

[न]

न (न) १, ६, ४२; २, १८०, १९३, १९८, १९९, २०३, २०४, २०५, २०६, २१७; ३, १०५, १३५, १४१, १४२, १६०, १७७, १८०;
नइ (नदी) ३, ४२; नई (नदी) १, २२९, नइं (नदीम्) ३, ३६
नइगामो, नइग्गामो (नदीग्रामः) २, ९७
नइसोत्तं, नईसोत्तं (नदीस्रोतः) १, ४
न उणा न उण, न उणाइ, न उणो (न पुनः) १, ६५
नओ (नगः) १, १७७
नक्कंचरो (नक्तंचरः) १, १७७
नक्खा (नखानि) २, ९०, ९९

नग्गो (नग्नः) २, ७८, ८९
नज्जइ (नह्यते) २, २६
नडो (नटः) १, १९५
नणन्दा (ननान्दृ) ३, ३५
नत्तिओ (नप्ता) १, १३७
नभं (नभः) १, १८७
नम् (धातुः) **नमिमो** (भाराक्रान्ताः नमामः) १,१८३, नवेज्ज ३,१६०, **नओ** २, १८०, नविअं, नयं ३, १५६, उन्नम ३, १०५, उन्नयं १, १२, उन्नामिअ ३, ७०, पणवह २, १९५
नमिर (नमनशील) २, १४५
नमो (नमः) ३, ४६, १३१
नमोक्कारो (नमस्कारः) १, ६२; २, ४
नम्मो (नर्म) १, ३२
नयणं (नयनम्) १, १७७, १८०, २२८, **नयणा** १, ३३; ३, १३०, **नयणाइं** १, ३३
नयरं (नगरम्) १, १७७, १८०, नयरे ३, १३५
नरो (नरः) १, २२९
नराओ (नाराचः) १, ६७
नरिन्दो (नरेन्द्रः) १, ८४
नर्त् (धातुः) नच्चाविआइं १,३३
नवो (नवः) २, १६५
नवण्हं (नवानाम्) ३, १२३
नवल्लो (नवः) २, १६५
नश् (धातुः) पणट्ठ, १, १८७
नह (नख) १, ६, ७, नहा २, ९०, ९९
नहं (नभः) १, ३२, १८७
नहयले (नभस्तले) २, २०३
नाओ (न्यायः) १, २२९
नाणं (ज्ञानम्) २, १०४
नाम (नाम) २, २१७
नारइओ (नारकिकः) १, ७९
नाराओ (नाराचः) १, ६७
नावा (नौ) १, १६४
नाविओ (नापितः) १, २३०
नाहो (नाथः) १, १८७
निएइ (पश्यति) ३, ५६
निउअं (निवृतम्) १, १३१
निउरं (नूपुरम्) १, १२३
निक्कओ (निष्क्रयः) २, ४
निक्कम्पं (निष्कम्पम्) २, ४
निक्खं (निष्कम्) २, ४
निग्घिणया! (निर्घृणक!) ३, ३८
निच्चल (निश्चल) २, २११, निच्चलो २, २१, ७७
निज्झरो (निर्झरः) १, ९८; २, ९०
निट्ठुरो (निष्ठुरः) १, २५४; २, ७७; ३, १४६
निट्ठुलो (निष्ठुरः) १, २५४
निण्णओ (निर्णयः) १, ९३
निण्णं (निम्नम्) २, ४२
निद्धणो (निर्धनः) २, ९०
निद्धं (स्निग्धम्) २, १०९
निनओ (नि-नतः) १, १८०
निप्पहो (निष्प्रभः) २, ५३
निप्पिहो (निस्पृहः) २, २३
निप्पुंसणं (निस्पर्शनम्) २, ५३
निप्फन्दा (निष्पन्दा) २, २११
निप्फावो (निष्पावः) २, ५३
निप्फेसो (निष्पेषः) २, ५३
निब्भरो (निर्भरः) २, ९०
निम्बो (निम्बः) १, २३०
निम्मलं (निर्मलम्) १, ३८
निम्मोओ (निर्मोकः) २, १८२
निरन्तरं (निरन्तरम्) १, १४
निरवसेसं (निरवशेषम्) १, १४
निरूविअं (निरूपितम्) २, ४०
°निलयाए (°निलयायाः) १, ४२
निल्लज्ज (निर्लज्ज) २, १९७; निल्लज्जो २, २००
निल्लज्जिमा (निर्लज्जत्वम्) १, ३५
निवत्तओ (निवर्तकः) २, ३०
निवत्तणं (निवर्तनम्) २, ३०
निविडं (निविडम्) १, २०२
निवो (नृपः) १, १२८
निव्वत्तओ (निर्वर्तकः) २, ३०
निव्वुई (निर्वृतिः) १, १३१
निसंसो (नृशंसः) १, २६०
निसढो (निषधः) १, २२६
निसमण (निशमण) १, २६९
निसाअरो (निशाचरः) १, ८
निसायरो (निशाचरः) १, ७२
निसिअरो (निशाचरः) १, ८, ७२
निसीढो (निशीथः) १, २१६
निसीहो (निशीथः) १, २१६
निस्सहं (निःसहम्) १, १३, निस्सहाइं १, ९३
निहट्टं (निघृष्ट) २, १७४
निहसो (निकषः) १, १८६, २६०
निही (निधिः) १, ३५, निहिं ३, १९
निहिओ (निहितः) २, ९९
निहुअं (निभृतम्) १, १३१
निहेलणं (निलयः) २, १७४
नी (धातुः) आणिअं १, १०१, उवणिअं, उवणिओ १, १०१
नीचअं (नीचैः) १, १५४
नीडं (नीडम्) १, १०६, २०२; २, ९९
नीमो (नीपः) १, २३४

नीमी (नीवी) १, २५९
नीला, नीली (नीला) ३, ३२
नीलुप्पल (नीलोत्पल) ३, १८२; °लं १, ८४
नीवी (नीवी) १, २५९
नीवो (नीपः) १, २३४
नीसहो (निःसहः) १, ४३; नीसहं १, १३
नीसामन्नेहिं (निःसामान्यैः) २, २१२
नीसासूसासा(निःश्वासोच्छ्वासाः) १, १०
नीसासो (निःश्वासः) १, ९३, २, ९२
नीसो (निःस्वः) १, ४३
नु (नु) २, १९३, २०४
नूउरं (नूपुरम्) १, १२३
नूण, नूणं (नूनम्) १, २९
नेउरं (नूपुरम्) १, १२८
नेड्डं (नीडम्) १, १०६
नेत्ता, नेत्ताइं (नेत्राणि) १, ३३
नेरइओ (नैरयिकः) १, ७९
नेहो (स्नेहः) २, ७७, १०२
नेहालू (स्नेहालुः) २, १५९
नोमालिआ (नवमालिका)१,१७०
नोहलिया (नवफलिका) १, १७०

[प]

पइट्ठा (प्रतिष्ठा) १, ३८, २०६
पइट्ठाणं (प्रतिष्ठानम्) १, २०६
पइण्णा (प्रतिज्ञा) १, २०६
पइसमयं (प्रतिसमयम्) १, २०६
पइहरं (पतिगृहम्) १, ४
पई (पतिः) १, ५
पईवं (प्रतीपम्) १, २०६
पईवो (प्रदीपः) १, २३१
पईहरं (पतिगृहम्) १, ४
पउट्ठो (प्रकोष्ठः) १, १५६
पउणो (प्रगुणः) १, १८०
पउत्ती (प्रवृत्तिः) १, १३१
पउमं (पद्मम्) १, ६१; २, ११२
पउरजणो (पौरजनः) १, १६२
पउरं (प्रचुरम्) १, १८०
पउरिसं (पौरुषम्) १, १११,१६२
पउरो (पौरः) १, १६२
पओ (पयः) १, ३२
पओओ (प्रयोगः) १, २४५
पंसणो (पांसनः) १, ७०
पंसुलि ! (पांसुलि !) २, १७९
पंसू (पांसुः) १, २६, २९, ७०
पक्कं (पक्व) १, ४७,२,७९ पक्का २, १२९
पक्कलो (समर्थः) २, १७४
पक्ख (पक्ष) २, १६४, पक्खो, २, १०६, १४७
पङ्कयाइं, पङ्कयाणि (पङ्कजानि) ३, २६
पङ्को, पंको (पङ्कः) १, ३०
पङ्गुरणं (प्रावरणम्) १, १७५
पच्चओ (प्रत्ययः) २, १३
पच्चड्डिअ (निपातः) २, १७४
पच्चूसो (प्रत्यूषः) २, १४
पच्चूहो (प्रत्यूषः) २, १४
पच्छं (पथ्यम्) २, २१
पच्छा (पथ्या) २, २१
पच्छा (पश्चात्) २, २१
पच्छिमं (पश्चिमम्) २, २१
पच्छेकम्मं (पश्चात्कर्म) १, ७९
पज्जन्तो (पर्यन्तः) १,५८; २, ६५
पज्जा (प्रज्ञा) २, ८३
पज्जाओ (पर्यायः) २, २४
पज्जिए (प्रार्यिके) ३, ४१
पज्जुण्णो (प्रद्युम्नः) २, ४२
पञ्चावण्णा (पञ्चपञ्चाशत्) २, १७४
पट्टणं (पत्तनम्) २, २९
पट्ठी (पृष्ठम्) १, १२९, २, ९०
पठ्, पढइ (पठति) १, १९९, २३१; ३, १७७; पढेज्ज, पढेज्जा ३, १७८; पाढहिइ ३, १७७; पढीअइ, पढिज्जइ ३, १६०; पढिअं ३, १५६; पाढिअं ३, १५६
पडंसुआ (प्रतिश्रुत्) १, २६, ८८, २०६
पडाया (पताका) १, २०६
पडायाणं (पर्याणम्) १, २५२
पडिकूलं (प्रतिकूलम्) २, ९७
पडिक्कूलं (प्रतिकूलम्) २, ९७
पडिप्फद्धी (प्रतिस्पर्धा) १, ४४; २, ५३
पडिमा (प्रतिमा) १, २०६
पडिवण्णं (प्रतिपन्नम्) १, २०६
पडिवया (प्रतिपद्) १, ४४, २०६
पडिसारो (प्रतिसारः) १, २०६
पडिसिद्धी (प्रतिस्पर्धा) १, ४४; २, १७४
पडिसोओ (प्रतिस्रोतः) २, ९८
पडिहाइ (प्रतिभाति) ३, ८०;
पडिहारो (प्रतिहारः) १, २०६
पडिहासो (प्रतिहासः) १, २०६
पड्डुच्छिर (निपातः) २, १७४
पढमो (प्रथमः) १, २१५ पढमं १, ५५
पढुमं (प्रथमम्) १, ५५
पणवण्णा (पञ्चपञ्चाशत्) २, १७४
पञ्चण्हं (पञ्चानाम्) ३, १२३
पण्डवो (पाण्डवः) १, ७०
पण्णरसण्हं (पञ्चदशानाम्) ३,

१२३
पण्णरह (पञ्चदश) २, ४३
पण्णा (प्रज्ञा) २, ४२, ८३
पण्णासा (पञ्चाशत्) २, ४३
पण्णो (प्राज्ञः) १, ५६
पण्हा (प्रश्नः) १, ३५
पण्हुओ (प्रस्नुतः) २, ७५
पत् (धातुः) पडिआ २, ८० पाडइ ३, १५३, निवडइ १, ९४
पत्तं (पत्रम्) २, १७३
पत्तलं (पत्रम्) २, १७३
पत्तेअं (प्रत्येकम्) २, २१०
पत्थरो (प्रस्तरः) २, ४५
पत्थवो, पत्थावो (प्रस्तावः) १, ६८
पत्थिवाण (पार्थिवानाम्) ३, ८५
पदु, पाएइ (पादयति) ३, १४९
उप्पज्जन्ते ३, १४२
पन्ती (पङ्क्तिः) १, ६, २५
पन्थो पंथो (पन्थाः) १, ३०, पन्थं १, ८८
पमुक्कं (प्रमुक्तम्) २, ९७
पम्मुक्कं (प्रमुक्तम्) २, ९७
पम्हल (पक्ष्मल) २, ७४
पम्हाइं (पक्ष्माणि) २, ७४
पम्हुट्ठ (प्रमृष्ट) ३, १०५
पयट्टइ (प्रवर्तते) २, ३०
पयट्टो (प्रवृत्तः) २, २९
पयडं (प्रकटम्) १, ४४
पययं (प्राकृतम्) १, ६७
पयरणं (प्रकरणम्) १, २४६
पयरो (प्रकरः) १, ६८
पयाई (पदाति) २, १३८
पयागजलं (प्रयागजलम्) १, १७७
पयारो (प्रकारः) १, ६८
पयावई (प्रजापतिः) १, १७७, १८०
पर् (धातुः) पारिज्जइ ३, २०८
पर (पर) २, ७२, ८७
परउट्ठो (परपुष्टः) १, १७९
परम्मुहो (पराङ्मुखः) १, २५
परहुओ (परभृतः) १, १३१
परामरिसो (परामर्शः) २, १०५
परामुट्ठो (परामृष्ठः) १, १३१
परिघट्टं (परिघृष्टम्) २, १७४
परिट्ठा (प्रतिष्ठा) १, ३८
परिहवं (परिभवम्) ३, १८०
परोप्परं (परस्परम्) १, ६२; २, ५३
परोहो (प्ररोहः) १, ४४
पलक्खो (प्लक्षः) २, १०३
पलय (प्रलय) १, १८७
पलही (कर्पासः) २, १७४
पलिअङ्को (पर्यङ्कः) २, ६८
पलिअं (पलितम्) १, २१२
पलिलं (पलितम्) १, २१२
पलोएसु (प्रलोकय) २, १८१
पलङ्को (पर्यङ्कः) २, ६८
पल्लट्टो (पर्यस्तः) २, ४७, पल्लट्टं २, ६८
पल्लत्थो (पर्यस्तः) २, ४७, पल्लत्थं २, ६८
पल्लवविल्लेण (पल्लवेन) १, १६४
पल्लाणं (पर्याणम्) १, २५२; २, ६८
पल्हाओ (प्रह्लादः) २, ७६
पवट्टो (प्रवृष्टः) १, १५६
पवत्तओ (प्रवर्तकः) २, ३०
पवत्तणं (प्रवर्तनम्) २, ३०
पवहो (प्रवाहः) १, ६८
प्रवासू (प्रवासिन्) १, ४४
पवाहो (प्रवाहः) १, ६८ पवाहेण १, ८२
पवो (प्लवः) २, १०६
पसढिलं (प्रशिथिलम्) १, ८९
पसत्थो (प्रशस्तः) २, ४५
पसिढिलं (प्रशिथिलम्) १, ८९
पसिद्धी (प्रसिद्धिः) १, ४४
पहरो (प्रहरः) १, ६८
पहा (प्रभा) १, ६
पहारो (प्रहारः) १, ६८
पहिओ (पथिकः) २, १५२
पहु ! (हे प्रभो !) ३, ३८
पहुडि (प्रभृति) १, १३१, २०६
पहुप्पिरे (प्रभवतः) ३, १४२
पहू (प्रभुः) ३, ३८
पहो (पन्थाः) १, ८८
पा, पियइ (पिबति) १, १८०
पाइक्को (पदातिः) २, १३८
पाउओ (प्रावृतः) १, १३१
पाउरणं (प्रावरणम्) १, १७५
पाउसो (प्रावृट्) १, १९, ३१, १३१, ३, ५७
पाओ (पादः) १, ५
पाडलिउत्ते (पाटलिपुत्रे) २, १५०
पाडिएक्कं (प्रत्येकम्) २, २१०
पाडिक्कं (प्रत्येकम्) २, २१०
पाडिप्फद्धी (प्रतिस्पर्धा) १, ४४, २०६
पाडिवआ, पाडिवया (प्रतिपद्) १, १५, ४४
पाडिसिद्धी (प्रतिस्पर्धा) १, ४४, २, १७४
पाणिअं (पानीयम्) १, १०१, २, १९४
पाणिणीआ (पाणिनीयाः) २, १४७
पाणीअं (पानीयम्) १, १०१
पायडं (प्रकटम्) १, ४४

पायन्तिमिल्ल० (पादान्त०) ३, १३४
पाययं (प्राकृतम्) १, ६७
पायवडणं (पादपतनम्) १, २०
पायवीढं (पादपीठम्) १, २७०
पाया (पादौ) ३, १३०
पायारो (प्राकारः) १, २६८
पायालं (पातालम्) १, १८०
पारओ (प्रावारकः) १, २७१
पारकेरं (परकोयम्) २, १४८
पारक्कं (परकीयम्) १, ४४, २, १४८
पारद्धी (पार्पर्द्धिः) १, २३५
पारावओ (पारावतः) १, ८०
पारेवओ (पारावतः) १, ८०
पारो (प्राकारः) १, २६८
पारोहो (प्ररोहः) १, ४४
पावडणं (पादपतनम्) १, २७०
पावं (पापम्) १, १७७, २३१
पावयणं (प्रवचनम्) १, ४४
पावरणं (प्रावरणम्) १, १७५
पावारओ (प्रावारकः) १, २७१
पावासुओ (प्रवासी) १, ९५
पावीढं (पादपीठम्) १, २७०
पासइ (पश्यति) १, ४३
पासं (पार्श्वम्) २, ९२
पासाणो (पाषाणः) १, २६२
पासाया (प्रासादाः) २, १५०
पासिद्धी (प्रसिद्धिः) १, ४४
पासू (पांसु) १, २९, ७०
पाहाणो (पाषाणः) १, २६२
पाहुडं (प्राभृतम्) १, १३१, २०६
पि (अपि) १, ४१, २, १९८, २०४, २१८, ३, १३७
पिअ (प्रिय) २, १५८ पिओ १, ४२, ९१, ३, ८६ पिअस्स ३, १०, पिआइं २, १८७
पिअवयंसो (प्रियवयस्यः) २, १८६
पिआ (पिता) ३, ३९, ४०, ४४, ४७, ४८
पिउओ (पितृकः) १, १३१
पिउच्छा (पितृष्वसा) २, १४२, ३, ४१
पिउल्लओ (पितृ-कः) २, १६४
पिउवई (पितृपतिः) १, १३४
पिउवणं (पितृवनम्) १, १३४
पिउसिया (पितृष्वसा) १, १३४, २, १४२
पिउहरं (पितृगृहम्) १, १३४
पिक्कं (पक्वम्) १, ४७, २, ७९
पिच्छी (पृथ्वी) १, १२८, २, १५ पिच्छीइ २, १५
पिञ्जरयं (पिञ्जरम्) २, १६४
पिट्टं (पृष्ठम्) १, ३५, (पेट्टं) १, ८५
पिट्ठि (पृष्ठम्) १, १२९, पिट्ठी १, ३५, १२९ पिट्ठीए ३, १३४
पिढरो (पिठरः) १, २०१
पिण्डं (पिण्डम्) १, ८५
पिधं (पृथक्) १, १८८
पिलुट्ठं (प्लुष्टम्) २, १०६
पिलोसो (प्लोषः) २, १०६
पिव (इव) २, १८२
पिसल्लो (पिशाचः) १, १९३
पिसाओ (पिशाचः) १, १९३
पिसाजी (पिशाची) १, १७७
पिहडो (पिठरः) १, २०१
पिहं (पृथक्) १, २४, १३७, १८८
पीअं (पीतम्) १, २१३, २, १७३
पीअलं (पीतम्) १, २१३, २, १७३
पीडिअं (पीडितम्) १, २०३
पीढं (पीठम्) १, १०६
पीणत्तणं (पीनत्वम्) २, १५४
पीणत्तं (पीनत्वम्) २, १५४
पीणदा (पीनत्वम्) २, १५४
पीणया (पीनत्वम्) २, १५४
पीणिमा (पीनत्वम्) २, १५४
पीवलं (पीतम्) १, २१३, २, १७३
पुञ्छं (पुच्छम्) १, २६
पुञ्जा (पुञ्जाः) १, १६६
पुट्ठो (पृष्टः) २, ३४
पुट्ठो (स्पृष्टः) १, १३१
पुढमं (प्रथमम्) १, ५५
पुढवी (पृथ्वी) १, ८८, २१६
पुढुमं (प्रथमम्) १, ५५
पुणो (पुनः) २, १७४
पुणरुत्तं (पुनरुक्तम्) २, १७९
पुणाइ (पुनः) १, ६५
पुण्णमन्तो (पुण्यवान्), २, १५९
पुधं (पृथक्) १, १८८
पुन्नामाइँ (पुन्नागानि) १, १९०
पुप्फत्तणं (पुष्पत्वम्) २, १५४
पुप्फत्तं (पुष्पत्वम्) २, १५४
पुप्फं (पुष्पम्) १, २३६, २, ५३, ९०
पुप्फिमा (पुष्पत्वम्) २, १५४
पुरओ (पुरतः) १, ३७
पुरंदरो (पुरंदरः) १, १७७
पुरा (पुरा) १, १६
पुरिमं (पूर्वम्) २, १३५
पुरिल्लं (पूर्वतनम्) २, १६३, पुरिल्ला २, १६४
पुरिसो (पुरुषः) १, ४२, ९१, १११, २, १८५, ३, ८६, ८७, ८८, पुरिसा २, २०२
पुरेकम्मं (पुराकर्म) १, ५७

पुलग्र (पश्य) २, २११
पुलोमी (पौलोमी) १, १६०
पुव्वण्हो (पूर्वाह्णः) १, ६७, २, ७५
पुव्वं (पूर्वम्) २, १३५
पुव्वण्हो (पूर्वाह्णः) १, ६७
पुहई (पृथ्वी) १, ८८, १३१, ३, १३५
पुहं (पृथक्) १, १३७, १८८
पुहवी (पृथ्वी) १, २१६
पुहवीसो (पृथ्वीशः) १, ६
पुहुवी (पृथ्वी) १, १३१, २, ११३
पूसा (पूषा) ३, ५६
पूसाणो (पूषा) ३, ५६
पूसो (पुष्यः) १, ४३
पेआ (पेया) १, २४८
पेऊसं (पीयूषम्) १, १०५
पेच्छ, पेच्छसि (प्रेक्षसे) २, २०५, पेच्छइ २, १४३, ३, २०, पेच्छ १, २३, ३, ४, ५, १४, १६, १८, २१, २२, २६, २८, ३६, ५०, ५२, ५३, ५५, ५६, ७०, ७९, ९३, १०७, १०८, १२०, १२१, १२२, १२४, १२९, पेच्छसु, पेच्छउ, पेच्छामु ३, १७३
पेज्जा (पेया) १, २४८
पेट्ठं (पिष्टम्) १, ८५
पेढं (पीढम्) १, १०६
पेण्डं (पिण्डम्) १, ८५
पेम्मं (प्रेमन्) २, ९८, ३, २५, पेम्मस्स ३, १०
पेरन्तो (पर्यन्तः) १, ५८, २, ६५ पेरन्तं २, ९३
'पेलवाणं ('पेलवानाम्) १, २३८
पेसो (प्रेष्यः) २, ९२
पोक्खरं (पुष्करम्) १, ११६, २, ४,
पोक्खरिणी (पुष्करिणी) २, ४
पोग्गलं (पुद्गलम्) १, ११६
पोत्थओ (पुस्तकः) १, ११६
पोप्फलं (पूगफलम्) १, १७०
पोप्फली (पूगफलम्) १, १७०,
पोम्मं (पद्म) १, ६१, २, ११२,
पोरो (पूतरः) १, १७०
°प्पणामो (°प्रणामः) ३, १०५

[फ]

फडालो (फटावान्) २, १५९
फणसो (पनसः) १, २३२
फणी (फणी) १, २३६
फन्दणं (स्पन्दनम्) २, ५३
फरुसो (परुषः) १, २३२
फलं (फलम्) १, २३
फलिहा (परिखा) १, २३२,२५४,
फलिहो (स्फटिकः) १, १८६, १९७
फलिहो (परिघः) १, २३२, २५४,
फाडेइ (पाटयति) १, १९८, २३२,
फालिहद्दो (पारिभद्रः) १, २३२, २५४
फालेइ (पाटयति) १, १९८,२३२,
फासो (स्पर्शः) २, ९२
फुम्फुल्लइ (निपातः) २, १७४
फुल्लन्ति (फुल्लन्ति) ३, २६

[ब]

बइल्लो (बलीवर्दः) २, १७४
बद्धफलो बद्धप्फलो (बद्धफलः) २, ९७
बन्दि (बन्दिन्) २, १७६ बन्दीणं १, १४२
बन्ध्, बन्धइ (बध्नाति) १, १८७
बन्धेउं १, १८१, अणुबद्धं २, १८४, आबन्धन्तीए १, ७
बन्धो (बन्धः) १, १८७
बन्धवो, बंधवो (बान्धवः) १, ३०
बप्फो (बाष्पः) २, ७०
बम्भचेरं (ब्रह्मचर्यम्) २, ७४
बम्हचरिअं (ब्रह्मचर्यम्) २, ६३, १०७
बम्हचेरं (ब्रह्मचर्यम्) १, ५९; २; ६३, ७४, ९३
बम्हणो (ब्राह्मणः) १,६७,२, ७४
बम्हा (ब्रह्मा) २, ७४, ३, ५६
बम्हाणो (ब्रह्मा) ३, ५६
बरिहो (बर्हः) २, १०४
बलया (बलाका) १, ६७
बलाया (बलाका) १, ६७
बली (बलिः) १, ३५
बले (निर्धारणे, निश्चये च निपातः) २, १८५
बहप्पई (बृहस्पतिः) २, १३७
बहप्फई (बृहस्पतिः) १, १३८; २, ६९, १३७
बहला (बहला) २, १७७
बहस्सई (बृहस्पतिः) २, १३७
बहिद्धा (बहिर्मैथुनम्) २, १७४
बहिणी (भगिनी) २, १२६
बहिरो (बधिरः) १, १८७
बहु (बहु) २, १६४, ३, १४१ बहुअं २, १६४, बहुअयं (बहुककम्) २, १६४
बहुअरो (बहुतरः) १, १७७
बहुवल्लह ! (बहुवल्लभ !) २, २०२
बहुवी (बह्वी) २, ११३
बहेडओ (बिभीतकः) १, ८८, १०५, २०६
बाम्हणो (ब्राह्मणः) १, ६७

बारं (द्वारम्) १, ७९; २, ७९, ११२
बारह (द्वादश) १, २१९, २६२
बालो, बाला (बालः, बाला) ३, २५
बाह (बाष्प) १, ८२ बाहो २, ७०
बाहइ (बाधते) १, १८७
बाहाए (बाहोः) १, ३६
बाहिं (बहिः) २, १४०
बाहिरं (बहिः) २, १४०
बाहू (बाहुः) १, ३६
बिइओ (द्वितीयः) १, ५, ९४
बिइज्जो (द्वितीयः) १, २४८
बिउणो (द्विगुणः) १, ९४; २, ७९
बिंहिओ (बृंहितः) १, १२८
बिण्णि (द्वे) ३, १२०
बिन्दूइं बिन्दुणो (बिन्दवः) १, ३४
बिल्लं (बिल्वम्) १, ८५
बिस (बिस) १, ७, २३८
बिसी (वृसी) १, १२८
बिहप्पई (बृहस्पतिः) २, १३७
बिहप्फई (बृहस्पतिः) १, १३८; २, १३७
बिहस्सई (बृहस्पतिः) २, ६९, १३७
बीओ (द्वितीयः) १, ५, २४८; २, ७९
बीहइ (बिभेति) ३, १३४, १३६ बीहन्ते ३, १४३, बीहेमि, १, १६९
बुज्झा (बुद्ध्वा) २, १५
बुद्धी (बुद्धिः) ३, १६, १८, १९, २०, २३, २४, २७, २९, ५८, १२४
बुंधं (बुध्नम्) १, २६
बुहप्पई (बृहस्पतिः) २, ५३, १३७
बुहप्फई (बृहस्पतिः) १, १३८; २, ५३, १३७
बुहस्सई (बृहस्पतिः) २, १३७
बे (द्वे) ३, १२०, बेण्णि ३, १२०, बेहि, बेहिंतो, बेसु, बेण्हं ३, ११९
बेल्लं (बिल्वम्) १, ८५
बोरं (बदरम्) १, १७०
बोरी (बदरी) १, १७०
ब्रू (धातुः) **अब्बवी** (अब्रबीत्) ३, १६२

[भ]

भइणी (भगिनी) २, १२६
भइरवो (भैरवः) १, १५१
°भओ (°भयः) १, १८७
भज्जा (भार्या) २, २४
भट्टिओ (विष्णुः) २, १७४
भडो (भटः) १, १९५
भण, भणामि (भणामि) ३, ४१; भणामो ३, १०६, १५५ भणमो, भणिमो ३, १५५, भणिअं २, १९३, १९९, ३, ७० भणिए ३, ४१, भणिआ २, १८६
भणिरी (भणनशीला) २, १८०
भत्ता (भर्ता) ३, ४४, ४५
भत्तिवन्तो (भक्तिमान्) २, १५९
भद्दं (भद्रम्) २, ८०
भद्रं (भद्रम्) २, ८०
भप्पो (भस्म) २, ५१
भमया (भ्रूः) २, १६७
भमर (भ्रमर) १, ६, २, १८३, भमरो १, २४४, २४५
भमिरो (भ्रमनशीलः) २, १४५
भयप्पई (बृहस्पतिः) २, ६९, १३७
भयस्सई (बृहस्पतिः) २, ६९, १३७
भरइ (स्मरति) ३, १३७ भरिमो ३, १३४
भरहो (भरतः) १, २१४
भवओ (भवतः) १, ३७
भवणं (भवनम्) ३, २९
भवन्तो (भवान्) १.३७, २.१७४,
भवारिसो (भवादृशः) १, १२४
भविओ (भव्यः) २, १०७
भसलो (भ्रमरः) १, २४४, २५४
भस्सो (भस्म) २. ५१
भाउओ (भ्रातृकः) १, १३१
भाणं (भाजनम्) १, २६७
भामिणी (भामिनी) १, १९०
भायणं (भाजनम्) १, २६७ भायणा, भायणाइं १, ३३
भाया (भ्राता) ३, ४७, ४८
भारिआ (भार्या) २, २४, १०७
भासा (भाषा) १, २११, २८७
भिउडी (भ्रुकुटी) १, ११०
भिऊ (भृगुः) १, १२८
भिङ्गारो (भृङ्गारः) १, १२८
भिङ्गो (भृङ्गः) १, १२८
भिण्डिवालो (भिन्दिपालः) २,३८, ८९
भिप्फो (भीष्मः) २, ५४
भिब्भलो (विह्वलः) २, ५८, ९०
भिमोरो (हिमोरः) २, १७४
भिसओ (भिषक्) १, १८
भिसिणी (बिसिनी) १, २३८
भीआए (भीतायाः) २, १९३
भुमयन्तं, भुआयन्तं (भुजयन्त्रम्) १, ४,
भुई (भृतिः) १, १३१
भुज्, भोच्चा २, १५, **भुत्तं** २, ७७, ८९, ३, ९५, भोच्छं ३, १७१
भुमया (भ्रूः) १, १२१, २, १६७
भू, होसि (भवसि) ३, १४५, होइ १,

९, २, २०६, ३, १४५, १७८, होमो ३, १५५, हुन्ति ३, २६, होसु ३, १७५ होउ ३, १७८ होज्जइ होज्जाइ होज्ज होज्जा, ३, १७८, होज्जहिइ, होज्जउ, ३, १७८ होज्ज ३, १५९, १६५, १७७, १७९, होज्जा ३, १५९, १७८, १७९, हुज्ज २, १८०, होज्जइ ३, १६५ होस्सं, होहिमि, होस्सामि, होहामि ३,१६६,१६७, १६९, होही २, १८०, होज्जस्सामि, होज्जस्सं, होज्जहामि ३, १७८, हुवीअ ३, १६३, होईअइ, होइज्जइ ३, १६०, भावेइ ३, १४९, होन्तो होमाणो, ३, १८०, पहुप्पिरे ३, १४२, बहुत्तं १, २३३, २, ९८
भूमिसु (भूमिषु) ३, १६
भे (यूयम्) ३, ९१, ९३, ९४, ९५, १००, १०६
भेच्छं (भेत्स्यामि) ३, १७१
भेडो (भेरः) १, २५१
भेत्तुआण (भित्त्वा) २, १४६
भोअण (भोजन) १, ८१, १०२
भ्रम् (धातुः) भमिअ २, १४६, भामेइ, भमावइ, भमावेइ, भमाडइ, भमाडेइ ३, १५१

[म]

म-म्मि (अहम्) ३, १०५ मो ३, १०६ मं ३, १०७, ममं, मि, मिमं, मम्ह ३, १०७ मि, मे, ममं, ममए, ममइ, मइ, मयाइ ३, १०९, मए २, १९९, २०१, २०३, ३, १०९, १६०, मइत्तो, ममत्तो, महत्तो, मज्झत्तो, मत्तो, ३, १११, ममत्तो, ममाहिंतो, ममासुंतो, ममेसुंतो ३, ११२, मे ३, ११३, मइ, मम ३, ११३, मह २, १६४, ३, ११३, महं, मज्झ, मज्झं ३, ११३, मज्झ, मज्झाण, मज्झाणं, ममाण, ममाणं, महाण, महाणं ३, ११४ मि ३, ११५, मइ ३, ११, १३५, ममाइ, मए, मे ३, ११५, ममम्मि, महम्मि, मज्झम्मि ३, ११६, ममेसु, महेसु, मज्झेसु, ममसु, महसु, मज्झसु ३, ११७,
मअङ्को (मृगाङ्कः) १, १३०
मइलं (मलिनम्) २, १३८
मईअ (मदीय) २, १४७
मउअत्तयाइ (मृदुकत्वेन) २, १७२
मउअं (मृदुकम्) १, १२७
मउडं (मुकुटम्) १, १०७
मउणं (मौनम्) १, १६२
मउत्तणं (मृदुत्वम्) १, १२७
मउरं (मुकुरम्) १, १०७
मउलणं (मुकुलनम्) २, १८४
मउलं (मुकुलम्) १, १०७
मउली (मौलिः) १, १६२
मउलो (मुकुलम्) १, १०७
मउवी (मृद्वी) २, ११३
मऊरो (मयूरः) १, १७१
मऊहो (मयूखः) १, १७१
मओ (मृगः) १, १२६
मंसं (मांसम्) १, २९, ७०
मंसलं (मांसलम्) १, २९
मंसुल्लो (श्मश्रुमान्) २, १५९
मंसू (श्मश्रु) १, २६; २, ८६
मग्गओ (मार्गतः) १, ३७
मग्गन्ति (मृग्यन्ते) १, ३४
मग्गू (मद्गुः) २, ७७
मघोणो (मघवान्) २, १७४
मच्चू (मृत्युः) १, १३०
मच्छरो (मत्सरः) २, २१
मच्छलो (मत्सरः) २, २१
मच्छिआ (मक्षिका) २, १७
मज्ज् (धातुः) णुमज्जइ १, ९४; णुमण्णो १, ९४, १७४
मज्जं (मद्यम्) २, २४
मज्जाया (मर्यादा) २, २४
मज्जारो (मार्जारः) १, २६; २, १३२
मज्झण्हो (मध्याह्नः, २, ८४
मज्झन्हो (मध्याह्नः) २, ८४
मज्झं (मध्यम्) २, ९०
मज्झिमो (मध्यमः) १, ४८
मञ्जरो (मार्जारः) २, १३२
मञ्जारो (मार्जारः) १, २६
मट्टिआ (मृत्तिका) २, २९
मट्ठं (मृष्टम्) १, १२८
मट्ठा (मृष्टम्) २, १७४
मडप्फर (गर्वः) २, १७४
मडयं (मृतकम्) १, २०६
मडहसरिआ (मृतकसदृश) २, २०१
मड्डिओ (मृदितः) २, ३६
मढो (मठः) १, १९९
मणंसिला (मनःशिला) १, २६
मणंसी, मणंसिणी (मनस्वी, मनस्विनी) १, ४४
मणयं (मनाक्) २, १६९
मणसिला (मनःशिला) १, २६
मणहरं (मनोहरम्) १, १५६
मणा (मनाक्) २, १६९
मणासिला (मनःशिला) १, २६, ४३
मणिअं (मनाक्) २, १६९
मणुअत्तं (मनुजत्वम्) १, ८
मणूसो (मनुष्यः) १, ४३

मणे (विमर्श, मन्ये) २, २०७
मणोज्जं (मनोज्ञम्) २, ८३
मणोण्णं (मनोज्ञम्) २, ८३
मणोसिला (मनःशिला) १, २६
मणोहरं (मनोहरम्) १, १५६
मण्डलग्गं (मण्डलाग्रम्) १, ३४
मण्डलग्गो १, ३४
मण्डुक्को (मण्डूकः) २, ९८
°मत्ते (°मात्रे) १, १०२
मन् (धातुः), **मन्ने** (मन्ये) १, १७१; माणिओ २, १८०
मन्तू (मन्युः) २, ४४
मन्दरयड (मन्दरतट) २, १७४
मन्नू (मन्युः) २, २५, ४४
मम्मणं (मम्मणम्) २, ६१
मम्मो (मर्म) १, ३२
मयगलो (मदकलः) १, १८२
मयङ्को (मृगाङ्कः) १, १७७,१८०
मयच्छि ! (मृगाक्षि !) २,१९३
मयणो (मदनः) १, १७७, १८०, २२८
मर् (धातुः) मारइ ३, १५३
मरगयं (मरकतम्) १, १८२
मरणा (मरणाः) १, १०३
मरं (म्रिये) ३, १४१
मरहट्ठो (महाराष्ट्रः) १, ६९, **मरहट्ठं** १, ६९; २, ११९
मलय (मलय) २, ९७
मलिअ (मृदित) १, ७, मलिआइं ३, १३५
मलिणं (मलिनम्) २, १३८
मल्लं (माल्यम्) २, ७९
मसणं (मसृणम्) १, १३०
मसाणं (श्मशानम्) २, ८६
मसिणं (मसृणम्) १, १३०
मस्सू (श्मश्रु) २, ८६
महइ (मानयति) १, ५, महए, १, ५
महण्णव (महार्णव) १, २६९
महन्तो (महान्) २, १७४
महपुण्डरिए (महापुण्डरीकः) २, १२०
महमहिअ (प्रसृत) १, १४६
महिमा (महिमा) १, ३५
महिला (महिला) १, १४६; ३, ८६, ८७ महिले ३,४१,**महिलाओ** ३, ८६
महीवट्ठं (महीपृष्ठम्) १, १२९
महिवालो (महीपालः) १, २३१
मही (मही) ३, ८५
महु (मधु) ३, १६, १९, २०, २१ २२, २३, २४, २५, २६, ३७, १२४, १२८
महुअं (मधूकम्) १, १२२
महुरव्व (मथुरावत्) २, १५०
महुलट्ठी (मधुयष्टिः) १, २४७
महूअं (मधूकम्) १, १२२
महेला (महिला) १, १४६
मा (मा) २, २०१
माआ (माता) ३, ४६
माइगणो (मातृगणः) ३, ४६
माइदेवो (मातृदेवः) ३, ४६
माइं (मा) २, १९१
माइहरं (मातृगृहम्) १, १३५
माईण (मातॄणाम्) ३, ४६ माईणं १, १३५
माउअं (मृदुकम्) २,९९
माउआ (मातृका) १, १३१
माउक्कं (मृदुत्वम्) १, १२७; २, २, ९९
माउच्छा (मातृष्वसा) २, १४२; ३, ४१
माउत्तणं (मृदुत्वम्) २, २
माउमण्डलं (मातृमण्डलम्) १, १३४
माउलुङ्गं (मातुलुङ्गम्) १, २१४
माउसिआ (मातृष्वसा) १, १३४; २, १४२
माउहरं (मातृगृहम्) १, १३४ १३५
माऊए (मात्रा) ३, ४६
माणइ (मानयति) १, २२८
माणइत्तो (मानवान्) २, १५९
माणंसी (मनस्विन्) १, २६, ४४
माणंसिणी १, २६, ४४
माणस्स (मानाय) २, १९५
मामि (सख्यामन्त्रणे) २, १०५, १९५
मायन्दो (माकन्दः) २, १७४
मारुअ-तणओ (मारुत-तनयः) ३, ८७
माला (माला) २, १८२, ३, २७, ३०, ३६, ४१, ८८, १२४, १२६, १२७, १२९, °**मालस्स** १, ४
मासं (मांसम्) १, २९, ७०
मासलं (मांसलम्) १, २९
मासू (श्मश्रु) २, ८६
माहप्पो (माहात्म्यम्) १, ३३, माहप्पं १, ३३
माहुलिङ्गं (मातुलिङ्गम्) १,२१४
माहो (माघः) १, १८७
मिअङ्को (मृगाङ्कः) १, १३०
मिइङ्गो (मृदङ्गः) १, १३७
मिच्चू (मृत्युः) १, १३०
मिच्छा (मिथ्या) २, २१
मिट्ठं (मिष्टम्) १, १२८
मिरिअं (मरीचम्) १, ४६
मिलाइ (म्लायति) २, १०६

मिलाणं (म्लानम्) २, १०६
मिलिच्छो (म्लेच्छः) १, ८४
मिव (इव) २, १८२
मिहुणं (मिथुनम्) १, १८७
मील् (धातुः) उन्मीलन्ति ३, २६
मीसं (मिश्रम्) १, ४३; २, १७०
मीसालिअं (मिश्रितम्) २, १७०
मुइङ्गो (मृदङ्गः) १, ४६, १३७
मुक्को (मूकः) २, ९९
मुक्खो (मूर्खः) २, ८९, ११२
मुच् (धातुः) मुञ्च ३, २६ मोच्छं ३, १७१, मुच्चइ २, २०६, मोत्तुं २, १४६, मुक्को २, २, मुक्का ३, १३४, मुत्तो २, २, पम्मुक्कं पमुक्कं २, ९७
मुच्छा (मूर्च्छा) २, ९०
मुञ्जायणो (मौञ्जायनः) १, १६०
मुट्ठी (मुष्टिः) २, ३४
मुण् मुणसि (जानासि) २, २०९ मुणन्ति २, २०४, अमुणन्ति २, १९०, मुणिआ २, १९९,
मुणालं (मृणालम्) १, १३१,
मुणिस्स (मुनेः) ३, १३१, मुणीण ३, १३१
मुणिन्दो (मुनीन्द्रः) १, ८४
मुण्ढा (मूर्धा) १, २६, २, ४१
मुत्ताहलं (मुक्ताफलम्) १, २३६
मुत्ती (मूर्तिः) २, ३०
मुत्तो (मूर्तः) २, ३०
मुद्ध (मुग्ध) १, १६६, मुद्धा ३, २९, ८६, मुद्धाइ मुद्धाए १, ५, मुद्धं २, ७७
मुद्धा (मूर्धा) २, ४१, ३, ५६
मुद्धाणो (मूर्धानः) ३, ५६
मुद्धिआअ (मुग्धिकायाः) ३, २९
मुद्धिआए, मुद्धिआइ ३, २९
मुरन्दले ! (मुरन्दले !) २, १९४
मुरुक्खो (मूर्खः) २, १७४
मुसलं (मुसलम्) १, ११३
मुसा (मृषा) १, १३६
मुसावाओ (मृषावादः) १, १३६
मुह (मुख) १, २४९, **मुहं** २, १६४, ३, ४३, मुहस्स ३, १३४
मुहलो (मुखरः) १, २५४
°मुही (°मुखी) ३, ७०
मुहुत्तो (मुहूर्त्तः) २, ३०
मुहुल्लं (मुख-कम्) २, १६४
मूओ (मूकः) २, ९९,
मूसओ (मूषकः) १, ८८
मूसलं (मुसलम्) १, ११३
मूसा (मृषा) १, १३६
मूसावाओ (मृषावादः) १, १३६
मेढी (मेथिः) १, २१५
मेत्तं (मात्रम्) १, ८१
मेरा (मिरा) १, ८७
मेहो (मेघः) १, १८७, मेहा १, १८७, ३, १४२
मेहला (मेखला) १, १८७
मोक्खं (मोक्षम्) २, १७६
मोग्गरो (मुद्गरः) १, ११६, २, ७७
मोण्डं (मुण्डम्) १, ११६, २, ७७
मोत्था (मुस्ता) १, ११६
मोरउल्ला (मुधा) २, २१४
मोरो (मयूरः) १, १७१
मोल्लं (मूल्यम्) १, १२४
मोसा (मृषा) १, १३६
मोसावाओ (मृषावादः) १, १३६
मोहो (मोहः) १, १७१, ३, ८७

[य]

य (च) २, १८४, ३, ५७, १४१
या (धातुः) **जामि** (यामि) २, २०४, ३, १३४

[र]

र (पादपूरणे) २, २१७
रअणीअरो (रजनीचरः) १, ८
रईओ, रईउ, रईहिन्तो (रतिभ्यः) ३, २९
रक्खसाणं (राक्षसानाम्) ३, १४२
रग्गो (रक्तः) २, १०, ८९
रच् (धातुः) विरएमि २, २०३
रण्णं (अरण्यम्) १, ६६
रत्ती (रात्रिः) २, ७९, ८८, रत्तिं ३, १३७
रत्तो (रक्तः) २, १०
रभ् (धातुः) आढत्तो, **आरद्धो** (आरब्धः) २, १३८
रम् (धातुः), **रमइ** (रमते) १, २०२, रमिउं ३, १३६, रमिअ २, १४६, रमिज्जन्ति ३, १४२
रयणं (रत्नम्) २, १०१, रयणाइं ३, १४२
रयदं (रजतम्) १, २०९
रययं (रजतम्) १, १७७, १८०, २०९
रवी (रविः) १, १७२
रस (रस) २, १६४
रसायलं (रसातलम्) १, १७७, १८०
रसालो (रसालः) २, १५९
रस्सी (रश्मिः) १, ३५, २, ७४, ७८
रहस्सं (रहस्यम्) २, १९८, २०४
रहुवई (रघुपतिः) ३, ७० रहु-वइणा २, १८८
राइक्कं (राजकीयम्) २, १४८
राई (रात्रिः) २, ८८

राईवं (राजीवम्) १, १८०
राउलं (राजकुलम्) १, २६७
राओ (रागः) १, ६८
राम (राम) २, १६४
रायउलं (राजकुलम्) १, २६७
रायकेरं (राजकीयम्) २, १४८
रायवट्टयं (राजवार्तिकम्) २, ३०
रायहरं (राजगृहम्) २, १४४
राया (राजा) ३, ४९, ५५, १३६
रायाणो (राजा) ३, ५६
राहु (राहु) ३, १८०
रि (रे-संबोधने) २, २१७,
रिऊ (रिपुः) १, १७७, २३१
रिऊ (ऋतुः) १, १४१, २०९
रिक्खो (ऋक्षः) २, १९, रिक्खं २, १९
रिच्छो (ऋक्षः) १, १४०, २, १९ रिच्छं २, १९
रिज्जू (ऋजुः) १, १४१
रिणं (ऋणम्) १, १४१
रिद्धी (ऋद्धिः) १, १२८, १४०, २, ४१
रिसहो (ऋषभः) १, १४१
रिसी (ऋषिः) १, १४१
रुअं (रुतम्) २, १८३
रुक्ख (वृक्ष) २, १९, रुक्खो २, १२७, रुक्खाइं, रुक्खा १, ३४
रुद् (धातुः) **रोच्छं**, ३, १७१, रुण्णं १, २०९
रुद्दो (रुद्रः) २, ८०
रुद्रो (रुद्रः) २, ८०
रुप्पिणी (रुक्मिणी) २, ५२
रुप्पी (रुक्मी) २, ५२, ८९
रुसिउं (रुष् धातुः) ३, १४१
रुहिर (रुधिर) १, ६
°**रूवो** (°रूपः) १, १४२, रूवेण २, १८४
रे (रे) २, २०१, रेरे ३, ३८
रेभो (रेफः) १, २३६
रेहन्ति (राजन्ते) ३, २२, १२४
रेहा (रेखा) २, ७
रेहिरो (शोभावान्) २, १५९
रोइत्था (रोचते) ३, १४३
रोविरो (रोदनशीलः) २, १४५
रोसं (रोषम्) २, १९०, १९१

[ल]

लक्खण (लक्षण) २, १७४, लक्खणं २, ३
लग्गो (लग्नः) २, ७८
लङ्गलं (लाङ्गलम्) १, २५६
लङ्गूलं (लाङ्गूलम्) १, २५६
लङ्घणं (लङ्घनम्) १, ३०
लच्छी (लक्ष्मीः) २, १७
लञ्छणं (लाञ्छनम्) १, २५, ३०, लंछणं १, ३०
लज्जालुआ (लज्जावती) २, १५९
लज्जालुइणी (लज्जावती) २, १७४
लज्जिरो (लज्जावान्) २, १४५
लट्ठी (यष्टिः) १, २४७, २, ३४
लण्हं (श्लक्ष्णम्) २, ७७
लभ् (धातुः) लहेज्ज, लहिज्जेज्ज ३, १६०, लब्भइ १, १८७, लद्धो ३, १३४, लद्धं ३, २३, लिच्छइ २, २१
लल्लक्क (निपातः) २, १७४
लवण (लवण) १, १७१
लहु (लघुः) ३, १३४, लहुअं २, १२२, लहुवी २, ११३, लहुआइ ३, ८७
लाउं (अलाबु) १, ६६
लाऊ (अलाबु) १, ६६
लायण्णं (लावण्यम्) १, १७७, १८०
लासं (लास्यम्) २, ९२
लाहइ (श्लाघते) १, १८७
लाहलो (लाहलः) १, २५६
लिख्, लिहामि, लिहमि (लिखामि) ३, १५४ लिहइ, १, १८७
लित्तो (लिप्तः) १, ६
लिम्बो (निम्बः) १, २३०
लुअं (लूनम्) ३, १५६
लुक्को (रुग्णः) १, २५४, २, २
लुग्गो (रुग्णः) २, २
लेहेण (लेखेण) २, १८९
लोओ (लोकः) १, १७७, २, २००, लोअस्स १, १८०, लोए ३, ३८
लोअणा १, ३३, २, ७४, लोअणाइं १, ३३, लोअणाणं २, १८४
लोगस्स (लोकस्य) १, १७७
लोणं (लवणम्) १, १७१
लोद्धओ (लुब्धकः) १, ११६, २, ७९
लोहिआइ, लोहिआअइ (लोहितायते) ३, १३८

[व]

व (वा) १, ६७
व (इव) २, १८२
वइआलिओ (वैतालिकः) १, १५२
वइआलीअं (वैतालीयम्) १, १५१
वइएसो (वैदेशः) १, १५१
वइएहो (वैदेहः) १, १५१
वइजवणो (वैजवनः) १, १५१
वइदब्भो (वैदर्भः) १, १५१
वइरं (वज्रम्) १, ६, २, १०५
वइरं (वैरम्) १, १५२
वइसम्पायणो (वैशम्पायनः) १, १५२

वइसवणो (वैश्रवणः) १, १५२
वइसालो (वैशालः) १, १५१
वइसाहो (वैशाखः) १, १५१
वइसिअं (वैशिकम्) १, १५२
वइस्साणरो (वैश्वानरः) १, १५१
वंसिओ (वांशिकः) १, ७०
वंसो (वंशः) १, २६०
वक्क (वाक्य) २, १७४
वक्कलं (वल्कलम्) २, ७९
वक्खाणं (व्याख्यानम्) २, ९०
वग्गो (वर्गः) १, १७७, २, ७९, वग्गे १, ६
वग्घो (व्याघ्रः) २, ९०
वङ्कं (वक्रम्) १, २६
वच् (धातुः) **वोच्छं** (वक्ष्यामि) ३, १७१, वोत्तुं २, २१७, **वुच्चइ** ३, १६१, वाइएण २, १८९
वच्छं (वक्षः) २, १७
वच्छो (वृक्षः) २, १७, १२७, वच्छं १, २३, **वच्छस्स** १, २४९ वच्छाओ १, ५, वच्छेणं, वच्छेण, पच्छेसुं, वच्छेसु १, २७, वच्छहु ३, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १८, २०, २१, २२, २६, २७, २९, ३, १४७
वज्जं (वज्रम्) १, १७७, २, १०५
वज्झए (वध्यते) २, २६
वञ्जरो (मार्जारः) २, १३२
वट्टा (वार्ता) २, ३०
वट्टी (वर्तिका) २, ३०
वट्टुलं (वर्तुलम्) २, ३०
वट्टो (वृत्तः) २, २९
°वट्ठं (°पृष्ठम्) १, ८४, १२९
वडिसं (वडिशम्) १, २०२
वड्डयरं (बृहत्तरम्) २, १७४
वढो (मूढः) २, १७४
वढरो (बठरः) १, २५४
वढलो (बठरः) १, २५४
वणप्फई (वनस्पतिः) २, ६९
वणं (वनम्) १, १७२, ३, ८७, ८८, वणम्मि, वणंमि १, २३, वणाइं, वणाणि ३, ८८
वणस्सइ (वनस्पतिः) २, ६९
वणिआ (वनिता) २, १२८
वणे (निश्चयाद्यर्थे निपातः) २, २०६
वणोली (वनावली) २, १७७
वण्णणिज्जो (वर्णनीयः) ३, १७९
वण्णो (वर्णः) १, १४२, १७७
वण्ही (वह्निः) २, ७५
वतनकं (वदनम्) २, १६४, वतनके २, १६४
°वत्तं (°पत्रम्) १, १४५
वत्ता (वार्ता) २, ३०
वत्तिआ (वर्तिका) २, ३०
वत्तिओ (वर्तिका) २, ३०
वन्द् (धातुः) **वन्दामि** (वन्दामि) १, ६, ३, ९२, वन्दे १, २४, ३, ४६, १३४, वन्दित्तु, वन्दित्ता, २, १४६
वन्दारया (वृन्दारकाः) १, १३२
वन्द्रं (वन्द्रम्, वृन्दम्) १, ५३, २, ७९
वम्फइ (वलति) १, ३०, वंफइ १, ३०
वम्महो (मन्मथः) १, २४२, २, ६१
वम्मिओ (वाल्मीकः) १, १०१
वम्हलो (अपस्मारः) २, १७४
वयंसो (वयस्यः) १, २६
वयणं (वचनम्) १, २२८, ३, २९, वयणा १, ३३, वयणाइं १, ३३, **वयणाइँ** ३, २६
वयं (वयम्) ३, १०६
वयं (वयः) १, ३२
वर् (धातुः) पाउओ १, १३१, निउअं १, १३१, निव्वुओ १, १३१, निव्वुओ १, २०९, विउअं १, १३१, संवुअं १, १३१
वरिअं (वृतम्) २, १०७
वरिसं (वर्षम्) २, १०५, वरिसा २, १०५, वरिससयं २, १०५
वर्त् (धातुः) **वित्तं** (वृत्तम्) १, १२८, वट्टो २, २९, निअत्तसु २, १९६, निवुत्तं, निअत्तं १, १३२, पडिनिअत्तं १, २०६, पयट्टइ २, ३०, **पयट्टो** २, २९, संवट्टिअं २, ३०.
वर्ध् (धातुः) विद्ध १, १२८, २, ४०, बुड्ढो १, १३१, २, ४०, ९०
वर्ष् (धातुः) विट्ठो, वुट्ठो १, १३७, पउट्ठो १, १३१
वलयाणलो (वडवानलः) १, १७७
वलयामुहं (वडवामुखम्) १, २०२
वलिसं (बडिशम्) १, २०२
वलुणो (वरुणः) १, २५४
वल्ली (वल्ली) १, ५८
वस् (धातुः) वसामि (वसामि) ३, १३५
वसई (वसतिः) १, २१४
वसन्ते (वसन्ते) १, १९०
वसही (वसतिः) १, २१४
वसहो (वृषभः) १, १२६, १३३
वसुआइ (उद्वाति) ३, १४५ वसुआसि ३, १४५
वह् (धातुः) वहसि (वहसि) २, १९४, वहइ १, ३८

वहस्स, वहाउ, वहाय (वधाय) ३, १३३
वहु (वधू) १, ६, ३, २७, २९, ३६, ४२, १२४, वहुआइ १, ६
वहुमुहं, वहूमुहं (वधूमुखम्) १, ४
वा (वा) १, ६७,
वाइअ (वाचित) २, १८९
वाउलो (वातुलः) १, १२१, २, ९९
वाउल्लो (व्याकुलः) २, ९९
वाऊ (वायुः) १, १८०, ३, १९, २०, १२५, १२९
°वाएज्जा (°पातयेत्) ३, १७७
वाणारसी (वाराणसी) २, ११६
वाणिअ (वणिक्) ३, ७३
वामेअरो (वामेतरः) १, ३६
वायरणं (व्याकरणम्) १, २६८
°वायावेज्जा (°पातयेत्) ३, १७७
वारणं (व्याकरणम्) १, २६८
वारिमई, वारीमई (वारिमतिः) १, ४
वावडो (व्यापृतः) १, २०६
वास-इसी, वासेसी (व्यासर्षिः) १, ५
वास-सयं (वर्षशतम्) २, १०५
वासो (वर्षः) १, ४३, वासं २, १०५, वासा १, ४३, २, १०५
वाहिओ (व्याहृतः) २, ९९
वाहित्तो (व्याहृतः) २, ९९, वाहित्त १, १२८
वाहो (व्याधः) १, १८७
वाहो (वाह्यः) २, ७८
वि (अपि) १, ६, ३३, ४१, ९७, २, १९३, २१८, ३, ८५, १४२
विअ (इव) २, १८२
विअइल्ल (विचकल) १, १६६
विअड (विकट) १, १४६
विअड्डि (वितर्दिः) ३, ५७, विअड्डी २, ३६
विअड्ढो (विदग्धः) २, ४०
विअणं (व्यजनम्) १, ४६
विअणा (वेदना) १, १४६
विआणं (वितानम्) १, १७७
विआरुल्लो (विकारवान्) २, १५९
विआरो (विकारः) ३, २३
विइण्हो (वितृष्णः) १, १२८
विउसग्गो (व्युत्सर्गः) २, १७४
विउसा (विद्वांसः) २, १७४
विउहो (विबुधः) १, १७७
विओओ (वियोगः) १, १७७
विकासरो (विकस्वरः) १, ४३
विक्कवो (विक्लवः) २, ७९
विच्छड्डो (विच्छर्दः) २, ३६
विच्छुहिरे (विक्षुभ्यन्ते) ३, १४२
विजणं (व्यजनम्) १, १७७
विज्जं (विद्वान्) २, १५
विज्जु (विद्युत्) ३, १३७, विज्जू १, १५, २, १७३, **विज्जुणा** १, ३३, विज्जूए १, ३३
विज्जुला (विद्युत्) २, १७३
विज्जेज्ज (विद्येत) ३, १६०
विज्झाइ (विध्माति) २, २८
विञ्चुओ (वृश्चिकः) १,१२८, २, १६, ८९
विञ्छुओ (वृश्चिकः) १, २६, २, १६
विञ्झ (विन्ध्य) १, ४२, विञ्झो १, २५, २, २६, ९२
विट्ठी (वृष्टिः) १, १३७
विड्डा (व्रीडा) २, ९८
विड्डिर (व्रीडावान्) २, १७४
विणओ (विनयः) १, २४५
विणोअ (विनोद) १, १४६
विण्टं (वृन्तम्) १, १३९
विण्णाणं (विज्ञानम्) २, ४२, ८३
विण्हू (विष्णुः) १, ८५, २, ७५
वित्ती (वृत्तिः) १, १२८
विदुरो (विदुरः) १, १७७
विद्दाओ (विद्रुतः) १, १०७
विप्पवो (विप्लवः) २, १०६
विप्पो (विप्रः) १, १७७
विब्भलो (विह्वलः) २, ५८
विम्हओ (विस्मयः) २, ७४
विम्हयणिज्जं, विम्हयणीअं (विस्मयनीयम्) १, २४८
विरला (विरलाः) २, ७२
विरसं (विरसम्) १, ७
विरहो (विरहः) १, ११५
विरहग्गी (विरहाग्निः) १, ८४
विलया (वनिता) २, १२८
विलिअं (व्यलीकम्) १, ४६, १०१
विव (इव) २, १८२
विश् (धातुः) **विसइ** (विशति) १, २६०, निवेसन्तो ३, १८०, निवेसिआण १, ६०
विसढो (विषमः) १, २४१
विसण्ठुलं (विसंष्ठुलम्) २, ३२
विसंतवो (विषंतपः) १, १७७
विसमो (विषमः) १, २४१
विसमआयवो (विषमातपः) १, ५
विसमइओ (विषमयः) १, ५०
विसमओ (विषमयः) १, ५०
विसमायवो (विषमातपः) १, ५
विसयं (विषयम्) २, २०९
विसाओ (विषादः) १, १५५

विसुद्धेण (विशुद्धेन) ३, ३८
विसेसो (विशेषः) १, २६०
विस्सोअसिआ (विस्रोतसिका) २, ९८
विहडप्फड (निपातः) २, १७४
विहत्थी (वितस्तिः) १, २१४
विहलो (विह्वलः) २, ५८, ९३
विहवेहि (विभवैः) १, ३४
विहि (विधि) २, २०६, विही १, ३५
विहुं (विधुम्) ३, १९
वीइ (वीचि) १, ४
वीरिअं (वीर्यम्) २, १०७
वीसम्भो (विश्रम्भः) १, ४३
वीसा (विंशतिः) १, २८, ९२
वीसाणो (विष्वाणः) १, ४३
वीसामो (विश्रामः) १, ४३
वीसासो (विश्वासः) १, ४३
वीसुं (विष्वग्) १, २४, ४३, ५२
वुट्ठी (वृष्टिः) १, १३७
वुड्ढी (वृद्धिः) १, १३१, २, ४०
वुत्तन्तो (वृत्तान्तः) १, १३१
वुन्दं (वृन्दम्) १, १३१
वुन्दारया (वृन्दारकाः) १, १३२
वुन्दावणो (वृन्दावनः) १, १३१
वुन्द्रं (वृन्दम्) १, ५३
वेअणा (वेदना) १, १४६
वेअसो (वेतसः) १, २०७
वेआलिओ (वैतालिकः) १, १५२
वेइल्लं (विचकिलम्) १, १६६, २, ९८
वेकुण्ठो (वैकुण्ठः) १, १९९
वेच्छं (वेत्स्यामि) ३, १७१
वेज्जो (वैद्यः) १, १४८, २, २४
वेडिसो (वेतसः) १, ४६, २०७
वेडुज्जं (वैडूर्यम्) २, १३३
वेणुलट्ठी (वेणुयष्टिः) १, २४७
वेणू (वेणुः) १, २०३
वेण्टं (वृन्तम्) १, १३९, २, ३१
वेण्हू (विष्णुः) १, ८५
वेप् (धातुः) **वेवइ** (वेपते) ३, १३९, १४३, १४५, १८१, १८२
वेरं (वैरम्) १, १५२
वेरि (वैरि) १, ६
वेरुलिअं (वैडूर्यम्) २, १३३
वेलुवणं (वेणुवनम्) १, ४
वेल्लन्तो (रम् धातुः) १, ६६
वेल्ली (वल्ली) १, ५८
वेविरो (वेपनशीलः) २, १४५, वेविरीए ३, १३५
वेव्व (आमन्त्रणे निपातः) २, १९४
वेव्वे (भयादौ निपातः) २, १९३, १९४
वेसम्पायणो (वैशम्पायनः) १, १५२
वेसवणो (वैश्रवणः) १, १५२
वेसिअं (वैशिकम्) १, १५२
वेसो (द्वेष्यः) २, ९२
वेहव्वं (वैधव्यम्) १, १४८
वो (वः) ३, १००
वोक्कन्तं (व्युत्क्रान्तम्) १, ११६
वोण्टं (वृन्तम्) १, १३९
वोद्रह (तरुण) २, ८०, वोद्रही २, ८०
वोसिरणं (व्युत्सर्जनम्) २, १७४
व्व (इव) १, ६, ६६, २, ३४, १२९, १५०, १८२

[श]

शक् (धातुः) सिक्खन्तु २, ८०
शम् (धातुः) उवसामेइ, उवसमावइ, उवसमावेइ ३, १४९
शुभ् (धातुः) सोहइ १, १८७, २६०
शुष् (धातुः) सूसइरे ३, १४२, सोसिअं सोसविअं ३, १५०
श्रम् (धातुः) विसमइ १, ४३
श्रु (धातुः) सुणउ, सुणाउ, ३, १५८, सोउआण २, १४६ सोच्चा २, १५, सुअ २, १७४ सुओ १, २०९, सोच्छं ३, १७१, १७२,
श्लिष् (धातुः) **सिलिट्ठं** २, १०६, आलेट्ठुअं १, २४, २, १६४, आलेट्ठु २, १६४ आलिद्धो २, ४९, ९०
श्वस् (धातुः) ऊससइ १, ११४, वीससइ १, ४३

[स]

स (सः) २, १८४, ३, ३
सइ (सकृत्) १, १२८
सइ (सदा) १, ७२
सइन्नं (सैन्यम्) १, १५१
सइरं (स्वैरम्) १, १५१
सई (शची) १, १७७
सउणो (शकुनः) १, १८०
सउरा (सौराः) १, १६२
सउहं (सौधम्) १, १६२
संवच्छरो (संवत्सरः) २, २१, संवच्छलो २, २१
संवट्टिअं (संवर्तितम्) २, ३०
संवत्तओ (संवर्तकः) २, ३०
संवत्तणं (संवर्तनम्) २, ३०
संवरो (संवरः) १, १७७
संवुडो (संवृतः) १, १७७
संसओ (संशयः) १, ३०
संसिद्धिओ (सांसिद्धिकः) १, ७०
संहारो (संहारः) १, २६४
सक्कं (शक्नोमि) ३, १४१
सक्कयं (संस्कृतम्) १, २८, २, ४

सक्कारो (सत्कारः) १, २८, २,४
सक्कालो (सत्कारः) १, २५४
सक्को (शक्तः) २, २
सक्खं (साक्षात्) १, २४
सक्खिणो (साक्षिणः) २, १७४
संकरो (शंकरः) १, १७७
संकलं (शृङ्खला) १, १८९
संखो, सङ्खो (शङ्खः) १, ३०,१८७
संगं (शृङ्गम्) १, १३०
संगमो (संगमः) १, १७७
संघारो (संहारः) १, २६४
संघो (संघः) १, १८७
सचावं (सचापम्) १, १७७
सच्चं (सत्यम्) २, १३
सच्छायं (सच्छायम्) १, २४९
सच्छाहं (सच्छायम्) १, २४९
सज्जणो (सज्जनः) १, ११
सज्जो (षड्जः) २, ७७
सज्झं (साध्यम्) २, २६
सज्झसं (साध्वसम्) २, २६
सज्झाओ (स्वाध्यायः) २, २६
सज्झो (सह्यः) २, २६, १२४
संजत्तिओ (सांयात्रिकः) १, ७०
संजमो (संयमः) १, २४५
संजा (संज्ञा) २, ८३
संजोगो (संयोगः) १, २४५
संझा (सन्ध्या) १, ६, २५, ३०, २, ९२ सञ्झा १, ३०
सड्ढा (श्रद्धा) २, ४१
सढा (सटा) १, १९६
सढिल (शिथिल) १, ८९
सढो (शठः) १, १९९
सणिअं (शनैः) २, १६८
सणिच्छरो (शनैश्चरः) १, १४९
सणिद्धं (स्निग्धम्) २, १०९
सणेहो (स्नेहः) २, १०२
सण्डो (षण्डः) १, २६०
संढो, सण्ढो (षण्ढः) १, ३०
सण्णा (संज्ञा) २, ४३, ८२
सण्हं (श्लक्ष्णम्) २, ७५, ७९
सण्हं (सूक्ष्मम्) १, ११८, २, ७५
सत्तण्ह (सतृष्ण) ३, १२३
सत्तरी (सप्ततिः) १, २१०
सत्तावीसा (सप्तविंशतिः) १, ४
सत्तो (शक्तः) २, २
सत्थि (स्वस्ति) २, ४५
सत्थो (सार्थः) १, ९७
सद् (धातुः) ओसिअन्त १, १०१, निसण्णो, नुमण्णो १,१७४,पसिअ १, १०१, २, १९६
सद्दालो (शब्दवान्) २, १५९
सद्दो (शब्दः) १, २६०, २, ७९
सद्धा (श्रद्धा) १, १२, २, ४१
संदट्टो (संदष्टः) २, ३४
सपावं (सपापम्) १, १७७
सपिवासो, सप्पिवासो (सपिपासः) २, ९७
सप्फं (शष्पम्) २, ५३
सप्फलं (सफलम्) २, २०४
सब्भावं (सद्भावम्) २, १९७
सभरी (शफरी) १, २३६
सभलं (सफलम्) १, २३६
सभिक्खू (सद्भिक्षुः) १, ११
समएणं (समये) ३, १३७
समण (श्रमण) ३, १२३
समणि ! (श्रमणि !) ३, ४२
समत्तो (समाप्तः) २, ४५
समन्निअं (समन्वितम्) ३, ४६
समं (समम्) २, २०१, समा १, २६९
समरो (शबरः) १, २५८
समिज्झाइ (समिन्द्धे) २, २८
समिद्धी (समृद्धिः) १, ४४, १२८ ३, २३
समुद्दो (समुद्रः) २, ८०
समुद्रो (समुद्रः) २, ८०
समुहं (संमुखम्) १, २९
संपआ (संपद्) १, १५
संपइ (संप्रति) १, २०६
संपया (संपद्) १, १५
संपयं (सांप्रतम्) १, २०९
संफासो (संस्पर्शः) १, ४३
संमड्डिओ (संमर्दितः) २, ३६
संमड्डो (संमर्दः) २, ३६
सम्मं (सम्यक्) १, २४
सम्मं (शर्मन्) १, ३२, ३, ५६
संमुहं (संमुखम्) १, २९
सय (शत) २, १५८, सयं २, १०५
सयढो (शकटः) १, १९६, सयढं १, १७७, १८०
सयणो (स्वजनः) २, ११४
सयं (स्वयम्) २, २०९
सयलं (सकलम्) २, १५
सया (सदा) १, ७२
सय्हो (सह्यः) २, १२४
सर् (धातुः) **ओसरइ** अवसरइ १, १७२, ओसारिअं, अवसारिअं १, १७२,समोसर २,१९७,ऊसरइ १, ११४ ऊसारिओ २, २१,नीसरइ १, ९३
सरो (सरस्) १, ९१
सरओ (शरद्) १, १८, ३१
सररुहं (सरोरुहम्) १, १५६
सरि (सदृक्) १, १४२
सरिआ (सरिद्) १, १५
सरिच्छो (सदृक्षः) १, ४४, १४२, २, १७

सरिया (सरिद्) १, १५
सरिस (सदृश) २, १९५, सरिसो १, १४२
सरिसव (सर्षप) १, १८७
सरो (स्मरः) २, ७४, ७८
सरोरुहं (सरोरुहम्) १, १५६
सलाहा (श्लाघा) २, १०१
सलिल (सलिल) १, ८२
सवइ (शपति) १, ३३
सवलो (शबलः) १, २३७
सवहो (शपथः) १, १७९, २३१
सव्व (सर्व) ३, ५८,५९,६०,६१, सव्वं १, १७७, २, ७९, सव्वस्स ३, ८५, सव्वे ३, १४७, सव्वाण ३, ८५
सव्वओ (सर्वतः) १, ३७, २, १६०
सव्वङ्गिओ (सर्वाङ्गीणः) २,१५१
सव्वज्जो (सर्वज्ञः) १, ५६, २, ८३
सव्वण्णू (सर्वज्ञः) १, ५६, २, ८३
सव्वत्तो (सर्वतः) २, १६०
सव्वत्थ (सर्वत्र) ३, ५९, ६०
सव्वदो (सर्वतः) २, १६०
ससहरस्स (शशधरस्य) ३, ८५
ससा (स्वसा) ३, ३५
सहइ (सहते) (राजृधातुः) १, ६
सहन्तो (सह धातुः) ३, १८०
सहकारो (सहकारः) १, १७७
सहयारो (सहकारः) १, १७७
सहरी (शफरी) १, २३६
सहलं (सफलम्) १, २३६
सहस्स (सहस्र) २, १५८
सहस्ससिरो (सहस्रशिराः) २, १९८
सहा (सभा) १, १८७
सहाओ (स्वभावः) ३, ८५
सहि ! (सखि !) २, १९५, ३, २७, २९, ३६, १२४
सहिआ (सहृदयाः) १, २६९, सहिअएहिं १, २६९ ३, ६५
सा (सा) १, ३३, २, २०४, ३, ३३, ८६
सा (श्वन्) १, ५२, ३, ५६
साउ-उअयं (स्वादूदकम्) १, ५
साऊअयं (स्वादूदकम्) १, ५
साणो (श्वन्) १, ५२, ३, ५६
सामओ (श्यामाकः) १, ७१
सामच्छं (सामर्थ्यम्) २, २२
सामत्थं (सामर्थ्यम्) २, २२
सामलीए (श्यामलया) ३, १५३
सामा (श्यामा) १, २६०, २, ७८
सामिद्धी (समृद्धिः) १, ४४
सायरो (सागरः) २, १८२
सायरे, ३, १४२
सारङ्गं (शार्ङ्गम्) २, १००
सारिक्खं (सादृश्यम्) २, १७
सारिच्छो (सदृक्षः) १, ४४
सारिच्छं २, १७
सालवाहणो (शातवाहनः) १, २११
सालाहणो (शातवाहनः) १, ८ २११, सालाहणी १, २११
सावगो (श्रावकः) १, १७७
सावो (शापः) १, १७९, २३१
सासं (सस्यम्) १, ४३
सासिज्जइ (शिष्यते) २, १८०
साहसु (कथ्-धातुः) २, १९७
साहेमि २, २०४
साहणा साहणी (साधनी) ३, ३१
°साहस्सीणं (°साहस्रीणाम्) ३, १२३
साहा (शाखा) १, १८७
साहुली (शाखा) २, १७४
साहू (साधुः) १, १८७, ३, २१
सि (पादपूरणे निपातः) २,२१७
सिआलो (शृगालः) १, १२८
सिआवाओ (स्याद्वादः) २, १०७
सिंहदत्तो (सिंहदत्तः) १, ९२
सिंहराओ (सिंहराजः) १, ९२
सिङ्गं (शृङ्गम्) १, १३०
सिङ्गारो (शृङ्गारः) १, १२८
सिंघो (सिंहः) १, २९, २६४
सिच् (धातुः) ऊसित्तो १, ११४, नीसित्तो १, ४३
सिट्ठं (सृष्टम्) १, १२८
सिट्ठी (सृष्टिः) १, १२८, २, ३४
सिढिलो (शिथिलः) १, २१५
सिढिलं, (शिथिलम्) १, ८९
सिढिलो (शिथिरः) १, २१५ २५४
सिणिद्धं (स्निग्धम्) २, २०९
सिंहो (सिंहः) २, ७५
सित्थं (सिक्थम्) २, ७७
सिद्धओ (सिद्धकः) १, १८७
सिन्दूरं (सिन्दूरम्) १, ८५
सिन्धवं (सैन्धवम्) १, १४९
सिन्नं (सैन्यम्) १, १५०
सिप्पी (शुक्तिः) २, १३८
सिभा (शिफा) १, २३६
सिं (एतेषाम्, एषाम्, तेषाम्) ३, ८१
सिमिणो (स्वप्नः) १, ४६, २५९
सिम्भो (श्लेष्मा) २, ७४
सिरं (शिरः) १, ३२, ३, ८५
सिरविअणा (शिरोवेदना) १, १५६
सिरा (शिरा) १, २६६
सिरी (श्रीः) २, १०४, सिरिं, सिरीए २, १९८

सिरिमन्तो (श्रीमान्) २, १५९
सिरिसो (शिरीषः) १, १०१
सिरोविअणा (शिरोवेदना) १, १५६
सिल (शिला) १, ४
सिलिट्ठं (श्लिष्टम्) २, १०६
सिलिम्हो (श्लेष्मा) २, ५५, १०६
सिलेसो (श्लेषः) २, १०६
सिलोओ (श्लोकः) २, १०६
सिविणो (स्वप्नः) १, ४६, २५९ २, १०८ सिविणए २, १८६
सिहर (शिखर) २, ९७
सीअरो (शीकरः) १, १८४
सीअलत्तणं (शीतलत्वम्) ३, १०
सीभरो (शीकरः) १, १८४
सीमाधरस्स(सीमाधराय)३,१३४
सीयाणं (श्मशानम्) २, ८६
सीलं (शीलम्) ३, ८१, सीलेण २, १८४
सीसं (शीर्षम्) २, ९२
सीसो (शिष्यः) १, ४३,
सीहो (सिंहः) १, २९, ९२, २६४, २, १८५ सीहेण १, १४४, २, ९६
सीहरो (शीकरः) १, १८४
सुउरिसो (सुपुरुषः) १, ८, १७७
सुओ (सुतः) ३, ३५, ४३
सुकडं (सुकृतम्) १, २०६
सुकम्माणे, सुकम्माणो (सुकर्मणः) ३, ५६
सुकुमालो (सुकुमारः) १, १७१
सुकुसुमं (सुकुसुमम्) १, १७७
सुक्क (शुक्ल) २, १०६ सुक्कं २, ११
सुक्कं (शुष्कम्) २, ५
सुक्किलं (शुक्लम्) २, १०६
सुक्खं (शुष्कम्) २, ५
सुगओ (सुगतः) १, १७७
सुगन्धत्तणं (सुगन्धत्वम्) १, १६०
सुङ्गं (शुल्कम्) २, ११
सुज्जो (सूर्यः) २, ६४
सुणओ (शुनकः) १, ५२
सुण्डो (शुण्डः) १, १६०
सुण्हं (सूक्ष्मम्) १, ११८
सुण्हा (सास्ना) १, ७५
सुण्हा (स्नुषा) १, २६१
सुतारं (सुतारम्) १, १७७
सुत्ती (शुक्तिः) २, १३८
सुदंसणो (सुदर्शनः) २, १०५
सुदरिसणो (सुदर्शनः) २, १०५
सुद्धं (शुद्धम्) १, २६०
सुद्धोअणी (शौद्धोदनिः) १, १६०
सुन्दरि ! (सुन्दरि !) २, १९६
सुन्दरिअं (सौन्दर्यम्) १, १६०, २, ६३, ९३
सुन्देरं (सौन्दर्यम्) १, ५७, १६०, २, ६३, ९३
सुपहायं (सुप्रभातम्) २, २०४
सुपुरिसा (सुपुरुषाः) २, १८४
सुप्पणहा, सुप्पणही (शूर्पणखा) ३, ३२
सुब्बं (शुल्बम्) २, ७९
सुमणं (सुमनम्) १, ३२
सुमिणो (स्वप्नः) १, ४६
सुम्हा (सुम्हाः) २, ७४
सुरट्ठा (सुराष्ट्राः) २, ३४
सुरवहू (सुरवधू) १, ९७
सुरहि (सुरभि) २, १५५
सुरा (सुरा) १, १०२
सुरुग्घं (स्रुघ्नम्) २, ११३
सुवण्ण (सुपर्ण) १, २६
सुवण्णिओ (सौवर्णिकः) १, १६०
सुवे (स्वे) २, ११४
सुवे (श्वः) २, ११४
सुसा (स्नुषा) १, २६१
सुसाणं (श्मशानम्) २, ८६
सुहओ (सुभगः) १, ११३, १७७, १९२
सुहकरो (सुखकरः) १, १७७
सुहदो (सुखदः) १, १७७
सुहं (सुखम्) १, १८७, ३, २६, २९, ३०, सुहेण १, २३१
सुहमं (सूक्ष्मम्) २, १०१
सुहयरो (सुखकरः) १, १७७
सुहुमं (सूक्ष्मम्) १, ११८, २, ११३
सू (धातुः) पसूण० १,१६६,पसूणं, १, १८१
सूरो (सूर्यः) २, ६४, २०७
सूरिओ (सूर्यः) २, १०७
सूरिसो (सुपुरुषः) १, ८
सूसासो (सोच्छ्वासः) १, १५७
सूहवो (सुभगः) १, १३३, १९२
से (तस्य) २, १८८, ३, ८१
सेज्जा (शय्या) १, ५७, २, २४
सेन्दूरं (सिन्दूरम्) १, ८५
सेन्नं (सैन्यम्) १, १५०
सेफो (श्लेष्मा) २, ५५
सेभालिआ (शेफालिका) १, २३६
सेयं (श्रेयः) १, ३२
सेरं (स्मेरम्) २, ७८
सेला (शैलाः) १, १४८
सेवा (सेवा) २, ९९
सेव्वा (सेवा) २, ९९
सेसो (शेषः) १, २६०, सेसस्स १, १८२
सेहालिआ (शेफालिका) १, २३६
सो (सः) १, १७, १७७, २, ९९,

१८०, ३, ३, ५६, ८६, १४८, १६४
सोअइ (शोचति) ३, ७०
सोअमल्लं (सौकुमार्यम्) १,१०७ २, ६८
सोण्डीरं (शौण्डीर्यम्) २, ६३
सोत्तं (स्रोतः) २, ९८
सोमालो (सुकुमारः) १, १७१, २५४
सोरिअं (शौर्यम्) २, १०७
सोहिल्लो (शोभावान्) २, १५९
सौंअरिअं (सौन्दर्यम्) १, १
स्खल् (धातुः) खलिअ (स्खलित) १, ४, खलिओ २, १७७, खलिअं २, ८९
स्तम्भ् (धातुः) **थम्भिज्जइ,ठम्भिज्जइ** (स्तम्भ्यते) २, ९
स्त्या (धातुः) **संखायं** (संस्त्यानम्) १, ७४
स्था, चिट्ठइ (तिष्ठति) १, १९९, २३६, ३, ७९, ठासि, ३, १४५ ठाइ १, १९९, ३, १४५ ठामो ३, १५५ चिट्ठह ३, ९१, चिट्ठन्ति ३, २०, २६, २८, ५०, ५२, ५५, ५६, १२२, १२४, ठासी, ठाही, ठाहीअ, ३, १६२ ठाहि ३, १७५, °ट्ठिअ ३, ७०, ठिअं ३, १६, २९, ३०, १०१, ११५, ११६, ११८, ११९, १२९, ठिआ ३, १२०, १२१, ठविओ, ठाविओ १, ६७, परिट्ठिअं, पइट्ठिअं १, ३८, परिट्ठविओ, परिट्ठाविओ १, ६७ परिट्ठविअं १, १२९ संठविओ संठाविओ १, ६७,
स्मर् (धातुः) विम्हरिमो (विस्मरामः) २, १९३
स्वप् (धातुः) सोवइ,सुवइ १,६४ सुप्पइ २, १७९, सुत्तो २, ७७, पासुत्तो, पसुत्तो १, ४४

[ह]

ह (पादपूरणे) १, ६७
हंसो (हंसः) २, १८२
हं हो (हं भोः) २, २१७
हणुमन्तो (हनुमान्) १, १२१, २, १५९;
हणुमा (हनुमान्) २, १५९,
हत्थुल्ला (हस्तौ) २, १६४
हत्थो (हस्तः) २, ४५, ९०, हत्था २, १६४,३,१३०,हत्थुण्णामिअ० ३, ७०
हद्धी (हा धिक्) २, १९२
हण (धातुः) हयं १, २०९, २, १०४, निहओ १, १८०
हन्द (गृहाणार्थे) २, १८१
हन्दि (विषादादिषु निपातः) २, १८०, १८१
हं (अहम्) १, ४०, ३, १०५
हयासो (हताशः) १, २०९ हयासस्स २, १९५
हर् (धातुः) हरइ (हरति) १, १५५, हरन्ति २, २०४, हिअं १, १२८, ओहरइ १, १७२, अवहडं आहडं १, २०६, वाहित्तं १, १२८ वाहित्तो, वाहिओ २, ९९ संहरइ १, ३०
हर (हर) १, १८३ हरस्स १,१५९
हरए (ह्रदे) २, १२०
हरखन्दा, हरक्खन्दा (हरस्कन्दौ) २, ९७
हरडई (हरीतकी) १, ९९, २०६
°**हरं** (°गृहम्) १, १३४, १३५
हरि (हरि) ३, ३८, हरी ३, ३८
हरिअन्दो (हरिश्चन्द्रः) २, ८७
हरिआलो (हरितालः) २, १२१
हरिणाहिवं (हरिणाधिपम्) ३, १८०
हरिसो (हर्षः) २, १०५
हरे (क्षेपे निपातः) २, २०२
हरो (हरः) १, ५१
हलद्दा (हरिद्रा) १, ८८, ३, ३४
हलद्दी (हरिद्रा) १, ८८, ३, ३४
हला ! (सख्यामंत्रणे) २, १९५
हलिआरो (हरितालः) २, १२१
हलिओ (हालिकः) १, ६७
हलिद्दो (हारिद्रः) १, २५४
हलिद्दा (हरिद्रा) १, ८८, हलिद्दी १, ८८, २५४
हलुअं (लघुकम्) २, १२२
हले ! (सख्यामंत्रणे) २, १९५
हल्लफल (निपातः) २, १७४
हस् (धातुः) ३, २८, ३२, ३६, १३९-१४५, १४९, १५२, १५३, १५४, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६६-१६९, १७३, १७५-१७८, १८१, १८२, हसइ २, १९८, ३, ८७, हासिआ ३,१०५, ऊहसिअं, ओहसिअं, उवहसिअं १, १७३
हसिरो (हसनशीलः) २, १४५
हा (हा) १, ६७, २, १७८, १९२
हालिओ (हालिकः) १, ६७
हाहा (हाहा) २, २१७, हाहाण ३, १२९
हिअअं (हृदयम्) १, १२८, हिअयं १, २६९, २, २०४, हिअय २, २०१, ३, १४२, हिअएण ३, ८७, हिअयए २, १६४, हिअए १, १९९, °हिअओ २, १८६,

°हिअस्स १, २६९
हित्थं (त्रस्तम्) २, १३६
हिर (किल) २, १८६
हिरिओ (ह्रीतः) २; १०४
हिरी (ह्रीः) २; १०४
हा (आश्चर्यादौ निपातः) २,२१७
हीणो (हीनः) १, १०३, हीणं,
२, १०४, हूणो १, १०३, पहीण
१,१०३,विहीणो, विहूणो १,१०३
हीमाणहे (विस्मये निर्वेदे च निपातः) २; २८२
हीरो (हरः) १, ५१
हु (खलु) २; १९८
हुत्तं (हुतम्) २, ९९
हुत्तं (कृत्वस्) २, १५८
हुं (दानाद्यर्थे निपातः) २, १९७
हूअं (भूतम्) २; ९९, ३; १५६
हे (पादपूरणे निपातः) २ २१७
हेट्ठं (अधः) २, १५१
हेट्ठिल्लं (अधस्तनम्) २, १६३
हो (पादपूरणे निपातः) २, २१७

शब्दकोष "मुनि ज्ञान" है, सब से बड़ा निधान ।
इस से हो नर जगत में, निर्धन भी धनवान ।।

शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है—

प्राकृत-व्याकरण का द्वितीय खण्ड

पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि प्राकृत व्याकरण का द्वितीय खण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। यह सत्य है कि कागज़ का मूल्य बढ़ जाने पर भी वह दुर्लभ हो रहा है, छपाई की महंगाई भी किसी से अनजानी नहीं है, तथापि हमारा यही प्रयास चल रहा है कि जैसे प्राकृत व्याकरण के तीन पाद प्रथम खण्ड के रूप में पाठकों की सेवा में समर्पित करने का हम सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं वैसे ही अवशिष्ट चतुर्थपाद को भी द्वितीय खण्ड के रूप में शीघ्र से शीघ्र पाठकों की सेवा में समर्पित करदें।

मंत्री—
आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल
कमला नगर, 29-D देहली-7

शुभ सूचना—

कभी मत भूलिए

जैनधर्मदिवाकर, आचार्यसम्राट्, वन्दनीय परमश्रद्धेय **पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज** के सुशिष्य जैनभूषण, पंजाबकेसरी, **पण्डितरत्न श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज** ने अभी तक लगभग २५ पुस्तकों की रचना की है। इन पुस्तकों के नाम प्रस्तुत ग्रन्थ के आरंभ में दिए जा चुके हैं। ये पुस्तकें हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तथा पंजाबी सभी भाषाओं में प्राप्त होती हैं। इन पुस्तकों का पाठक वर्ग ने आशा से बढ़कर स्वागत किया है। लोकप्रियता की पगडण्डियें पार करवाने के लिए इस साहित्य को किसी दूसरे के सहयोग की अपेक्षा नहीं है। ये पुस्तकें हमारे यहां सुविधापूर्वक प्राप्त की जा सकती हैं। साहित्य-प्रेमी सज्जन जब भी चाहें हम से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। पुस्तकों का जो मूल्य लिया जाता है, ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन के लिए ही उसको उपयोग में लाया जाता है। अधिक संख्या में पुस्तकें मंगवाने वालों को उचित कमीशन भी मिलता है। एक बार सेवा का अवसर हमें अवश्य प्रदान करें। धन्यवाद !

प्रार्थी—

मंत्री—आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल

कमला नगर, 29-D देहली-7

सागर है यह ज्ञान का

भाषाएं तो विविध हैं, मधुर सरस अवदात* ।
प्राकृत - भाषा भी वहां, जगती में प्रख्यात ॥
व्यापक इस का क्षेत्र है, है साहित्य अपार ।
अनुपम इस की मधुरिमा, पावन उच्च विचार ॥
सागर है यह ज्ञान का, न्याय नीति भण्डार ।
सभी कलाओं का मिले, परिपूरण विस्तार ॥
प्राकृत-भाषा ने दिया, अनुपम है साहित्य ।
चमक रहा यह विश्व में, चमके ज्यों आदित्य ॥
जिस मानव को प्राप्त है, प्राकृत - भाषा ज्ञान ।
इस की गरिमा तो वही, जान सके मतिमान ॥
महावीर भगवान की, वाणी का जो सार ।
प्राकृतभाषा में मिले, प्राञ्जल, सुखद, अपार ॥
**प्राकृत जननी देश की, गौरव है 'मुनि ज्ञान' ।
यत्र, तत्र, सर्वत्र ही, इस का है गुणगान ॥

*गुणविशिष्ट, उज्ज्वल **प्राकृतभाषा

रैपर व पेस्टिंग कवर
सोनी प्रिन्टर्ज, बाजार राधा किशन में छपा ।